

१६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य  
पर  
आल्वार भक्तों का प्रभाव

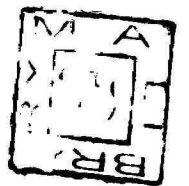
(A STUDY OF THE INFLUENCE OF ALVARS ON THE  
HINDI KRISHNA BHAKTI POETRY OF 16TH CENTURY)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि  
के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुत कर्ता—

मलिक मोहम्मद

संस्कृत-हिन्दी-विभाग  
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।







T394

T 394



20 JAN 73

2  
CHECKED-202



in Committee

CHECKED 1996-97

216-333-221

...

“ मुझे पुनः पांच-संपुष्ट नश्वर नर जीवन धारण करने की कामना नहीं है। मुझे चाह नहीं कि कसीम सुख-संपत्ति जल्दा वापस रमणियों के विलासतास्यों से पूर्ण मादक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करे। मैं अपने को धन्य समझूंगा, अगर वैकट फलत की निर्मल निर्मरिणी में एक मीन होने का पात्र्य प्राप्त हो। प्रभु के पावन पद-कमलों के दर्शनार्थ गीत-रस-सहरी में निमज्जित भ्रमर-समूह के फंकार गूँजित वैकट गिरि की वाटिका में एक चंफक कुसुम बन जाऊँ। ”

- कुलशेखराखवार

“ पानुण हों तो वही 'रसतानि' बसो ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।  
जो पशु हों तो कहा बस मेरो, चरों नित नंद की धनु मँफारन ॥  
पाहन हों तो वही गिरि की जो धार्यो कर कर पुरन्दर धारन ।  
जो लग हों तो कौनों करों, मिति काहिंदी कृत कदंब की डारन ॥

- रसतान

“ जिस तरह जहाज का पानी फिर फिर जहाज के ली पर ही जाता है, उसी तरह ( हे, मगवान् ) मैं बापकी शरण में आया हूँ। मुझे अन्यत्र कोई सहारा नहीं है। ”

- कुलशेखराखवार

“ मेरी मन अनत कहाँ सुख पावे ।  
धैं उड़ि जहाज की पंही, फिरि जहाज पर आवे । ”

- सुरदास

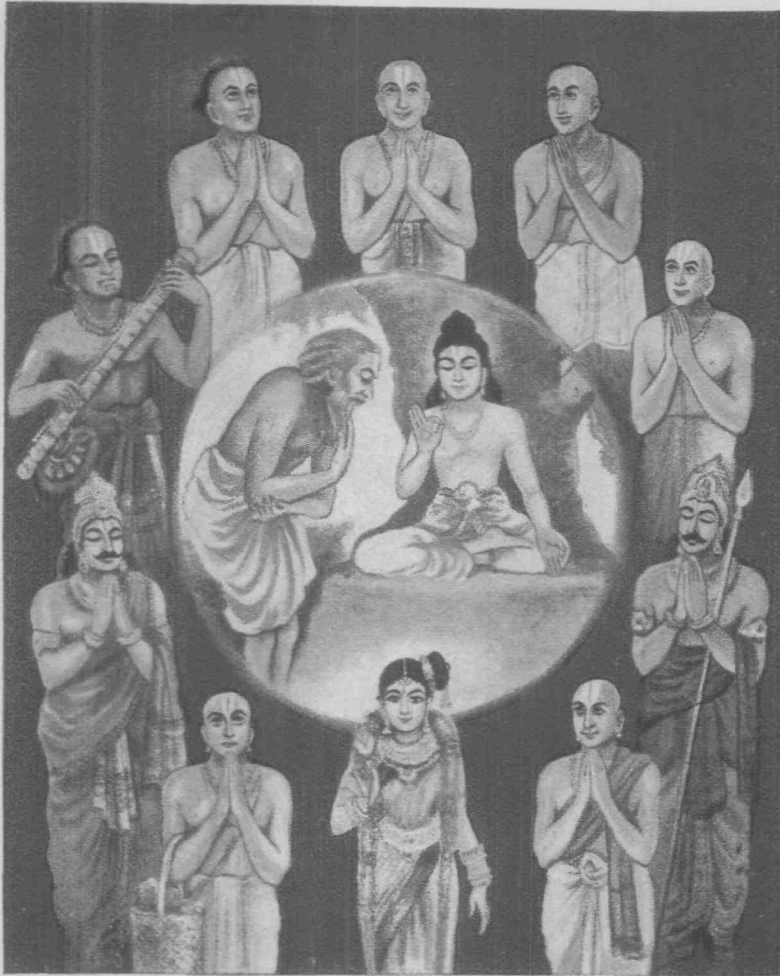
“ प्रिय-वियोग में मेरी हड्डियाँ पिघल गयी हैं। मेरे मांस-सम-मेत्र कभी बन्द नहीं होते। प्रिय के आगम में कैसे नौद आवे ? वियोग-दुल-सागर में गोविन्द नामक नाव के बिना मैं कसीम कष्ट भोग रही हूँ। ”

- बाण्डाल

“ रमैया किन नौद न आवे ।  
नौद न आवे विरह सतावे, प्रेम की बाँध दुलावे ।  
निस दिन जोर्वा बाट मुरारी, कबरी दरखण पावा ।  
मोराँ रे हरि के मिलियाँ बिण तरस तरस जीया आवी ॥ ”

- मोरा

। बालुवार भक्त ।



### प्रावकथन

भारतीय मभित-बान्दोलन का बहुत ही लंबा इतिहास है। हिन्दी-प्रदेश में यह बहुत ही प्रसिद्ध उचित है कि "मभित ब्राविड ऊफ्फी लाय रामानंद"। विद्वानों ने हिन्दी-प्रदेश के मभित-बान्दोलन पर तो विस्तार से लिखा है, पर दक्षिण में उत्पन्न होने वाली "मभित" की मूल प्रेरणाओं पर अभी तक विशेष प्रकाश डाला नहीं गया है। भारतीय मभित-बान्दोलन में तमिल-प्रदेश का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तमिल-प्रदेश के बालवार भक्तों ने इसकी पाँचवीं शती से आठवीं शती तक मभित का जो तीव्र बान्दोलन चलाया था, वह परवर्ती शताब्दियों में एक व्यापक जन-बान्दोलन का रूप धारण कर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हो गया। यही कारण है कि बाल-वार मभित "प्रबन्धम्" उसी "ब्राविड ऊफ्फी" वाले मभित-बान्दोलन का मूल ग्रंथ माना जाता है। किन्तु सन्देह है कि "प्रबन्धम्" के वास्तविक परिचय एवं महत्व के प्रकाश में न आने के कारण, मभित-बान्दोलन पर लिखे वाले विद्वान् तमिल-प्रदेश के मभित-बान्दोलन तथा उसके प्रवर्तक बालवार भक्तों के विषय में अपेक्षाकृत विवरण दे नहीं सके। अतः उन ग्रन्थों से मभित-बान्दोलन का लघुपूर्ण इतिहास ही उपलब्ध है। भारतीय मभित-बान्दोलन में बालवारों के योगदान के वास्तविक महत्व को प्रकाश में लाने की बड़ी आवश्यकता रह गयी थी।

जब से प्रस्तुत लेखक ने हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य का विशेष अध्ययन प्रारम्भ किया था, तबसे लेखक को बालवार भक्तों और हिंदी कृष्ण-भक्त कवियों की विचार-धारा में दीप्त पढ़ने वाले अद्भुत और गहरे साम्य ने दोनों के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। परम गुरु डा० हरप्रसाद जी की स्फूर्तिमयी सत्प्रेरणा भी पाकर बालवारों के मभित-साहित्य का विस्तृत परिचय हिन्दी जगत् को देने तथा बालवारों के

वर्ग हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए ऐसक प्रयुक्त हुआ । शोध के लिए अपेक्षित निश्चित सीमा को ध्यान में रख कर प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक अध्ययन के लिए बाल्यार भवतों के तथा केवल १६ वीं शती के प्रमुख हिन्दी-कृष्ण-भवत कवियों के काव्य को ही लिया गया है। केवल १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-काव्य को लेने का दूसरा कारण यह है कि समस्त हिन्दी कृष्ण-मवित-साहित्य में १६ वीं शती का कृष्ण-मवित-काव्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

तुलनात्मक अध्ययन में साधारणतः सम्कालीन दो भिन्न क्षेत्रों के साहित्यों को लिया जाता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में काल को लेकर नहीं, बल्कि विषय-साम्य से प्रेरित होकर बाल्यारों के वर्ग १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण भवत कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मवित-बान्दील के मूल ग्रन्थ "प्रबन्धम्" के मवित-तत्त्वों ने परवर्ती मवित-साहित्य को बहुत ही प्रभावित किया था और यही प्रभाव १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मवित-काव्य पर अप्रत्यक्ष रूप से (कई शताब्दियों के बीत जाने के कारण) दृष्टिगोचर होता है। सामान्य रूप से परवर्ती मवित-साहित्य पर "प्रबन्धम्" के मवित-तत्त्वों का जो प्रभाव पड़ा है, वह अप्रत्यक्ष रूप से १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-काव्य पर भी पड़ा है। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध का शीर्षक "१६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मवित-काव्य पर बाल्यारों का प्रभाव" अलग नहीं ठहरता ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्णित विषय को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम खण्ड बाल्यार-साहित्य से सम्बन्धित है । द्वितीय खण्ड में बाल्यारों के तथा १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों के काव्य का कई दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन की सुविधा

के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध को जाठ अध्यायों में विभाजित कर दिया गया है और उसका विषय-क्रम निम्नलिखित प्रकार से रखा गया है।

प्रथम अध्याय में बालवार्तों के तथा बालोच्चकासीन हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के काव्य की सामान्य पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। तमिल-प्रदेश की मवित-परंपरा का परिचय देकर तमिल-प्रदेश में वैष्णव-मवित के विकास पर प्रकाश डाला गया है। बालवार्तों के पूर्व के तमिल-साहित्य (संघ-साहित्य) में मिलनेवाली वैष्णव-मवित की एक फार्मी भी प्रस्तुत की गयी है। गोपाल-कृष्ण और राधा के विकास में तमिल के योगदान की चर्चा की गयी है। बालवार्तों के समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय देकर मवित-बान्दोलन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। वैष्णव बालवार मवतों ने तथा वेव मवत नायकवारों ने मिलकर किस प्रकार जैन और बौद्ध धर्मों को परास्त कर तमिल-प्रदेश में मवित की प्रवृत्त धारा प्रवाहित की थी, इसका भी विवरण संक्षेप में दिया गया है। मवित-बान्दोलन को बालवार्तों की मौलिक दैन पर प्रकाश डालकर यह साबित किया गया है कि उन पर इस्लामी विचार-धारा का प्रभाव नहीं पड़ा है। बालवार्तों के पश्चात् उनकी विचार-धारा का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने वाले अध्यायों तथा दक्षिण के प्रमुख मवित-संप्रदायों का परिचय भी दिया गया है। साथ ही साथ १६ वीं शताब्दी के हिन्दी कृष्ण-मवित काव्य को प्रभावित करने वाले उत्तर के मवित-संप्रदायों का भी परिचय दिया गया है। इस प्रकार प्रथम अध्याय में एक प्रकार से मवित के क्रमिक विकास का ही संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

“कवि और काव्य” शीर्षक द्वितीय अध्याय में बालवार मवतों और १६ वीं शताब्दी के प्रमुख हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के जीवन-वृत्तों का संक्षिप्त परिचय देकर उनकी कृतियों तथा वर्ण्य विषय के विवरण दिये गये हैं। बालवार्तों के वाविर्भाव-काल इत्यादि के विषय में अनेक मत हैं। जो मत सभी-बोधन और प्रमाण-पुष्ट है, उसी को स्वीकार किया गया है। बालवार्तों से सर्व-

धित अनेक जनश्रुतियाँ तमिल- प्रदेश में प्रचलित हैं। बालवार्त्तों के जीवन कृत्यों का परिचय देते समय कुछ प्रसिद्ध जनश्रुतियों का समावेश करना पड़ा है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए १६ वीं शती के विन प्रसुत हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों को लिया गया है, उनमें प्रत्येक संप्रदाय के दो-तीन प्रतिनिधि कवि हैं और कुछ संप्रदाय- मुक्त कवि भी हैं।

तृतीय अध्याय पूर्ण रूप से 'प्रबन्धम्' से सम्बन्धित है। इसमें मध्ययुगीन कृष्ण- भक्ति- साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के सामान्य और विशिष्ट तत्वों की चर्चा की गयी है। प्रसंगिक 'प्रबन्धम्' की तुलना श्रीमद्भागवत से करके यह दिखाया गया है कि 'प्रबन्धम्' का रचना- काल 'भागवत' से भी पूर्व का है। 'प्रबन्धम्' के सामान्य तत्वों के अन्तर्गत उन भक्ति- तत्वों की चर्चा है जिन्होंने सामान्य रूप से परवर्ती भक्ति- साहित्य को प्रभावित किया है। विशिष्ट तत्वों के अन्तर्गत परवर्ती कृष्ण भक्ति- साहित्य को प्रभावित करने वाले तत्वों को लिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में बालवार्त्तों और १६ वीं शताब्दी के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की भक्ति- पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भक्ति की विभिन्न परिभाणाओं तथा भक्ति के प्रकारों की चर्चा के साथ बालवार्त्त-काव्य तथा बालोच्च्य छ हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य से नवधा भक्ति के उदाहरण दिये गये हैं। विभिन्न भक्ति- भावों की चर्चा कर दोनों दौत्रों के भक्तों की प्रेमा भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में दोनों दौत्रों के कवियों के दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म, जीव, माया, जगत् और मोक्ष सम्बन्धी दोनों दौत्रों के कवियों के विचारों में मिलनेवाले साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में बालोच्च्य कवियों के काव्य में उपलब्ध रहस्यात्मक दृष्टिकोण की भी चर्चा है।



अष्ट अध्याय में दोनों दोत्रों के कवियों के काव्य के माव-पदा की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। माव-पदा का सामान्य विवेचन कर वालवारी और वालोच्य कासीन हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों के काव्य के माव-पदा की वालोचना की गई है। विविध रसों के उदाहरण दोनों के काव्यों से दिये गये हैं। वर्णन-वैचित्र्य के अन्तर्गत विशेष रूप से दोनों दोत्रों के कवियों की कृतियों में उपलब्ध प्रकृति-चित्रण के विविध रूपों की चर्चा की गयी है।

सप्तम अध्याय दोनों दोत्रों के कवियों के काव्य के कला-पदा से सम्बन्धित है। कला-पदा के अन्तर्गत दोनों के काव्य में उपलब्ध गैयत्व काव्य के विविध रूप, इन्द्रोयोजना, भाषा, अलंकार-योजना और उचित-वैचित्र्य आदि विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डाला गया है, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि काव्य-कला की कसौटी पर भी दोनों दोत्रों के कवियों के काव्य बरे उतरते हैं।

“मूल्यांकन और उपसंहार” शीर्षक अंतिम अध्याय में वालवारी मन्तों के तथा १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों के काव्य का कई दृष्टिकोणों से मूल्यांकन किया गया है। उपसंहार में प्रस्तुत प्रबन्ध के उद्देश्य और उन की पूर्ति की चर्चा कर दोनों दोत्रों के कवियों के काव्य के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भारतीयता की भाषात्मक स्वता पर जो प्रकाश पड़ता है, उसकी ओर भी उचित किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्त में चार ‘परिशिष्ट’ भी जोड़ दिये गये हैं। प्रथम ‘परिशिष्ट’ में वालवारी के कुछ चुने हुए गीतों का स्वतन्त्र हिन्दी भाषानुवाद दिया गया है। इसमें दिये गये अधिकांश वालवारी-गीत मूल प्रबन्ध में स्थान न पा सके। ‘परिशिष्ट - २’ में वालवारी की रामभक्ति की चर्चा है। वालवारी-काव्य में उपलब्ध राम-भक्ति पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय परिशिष्ट में ‘प्रबन्ध’ पर लिखित विविध भाष्यों और उनकी भाषा का विवरण दिया गया है। प्रबन्ध की विचार-धारा के प्रसार में इन भाष्यों का विशेष हाथ

रहा । अतः इन भाष्यों का विवरण देना उचित समझा गया । चतुर्थ परिशिष्ट में सहायक ग्रन्थों की सूची है। शोध-प्रबन्ध के प्रारम्भ में बारह बालवार्त्तों का वह प्रचलित चित्र दिया गया है जो दक्षिण में लोक-परिचित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के शीर्षक के विषय में दो शब्द कहना लेखक आवश्यक समझता है। प्रस्तुत अध्ययन के मूल में मुख्य रूप से दो उद्देश्य रहे हैं। प्रथम उद्देश्य तो यह है कि भारतीय भक्ति-बान्दोलन में बालवार्त्त भक्तों के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालना तथा परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित करनेवाले "प्रबन्धम्" के तत्त्वों का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करना । दूसरा उद्देश्य यह रहा है कि बालवार्त्तों के भक्ति-काव्य की तुलना १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य से कई दृष्टिकोणों से करके दोनों के साम्य और वैषम्य को स्पष्ट किया जाय । परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले "प्रबन्धम्" के तत्त्वों की विस्तृत चर्चा की गयी है। बालवार्त्तों के पश्चात् उनसे प्रभावित वाचार्यों ने भक्ति-प्रचार किया और बालवार्त्तों के भक्ति-सम्बन्धी विचारों को न्यूनाधिक रूप में ग्रहण किया । "प्रबन्धम्" पर लोक टीकाएँ तमिल और संस्कृत में हुई हैं। "प्रबन्धम्" से प्रभावित लोक ग्रन्थ संस्कृत और तमिल में निकले । इस प्रकार परवर्ती काल में "प्रबन्धम्" की विचार-धारा का पर्याप्त प्रचार हुआ । "प्रबन्धम्" के भक्ति तत्त्वों ने अन्य भाषाओं के भक्ति-साहित्यों को प्रभावित किया । जहाँ तक १६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों पर बालवार्त्तों के प्रभाव का प्रश्न है, लेखक का निवेदन है कि बालवार्त्तों का प्रभाव १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्तों पर लम्बी परंपरा से आया है। क्योंकि दोनों के बीच अन्तर्द्वारों का अन्तर है। "प्रबन्धम्" के जिन भक्ति-तत्त्वों ने परवर्ती भक्ति-साहित्य को सामान्य रूप से प्रभावित किया है, उन्हीं का प्रभाव १६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य पर भी देता जा सकता है। परन्तु यह प्रभाव कई शताब्दियों के बीत जाने से लोक माध्यमों से आया है। १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों तक "प्रबन्धम्" के प्रभाव को पहुँचाने वाले निम्नलिखित माध्यम हो सकते हैं :-

- १- "प्रबन्धम्" पर लिखित संस्कृत टीका- ग्रन्थ
- २- "प्रबन्धम्" से प्रभावित विभिन्न वाचार्थों के सिद्धान्त-ग्रन्थ
- ३- "प्रबन्धम्" से प्रभावित श्रीमद्भागवत का वर्तमान रूप
- ४- वाचार्थों के सांप्रदायिक संगठन

"प्रबन्धम्" के प्रभाव को उत्तर भारत में पहुँचाने वाले विभिन्न भक्ति-संप्रदायों के वाचार्थों हैं, जिन्होंने दक्षिण की भक्ति- धारा को उत्तर में प्रवाहित किया। चूंकि १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों ने विशेष रूप से भक्ति- संप्रदायों के अन्तर्गत रहकर ही काव्य रचना की है, अतः उन संप्रदायों के सिद्धान्तों के प्रभाव का पड़ना स्वाभाविक ही है। लेख की विनीत मान्यता है कि १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण- भक्ति- काव्य पर "प्रबन्धम्" का प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष प्रभाव मानना ही होगा। इतना अवश्य है कि यह प्रभाव अनेक माध्यमों से आया है। जो विद्वान् "भक्ति द्राविड ऊपमी" को मानते हैं, उनको यह भी मानना पड़ेगा कि "द्राविड" में "उपमी" वाली भक्ति का मूल स्रोत "प्रबन्धम्" ही है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के आख़बार सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री के संकलन में लेख को कई कठिनायियों का सामना करना पड़ा है। यह देखकर खेद मिश्रित आश्चर्य होता है कि तमिल विद्वानों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण आख़बार- साहित्य के प्रति क्यों उपेक्षा दिखायी है। जितना विस्तृत अध्ययन शैव संतों के विषय में तमिल में हुआ है, उतना आख़बारों के साहित्य के विषय में नहीं। तमिल में आख़बार- साहित्य का कोई गंभीर अध्ययन अभी तक प्रस्तुत नहीं किया गया है। आख़बारों के विषय में जो छोटी- मोटी पुस्तकें मिलती हैं, उन में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का नितान्त अभाव है। आख़बारों के "प्रबन्धम्" पर जो टीकाएँ तमिल में निकली हैं, उनकी भाषा साधारण तमिल भाषा के लिए भी बोधगम्य नहीं है। सांप्रदायिक लोग आख़बारों को अवतार समझ बैठे हैं और आख़बार- साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करनेवालों को निरुत्साहित कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेख को आख़बार- साहित्य के अध्ययन में अनेक कठिनायियों

का सामना करना पड़ा है। प्रस्तुत लेख का अध्ययन मूल तमिल 'प्रबन्धम्' पर ही आधारित है। हिन्दी के कृष्ण-मन्त्र-काव्य पर तो विद्वानों ने अनेक उत्तम ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं। अतः लेख को हिन्दी कृष्ण-काव्य सम्बन्धी सामग्री के संकलन में विशेष कठिनाई नहीं हुई।

प्रस्तुत प्रबन्ध के बालवार सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री की प्राप्ति के लिए लेख को तमिल-प्रदेश के विभिन्न स्थानों की यात्रा करनी पड़ी है। बालवार भक्तों के जन्म-स्थानों के दर्शन तो लेख ने किये ही हैं। उन स्थानों में बालवारों के जीवन-वृत्तों से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियों का पता चला है। लेख ने मद्रास शहर के दो प्रमुख पुस्तकालयों से ( कन्निमारा पुस्तकालय और मद्रास विश्वविद्यालय का पुस्तकालय ) बालवार विषयक पर्याप्त सामग्री का संकलन किया है। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के अध्ययन की सामग्री का संकलन विशेष रूप से अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से किया है।

लेख को शोध-कार्य-काल में तमिल के विद्वानों में सर्व श्री रा० श्री० देशिकन्, पी० श्री० आचार्य, एम० राधाकृष्ण पिल्लै, वेण्णुगोपाल पिल्लै, अण्णाराचार्य स्वामी, पुरुषोत्तम नायडू ( मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल विभाग के रीडर ) तथा डा० सुब्रह्मण्यम् ( कन्नडा, तमिल-विभाग, केरल विश्वविद्यालय ) से बालवार-साहित्य के अध्ययन में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ, जिसके लिए वह उनका हृदय से धन्यवाद जमाता है। अलीगढ़ में रहकर शोध-प्रबन्ध को लिखते समय लेख को अलीगढ़ मुस्लिम विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यापकों से, प्रधानतः डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल जी से लेख को बड़ी सहायता मिली। ब्रह्मेश शुक्ल जी के प्रति अफी कृतज्ञता प्रकट करना लेख अपना कर्तव्य समझता है।

परम ब्रह्मेश गुरुवर डा० हरवश लाल शर्मा, एम० ए०, पी०-स्व० डी०, डी० लिट् ( आचार्य और कन्नडा, हिन्दी-संस्कृत-विभाग तथा 'डीन' फेकल्टी ऑफ आर्ट्स, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय)की देखरेख और निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध का सारा कार्य संपन्न हुआ। वस्तुतः इस कार्य में लेख को प्रेरित करने

का मूल्य उन्हीं की है और उन्हीं के बहुमूल्य परामर्श से इस प्रबन्ध को इतना सुव्यवस्थित रूप मिल सका। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए लेखक के पास न उचित शब्द हैं, न कोरे शब्दों में बाधा प्रकट कर वह उनके अपार स्नेह और सहृदयता का मूल्य कम करना ही चाहता है।

शोध- प्रबन्ध की मौलिकता के विषय में दो शब्द कहना लेखक आवश्यक समझता है। बालवार्त्तों का तथा उनके साहित्य का विस्तृत परिचय देने वाला कोई भी ग्रन्थ हिन्दी में अभी तक नहीं निकला है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में बालवार्त्तों का परिचय कुछ पंक्तियों में देकर ही संतोष कर लिया है। कारण यही रहा है कि उन विद्वानों की पहुँच तमिल भाषा तक नहीं थी। अतः उनके ग्रन्थों में बालवार्त्तों के विस्तृत परिचय की बात नहीं की जा सकती। प्रस्तुत लेखक का यह समान्य है कि उसकी मातृ-भाषा तमिल है। अतः लेखक ने हिन्दी-जगत को बालवार-साहित्य का प्रथम बार विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया है। इस प्रकार बालवार मन्त्रों और और हिन्दी-कृष्ण-मन्त्र-कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर लेखक ने प्रथम बार तमिल और हिन्दी साहित्यों की बहुमूल्य निधियों को एक स्थान पर एकत्र करने का सुलभ-संयोग जुटाया है। यह अध्ययन हिन्दी के लिए ही नहीं, बल्कि तमिल के लिए भी नया सिद्ध होगा। जिन दृष्टिकोणों से प्रस्तुत प्रबन्ध में बालवार-साहित्य का अध्ययन किया गया है, वह तमिल के लिए नवीन अवसर होगा। लेखक को इसका पूर्ण विश्वास है। मौलिक शोध की दृष्टि से तमिल में भी लेखक के ग्रन्थ का मूल्य हो सकता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में बालवार सम्बन्धी जितनी भी सामग्री लेखक ने दी है और बालवार-काव्य की तुलना हिन्दी कृष्ण-काव्य से करके जो भी निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें लेखक की अपनी मौलिक मान्यताएँ हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के कई अध्ययनों में मौलिक तथ्य देने की संपूर्ण चेष्टा की गई है, जिसके फलस्वरूप कई बातों की नवीन उद्भावनाएँ हुई हैं। मन्त्र-बान्दीजन के मूल-ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' के विषय में बहुत जानने की हिन्दी भाषी विद्वानों की बलवती जिज्ञासा को तुष्ट करने के

लिर भी यह प्रयास सहायक सिद्ध होगा। वास्तव में यह जिज्ञासा ही लेखक की मूल प्रेरणा रही है। लेखक ने दोनों दोत्रों के मध्य-कवियों को निकट लाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी और तमिल के साहित्यों के विभिन्न पक्षों को लेकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर देने के लिये दोनों के कथेताओं को प्रस्तुत अध्ययन से प्रेरणा मिलेगी। लेखक को इसका पूर्ण विश्वास है।

तमिल, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के जिन जिन ग्रन्थों से लेखक ने सहायता ली है, उनमें से बहुतों के नाम पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं और अन्य प्रमुख विद्वानों और उनके ग्रन्थों के नाम परिशिष्ट में दिये गये हैं। इस अवसर पर लेखक उन सभी विद्वानों का सादर कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करता है जिनके ग्रन्थों से लेखक ने अपने अध्ययन में प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त की है।

लेखक की अपनी कौन सीमारी रही है। मूलतः लेखक तमिल भाषी है। अपने भावों को हिन्दी में अभिव्यक्त करने में उचित शब्द-मण्डार का अभाव रहा है। अतः वह अनुभव करता है कि बालवार्त्त-पदों के हिन्दी-अनुवाद में वह प्रवाह, माधुर्य और सरलता वा नहीं सकी जो मूल-रचना में है। लेखक ने बालवार्त्तों के पदों का (शब्दानुवाद नहीं कर) स्वतंत्र भावानुवाद ही प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक अध्ययन में लेखक ने यथासंभव निष्पदा दृष्टिकोण रखा है। किसी साहित्य को छोटा या बड़ा दिखाना उसका उद्देश्य कदापि नहीं है। यह आवश्यक भी नहीं है कि लेखक के निष्कर्ष सर्वमान्य हों। संभव है कि इस प्रबन्ध में कौन-कौन सी त्रुटियाँ भी रह गयी हों। लेखक का अपरिपक्व ज्ञान ही उनका उत्तरदायी है और कुछ नहीं। अपनी सीमाओं में रहकर लेखक ने भारतवर्ष की दो प्रमुख भाषाओं के मध्य-साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अगर यह अध्ययन दोनों भाषाओं के साहित्यों को निकट लाने में कुछ भी सहायता करे तो लेखक के लिये उतना ही पर्याप्त है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय में लेखक और कुछ कहना नहीं चाहता। बहुत कुछ समेटने का प्रयत्न करने पर भी लेखक अनुभव करता है कि बहुत कुछ शेष रह

गया और देशकालावच्छिन्न इस चिरन्तन सत्य की अनुभूति उसे हो रही है-

“ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ”

बलीगढ़ नगर में हिन्दी टाइप की सुव्यवस्था न होने के कारण तथा हिन्दी टंकन-यंत्र की अपूर्णता के कारण टाइप सम्बन्धी ग़ुटियों के लिए लेखक क्षमाप्रार्थी है। इस टाइप के कार्य के लिए लेखक श्री रामेश्वर दयाल जी का विशेष आभारी है।

विनीत,

१ नवम्बर १९६२

मलिक मोहम्मद

#### सूचना

टंकन- यन्त्र में 'ळ' अक्षर की अनुपलब्धि के कारण इस प्रबन्ध में 'ल' के नीचे बिन्दी लगाकर ही 'ळ' को सूचित करना पड़ा है। जैसे 'तमिलु' को 'तमिल्' और 'आलुवार' को 'आळ्वार' पढ़ें।



प्राक्कथनप्रथम अध्याय

पृ० 25 - 149

पृष्ठभूमि“ मथित का विकास और उसमें तमिल का योगदान ”

- मथित की दो परंपरारं - वैदिक मथित- परंपरा और तमिल-मथित-परंपरा
- तमिल की मथित-परंपरा ( उद्भव और विकास )  
तमिल मथित- परंपरा की प्राचीनता - संस्कृत काल की प्रकृति-  
पूजा - तमिलों के विभिन्न देवी-देवता- तमिल-प्रदेश में तिरुमास-  
धर्म ( वैष्णव-धर्म ) की प्राचीनता - संघ-साहित्य के प्रति वासु-  
वारों का कृष्ण- संघ-साहित्य में वैष्णव मथित- मन्दिरों में तिरु-  
माल की उपासना
- गोपाल कृष्ण और राधा के विकास में तमिल की देन  
गोपाल कृष्ण का विकास- राधा का विकास
- मथित-बान्दोलन का उदय और तमिल-प्रदेश की तत्कालीन परिस्थि-  
तियाँ-  
सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ-बौद्ध और जैन  
धर्मों की स्थिति , वैदिक धर्म की स्थिति
- मथित-बान्दोलन की आवश्यकता- वासुवार और नायनमार- अपने  
युग की वासुवारों की देन- वासुवारों पर इस्लामी प्रभाव नहीं-



भारतीय भक्ति-वान्दोलन में बाल्वारों का स्थान

- बाल्वारों की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन और वाचार्थ-युक्त बाल्वारों की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन करने वाले प्रमुख वाचार्थ, नाथ मुनि, यमुनाचार्थ, रामानुजाचार्थ
- संप्रदायों का संगठन-  
दक्षिण के प्रमुख संप्रदाय और उनके भक्ति-सिद्धान्त  
रामानुज संप्रदाय, माध्व संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, विष्णु स्वामी संप्रदाय - उत्तर की ओर भक्ति की यात्रा
- हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाले उत्तर के भक्ति-संप्रदाय  
वल्लभ संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, राधावल्लभीय संप्रदाय, ~~हरेकृष्ण~~ हरिदासी जयवा सत्सी संप्रदाय

### द्वितीय अध्याय

पृष्ठ 150-266

### “ कवि और काव्य ”

(क) तमिल के कृष्ण - भक्त-कवि : बाल्वार

“ बाल्वार ” शब्द से वास्तव

काल-निर्धारण की कठिनाइयाँ

बाल्वारों का क्रम और संख्या

“ नासायिर दिव्य प्रबन्धम् ”

पौकी बाल्वार और उनकी रचनाएँ : परिचय

भूतबाल्वार और उनकी रचनाएँ

पेयाबाल्वार और उनकी रचनाएँ

तिरुमल्लि बाल्वार और उनकी रचनाएँ

नम्मालवार और उनकी रचनाएँ - प्रसिद्धियाँ  
 मधुर कवि बालवार और उनकी रचनाएँ  
 कृत्तिसैलवार और उनकी रचनाएँ  
 पेरियालवार और उनकी रचनाएँ  
 बाण्डास और उनकी रचनाएँ - प्रसिद्धियाँ  
 तौंडरडीपोडी बालवार और उनकी रचनाएँ  
 तिरुप्पाण बालवार और उनकी रचनाएँ  
 तिरुप्पी बालवार और उनकी रचनाएँ

- (का) सौलहवीं शती के हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवि —  
 सौलहवीं शती के हिन्दी-कृष्ण-काव्य की विशेषताएँ —
- (क) वल्लभ संप्रदाय के कवि  
 सुरदास, परमानन्ददास, नन्ददास और रसमान
- (ख) राधावल्लभीय संप्रदाय के कवि  
 हितहरिवंश, सेवक जी, हरिराम व्यास
- (ग) गौडीय-संप्रदाय के कवि  
 गदाधर भट्ट, सुरदास मदन मोहन
- (घ) निंबार्क संप्रदाय के कवि  
 श्रीभट्ट, हरिव्यास जी
- (ङ) हरिदासी संप्रदाय के कवि  
 स्वामी हरिदास, बिट्ठल विपुलदेव
- (च) संप्रदाय-मुक्त कवि :  
 मीराबाई, रहीम, नरौचमदास

तृतीय अध्याय

पृ० 267-339

“ मध्यमोक्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाली

“ प्रबन्धम् ” के तत्त्व ”

“प्रबन्धम्” : भक्ति- आन्दोलन का मूल ग्रन्थ

मध्यकालीन कृष्ण- भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले “प्रबन्धम्”  
के तत्त्व सामान्य तत्त्व और विशिष्ट तत्त्व

### सामान्य तत्त्व-

- १) भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व
- २) नाम महिमा
- ३) स्तुति
- ४) शरणागति तत्त्व या प्रपत्ति
- ५) गुरु महिमा
- ६) सत्संग
- ७) वैराग्य
  - (क) पंचिन्द्रियों पर विजय
  - (ख) नारी के मौखिक रूप की निन्दा
  - (ग) वर्ण- निन्दा
  - (घ) शरीर की नश्वरता का बोध

### विशिष्ट तत्त्व :

वृष्णिण : कृष्ण- सीताओं में बालवार्त्तों की तत्त्वीयता

“प्रबन्धम्” की मौलिकता- “प्रबन्धम्” भागवत से प्रभावित नहीं

विशिष्ट तत्त्व : वर्गीकरण

- १) श्रीकृष्ण की विविध सीतारत : भागवततर सीताओं का उल्लेख , सीताओं में बालवार्त्तों का तन्मय भाव
- २) श्रीकृष्ण का जलौकिक रूप- सौन्दर्य  
बाल रूप ८ किशोर रूप
- ३) श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व  
श्रीकृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं - राम- कृष्ण जमेद- भाव

(४) श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भावना

वात्सल्य भाव

मधुर भाव : बाँहास का स्वतः सिद्ध गोपी-भाव

मधुर भाव के प्रसंग : वैष्णु माधुरी और उसका प्रभाव

रास लीला ( बालवारी की

" कृष्णकृत "

राधा एवमपि ( बालवारी की

" नक्षत्र "

भमरगीत ( <sup>आप्यारो</sup> का भमर-सदृश )

### चतुर्थ अध्याय

पृ० 340 - 442.

### " भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन "

भक्ति की व्याख्या और महिमा : बालवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि

निर्गुण-सगुण ब्रह्म और भक्ति : सगुण भक्ति, दोनों के पदों में -

भक्ति के प्रकार :

नवधा भक्ति

श्रवण - बालवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि - उदाहरण

कीर्तन - .. .. .

स्मरण - .. .. .

पाद-सेवन - .. .. .

वर्णन - .. .. .

वन्दन - .. .. .

दास्य, सत्य, वात्मनिवेदन - .. .. .

प्रेम-रूपा-मभित : व्याख्या - बालवारी की प्रेम-रूपा-मभित- प्रेमा मभित की विभिन्न वासवितयां - ग्यारह वासवितयां- गुणमाहात्म्या- सभित , रूपा सभित, पूजा सभित, दास्या सभित, सख्या- सभित, कान्ता सभित, वात्सल्या सभित , निवेदना सभित, तन्मयासभित , परम विरहासभित- प्रत्येक वासवित के उदाहरण , बालवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं से ।

मभित रस और मभित के विविध भाव-

मभित- रस- विवेचन - विविध भाव

दास्य भाव की मभित - बालवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि- उदाहरण

सख्य भाव की मभित - " "

वात्सल्य भाव की मभित- " "

मधुर भाव की मभित- " "

शान्ता मभित- " "

विविध विषय :

मभित में शरण तत्व- बालवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि- उदाहरण

जनन्याय्यता और भगवान् की भक्त वत्सलता - " "

मभित की सार्वजनीनता - " "

भगवान् के समीप्य की कामना - " "

गुरु महिमा, सत्संग , वैराग्य - " "

पंचम अध्याय

पृष्ठ 443-520.

दार्शनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण

### भाव-पदा

भावपदा का सामान्य विवेचन

भाव-चित्रण और रसानुभूति

वात्सल्य - संयोग और वियोग

शृंगार - संयोग और वियोग

विरह दशाई- भ्रमर गीत

वन्य रस-

हास्य रस

करुण रस

रौद्र रस

वीर रस भयङ्कर रस

भयानक रस

वीमत्स रस

अद्भुत रस

शान्त रस

वर्णन-वैचित्र्य-

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति-वर्णन के विविध रूप-

१- वातम्बन

२- उद्दीप्ता

३- अलंकार

४- मानवीकरण

५- नीति और उपदेश का माध्यम

६- परम तत्त्व के दर्शन

काव्य-कला-२कला-पदा

बालवार्त्तों के तथा बालोच्च हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य का  
कला पदा -

भयत्व- बालवार्त्तों के पदों में भयत्व

बालोच्च हिन्दी कृष्ण-भक्ति- काव्य में भयत्व

काव्य के विविध रूप-

शुद्ध गीति- काव्य, वाक्यानात्मक गीति- काव्य

लोक - गीत, मुक्तक- रचना , प्रबन्ध काव्य, सण्ड काव्य

हिन्दीयोजना-

बालवार्त्तों के काव्य में हिन्दीयोजना

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध हिन्द

भाषा शैली-

बालवार्त्तों के काव्य में प्रयुक्त भाषा- तत्सम शब्द, ~~अर्थ~~ अर्थ-

तत्सम शब्द, तद्भव शब्द, अनुकरणात्मक शब्द

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की भाषा- तत्सम शब्द,

अर्थ- तत्सम शब्द, तद्भव शब्द, देशव शब्द , विदेशी शब्द

मुहावरे और लोकोपितियां-

बालवार्त्तों के काव्य में मुहावरे- हिन्दी कृष्ण- काव्य में

मुहावरे -

बालवारी के काव्य में लोकोपितया- हिन्दी कृष्ण-काव्य में  
लोकोपितया

वर्णक- विधान और उचित- वैचित्र्य-

काव्य वर्णक का स्थान-

शब्दवर्णक - बालवार- काव्य में और हिन्दी कृष्ण-काव्य में  
वर्णक- बालवार-काव्य में और हिन्दी कृष्ण-काव्य में प्रमुख

वर्णक - उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, वृत्तियुक्त

वर्णक- बालवार- काव्य में और हिन्दी-कृष्ण-वर्णक-  
काव्य में

उचित वर्णक- बालवार-काव्य में और हिन्दी- कृष्ण-वर्णक-  
काव्य में

बालवार मन्त्र और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण- मन्त्र- कवि

वृष्टम कव्याय

पृष्ठ. 682-726.

मूल्यांकन और उपसंहार

मूल्यांकन-

बालवार-साहित्य का मूल्यांकन

१- मन्त्र- बालवार तथा बालवार

२- "प्रबन्ध" का व्यापक प्रभाव

(क) धार्मिक जीवन

(ख) विविध कलाएँ

(ग) तमिल भाषा और साहित्य

(घ) तमिली दक्षिणी भाषाओं के मन्त्र- साहित्य



- (क) तेलुगु  
(ख) मलयालम  
(ग) कन्नड़

३- पश्चिमी-मूलित संस्कृतों पर 'प्रबन्धम्' का प्रभाव

१६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मूलित-काव्य का मूल्यांकन

- १- हिन्दी कृष्ण-मूलित-काव्य-परंपरा में १६ वीं शती के कृष्ण-मूलित-काव्य का स्थान
- २- मूलित-वान्दोलन तथा १६ वीं शती का हिन्दी कृष्ण-मूलित-काव्य
- ३- १६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण-मूलित-काव्य का व्यापक प्रभाव-
  - (क) धार्मिक और सामाजिक जीवन
  - (ख) विविध कलाएँ
  - (ग) ब्रज भाषा और साहित्य

उपसंहार-

प्रस्तुत अध्ययन के मूल उद्देश्य- तुलनात्मक अध्ययन  
से प्रयोजन - भाषात्मक स्तर की धीनगता

परिशिष्ट - १	पृ० 727 - 745
बातवारी के चुने हुए कुछगीत- रत्न	
परिशिष्ट - २	पृ० 746 - 761
" बातवारी की राममूलित "	
परिशिष्ट - ३	पृ० 762 - 770
" प्रबन्धम् " पर लिखित भाष्य और उनकी भाषा	
परिशिष्ट - ४	पृ० 771 - 779.
" सहायक ग्रन्थ-सूची	

प्रथम वध्याय

पुष्पभूमि

“ भक्ति का विकास और उसमें तमिल का योगदान ”

### महित का विकास और उसमें तमिल का योगदान

हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग-महितकाल में महित की जो पावन क्यस्विनी प्रवाहमान हुई, उसमें दीर्घकालीन भारतीय जीवन-दर्शन की गहन अनुभूतियों, संस्कारों एवं परंपराओं का सन्निवेश था, जिसने कि भारतीय जन-जीवन में एक नवीन चेतना एवं स्फूर्ति का संचार कर उसे रस सिक्त कर दिया। विभिन्न युगों के केष स्तरों के बीच से मन्द मन्द, परन्तु अव्याहत मस्ति से बहती हुई कौक दिशाओं में उल्टी सीधी बहकर विविध विचार धाराओं की जात्मात् करती हुई, भिन्न भिन्न संप्रदायों की सिद्धान्त-सार-सुधा से प्राणियों के अन्तःकरण को वृक्ष करती हुई बानेवाली महित-हरिता ने भारतीय महित-साहित्य-सागर को इतना लवालब भर दिया कि बाव भी उसकी सरल तरंगों में मग्न हो कर जगमग करने से चिर शान्ति प्राप्त होती है।

महित की यह धारा वैदिक युग से ही प्रवाहित मानी जाती है। महित के उद्भव और विकास के विषय में विद्वानों के मत मतान्तर होने पर भी, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतीय महित साधना के क्रमिक विकास में तमिल भाषा और तमिल-प्रदेश का अत्यन्त महत्वपूर्ण योग है। जब उत्तर भारत में वैदिक

१- तमिल-प्रदेश को "द्राविड" और तमिल वाणी को "द्राविड-भाषा" कहने की प्रथा बहुत पुराने काल से चली आ रही है। "द्राविड" शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संस्कृत विद्वानों का मत है कि वह शब्द संस्कृत का है और "द्रव्" ( भागना ) तथा विड ( देश ) के संयोग से बना है। वार्यों से पराजित होकर भारत के मूल निवासी उत्तर भारत की छोड़कर दक्षिण की ओर भाग गये थे। अतः उस भाग का नाम द्राविड पड़ गया। इस शब्द का दूसरा अर्थ भारत का दक्षिणी कोना भी है।

कुछ लोगों का कथन है कि तमिल शब्द का व्युत्पत्ति रूप ही द्राविड है। "द्राविड" और "तमिल" पर्यायवाची शब्द हैं। - "On the other hand 'Tamil' is the original word, or name on the analogy of which the word "Dravida" has been coined by Sanskritists."

- K. Rama Krishnaia, J. S. V. O. I., Vol. 14. part I, page 9.

युग से प्रभावित, वेद, उपनिषद् आदि से प्रभावित भक्ति परम्परा विकसित हो पा रही थी, तब तमिल प्रदेश में द्रविड़- संस्कृति में परिपोषित एक पुष्क भक्ति- परम्परा विकसित हो रही थी। तमिलों की धार्मिक- भावना विकास को पाकर ईसा पूर्व अनेक शताब्दियों से एक सुदृढ़ भक्ति परंपरा का रूप धारण कर चुकी थी, जिससे प्रमाण हमें प्राचीन तमिल साहित्य में मिलते हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों तक <sup>आगे और</sup> इन दोनों भक्ति- परम्पराओं का स्वीकरण हो गया था और उसकी मिली जुली धारा में अवगाहन करने वाले यदि कोई मन्त्र हुर थे तो वे थे बालवार मन्त्र। बालवार मन्त्रों से पूर्व भी तमिल में वैष्णव ( तिरुमाल ) भक्ति साहित्य के दर्शन होते हैं। चूंकि बालवार तमिल- प्रदेश के थे, इसलिए वैदिक- भक्ति- परंपरा से प्रभावित होने पर भी, उनके साहित्य के निर्माण का तमिल प्रदेश की पूर्वतः विद्यमान पुष्क भक्ति- परंपरा की पृष्ठभूमि में होना स्वाभाविक ही था। बावजूद भारतीय भक्ति साहित्य में वैष्णव- भक्ति का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह बहुत कुछ बालवारों की देन है।

बालवारों के द्वारा प्रतिपादित वैष्णव- भक्ति का शास्त्रीय विवेचन विभिन्न बाबायों ने किया और उस भक्ति की धारा उधार की और प्रवाहित हुई। उस भक्ति की आधार- भूमि पर विभिन्न वैष्णव- बाबायों ने अपनी अपनी दार्शनिक विचार- धाराओं का निरूपण किया और विभिन्न संप्रदायों का संगठन हुआ। भक्ति बान्दोलन को जिस जन- बान्दोलन के रूप में इठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल ( बालवार- युग ) में तमिल- प्रदेश ने देखा, उसी के दर्शन हिन्दी- प्रदेश ने

१- सामान्यतः इसका काल पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक माना जाता है।

२- तमिल में ' विष्णु ' के लिए ' तिरुमाल ', ' माथेन ' आदि शब्द प्रयुक्त

होते हैं। प्राचीन तमिल साहित्य तथा बालवार- साहित्य में भी विष्णु के

लिए ' तिरुमाल ' शब्द ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। अतः बालवारों के पूर्व

तिरुमाल- धर्म अर्थात् वैष्णव- धर्म से सम्बन्धित साहित्य का तमिल में विद्यमान

होना सिद्ध होता है।

सोलहवीं शताब्दी के आसपास किये। वैष्णव-मन्त्र के विशाल वृद्धा के विभिन्न संप्रदाय स्वी डालों में मिलनेवाले सुन्दर सुमन थे, सोलहवीं सदी के हिन्दी-कृष्ण-मन्त्र-कवि।

मन्त्र के उद्भव और विकास पर तो जैके विद्वान् लेखकों द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। परन्तु किसी भी विद्वान् द्वारा तमिल-प्रदेश में विकसित पूम्पू मन्त्र परंपरा की ओर विशेष ध्यान दिया नहीं गया। वास्तव में भारतीय मन्त्र-साधना के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालते समय तमिल-प्रदेश की प्राचीन मन्त्र परंपरा तथा वैदिक मन्त्र परंपरा से उसकी रूढ़ि और बाद में विकसित मन्त्र-धारा का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। अतएव यहाँ वैदिक मन्त्र-परंपरा एवं तमिल मन्त्र-परंपरा का पूम्पू पूम्पू विवेक प्रस्तुत कर दोनों की सम्मिलित मन्त्र-धारा में अवगाहन करने वाले बालवार मन्त्रों ने भारतीय मन्त्र-साधना के विकास में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, उस पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया।

### वैदिक-मन्त्र-परंपरा<sup>१</sup>

भारतीय धर्म-साधना का मूल-स्रोत वेदों में पाया जाता है। यद्यपि वेद संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रत्यक्ष रूप से अनुराग सूक्त "मन्त्र" शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, और "मन्त्र" शब्द से साक्षात् उपासना का भी लक्ष्य नहीं कराया गया है, तथापि वेदों में मन्त्र का बीज मिल ही जाता है।

१- चूंकि जैके विद्वानों द्वारा वैदिक मन्त्र के विकास पर विस्तार से लिखा जा चुका है, अतः यहाँ बहुत ही संक्षेप में विवरण देना पर्याप्त समझा गया। विस्तृत विवरण के लिए ये ग्रन्थ दृष्टव्य हैं :-

"मन्त्र का विकास" - डा० मुंशीराम शर्मा

"वैष्णव धर्म" - परशुराम चतुर्वेदी आदि

“मन्त्रित” शब्द का इस कर्म में प्रथम प्रयोग जिसमें कि वह परवर्ती भवतों में प्रचलित हुआ, श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही मिलता है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म काण्डों की प्रधानता होते हुए भी जिस तरह ज्ञान काण्ड का विकास स्पष्ट परिलक्षित होता है, उसी तरह ज्ञान के बाद मन्त्रित की परंपरा का भी संधान कृत्वाजों के आधार पर संभव है।

विष्णु की उपासना का मूल रूप वैदिक काल से ही पाया जाता है। कार्य लोग लोक प्राकृतिक वस्तुओं और घटनाओं में किसी न किसी देवता की कल्पना कर लेते थे और उसे प्रार्थना करने की चेष्टा में यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान भी किया करते थे। वे अपने दैनिक जीवन को आनन्द के साथ व्यतीत करते थे और ऐहिक सुख की प्राप्ति करने के उद्देश्य से देवताओं की स्तुति करते थे और उनसे विनय कृपा प्रार्थना भी करते थे। प्रारम्भ में इन देवताओं में इन्द्र, वरुण, मरुत्, रुद्र आदि प्रमुख थे जो सर्वशक्तिमान, सृष्टि के आदिकारण, परब्रह्म के ही स्वरूप समझे जाते थे। आगे चलकर विष्णु संहिताकाल में सर्वप्रथम एक साधारण देवता के रूप में ही दीख पड़ते हैं। जिन जिन प्रमुख देवताओं की कल्पना पहले पूष्क् पूष्क् रूपों में की जा रही थी, वे कालान्तर में केवल एक के ही विविध रूपों में दीख पड़ने लगे और अन्त में उनके भिन्न नामों का प्रयोग उसी के लिए होने लगा। इस तरह बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद की स्थापना होने लगी। ऐसे ही परिवर्तन-काल में विष्णु का महत्व भी बढ़ने लगा। आरम्भिक काल के देवताओं में इन्द्र सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ थे और विष्णु इन्द्र के सहायक के रूप में ही समझे जाते थे और कहीं कहीं इन्द्र के समान भी माने जाते थे। धीरे-धीरे विष्णु का प्रभाव बढ़ने लगा और वे इन्द्र से

१- यस्य देवे परा मन्त्रितर्यया देवे तथा गुरौ

तस्य कथिताह्वयार्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः

- श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।३३

२- “सं सधिया बहुधा वदन्त्याग्निं, यं मातरिस्वानुमाहुः”

( ऋग्वेद १।१६४।४३ ) से भी उचित कथन की पुष्टि होती है।

३- “इन्द्रस्य युज्यः सता” - ऋग्वेद १।२२।१६



भी बड़े समझे जाने लगे। जैसे जैसे कार्यों का वात्सल्यवन्तन गूढ़ होता गया, और मूल दार्शनिक तत्वों का अनुसंधान करने की परिपाटी विकसित होती गयी जैसे ही जैसे वैदिक धर्म के सुव्यवस्थित साहित्य का वृत्रपात हुआ। ब्राह्मण-ग्रन्थों के रचना-काल तक विष्णु का प्रभाव इतना बड़ा कि इन्द्र तथा अन्य देवताओं के लोक विशेष-तः विष्णु के लिए प्रयुक्त होने लगे। हरि, केशव, वासुदेव, कृष्ण-पति, वृष्ण, वैकुण्ठ आदि नाम जो इन्द्र के लिए प्रयुक्त होते थे, विष्णु को मिल गये। साथ ही विष्णु की महत्ता में चमत्कार एवं जलौकिक शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और वे एक सर्वशक्तिमान्, लोक रक्षक, सर्वोष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वैदिक साहित्य में सृष्टि-विनाश के देवता के रूप में "नारायण" का लोक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। प्रारम्भिक काल में विष्णु और नारायण भिन्न व्यक्ति थे। ब्राह्मण-काल में यह नारायण नाम भी विष्णु के लिए प्रयुक्त होने लगा और उनके गुणों को विष्णु के गुणों में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार विष्णु की उपासना का एक विशाल क्षेत्र तैयार हो गया।

विष्णु की उपासना का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के पश्चात् यह विचार करना है कि उसका वैष्णव धर्म के सुव्यवस्थित रूप में संगठन किस प्रकार हुआ। कदाचित् महाभारत काल तक जाते जाते वैष्णव धर्म का एक सुनठित रूप प्रकट हुआ जो भागवत या सात्वत-पति कहलाया। इस भागवत धर्म (सात्वत तन्त्र) के मुख्य उपास्य देव वासुदेव-कृष्ण थे<sup>१</sup>। और वे ही उसके प्रवर्तक भी माने गये। जिस तरह विष्णु और नारायण पहले पृथक् पृथक् थे और बाद में एक हो गये, उसी तरह वासुदेव और "कृष्ण" बारम्बार में बल-बल थे और कालान्तर में एक ही समझे जाने लगे। बाद में वासुदेव-कृष्ण विष्णु-नारायण के भी पर्याय-वाची हो गये। इस प्रकार विष्णु नारायण, वासुदेव, कृष्ण के स्वीकरण के साथ-

१- वैष्णव धर्म - श्री परमहंस चतुर्वेदी पृ० १४

२- वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रवीणितः।

- श्रीमद्भागवत १।२। ७

३- Materials for the study of Early History of Vaishnava Sect,  
- Hemachandra Ray Choudhuri, page 22.

साय वैष्णव धर्म के विकसित रूप का पूर्ण चित्र उपस्थित हुआ। षट् ऐश्वर्य से संपन्न होने के कारण विष्णु ही 'मगवान्' कहलाये और उनकी भक्ति करने वाले 'मागवत' के नाम से प्रसिद्ध हुए। विष्णु-भक्तों<sup>के</sup> उपास्य धर्म के कारण इस धर्म का नाम 'मागवत-धर्म' पड़ा। मागवतों के उपास्य देव वासुदेव-कृष्ण या कृष्ण जिस कुल में पैदा हुए थे उसका नाम था यादव वंश, जिसे 'सात्वत वंश' भी कहते थे। इसी यादव कृष्ण सात्वत कुल के कारण मागवत मत का दूसरा नाम सात्वत हो गया। महाभारत में सात्वत और वासुदेव को एक ही कहा गया है। डा० माण्डारकर के अनुसार 'सात्वत' शब्द वृष्णिर्वासीय के एक उपनाम की तरह व्यक्त होता था और उसी में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं बनिहद हुए तथा सात्वतों का एक पृथक् संप्रदाय भी था जिसके अनुसार वे वासुदेव की पूजा, उन्हें परमात्मा सम्झकर किया करते थे।

मागवत या सात्वत धर्म के उपास्य वासुदेव-कृष्ण, कृष्ण और देवकी-पुत्र कृष्ण, इनमें क्या सम्बन्ध है, ये अलग अलग नाम किस प्रकार एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगे, यह एक समस्या के रूप में उपस्थित है, जिसका समाधान केवल अनुमान से ही संभव है। वासुदेव-कृष्ण शब्द का दूसरा अर्थ 'कृष्ण' शब्द ऋग्वेद ( मंडल ८ ) के एक 'सूक्त' के कृष्णि का नाम है। ये जांगिरस गोत्र के थे। इन्द्रोद्य उपनिषद् के कृष्ण और जांगिरस के शिष्य थे। अनुमान किया जा सकता है कि वैदिक कृष्ण और उपनिषद् के कृष्ण जब दोनों एक ही गोत्र के हैं, तो स्पष्ट है कि 'कृष्ण' उपनिषद् के युग तक कृष्णि होते आये। जागे वासुदेव और कृष्ण जब एक हो गये तब कृष्ण को भी वृष्णि वंश में मिला लिया गया। और जांगिरस के उपदेशों को कृष्ण ने गीता में सुरक्षित कर दिया। इसका प्रमाण यह है कि इन्द्रोद्य उपनिषद् तथा गीता की बहुत सी बातें मेल जाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देवकी-पुत्र कृष्ण ने जो उपदेश

---

१- Vaishnavism, Saivism and other minor religious sects,  
- Dr. R.G. Bhandarkar, page 12.



अपने गुरु और बांगिरस से ग्रहण किये थे, उन्हीं के अनुसार वासुदेव कृष्ण ने भी "गीता" के द्वारा अपने मित्र अर्जुन को उपदेश दिया। इस प्रकार वासुदेव-कृष्ण और देवकी पुत्र कृष्ण वागे चलकर एक मान लिये गये। पहले ये ईश्वर नहीं माने जाते थे। परन्तु सात्वतों ने उन्हें ब्रह्म मान लिया और वागे चलकर वे पुरुषोत्तम स्वीकृत हो गये।

गीता में जिस भागवत धर्म का उपदेश दिया गया है उसका चरम सत्य स्कांतिक भक्ति का निष्पन्न करना है, "सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं<sup>१</sup> ब्रज"। यही इस गूढ़ स्कान्तिक भक्ति का रहस्य है। यद्यपि गीता में भक्ति के वैदिक, दार्शनिक पक्ष, साध्य पक्ष एवं साधना पक्ष का वर्णन मिलता है, तो भी अन्तिम पक्ष अर्थात् साधना अथवा उपासना पक्ष पर ही अधिक जोर दिया गया है। अतएव यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भगवद्गीता भक्ति का ही एक प्रधान ग्रन्थ है, जिसमें वैष्णव धर्म द्वारा प्रतिपादित विरुद्ध स्कान्तिक भक्ति का उज्ज्वलतम स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कृष्ण-भक्ति का प्रथम व्यक्तस्थित रूप गीता में उपलब्ध होता है। भ्रातृनीति के समय तक कृष्ण की पूजा उत्तरी भारत में होने लगी थी। कहा जाता है कि सात्वत लोग दक्षिण भारत में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए गये। "नासिक" के शिलालेख से स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व ही कृष्ण-भक्ति का प्रचार दक्षिण की ओर भी गया। राजस्थान के "कुहण्डी"<sup>२</sup> के लेख से पश्चिम में इस भक्ति का प्रचार प्रमाणित होता है।

वैष्णव मत का अन्तिम विकसित रूप पांचरात्र मत में उपलब्ध हुआ। पांचरात्र मत के उद्भव-काल के विषय में विद्वानों में मत भेद है। वैष्णव आचार्यों

१- भगवद्गीता अ० १२।२

२- नोट :- स्मरण रहे कि ईसा-पूर्व के किसी भी भागवत-धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थ में गोपाल-कृष्ण अर्थात् गोपी-जन-वत्सल कृष्ण की चर्चा नहीं पायी जाती है। गोपाल-कृष्ण का स्वरूप वैदिक भक्ति-परंपरा तथा तन्त्रि (द्राविड) भक्ति-परंपरा के मिलन के पश्चात् ही विकसित हुआ जिसका विवरण विस्तार से वागे दिया गया है।

के मतानुसार पांचरात्र का सम्बन्ध वेद की स्थायन शाखा से है। सर्वप्रथम, (पांचरात्र) शब्द का प्रयोग "सतपथ ब्राह्मण" में हुआ है। इसमें कहा गया है कि नारायण ने समस्त प्राणियों पर अपना बाधिपत्य स्थापित करने के हेतु "पांचरात्र-सत्र" किया था। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान की देखने से यही मालूम पड़ता है कि पांचरात्र बाचार वैदिक बाचार पर ही बाधित है। इस उपाख्यान में कहा गया है कि महर्षि नारद ने मारुत्वर्ण के उत्तर में स्थित स्वैत दीप में पहुँचकर नारायण ऋषि से पांचरात्र मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया और लौटकर इस देश में उसका प्रचार किया। ईश्वर संहिता में वैष्णव संप्रदाय की "स्थायन" कहने का यह अर्थ बताया गया है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए यही एक मात्र "व्यय" उपाय ब्रह्मा मार्ग किंवा साधन है। पांचरात्र मत के भी बाराध्य "बाहुदेव" हैं। बाहुदेव ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सृष्टि के बादि कर्ता हैं। पांचरात्र मत में ब्रह्मवाद का बड़ा महत्व है। ये ब्रह्म हैं - बाहुदेव, संकर्षण प्रभुन् और अनिरुद्ध। संकर्षणादि बाहुदेव के ही रूप हैं और जीव मात्र के प्रतीक हैं। तीनों ब्रह्मों की उत्पत्ति भगवान् से ही होती है। पांचरात्र धर्म के साधन- पदा और साध्य पदा के निष्पन्न के लिए तीन पांचरात्र संहिताओं का निर्माण हुआ। इनमें १०८ मुख्य हैं। इनमें पाँचर, सात्वत, जयात्म्य ये तीन अत्यन्त प्रधान हैं। पांचरात्र संहिताओं में ब्रह्म, जीव तथा जगत् के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की गई है।

पांचरात्र का मुख्य उद्देश्य भक्ति के साधन- मार्ग का निष्पन्न करना है। संहिताओं के अनुसार मन्दिर का निर्माण करके उसमें बाराध्य- देव का स्थापन करना चाहिए और विधिवत् कर्त्तव्य भी उसमें होनी चाहिए। इस दुःखमय संसार से मुक्ति पाने के लिए एक मात्र साधन भक्ति है। भगवान् भक्त वत्सल हैं और उनकी अनुग्रह - शक्ति जीवों को इस भवसागर से उबार सकती है। भगवान् की अनुग्रह-शक्ति की उद्बुद्ध करने का सबसे उत्तम उपाय भगवान् की शरणागतति है। पांचरात्रों के लिए शरणागतति न केवल एक मानसिक भावना है, बल्कि इस भावना का व्यापारिक जीवन में विधि-

वत् अनुष्ठान करना भी अनिवार्य है। जबसे इस प्रपत्ति मार्गवाले पांचरात्र धर्म का वैष्णव धर्म के साथ स्वीकरण हुआ है तब से भक्ति-आन्दोलन में एक नूतन युग का आरम्भ होता है। यह कहा जा सकता है कि तमिलनाडु के श्री वैष्णव संप्रदाय ने सबसे पहले पांचरात्र-धर्म को अपनाया और भक्ति को लोक धर्म बनाया।

### तमिल की भक्ति-परंपरा ( उद्भव और विकास )

तमिल की एक बड़ी ही प्राचीन भक्ति परंपरा है। यह कहना कठिन है कि तमिल जनता में कब से धार्मिक भावना जैसा भक्ति-भावना का विकास-स्रोत प्रारम्भ हुआ था। तमिल के अति प्राचीन ग्रन्थों की अनुपलब्धि के कारण भक्ति के उस प्रारम्भिक काल पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है।

भारतीय धर्म-साधना पर लिखते हुए अपने विशिष्ट ग्रन्थ<sup>१</sup> "हिन्दू एवं बौद्ध धर्म" में सर चार्ल्स हल्लिष्ट ने स्पष्टतः कहा है कि भारतीय धार्मिक भावना की वादि-स्रोत वह पुरातन द्राविडीय सभ्यता है जिसके साथ आर्यों का संपर्क एवं समन्वय भारत में आने के पश्चात् स्थापित हुआ। डा० स्टीफेन्सन, डा० मिलर स्टैलर, श्री एलेक्सिन वादि जैसे विद्वानों ने भी इस मत को युक्ति संगत ठहराया है। डा० राधाकृष्णन्<sup>२</sup> "हिन्दू-धर्म" पर लिखते हुए स्पष्टतः व्यक्त करते हैं कि भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म वस्तुतः प्रागैतिहासिक सिन्धु-सभ्यता का वह विकसित रूप है जो उस काल से आज तक आन्तरिक एवं बाह्य प्रभावों के फलस्वरूप व्यापोग्य परिवर्तन एवं परिवर्धन के पश्चात् एक समन्वित रूप में उपस्थित है।

श्री 'दिनकर' अपने ग्रन्थ<sup>३</sup> "संस्कृति के चार अध्याय" में लिखते हैं कि "द्रविड़ जाति प्राचीन विश्व की अत्यन्त सुसभ्य जाति थी और भारत की सभ्यता का आरम्भ इसी जाति ने किया था। ....

..... " वैष्णव मत में भक्ति की जो प्रधानता है, वह मुख्यतः द्रविड़ों की

१- हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन - डा० हिरण्मय पृ० १६

२- संस्कृति के चार अध्याय - श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पृ० २८ व ३० सं०

देन है। कार्यों की प्रारम्भिक धर्म-भावना, कर्मकाण्ड और यज्ञ तक ही सीमित थी। उनके प्रारम्भिक साहित्य से उनकी भावुकता का तो प्रमाण उ मिलता ही है किन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता कि ये मन्त्र भी थे। मन्त्रित काल में कार्यों के पूर्व ही इस देश में थोड़ी बहुत विकसित हो चुकी थी और कार्यों का ध्यान उसकी ओर तब गया जब वे कर्म-काण्ड से कुछ धकने से लगे। तब चलेकर जब इस देश में मन्त्रित की बाढ़ उमड़ी तब उसकी प्रधान-धारा भी दक्षिण से आयी।”

दक्षिण में जिस समाज में मन्त्रित-भावना का उद्गम माना जाता है, वह तमिलों का समाज था। वह कार्यक्षर जाति थी और उसके रस्म रिवाज और धार्मिक विश्वास आदि कई थे। पुरातत्ववेत्ता तथा भूतत्व बन्धेनक अपनी मी-षणावली के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तमिल-प्रदेश की भौगोलिक स्थिति बड़ी प्राचीनता की लिये हुए है। तमिल संस्कृति बहुत ही प्राचीन है और उसकी धार्मिक भावना भी उतनी प्राचीन है जितनी स्वयं तमिल जनता।

मन्त्रित से सम्बन्धित 'पूजा' तथा 'शिव' शब्द भी मूलतः तमिल भाषा के ही बताये जाते हैं। 'शिव' शब्द का मूल वस्तुतः तमिल भाषा का 'शिवप्पु' ( *ṣivappu* ) है जिसका अर्थ है 'तात्पर्य'। ( डा० प्रियंजन भी इस मत से सहमत हैं। ) तमिल में 'वाण' कहते हैं, पुरुष की। माना जाता है कि 'शिवप्पु' और 'वाण' के मिलने से 'शिवप्प' अथवा 'शिवन्' बना। यही से संस्कृत के शिव शब्द की उत्पत्ति हुई। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार शिव की ईश्वरीय भावना पुरातत्व के आधार पर द्राविडीय मानी गयी, उसी प्रकार 'शिव' शब्द भी तमिल से जो द्राविड़ कुल की ही प्रधानतम भाषा है, उत्पन्न हुई। 'पूजा' शब्द दो बजारों से बना है— 'पू' तथा 'जा'। ये दोनों तमिल

१- संस्कृति के चार अध्याय - श्री राधारी सिंह 'दिनकर' पृ० ७२ द्वि० सं०

२- (अ) *The Stone age in India*, P. T. S. Pyengar, page 3.

(ब) *Origin and spread of Tamils*, V. R. R. Dikshitar, page 1 and foot note on pages 55 and 56.



भाषा के विशिष्ट वर्ण-बोधक शब्द हैं। "पु" शब्द का अर्थ है "पुष्प" तथा "जा" अर्थात् "है" शब्द का अर्थ है "करना"। "पु" तथा "जा" तमिल का "पुजे" अर्थात् पूजा शब्द का। ( डा० सुनीति कुमार चटर्जी इस मत से पूर्णतः सहमत हैं। ) पूजा वस्तुतः अपने वारंध्य देव पर पुष्प चढ़ाने के कर्म की ही सूचित करता है। "पूजा" वस्तुतः मन्त्र-हृदय के उद्गारों की ही अभिव्यक्ति है। अतः पूजा मन्त्र का प्रधान साधन है। यह शब्द स्वयं द्राविडीय होने के कारण यह मानना असंगत नहीं होगा कि उस पूजा तथा मन्त्र की उत्पत्ति ही मूलतः द्रविड़ सम्प्रदाय से हुई है।<sup>१</sup>

प्राचीन तमिलों का धर्म क्या था ? वे किन किन देवताओं की पूजा करते थे। इन बातों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। विद्वानों ने अनेक अनुमान लगाये हैं और उपलब्ध प्राचीन तमिल ग्रन्थों के आधार पर उस समय के धार्मिक समाज का चित्र खींचा है।

प्रारम्भ में तमिल लोग मूल-प्रेतों, वृक्षां वीर नागों की पूजा करते थे। तन्त्र-मन्त्र में विश्वास करते थे और पशु बलि द्वारा अपने देवताओं को वृत्त करने का प्रयत्न करते थे। धीरे धीरे उनमें संस्कारों का विकास हुआ और संस्कारों में विकास के साथ साथ उनके धार्मिक विश्वासों में भी परिवर्तन हुआ मूल-प्रेतों की पूजा का स्थान एक परम शक्तिमान् परमेश्वर के प्रति परम विश्वास ने ले लिया। संभव है, इस विश्वास के मूल में भी किसी अव्यक्त परम शक्ति का भय रहा हो। पर ज्यों-ज्यों सम्प्रदाय का विकास होता गया, भय कम होता गया और उसका स्थान प्रेम एवं मन्त्र ने ले लिया। इस तरह ( बहुत प्राचीन काल में ही ) तमिल लोगों के हृदय में भगवान् की भावना जागृत हुई थी और वे जाये दिन की सुदृढ़ भावना और क्रूरता को त्यागकर शान्ति की ओर उन्मुख हुए।

“ उत्पन्ना द्रविडे शार्द ” - यह उ्तर भारत में एक सर्वविदित

१- हिन्दी प्रचार समाचार - नामक पत्रिका में "मन्त्र द्राविड़ ऊफ़ी" लेख

डा० रंजर राय नायडू पृ० ७ ( मई १९५६ )

२- भागवत माहात्म्य १।४८

लोकप्रिय है। पर यह दक्षिण के उस 'मयित बान्दीलन' की ओर संकेत करती है जिसमें श्रष्ट रूप से बाबुवार और 'नायमार' तथा अन्य वृत्तों ने अपने दिव्य अनुभूतिमय गीतों से जनता को मंत्र-मुग्ध किया था। परन्तु इसे केवल शताब्दियों के पहले ही तमिल-साहित्य में उसके प्रारम्भिक काल में मयित की प्रतिष्ठा ही चुकी थी तथा देव-देवताओं की उपासना-पद्धतियों का पूर्ण विकास हो चुका था। तमिल के सहस्रों वर्णों के महान् इतिहास में यह मयित-धारा उत्तरोत्तर पुष्टि पाकर कैसे कड़े प्रवाह के रूप में बहने लगी- इसका थोड़ा सा परिचय उपलब्ध लिपि-बद्ध साहित्य के आधार पर यहाँ देने का प्रयास किया गया है।

तमिल-साहित्य के इतिहास में ईसा-पूर्व ५०० वर्ण से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक का काल संघकाल<sup>१</sup> कहलाता है। तीसरी शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक के काल को संघोत्तर काल अथवा बौद्ध-चैन-काल कहा जाता है। इस काल को 'मयित-पूर्व-काल' भी कहते हैं। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल अर्थात् बाबुवार और नायमारों का काल मयित-काल कहलाता है।

### संघ-काल की प्रकृति-पूजा

संघकाल के अन्तर्गत साधारणतः संघ-पूर्व काल को भी लिया जाता है। संघ-पूर्व काल का एक मात्र ग्रन्थ 'तोलकाप्पियम्' उपलब्ध है। यह एक लक्षणाग्रन्थ है। इस लक्षणाग्रन्थ से बहुत पहले ही उसके लक्ष्य साहित्य के जाकिर्माय का पूरा चल जाता है। स्वयं 'तोलकाप्पियम्' के रचयिता ने स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने जो सिद्धान्त निर्धारित किये हैं, वे पूर्ववर्ती साहित्यकारों द्वारा की-

१- कई तमिल विद्वानों का मानना है कि प्राचीन काल में तमिल-प्रदेश में साहित्य सज्जन को प्रोत्साहन देने तथा प्रत्येक रचना को साहित्यिक कबौटी पर परखने के लिए तत्कालीन राजाओं के तत्वावधान में एक कवि-परिषद् की स्थापना हुआ करती थी, जिसकी 'संघम्' की संज्ञा दी जाती थी।

लित कथा प्रसिद्धि सिद्धान्तों पर ही आधारित है। तौलकाप्पियम् की पूर्व कालीन प्राचीनक कथा का प्रौढ़ तमिल साहित्य अब उपलब्ध नहीं है। अतः तत्कालीन समाज की भक्ति की कौन कौन सी धारणाएँ और मान्यताएँ थीं, उनका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। परन्तु तौलकाप्पियम् तथा संघ-काल की रचनाओं से तमिल जनता के विभिन्न देवताओं और उनकी उपासना-पद्धतियों और भक्ति सम्बन्धी मान्यताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

संघ-काल के साहित्य से पता चलता है कि प्राचीन तमिल लोग प्रकृति-सौन्दर्य में रम जाते थे और अत्यन्त स्वच्छ मन से किसी भी जटिल चिन्तन से अस्त व्यस्त न होकर अपना जीवन बिताते थे। प्रधानतः उस काल की रचनाओं के वर्ण्य विषय दो हैं— प्रेम और वीरता। प्रमाण स्वरूप दो कविता संग्रह हैं — <sup>१</sup>स्टुतुवोर्क ( बाठ विभिन्न कविता-संग्रह ) तथा पत्तुपाट्टु ( दस वर्ण्य काव्यों का संग्रह । ) तमिल काव्य-शास्त्र के अनुसार कविता में गाये जाने के योग्य दो ही विषय हैं — एक वरुम् ( आन्तरिक या मानसिक ) तथा दूसरा ' पुरम् ' ( बाह्य ) । भक्ति, प्रेम आदि हृदय सम्बन्धी विषय ' वरुम् ' के अन्तर्गत तथा युद्ध, शासन- विज्ञान, नीति शास्त्र आदि ' पुरम् ' के अन्तर्गत माने जाते थे। ' पुरम् ' में भक्ति की उपासना- पद्धति को स्थान प्राप्त था। प्राकृतिक आनन्द में मग्न एक निश्चित जीवन दर्शने वाली संघकालीन कविताओं में प्रकृति की असीम शक्तियों तथा अज्ञात विशेषताओं के प्रति जो अद्भुत- भाव या वन्दना- भाव देखने को मिलता है, उस भाव विशेष को स्वभाविक धर्म भी कहा जा सकता है। इस काल के साहित्य में वृद्धा, वन, फलाद आदि वस्तुओं में रहने वाले मालिकारी और अमंगलदायी देवताओं की कल्पनाएँ यत्र- तत्र मिलती हैं। इन देवी- देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए प्रार्थ-

१- Tol Kappiam, Porul, Puraturai, Sutras 77 and 78.

२- ' नदिनै , कुरुन्तोर्क , पट्टिप्पु , ' परिपाट्ट , कलिर्को , नेहूर्को , अन्नानूरु और पुरुनानूरु ।

३- तिरुमुल्लुवरुपर्क , वीरुनर- आट्टुपर्क , तिरुपाणाट्टुपर्क , पेरुवाणा- ट्टुपर्क , मुल्लुपाट्टु , मरुर्कावी , नेहल्लवाट्ट , कुरिंविपाट्टु, पट्टिणप्पात्तै, मल्लुप्पु कडाय ।



नाई होती थी और बलिदान भी होता था। प्राचीन तमिल लोग विष्णु-वाधाओं को दूर करने की प्रार्थना कर सूर्य की भी पूजा करते थे। चन्द्र की भी पूजा होती थी, जिसे "पिर तौलुदल" कहते थे। "परिपाडल" नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि मावान् के जिस रूप की कल्पना मन में की जाती है मन्त्र के लिए उनका वही रूप उपास्य ज्यवा प्रिय हो जाता है।<sup>2</sup> कहने का तात्पर्य यह है कि संघ-काल के साहित्य पर दृष्टि डालते समय, उस काल के पूर्व प्रचलित ऋषि-पूजा-प्रणाली का भी परिचय मिलता है।

### तमिलों के विभिन्न देवी-देवता-

"तोलकाप्पियम" तत्कालीन तमिलों के प्रमुख देवताओं का परिचय देता है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में तमिल-प्रदेश के जलवायु और अवस्था के अनुसार चार मू - भागों में विभाजित होने का उल्लेख है। प्रत्येक भाग को "तिर्ण" कहते थे। इन चारों "तिर्ण" के नाम थे - कुरिंजि (पहाड़ी क्षेत्र), मुल्लै (वन-भूमि) मरुदम (उपजाऊ क्षेत्र), नैकल (समुद्रवर्ती क्षेत्र)। प्रत्येक-प्रदेश में प्रत्येक प्रकार के लोग रहते थे जो वहाँ की ऋषि और अवस्था के अनुसार अपनी कला सम्यक्ता विकसित करते थे। इन मू-खंडों के लिए कला कला देवता भी स्वीकार किये गये थे। मुल्लै प्रदेश के वधिवेता 'मायोन' कर्णात् श्याम रंगवाले "तिरुमात्", कुरिंजि के देवता 'शेयोन्' कर्णात् गौरे रंग वाले 'मुरुगन' थे। गाँव की निकटवर्ती क्षेत्री भूमि मरुदम के

१- Tol Kappiam, Porul, Athinaai 5  
Nachinarkinyavar's Commentary and  
Kalitogai, Palai Kali 16.

२- परिपाडल ४, ११। ५६

३- Tol Kappiam, Porul adhi karame, Athinaai, Enta 5

४- इस प्रकार के मू विभाजन तथा प्रत्येक विभाग के प्रत्येक वधि देवता मानने का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है।

वधिपति वर्णा भेदने वाले इन्द्र देव थे। समुद्रवती भाग के देवता 'वरुण देव' माने जाते थे। इन चारों मू-भाग के अतिरिक्त 'तोलकाप्पियम्' में एक पाँचवीं भूमि का भी उल्लेख है। यह 'पत्ति' (मरुभूमि) है और उसकी अधिष्ठात्री देवी 'कोट्टरु' थी। तमिल विद्वान् श्री कल्याण सुन्दर मुतालियर का कहना है कि तमिल प्रदेश के पाँच मू-भागों में द्राविड़ लोगों की पौरुषिक कल्पना के अनुसार ही पाँच देवताओं का अस्तित्व धीरे-धीरे साकार हुआ और इन देवताओं के साथ बायें देवताओं का सम्बन्ध बहुत पीछे से जुड़ गया था। इस प्रकार तोलकाप्पियम्-काल में पाँच प्रमुख देवताओं का परिचय मिलता है। इन देवताओं के कलग कलग मन्दिर होते थे। इसका भी उल्लेख मिलता है। तमिल जनता के बीच उपर्युक्त पाँच देवताओं में मायोन (तिरुमात), मुरुगन और कोट्टरु सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इन्द्र और वरुण की केवल गौण स्थान प्राप्त था। जिसका प्रमाण हमें संघ-साहित्य तथा बाद के शिलालेखों में मिलता है।<sup>3</sup> तोलकाप्पियम् में शिव का विशेष उल्लेख नहीं है।

'तोलकाप्पियम्' में वर्णित तमिल-प्रदेश के देवी-देवताओं और उनके पश्चात् की रचनाओं में वर्णित देवी देवताओं की वाराधा, स्वरूप इत्यादि की देखने से पता चलता है कि इन दोनों कालों के बीच में (लगभग ईसा से पूर्व तीन शताब्दी और ईसा के अनन्तर दो शताब्दी के काल में) द्राविड़ और बायें संस्कृतियों का स्वीकरण हुआ होगा। क्योंकि तोलकाप्पियम् के बाद की रचनाओं में विशेष रूप से संघ काल की रचनाओं में वैदिक देवी-देवताओं की वाराधना भी देखने की मिलती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृतिक आनन्द मात्र से युक्त यह स्वाभाविक भक्ति क्रमशः वैदिक उपासना पद्धति से संवर्धित होकर एक भक्ति परिपाक के रूप में परिवर्धित हुई। तत्पश्चात् तमिलों के देवता-मण्डल में परिवर्तन हुआ और

१- तोलकाप्पियम्, पोरुल, अधिर्ण २०

२- तमिल नृत्तकलि बौद्धम् पृ० ११-१२

३- बाल्वाकल काल निलै, मु० रायव व्यङ्ग्यार पृ० २-३

नये देवता भी उसमें लिये गये। दोनों संस्कृतियों के मिलन के सम्बन्ध में दक्षिण में प्रचलित इतिवृत्तों के अनुसार वैदिक संस्कृति का दक्षिणाप्य में वागमन आस्त्य मुनि के द्वारा हुआ। कहा जाता है कि ये आस्त्य मुनि दुर्गम विध्य पर्वत की लांफकर और गहन वनों की पारकर सुदूर दक्षिणाप्य में वायं-संस्कृति का प्रचार करने अपनी मंडली के साथ वाये। तमिल इतिवृत्त के अनुसार आस्त्य मुनि ने तमिल प्रदेश में जाने पर शिवजी से उपदेश पाकर तमिल भाषा का अध्ययन किया। वे "पौदियमल" पर शिष्यों के साथ निवास करने लगे। उन्होंने तमिल में एक वृहद् व्याकरण भी लिखा था, ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह व्याकरण "आारियम" अब उपलब्ध नहीं है। उन्होंने तमिल की अभिवृद्धि के लिए तमिल-वर्णों की स्थापना भी की थी। इनके बारह प्रधान शिष्यों में "तिरणवृमाग्नि" नामक <sup>नट पि</sup> वृत्ति भी थे। कुछ लोग "तिरणवृमाग्नि" मुनि को और "तोलकाप्पियम्" के स्वयंविता तोलका-प्पियर को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। "तोलकाप्पियर" के काल का अभी तक निर्णय न हो सका। कुछ भी हो, इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि तोलकाप्पियम् के बाद की संकालीन कृतियों में वैदिक संस्कृति की फलक भी मिलती है। जैसा कि ऊपर कहा गया कि दो संस्कृतियों का मिलन हुआ और दोनों की मखित परंपराओं का भी सम्मिलन हुआ। यह स्वीकरण (fusion) सा की दूसरी या तीसरी शताब्दी तक पूर्ण हो चुका था जिसका प्रमाण हमें संघोषर कालीन रचनाओं में मिलता है। इस पखर्वी काल की रचनाओं में वैदिक देवताओं और उनके अतिरिक्त तमिल देवताओं और उनकी आराधना-प्रणाली का भी उल्लेख है। कुछ द्रविड़ देवता भी वायं-देवता-मण्डल में लिये गये।

मुलै या वन भूमि के लोगों के उपास्य देव "मायीन" की सभी अधिक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस देवता ने कालान्तर में अन्य भू-मायों पर भी अपना प्रभाव डाला। "मायीन" शब्द का अर्थ है, "नील फल वृत्ति युक्त भगवान्"।

“तिरुयाल” इनका दूसरा नाम था। ये “वायर” कहलाने वाले ग्वला लोगों के अधिदेवता थे। “वायर” लोगों के देवता “मायीन” बाल- देवता थे। इस देवता का स्वीकरण वैदिक विष्णु से कालान्तर में हो गया। इस विष्णु की चर्चा यहाँ स्थान विस्तार से की जायगी।

संप्रकाश में कार्य और द्रविड़ संस्कृतियों में सम्मिलित होने पर भी द्रविड़ ( तमिल ) देवताओं और वाचरणों का भिन्नत्व स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

कुरिंजि या फंत भूमि के लोगों के देवता शैयोन ज्यवा “मुरुगन” थे। “मुरुगन” को तमिल लोगों की विशिष्ट बहुमत सौन्दर्यमय कल्पना सृष्टि मान सकते हैं। “मुरुगन” शब्द सुगन्ध, दिव्य, तैल, बालकप, सौन्दर्य युक्त देवता की ओर लक्ष्य करता है। ये लाल वर्ण से चमकने वाला शरीर, जिसमें नित नूतन जीवन की सुषमा बसती है, और अनुपम शक्ति युक्त देवता माने जाते हैं। ये प्रेम के देवता भी माने गये हैं। अविवाहित कन्यारों यौन्य वर को पाने के लिए इस देवता की पूजा करती थीं। माता इनका वासुध है। इनके वीर- स्वरूप के सूक्त दण्डायुध, दंडपाणि बेलन, बेलायुधन, बेलवन आदि नाम भी तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं। “संपम्” साहित्य के पनुपाट्ट नामक काव्य- संग्रह में सम्मिलित “तिरुमुरुगाट्टरुपडं” नामक काव्य में मुरुगदेव की पूजा- प्रणाली, उनके उः रमणीय विनाश स्थान तथा अन्य महिमाओं का विस्तार से वर्णन है। “परिपाटल” नामक दूसरे कविता- संग्रह में उपलब्ध पर्वों में बाठ मुरुगन की स्तुति में प्रस्तुत किये गये हैं। पहले इनकी पूजा “कुरुवर” नामक पर्वतवासी लोगों के बीच में बड़ी धूम-धाम से हुवा करती थी। “कुरुवर” शिकारी लोग थे। “मुरुगन” भी शिकारी माने गये हैं। पर्वतवासी अपने प्रिय देवता के

१- डा० सुनीति कुमार चटर्जी का विचार है कि वायों के सूर्यवाचक देवता विष्णु भारत में जाकर द्रविड़ों के एक वाकाश देव से मिल गये, जिसका रंग द्रविड़ों के अनुसार नीला ज्यवा रयाम था। तमिल भाषा में वाकाश को “विन” भी कहते हैं जिसका विष्णु शब्द से निकट का सम्बन्ध हो सकता है।

- श्री रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय पृ० ६० से उद्धृत



सामने मधु-मांस, मात वादि बढ़ाकर भेंट करे की बलि भी देते थे। इस पूजा का संयोजक पुजारी होता था जिसको फलवासी अपना गुरु मानते थे। पूजा के समय पुजारी स्वतः वर्ण 'कादल' पुष्प कान में पहनकर डमरु हिलाकर गरुजे वाले शब्दों में मयंकृत तांडव नृत्य करता था। 'तोलकाप्पियम्' में इस तांडव नृत्य को 'कादल' कहा गया है। नृत्य के बीच पुजारी आवेश में जाकर मुरुगदेव का माध्यम बनकर भविष्यवाणी भी दिया करता था। पूजा के समय पहाड़ी नर-नारी भी प्रार्थना गीत गाकर 'कुरवे' नामक नृत्य करते थे। कहा जाता है कि मुरुगदेव भी भक्तों के बीच फल की कन्याओं से हाथ मिलाकर स्वयं आनन्दपूर्वक नाच उठते थे और उनकी कमीष्ट वरदान देते थे। लोगों का विश्वास था कि मुरुगन, द्राविड़ स्त्री-देवता कोट्टवे के पुत्र थे और युद्ध के वाधित्वता थे। इस प्रकार प्रारम्भ में मुरुगन को केवल फलवासी वन्य नृत्य और फलबलि वादि से पूजते थे। परन्तु बाद में वन्य वैदिक देवताओं की तरह उनके लिये भी मन्दिर बने और ये वैदिक ढंग में मन्दिरों में वाराध्य देव हो गये। इन्हीं को संस्कृत में स्कन्ध, कार्तिकेय, सुब्रह्मण्य वादि नामों से पुकारा जाता है। मूलतः ये द्राविड़ कथवा तमिल देवता थे। इनसे

सम्बन्धित तमिल-जनता के बीच में प्रचलित कथारें जायें- लोगों की कथाओं में मिल चुकीं। फिर भी जायें- सुब्रह्मण्य या कार्तिकेय और तमिल के मुरुगन में थोड़ा बहुत अन्तर रह ही गया। सुब्रह्मण्य के सम्बन्ध में अन्तर यह है कि जायों के कार्तिकेय ब्रह्मचारी माने जाते हैं और तमिलों के मुरुगन विवाहित। इनके दो पत्नियाँ थीं, जिनके नाम हैं वल्ली और देवयानी। कहा जाता है कि वल्ली शिकारी-जाति की थी, जिस पर मुग्ध होकर मुरुगदेव ने उससे विवाह कर लिया। तमिल-प्रदेश में यह कथा बहुत प्रचलित है और इसका वाक्यात्मिक अर्थ भी किया जाता है। मुरुग-

1- "The paucity, however, of Murugan temples and worship in the North India and even in Central India and the great veneration and reverence shown to this deity in the Tamil land makes it possible that after all Skanda was a Tamil deity and later on, perhaps in the centuries before Christ, the Murugan cult developed all over India and mystic legend of Skanda's being son of Lord Śiva himself was skillfully worked by the Sanskrit writers and given an air of plausibility." V. R. R. Dikshitar, "Aryan path," vol. 23, page 72-80.

देव के मन्दिर अधिकांशतः पर्वतीय प्रदेशों में पाए जाते हैं, जो उनके पर्वतीय प्रदेश के देवता होने की ओर संकेत करते हैं।

मरुदम अर्थात् उपजाऊ भूमि के देवता का वर्णन इस प्रकार मिलता है - " वह मेघों का अधिपति है। उसका वायुध वज्र है। जब भूमि गरमी से संतप्त होती है, तब वह मेघों को भेजकर पानी बरसाता है। वह कई अप्सराओं से घिरा रहता है। उसका प्रिय भोज्य पदार्थ चींगल ( एक प्रकार की भात से बनी खिचड़ी ) है। " वाजकल भी तमिल-प्रदेश में पौराणिक त्यौहार (फर संक्रान्ति) के अवसर पर इस देवता की पूजा होती है। इस देवता का वाहन रेरावती नामक गौर वर्ण का हाथी है। कहा जाता है कि पुराने समय में इन्द्र के लिए बलम मन्दिर भी विद्यमान थे। " शिल्पधिकारम् " में इन्द्र के वज्रायुध के लिए एक बलम मन्दिर होने का भी उल्लेख है। इसी ग्रन्थ में " इन्द्रविता " ( इन्द्रोत्सव ) का भी वर्णन मिलता है जिसकी तस्विल-जनता मेघों के स्वामी इन्द्र को अच्छी फसल मिल पाने के कारण (धन्यवाद रूप में ) प्रार्थना करने के लिए मनाती थी। इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि यह त्यौहार २० दिन तक चलता था और पूर्णिमा के दिन इन्द्र की प्रतिमा के अभिषेक के बाद उसका विसर्जन होता था।

नेयल अथवा समुद्रवर्ती प्रदेश के देवता " वरुण " थे। मछुर लोग बड़ी धूम-धाम से इस देवता की पूजा करते थे। तिमिल मछली का दाँत इस देवता का वायुध था। कहा जाता है कि एक पैडिय राजा ने समुद्र के अधिपति वरुण के लिए उत्सव की प्रथा भी चलायी<sup>१</sup>। तंजावर में इन्द्र और वरुण के लिए भी मन्दिर थे, इसका पता शिलालेखों से चलता है। तस्विलों के थे इन्द्र और वरुण कार्य देवताओं से भिन्न थे या नहीं, यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि द्रविड़ों के उपर्युक्त दोनों देवता कार्य के इन्द्र और वरुण से मिल गये हों। इन दोनों देवताओं का स्थान अन्य देवताओं की अपेक्षा गौण है। जिस प्रकार

१- शिल्पधिकारम् - काद ६, १२

२- पुरम् ६, १०

३- South Indian Inscriptions, Vol. I. p. 414.

दार्शनिक विचार-दृष्टिकोण-

ब्रह्म- ब्राह्मणों के ब्रह्म विषयक विचार

बालीच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के ब्रह्म सम्बन्धी विचार  
निष्कर्ष -

जीव- ब्राह्मणों के जीव विषयक विचार

बालीच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के जीव सम्बन्धी विचार  
साम्य और वैषम्य

जगत्- ब्राह्मणों के जगत् विषयक विचार

बालीच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के जगत् संबंधी विचार  
साम्य और वैषम्य

माया- ब्राह्मणों के माया विषयक विचार

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के माया संबंधी विचार -  
तुलना

मोक्ष - ब्राह्मणों के मोक्ष विषयक विचार

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के मोक्ष संबंधी विचार -  
तुलना

रहस्यात्मक दृष्टिकोण-

‘रहस्य’ से तात्पर्य - ब्राह्मणों के काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण,

बालीच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण-

प्रतीकार्थ- गोपी, गुरली, रासलीला-



मुरुगन के मन्दिर आज भी पर्वतीय प्रदेशों में विद्यमान हैं, उस प्रकार इन्द्र और वरुण के मन्दिर आज उपजाऊ भूमि और समुद्रवर्ती प्रान्तों में विद्यमान नहीं हैं।

पालि कथवा मरुभूमि की अधिष्ठात्री देवी कौटूब थी। यह युद्ध में विजय प्रदान करने वाली मानी गयी है। अतः युद्ध में विजय पाने पर इस देवी को धन्यवाद देने के लिए उसकी पूजा करते थे<sup>१</sup>। इस देवी के उपासक "मखर" या "कल्लर" लोग थे जो जालेट आदि दूर कृत्यों से अपनी जीविका चलाते थे और इस देवता को प्रसन्न करने के लिए पशुओं तथा मनुष्यों की भी बलि चढ़ाते थे। मदिरा, मांस इस देवता के प्रिय भोज्य थे। वास्तव में पालि प्रदेश के लोग जैसे पर्यंकर और दूर स्वभाव के थे, उनके देवता भी वैसे ही दूर और पर्यंकर थे। "शिलाप्पधिकारम्" में उसकी तीन जाँखोंवाली कहा गया है। उसके पैरों पर पायल होती थी और महिणाधुर के चिर पर रखे बताये जाते हैं। "मणिमेसल" में उल्लेख मिलता है कि इस देवी के पुंवारी "मेख" कहलाते थे जो तार्त्रिक मंत्रों का उच्चारण कर उसकी पूजा करते थे। वह चिर यौवन बतायी गयी है। उसके अनेक मन्दिर निर्मित थे। कन्याकुमारी के मन्दिर में जिस देवी की मूर्ति है, इस देवी की बताया जाती है। इसका उल्लेख विदेशी यात्री पिलिनि ने किया है और "पेरिल्फस" में<sup>२</sup> के भी उल्लेख है। कहा जाता है कि एक बार मदुरा में इस देवी के मन्दिर के फाटक अपने आप बन्द हो गये। पाण्ड्य राजा ने इस देवी का क्रोध समझकर, उसको प्रसन्न करने के लिए दो ग्रामों की जाय का मसूल इस देवी की पूजा के लिए शाश्वत रूप में निश्चित कर दी<sup>३</sup>। कौटूब कथवा कालिका ब्राह्मण लोगों की कल्पना प्रसूत मानी जाती है, यद्यपि बाद में बार्थी की दुर्गा, पार्वती आदि देवियों के अंश भी उसमें आ गये।

शिव भी पहाड़ी प्रदेश के देवता माने गये हैं। महेन्द्रगिरि (पश्चिम घाट का एक पर्वत) पर इनका निवास-स्थान था। ये मनुष्यों के जीवन और मरण के स्वामी माने जाते थे। ये सत्य के साक्षात् स्वरूप थे<sup>४</sup>। जो सत्य मार्ग से दूर जाते,

१- तोलकाप्पियम् - पोरुत , सूत्र ५६

२- Cultural Heritage of India, Vol. IV. (First edition)  
"Skanda Cult in South India", V.R. R. Dikshitar,  
pages 252-257.

३- "शिलाप्पधिकारम्" २३ , ११३-१२५

४- परिपाठल , ५ , ३३

ये उनको दण्ड देने के लिए उनको ये सत्यापन कर ~~देते~~ देते थे। शिव द्राविड़ लोगों के सबसे प्राचीन देवता माने जाते हैं। इनको पहाड़ी प्रदेश के अधिदेवता "शैयोन" या "मुरुगन" का पिता माना गया है। तमिल पुराणों में लिखा है कि तमिल भाषा का निर्माण शिवजी ने किया था और बाद में उसके व्यापक प्रचार के लिए कास्त्य मुनि को तमिल भाषा का ज्ञान दिया था। प्राचीन तमिल-संघों के स्थापक "शिव" और "मुरुगन" को माना जाता है। कहा जाता है कि संघ-साहित्य के सर्जन में उन्होंने सक्रिय योग दिया था। इसकाल के कुछ ऐसे गीत मिलते हैं जो "हरियार पाट्टु" "कम्मा" शिव द्वारा रचित गीत कहलाते हैं। संघ-साहित्य से पता चलता है कि उस समय शिव से सम्बन्धित बहुत सी कथाएँ लोक में प्रचलित थीं, जिनमें त्रिपुर-दहन, कैलाश पर्वत को उठाने वाले रावण का गर्व-भंग, समुद्र मंथन के समय हालाहल पान आदि कथाएँ बहुत प्रचलित थीं। परन्तु संघ-साहित्य में शिव की पूजा का अधिक विवरण न मिलने से अनुमान किया जा सकता है कि उस समय शिव-पूजा कम होती थी। बाद में तो नायकमारों ने शिव को अपना आराध्य देव मानकर उच्च कीर्ति को मण्डित-साहित्य का निर्माण कर दिया।

शिव की कल्पना और उनका प्रतीक रूप लिंग-पूजा द्राविड़-लोक-मानस की अपनी भाव सृष्टियाँ हैं। मोरेंजोदहों में प्राप्त शिव-लिंगों से इस कथन की पुष्टि होती है। लिंग पूजा आर्यों के आगमन के पूर्व ही प्रचलित थी। ऋग्वेद में लिंग-पूजा का उल्लेख है, जो आर्यों के आने के पूर्व द्राविड़ों के बीच लिंग-पूजा के बहुत प्रचलित होने की ओर संकेत करता है। जब आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों का सम्मिलन हुआ, तब वेदों के रुद्र और द्राविड़ों के शिव में एकता मानी जाने लगी। चूंकि शिव द्राविड़ों के प्रमुख देवता थे, इसलिए उनकी अवहेलना के लिए पुराणों में अनेक कथाएँ गढ़ी गयीं<sup>१</sup>। किन्तु तमिल शिव और वैदिक रुद्र में कुछ अन्तर भी रह गया। अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक रुद्र किसी और वर्ण के साथ जाँधी और बूफानों

१- "Tamilar Sabhu", Dr. Vidhyanandan, page 127.

२- "The Dravidian Element in Indian Culture" (Dr. Gilbert Slater) का तमिल-अनुवाद, पृष्ठ ६६.

३- देविर - संस्कृति के चार अध्याय - श्री दिनकर पृ० ५५

के अधिपति थे, वहाँ तमिल शिव संहार के देवता होने पर भी मूलदायी सम्झे जाते थे। तमिल शिव भ्रम और कल्याण के देवता माने जाते थे। हो सकता है कि वैदिक रुद्र में द्रविड़ शिव के भी गुण पहले से ही विद्यमान हों।

संस्कृत की एक कृति परिपाठल में १२ वादित्य, ८ वसु, ११ रुद्र और २ अश्विनी जादि वैदिक देवता- मण्डल के देवताओं का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु इन देवताओं की पूजा या वन्दना किस किस प्रकार की होती थी, इसका पता नहीं चलता। प्रजा की पूजा, शिव, विष्णु की वाराधना की तरह ~~इस~~ अधिक प्रचार को पा नहीं सकी। दक्षिण में केवल एक मन्दिर तथा उत्तर भारत में पुष्कर तीर्थ में आज भी विद्यमान हैं। कामदेव को पूजने की प्रथा अविवहित कन्याओं के बीच विद्यमान थी। इसका ध्वज मकर माना गया है। "शिल्पधिकारम्" में उसे वर्षत ऋतु का देव कहा गया है। तत्कालीन समाज में इसके लिए उत्सव भी मनाये गये थे जिसको "विलविला" कहते थे। ये नव-दम्पतियों से पूजे जाते थे। कामदेव का कोई मन्दिर तमिल नाडू में अब विद्यमान नहीं है।

संघोषर काल की रचनाओं से पता चलता कि कलदेव के लिए भी मन्दिर थे। मधुरै जिले के कुछ मन्दिरों में विष्णु सहित बलराम के विग्रह मिलते हैं। शिल्पधिकारम् मणिमैसूर तथा पुरुनानूरु में कलदेव का उल्लेख है। "शिल्प-धिकारम्" के अनुसार चौल राजाओं की प्रधान नगरी कावेरी प्रुपट्टिनम् में ञ्जुप्पुल वाले बरुण वर्ण "शैयीन" (मुरुगन) श्वेत रत्न-सा रंग वाले "कलदेव" नीलमणि जैसे प्रकाश युक्त "तिरुमात्त", "मुत्तमाला तथा विजयी इत्र सहित इन्द्र देव - इन सभी के लिए अलग अलग मन्दिर थे।

वैदिक देवताओं की तरह अनेक छोटे मोटे प्राकृतिक तत्व भी देव भावना से पूज्य संघ - साहित्य में मिलते हैं। भूत-प्रेत, वायु, सूर्य, चन्द्र, नगर, वृक्षा, नदी, पहाड़ जादि के स्थानीय देवताओं (Local gods) के लिए

१- Linguistic Survey of India, IV p. 279.

२- परिपाठल ३, ६-८ तथा ७, ४-८

३- Annamalai University Journal, Vol. 8. pages 210-211  
"Palamthamilar Kaddavul Valipadu", Prof. E.S. Vana-  
-dara-janar.

स्थान स्थान पर पूजा होती थी। उत्प बुद्धि ग्रामीण जनता जिसके लिए सर्व शक्ति-मानु परब्रह्म की कल्पना कठिन थी, ~~वेदों~~ छोटे-मोटे बनेक ग्राम देवताओं में भय के कारण विश्वास रखती थीं और उनकी पूजा करती थीं। पारियम्मा ( शीतला ) देवी की पूजा होती थी। ऐसी पत्नियों के जो अपने पातिव्रत के लिए प्रसिद्ध हुई थीं, तथा ऐसी पुरुषों के जिन्होंने अपार वीरता का प्रदर्शन कर प्राण त्याग भी कर दिया था - सम्मान के लिए शिलाओं की ( "नहुक्कल" ) स्थापना होती थी और उन शिलाओं में मृतकों के स्मारक चित्र तथा लेख भी अंकित कर पूजन-पद्धति चलती थी। "शिलप्पधिकारम्" नामक चौधर कालीन महाकाव्य की नायिका "कण्णकी" ऐसी पत्नी थी जिसने अपने बादश पातिव्रत द्वारा पतिहत्या का बदला लिया था। कहा जाता है कि चैगुट्टवन नामक चेर राजा "कण्णकी" के स्मारक बनाने के लिए हिमालय से शिला लेकर आया था और उसने उस शिला में पत्नी-देवी के रूप में मूर्ति बनवाकर उसे एक मन्दिर में स्थापित किया था।

इस प्रारम्भिक काल की एक महत्वपूर्ण उत्प्रेक्षनीय बात यह है कि विभिन्न देवताओं के लिए तमिल-प्रदेश में मन्दिर निर्मित होते थे, जहाँ उन देवताओं की पूजादि होती थी। तमिल-प्रदेश में वर्तमान अनगिनत मन्दिरों की देखने से स्पष्ट होता है कि मन्दिर-निर्माण बहुत पुराने काल में ही प्रारम्भ हो चुका था और मन्दिरों के निर्माण के साथ साथ धार्मिक वातावरण का भी सुवर्धन हो चुका था। मन्दिरों का निर्माण और उनकी रक्षा करना राजाओं के कर्तव्यों में से सम्मिलित जाता था। ठीक ही तमिल-प्रदेश की मन्दिरों का देश कहा गया है।

ऊपर हमने प्राचीन काल की तमिल-प्रदेश की धार्मिक स्थिति का परिचय दिया है। उपर्युक्त विवेचन से पता चलेगा कि कार्य और द्रविड़ संस्कृतियों के सम्मिलन के पूर्णतः घटित होने पर भी तमिल-प्रदेश की धार्मिक भावना या मन्त्रित-

१- देविलस - "Village gods of South India." R.R. Henry Whitehead.

२- An Essay on the origin of South Indian Temples  
— Dr. Venkitaramaya, page 4-5

३- देविलस - "Origin of South Indian Temples"  
— Dr. Venkitaramaya.

४- तोलकाप्पियम् - बहतिर्ण, सूत्र ३० श्वप्तरानार की टीका



भावना वैविध्य को लेकर है। द्रविड़ देवताओं और वाचरणों का भिन्नत्व सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। प्रारम्भ में विभिन्न देवताओं की भिन्न भिन्न पुजा-परिपाटियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। किन्तु इन वाचरणों के व्यवहार-पदा के साथ साथ, तत्कालीन-साहित्य में उत्कृष्ट धार्मिक चिन्तन का पदा भी स्पष्ट द्योत पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि तमिलों के प्राकृतिक धर्म सम्बन्धित वाचरण उनके उत्कृष्ट धार्मिक चिन्तन से भिन्नता लिए हुए है। वास्थामय विश्वास सम्बन्धी व्यावहारिक वाचरण और उस धर्म के ऊँचे स्तर के विचार दोनों के बीच बड़ी गहरी खाई पड़ गयी, मालूम पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संघ कालीन कवियों ने जीवन की शाश्वत मान्यताओं तथा शिष्टाचार के ऊँचे वादशों पर भी स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। संघ काल की कुछ रचनाओं में कवियों ने उच्च कौटि के मन्त्रित-भाव भी व्यक्त किये हैं। एक सर्व शक्तिमान भगवान् की कल्पना कर उससे मन्त्रितपूर्ण सम्बन्ध रखने की बात यत्र-तत्र संघ-साहित्य में देखने को मिलती है।

#### तमिल-प्रदेश में तिरुमाल-धर्म ( वैष्णव-धर्म ) की प्राचीनता-

यह पहले लिखा जा चुका है कि "संघम्" पूर्व काल की उपलब्ध रचना "तोलकाप्पियम्" में तमिल-प्रदेश के पाँच भू-भागों और उनके अधिदेवताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन पाँचों देवताओं ( मायोन, शैयोन, इन्द्र, वरुण कौटूरव ) में मायोन या तिरुमाल का स्थान सबसे ऊँचा था। "तोलकाप्पियम्" के रचयिता ने भी विभिन्न भू-भागों तथा उनके अधिदेवताओं का उल्लेख करते समय सबसे पहले मुल्लै-प्रदेश ( वनभूमि ) के देवता तिरुमाल का ही नाम लिया है। बाद के प्रसिद्ध कवि तेविकलार ने भी अपने ग्रन्थ "पेरियपुराण" के विभिन्न देवताओं में "तिरुमाल" के महत्वपूर्ण स्थान का समर्थन करते हुए उनका वन-भूमि के देवता के रूप में उल्लेख किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वन-भूमि ( मुल्लै-प्रदेश ) में जन्य-

१- तोलकाप्पियम् - अहम . सूत्र ५ और ३०

२- Periyapuramam, Tiru Kurrikutandar puranam Stanza, 18.

लेकर तिरुमाल- धर्म धीरे धीरे अन्य भू- भागों में भी फैलने लगा । मुल्लै जव्वा वन- भूमि में गौचारण के व्यसनाय में संलग्न " जायर " कहलाने वाली ग्वाले लोग रहते थे । उनके इष्ट देवता " मायोन " ( बाद के साहित्य में " कन्नन " ) का पालन- पूजन भी, कथाओं के अनुसार वायरकुल में ही हुआ था । " मायोन " शब्द का अर्थ है- " श्याम रंग वाला "। कदाचित् इस रंग का सम्बन्ध " जायर लोगों " की निवास- भूमि मुल्लै के वन- प्रदेशों में बाकाश- वीथि में स्फुटित होने वाले मैलों से हो सकता है जिसके रंग में " जायर " लोग रंगे होने और अपने इष्ट देवता के वर्णों की कल्पना इस प्रकार की होगी ।

" तिरुमाल " शब्द भी " मायोन " के लिए प्रयुक्त होता है, जो देवताओं के विशिष्ट स्थान को सूचित करने के लिए व्यसृत होने लगा था । तोल- काप्पियम् " तिरुमाल " का मानव जाति के रक्षा के रूप में उल्लेख करता है । " तोलकाप्पियम् " जैसा कि पहले कहा गया है कि एक लक्षणा ग्रन्थ है। उसके रचयिता ने " पुं निर्ले " नामक कविता का लक्षणा देते समय नेष्ट राजा की तुलना तिरुमाल से कर " तिरुमाल " की स्तुति बहुत ही प्रशंसात्मक शब्दों में की है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि तोलकाप्पियम् ने ऐसे शब्दों का प्रयोग " तिरुमाल " के अति- श्रुत अन्य किसी देवता के लिए नहीं किया है। इससे तिरुमाल के महत्व का पता चलता है।

मुल्लै-प्रदेश के वासी अपने देवता तिरुमाल की उपासना में, विशेष रूप से उसके प्रारम्भिक जीवन की बाल- लीलाओं में बहुत रम जाते थे । जायर कुल की नारियाँ उस दिव्य - पुरुष की रम्य लीलाओं के स्मरण में अपने हृदय को खो देती थीं, जिसका बालकपन भी उन्हीं की वनभूमि में घटा था । इस देवता के बालकपन से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ तमिल जनता की कल्पना के अनुसार जन्म लेने लगीं । " मायोन " के प्रति उन जायर रमणियों के प्रेम को लक्ष्य करके ही शायद तोल-

काप्पियन्तार ने लिखा है कि इन रमणियों के हृदय में वैसा ही गहरा प्रेम अपने दृष्ट देवता के प्रति था, जैसा उनको अपने पतियों के प्रति होता था। फलतः चलता है कि तोलकाप्पियम्-काल ( ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी का काल ) से ही "तिरुमाल" या "मायोन" की प्रेम-कथाएँ जन-मानस को पर्याप्त मात्रा में जाकर्णित कर चुकी थीं और संघ-काल में "तिरुमाल" सम्बन्धी इन कथाओं का खूब प्रचार हुआ।

#### संघ-साहित्य के प्रति बाल्वारों का दृष्टि-

इसमें शेषमात्र सन्देह नहीं कि वैष्णव-भक्त बाल्वारों का काल तमिल-साहित्य के संघ-काल के पश्चात् ही निश्चित रूप से पड़ता है। क्योंकि बाल्वारों की रचनाओं में संघकाल की साहित्यिक परंपराओं तथा विचार-धाराओं का स्पष्ट प्रभाव दोल पड़ता है। बाल्वारों की रचनाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि संघ-साहित्य में देखने को मिल जाती है। कुछ बाल्वारों ने तो संघ-साहित्य के प्रति अपने आधार को प्रकट भी किया है। यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि किसी कवि के काव्य का सम्बन्ध उसके पूर्ववर्ती और समकालीन युग से बहुत होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावों से किसी न किसी ढंग में प्रभावित होता है और फिर अपनी कृति से अपने युग तथा अपने परवर्ती युग को प्रभावित करता है। इसलिए उस कवि के अध्ययन के लिए उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में ही उस कवि के काव्य की आलोचना बड़ी सावधानी तथा सहानुभूति से होनी चाहिए।

बाल्वारों की रचनाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि संघ-साहित्य है। संघ-काल तमिल साहित्य का स्वर्ण-युग है। क्योंकि इस काल में रचे तमिल काव्यों का साहित्यिक महत्व सर्वश्रेष्ठ है। इस काल की रचनाओं में तत्कालीन तमिल



जनता के जीवन दर्शन और वाचार् के सम्बन्ध<sup>में</sup> बहुत से विवरण मिले हैं। यह कहा जा-सुका है कि इस काल के प्रारम्भ में ही उत्तर से वैदिक-संस्कृति का आगमन तमिल प्रदेश में हुआ और तमिल संस्कृति से उसका सम्मिश्रण हुआ। इस काल की रचनाओं में दोनों संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। धार्मिक - भावना के क्षेत्र में एक ओर तमिल-संस्कृति से और दूसरी ओर वैदिक-संस्कृति के भाव प्रभुत्व विचार हैं। इस काल की रचनाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिलती है कि जनता में धार्मिक भावना का उदय पहले से ही हो चुका था। साथ ही उनमें धार्मिक सहिष्णुता भी दीस पड़ती है और धार्मिक संघर्ष का नाम तक नहीं है। परन्तु बाद में यह बात नहीं रह गयी थी।

इस संघ-काल की रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस काल में तिरुमाल-धर्म क्योंकि वैष्णव धर्म वृत्त प्रचार को पा रहा था। और तिरुमाल सम्बन्धी (वैदिक-परंपरा-प्रभु तथा तमिल मानस में उत्पन्न) कथाएँ बहुत प्रचलित थीं। स्मरण रहे कि तमिल-भूमि में 'मायोन' या तिरुमाल की कल्पना (पहले से) पृथक् रूप से जाग उठी थी। संघकाल के साहित्य से ज्ञात होता है कि वैष्णव-धर्म विशेषकर भागवत मत एवं अवतारवाद की प्रतिष्ठा, तथा विष्णु-नारायण-बासुदेव-कृष्ण और 'तिरुमाल' या 'मायोन' का स्वीकरण पूर्ण और पुष्ट हो रहा था। बालवार्त्तों ने इस युग के साहित्य से बहुत कुछ लिया। अतः बालवार्त्त-पूर्व इस साहित्य में वर्णित वैष्णव मन्त्र के रूप पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

#### संघ-साहित्य में वैष्णव-मन्त्र-

संघ-काल की रचनाएँ तीन संग्रहों में मिलती हैं :-

- १- इट्टुतीकै (बाठ कविता-संग्रह)
- २- पट्टु पाट्टु (दस वर्णन काव्यों का संग्रह) और

### ३- पदिनेण कील कणवकु ( ठठारह लघु-कविता संग्रह )

#### नट्टिण -

“स्टुटोके” - कृतियों में नट्टिण सबसे प्राचीन मानी गई है। इसमें तिरुमाल ( विष्णु ) का वर्णन मिलता है। इसमें तिरुमाल की महता और उनके रंग की तुलना फल से की गई है। इसमें “भारतम्” के रचयिता पेरुन्देवनार की एक कविता मालाचरण के रूप में संगृहीत है। पेरुन्देवनार ने जलानूरु, पुरानानूरु कुरन्तोके, ऐरुनानूरु आदि कविता-संग्रहों में भी मालाचरण लिखे हैं। पेरुन्देवनार ने शैव-वैष्णव भेद से दूर रहकर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। अन्य कविता संग्रहों में जहाँ उन्होंने शिव और मुरुगन की स्तुति की है, वहाँ उन्होंने “नट्टिण” में तिरुमाल की स्तुति की है।

इस कविता में कवि ने “तिरुमाल” के विश्व रूप के दर्शन कराये हैं। इनका विश्व रूप वर्णन सात पंक्तियों में है। कवि ने समस्त विश्व को तिरुमाल मय ( विष्णुमय ) देखा है। इस पृथ्वी-तल को तिरुमाल के चरणों के रूप में, समुद्र को तिरुमाल के वस्त्र के रूप में, दिशाओं को करों के रूप में, सूर्य-चन्द्र को तिरुमाल के दो नयनों के रूप में कवि ने देखा है। इस प्रकार समस्त विश्व में तिरुमाल की जगह को कवि ने व्याप्त पाया है। कवि के लिए विश्व ही तिरुमाल है, तिरुमाल ही विश्व है। “नट्टिण” की यह मालाचरण-कविता उस काव्य-मन्दिर के द्वार के रूप में दीप्त पड़ती है।

१- “स्टुटोके” और “पुपुपाट्टु” में सम्मिलित काव्यों के नाम इस निबन्ध के - पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं। “पदिनेण कील कणवकु” संग्रह में सम्मिलित काव्य इस प्रकार हैं :- तिरुवकुरल, तिरिवटुकम, नान्मणिकटिके, तिरुपवमूलम, नालडियार, कार नाफ्टु, कलवलि नाफ्टु, इनिये नाफ्टु, इन्ना नाफ्टु, ऐतिर्ण, पलमोली, मडुमोली कांची आदि ठठारह लघु काव्य ।

२- व्यासकृत महाभारत, शांति पर्व ४ अध्याय ३३६ श्लोक २१- २८ में भी विष्णु के विश्व रूप का वर्णन है।

“ नट्टिणं ” में मंगलाचरण के अतिरिक्त १७५ कवियों की ४०० कवितारें संगृहीत हैं। इन विभिन्न कवियों के नाम ज्ञात नहीं हैं। इन कविताओं की रचनाओं में बाठ स्त्रियाँ भी थीं। कपिलर तथा उल्लोचनार नामक दो कवियों की कवितारें इस संग्रह में सर्वाधिक संख्या में हैं। इसकी एक कविता में किसी एक कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य में ही तिरुमाल के दर्शन किये हैं। काले रंगीन फल को और उससे कलकल-निनाद करके बहने वाली निर्मल निर्मलरणी को देखकर कवि को ~~तिरुमाल~~ तिरुमाल ( और उसके भाई कलराम ) का स्मरण हो जाता है। संप-कालीन कवियों ने प्रकृति में ही तिरुमाल को देखा है। काया - पुष्प ( पुष्प विशेष ) में, नील गगन में, नील लहर वाले समुद्र में, कोंद के रंग में सर्वत्र कवि को विष्णु की ध्याप्ति का परिचय मिलता है। कवि ने समस्त विश्व को विष्णुमय देखा है। नट्टिणं के अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन जनता तिरुमाल ( विष्णु ) की महत्ता, महिमा और तिरुमाल से सम्बन्धित कथाओं से पूर्णतः परिचित थी।

### पदिट्टपु-

पदिट्टपु के रचयिता काप्पियट्टरु काप्पियत्तार ने अपने बाणखटाता नारमुडिवैरु नामक चेर राजा को विष्णु-भक्त कहा है। इसमें कहा गया है कि उक्त चेर राजा ने उस तिरुमाल ( विष्णु ) की उपासना में अपनी प्रजा को लगाया था, जिस तिरुमाल ने वाराहावतार लेकर समस्त पृथ्वी को रक्षा की। इसमें उल्लेख है कि तिरुमाल भक्त, शीतल जल में स्नान कर, निराहार व्रत रखकर तिरुमाल के मन्दिर में प्रवेश करते थे और तिरुमाल की महिमा गाकर, तुलसी माला धारी तिरुमाल के चरण कमलों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित कर आनन्द से नृत्य करते थे। विद्वानों का अभिप्राय है कि इसमें जिस मन्दिर का उल्लेख है, वह तिरुवन्नान्तपुरम् ( श्यानन्दुरपुरी ) में स्थित शेषशायी विष्णु का है<sup>२</sup>।

१- तमिलुम वैणवमुमम- एम० राधाकृष्ण पिप्पै पृ० ६

२- ..

..

८

कपिलर नामक प्रसिद्ध कवि ने लिखा है कि चैत्तकलुंगी नामक राजा ने तिरुमाल के प्रति अपनी अपार भक्ति के उपलक्ष्य में उनकी पूजा की व्यवस्था के लिए बीरुन्दूर नामक गाँव का राजस्व शाश्वत रूप में दे रखा था। इसे ज्ञात होता है कि तमिल-प्रदेश के चैर-राज्य में तिरुमाल-उपासना बहुत ही प्राचीन काल से प्रचलित थी।

नवकीर नामक कवि ने "पुरनानूरु" की एक कविता में बलराम का वर्णन करते हुए लिखा है कि समुद्र में उत्पन्न धवल रंगीन शैल के समान उनकी देह की कांति है और उनके ध्वज पर ताड़ वृक्ष का चिह्न अंकित है।<sup>१</sup> वाग्वे कवि ने बलराम के अनुज कन्नन को, जिसका तन नीलमणि की जामा से सुवत है और जिसका गरुड़ ध्वज महान् विजय का प्रतीक है, समस्त विश्व की सारी शक्ति और स्याति का सन्निधान कहा है।<sup>२</sup>

मारोवकलु नम्पसलैयार नामक कवि ने कन्नन (कृष्ण) की एक ऐसी कथा का उल्लेख किया है जो अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती। सुर और असुरों के बीच जब युद्ध हुआ तो दिन की भी बन्धकार युक्त बनाने के लिए असुरों ने सूर्य को छिपा दिया। सूर्य का प्रकाश न पाकर सारी पृथ्वी बन्धकार से जाच्छादित हो गयी और मनुष्य मयभीत हो गये। उस समय नील वर्ण देह-धारी कन्नन ("विष्णु" का तमिल नाम) मनुष्यों के दुःख निवारणार्थ सूर्य को लाकर आकाश में लटका कर दिया। इसे ज्ञात होता है कि इस कवि के समय में यह कथा प्रचलित हुई थी। प्रलयकाल में जलप्लावन के समय विष्णु के बट-पत्र पर शयन करने की कथा भी वर्णित है।<sup>४</sup>

### परिपाठ-

"परिपाठ" में भी विष्णु का वर्णन है। "पाठल" शब्द

१- पुरम् ५५-३-४

२- .. ५७-१-३

३- .. १७४-१-५

४- .. १६१-१



है तात्पर्य 'गीत' है है। कदाचित् इस संग्रह में संगृहीत कवितारें उस समय गीत-रूप में गायी जाती थीं। परिपाडल कविता-संग्रह में संगृहीत ७० कविताओं तिरु-माल से सम्बन्धित बात कही गई है। परन्तु इस संग्रह की जब उपलब्ध होने वाली २२ कविताओं में सात में तिरुमाल ( विष्णु ) का वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि संघ काल में तिरुमाल- उपासना बहुत प्रचार को पा चुकी थी।

प्रथम कविता में शेषशायी विष्णु का वर्णन है। इसमें कहा गया है कि जादि शेष झर, वासन, शैया, प्रकाशयुक्त दीपक जादि के रूप में तिरु-माल की सेवा में प्रस्तुत है। कवि का कहना है कि नीलवर्ण तन युक्त तिरुमाल के वटास्थल को शोभित करने वाली लक्ष्मी देवी, मानी सत्य और सुन्दरम् के समन्वय के रूप में विराजमान है। इस कविता में कवि ने तिरुमाल के विभिन्न आभूषणों की भी चर्चा की है। वे आभूषण क्या हैं, प्रकृति की नाना वस्तुएँ ही हैं। अग्नि से घिरा हुआ नील वर्ण- फलत मानों तिरुमाल का पीताम्बर हो। कवि का कहना है कि वेद प्रणेता मुनिगुण तथा ज्ञानवान् व्यक्त भी विष्णु की महिमा के एक वर्ण की भी जान नहीं सके, तो हम वर्जितों से उनकी सारी महिमा का वर्णन कैसे हो सकता है। जागे कवि कहता है कि उनकी महिमा का कुछ भी गायन करना चाहे, तो उसके सिर भी उसकी दया चाहिये।

परिपाडल में मिलनेवाले तिरुमाल- सम्बन्धी विचार जागे के कवियों द्वारा व्यक्तिये गये मालूम होते हैं। उनमें एक विचार यह है कि जो भगवान् कृपा सिन्धु, करुणानिधान है, वह दुष्टों को दण्ड देने में भी हिचकता नहीं है। दुष्टों को सम्मार्ग पर लाने के लिए ही वह उन्हें कष्ट देता है। भगवान् के इन दोनों गुणों की तुलना शीतल चाँदनी को देने वाले चन्द्र तथा ताप युक्त किरणों को भेजने वाले सूर्य से की गई है।

कवि ने विश्वोत्पत्ति के कारण ब्रह्मा और संहार-कारण शिव को भी तिरुमाल के वर्ण माने हैं। कवि का कहना है कि स्वर्ण- कान्ति- युक्त चक्र को अपने हस्त में धारण करने वाले तिरुमाल ही इस विश्व के जादि-कारण

हैं, परब्रह्म हैं। उनकी तुलना किसी से नहीं का जा सकती। उनके समान वे ही हैं।  
चूंकि इस निर्गुण परब्रह्म के विषय में जानना मनुष्यों के लिए बहुत कठिन है, इसलिए  
भगवान् अपने शंख चक्र संयुक्त सगुण-रूप के दर्शन भक्तों के लिए कराये हैं। अन्त में  
तिरुमात-भगवान् की स्तुति कर उसकी शरण में जाने में ही भक्तों की भलाई बतायी  
गयी है<sup>१</sup>।

परिपाठ में अवतारवाद की भाँकी मिल जाती है। एक कविता  
में कलराम अवतार का भी उल्लेख है। ज्ञात होता है कि संकाल में कन्नन (कृष्ण)  
की उपासना के समान कलराम की भी उपासना होती थी और उसके लिए बड़ा मंदिर  
भी निर्मित हुए थे। एक अन्य कविता में भी कलराम-वर्णन है। इस कविता के रच-  
यिता कीर्त्तियार ने कलराम के जन्म के रूप में अवतरित विष्णु (कन्नन) का भी  
वर्णन किया है। पुराणों में विष्णु के चार व्यूहों का वर्णन आता है- बाहुदेव,  
संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। परिपाठ में भी चार व्यूहों का उल्लेख मिलता  
है। इनमें "संकर्षणकारी" कहकर बाहुदेव व्यूह का, "कर्तृकण वेत्ति" कहकर  
संकर्षण व्यूह का, "प्रीत्यण पन्ने" कहकर प्रद्युम्न का और "प्रेमणमात" कहकर  
अनिरुद्ध व्यूह का भी उल्लेख किया है। इस कविता के रचयिता कहुवनवेय-  
नार थे। संकाल में तिरुमात की विमल-मूर्तियों का उल्लेख करने वाले एक मात्र  
कवि थे हैं। एक दूसरी कविता में तिरुमात के वाराहावतार लेकर पृथ्वी की रक्षा  
करने का, नृसिंह अवतार लेकर प्रह्लाद के दुष्ट ईश्वरीय विश्वास का निरूपण करने  
का, वामनावतार लेकर तीनों लोकों को नापने का, भी विस्तार से वर्णन है।

परिपाठ के द्वितीय गीत के रचयिता कीर्त्तियार कलराम

१- "परिपाठ" इन विचारों का प्रभाव आत्मचारों पर पड़ा है। आत्मचारों के  
विचारों के बीज भी इसमें देखने को मिलते हैं।

२- "तिरुकोयिल" ( Vol. 2. Issue 3 ) "वैष्णवम्" लेख श्री पी० श्री आचार्य  
पृ० २१

३- परिपाठ ४-१०-२१

४- वही ३-३३-३४

५- वही ३-१६-२०

और तिरुमाल ( कन्नन ) को एक ही मानते हैं। उन्होंने कन्नन ( कृष्ण ) को पूर्णावतार के रूप में माना है। कवि का कहना है कि युवकों के लिए नवयुवक और वृद्धों के लिए पूर्ण ज्ञानी महान् वृद्ध के रूप में तिरुमाल दृष्टिगोचर होते हैं। इन सब अवतारों के मूल में तिरुमाल के लोक- रक्षा और लोक- रक्षक दोनों रूप ही प्रकट हुए हैं।

नल्लेदुदिवार नामक कवि ने तिरुमाल को परब्रह्म के रूप में देखा है। विश्व के कण- कण में तिरुमाल के दिव्य दर्शन का उल्लेख किया है। एक गीत में हरन्दैयूर नामक स्थान में स्थित तिरुमाल- देवालय का उल्लेख है। विद्वानों के अनुसार यह मन्दिर वेग नदी के तट पर स्थित "जलरकोयिल" ही है।

#### कलिवोक्के-

कलिवोक्के में बाल- कृष्ण की विभिन्न- लीलाओं का वर्णन है। कंस के द्वारा भेजे गये केशी नामक षोड़श को मारने की कथा है। कवि चोजन नल्लि- रुचिनार ने इस घटना को अपार वीरता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। द्रौपदी की कुरुण पुकार पर उपस्थित होकर उसके स्त्रीत्व की रक्षा कर दुःशासन के गर्व को भंग करने वाले कृष्ण ( कन्नन ) की महिमा गायी गयी है। समस्त विश्व को तीन पर्वों में लांघने की विष्णु की कथा भी है। कलिवोक्के के अध्ययन से विदित होता है कि उस समय तिरुमाल-धर्म को राज्याश्रय भी प्राप्त था। इसमें पवित्र जीवन बिताने वाले वैष्णव संन्यासी लोगों का उल्लेख है जो प्रतिदिन पत्थर पर पीटकर धौथे

१- परिपाडल २-२०-२३

२- वही २-४३-४६

३- वही ६-१८-२८

४- तमिलुम वैणवमुम - एम० राधाकृष्ण पिल्लै पृ० २६

५- मुल्लैकली १०३, ५०- ५३

६- वही १, ८१- १२०



हुर काणाय वस्त्र पहना करते थे और जिनका नाम "मगवर" या "मुक्कौर मगवर" विख्यात था। धार्मिक विषयों में इनसे सलाह लेने की परिपाटी भी थी।

संप्रकाशित कविता-संग्रहों में दूसरा संग्रह "पटुपाट्ट" है, जिसमें दस वर्णन-काव्यों का समावेश है। यह प्रथम संग्रह की अपेक्षा अधिक प्राचीन माना जाता है। इसमें संगृहीत-कविताओं का काल ईसा की दूसरी शताब्दी से पूर्व पड़ता है।

इसमें पौरुनपाणाट्टरुफडे के रचयिता ने अपने आश्रयदाता को तिरुमाल वंशोत्पन्न कहा है।<sup>१</sup> इस कविता में कवि ने कांची नगर की प्राचीनता का वर्णन करते समय लिखा है कि कांची उस तरह प्राचीन और महिमा युक्त है, जिस तरह ब्रह्मदेव को धारण करनेवाला तिरुमाल की नाभि से उदित कमल। इस कांची नगर के समीप तिरुवेला में ऐणत्तायी तिरुमाल के एक मन्दिर होने का भी उल्लेख है।<sup>३</sup>

"मुल्ले पाट्टु" (ज्यात् "वन-गीत") के रचयिता नच्चुवनार ने वामनावतार का स्मरण कर तिरुमाल की व्यापकता और श्यामलता की तुलना समुद्र-जल को ग्रहण कर उत्पन्न तथा ऊँचे आकाश में मँडराने वाले काले मेघों से की है। यह कविता मुल्ले-प्रदेश के अधिपति "मायीन" ज्यथा "तिरुमाल" की स्तुति कर प्रारम्भ होती है। महाबली से तीन-चरण की धूमि माँगकर तीनों लोकों को लांघने वाले तिरुमाल की कथा उस समय बहुत ही लोकप्रिय रही होगी। अतः मधुर-कांची में "जोण विणा" का वर्णन है। कहा गया है कि महाबली के नर्व का दमन करने वाले तिरुमाल की महिमा गाने के लिए मधुरै नगर में "जोण" उत्सव प्रतिवर्ष सात दिन तक बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था।

संप्रकाश का तीसरा काव्य-संग्रह "पदिनेणकील्लणमकु" है। वस्तुतः यह अठारह सुविश-ग्रन्थों का सामूहिक नाम है। विश्व विख्यात महाकवि तिरुवल्लुवर द्वारा रचित तिरुवल्लु इन्हीं प्रमुख हैं। तिरुवल्लुवर किस धर्म के अनु-

१- पौरुनपाणाट्टरुफडे २६-३१

२- वही ४०३-४०५

३- वही ३७१-३७३

यायी थे, इसका निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका है। इस ग्रन्थ में जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव एवं ईसाई विद्वान् अपने अपने धर्म के विचारों को पाकर यह प्रमाणित करने के निरन्तर प्रयत्न में सदियों से लगे हुए हैं कि तिरुवत्तुवर तत्त्व धर्मावली की ओर उन्हीं के धार्मिक सिद्धान्त "तिरुवत्तुल" में प्रतिपादित किये गये हैं। यद्यपि इस महान् कवि ने अपने दृष्टदेव के रूप में विष्णु या तिरुमाल का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया है, तो भी उनके भगवान् के श्रेष्ठ गुणों के अनेक वर्णन तिरुमाल को लक्ष्य करके ही किये गये मालूम पड़ते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक विचार इसमें मिल जाते हैं। दो स्थानों में "वडियलन्दान" (लोक को नापने वाला) तथा "दामर कन्नन" (कमल वल लोचन कन्नन) इन दो प्रयोगों से यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि अपने समय में प्रचलित "तिरुमाल" तत्त्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

"पदिनेणकीलकणमकु में सम्मिसित" तिरिक्कुक्कम नामक काव्य में तिरुमाल की अनेक सीलावली में से तीन चरणा से सम्पन्न विश्व को लांचने कुरुन्द पेड़ के रूप में उपस्थित राक्षस को मारने, शकट तोड़ने आदि सीलावली का वर्णन है। इसके रचयिता नल्लादनार थे। इस ग्रन्थ के मंगलाचरण से विदित होता है कि ये वैष्णव थे।

"नानमणिकडिक्के" के रचयिता विलंबीनागनार भी वैष्णव थे। इसमें मंगलाचरण के दो पद्य हैं जिनमें "मायीन" अर्थात् "कन्नन" की स्तुति है। कवि का कहना है कि चन्द्र "मायीन" के मुख के समान है। किरण युक्त सूर्य तिरुमाल के चक्र के समान है। सुन्दर कमल के वल उनके नयनों के समान है। "पुई" के नवीन पुष्प उनके शरीर के रंग के समान हैं। इस प्रकार कवि ने उपमान को उपम्य से भी श्रेष्ठ बताया है। (प्रतीप जलंकार) मंगलाचरण के द्वितीय पद्य में कन्नन (कृष्ण) की वन्य कुछ सीलावली का उल्लेख है।

१- तिरुवत्तुल, दोहा ६१०

२- वही, ११०३

३- तिरुकोस्त ( Vol. 3. Issue 4 ) "तिरुमाल वलिपाडु" तैल श्री पी० श्री० आचार्य ।

"इनियु नापुं" के रचयिता पूर्वजिनार थे। उन्होंने भी कृष्ण की जैन लीलाओं का उल्लेख किया है। विद्वानों के अनुसार ये भी वैष्णव थे।

संक्षेप काल में ( तीसरी और चौथी शताब्दी ) पाँच श्रेष्ठ काव्यों का निर्माण हुआ जो " पंच बृहद् काव्य " के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हैं- शिल्पधिकारम् , मणिमेखलं, जीवक चिन्तामणि, कल्याणपति और कुण्डलेशी । इन बृहद् काव्यों के अतिरिक्त इस काल में रचित पाँच लघु काव्य भी विख्यात हैं। ये हैं- नीलेशी, शूलामणि, खोदर काव्यम्, नागकुमार काव्यम्, तथा उदयगन कदै । " शिल्पधिकारम् " ( नूपुर- काव्य ) के रचयिता स्वर्गीय यद्यपि बौद्ध मुनि थे, तो भी उन्होंने अपने समय के अन्य प्रसिद्ध लोक-प्रिय धर्मों के विशेष रूप से तिरुमाल धर्म के विचारों का अच्छा परिचय दिया है। इस काव्य का नायक कोवलन अपनी धर्म पत्नी कण्णाकी को मरुर नगर के बाहर स्थित ( " वायर " ) ग्वालों के ग्राम में छोड़ जाता है। मरुर में जब निरपराध कोवलन की हत्या होती है, तो वायरों के उस ग्राम में अपराधुन दोष पड़ते हैं। इस पर वायर ग्वालिनें अपने इष्टदेव कन्नन ( कृष्ण ) से अमंगल दूर करने के लिए प्रार्थना कर " कुरुवे " नामक नृत्य करती हैं। यह प्रांग " वायि-चियर कुरुवे " नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रांग में ग्वालिनें गाती हैं :- " मेरु की मयानी और वायुकी सर्प की रस्सी बनाकर, है, कन्नन ! उस दिन तुमने समुद्र का मंथन कर डाला था । मथनेवाले वे ही हाथ ( बाद में ) खोदने की मयाने की रस्सी से बांध गये । हे नृसिंह, हे भ्रान्ति रक्षित ! यह तुम्हारी कैसी माया है ? " " कुरुवे कुरु " की कथा उस समय के तमिल-सनातन में सबसे अधिक प्रसिद्ध कथा मान्य पड़ती है जिसमें कन्नन ( कृष्ण ), कलराम और नय्यिन्ने ( " राधा " का तमिल नाम ) के साथ " कुरुवे " नामक नृत्य किया था । कवि ने इस प्रांग के वर्णन में ग्वालिनों के मुख से " कुरुवे " नृत्य करते समय कन्नन की विभिन्न बाल लीलाओं का गायन कराया है।

" शिल्पधिकारम् " से ज्ञात होता है कि उस समय तिरुवैकटम् , तिरुप्पति, तिरुमालिहंचोलै आदि स्थानों में " तिरुमाल " के मन्दिर वर्तमान थे और इन मन्दिरों में तिरुमाल की उपासना प्रणाली भी थी। कविरिपुपट्टिनम में स्थित मंदिरों की सूची देते समय कवि कलराम और कन्नन ( कृष्ण ) के अलग अलग मन्दिर होने का भी उल्लेख करता है। इस काव्य के अन्त में एक जगह कहा गया है

कि राजा चैतन चैकुटुवन वीर- पत्नी कण्णकी की प्रतिमा बनाने के निमित्त शिला लेने के लिये हिमगिरि गए। वही समय "वाल्क्यमालम्" नामक स्थान में स्थित विष्णु-मन्दिर के उन्होंने दर्शन किए।

पं०- बृहद- काव्यों में दूसरा महान् काव्य है, "मणिमैल्ल"। इसके रचयिता जीविल चावनार ( मस्तक- व्रणी चावनार ) थे। इस ग्रन्थ के प्रणयन से उनका उद्देश्य यद्यपि बौद्ध-धर्म के विचारों का प्रतिपादन ही था, तो भी उन्होंने वैष्णव धर्म के श्रेष्ठ विचारों की वीर भी प्रशंगक संकेत किया है। इस काव्य में कन्नन ( कृष्ण ) की अनेक कथाओं का भी वर्णन आता है। कन्नन द्वारा नण्डिनी तथा बलराम सहित किये गये कृश्वे नृत्य का भी उत्तेजक कवि ने किया है।

"सुलमणि" नामक जैन- काव्य में उसके कथा- नायक से सम्बन्धित कुछ कथारं "कन्नन" से सम्बन्धित कथाओं से मिलती जुलती हैं। ऐसा जाना होता है कि चूंकि इस काल में तिरुमाल - धर्म अधिक प्रचार को पा रहा था और जनता ने तिरु-माल के विभिन्न अवतारों की कथाओं को बड़े चाव से स्वीकार किया था, इसलिए इस काल के जैन- बौद्ध- काव्य में भी उन कथाओं का क्वा<sup>२</sup>न्तार समाविष्ट बन-तब हुआ है।

तिरुमाल के कन्नन ( कृष्ण ) अवतार की भांति राम- अवतार की कथाएं भी तत्कालीन समाज में प्रचलित थीं। इसके प्रमाण संघ-साहित्य में मिल जाते हैं। यद्यपि तमिल में संपूर्ण "रामायण" की कथा को लेकर महाकाव्य रचने वाले कवि चक्रवर्ती के नाम से प्रसिद्ध कन्नन ( ११ वीं शती ) थे, तो भी कुछ विद्वानों का मत है कि उससे पूर्व ( कदाचित् संकाल में ही ) "वैष्णव" ग्रन्थ में निर्मित एक रामा-यण- काव्य भी विकसित था। प्रोफेसर एस० वैयापुरि पिल्लै का कथन है : "बहुत ही प्राचीन काल में इन रामायण कथाओं का प्रचार समस्त तमिल-प्रदेश में हो चुका था। "पुरानावुरु" तथा "वल्नावुरु" नामक संकालीन कृतियों में जिनकी रचना अंश

१- "मणिमैल्ल", १६, ६५- ६६

२- "कन्नन कण्ड तमिलम्" स्वामी विद्वरनार पृ० २०



की प्रारम्भिक शताब्दियों में हुई थी, रामायण की कथाओं का उत्सव है। इसके पञ्चाशु<sup>१</sup> वैष्णव<sup>२</sup> कृन्द<sup>३</sup> में रचित एक संपूर्ण रामायण का भी प्रणयन हुआ था। इस प्रकार हम देखते हैं कि "तिरुमाल" के रामावतार की कथाएँ बहुत प्राचीन काल से ही तमिल जनता को प्रभावित करती आयी हैं। तमिल - प्रदेश में उत्पन्न तत्सम्बन्धी कथाएँ भी मूल-कथा में ली गयी थीं।<sup>१</sup>

"वहनामूरु" और "नेहुन्तोकै" नामक संग्रहों में "रामायण" की कुछ कथाएँ मिलती हैं। इसमें एक जगह कहा गया है कि रावण से युद्ध कर सीता को लीवा लाने के निमित्त जब राम पाण्ड्यदेश के दक्षिण कोने में एक विशाल वट - वृक्ष के नीचे अपने दूसरे सहयोगियों के साथ विचार-विनिमय में रत थे तब उस वृक्ष पर निवास करने वाले बनेक पक्षी कलख में रत लगे। इस कारण कुछ समय के लिए समा स्रष्टा के कार्यक्रम को बाध करने में प्रतिरोध हो गया। उन पक्षियों के शान्त हो जाने पर वे पुनः विचार में प्रवृत्त हुए (यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है)।

"पुरनामूरु" की एक कविता में रामायण के एक प्रसंग की और संकेत है। एक बार एक कवि को एक राजा ने पुरस्कार स्वरूप बहुत से मूल्यान्व वाभू-  
ण्ण<sup>३</sup> दिये। चूंकि कवि को यह माहूम नहीं था कि किस वाभरण को कहाँ पहनना चाहिए, इसलिए उस कवि की तुलना उन वानरों से की गई जो रावण-  
द्वारा बन्धित सीता के हाथ से फेंके गये वाभूण्णों को लेकर इस भ्रम में पड़े हुए थे कि उन्हें कहाँ पहनना चाहिए।

"स्टुटोकै" काव्य-संग्रह में सम्मिलित "परिपाडल" में एक जगह कहा गया है कि "तिरुपस्तुटुर्म्" नामक स्थान में स्थित तिरुमाल-मन्दिर के चित्र-मण्डप में बहिर्या-शाय-विमोचन का चित्र अंकित किया गया था और मन्दिर में जानेवाले भक्त उसके दर्शन कर उसकी अत्यन्त प्रशंसा कर जाते थे।

१- "कम्बन काव्यम्" प्री० एस्० वैयापुरि पिल्लै पृ० १५२-१५३

२- वहनामूरु ७०

३- पुरनामूरु ३७

“शिल्पधिकारम्” नामक काव्य-ग्रन्थ के “वायचियर” कुरव प्रसंग में यद्यपि “कन्नन” (कृष्णावतार) की लीलाओं का विस्तार से वर्णन है। तथापि कवि ने रामावतार की ओर भी उक्ति किया है। कवि का कहना है कि उस कान से क्या प्रयोजन है जिसने तिरुमाल के रामावतार की कथा न सुनी हो। वही कवि कहता है कि तिरुमाल के चरण जिन्होंने तीन लोकों को नापा था, वे ही रामावतार में वन-यात्रा के समय पीड़ित होकर रक्षित हो गये<sup>१</sup>।

“मणिमैलै” में भी रामावतार की कुछ कथाएँ मिलती हैं। इसमें रावण के अन्यायपूर्ण कृत्य के लिए उसे दण्ड देने के निमित्त लंका में पहुँचने के लिए रामेश्वर में सेतु बनाने के समय बानरों द्वारा बड़े बड़े पत्थरों को लेकर जाने का वर्णन है<sup>२</sup>। एक अन्य जगह राम की जीत और रावण की पराजय का भी उल्लेख है<sup>३</sup>।

उपर्युक्त विवेचन से तात्पर्य यह है कि संस्कृत में ही (लंका की प्रारम्भिक शताब्दियों में कथवा उसके कुछ पूर्व ही तमिल-प्रदेश में तिरुमाल (विष्णु) के विभिन्न अवतारों की कथाएँ प्रचार पा चुकी थी, साथ ही संस्कृत साहित्य में हमें वाल्मीकि-साहित्य की साहित्यिक पृष्ठभूमि देखने को मिल जाती है।

### मन्दिरों में “तिरुमाल” की उपासना-

तमिल-प्रदेश के मन्दिरों का इतिहास बहुत ही प्राचीन है। इन मन्दिरों में देवताओं की मूर्तियाँ रखी थीं और निश्चित प्रणाली के अनुसार

१- शिल्पधिकारम् - महुरैकाण्डम् - वायचियर कुरव ३५

२- मणिमैलै १७- १० -४

३- ,, ५३- ५४

४- देखिए : Origin of South Indian Temples,  
Dr. Venkataranyaya.



उनकी उपासना भी होती थी। यद्यपि प्रारम्भ में तिरुमाल मुल्लै प्रदेश के अधीश्वरता के रूप में ही माने गये थे, तो भी संघ-काल में उनका प्रभाव अन्य-भू-भागों पर भी पड़ा। इनके मन्दिरों में तिरुवरंगम्, तिरुपति, तिरुनाल्लिहंबोलै, तिरुवेहा आदि स्थानों में स्थित तिरुमाल-मन्दिरों का उल्लेख संघ-साहित्य में कई जगह मिलता है।

तिरुवरंगम् (वी रंगम्) के मन्दिर के कर्वावतार तिरुमाल का वर्णन "शिलप्पधिकारम्" में इस प्रकार मिलता है : "शेषनाम पर जयन करने वाले नील वर्णन युक्त तिरुमाल स्वर्ण-पर्वत की बच्छड़ आच्छादित करने वाले नील भेषों के समान हैं।" इस रचना में तिरुवैकट के मन्दिर में विराजमान कर्वावतार तिरुमाल का वर्णन इस प्रकार मिलता है : "इस मन्दिर के तिरुमाल के कर-कमल मय उत्पन्न करने वाले चक्र तथा ध्वज रंगीन रत्न की धारण किये हुए हैं।"

"परिपाडल" में "तिरुमालिहंबोलै" के मन्दिर में विराजमान कमल-दल लीचन और श्याम वर्ण देहधारी उस तिरुमाल के कर्वावतार-रूप का वर्णन मिलता है, जो मानव-मात्र के दुर्लभ <sup>का</sup> हरण करता है। "पेरुम्पाणाटूरु-पडै" नामक रचना में कांचीपुरम् के समीप तिरुवेहा नामक स्थान में स्थित तिरुमाल मन्दिर का उल्लेख मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि संघकाल में कलराम और नप्पिन्नी सहित "कन्नन" के विग्रह की पूजा होती थी। इस प्रकार के मन्दिर फुहार और मडुर में थे। इनको "वैल्लेनगर कोट्टम" कहते थे। "परिपाडल" की पन्द्रहवीं कविता से ज्ञात होता है कि कलराम सहित "कन्नन" की मूर्तियाँ सेवित थीं। "कन्नन"

१- बासुवार भक्तों ने इन विभिन्न तिरुमाल-मन्दिरों में विराजमान तिरुमाल के "कर्वावतार" रूपों का वर्णन अपनी काव्य में किया है।

२- शिलप्पधिकारम् - २, ३५-४०

३- " २, ४१-४५

४- परिपाडल १५

५- पेरुम्पाणाटूरुपडै, ३७१-३७४

६- शिलप्पधिकारम् ५, १७१-१७२

बौर क्लराम को एक साथ मानने की परिपाटी में बाद में परिवर्तन आ गया और केवल कन्नन की मूर्तियाँ सैवित होने लगीं ।

संघकाल के उत्तरार्द्ध में ( संघोत्तर- काल में भी ) तमिल प्रदेश के मन्दिरों में संस्कृत जागनों द्वारा निर्धारित विधियों के अनुसार उपासना होती लगी थी । " शिल्पधर्माश्चरम् " और " परिपाटल " से ज्ञात होता है कि उन मन्दिरों में पांचिराम और वैतानस जागनों की विधियों के अनुसार पूजादि होती थी । तिरु-माल-मन्दिर के प्रांगण में लड़े स्तम्भ में गरुडांकित ध्वज शोभित था । " मणिमैल " में एक स्थान में " कडल वन्नन पुराणम् " का उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान हो सकता है कि " कडलवन्नन पुराणम् " का उल्लेख " विष्णु-पुराण " के लिए ही हुआ है और " विष्णु-पुराण " उस समय विद्यमान था । " परिपाटल " में विभिन्न स्थलों में स्थित तिरुमाल मन्दिरों तथा उनमें वर्तमान तिरुमाल के अवतार स्वरूप का वर्णन मिलता है। इनमें तिरुमाल के किसी न किसी अवतार की कल्पना अवश्य थी ।

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि यद्यपि आरम्भ में तमिल-भूमि में मायीन या तिरुमाल की कल्पना मुल्लै-प्रदेश के अधिपतिता के रूप में प्रकट हो थी, तो भी संघ काल में उठर से आने वाली वैदिक-मन्त्र-परंपरा से प्रभावित होकर, तिरुमाल-धर्म तमिल-प्रदेश में बहुत अधिक प्रचार को पाने लगा । तिरुमाल के अनेक-नेक मन्दिर उस काल में तमिल-प्रदेश के नाना भागों में निर्मित थे जिनमें तिरुमाल की उपासना होती थी । संघ-साहित्य इसके प्रमाण प्रस्तुत करता है कि तिरुमाल से सम्बन्धित तमिल लोक-मानस से उत्पन्न कथार्थ वैदिक-परंपरा-प्रभूत विष्णु के विभिन्न अवतारों की कथाओं से मिलकर जनता की आकर्षित करने लगी थीं । इस प्रकार संघ-काल में तिरुमाल-धर्म ( वैष्णव धर्म ) तमिल-प्रदेश में एक प्रधान धर्म हो चला था ।

### गोपालकृष्ण और राधा के विकास में तमिल की भूमिका-

महाभारत में कृष्ण एक उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ दार्शनिक योद्धा के रूप में दर्शाये गये हैं। वे पाण्डवों का सन्धि-सन्देश ले जाने वाले शान्ति-दूत हैं। उनके ज्ञान, विज्ञान और प्रखर बुद्धि की प्रशंसा से समस्त दौत्र आलीकृत हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण के शौर्य-वीर्य का पूर्ण दिग्दर्शन है। भारत की समाप्ति पर वे कुशल नियोजक के रूप में राजसूय यज्ञ में लगे दिखाई पड़ते हैं। अन्त में हमारे सामने उनका वह रूप ही आता है जो एक दूरदर्शितापूर्ण विचारक का माना जाता है। उनकी महत्ता के दो कारण बताये गये हैं। समाप्त में कहा गया है कि वे अपनी प्रखर ज्ञान और श्रेष्ठतम बल के कारण ही अनन्य गौरव के पात्र हैं। गीता में कर्मयोग की प्रधानता की स्थापना करने वाले एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति और उपदेष्टा के रूप में ही कृष्ण दीख पड़ते हैं।

पहले हम बता चुके हैं ( वैदिक-भक्ति-परंपरा का परिचय देते समय ) कि जब सात्वतों में वासुदेव की पूजा प्रधान हो गयी तो महाभारत के युग में वासुदेव और नारायण को एक ही समझा जाने लगा। वहाँ तक जाकर वासुदेव कृष्ण, विष्णु और नारायण एक ही चुके थे। पर उस समय तक गोपाल कृष्ण का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार के किसी देवता का नाम न तो महाभारत के नारायणीयोंपाख्यान में आता है और न पार्थिव महाभाष्य में।

परन्तु श्रीमद्भागवत जैसे बाद के ग्रन्थों में कृष्ण का जो रूप विशेष रूप से मिलता है, वह गोपाल कृष्ण का है। परवर्ती साहित्य में मिलनेवाला बाल-कृष्ण <sup>-रूप</sup> महाभारत के कूटनीतिज्ञ और गीता के उपदेष्टा कृष्ण के रूप से बिल्कुल भिन्न है। श्रीमद्भागवत के आधार पर परवर्ती साहित्य ग्रन्थों में कृष्ण का रूप, प्रेमा-भक्ति के आलम्बन के रूप में स्व गोप-गोपियों के सर्वस्व तथा राधा-वत्सल, नटनागर, स्व गोपाल कृष्ण ही अधिक ब्राह्म्य रूप/स्वरूप वाच्य की बात है कि महाभारत के उप-देष्टा कृष्ण श्रीमद्भागवत में गोपाल कृष्ण के रूप में कितने भिन्न जान पड़ते हैं ?

डा० माण्डारकर का कहना है कि ईसा के पूर्व की पन्ती सताब्दी तक के किसी भी भागवत धर्म सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थ में गोपाल कृष्ण की चर्चा नहीं है और न उनका कोई परिचय ही उपलब्ध होता है। इसके विरुद्ध ईसा के अनन्तर आनेवाली सताब्दियों की ऐसी सामग्रियाँ गोपाल कृष्ण की अनेक कथाओं से भरी पड़ी हैं जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उक्त दोनों समयों के बीच में कोई न कोई नवीन बात अवश्य हुई होगी।

ईसा के पूर्व के किसी संस्कृति ग्रन्थ में गोपाल-कृष्ण का वर्णन न मिलना और ईसा के पश्चात् के ग्रन्थों में गोपाल कृष्ण की सीताओं का विस्तार से विवरण प्राप्त होना विद्वानों के बीच अनेक प्रान्तियों एवं कल्पनाओं को जन्म देता आया है। पश्चात्य विद्वान् जो हर चीज का सम्बन्ध योरप से मानने वाले हैं, बालकृष्ण की सीता सम्बन्धी कथाओं को ईसा मसीह की जीवन-कथा से प्रभावित मान बैठे हैं। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि ईसा की दूसरी सताब्दी में ईसाइयों का एक दल सीरिया से आकर मद्रास के दक्षिण भाग में आबाद हो गया था। इन ईसाइयों की भक्ति-भावना का पूरा पूरा प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और क्राइस्ट से ख्रिस्टो और फिर कृष्ण उनका उपास्य बन गया। वैष्णवों की दास्य भक्ति, प्रसाद, पूतना-स्तन्य-पान आदि को ग्रियर्सन महीदय ईसाइयत की देव बताते हैं। उनका कहना है कि पूतना बाइबिल की "वर्जिन" है। प्रसाद लक्कीस्ट है — इत्यादि। इस प्रकार वे ईसा के पश्चात् बालकृष्ण की कथाओं का जन्म सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। बेबर और केनडी का भी कथन है कि बालकृष्ण की कथा ईसा मसीह की कथा का भारतीय रूप है।

कुछ भारतीय विद्वान् "गोपाल कृष्ण" के रूप का अस्तित्व प्रारम्भ से सिद्ध करने के उद्देश्य से केवल "गोपाल" शब्द का आधार लेकर गोपाल-

१- जे० बार० ए० एस० सन् १९०७ ई० में "हिन्दुओं पर नेष्टोरियन ईसाइयों का दृष्टि" शीर्षक लेख।

२- "इण्डियन एप्टीबेरी", जिल्द ३-४ में "कृष्ण जन्माष्टमी" वाला लेख।

३- जे० बार० ए० एस० सन् १९०७ में "कृष्ण ईसाइयत और गूजर"



कृष्ण को प्राचीन ग्रन्थों में दृढ़ते हैं और यह बताने की चेष्टा करते हैं कि गोपाल कृष्ण का रूप पहले से ही बीज रूप में विद्यमान था। वे कृष्ण के गोविन्द नाम का सम्बन्ध गोपाल कृष्ण से जोड़ते हैं। गोविन्द एक पुराना नाम है और उसका उल्लेख श्रीमद्भागवत और महाभारत दोनों में हुआ है। परन्तु महाभारत में "गोविन्द" शब्द का <sup>सिद्ध</sup> गोपाल कृष्ण से नहीं लगाया गया है। वादि फं में गोविन्द की व्याख्या उस प्रकार की गई है कि भगवान् का नाम "गोविन्द" इसलिए है कि उन्होंने "वाराहवतार" में "गो" अर्थात् पृथ्वी की रक्षा की थी। शान्ति- फं में भी इसी प्रकार की व्याख्या की गई है। डा० माण्डाकर ने गोविन्द की उत्पत्ति गोविंद से बताई है, जो ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में हमें ऐसे मंत्र अवश्य मिलते हैं जिनमें गो, कृष्ण, राधा, ब्रज, गोप, रोहिणी और कर्जुन वादि नाम आये हैं। परन्तु गोपाल कृष्ण से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

बालकृष्ण के आविर्भाव के विषय में माण्डाकर वादि कुछ विद्वानों का मत है कि बालकृष्ण की कथा सीरिया से चलकर आयी हुई पुनर्वसु बामीर जाति के बाल देवता की कथा है। बामीरों के बाल देवता श्रीकृष्ण की कथा का सबसे पुराना उल्लेख हरिवंश पुराण में पाया जाता है। माण्डाकर ने इस ग्रन्थ का काल सन् ई० की तीसरी सताब्दी के अनन्तर माना है। क्योंकि उसमें दोनार शब्द (लेटिन - *Denarius*) का उल्लेख है। माण्डाकर के अनुसार बामीर ही संभवतः बाल देवता की जन्म-कथा और पूजा अपने साथ ले आये। कुछ कथाएँ तो उनके द्वारा लायी गयी थीं और कुछ उनके भारत जाने के बाद विकसित हुईं। माण्डाकर आगे लिखते हैं कि यह संभव है कि वे अपने साथ क्राइस्ट नाम भी ले आये

१- (ब) ता वा वास्तुन्युष्मसि गमथ्ये । क्व गावो भूरिर्ह्मा ब्यासः ।

अत्राह तदुहगायस्य कृष्णः परमं ज्ञप्समाति भूरि ॥

- ऋग्वेद १ । १५४ । ६

(ब) वासपत्नी बहिगोपा बतिष्ठत । - ऋग्वेद १। ३२। ११

(स) तमेतदाधार यः कृष्णासु रोहिणीषु । - ऋग्वेद ८।६३। १३

२- दूर और उनका साहित्य- डा० हरेश साह शर्मा पृ० १२५

३- Vaishnavism, Saivism and other minor religious sects,  
Dr. R.G. Bhandarkar, page 37.

हों और संभवतः यही नाम वासुदेव-कृष्ण के साथ भारत वर्ण में बाल देवता के स्वीकरण का कारण हुआ हो।

महाभारत के "मौसल पर्व" अध्याय ७ में बाभीरों के सम्बन्ध में एक कथा आती है जिस के अनुसार अर्जुन वृष्णि वंश के समाप्त हो जाने पर उस वंश की स्त्रियों को जब आका से कुरुक्षेत्र ले जा रहे थे, तो बाभीरों ने उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। बाभीर लूटेरे और सैन्धव बताये गये हैं जो पंचनद देश में रहते थे। विष्णु पुराण में बाभीरों को कोंकण और सौराष्ट्र के निवासी बताया गया है। पहले तो बाभीर कहाते थे, फिर वे पंचाब से मथुरा सौराष्ट्र और काठियावाड़ तक फैल गये। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वान् अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा अब यह सिद्ध कर चुके हैं कि बाभीर जाति कहीं बाहर से नहीं आयी थी और ईसा के पूर्व भी वह जाति भारतवर्ण में विद्यमान थी। गोपाल कृष्ण तथा बालकृष्ण वाली कथाओं का समावेश वासुदेव के साथ इन बाभीरों द्वारा किया गया।

परन्तु प्रस्तुत लेख को गोपाल कृष्ण की कथाओं की उत्पत्ति के विषय में वस्तु-स्थिति ऊपर दिये गये विद्वानों के विभिन्न अनुमानों से भिन्न मान्यता पड़ती है। तमिल साहित्य के संघर्ष काल की रचना तोलकाप्पियम ( ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी ) और संघ काल की रचनाओं में ( ईसा की दूसरी शताब्दी तक ) तमिल-प्रदेश के पाँच भिन्न भू-भागों और उनके अधिदेवताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। मुल्ले-प्रदेश ( वन-भूमि ) में गोचारन के व्यक्तताय में संलग्न "वायर" कहलाने वाले ग्वाला लोग रहते थे और उनके देवता "मायोन" थे। संघ-साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये "मायोन" वायर लोगों के बाल-देवता थे। उस समय इस बाल देवता से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ जनता के बीच में प्रचलित थीं, जिनका वर्णन संघ साहित्य में मिलता है। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय "वायर" कहलाने वाले लोग अपने बाल देवता की लीला वाली कथाओं का अभिनय नाटकादि में करते थे। "वायर" लोगों के बीच में ऐसे अनेक नृत्यों की परि-पाटी थी, जो उनके अनुसार उनके बाल देवता ने अपने बाल्य जीवन में किये थे।



हम ऊपर कह जाये हैं कि ईसा से कुछ शताब्दी पूर्व ही वार्थी का दक्षिण में वर्मा प्राचीन तमिल-प्रदेश में वागमन हुआ । महाभारत द्वारा प्रचारित भागवत धर्म का भी दक्षिण की ओर गमन हुआ । नासिक में प्राप्त "नानाघाट" के शिलालेख से स्पष्ट है कि ईसा से पूर्व ही "भागवत धर्म" दक्षिण में पहुँचा । कृष्णा जिले के "बास्ना" नामक शिलालेख से भी यही प्रकट होता है ।<sup>१</sup> अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि ईसा के पूर्व तथा ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में तमिल-प्रदेश में वैदिक संस्कृति से भिन्न एक तमिल-संस्कृति विद्यमान थी और उनका समाज काफी सम्य था । ईसा-पूर्व की शताब्दियों में उत्तर से जानेवाली वैदिक संस्कृति और तमिल-प्रदेश की द्राविड़ संस्कृतियों में मिलन हुआ । उत्तर से जानेवाले अपने साथ वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और गीता के विचारों को लेते जाये । ( स्मरण रहे कि उनके वासुदेव-कृष्ण में बाल कृष्ण का रूप नहीं था । ) यह मान्य बात है कि जब दो संस्कृतियों में मिलन होता है तब बहुत सी बातों में समन्वय और वादान-प्रदान होना स्वाभाविक है । परिणाम स्वरूप तमिल-प्रदेश के ( वैदिक परंपरा से भिन्न ) देवताओं और अनेक वैदिक देवताओं में स्वीकरण हो गया । तमिल-प्रदेश के मायीन, मुरुगन, कोट्टवे, शिवन आदि देवताओं को वैदिक देवताओं से मिला लिया गया । मुल्लै प्रदेश के देवता मायीन ( जो बाल देवता थे ) का वैदिक देवता विष्णु से बहुत कुछ साम्य था । इसलिए मायीन और विष्णु-कृष्ण का स्वीकरण संगत और स्वाभाविक था । यहाँ पर स्पष्ट कह देना आवश्यक है कि उत्तर से जाने वाले लोगों के देवता, महाभारत और गीता के वासुदेव-कृष्ण का ही जिसमें गोपाल-कृष्ण का वंश नहीं था, तमिल प्रदेश के "मायीन" बाल-देवता ) से हुआ । दूसरे शब्दों में तमिल-प्रदेश के "जायर" कह-लाने वाले म्बाला लोगों के इष्टदेवता "मायीन" का स्वीकरण "महाभारत" के कृष्ण से हुआ । क्योंकि दोनों में अनेक बातों में साम्य था ।

यह कहा जा चुका है कि मुल्लै-प्रदेश में "जायर" लोगों के बीच

१- Early History of the Vaishnava Sect,  
Hemachandra Ray Choudhuri  
page 108.

“मायोन” के बाल्य-जीवन से सम्बन्धित कथाएँ प्रचलित थीं। महाभारत के कृष्ण का “बाबर” लोगों के बाल देवता से उद्दीकरण होने पर “मायोन” की बाल लीला सम्बन्धी बहुत सी कथाएँ महाभारत के कृष्ण की कथाओं से मिल गयीं, और उसी प्रकार महाभारत के कृष्ण की कथाएँ “मायोन” की कथाओं से मिल गयीं। इस घटना के पश्चात् की तमिल-रचनाओं में “मायोन” के विषय में महाभारत आदि की कथाओं का प्रचुर मात्रा में प्राप्त होना भी उक्त स्थिति को पुष्ट करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों संस्कृतियों के मिलन के बाद ही वर्तमान कृष्ण के रूप की स्थापना हुई। ऐसा लगता है कि वर्तमान कृष्ण के जीवन का उत्तरार्ध महाभारत के कृष्ण का है। और पूर्वार्ध बहुत अंश में तमिल के देवता “मायोन” का है। दोनों संस्कृतियों के सम्मिलन के फलस्वरूप दोनों के देवताओं में होने वाले स्वीकरण से तमिल के “मायोन” में महाभारत के बासुदेव कृष्ण का अंश आ मिला और महाभारत के कृष्ण के साथ मायोन का बाल-रूप जुड़ गया। तमिल-साहित्य में “मायोन” के स्थान पर ईसा के पश्चात् की कृतियों में “कन्नन” शब्द का प्रयोग होना भी इसी स्थिति को पुष्ट करता है। प्रस्तुत लेख का विचार है कि “कन्नन” शब्द तमिल में “कृष्ण” (कन्हैया) से आया होगा। कृष्ण का रंग स्थान वर्ण

१- प्रसिद्ध तमिल विद्वान् एम० रायन बर्कशार का मत है कि बाब तमिल-प्रदेश में प्रचलित महाभारत और भागवत की कथाएँ स्पष्ट रूप से बहुत बाद की हैं। तमिल-भूमि में उत्पन्न कन्नन कथाएँ जिनका विवरण प्राचीन तमिल साहित्य में मिलता है, तमिल-प्रदेश में बाब प्रचलित महाभारत और भागवत की कृष्ण कथाओं की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं- “बाराचि तोरुति”।

- एम० रायन बर्कशार पृ० ५५

२- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी कथन है कि “यह बात सर्व सम्मत है कि कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक, जैनिक आर्य-अर्य धाराओं के मिश्रण से बना है।”

- मूर साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ११ ई० १९६६

बताया गया है। तमिल का 'मायीन' शब्द कालि जम्बा नीले रंग को सूचित करता है। बाय लोग तमिलों (द्रविड़ों) को कालि रंग वाले कहते थे। अतः तमिलों के देवता 'मायीन' के रंग को कृष्ण द्वारा जमाना भी कृष्ण-मायीन के स्वीकरण को पुष्ट करता है।

लेखक की समझ में, विद्वानों ने 'वाभीर जाति' का जो उल्लेख किया है, वास्तव में यह तमिल-प्रदेश की 'वायर' जाति थी। 'वायर' ग्वाल्ले होते थे। पुराणों में उन्हीं को 'वाभीर' कहा गया है। वाज कहीर शब्द 'वाभीर' शब्द के ही किड़े हुए रूप में मिलता है। 'कहीर' शब्द ग्वाल्ले के लिए ही प्रयुक्त होता है। कौटिल्य का विषय है कि 'वायर' शब्द वाज भी ग्वाल्ले के लिए ही प्रयुक्त होता है। तमिल में 'वा' का अर्थ है 'गाय'। यह साम्य भी ध्यान देने योग्य है।

कृष्ण के बाल-जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक कथाओं की जन्म-भूमि तमिल-प्रदेश है। कृष्ण की बाल-लीलाओं से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथाएँ जो ईसा के अनन्तर के संस्कृत ग्रन्थों में मिलती हैं वे पहले से ही तमिल-प्रदेश में प्रचलित थीं, मते ही वे कुछ भिन्न रूप के में हों। ऐसी कथाएँ भी कृष्ण के सम्बन्ध में वाज भी तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं जो संस्कृत-साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। (उनका विवरण जगें दिया जायगा।)

१- यह भी दृष्टव्य है :

“डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का विचार है कि बायों के सूर्यनाचक देवता विष्णु, भारत में जाकर द्राविड़ों के एक वाकाश-देव से मिल गये जिसका रंग द्राविड़ों के अनुसार वाकाश के ही सदृश्य नीला जम्बा श्याम था। तमिल भाषा में वाकाश को 'विन्' भी कहते हैं जिसका विष्णु शब्द से निकट सम्बन्ध हो सकता है।”

- श्री रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय पृ० ६०

२- “बायों ने द्राविड़ों से ही कृष्ण (कन्नन) सम्बन्धी कथाओं का परिचय प्राप्त किया होगा-” Dr. Vidhyasandam, "Tamilar Sabba" page 128. (Ceylon University, 1954)

### राधा का विकास-

संस्कृत साहित्य में गोपाल कृष्ण की प्रधान <sup>प्रेयसी</sup> राधा का वर्णन बहुत बाद में मिलता है। महाभारत, हरिवंश पुराण, स्कन्द पुराण, विष्णु पुराण आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं है। माघ के नाटकों में जहाँ कृष्ण की चर्चा है, वहाँ राधा का नाम नहीं आता। सभी प्राचीन ग्रंथों में कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन है, गोपियों का वर्णन है, परन्तु राधा का कहीं उल्लेख नहीं है। सबसे पहले हात की गाथा सप्तद्वै में राधा का उल्लेख मिलता है। हात ( सात्वत ) जंता की प्रथम शताब्दी में प्रतिष्ठानपुर में राज्य करता था और उसने अपने समय में सामान्य लोक में प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संकलन कराया था। ये गाथाएँ गोप-गोपियों की प्रेम-लीलाओं पर लिखी गई थीं। परन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि गाथाओं का वर्तमान रूप इठी शताब्दी का है। और राधा का नाम इनमें इठी शताब्दी में आया। वैद्य चौथी शताब्दी और उसके पश्चात् कुछ शिलालेखों में कृष्ण लीला के अंकन मिलते हैं, जिनमें एक विशेष गोपी को कृष्ण के साथ उत्कीर्ण किया गया है। मन्दसौर के प्रसिद्ध स्तम्भों में भी यह अंकन मिलता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का अनुमान है कि पाँचवीं शताब्दी के लगभग राधा का स्वरूप निर्धारित हो गया था और कृष्ण लीला में राधा को पूरा महत्व दिया जाने लगा था। ८ वीं शती में " वैष्णवी संहार " नाटक ( भट्ट नायक कृत ) लिखा गया। उसमें प्रारम्भ में नान्दी पाठ में राधा का प्रथम बार कृष्ण की प्रियतमा के रूप में निश्चित रूप से उल्लेख मिलता है।

भागवत पुराण में कृष्ण की एक विशिष्ट गोपी की चर्चा है<sup>१</sup> किन्तु उस गोपी का नाम राधा है, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

१- कन्याऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः

यन्मोविहाय गोविन्दे प्रीतीयामन्यद्गुरुः ॥



मात्रुम पड़ता है कि किसी एक विशेष गोपी का महत्व बढ़ रहा था, लेकिन उसका नाम राधा बाद में पड़ा। परवर्ती संस्कृत साहित्य में तो राधा का प्रचुर उल्लेख है। और उसके बाद तो जयदेव, और जयदेव के बाद विद्यापति, चण्डीदास और सुरदास का काव्य राधापरक है ही।

राधा के वाकिर्भाव के विषय में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - " जिस प्रकार वासुदेव और दाकावासी कृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व से उठकर परम-देवता के वासन पर पहुँचे हैं, राधा में इस प्रकार के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का कोई लक्षण नहीं पाया जाता। गोपियों में तो यह है ही नहीं, फिर भी की बात यह है कि मागवत, हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थ जो गोपाल-कृष्ण की कथाओं के उत्स हैं, उनमें भी राधा का नामोल्लेख नहीं पाया जाता। — यह भी देखा जाता है कि राधा की भक्ति का नया स्वरूप वशिष्ठ से आता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर दो तरह के अनुमान किये जा सकते हैं - (१) राधा बाम्नीर जाति की प्रेम-देवी रही होगी, जिसका सम्बन्ध बाल कृष्ण से रहा होगा। बाल्य में केवल बालकृष्ण का वासुदेव कृष्ण से स्वीकरण हुआ होगा। इसलिए बाल्य ग्रन्थों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे से जब बाल कृष्ण की प्रधानता ली गई होगी तो इस बालक देवता की सारी बातें खीरों से ली गई होंगी। इस प्रकार राधा की प्रधानता ली गई होगी। (२) दूसरा अनुमान यह किया जा सकता है कि राधा इसी देश की किसी बार्ह-पुर्व जाति की प्रेम-देवी रही होगी। बाद में बार्हों में उनकी प्रधानता ली गई होगी और कृष्ण के साथ इनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया होगा। "

प्राचीन तमिल साहित्य में उपलब्ध "मायोन" तथा "कन्नन्" (कृष्ण) से सम्बन्धित कथाओं को देखने से पता चलेगा कि डा० साहब का उपर्युक्त अनुमान सत्य की कोटि में आता है। तमिल में "मायोन" से सम्बन्धित कथाओं

---

१- सूर साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १६-१७ (संशोधित संस्करण)

में "कन्नन" (कृष्ण) के साथ उसकी प्रधान प्रेमिका नप्पिन्नी का भी वैसा वर्णन मिलता है जैसा बाद के संस्कृत-साहित्य में कृष्ण और राधा का। तमिल में जहाँ कहीं भी "कन्नन" का वर्णन मिलता है, वहाँ अवश्य नप्पिन्नी का उल्लेख मिलता है। उनकी प्रेम-लीलाओं की कथाएँ प्रारम्भ से ही अनन्तता के बीच में प्रचलित थीं। जब दो संस्कृतियों में (वैदिक और तमिल) सम्मिलन हुआ और "मायीन" की बाल-लीलाओं के वायुदेव-कृष्ण के साथ मिलने पर गोपात कृष्ण का रूप स्थिर हुआ, तब "मायीन" की प्रेमिका नप्पिन्नी और उन दोनों की प्रेम-क्रीड़ाओं का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक स्त्री को कल्पना हुई होगी और उसका नाम बाद में राधा पड़ा होगा। कृष्ण और राधा की जो प्रेम-लीलाओं की कथाएँ बाद के संस्कृत ग्रन्थों में मिलती हैं, वही कन्नन और नप्पिन्नी की कथाओं के रूप में प्राचीन तमिल साहित्य में और बाद में बाल्यार-साहित्य में मिलती हैं। केवल व्यक्तियों के नाम में अन्तर है। व्यक्तित्व बहुत कुछ समान है। कुछ लोग "राधा" शब्द को लेकर राधा का अस्तित्व वेद तक में ढूँढते हैं और जोर कल्पनाएँ कर बैठे हैं। नाम से व्यक्तित्व का विकास

१- कुछ लोगों की धारणा है कि "वाराधिताः" शब्द से राधा की उत्पत्ति हुई। जो वाराधना करती है, वही राधा है। बृहद संहिता में राधा शब्द की उत्पत्ति इसी प्रकार दी गयी है। (बृहद संहिता, द्वितीय पद व० ४१ श्लोक पृ० १७४) ऋग्वेद में "राधा" शब्द का को सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। (ऋग्वेद १।१५६।५) अथर्व वेद में (३०।७) जहाँ "राधो विशाते" आता है, वहाँ "राधा" शब्द अमरकोश के अनुसार नदात्र को सूचित करता है।

व्यक्ति के नाम के रूप में "राधा" शब्द का प्रयोग बाद में ही मिलता है। शौम्येव कृत "यास्तिसका" (७; २६) की धनकीर्ति वाली कथा में राधा नाम से एक स्त्री आती है। ६ वीं शताब्दी के पूर्व की प्रसिद्ध महायान-पुस्तक "ललित विस्तार" में "राधा" नाम से एक स्त्री का उल्लेख है।



ही अधिक महत्वपूर्ण है। जहाँ तक "राधा" के व्यक्तित्व से सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि राधा के विकास में तमिल के "मायोन" जवा "कन्नन" की प्रियतमा नप्पिन्ने का सम्बन्ध अवश्य था। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि चूंकि तमिल में "राधा" शब्द नहीं मिलता, इसलिए राधा का सम्बन्ध नप्पिन्ने से कैसे बैठ सकता है। इसके उत्तर में यह कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार तमिल में कृष्ण के लिए अन्य शब्द बाध भी प्रचलित हैं, उसी प्रकार उस समय नप्पिन्ने शब्द बाध की "राधा" के लिए प्रयुक्त था<sup>१</sup>। शिलप्पधिकारम् ( ईसा की दूसरी शताब्दी ) में उल्लेख मिलता है कि कन्नन- मन्दिरों में कन्नन और नप्पिन्ने की युगल मूर्ति विद्यमान रहती थी<sup>२</sup>।

सभी विद्वान् यह मानते हैं कि बाध राधा और गोपाल कृष्ण के व्यक्तित्व का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उसके विकास में पुराणों का बड़ा हाथ है। राधा और कृष्ण की कथाएँ पुराणों में ही अधिक वर्णित हैं। पुराण शब्द का अर्थ है "पुराना" इसलिए पुराण ग्रन्थों से मतलब उन ग्रंथों से है जिनमें प्राचीन वात्स्यायिकार्य संगृहीत हों। जो बातें और कथाएँ लोक में बहुत प्रचलित और प्रसारित होती हैं, वे ही पुराणों में रचयिता की कल्पना का भी सहारा लेकर स्थान पाती हैं। तत्कालीन लोक में प्रसिद्ध कहियों और प्रथाओं का वर्णन पुराणों में हुआ है। ये पुराण विभिन्न कालों की रचनाएँ हैं। पुराणों की लोक-संस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि इसलिए होती गई है। इनका संकलन भी विभिन्न कालों में हुआ। जो लोक- विश्वास और लोक कथाएँ और परंपराएँ बहुत प्रचार की जाती हैं, उनको पुराणों में समय समय पर स्थान अवश्य

---

१- "We venture to conjecture, that Nappinnai is the Tamil name of 'Radha'." — V.R.R. Dikshitar "Krishna in early Tamil Literature" in "Indian Culture", vol. IV. (1937-38) page 269.

२- शिलप्पधिकारम् ५ - १७१- १७२

३- हिन्दी साहित्य की मुद्रिका - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १६३ सं० छठा

मिला है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में कहाँ तक कहा गया है कि जनता में जो रीति-रिवाज है, उसको वेद-वाक्य से भी अधिक मान्यता देनी चाहिए<sup>१</sup>। अतः जैके पुराणों में मिलनेवाली कथाओं का स्रोत लोक-कथाओं में ही देखने को मिलता है, जो स्वयं किसी न किसी प्रथा, कथा रुढ़ि पर आधारित होता है<sup>२</sup>।

उपलब्ध पुराणों में एक दो को छोड़कर बहुत से पुराणों की रचना जैसा के पश्चात् हुई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण को तो कुछ विद्वान् सीताजी की रचना मानते हैं, जिसमें राधाकृष्ण की केसि-श्रीहावी कथा शृंगारिक चैष्टाओं का वर्णन है। इन पुराणों में वर्णित कथाओं को देखने से ऐसा लगता है कि बहुत से पुराणों की रचना दक्षिण में हुई है, और दक्षिण में विशेषकर तमिल-प्रदेश की प्रथाओं, लोक कथाओं आदि का परिवर्तित चित्र इनमें मिल जाता है। गोपात कृष्ण और राधा की सीताजी से सम्बन्धित दो कथाएँ इनमें हैं, उनका स्रोत जैसा पूर्व कथा जैसा की प्रारम्भिक शताब्दियों तमिल समाज में प्रचलित कथाओं में दीख पड़ता है, जिसके प्रमाण उस समय के तमिल-साहित्य में मिलते हैं। कन्नन और नम्पिन्नी (कृष्ण और राधा) से सम्बन्धित ऐसी कथाएँ भी बाब तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं जो पुराणों में नहीं मिलतीं। (इका विवरण बागे दिया जायगा)।

राधा-कृष्ण सम्बन्धी कथाओं की बन्ध-धुमि दक्षिण (तमिल-प्रदेश) की मानने का एक और प्रमाण यह है कि इन कथाओं का भी समावेश दक्षिण में उपलब्ध महाभारत के संस्करणों तक में मिल जाता है। श्रीमद्-

१- तथा पि कुशलप्रसन्नं संप्रसन्नं समयोचितम् ।

लौकिकी व्यसहारो पि वेदेभ्यो कर्त्तव्यस्तथा ॥

- ब्रह्मवैवर्त पुराण , कृष्ण बन्ध सप्त १२६।४२

२-

"The Brahma Vivarta Purana reads more like a treatise on ecoties than a religious scripture and it frequently refers to the authority of popular customs as of greater validity than Vedas." - Vishnuite Myths and legends, Dr. Banikanta Kakati, page 77.

३-

"The Southern recension of the Mahabharata contains many interpolations. ...." Dr. R.S. Bhandarkar, Vaishnavism, Saivism, etc., page 50 foot note.

भागवत जिसकी विद्वान् समस्त हिन्दी-कृष्ण-काव्य का आधार-स्तम्भ मानते हैं, उनके विद्वानों के अनुसार वाठवीं नवीं शताब्दी के बाद की रचना है। उसमें वर्णित गोपाल कृष्ण की कथाएँ तमिल-समाज में प्रचलित कन्नड सम्बन्धी कथाओं से बहुत मिलती जुलती हैं। उनके विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना दक्षिण में हुई थी। विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना दक्षिण के मल्लवार-प्रदेश में (तमिल नाडू का पश्चिम भाग) हुई थी। क्योंकि उसमें वर्णित वृषा, पुष्य आदि वृन्दावन में नहीं मिलते, बल्कि मल्लवार में मिलते हैं<sup>१</sup>। कहने का तात्पर्य यह है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जो कथाएँ तमिल-लोक में प्रचलित थीं, वे ही कथाएँ कुछ परिवर्तन के साथ पुराणों में देने को मिलती हैं। बाद में वैष्णव-संप्रदायों के वाचार्यों ने अपने अपने संप्रदाय के अनुसार इन पुराणों में घटा-बढ़ी की और उनमें वर्णित बातों की पुष्प-पुष्प व्याख्या की।

प्रस्तुत लेख, गोपाल कृष्ण और राधा के व्यवस्थितत्व के विकास में तमिल की देन के आधार के रूप में प्राचीन तमिल साहित्य में मिलने वाले जिन विवरणों तथा कथाओं को मानने के लिए बाध्य होता है, उनमें प्रसूत कुछ का परिचय नीचे दिया जाता है।

प्राचीन तमिल साहित्य में "पायोन" (कन्नन) के विषय में इस प्रकार का वर्णन मिलता है :- "मुल्ल-प्रदेश के अधिपति 'पायोन' का राजा 'स्याम' है। वह जागर कहलाने वाले ग्वालों का अधिपति था। उसकी संपत्ति गौधन थी। वह वनभूमि में गायों को चराने जाता था और वह नीत गाथा करता था। और 'कुल्ल' (बांसुरी) बजाता था। तमिल की वनभूमि में बांस की कमी नहीं थी। कतः ॐॐॐॐॐॐ उससे अच्छी बांसुरियाँ बनायी जाती थीं।

१- "Among the puranas, the Bhagavata was composed somewhere in South India about the beginning of 10th Century." Prof. K. A. Nilakanta Sastri, History of South India, page 332. (2nd edition)

२- (ब) हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा० स्यारी प्रसाद त्रिवेदी

(वा) दूर और उनका साहित्य - डा० हरबल्लल शर्मा पृ० १४०

३- मुल्लेपाट्ट १०- २१

वह बांसुरी बजाकर न केवल पशुओं को भी आकर्षित करता था, बल्कि ग्वालिनों को भी। प्रेम झीड़ाजों के लिए वनभूमि में बहुत सुविधाएँ होती थीं। क्योंकि उस प्रदेश के वासी केवल गोचारण करते थे और उनके पास उन झीड़ाजों के लिए अकाल था। 'मायोन' की रुचि गीत के साथ नृत्यों में भी थी। वह ग्वाल-रम-णियों के साथ नृत्य भी करता था।

कन्नन की पत्नियों में नप्पिन्ने का तमिल-कृतियों में विशेष उल्लेख है। वह कन्नन की प्रधान प्रेमिका थी और 'जायर' कुलोत्पन्ना थी। उसे कुछ कृतियों में 'पिन्ने', कच्चा नीला कहा गया है। बाद के ग्रंथों में जहाँ कन्नन को विष्णु का अवतार माना जाता है, वहाँ नप्पिन्ने को लक्ष्मी का अवतार माना जाता है। ~~वहाँ नप्पिन्ने को तत्कालीन तमिल प्रथा के आधार पर प्राप्त किया था।~~ इस प्रथा के अनुसार पहले कुमारी कन्याएँ अपनी इच्छा से वीर युवकों को पति के रूप में, स्वयं वरण करती थीं। इसे 'एरुवतुवुदल' कच्चा 'वृण वलीकरण' कहते हैं। यह वीरता की परीक्षा के लिए एक प्रथा थी। एक घेरे के अन्दर कुछ बलवान् सोंठों को बन्द कर दिया जाता था। फिर बाजे बजाकर तथा दूसरे उपायों से उन्हें मड़काया जाता था। फिर सोंठों को दिाप्रता से बाहर जाने दिया जाता था। रास्ते में वीर युक्त रहते थे। उनका काम था, अपनी बाहुबल से सोंठों को वल में लाना। जो इस काम को पूरा कर लेते थे, वे वीर समझे जाते थे और उन्हीं के गले में कुमारियाँ वय-माला डालकर अपनी लिए वर चुन लेती थीं। प्राचीन तमिल-कृतियों में और बाद वालवार साहित्य में जौक स्थलों में इस कथा का वर्णन है कि बलवान् मुंजाजों के वल पर श्रीकृष्ण (कन्नन) ने सात वृणमों को वल में कर कन्या-शुल्क के रूप

१- यह प्रथा आज भी तमिल-प्रदेश के गांवों में किसी ढंग में प्रचलित बतायी जाती है :

"It seemed in a way, a test for a man to be fit husband for a lady. The rearing of bulls and letting them loose with some prize for the captor have become a regular social and popular amusement which persists even to this day in the Tamil districts." "Indian Culture", Vol. IV. V. R. A. Dikshitar, page 270-271



में गोप-बाता नप्पिन्ने की प्रिया के रूप में प्राप्त किया था<sup>१</sup>।

प्राचीन तमिल-साहित्य में ऐसे लोक नृत्यों का वर्णन मिलता है जो कन्नन और नप्पिन्ने द्वारा किये गये बताये गये हैं। कन्नन और नप्पिन्ने की लीलाओं में उनके नृत्यों का उल्लेख है। संक्षेप-साहित्य से मालूम होता है कि ये कथार्थ तत्कालीन समाज में बहुत प्रचलित थीं और उनका अभिनय "वात-चरित" नाटक के रूप में होता था<sup>२</sup>। "शिलप्पधिकारम्" के "वायवियर कूरुवे" प्रसंग में इसी प्रकार के नृत्यों का वर्णन है, जिसका अभिनय "वायवकूल" में होता था। इन नृत्यों में प्रमुख "कूरुवे कूट्टु" है। "शिलप्पधिकारम्" में "कूरुवे कूट्टु" के सम्बन्ध में कहा गया है कि बात ना ग्वालिनैं एक दूसरे का हाथ फाड़कर नाचती थीं<sup>३</sup>। उनके अनुसार विष्णु-बाधाओं को दूर करने के लिए उन्हें दृष्ट देवता कन्नन

भागवत पुराण में

१- ऐसा ही प्रसंग बताया है कि कौसल देश के राजा नाग्नजित् ने अपनी कन्या नाग्नजिती का विवाह सात गोवृणों को दत्त करने वाले के साथ निश्चय किया था। कृष्ण ने ऐसा ही करके नाग्नजिती के साथ विवाह किया।

कैशिक- तत्स्यस्त्याभवत् कन्या देवी नाग्नजितीनृप।

नतश्चिह्नं पा वोढुमजित्वा सप्तगोवृणान् ॥

- भागवत पुराण १०।५८। ३१-३२

२- "Sentanil", vol. 8. page 171-172.  
M. Raghava Sengar.

३- इसका साम्य भागवत पुराण में (१०, ३३) में वर्णित रास लीला से हो जाता है। हरिवंश पुराण (२, ६८) में भी रास लीला का वर्णन है। डा० बनिकान्त काफ़ी ने अपने ग्रन्थ "विष्णुष्ट मैत्र एण्ड लेजण्ड्स" (पृ० ४१ से ६५) में रास लीला की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि लोक स्थानीय (local customs) का मिलित रूप ही रास-लीला में मिलता है। रास-लीला की उत्पत्ति के लिए सहायक जिन प्रथाओं का डा० काफ़ी ने अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है, वे सभी प्रकार प्राचीन तमिल-समाज में प्रचलित थीं। अतः प्राचीन तमिल-साहित्य में कन्नन तथा ग्वालिनों के नृत्य इत्यादि का जो विवरण मिलता है, उनका रासलीला से सम्बन्ध सिद्ध होता है।

से प्रार्थना करते समय उस नृत्य का करना आवश्यक था। उनके बीच यह प्रसिद्ध था कि कन्नन ने एक बार वही अग्रज बलराम और प्रेयसी नप्पिन्ने की लेकर यह नाच नाचा था। 'मणिमैलै' में भी इस 'कूटे कूटू' का उल्लेख है। ( मणिमैलै, १६, ६५-६६ )।

कन्नन से सम्बन्धित एक दूसरे नृत्य का नाम 'कूट कूटू' है जिसमें 'वायर-कूट' के नर-नारी भाग लेते थे। यह कलश की छिर पर रखकर किया जाने वाला नृत्य है। यह नृत्य बहुत प्रचलित था। 'शिल्पधिकारम्' में कन्नन द्वारा किये गये ११ प्रकार के नृत्यों का विवरण मिलता है। कहा गया है कि 'कूटकूटू' का नृत्य कन्नन ने अनिरुद्ध को कैद करने वाले बाणासुर का बध्कर लौट आते समय सोनगर ( सोनितपुर ) की गली में किया था। कन्नन ( कृष्ण ) से सम्बन्धित दो और नृत्य, 'वल्लीवाडल' और 'मल्लाडल' हैं। 'मणिमैलै' में कन्नन द्वारा किये गये 'पेडु' नामक नृत्य का भी वर्णन है। ( मणिमैलै ३, १२३-१२५ )।

कहने का तात्पर्य यह है कि कन्नन से सम्बन्धित तथा कन्नन-नप्पिन्ने ( कृष्ण-राधा ) की प्रेम-लीलाओं से सम्बन्धित क्यारै प्रचुर मात्रा में प्राचीन तमिल-कृतियों में मिलती हैं जिनका समावेश बाद में आत्मार मयतों की रचनाओं में भी हुआ है।

---

१- *Tamil Literature and History*, V. R. R. Dikshitar, page, 293.



### मभित-बान्दोलन का उदय और

### तमिल-प्रदेश की तत्कालीन परिस्थितियाँ-

तमिल साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल मभित-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी काल में ही प्रसिद्ध वैष्णव-भक्त-कवि वाल्मीकि और शैव भक्त कवि नायनमार हुए थे। इस काल में तमिल में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह पूर्णतः मभित-साहित्य है। ऐसा मानना पड़ता है कि इस युग में मभित-विषय की होकर और कोई विषय कवियों के लिए रह ही नहीं गया था। भारत की विभिन्न वास्तुनिक भाषाओं के साहित्यों के इतिहासों को देखते से पता चलेगा कि तमिल की होकर किसी भी वास्तुनिक भारतीय भाषा में दसवीं शताब्दी के पूर्व मभित-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ था। अधिकांश भारतीय भाषाओं में तो पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग ही मभित-साहित्य का निर्माण हुआ है। तमिल-साहित्य के विषय में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का साहित्य मभित-भावना से परिपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि नवीं शताब्दी के पश्चात् तमिल में मभित-साहित्य का सर्जन ही नहीं हुआ ही। बल्कि तो तमिल में मभित की धारा वारम्भ से ही बही है और नवीं शताब्दी के उपरान्त भी मभित-प्रधान कृतियों का सर्जन हुआ और यही क्यों, बाव भी हो रहा है। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल को मभित-काल कहने का अर्थ यही है कि इस काल के साहित्य में मभित-भाव की जो प्रमुख स्थान मिला वह बाद के साहित्य में प्रमुख नहीं रहा, बल्कि गौण रहा।

यह तो मान्य बात है कि किसी भी युग का सम्बन्ध उसके पूर्व युग से अवश्य होता है। क्योंकि उस युग की प्रवृत्तियों की मूल-प्रेरणा उसके पूर्ववर्ती युग से ही मिलती है। तमिल-प्रदेश में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में जो मभित-बान्दोलन अपने चरमोत्कर्ष रूप में दीप्त पड़ता है, उसके

बीज तो इठी शताब्दी के पहले ही मिल जाते हैं। संप्रकाश ( ईसा से दो शताब्दी पूर्व से ईसा की दूसरी शताब्दी तक ) की कृतियों का परिचय देते समय यह दिखाया जा चुका है कि तमिल-प्रदेश में धार्मिक-भावना का उदय पहले से ही हो चुका था और विभिन्न धर्म ( विभिन्न देवताओं को लेकर ) फल रहे थे । तिरुमास ( विष्णु ) और शिव की पूजा विशेष रूप से होती थी और अन्य देवताओं की पूजा भी होती थी । परन्तु इस साहित्य में कहीं भी यह देखने को नहीं मिलता कि अपने धर्म या देवता को महत्व देने और उसका प्रचार करने की दृष्टि से कवि ने एक पक्ष को लेकर अपने विचारों को प्रकट किया हो । इस समय का कवि उच्च और व्यापक धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देता है। जहाँ वह अपने इष्ट देवता का वर्णन करता है, वहाँ अपने प्रदेश ( तमिल-प्रदेश ) के अन्य देवताओं के विषय में भी कहदा नहीं भूलता । इस युग के कवि के लिए काव्य के वर्ण्य विषय दो ही थे- प्रेम और वीरता । कवि ने जन-मनोरथनाथ ही काव्य का सर्वन किया और उसने कहीं कहीं प्रसंगवश धर्म का नाम लिया है। उसकी दृष्टि में धर्म के नाम पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए काव्य की आवश्यकता नहीं थी । किन्तु ईसा की तीसरी, चौथी और पाँचवीं शताब्दी में बात कुछ दूसरी थी । तमिल साहित्य के इतिहास में इस काल को संघोषर काल कहा जाता है। संघ-काल की समाप्ति दूसरी शताब्दी तक माननी चाहिए । इसके पश्चात् तमिल में जो साहित्य मिलता है, वह प्रायः जैन और बौद्ध मुनियों द्वारा रचित है। अतः इस मभित-पूर्व-काल को संघोषर काल जम्मा बौद्ध-जैन-काल कहा जाता है। इस काल में जैनों और बौद्धों ने लोक महाकाव्यों की रचना की । प्रारम्भ में तो उनका उद्देश्य केवल साहित्य-सर्वन ही रहा । परन्तु धीरे-धीरे धर्म-प्रचार का उद्देश्य प्रबल होता गया तो उन्होंने धार्मिक प्रचारार्थ ही साहित्य का सर्वन करना शुरु कर दिया । और मभित-काल के प्रारम्भ में तो शैव और वैष्णव-धर्मों का लपटन मात्र उनका उद्देश्य रह गया ।

कैसे तो जैनों और बौद्धों का आगमन तमिल-प्रदेश में इस काल से पहले ही हो चुका था । ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में बौद्ध

बीर जैन मत तमिल-नाडु में फैल चुके थे। जैन-पाठावलिखी में प्राप्त इतिवृत्त के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल में जैनियों में बाध में फूट हुई बीर जैनियों के दो दल हो गये। एक दल, जिन्हें दिगम्बर कहा जाता था, के नेता मद्रबाहु थे। मद्रबाहु पहले माघ में रहे। लेकिन जब वहाँ बारह वर्ष का काल हुआ तो वे माघ को छोड़कर दक्षिण की ओर जाये और वासिर अवणवेल्लोला ( मयूर ) में जाकर रहने लगे। संघ साहित्य में जैनियों के तमिल- प्रदेश में आ जाने के संबंध में पर्याप्त प्रमाण है। "मणिमैल्ल" में जैन विहारों का वर्णन मिलने से पता चलता है कि उससे पूर्व ही बौद्ध- जैन मतों का प्रचार शुरू हो चुका था।

सम्राट् अशोक के समय में दक्षिण में बौद्ध- धर्म का प्रचार विशेष रूप से हुआ। प्रारम्भ में तमिल-प्रदेश में बौद्ध- धर्म का कुछ विरोध हुआ, खास दीक्ष पड़ता है। ईस्वी पूर्व २०६ के बाद अशोक ने जैन प्रचारकों को बौद्ध- धर्म के प्रचारार्थ सुदूर दक्षिण में भेजा। पहले बौद्ध- भिक्षुओं ने तमिल-प्रदेश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे 'कोई' नामक स्थान में अपने मत का प्रचार बीर से किया। बौद्ध- धर्म का प्रचार तमिल- प्रदेश के इतिहास में विकास- स्तम्भ ( Milestone ) माना जाना चाहिए। अशोक के शिलालेखों में तमिल के चेर, चोल और पांड्य राजाओं का उल्लेख मिलता है। उधर में शक्तिशाली राज्य होने के कारण, उनके प्रभाव से दक्षिण में बौद्ध और जैनमतों का प्रचार होने लगा। बौद्धों और जैनियों ने जैन विहारों की स्थापना तमिल-प्रदेश में की और अपने सिद्धांतों का प्रचार साधारण जनता के बीच में शुरू किया। तमिल राजा धार्मिक मामलों में काफी उदार थे और उन्होंने सभी धर्मों को समान रूप से बढ़ने की सुविधा दी। बौद्ध और जैन प्रचारक संस्कृत के बड़े विद्वान् थे और उन्होंने जैन ग्रन्थों का संस्कृत और पाठी में प्रणयन किया। उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात यह की कि साधारण

- 
- 1- Some Contributions of South India to Indian Culture, Dr. S. Krishnaswamy Iyengar, page 234.
  - 2- The Penguin of Indian History, by Sen, page,
  - 3- Oxford History of India, V.A. Smith, page 75.
  - 4- Tamilnad through Ages - A. N. Paramahansa, page 37.

जनता को, जो तमिल भाषा बोलती थी, वाकचिंत करने के लिए तमिल भाषा में साहित्य- रचना प्रारम्भ कर दी। उन्होंने बड़े परिश्रम से तमिल भाषा की पूर्व- साहित्यिक परम्पराओं को सीखा और कुछ ही समय में तमिल साहित्य पर उनका बाधित्य हो गया। उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण उनके द्वारा हुआ, परन्तु उनके मूल में भी अपने अपने विचारों का प्रसार ही था। फिर भी यह कहना अन्याय होगा कि उनके द्वारा तमिल साहित्य में साहित्य- सौष्ठव की कमी थी। संस्कृत की फुटकर रचनाओं की अपेक्षा उनके द्वारा महाकाव्यों की रचना मुख्य रूप से हुई। इन कवियों के ग्रन्थ मुख्यतया नीति- प्रधान हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में कथा के साथ अपने धार्मिक विचारों, विश्वासों, नियमों, कदियों आदि का अच्छा सम्मिश्रण किया है, जिनकी सहायता से उस समय के सामाजिक और धार्मिक जीवन का भी अच्छा ज्ञान होता है। इनमें यथा- कदा कुछ कवियों ने रामायण, महाभारत आदि के कुछ छोटे- मोटे पात्रों का भी वर्णन किया। परन्तु उन्होंने सभी वैदिक महाकाव्यों की कथा वस्तुओं को मूल रूप में न लेकर अपने धर्म के अनुसार ही बना लिया।

बीदों की अपेक्षा जैनों का ही अधिक प्रभाव तमिल साहित्य और संस्कृति पर पड़ा। तमिलनाडु के सांस्कृतिक विकास में जैनों का योग महत्व- पूर्ण है<sup>2</sup> कहा जाता है कि कन्नन्दी की व्यक्तता में ईस्वी सन् ४७० में मुदुरे में "द्रमसि संघ" के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य तमिल में

1- "The Jains more than any other sect have their writings and especially in their exclusively Compre-  
-hensive narrative literature, never addressed themselves exclusively to the learned classes, but made an appeal to the other strata of the people also."  
- History of Indian Literature, Winternitz, Vol. II. page, 475.

2- "They have played a notable part in the civilization of South India, where early literary development of the Kanarese and Tamil languages was due in a great measure to the labours of the Jain-monks."  
- Ancient India, Prof. E. J. Rapson, page 66.



साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन देना था<sup>१</sup>। जैन मतावलम्बियों ने तमिलनाडु में जगह जगह में विहारों और मूर्तियों का निर्माण करके वास्तु-शिल्प और मूर्ति कला की उन्नति में योग दिया। संस्कृत और प्राकृत के अनेक ग्रन्थों के विषयों का तमिल-प्रतिरूप जैन कवियों ने प्रस्तुत किया। इनके द्वारा संस्कृत और प्राकृत के शब्द भी तमिल में जा गये। जैन-मत के उदात्त तत्वों का भी जनता में प्रचार हुआ। धीरे-धीरे जैनो ने राज्याश्रय को भी प्राप्त कर लिया।

तमिल-प्रदेश में ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक पल्लव-वंशीय राजाओं का शासन हुआ। इन पल्लव राजाओं के शासन काल को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। प्रारंभिक काल (२५०-३४०) के पल्लव राजाओं का विवरण प्राकृत-शिलालेखों में मिलता है। मध्यकाल (३४०-५७५) के पल्लवों का विवरण संस्कृत में लिखे शिलालेखों से उपलब्ध होता है। अंतिम काल (५७५-६००) के पल्लव राजाओं का विवरण ग्रन्थ लिपि और तमिल-लिपि में लिखे शिलालेखों से प्राप्त होता है। जिसे, तमिल साहित्य के इतिहास में भवितकाल कहा जाता है, वह पूर्णतः पल्लव-राजाओं के अंतिम काल में पड़ता है। वास्तव में यही काल ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसी काल में तमिल-प्रदेश ने जिस भवित-बान्दीजन के दर्शन किये थे, उसमें उन पल्लव-राजाओं का भी बड़ा हाथ था। उस काल के पल्लव-वंशीय राजाओं का प्रमुख केन्द्र कांचीपुरम था। मध्य काल के पल्लव तो संस्कृत के प्रेमी थे। इसलिए उस काल में उनके द्वारा तमिल को विशेष वाक्य नहीं मिला। लेकिन अंतिम काल के पल्लव शासक तमिल में साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन देते रहे। जैन मतावलम्बियों ने प्रारम्भ में अनेक पल्लव राजाओं को प्रभावित किया और राज्याश्रय प्राप्त किया जब उनकी राज्याश्रय प्राप्त हुआ तो वे धर्म प्रचार में तीव्रता दिलाने लगे और ब्रह्मचार का कठि भी यहीं प्रारम्भ हुआ।

१- Administration and Social life under the Pallaves  
Dr. Meenakshi, page 227.

२- देखिए ~~विस्तृत~~ विस्तृत विवरण के लिए - "The Pallavas of Kanchi"  
K. Gopalam, (Madras University)



### मथित-बान्दीलन की आवश्यकता-

तमिल जनता ने जो धार्मिक मामलों में स्वभाव से ही उदार थी, प्रारम्भ में इन बौद्ध-जैन धर्मों का विरोध नहीं किया। इन धर्मों के विचारों में कुछ ऐसी बातें भी थीं जिन्होंने तमिल जनता को आकर्षित किया। इनके उदात्त भावों का जनता ने स्वागत किया। जैनों और बौद्धों ने प्रारम्भ में जैन विहारों की स्थापना कर जन-हितार्थ कई कार्य किये। साधारण जनता जिसको समाज में विशेष महत्व प्राप्त नहीं था, इन महावल्गवियों का आश्रय पाकर प्रसन्न हुई। कुछ लोग जो अनवरत लड़ाइयों से थक चुके थे, वे इन विहारों में जाकर शान्ति पाने लगे। यहाँ तक कि प्रसिद्ध चेर राजा चेंगट्टुवन के अनुज इतनी बलिकल बौद्ध बनकर विहार में रहने लगे। तमिल-बौद्ध अपने धर्म के प्रचार के लिए, चीन और जावा भी गये थे। "मणिमेखल" और "सिलमधिकारम्" के रचना-काल में बौद्धों की समाज में वादर प्राप्त था। परन्तु बौद्धों ने इसका दुरुपयोग किया। वागे चल कर बौद्ध महावल्गवियों ने समस्त तमिल जनता को बौद्ध-धर्म में लाने की चेष्टा की और पर-धर्मों का लण्डन भी शुरू कर दिया। कालान्तर में उनमें दुराचार ने प्रवेश कर लिया। बौद्ध-धर्म में ब्रह्मचर्य और भिक्षु जीवन पर बहुत जोर दिया गया था। तमिल जनता के लिए जो परम्परा से गार्हस्थ्य-जीवन के उच्च वादशों को लेती जायी थी, बौद्धों का वह भिक्षु जीवन, अपनी परंपरा के विरुद्ध था। मठों के अप्राकृतिक जीवन में बहुत सी दुराश्यां बहुत भारी परिमाण में फैल जायीं। बौद्ध धर्म में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं था। बौद्ध धर्मावलंबी परवर्ती काल में अपने सिद्धान्त-पक्ष पर अधिक जोर देने लगे। अतः उनके विचार तमिल-जनता के परंपरागत धार्मिक विश्वास और मथित-भाव के विरुद्ध सिद्ध हुए।

जैनों ने राज्याश्रय पाकर जैन मंदिरों का निर्माण किया। इन मन्दिरों में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ रहती थीं। तमिलनाडु में जैन स्थानों

---

१- "Development of Tamil Religious Thought"  
Swami Vipulananda, "Tamil Culture", 1956.  
pages 251 - 266.

में इनके मन्दिरों की स्थापना हुई और बहुत अधिक मात्रा में तमिल में साहित्य-रचन कर कभी धार्मिक विचारों का प्रचार किया। साहित्य-रचना में धर्म-प्रचार ही प्रधान उद्देश्य रहा। वेनों में दिनम्बर कहलाने वाले ही तमिल-प्रदेश में अधिक रहे। ये बिना वस्त्र पहने नग्न रहते थे। कभी स्नान नहीं करते थे और गन्दे रहते और कटुप्रतानुष्ठान करते थे। इनका तन्त्र-मन्त्र में भी विश्वास था। कालान्तर में राज्याश्रय का दुरुपयोग कर इन लोगों ने विपत्ती धर्मों (शैवों और वैष्णवों) के सन्तों को कष्ट देना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि धर्म-परिवर्तन कराने के लिए अत्याचार का सहारा लेने लगे। यहाँ तक कि अपने विरोधियों की हत्या तक कर डालते थे। बहिष्कार, कठुणा आदि जो जैन मत के मूल तत्व थे इन सिद्धान्तों के विरुद्ध व्यवहार में प्रयुक्त हो गए।

इसी युग में पाशुपत, कापालिक और क्लानुस कहलाने वाले लोगों की धर्म-साधनाओं के प्रचार का परिचय भी मिलता है, जिनका मभित-बान्दीसन के प्रसक्तों ने बड़ा सङ्गठन किया है। वास्तव में ये लोग मूलतः तमिल-प्रदेश के नहीं थे। ये बाहर से आये थे और इनके वाचरण बहुत ही विचित्र थे। पाशुपतों के भी विश्वास और वाचार-विचार विचित्र प्रकार के थे। ये अपने को "मयेचुरर" कहते थे। ये शरीर पर मस्म लगाते थे। शिव को परब्रह्म मानते थे। लिंग ब्रह्मा शिव की मूर्ति की पूजा करते थे। कुछ लोग शरीर पर मस्म लगाकर नी सुमते थे। विस्वत जीवन बिताकर घोर तप के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखते थे और उसकी चेष्टा में रत रहते थे। इनमें कुछ "शिव गण" कहलाने वाली शक्तियों में विश्वास रखते थे और उनको सन्तुष्ट करने के लिए नर-बलि तक देते थे और मृत मनुष्यों के मांस का नैवेद्य लगाते थे। कापालिक कहलाने वाले भैरवों की पूजा करते थे। शोषणियों की माला बनाकर गले में डालते फिरते थे। नर-बलि और मनु-वाले की भी इनमें परिपाटी थी। बलि में दिये गये मांस और मनु का सेवन करते थे। स्त्रियों को "आदि शक्ति" मानकर उनकी पूजा करते

थे। इनमें शक्ति-पूजा प्रधान थी। इनमें स्त्री-कापालिक ( कापालिन ) भी थीं। इस प्रकार के लोगों ने जनता के बीच भक्ति-भाव का नहीं, बल्कि भय का ही प्रदर्शन कराया। इन लोगों की शिल्ली उड़ाने के तिर ही महेन्द्र वर्म पल्लव प्रथम ने ( ६००-६३० ) " भव-विलास-प्रहसन " की रचना की। इस संस्कृत प्रहसन से तत्कालीन भक्ति धार्मिक स्थिति का चित्र प्राप्त हो जाता है। इसमें कापालिकों और बौद्धों की हंसी उड़ायी गयी है। इसे अनुमान किया जा सकता है कि महेन्द्र वर्म पल्लव प्रथम के समय तक बौद्धों और कापालिक कहलाने वालों का आचरण पता बहुत ही गिरा हुआ था। इस प्रहसन में जैनों का उल्लेख न होना यह सूचित करता है कि महेन्द्रवर्म उस समय जैनों के पक्ष में था। बाद में वह अप्पर नाम्क शैव-संत से प्रभावित होकर शैव बन गया।

जब यह भी देखने की आवश्यकता है कि भक्ति-काल के प्रारंभ में शैव और वैष्णव धर्मों की क्या दशा थी। यह पहले कहा जा चुका है कि वैदिक धर्म का दक्षिण में प्रवेश ईसा की कुछ शताब्दियों के पूर्व ही हो गया था। द्राविड़ और वैदिक संस्कृतियों का मिलन हुआ, जिसके फलस्वरूप बने द्रविड़ ( तमिल ) देवताओं का स्वीकरण वैदिक देवताओं से हो गया। तमिल तिरुमाल का विष्णु से स्वीकरण हुआ और शिव का रुद्र से। पुराणों में तमिल देवता " मुरुगन " को शिव का पुत्र बताया गया और " कौट्टवै " को दुर्गा या पार्वती कहा गया। हम यह मान सकते हैं कि ईसा की चौथी शताब्दी के पहले ही यह स्वीकरण पूरा हो चुका था। इस समय वेद और वेदांगों में प्रवीण ब्राह्मण लोगों का उदर से जागमग होता रहा और वैदिक विचारों का भी प्रचार हुआ। चौथी शताब्दी के प्रारंभ में जब उदर में गुप्त वंशीय राजाओं का शासन हुआ तब वैदिक धर्म को पुनः जागृत मिला। यह युग उदर भारत के इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है। उदर में इस युग में बौद्ध और जैन धर्म का समग्र ह्रास हो चुका था और शैव और वैष्णव संप्रदाय फलप रहे थे। महाभारत, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों का पुनः संपादन हुआ, षट् दर्शन व्यवस्थित हुए। पांचरात्र, शैवागम और तंत्र-साहित्य का रचन हुआ।

उस समय उत्तर से वैदिक धर्मावलंबी ब्राह्मणों का तमिल-प्रदेश में प्रवेश की अपेक्षा अधिक संख्या में वाणमन हुआ<sup>१</sup>।

हम यह ऊपर देत चुके हैं कि चौथी और पाँचवीं शताब्दी में तमिल-प्रदेश में बौद्धों और जैनों का बोलबाला था। साधारण जनता पर उनका प्रभाव था। तमिल साहित्य पर उनका बाधित्व था। वैदिक धर्मावलंबी (दोनों संस्कृतियों के स्वीकरण के पश्चात् भी) ब्राह्मण लोग घटिकारें बनाकर बल रहते थे, जहाँ वेद और उपनिषद् आदि के अध्ययन और यज्ञ इत्यादि में वे लगे रहते थे। साधारण जनता से उनका कोई भी संबंध न था। कांचीपुरम् की 'घटिका' बहुत ही प्रसिद्ध थी। वहाँ वेद-वेदांगों का विशेष अध्ययन होता था। कहा जाता है कि कदम्ब वंश के स्थापक मयूरसिंह कांचीपुरम् में संस्कृत अध्ययन के लिए लाया था। इतिहासकारों के अनुसार उसका काल ३४५-३६० ईस्वी है। तालकूटा दानवर्मा से पता चलता है कि मयूरसिंह जो पहले से वेदों का बड़ा जानी था, उच्च अध्ययन प्राप्त करने के लिए ही कांचीपुरम् लाया था। अतः यह ज्ञात होता है कि इन 'घटिकाओं' में वैदिक साहित्य के अध्ययन और अध्यापन और यज्ञ इत्यादि का प्रबन्ध होता था। इन घटिकाओं का साधारण जन-केन्द्रों से बल रहना यही सूचित करता है कि उससे साधारण जनता का कोई सम्बन्ध नहीं था। यह भी ज्ञात होता है कि 'घटिकाओं' में केवल ब्राह्मणों का ही प्रवेश था और उनमें होने वाले यज्ञादि में भाग लेने का अधिकार ब्राह्मणों पर लोगों को नहीं था। वेदादि में पारंगत लोगों को पुरोहित कर्मा 'पर्यार' कहा जाता था। बौद्ध-महाकाव्य 'सितम्पधिकारम्' में कहा गया है कि उसके कथा नायक कोवलन और नायिका कण्ण-की का विवाह वैदिक नियमों के अनुसार ही सम्पन्न हुआ था। चूंकि वैदिक धर्मा-

१- देखिए - "The Coming of Brahmanism to the South of India", A. Govindacharya, J.R.A.S. 1912.

२- The Kadamba Kula, Moreas, page 14.

३- History of Tamil Language and Literature  
Prof. S. Vaiyapuri Pillai, page 100.

४- Tamilnad through Ages, A.M. Paramasivanandam  
page, 58.



वर्तवियों ने अपने धर्म तथा वेद इत्यादि को केवल ब्राह्मण लोगों तक ही सीमित रखा, इसलिए साधारण जनता से उनका कोई संपर्क नहीं रहा। यही कारण है कि साधारण जनता के बीच में ईसा की तीसरी और चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में बौद्ध और जैन धर्म फैल सके।

प्रारम्भ में तो बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि सभी मत वाफ़स में बिना किसी संघर्ष के समानान्तर रूप से चलते रहे। किन्तु बाद में एक ओर बौद्धों और जैनों ने राज्याश्रय का दुरुपयोग कर शैव और वैष्णव धर्मों पर प्रहार करना शुरू कर दिया। दूसरी ओर बौद्धों और जैनों ने जन-साधारण को अपने फी में रखा था और वैदिक धर्म का जन साधारण से सम्बन्ध घटता गया। पाँचवीं और छठी शताब्दी तक बाहर बौद्धों और जैनों का वाचरण पता जब गिरने लगा तो एक ऐसा वातावरण तमिल प्रदेश में उत्पन्न हुआ, जिसमें बौद्धों और जैनों के वाचार-विचारों से तंग होने वाली जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाने के लिए जिसमें सब समान रूप से वात्सल्य प्राप्त कर सकें और वाचरण का पता भी ऊँचा रह सके, और वैदिक धर्म का जो अब तक यज्ञादि कठिन नियमों को फँड़े जाया है, सरल बनाकर मुक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व-साधारण को प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारकों की आवश्यकता हुई। युग की इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही वैष्णव भक्त कवि बाल्लवार और शैव भक्त-कवि नायनमार अवतरित हुए। बौद्ध और जैन नास्तिक धर्मों की तुलना में उन्होंने भगवान् की सत्ता, उदारता और दया-व्रता का प्रचार किया। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में इन वैष्णव बाल्लवारों और शैव नायनमारों ने मक्ति की जो सरिता प्रवाहित की, उस की तरल तरंगों में तमिल-प्रदेश की समस्त जनता मग्न और अवगाहन कर शान्ति व प्राप्य कर सकी।

### बाल्लवार और नायनमार

वैष्णव बाल्लवारों और शैव नायनमारों ने सबसे बड़ी बात



यह भी कि उन्होंने जनता की भाषा तमिल के माध्यम से वेद इत्यादि का सार ग्रहण कर अपने विचारों को प्रकट किया और भक्ति को सुलभ बनाकर सर्व साधारण के लिए ग्राह्य बनाया। इन वैष्णव और शैव मतों के विचारों में कोई बातों में समानता थी। इन दोनों का उद्देश्य मूलतः एक ही था। वह यह था कि नास्तिक विचारों का सामना करना और वास्तिक विचारों का प्रतिपादन कर जनता में वास्तिक भक्ति-भावना का जागरण कराना। इसके लिए दोनों ने तमिल में श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण किया जो उच्च कोटि की भक्तिभावना से लौट-प्रौढ है। उन्होंने

- १- "The transformation of the ritualistic Brahmanism into the much more widely acceptable Hinduism of the Modern times is due the increasing element of the theistic element into the religious system of the day...  
..... Bhakti which transformed Brahmanism into Hinduism may therefore be regarded as an important contribution of South India."  
— "Some Contributions of South India to Indian Culture", Dr. S. Krishnaswamy Iyengar, preface, page XIII - XIV.

वर्षों मयित- प्रधान रचनाओं में संकालीन तमिल साहित्य की सभी साहित्यिक परंपराओं को बनाया । संव- साहित्य के दो वर्ण्य विषय प्रेम और युद्ध थे । साहित्यिक परंपराओं को बनाकर, बालवार और नायनमारों ने, संव- साहित्य में जिस सौंफिक प्रेम और उसकी दशाओं का विस्तृत वर्णन है, उसकी वर्तनिक प्रेम की ( भगवान् और भक्त के बीच ) प्रकट करने का माध्यम बनाया । प्रो० वार० ० स्व० देसिकन् ने लिखा है : " The helli core and warring element in man cannot be effaced ; nor <sup>can</sup> the instinct of love be wiped out . They must find a new outlet and have to be sublimated . With the Alvars and Nayanaaras, the war without has become war within and the human love has been transformed into divine . "

यहीं से मधुर- मयित धारा का उद्गम मानना चाहिये । इन बालवार और नायनमार भक्तों के गीतों में हृदय की रागात्मिका वृत्ति से प्रेरित मानव मात्र के हृदय की स्पर्श करने वाले भाव थे, जिसे प्रवाह में धारा बनाकर परिष्कृत हो गया ।

बालवारों और नायनमारों ने तमिल भाषा के द्वारा ही अपने विचारों की जन- साधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया । तमिल भाषा के प्रति दोनों का प्रेम अपार था । शिव कवि ज्ञान सम्बन्धर अपने की " तमिल ज्ञान सम्बन्धर " कहने में गौरव प्राप्त करते थे। इसी प्रकार मुत्तालवार ने <sup>अपने</sup> की " पलान् तमिळन् " कहा है। हृदय को द्रवित करने वाली मयित- भावना को प्रकट करने के लिए तमिल भाषा में पर्याप्त सुविधा थी। दोनों ने गेय पद शैली को बनाया और वे जगह जगह अपने गीतों को गाकर जनता की मंत्र- मुग्ध कर देते थे । यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि वस्तुतः वैष्णव और शैव भक्तों के गीतों में विचार स्व भाव की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है। केवल

---

१- "Tamil Literature down the ages", All India writers' Conference (Madras, 1955) Souvenir, page 20-21.

विष्णु और शिव को पूम् पूम् प्रधानता दी गई है। इतना अवश्य है कि बाल्यार मयतों की फटावही में स्पष्ट रूप से अवतारवाद का सिद्धान्त स्वीकार करते हुए<sup>कउ</sup> गया है कि मयतों का कष्ट दूर करने के लिए विष्णु को बार बार अवतार ग्रहण करना पड़ता है। गीता में बताया है :-

“ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

कृत्युत्थानमधर्मस्य तादात्मानं वृजाम्बकम् ॥ ” १ आठवार ५५ गीता-नचन

में विश्वास रखते थे। परन्तु शिव<sup>-भक्त</sup> इस प्रकार नहीं करते। ( फिर भी बाद के शिव-मयत शैवाचार्यों को शिवजी के अवतार- रूप में मानने लगे। ) दोनों मयतों ने भगवान् को प्रेम, स्नेह और करुणा की मूर्ति बताया। भगवान् से मय का नहीं बल्कि प्रेम का सम्बन्ध स्थिर किया गया। कर्म काण्ड को छोड़कर भगवान् के नाम-स्मरण तक से भगवन्नुग्रह की प्राप्ति संभव बताया। प्रपत्ति ज्ञाना चरणान्गति तत्त्व पर जोर देकर दोनों ने भक्ति-मार्ग को सबके लिए सुलभ बताया। भक्ति किसी जाति विशेष की संपत्ति न होकर सबकी संपत्ति है। इसमें स्त्री-पुरुष ज्ञाना वर्ण-भेद का कोई स्थान नहीं। भगवान् के सम्मुख सब समान हैं।

जब बाल्यारों और नायनमारों ने अपने इन वैष्ट विचारों का जनता में प्रचार किया तो जैन और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने जिनको प्रारम्भ में राज्याश्रय प्राप्त था, शिव और वैष्णव संतों को कष्ट देना शुरू किया। कहा जाता है कि महेंद्रवर्म पल्लव प्रथम ने जो पहले जैन था, शिव संत-कवि जम्पर को, जैनों के जंगल में पकड़ कर बहुत सताया। परन्तु जम्पार ने जैनों के तंत्र-मंत्र तथा योग आदि को फूँटा दिखाकर भक्ति-मार्ग को वैष्ट सिद्ध किया तो महेंद्रवर्म जैन धर्म को त्यागकर शिव धर्म में जा गया। भक्ति-काल के प्रारम्भ में धर्म-परिवर्तन एक साधारण सी बात थी। धीरे धीरे जो राज्याश्रय पहले बौद्धों और जैनों को प्राप्त था, वह शैवों और वैष्णवों को प्राप्त होने लगा। यद्यपि इन बाल्यारों और नायनमारों का मूल उद्देश्य जनता में भक्ति-भाव की जगाना तथा नैतिक स्तर को ऊपर उठाना था, तो भी जब उन्हें अपने उद्देश्य में जैनों और बौद्धों द्वारा बाधा

१- गीता अध्याय ४ श्लोक ७

२- "Devotional Literature in Tamil" (Dr. R.P. Seltu Pillai Commemoration Volume) Dr. V.A. Devasenapathy, page 115 - 117.

पढ़ते देखकर, उन्हें बौद्धों और जैनों का और उनके कृत्यों का भी सपेहन करना पड़ा। नायकमारों ने अपनी रचनकों में सुकर बौद्धों और जैनों का सपेहन किया है और उनके निन्दनीय कार्यों की लोरी उड़ायी है। शैव संत ज्ञान सम्बन्धर ने तो अपने दशकों के हर दशमें पद में बौद्ध और जैनों का सपेहन किया है। उससे जैनों और बौद्धों की पतित स्थिति का परिचय मिलता है। दूसरे शैव संत सुन्दरर ने लिखा है :  
 “ बौद्ध और जैन बहिष्ता का प्रचार करके भी हिंसा के द्वारा ही धर्म-प्रचार करते हैं। तपस्या का बहाना करके वे अपनी जीभ के दास बने फिरते हैं। हा-साकर सुस्त और दुर्गति बन गये हैं।<sup>१</sup> जन-सेवा इनका लक्ष्य नहीं है। वे सर्वत्र अपने बाजार की ही चिन्ता रखते हैं। वे ज्ञान में पड़े हुए हैं। उनका मन काला है। जैन नग्न रहते हैं। गन्दे रहते हैं। जैन लड़े होकर खाते हैं। मांस खाते रहने से उनके शरीर से बदबू जाती रहती है।<sup>२</sup> ( बौद्ध प्रारम्भ में पशु-वध के विरोध में थे। पर बाद में मांस खाने में उन्होंने आपत्ति नहीं उठायी ) वे शिव की निन्दा करते हैं जिसका फल उन्हें अवश्य भोगना पड़ेगा।<sup>३</sup> ” बालवारी में प्रथम कुछ बालवारी ने जैन और बौद्धों का विशेष सपेहन नहीं किया है। इससे ज्ञात होता है कि उनके समय में जैनों और बौद्धों ने उन्हें अधिक कष्ट नहीं पहुँचाया हो। परन्तु बाद में जाने वाले कुछ बालवारी ने जैनों और बौद्धों का खूब सपेहन किया है। तिरुमल्लि बालवार और तिरु-मी बालवार ने तत्कालीन बौद्धों और जैनों के कृत्यों और दुर्बल विचारों की ओर इशारा किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि सातवीं और आठवीं शताब्दी में धार्मिक संघर्ष उग्र रूप को प्राप्त कर चुका था। जैनों और वैष्णवों ने मिलकर जैन और बौद्धों का बड़ा विरोध किया। उससे तमिल-प्रदेश में जैन और बौद्ध धर्मों की नींव खिलने लगी और नवीं शताब्दी तक जाते जाते उन दोनों नास्तिक धर्मों की शक्ति क्षीण हो गयी। ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री जो पल्लव नरसिंह वर्म के समय में कांचीपुरम् में आया था ( ईस्वी सन् ६४० के आस पास ), उसने लिखा है कि कांची-

१- सुन्दरर त्वारम् ६०-६

२- वही ३३ : ६ , ७१ : ६ आदि

३- वही २२ : ६



पुरम् में बौद्ध विहारों के अतिरिक्त कैंक शिव मन्दिर भी थे। उसने यह भी लिखा है कि कितने बौद्ध विहार जीर्णोद्धार में थे<sup>१</sup>। अतः अनुमान किया जा सकता है कि सातवीं शताब्दी से ही बौद्ध और जैन दोनों की सक्रिय स्तिथि होने लगी थी। शैव और वैष्णव धर्म और फलश्रुति जा रहे थे। अन्त में बौद्ध और जैन धर्मों की तमिल-भूमि में पराजित होना पड़ा। उन्हें परास्त करने का पूरा पूरा श्रेय वात्सवारी और नायनमारों को देना चाहिए<sup>२</sup>।

मयित-काल के उत्तरार्ध में शैव और वैष्णव धर्मों की वल्लभ कैंक राजाओं का वाज्य प्राप्त हुआ। कैंक राजाओं ने इन शैव और वैष्णव धर्मों को प्रोत्साहन देने के लिए कैंकानिक मन्दिरों के निर्माण कराए। महेंद्र वर्म पल्लव प्रथम ने शैव-धर्म की ग्रहण करने के पश्चात् मन्दिर-निर्माण में अपना ध्यान दिया। उसके समय में विभिन्न कलाओं की भी उन्नति हुई। महेंद्र वर्म पल्लव की तमिल-प्रदेश के धार्मिक आन्दोलन के इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसके समय में गुहा-मन्दिरों का निर्माण हुआ जिनमें पल्लवपुरम्, मामन्दूर, सियामेतम वादि के मन्दिर मुख्य हैं। उसने साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन दिया, जिस कारण अधिकधिक्रमशः साहित्य का निर्माण हुआ। नृत्य, मूर्ति सभी कलाओं की उन्नति इस समय हुई। कई दृष्टियों से महेंद्रवर्म का समय महत्वपूर्ण है। महेंद्रवर्म के पुत्र नरसिंहवर्म के समय में मयित-आन्दोलन को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने कैंक गुहा-मन्दिरों का निर्माण कराया। महामल्लपुरम् (महा-कलीपुरम्) के प्रसिद्ध गुहा-मन्दिरों का निर्माण नरसिंह वर्म के द्वारा ही हुआ, जो पल्लव-भवन-निर्माण-कला के ऊपर बहुत बकर बाब भी विष्णुमान हैं।

कैंक पांड्य राजाओं ने भी शैव-मन्दिर निर्मित किये। इस युग की महत्वपूर्ण बात यह है कि मन्दिरों के निर्माण होने से और मन्दिरों

१ - Tamilnad through Ages, A.M. Paramasivanandam, page, 70

2 - "The hymn-singers of Tamil land were the creators of that powerful religious feeling which swept Buddhism and Jainism out of their Country" - Influence of Islam on Indian Culture, Dr. Tarachand, page 95.



में मगवान् के दर्शनार्थ भक्तों के जाने से एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न हुआ । मन्दिरों के निर्माण के साथ साथ उनके सम्बन्ध रखने वाले धार्मिक उत्सवों का भी प्रबन्ध किया गया । इस युग में वात्सवार्त्त और नायडुमारों के भक्ति-सु-चिन्त गीतों को गाकर भक्त वात्स-विभार हो जाते थे । भक्ति की वात्सवृ इस युग की सबसे ऊँची वात्सवृ थी । कार ठा० श्रियान्न मल्लोदय को इस युग के समित्-भक्ति-साहित्य का परिचय मिला होता तो उत्तर भारत की भक्ति धारा के विषय में वात्सवृयं बकित होकर उन्हें शायद ही यह कहना पड़ता :- " कौह भी व्यक्तित्व भिन्ने पन्द्रहवीं शताब्दी तथा बाद की शताब्दियों के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस भारी व्यसधान (gap) को तदय भिन्ने बिना नहीं रह सकता, जो प्राचीन और नूतन धार्मिक भावनाओं में दृष्टि-गोचर होता है। हम अपने को ऐसी धार्मिक बान्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब बान्दोलनों से अधिक विज्ञात है, जिन्हें भारतवर्ष में कभी भी देखा है। यहाँ तक कि वह बौद्ध धर्म के बान्दोलन से भी व्यापक और विज्ञात है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेत का विषय हो गया था । "

- 
- १- " Large Concourses of people went from place to place chanting their way, visiting temples old and newly built and offering worship. In front of the deity, they poured out their hearts in fervent recitation of songs composed by their leaders ( Alvars and Nayanmars) and such joint recitation necessitated a kind of simple chorus music in which ~~any~~ anyone could join. " History of Tamil Language and Literature", Prof. S. Vaiyapuri Pillai, page, 102.

### अपने युग को बालवाराँ की देन-

तमिल-प्रदेश के मखित-बान्दोलन में वैष्णव बालवाराँ ने जो महत्वपूर्ण योगदान है, उसे सभी विद्वान् निर्विवाद रूप से मानते हैं। स्मरण रहे कि ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य ने वैष्णव मखित तथा भागवत-धर्म के प्रचार में महान् योग दिया। लेकिन उत्तर भारत के इतिहास के इस स्वर्ण युग के समाप्त होते ही, हर्षवर्धन जैसे प्रतापी उत्तर भारतीय सम्राटों द्वारा, भागवत धर्म, उपेक्षित होने के कारण निर्बल हो चला और क्रमशः निर्बल होता गया। परन्तु वैष्णव मखित के सूखते हुए वृक्ष को फिर से जीवन दान करके तमिल-प्रदेश के बालवाराँ ने ही पनपाया। बाद में उस विशाल वृक्ष की शीतल छाया में समस्त भारतवर्ष की वैष्णव जनता शांति पा सकी।

यद्यपि तमिल-प्रदेश में मखित-बान्दोलन छठी शताब्दी से ही स्पष्ट रूप से दोख पड़ता है, तो भी उसके पहले ही प्रथम तीन बालवार जन्म से चुके थे। वैष्णव मखित की परम्परा जिसके दर्शन हम संघ-साहित्य में भी कर चुके हैं, तमिल-प्रदेश में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भी देखने को मिलती है। उस परंपरा में जानेवाले थे ये बालवार मन्त्र। अतः यह कहना असंगत है कि बालवाराँ के पश्चात् ही तमिल-प्रदेश में वैष्णव मखित का उदय हुआ है। तमिल विद्वान् श्री पी० श्री बाचार्य ने ठीक ही संघ-काल को (दूसरी शताब्दी तक का काल) मखित-बान्दोलन का उद्गमकाल और बालवाराँ के बाबिर्भाव-काल को मखित बान्दोलन का सूर्योदय कहा है।

( बालवाराँ और उनकी रचनाओं का परिचय द्वितीय अध्याय में विस्तार से दिया गया है। उन्होंने अपने युग को जो महत्वपूर्ण देन दी है, यहाँ

केवल उस पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है।)

बाल्यार संस्था में बारह से बीस से चौथी पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी के बीच विभिन्न कालों में आविर्भूत हुए। फिर भी उनकी विचार धारा प्रायः एक ही थी। भक्ति-बान्धोवन के उदय-काल में तमिल-प्रदेश की जो धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी, उसी ने बाल्यारों को जन्म दिया। वैदिक भक्ति जो यज्ञादि द्वारा और कठिन परिश्रम से ईश्वर का मोक्ष-प्राप्ति को मानती थी, केवल कुछ ही लोगों के लिए साध्य थी। जनसाधारण को उसमें कोई अधिकार नहीं था। बाल्यारों के सामने जो संस्कृत और तमिल दोनों के विद्वान् थे, वे परंपराएँ थीं। जहाँ तक विचारों का सम्बन्ध है, संस्कृत साहित्य में उपलब्ध वेद, उपनिषद् और गीता के विचारों का उन्होंने पुरा पुरा उपयोग किया। जनता की भाषा तमिल में उन विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने उसकी सभी-साहित्यिक परंपराओं को अपनाया। जैन और बौद्ध तमिल भाषा पर अधिकार कर अपने नास्तिक विचारों और अप्राकृतिक नियमों से जनता को हृत्प्राप्त कर रहे थे तब वैदिक-भक्ति के स्वरूप को सुधार कर युग की पाँव के अनुसार उसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी, जिससे कि वह सबके लिए सुलभ और आकर्षक हो सके। बाल्यारों ने का, सबी पसंद, यही कार्य किया। इसी में बाल्यारों की मौलिकता है। यह कहना कोई व्यर्थ नहीं है कि जब वैष्णव धर्म का जो सत्य दृष्टिगोचर होता है, उसको वह रूप देने का पुरा पुरा श्रेय बाल्यारों को है। बाल्यारों ने भक्ति को यदि वह रूप नहीं दिया होता तो जब वैष्णव भक्ति का स्वरूप कुछ भिन्न ही होता। इसमें सन्देह नहीं<sup>१</sup>।

- १- "Alvars are the first people who gave a new shape to Bhakti school, making simple, designed not for serving the purpose of worship by the elite, but subserve the similar ends for the quite ordinary folk." History of Tirumali, Vol. I.  
Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar, page 73-74.
- २- "It seems fairly certain that the Alvars were the earliest devotees who moved forward in the direction of emotional transformation." —  
A History of Indian Philosophy, Dr. S. N. Das Gupta, Vol. III. page 82. (2nd edition)

बालवारों की विचार-धारा वेद और गीता से प्रभावित दीख पड़ती है। प्रथम तीन बालवारों ने ( पोथी बालवार, भूतबालवार और भैयालवार ) अपनी रचनाओं में वैदिक विचारों को अधिक व्यक्त किया है, जिससे उनके वेदों के पाण्डित्य का पता चलता है। चौथे बालवार ( तिरुमल्लिसे बालवार ) ने ऐसे विचारों को व्यक्त किया है जो पांचरात्र मत से प्रभावित दीख पड़ते हैं। नम्मालवार की रचनाओं में तो वेद और गीता के विचार ७ भरे पड़े हैं। इसी कारण से उनकी रचना " तिरुवायमोली " को " तमिल वेद " कहा जाता है और उनको " वेदम् तमिल वेयिदवन् " अर्थात् " वेद को तमिल में प्रस्तुत करने वाला " कहा गया है। गीता में मुक्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं- ज्ञान, कर्म और भक्ति। बालवारों ने कर्म और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता स्थापित की है। भगवान् की सेवा किसी भी रूप में की जा सकती है। बालवारों के अनुसार विष्णु भगवान् ही उसे हैं जो भक्तों की पुकार सुनकर उन्हें अपनी शरण में लेते हैं और उनको मुक्त कर सकते हैं। जहाँ मुक्ति के अन्य साधन साधारण लोगों के लिए कठिन हैं, वहाँ भगवान् की सेवा युक्त भक्ति सरल होकर भी भगवान् की कृपा की प्राप्ति कर सकती है। भगवान् के नाम का स्मरण मात्र करना पर्याप्त है। एक निष्ठा से भगवत्सेवा में लीन रहना भक्ति का श्रेष्ठ रूप है। चाहे भगवान् की सेवा किसी भी रूप में हो, मुक्ति निश्चित है। यह मुक्ति भगवान् की सेवा करने के अनिवार्य फल के रूप में नहीं, बल्कि वह भक्त की सेवा से प्रसन्न होने पर भगवान् के अनुग्रह के रूप में होती है। वैष्णव मत में इसे प्रपदि अथवा शरणान्ति कहते हैं। भगवान् की शरण में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित करने से भगवान् के अनुग्रह का उदय हो सकता है। बालवारों की रचनाओं में बारम्बार से अन्त तक इस प्रकार के विचार भरे पड़े हैं जो गीता द्वारा प्रतिपादित हैं। बालवारों ने अन्य सभी मार्गों से भक्ति मार्ग



को श्रेष्ठ बताकर शरणान्ति-तत्त्व पर अधिक जोर दिया है। बालवारों के अनुसार भगवान् को संतुष्ट करने के लिए यज्ञ या फल-व्रति व्यर्थ है। बालवारों की रचनाओं में बलिष्ठा के उपदेश दिये मिलते हैं।

बालवार सगुणोपासक थे। उसे भगवान् जो सर्व साधारण की कल्पना में आ सकें, इन्हीं के गुणों का वर्णन बालवारों ने किया है। बालवार युग में तो तमिल-प्रदेश में कितने ही मन्दिर थे जिनमें स्थित भगवन्नुत्तियों के दर्शन करने और सामूहिक रूप में ( *congregational* ) प्रार्थना, भजनादि करने वात्स्य विभोर हो जाते थे। बालवारों ने भी स्वयं विभिन्न वैष्णव मन्दिरों की यात्रा कर उनमें स्थित भगवान् के सगुण रूपों ( जगन्निवार रूप ) की स्तुति में जीव फल गाये हैं। मन्दिरों में जाकर भगवान् के दर्शन करना, भगवान् की सेवा में उपस्थित होना, भजनादि करना, भगवान् के अनुग्रह पर विश्वास रखना आदि बातें तत्कालीन युग की बालवार की देन हैं। इस प्रकार भक्तों को सर्वदा भगवद्-चिन्तन में तल्लीन रहने की प्रेरणा देकर बालवारों ने अपने युग में भक्तिमय धार्मिक वातावरण की सृष्टि की। यह सबसे बड़ी बात है।

कृष्ण विचारकों का मत है कि तमिल-प्रदेश में भक्ति-बान्धोत्तन का जो रूप स्थिर हुआ, उसका मूल बौद्ध और जैन धर्म की है। डा० ताराचन्द ने अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर बालवारों और नायनमारों पर बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव को बताते हुए लिखा है :-

"For they took over from Buddhism its devotionism, its sense of transitoriness of the world."

१- "Much that is actually taught in Gita is scattered through and through the works of Alvars who mention in unmistakable terms the three fold paths of Salvation by Karma, Jnana and Bhakti. But Alvars come to the conclusion that though they are recognised means, in the last resort is to depend entirely on the Grace of God." History of Tirupati, Vol. I., Dr. S. Krishnaswami Aiyangar, page 123



its conception of human-worthlessness, its suppression of desires and asceticism as also its ritual, the worship of idols and stupas or lingams, temples, pilgrimages, fasts and monastic rules and its idea of spiritual equality of all castes; from Jainism they took its ethical tone and its respect for animal life.

The assimilation of these ideas into Puranic theology and the pervasion of the whole with warm human-feelings was the achievement of the saintly hymn-makers of Tamil land." ?

यहाँ डा० साहब के उपर्युक्त कथन में तथ्य का कितना हो सकता है, उस पर विचार करना <sup>उद्देश्य</sup> उद्देश्य नहीं है। परन्तु कितना वास्तव कह देना उचित समझते हैं कि बाल्गवारी ने अपने सुन को याग को ध्यान में रखकर बौद्ध और जैन धर्मों से केवल उन बातों को ग्रहण किया होगा, जिन्हें वे ब्राह्म्य समझते होंगे। (और डा० साहब की उपर्युक्त सूची में दो हुई सभी बातों को नहीं।) बाल्गवारी ने बौद्धों और जैनों की बुराईयों का भी खूब खंडन किया है।

बाल्गवारी के जीवन भी उनकी रचनाओं में प्रतिपादित विचार-धारा को मुष्ट करने से दोस पड़ते हैं। प्रायः सभी बाल्गवार साधारण वैष्णवी के ही मनुष्य थे। सांसारिक वैभववाद की बीरुतका बाकर्णण किंचित् भी नहीं था। उनकी लगन अपने वाराध्य के प्रति निरन्तर बनी रही और उसी भावना द्वारा वे संचय कर वे अपने क्षेत्र में उत्तीर्ण हुए। इन पद्यों के बीच ऊँच-नीच सभी जाति के लोग थे। भगवद् भक्ति एवं वात्मीन्यति ही उनका परम उद्देश्य था। उन्होंने भगवान् को नित्य, वनन्त और अक्षण्ड मानकर भक्ति में प्रपत्ति कर्मात् पूर्ण वात्स्य समर्पण को आवश्यक माना। उन्होंने सभी जाति

---

१- Influence of Islam on Indian Culture,  
Dr. Tara Chand, page 86-87.

बौर का के लोगों को अपनाया था ।

उनका जीवन भी क्या था ? वादों का बहुलमय । उनकी इसलिये मृत्यु उनको अवतार तक समझने लगे । यहाँ तक कि दक्षिण भारत के कई तीर्थ स्थानों में इन बालवार मूर्तों की प्रतिमाएँ देव-मूर्तियों के समान पूजी जाने लगीं । बालवारों के सम्बन्ध में स्वामी सुदधानन्द भारती ने जो लिखा है , वह पूर्णतः सत्य है :-

*"An Alvar is a golden river of love and ecstasy which finds its dynamic place in the boundless ocean of Sachchidananda. An Alvar is a living gita, breathing Upanishad, a moving temple, a hymning torrent of divine rapture."*

डा० ताराचन्द ने अपनी ग्रन्थ *"Influence of Islam on Indian Culture"* में एक स्थान पर इस बौर संकेत किया है कि बालवारों की विचार-धारा पर इस्लाम का प्रभाव हुआ होगा<sup>१</sup> । उनका तर्क यह है कि इस्लाम भारत में सातवीं शताब्दी में पहुँच गया था और उस समय मलबार में माफ़ला लोग भी मुसलमान हो गये थे और इस प्रकार इस्लाम की विचार-धारा दक्षिण में फैल गयी । बालवारों के विचारों और इस्लाम के मत में जैसा बातों में समानता देखकर डा० ताराचन्द ने बालवारों को इस्लामी विचार धारा से प्रभावित होने का अनुमान किया है। परन्तु यह तो अब सिद्ध हो चुका है कि प्रथम तीन बालवार छठी शताब्दी के पहले ही हुए थे और इस्लाम का

१५ Alvar Saints, Swami Suddhananda Bharati, page 3.

२- Influence of Islam on Indian Culture, Dr. Tarachand, page 107-108.

प्राचीन भारतवर्ष में सातवीं शताब्दी से हुआ। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के दक्षिण में जाने पर भी उसके प्रभाव के दुरन्त ही जनता पर होने की कल्पना करना व्यर्थ है। वास्तव में उसका प्रभाव दसवीं शताब्दी के बाद ही हुआ और बालवारीयों का काल तो चौथी या पाँचवीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक समाप्त हो जाता है। अतः बालवारीयों पर इस्लामी विचार-धारा के प्रभाव की कल्पना करना व्यर्थ है। और बालवार ऐसे सिद्धान्त निरूपक न थे कि उनकी विचार-धारा किसी दूसरी विचार-धारा से प्रभावित हो सके। उनका ध्येय सिद्धान्त निरूपण नहीं था। वे तो समाज सुधारक थे, सन्त थे, मातृक कवि थे जिन्हें समिल-प्रदेश की तत्कालीन परिस्थितियों ने जन्म दिया।

यह वाच्य की बात हो सकती है कि इस्लाम की विचार-धारा और बालवारीयों की विचार-धारा में कई बातों में समानता थी। इस्लाम एक ही ईश्वर को मानता है। बालवारीयों ने भी एक ही परब्रह्म की अतृप्त शक्ति का वर्णन किया है। उसी को अनेक नामों से पुकारा है। उनके अनुसार उसी का नाम विष्णु है, कृष्ण है। बालवारीयों ने ब्रह्मा, शिव आदि को उसी परब्रह्म विष्णु के अंग माने हैं। इस्लाम में जाति प्रथा की कठोरता नहीं है। इस्लाम के अनुसार बाह्योपचार प्रसृत नहीं है। सैखवाद बाह्य मन्त्रि मावना, प्रपति और गुरु-मन्त्रि आदि पर इस्लाम जोर देता है। बालवारीयों ने तो अपने वैयक्तिक जीवन द्वारा इन बातों का निरूपण किया था। बालवार भी बाह्याचार और बाह्यमन्त्र पर विश्वास नहीं रखते थे। जाति प्रथा को तो वे बिल्कुल नहीं मानते थे। मधुर कवि बालवार को ब्राह्मण वृद्ध थे, शूद्र युक्त नम्बालवार के शिष्य बन गये। तिरुप्पाण बालवार तो निम्न जाति के थे ही। बालवारीयों के मन्त्रि-मार्ग में स्त्री-पुरुष का भी भेद नहीं था। बाण्डाल तो महिमामयी भवता ही गयी थी। गुरु-मन्त्रि भी

---

१- "One other feature of importance (in Alvars) is the notion that runs through and through, that God is <sup>really</sup> one and that one is Vishnu in ~~any~~ anyone of his innumerable ~~forms~~ aspects."

— History of Tirupati, Dr. S.K. Aiyengar, page 151-152.

बाल्वारों द्वारा प्रतिपादित थी। मधुरकवि बाल्वार ने अपने गुरु नम्माळ्वार को ईश्वर सदृश माना था और उनकी सेवा में अपने समस्त जीवन को अर्पित कर दिया था। इस प्रकार बाल्वारों की विचार धारा और इस्लामी विचार-धारा में बड़े बातों में समानता दीख पड़ना केवल संयोग की बात है और डा० ताराचन्द के अनुसार यह मानना कि इस्लामी विचार-धारा से प्रभावित हो कर बाल्वारों ने अपनी रचनाओं से जो गिनी बातों का प्रचार किया, अवगत हो होगा। हो सकता है कि दसवीं शताब्दी के पश्चात् जाने वाले वाचार्य कुछ क्षेत्र में इस्लामी भक्ति-पद्धति से प्रभावित हुए हों।

बाल्वार सुधारक ही नहीं थे, बल्कि उच्च कोटि के कवि भी थे। भक्ति की व्याख्या के लिए उन्होंने तमिल की सभी साहित्यिक परंपराओं को अपनाया था। उनके मधुर गीतों के संग्रह "दिव्य प्रबन्धम्" को पाकर तमिल का भक्ति-साहित्य धन्य है। उनके गेय पदों में हृत्तंत्री को संकृत करने वाली शक्ति है। कठोर से कठोर हृदय को भी द्रवित करने का सामर्थ्य है। भक्तिरससिन्धु में हुक्की देने वाला सरस संगीत है। उनके गीतों को गा गाकर कितने ही भक्त आत्म-विभोर हो जाते थे और तन्मयावस्था तक पहुँच जाते थे। बाल्वारों ने न जाने कितने प्रकार से भगवान् से भक्त के सम्बन्ध की कल्पना की है। जिसे परवर्ती साहित्य में नवधा भक्ति कहा गया है, वह बाल्वार-साहित्य में छूट छूट कर मरी पड़ी है। बाल्वारों ने वास्तव्य, सत्य, वास्य और कान्त्य भाव से भक्ति का विवेचन किया है। बाल्वार भक्ति-भावना को स्त्री-पुरुष के मधुर सम्बन्ध के रूप में मानते थे। आध्यात्मिक भावों का इन्द्रिय सुप्त प्रकाशन और उनके लिए आन्तरिक प्रेरणा

---

१- "Nammalvar puts himself in all kinds of attitudes known to Literature, for expressing high emotion. We may therefore conclude that Nammalvar exemplifies par excellence the methods of personal devotion to the deity with a view ultimately to the attainment of that realisation which is the goal of Mysticism of the School of Bhakti." History of Tirupati, Vol. I., Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar, page 154-155.



भी तभी संभव है जबकि उन्हें प्रतीकों के साधन द्वारा उनकी अनुभव गम्य कर दिया जाय । बालवार्त्तों ने अपने गीतों में प्रतीकों द्वारा प्राप्त ऐन्द्रिय अनुभवों को अपने वात्मानन्द का आधार बनाया था । बालवार्त्तों के पदों में उच्च कोटि के रहस्यवादी विचार भी देखने को मिलते हैं ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि बालवार्त्तों ने परवर्ती समाज को बहुत ही प्रभावित किया होगा । बालवार्त्तों की विचार-धारा से प्रभावित होकर जैसे वाचार्यों ने उसका शास्त्रीय विवेचन शुरु कर दिया । श्री रामानुजाचार्य की विशिष्टाद्वैतवादी विचार-धारा का निर्माण तो बालवार-साहित्य की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है, इसमें सन्देह नहीं । बालवार्त्तों ने भक्ति का जो दीपक जलाया था, वह उनके समय के बाद भी शताब्दियों तक जलता रहा । बालवार्त्तों की भक्ति की रस-धारा विभिन्न वाचार्यों द्वारा उधर की ओर लायी गयी । इसी को तदय करते हुए, भक्ति की जन्म-भूमि दक्षिण को मानकर ही मागवत्कार ने संकेत किया है :-

“ उत्पन्ना द्रविडि सार्धं वृद्धिं कर्णाटके गता ।  
 बवचित्त्वविन्महाराष्ट्रं सुखे जीर्णतां गता ॥  
 तत्र धौस्तुर्येयाणां पातण्डः तण्डितिका ।  
 दुर्बलाई चिरं याता पुत्राभ्यां सहमन्दताम् ॥  
 वृन्दावर्न पुनः प्राप्य नवीनं सहपिणी ।  
 जाताई सुखी सम्पत् श्रेष्ठत्वा तु साम्प्रतम् ॥ ” १

अन्त में भारतीय भक्ति-जान्दोलन में बालवार्त्तों और उनकी रचना 'प्रबन्धम्' का जो स्थान है, उसे स्पष्ट करने के लिए कवि 'दिनकर' के निम्नलिखित विचारों को यहाँ उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं :-



“ गीता और भागवत तथा गीता और रामानुज के

बीच की कड़ी यह बालवार संत है। भक्ति का दर्शन बालवारों के तमिल प्रबन्धों से आया है और कदाचित्, भागवत भी उसी प्रबन्ध से प्रेरित है। प्रबन्ध में बालवारों के कद, मूल रूप में रहे गये थे। पीछे वैष्णव विद्वानों ने उन पर टीकार भी लिखीं। इस प्रकार प्रबन्ध भक्ति-बान्दीलन का वादि ग्रन्थ बन गया।

“ कभी तो भागवत पुराण ही भक्ति-बान्दीलन का मूल ग्रन्थ समझा जाता है। किन्तु हमारा अनुमान है कि इस बान्दीलन का मूल ग्रन्थ भागवत नहीं, “प्रबन्ध” है। यह इस कारण कि यद्यपि भागवत और प्रबन्ध ये दोनों ग्रन्थ एक ही समय में लिखे गये, फिर भी प्रबन्ध की बहुत सी कवितारें दूसरी तीसरी सदी से प्रचलित चली आ रही हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि “प्रबन्ध” की कवितारें जनता की भक्ति साधना की सीधी समिव्यक्ति हैं। किन्तु भागवत की रचना पांडित्य के स्तर पर की गयी है। “प्रबन्ध” भक्ति बान्दीलन का मूल ग्रन्थ क्यों माना जाय ? इसका संकेत भी भागवत ही देता है, क्योंकि उसका भी मत है कि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था<sup>२</sup>”

१- “..... Hindus are by no means in accord as to its (Bhagavat Purana's) age and authorship, but as ALBERUNI mentions it, it can have been hardly written after 900. A.D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country.”  
— Encyclopaedia Britannica, Part 12, page 162  
(4th edition.)

२- संस्कृति के चार अध्याय- श्री रामधारी सिंह दिकर पृ० २६६ वि० संस्करण

### बाल्गवारी की भक्ति का सांख्यिक विवेक और वाचार्थ - युग

बाल्गवारी ने ईसा की हटी शताब्दी से ठीक नहीं शताब्दी तक समि-  
प्रदेश में भक्ति की जो पावन गंगा बहायी थी, यह बाद की शताब्दियों में भी  
प्रवहमान रही। बाल्गवार भावुक भक्त कवि थे। उनका काम केवल भक्ति-भावना  
के समाधिस्थ क्षणों में अपने मानस में उत्पन्न होने वाले उद्गारों को सुन्दर  
पदावली में व्यक्त करना था। कवि का तात्पर्य यह है कि बाल्गवारी के भक्ति  
प्रधान गीतों में प्रेम और भक्ति की भावनाओं का अतिरिक्त या और हृदय-परा की  
प्रधानता थी, जो साधारण भावुक मानव-हृदय को जलाया ही जाकथित कर  
देती थी।

बाल्गवार भक्तों की परंपरा में उनके परमात् कुछ ऐसे विद्वान् हुए जिन्होंने  
बाल्गवारी की भक्ति-भावना के लिए दार्शनिक पुष्ट भूमि तैयार करने का प्रयत्न  
किया। ये जन-भाषा समि-प्रदेश के अतिरिक्त संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे।  
उनका कार्य भक्ति-भावना के अतिरिक्त धर्म-सिद्धांतों का निराकरण और कभी  
का स्व-सिद्धांतों का निरूपण था। ऐसे विद्वानों की परंपरा रही तो वे "वाचार्थ"  
कहाये। इसी कारण "बाल्गवार-सु" के बाद का काल "वाचार्थ-सु" कहा जाता  
है। ये वाचार्थ बाल्गवारी के भक्ति - रस से प्रभावित अवस्था थे। किन्तु इन में  
पांडित्य का भी कुछ था। वे स्वामी संकराचार्य द्वारा उठाये गये लोक प्रज्ञा  
का पूरा समाधान कर देना भी अपना कर्तव्य समझते थे। इसलिये, उन्होंने  
बाल्गवारी के द्वारा प्रतिपादित भक्ति - मार्ग का अनुसरण करते हुए, वैष्णव धर्म  
के आधार भूत दार्शनिक सिद्धांतों का विवेक भी किया। एक और इन वाचार्थों  
में वैष्णव-धर्म बाल्गवारी की भाव - पूजन भक्ति की भाषा का संकलन और  
संपादन किया और विभिन्न मन्दिरों में उन के वचन, व्याख्यान और गायन का  
प्रवर्धन किया। दूसरी ओर उन्होंने तत्कालीन शैली में संस्कृत के माध्यम से  
"प्रस्थान त्री" पर अपने भाष्य लिखे और संकर के भाषावाद का खंडन किया।

चूंकि बाङ्गाल मकानों के पश्चात् उनकी परंपरा में जाने वाले जाचार्यों ने शंकर के नावाचार्य की प्रतिष्ठिता के रूप में ही अपने मक्ति-प्रधान संप्रदायों का प्रचार कर संछिन्न रूप से मक्ति-बान्दील कहाया, काः यहाँ बाचार्य शंकर के विषय में कुछ क्लेश आवश्यक था प्रतीत होता है ।

भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास में श्री शंकराचार्य का अवतार एक युग परिवर्तनकारी घटना के रूप में माना जाता है । शंकर का बाचिनाचि बाउरी छायादी के आस पास ताकि-प्रदेश के पश्चिमी भाग में श्री मल्लार कहाता है, बाङ्गाय नदी के तट पर स्थित "काउडी" नामक स्थान में एक नंकी प्रातण - परिवार में हुआ । शंकर युगिन बाङ्गायति-जीवन कुत ही वस्त-व्यस्त था । जैन, बौद्ध आदि वेद विरोधी थे । उनमें प्रारंभ श्री बौद्धिक स्वस्थता थी, वह समाप्त हो चुकी थी । सारा देश लोक प्रकार के धार्मिक संप्रदायों में विभक्त था । शक्ति-शाली बौद्धिकता को इन हाया में फनने वाले पञ्चान, सचयान जैसे वामनागी संप्रदायों के साधन-मार्ग लोक जीवन की विज्ञा जाचरणीं से आदर्श प्रष्टकर विज्ञा उपासना-मार्गों की ओर ले जा रहा था । परंपरागत दोषों से जर्जर होकर वैदिक धर्म प्रभावहीन हो चुका था । इस समय बौद्धिक प्रतिभा-संपन्न शंकर ने एक ओर ज्ञान प्रधान बाचिनाचि धर्म की पुनः स्थापना की और दूसरी ओर वेद विरोधी विचार-धारा के नाम पर फनने वाले युक्त मुक्त आवेश की रोक कर प्रकट बाङ्गायति-धर्म का प्रतिपादन किया । बौद्ध और जैन धर्मों के मूल सिद्धांतों की संज्ञा अनुसार उन्हें शैली के द्वारा उन्होंने वैदिक धर्म में सिद्ध की ओर अपने दिव्य प्रतिभा से अनुदिक प्रवृत्ति बौद्ध एवं जैन मत का संछन कर अपने सिद्धान्तों की स्थापना की । जाति-पांति की संकीर्ण परिधि को हटाकर तथा परंपरागत दोषों को दूर, समाप्त की एक नवीन दिव्यात्मिक विज्ञाया । उन्होंने वैदिक धर्म की रक्षा के लिए समस्त भारत में एक कहाये और बुद्धि-समृद्धि विहित वैदिक धर्म का पुनः स्थापन करके निवृत्ति-मार्ग के वैदिक सन्यास-धर्म

१-शंकर के बाचिनाचि-काउ के विषय में विद्वान् एकता नहीं हैं । श्री अनन्तान्ता स्वामी कायर ने "Shankar and his times" (The three great Acharayas, Natesan & Co, भाङ्गायति ने "Age of Shankar" तथा बाङ्गायति ने "शंकर विषय" में उनके जीवन और समय पर प्रकाश डाला है । उनका जन्म संवत् ८०० संवत् ८०० संवत् ८०० तथा निधन सं. ८०० माना जाता है । पर लोकान्तर तिलक शंकर का समय उक्त तिथि से एक काउडी पूर्व मानते हैं । कुछ भी हो, कतना निश्चित है कि वे श्री शंकरों के पहले ही बाचिनाचि हुए थे ।

की पुनर्वन्म दिया। उनके विचारों का प्रभाव भारत के सभी प्रान्तों पर पड़ा है और उनकी विचार - तरंगों के तीव्र - प्रवाह में अन्य सभी छोटे - मोटे फल - फलान्तर विहीन हो गये।

शंकर का कथन था कि बुद्धि कथित सिद्धांतों में कोई विरोध नहीं है, केवल उनकी व्याख्या में अन्तर है। वैदिक धर्म के इन्होंने दो स्वाभाविक विभाग "ज्ञान और वाचरण" बताये। प्रथम विभाग में उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निर्णय कर उसका संकल्प जीव और प्रकृति से लाया और दूसरे वाचरण-पक्ष में मनुष्य के वाचरणों का निर्देश किया। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार समस्त संसार असत्य है। केवल एक ब्रह्म परब्रह्म ही सत्य है<sup>१</sup> कौवल-प्राप्त ज्ञान माया से भेद की प्रतीति होती है। वस्तुतः जीवात्मा परमात्मा का स्वरूप है। माया मानवीय दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करती है, जो मिथ्या है। शंकर माया को वास्तविकता तनिक भी नहीं मानते और उनकी दृष्टि में वह केवल अविद्या है जो ब्रह्म का साक्षात्कार होती ही विहीन हो जाती है। शंकर ने "तत्त्वमसि", "अहं ब्रह्मास्मि" आदि महावाक्यों को तर्क-सम्मत व्याख्या करके ऐसे युक्ति संगत धर्म - दर्शन का प्रचार किया जिसने जनता की अन्तर्मुख करके सत्य ज्ञान का साक्षात्कार कराया। शंकर ने उपनिषदों के वाच्यार्थिक तत्त्वों के आधार पर अपने अद्वैतवाद के सिद्धांतों को स्थिर किया और घोषित किया कि ब्रह्म, कुहनित्य युक्त परमात्मा के अतिरिक्त जगत् में कोई परमार्थ सत् वस्तु नहीं है। "सर्वं सत्त्विन्द ब्रह्म" महावाक्य से उन्होंने ब्रह्म को निर्विशेष, निर्गुण निराकार बताया। उनका कहना है कि बुद्धियों में जहाँ कहीं सुगुण ब्रह्म का वर्णन किया गया है वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपासना के हेतु ही है। उनके अनुसार ब्रह्म का वास्तविक रूप निर्गुण है।

शंकर का वाचरण - पक्ष भी महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार स्मृति-ग्राह्य में निरूपित वाचर-व्यवहार अपना विशेष महत्व रखी है, जिनके बिना न तो बुद्धि ही संभव है और ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही। शंकर सिद्धांत के वाचरण पक्ष के अनुसार धर्म करना भी अनिवार्य है। परन्तु अन्त में

कर्म की त्याग कर सन्यास उठा आवश्यक है। ~~जहाँ~~ कर्मों कि सब बातनाहीं  
 और कर्मों की त्याग किना कृत - ज्ञान अस्तम है। यही ~~शंकर~~ सिद्धांत में  
 'त्रिवृत्ति - मार्ग' कहलाता है। इसी की सन्यास - निष्ठा या ज्ञान - निष्ठा  
 को कहा जाता है। शंकर ने उपनिषदों, ब्रह्म-सूत्रों और गीता की ज्ञान और  
 कर्म का समुच्चय करने वाली कृतियाँ मानकर अपने सिद्धांत के दोनों पक्षों की संतति  
 उन से लायी। उन्होंने 'प्रस्थानत्रयी' पर अपना नया भाष्य लिखा। अपने  
 अद्वैतमत के तर्क-संगत विचारों का प्रचार कन्याकुमारी से हिमाचल तक किया। वेदान्त  
 की दुंदुभि बजाते हुए बौद्धों के साम्राज्य को क्षिन्न-भिन्न कर दिया। संक्षेप में,  
 अपनी प्रसर प्रतिभा, <sup>विद्वन्ता</sup> ~~विद्वन्ता~~ और असाधारण संगठन-शक्ति के कठ पर, वैदिक धर्म  
 पर जो विपत्ति आ गयी थी, उसे दूर कर सके।

इसमें उन्मेष नहीं कि शंकर मत के प्रभाव से समस्त देश के आध्यात्मिक  
 जीवन में एक नवीन शक्ति का उन्मेष हुआ और वाममार्गीय तथा अन्य वेद -  
 विरोधी मतों का नतिरोध हुआ। किन्तु अपासना के पक्ष में  
 शंकर का अद्वैतवाद भारतीय जन-मानस को हू तक नहीं सका। इस का कारण  
 स्पष्ट है। शंकर ने ब्रह्म की अद्वैतता की उस अमूर्त स्थिति तक पहुँचा दिया था कि  
 सामान्य व्यक्ति ने उसे अपनी बुद्धि से ग्रहण करने में अपने की असमर्थ पाया। क  
 दूसरी ओर सन्यास की आवश्यक जाकर उन्होंने समाज-धर्म की उपेक्षा कर दी।  
 फलतः साधारण व्यक्ति का भावुक हृदय क शंकर के अद्वैत सिद्धांत से कोई भावनात्मक  
 संबन्ध नहीं स्थिर कर सका।

दिखाया जा चुका है कि ईसा की इठी शताब्दी से ठेकर नवीं शताब्दी  
 तक के काल में तमिल - प्रदेश में ब्राह्मण और नायनमारों ने हृदय पक्ष - प्रधान  
 भक्ति की रस - चारा प्रवाहित की थी जिसमें सारा समाज बह गया। कर्म  
 की आवश्यकता नहीं कि ब्राह्मणों और नायनमारों की प्रेम मूलक भक्ति-भावना  
 की भावन सरिता बुद्धि - पक्ष - प्रधान शंकराचार्य के मायावादी प्रस्तर लण्डों  
 की भेदकर पहाड़ी निर्दलीयता की भाँति बजाय गति से प्रवाहमान हुई। फिर  
 भी यह मानना पड़ेगा कि शंकर के अद्वैत सिद्धांत का प्रभाव भारत के दार्शनिक  
 चिन्तन के समस्त क्षेत्र पर पड़ा था। अतः ब्राह्मणों और नायनमारों की  
 परंपरा में जाने वाले तमिल - प्रदेश के मठों की यह बात की कड़ी आवश्यकता



प्रतीत हुई कि तमिल सन्तों की प्रेम-भक्ति-प्रधान विचार-धारा की सुरक्षित रक्षा संकर के तर्क-प्रधान मायावाद का खंडन किये किताबठिन है। उन्होंने संकर के मायावाद का खंडन दार्शनिक दृष्टि से करने के उद्देश्य से बाळुजारी की भक्ति-भावना के लिए निश्चित दार्शनिक पुष्टभूमि तैयार की। उन्होंने बाळुजारी के 'तमिल वेद' का मजीमांति ब्रह्मसूत्र के संस्कृत शास्त्रों से संगति काने का प्रयत्न किया। ये आचार्य 'उभय वेदान्ती' कहलाये। इन आचार्यों ने दर्शन के क्षेत्र में संकर के प्रभाव को मिटाने के लिए तर्क पूर्ण संज्ञे में संस्कृत विमुक्त साहित्य का खनन किया और अपने विचारों का प्रचार करने के लिए देश के प्रधान पत्रों में प्रमण कर विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। इन आचार्यों के उद्देश्यों के मूल में तीन बातें थीं। वे हैं - वैदिक धर्म का महत्व-स्थापन, वैदिक संप्रदायों का पूर्ण बहिष्कार और बाळुजारी के द्वारा प्रतिपादित तरणनत्तिवाडी भक्ति का प्रचार।

### नाथ मुनि

यह मूला नहीं चाहिये कि वैष्णव-आचार्यों की जो परंपरा नहीं स्ताब्दी के बाद बड़ी, उसका मूल-स्त्रोत तमिल-प्रदेश के बाळुजारी की परंपरा में ही पाया जाता है। बाळुजारी के बाद जाने वाले आचार्यों में सर्व प्रथम श्री नाथ मुनि माने जाते हैं। ये नहीं स्ताब्दी के अन्तरार्ध और दसवीं स स्ताब्दी के पूर्वार्ध में जीवित थे।<sup>१</sup> इनका जन्म 'वीर नाहायणपुरम्' नामक स्थान में हुआ था। इनके जीवन का अधिकांश समय श्री रंगपुर में बीता। कुछ लोग मानते हैं कि इनके पूर्वज कदाचित् उत्तरी भारत के किसी प्रदेश से आये थे और वे भागवत <sup>धर्मवल्लबी</sup> रच चुके थे। नाथ मुनि संस्कृत तथा तमिल के बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कई परिचय से बाळुजार <sup>भलो</sup> के प्रचलित की गीतों का संग्रह किया और संपादन किया जो 'नालायिरदिव्य प्रबन्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि नम्माळ्वार के पदों को प्राप्त करने के लिए नाथ मुनि, बाळुजार के जन्म-स्थान 'तिरुनारी' में गए थे तब नम्माळ्वार ~~कृष्णकृष्ण~~ ने उन्हें स्वप्न में अपने सभी पद सुनाये।

- १- देखिए:- "Nath muni: His life and times", R. Ramanacharya, (Journal of Annamalai University, Vol. 9. June, 1940)
- २- History of Srivaisnavas, T. A. Gopinatha Rao, page. 8.

क्तः गुरुपरंपरा ग्रन्थों और 'दिव्यसूरि चरित' के अनुसार नम्माळ्वार से नाथ मुनि का गुरु-शिष्य-संबन्ध था।<sup>१</sup> लेकिन नाथ मुनि ने नम्माळ्वार की शिष्य-परंपरा में जानेवाले परांकुश मुनि का ही शिष्यत्व ग्रहण किया था और तमिल-वेद का महत्व उन्होंने से समझा था। इन्होंने ही श्री रंगम्ब के मन्दिर में आळ्वार के गीतों का ब्राह्मण-मण्डली में अध्ययन और अध्यापन का प्रबन्ध किया। आळ्वारों के गीत वेण्णव मन्दिरों में गाये गये और उनकी 'तमिल-वेद' की संज्ञा दी गयी।<sup>२</sup> यह भी प्रसिद्ध है कि नाथ मुनि ने आळ्वारों के पदों को वेदों के समान एक निश्चित गीत-मदति में गाये जाने की योजना की और श्री रंगम में उनके गायकों की नियुक्ति की। ये गायक 'वरेयर' कहलाते थे।<sup>३</sup>

नाथ मुनि ने भक्ति का द्वार सब के लिए खोल रखा था। इन्होंने कर्म एवं भक्ति, लोक तथा वेद दोनों में सामंजस्य स्थापित कर भक्ति-मार्ग को विप्र, ब्रूह, स्त्री-पुरुष सबके लिए उन्मुक्त कर दिया। इनके लोक शिष्य हुए जिन्होंने भक्ति-मार्ग का प्रचार किया। इनके प्रधान शिष्य ग्यारह थे जिन में पुंडरीकाक्ष, कुक्काय और श्री कृष्ण जमी नाथ प्रमुख थे। स्वयं नाथ मुनि ने उचरी भारत के मयुरा, दारिका, पुरी, क्ली-नाथ आदि प्रमुख स्थानों में प्रव्रज्य कर आळ्वारों के भक्ति-सिद्धांतों का प्रचार किया था।

विशिष्टाद्वैतवाद का सिद्धांत यद्यपि श्री रामानुज द्वारा प्रतिपादित समझा जाता है, तो भी वास्तव में उस सिद्धांत की नींव नाथ मुनि ने ही डाली थी। प्रसिद्ध आचार्य श्री वेदान्त - देशिक ने नाथ मुनि को ही श्री संप्रदाय के स्थापक के रूप में माना है।<sup>४</sup>

१- History of Indian Philosophy, Dr. S.N. Das Gupta, Vol. III, page 95. (2nd edition)

२-प्रपन्नामृत, श्लो- १०६, १०७

३-देविर:- The Hymns of Alvars, J.S.M. Hooper, page 27.

४- "दृष्टेऽपस्तुत्य नावादनुमिति विषये लक्षस्यानुरोध

आस्त्रेणैवावर्तये विहनि विरहिते नास्तिक्यप्रहाणम् ।

नाथोपसं प्रवृत्तं कुरिहपक्तिं यामुनेय प्रबन्धै -

स्वातं सम्पत्नीन्द्रैरिद मत्तिलमः कर्तं पक्षं नः ॥

— तत्त्वमुक्त कल्प, श्रीवेदान्त देशिक, बलो. १३६.

क्यापि नाथ मुनि तमिळ के कई पंडित थे, तौ भी उनकी कोई स्वतंत्र रचना तमिळ में अब उपलब्ध नहीं है। केवल नम्माळ्वार, पैरियाळ्वार की स्तुति में गायत्री कुछ स्वतंत्र पद ही मिलते हैं। परन्तु संस्कृत में इनकी लिखी तीन पुस्तकों का उल्लेख मिलता है, - 'न्याय-तत्त्व', 'पुरुष-निम्नय' और 'योग-रहस्य'। 'योग-रहस्य' का केवल उल्लेख मिलता है। 'न्याय-तत्त्व' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो विशिष्टाद्वैतादी सिद्धांत का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। इस में उस मत के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रारंभिक विवेकन है।

नाथ मुनि के पश्चात् पुंडरीकाक्ष ( उदयकोटार ) एवं राम मिश्र ( नमक्काळ नम्मी ) नाम दो आचार्य हुए। राममिश्र <sup>श्रीराम</sup> के और पुंडरीकाक्ष के शिष्य थे। राममिश्र के भी चार शिष्य थे। राममिश्र की रंगम् में रहते हुए भक्ति-मार्ग का प्रचार किया करते थे। राम मिश्र के बाद बाने वाले एक प्रसिद्ध आचार्य स्वयं यामुनाचार्य थे। इनका तमिळ-नाम 'वाङ्मन्दार' है। वाङ्मन्दार नाथ मुनि के पोत्र थे। तीर्थाटन करते समय मयुरा में यमुना नदी में स्नान कर नाथ मुनि इतने प्रसन्न हुए थे कि उसके उपलब्ध में अपने पुत्र का नाम 'यामुन' रख दिया। यामुनाचार्य का जन्म सन् ६१८ ई० में और निधन १०३८ में माना जाता है।<sup>१</sup> उन्होंने राममिश्र से वेदों की विद्या प्राप्त की और वे एक सफल ताकिरी बन गये। नाथमुनि के समान आध्यात्म निष्णात विद्वान् थे। उन्होंने एक राजा के पुरोहित की आस्त्रार्थ में परास्त किया और राजा से पुरस्कार स्वरूप उसके राज्य का एक हिस्सा प्राप्त किया। फिर वे ठाट-बाट का जीवन बिताते लगे। राम मिश्र ने जब देखा कि यामुन अपने राजसी कैल में ही दिन-रात बिताते रहे, तब उन्हें कड़ा ही दुःख हुआ और उन्होंने 'यामुन' को किसी तरह समझा बुझाकर उनमें आध्यात्म-विद्या की अधिकवि उत्पन्न की और उन्हें भक्ति-शास्त्र का उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया।

१- "न्याय परिशुद्धि", श्री जैदान्त वैशिलाचार्य, पृष्ठ २३

२- History of Indian Philosophy, Dr. S. N. Das Gupta  
Vol. III. page 97. (2nd edition)

यामुनाचार्य ने नाथ मुनि के शिष्य कुरुकाय से वन्दान-योग की विद्या भी प्राप्त की। रामानुज के गौलोक-वास के जन्मर यामुनाचार्य (वाङ्मन्दार) ही की रंग के वाचार्य-मीठ पर बाकट हुए। इनके जैन शिष्य थे जिनमें २१ प्रधान थे। इनके शिष्यों में सभी वर्ण के लोग थे। उन्होंने चौठ राजा और उसकी पत्नी की वैष्णव-संप्रदाय में दीक्षित किया। यामुनाचार्य नम्माळ्वार की रचनाओं के बड़े प्रेमी थे। जिनमें सुरक्षित उच्च कौटिक के भावों की लोगों की सुनाने थे। उन्होंने सभी वाङ्मरारों के काव्यों के प्रचार, प्रसार और व्यापन के अतिरिक्त नवीन ग्रन्थों का भी प्रकाश किया। इनके हे: ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। वे हैं १) स्तोत्र रत्नम्, २) कुरुःश्लोकी, ३) सिद्धि क्रम, ४) वागम-प्रामाण्य, <sup>२)</sup> नीतार्थ संग्रह और <sup>६)</sup> महापुरुष निर्णय।

यामुनाचार्य ने श्री रामानुज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हें अपने उच्चाधिकारी के रूप में चुन लिया था। "प्रमन्नामुत" में कहा गया है कि यामुनाचार्य अपने अंतिम समय में श्री रामानुज से मिलना चाहते थे। अतः उन्होंने श्री रामानुज की अपने पास बुलाया। परन्तु श्री रामानुज के उनके पास पहुँचने से पहले ही उन्होंने हठलोक-लौला समाप्त कर दी। अतः श्री रामानुज यामुनाचार्य के मृत शरीर के ही दर्शन कर सके। रामानुज ने कहा कि कहा जाता है) देख कि वाचार्य के हाथ की तीन उंगलियाँ मुड़ी हुई हैं और उनके सौंते का अर्थ उन्होंने समझ लिया कि यामुनाचार्य उनके द्वाराकृत कार्य करवाना चाहते थे - ब्रह्म-युग तथा विष्णु-सहस्र-नाम पर भाष्य और वाङ्मरारों के दिव्य 'प्रकृत्यों' की विस्तृत टीका। रामानुज ने वाचार्य की तीनों इच्छाओं की पूर्ति करने की प्रतिज्ञा की।

### श्री रामानुजाचार्य

यद्यपि नाथ मुनि, यामुनाचार्य की वाचार्यों द्वारा श्री वैष्णव मत की रूप रेखा तैयार हो गयी थी, तथापि उसे सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने और उसका वैश्व व्यापी प्रचार करने का श्रेय श्री रामानुजाचार्य (तमिल-नाम-इल्लय पैरुमाळु) की ही है। श्री रामानुज का जन्म ए० १०१६ में मद्रास के समीप तैरुन्दूर नामक स्थान में हुआ था। उन्होंने अपनी कात्यावस्था में यादव प्रकाश नामक एक अज्ञेय विद्वान् के यहाँ वेदांत का अध्ययन किया। इस समय वे कांचीपुरम में रहते थे।

वद्वैत वाद के विषय में कभी गुरु से मत-भेद हो जाने से उन्हें वहाँ से हटना पड़ा । फिर रामानुज श्री रंगम् जाकर बालुगारों के प्रबन्धों का पत्थी भाँति व्यवस्थित किया और श्री वैष्णव मत को जमाया । उसके पश्चात् ये यामुनाजाचार्य के शिष्य हुए और श्री संप्रदाय की स्थापना की । यामुनाजाचार्य के वैकुण्ठ वास के पश्चात्, जमनी कथाधारण प्रतिभा और विद्वता के कारण वैष्णवमत की गद्दी के उचराधिकारी को । नाथ मुनि की तरह श्री रामानुज ने भी उचरी भारत के प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा की । श्री रामानुज ने अपने भक्ति-विषयक सिद्धांतों के स्पष्टीकरण के लिए संस्कृत में लोक ग्रन्थों और भाष्यों का प्रणयन किया ।

रामानुज के अनुसार किं जीव भौक्ता है और व्यक्ति ज्ञान योग्य है । परमेश्वर इन दोनों का अन्तर्यामी है । तीनों नित्य हैं । किन्तु प्रथम दो स्वतः स्वतंत्र होते हुए भी ईश्वर के शरीर या प्रकार माने जाते हैं । श्री रामानुज भी ब्रह्म की वद्वैत सत्ता को मानते हैं, लेकिन उनके अनुसार उपयुक्त तीनों गुणों से विशिष्ट रहने के कारण विशिष्टाद्वैत है । रामानुज किसी भी पदार्थ को निगुण नहीं मानते । संसार के सभी पदार्थ गुण विशिष्ट हैं । ईश्वर सर्वैव सगुण है ।

शंकर के वद्वैत मत में ब्रह्म और जीव की एकता मानी गयी है । जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है और ब्रह्म के समान ही मुक्त और स्वप्रकाश है । परन्तु रामानुज के अनुसार जीव न ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, न नित्य मुक्त ही । वे जीव को शेष और भागान्तरैषी श्री मानते हैं । दोनों में वैद-वैदो ब्रह्मा स्फुलिंग और अग्नि का संकल्प है । ईश्वर जीव का नियामक है और जीव की मुक्ति ईश्वर पर अवलम्बित है । शंकर के अनुसार जीवके बन्धन का कारण अविद्या है और अविद्या का का नाश ज्ञान से होता है, क्रिया से नहीं । किन्तु रामानुज मुक्ति की उपायना द्वारा ही सम्भव मानते हैं । शंकर के अनुसार कैवल ज्ञान ही मुक्ति के लिये पर्याप्त साधन है । परन्तु रामानुज भक्ति की मुक्ति का एक मात्र साधन मानते हैं ।



भावान् की कृपा ही उनकी प्राप्ति का उपाय है। <sup>प्रयत्न</sup> प्रयत्न या शरणगति इस प्रकार के लिये साधन है। शुरू भी एक साधन है। विशिष्टाद्वैत में भक्ति अन्तिम साधन है, जिस पर बढ़कर जीव प्रभु की प्राप्ति करता है। भक्ति के पूर्व ज्ञान-योग और उत्तरे भी पूर्व कर्म-योग की स्थिति है। कर्म द्वारा पुण्य जुड़ जाता है और वह ज्ञान योग की ओर ले जाता है। ज्ञानयोग से प्रकृति का अनुभव होता है और उस अनुभव से जीव अपने को प्रकृति से पृथक् समझने लगता है। जीव का वात्मज्ञान ही उसे भगवद्भक्ति की ओर आकर्षित करता है। भक्ति-योग में अष्टांग-योग की साधना भी सम्मिलित है। भक्ति-योग की प्राप्ति के लिए रामानुज ने सात साधनों का वर्णन किया है (१) पवित्र जन्म के द्वारा शरीर की शुद्धि। (२) सदाचार। (३) कर्मव्रत बन्धन। (४) पंच महायज्ञों का उपादन। (५) सत्य, दया, दान, अहिंसा आदि का पालन। (६) आराधनादिता और (७) अहंकार का त्याग। इन साधनों द्वारा भक्ति-भावना सिद्ध होती है।<sup>१</sup>

श्री रामानुज द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस में हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष दोनों का सुन्दर सामंजस्य है। हृदय-पक्ष बाङ्गारों की देन है और बुद्धि-पक्ष का समावेश शास्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित शास्त्रीय भक्ति से हुआ है। कर्ने की आवश्यकता नहीं कि रामानुज के भक्ति-विषयक सिद्धांतों पर बाङ्गारों की विचार-धारा का गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रपञ्च तो बाङ्गारों की शरणगति की रामानुज द्वारा दिया हुआ पारिभाषिक नाम है। बाङ्गारों में भक्ति के जो जाण थे, उन्हें अन्य भक्तों के लिए भी निर्दिष्ट करने की रामानुज ने प्रपञ्च नामक शब्द निकाला। यह भी ध्यान देने की बात है कि किसी के साथ जुड़ने की भी वैष्णव धर्म में दोषित होने का अधिकार, सब से पहले रामानुज ने ही प्रदान किया। इस का कारण था कि बाङ्गारों से जो एक जुड़ ह वंश के थे और जुड़ कुलौत्पन्न होने पर भी जनता उन्हें पुज रही थी।<sup>२</sup> सारांश यह है कि श्री वैष्णव संप्रदाय का

१-भक्ति का विकास, डा० मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ ३६२

२- संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह, दिनकर, पृष्ठ २८८ (द्वितीय संस्करण)

भक्ति-तत्त्व सांख्यिक दृष्टि से गीता, पांचरात्र संहिताओं पर आधारित होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से बाल्मिकों के प्रवचनों पर आधारित है।

१४ वीं शती के ज्ञान 'प्रपत्ति' को लेकर श्री वैष्णवों में दो दल हो गये। वेदान्त वैशिक (बैकट नाथ) तथा उनके पक्ष वालों ने भक्ति को मुक्ति<sup>का</sup> एक मात्र साधन नहीं मानकर ज्ञान का अनुष्ठान भी आवश्यक बताया। मध्वात्मामुनि (श्रीलोकचार्य) और उनके अनुयायियों ने प्रपत्ति को ही एक मात्र मार्ग बताया और उस पर विशेष जोर दिया। प्रथम दल वाले "वडकळे" कहलाये और श्री दूसरे विचार वाले "तेन्कळे" नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री २० गौविन्दाचार्य ने "वडकळे" और "तेन्कळे" के कारण सिद्धांतगत भेद बताया है।<sup>१</sup> "प्रपत्ति" के विषय में दोनों में जो मत-भेद है, उसे स्पष्ट करने के लिए क्रमशः कपि-क्षौर और माजौर-क्षौर का उदाहरण दिया जाता है। कपि क्षौर अपनी माँ के पेट से चिपका रहता है और माजौर क्षौर किता कुछ प्रयास किये ही अपनी माँ से रहित होता है। "वडकळे" के अनुयायियों को संस्कृत से विशेष प्रेम है और वे संस्कृत के शास्त्र-ग्रंथों के आधार पर भक्ति का उपदेश देते हैं। पर "तेन्कळे" पक्ष वाले बाल्मिकों के दिव्य प्रवचनों से विशेष कदा-भाव रहते हैं और "दिव्य प्रवचनों" को अपनी भक्ति-साधना का प्रधान आधार मानते हैं।<sup>२</sup> "तेन्कळे" दल के लोग ज्योत्स्ना-कृत उदार दृष्टि के हैं और उनमें ज्ञान में उच्च-नीच का भेद-भाव नहीं है। उनमें नीच जाति के लोग भी सम्मिलित हैं। "वडकळे" लोगों को जाति का गर्व बुरा नया है। स्मरण रहे कि रामानन्द ने श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाक्षेप मत के अनुयायी थे, "तेन्कळे" पक्ष के सिद्धांतों को ही अपनाया और उनका प्रचार हिन्दी-भाषी क्षेत्र में किया।

श्री रामानुजाचार्य के सिद्धांतों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-मार्ग के परिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना तब से पहले रामानुजाचार्य ने ही की है<sup>और</sup> भक्ति के इस स्वरूप ने उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन को पूर्णतया ही प्रभावित किया।<sup>३</sup>

१- Journal of Royal Asiatic Society, 1910. — page 1103 — Article by A. Govinda Charya.

२- श्री लोकचार्य ने श्री "वक्त भूषण" नामक ग्रन्थ में प्रपत्ति मार्ग का विशद आस्त्रीय विवेचन किया है।

३- श्री और उनका साहित्य, डा० हरवंश ठाकुर शर्मा, पृष्ठ ६० (द्वितीय संस्करण)

यह सर्व विदित ही है कि हिन्दी प्रदेश में चौदहवीं  
 पन्द्रहवीं शताब्दी में जितने वैष्णव भक्तवादी वाचार्य और संत हुए सन्त  
 शंकर के मायावाद का तीव्र विरोध किया और विष्णु भक्ति के किसी न  
 किसी पक्ष का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार रामानुज ने  
 अपने सिद्धांत का नाम विशिष्टाद्वैत रख कर इस विषय में शंकर के अद्वैत मत के  
 साथ किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया, उसी प्रकार उच्चर के  
 वाचार्य और भक्तों ने सगुणोपासक होते हुए भी <sup>अद्वैत के अंतिम रूप को स्वीकार, है। अद्वैत और</sup> भिन्न-भिन्न नामों से अपनाया।<sup>१</sup>

---

१- हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, डा० शिरण्य, पृष्ठ २६

### मध्वाचार्य और उनका संप्रदाय

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत के पश्चात् वाचाय संकर के मायावाद के विरोध में निकलने वाला दक्षिण-भारत का दूसरा प्रमुख मत द्वैतमत है।<sup>१</sup> इसके प्रतिष्ठापक श्री मध्वाचार्य थे। भक्ति-आन्दोलन की दृष्टि से श्री मध्वाचार्य द्वारा स्थापित द्वैतमत की बड़ी महत्ता है। श्री मध्वाचार्य ने न केवल शंकर के अद्वैतवाद का तीव्र विरोध किया, बल्कि भक्ति की पूरी प्रतिष्ठा के लिए श्री रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत की भी बख्शीकार कर दिया और द्वैतमत की स्थापना की। इस कारण दक्षिण के वाचायों में श्री मध्वाचार्य का एक विशिष्ट स्थान है। श्री मध्वा का जन्म सन् ११६७ में कर्नाटक के 'उडुपि' नामक स्थान में हुआ।<sup>२</sup> इनका पहला नाम आनन्दतीर्थ था और वेद-वेदांगों की विद्या पाकर उन्होंने दक्षिण और उत्तरी भारत के सभी प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा की। तत्पश्चात् उडुपि लौट आये और अपने सिद्धांतों के स्पष्टीकरण के लिए ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने "प्रस्थान त्री" पर अपने विद्वत्पाठ्याचार्य माध्व लिखे और कुल मिलाकर सैंतीस ग्रन्थ रच डाले।

माध्व मत के अनुसार परमात्मा विष्णु हैं, जो अज्ञान गुण संपूर्ण हैं। दृष्टि, स्थिति, संसार, नियम, आवरण, बोध, बन्ध तथा मोक्ष - इन आठों कार्यों<sup>प्र</sup> केवल परमात्मा का ही अधिकार है। ज्ञान, आनन्द आदि कल्याण गुण ही उनके शरीर हैं। विष्णु परमात्मा स्वतंत्र और अद्वितीय हैं। परमात्मा में कौन रूप धारण करने की शक्ति है,

१- "The work of Madhvaacharya is but a continuation of that of Ramanuja and his school." - "Sri Ramanuja & Sri Madhva", by Srinivasa Rao Murdi. (Vedanta Kesari, Vol. 29. page 151-52)

२- मध्वाचार्य के जीवन-काल के विषय में विद्वानों में मत भेद है। देखिए:

"The date of Madhvaacharya", B. N. Krishna Murki, Annamalai University Journal, Vol. III. page. 245.

जो जीव में नहीं है। "सर्वस्वम्" उसके मूल रूप तथा अवस्थित रूप में कोई भेद नहीं है। "मत्स्य कूर्मादि स्वरूपां च, क्व चरणादि व्यक्तां च, ज्ञानान्वादि गुणों च भावान् अत्यन्त अभिन्नं च, कास्य भावान् और उनके अवतारों में भेद दृष्टि रक्ता नितान्त कुक्ति है।"

ऊनी, "परमात्म भिन्ना तन्वाचाचीन ऊनीः" नामक उक्ति के अनुसार परमात्मा से भिन्न होकर भी <sup>उसके</sup> अधीन रहती है। वह विष्णु परमात्मा की माया रूपिणी शक्ति है। वह भी नित्य मुक्त, अज्ञात, अकार, दिव्य और व्यापक है। परमात्मा के इंगितानुसार उसके कार्य विधान का संपादन करती है। ऊनी ही मुक्त और अमुक्त सबको उनकी योग्यता के अनुसार दृष्टि के समय आनन्द प्रदान करती है। भावान् ऊनी में स्वी - भाव रहते हैं।

माध्यमत के अनुसार ज्ञात सत्य है, जीव भावान् के फिंर हैं। जीवों की संख्या अनन्त मानी गयी है। जीव तीन श्रेणियों में जाते हैं - (१) भक्ति योग्य (२) नित्य संहारी, (३) तनोयोग्य। तीनों प्रकार के जीवों की मुक्ति का रूप भी अलग अलग है। "मुक्तिर्नैव सुखानु भूतिः" अर्थात् वास्तविक सुख की अनुभूति ही मुक्ति है। माध्याचार्य के अकृत्य, अन्त्रांति ल्य, अक्षिदिवर्ग और भाग नामक मुक्ति के चार प्रकार माने हैं। भाग-मुक्ति के भी चालीस, सामोप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार हैं।

माध्याचार्य के अनुसार उपासना के दो रूप हैं -

(१) शास्त्रानुशील (२) ध्यान। कुछ साधक शास्त्रानुशील से अपरोक्ष ज्ञान पाते हैं और दूसरे भावान् के अर्द्ध स्मरण में लीन रहकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। शास्त्रान्यास से अज्ञान का आवरण छट जाता है और वास्तविक ज्ञान का बोध होता है। यह ज्ञान परमात्मा के ही अधीन है। अपरोक्ष ज्ञान के मिलने पर ही परम भक्ति प्राप्त हो सकती है, जो भावान की कृपा पर निर्भर है। माध्यमत में मुक्ति का अर्थात् साधन" अमला भक्ति है। वह दीप्त रहित निर्मल भक्ति है यह भक्ति अनन्य और अहेतुकी होनी चाहिए। माध्याचार्य ने पांचरात्र के तन्वों की विशेष महत्ता नहीं दी। उन्होंने भागवत-पुराण के



साधक-मार्ग भी हो अपनाया। माध्वक में राम, कृष्ण आदि सभी अवतारों की उपासना का विधान तो है। परन्तु रामा कृष्ण का उल्लेख नहीं मिलता।

मध्वाचार्य का जैनता भारतीय धर्म-शास्त्र में अपना जग महत्व रखती है। मध्व ने मायावाद का खंडन किया कि वे भक्ति - का निष्कर्षक हुआ। उन्होंने श्री शंकर और श्री रामानुज की तरह अपनी मत में भक्तों की स्थापना करके संन्यासियों का संगठन किया। उनके परचात उनके शिष्य पद्मनाभाचार्य महाशयता हुए और फिर संप्रदाय में प्रसिद्ध: अन्य आचार्यगण हुए। दक्षिण भारत में ही नहीं, बल्कि उत्तरी भारत में भी माध्वक का प्रचार हुआ। इसका के अनुयायी अब विशेषकर कर्नाटक (मैसूर) प्रान्त में और कुछ उत्तर भारत में कुन्दावन आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

आचार्य मठों की विचार-धारा और श्री मध्वाचार्य की विचार-धारा में अनेक बातों में साम्य देखा जा सकता है। आचार्य तो श्री मध्वाचार्य से कुछ स्ताव्यियों के पहले ही भक्ति-संबन्धी अपने विचारों का प्रचार कर चुके थे। चूंकि मध्वाचार्य भी दक्षिण के ही थे और उनके समय तक आचार्यों के विचारों का काफी प्रचार हो चुका था, अतः बहुत संभव है कि श्री मध्वाचार्य की विचार-धारा भी उनसे प्रभावित हो। दोनों विचार-धाराओं के साम्य की स्पष्ट करने के लिए एक स्वतंत्र अध्ययन आवश्यक है।

### निंबार्कीचार्य और उनका संप्रदाय

सनक संप्रदाय अथवा निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक श्री निंबार्क आचार्य थे। श्री निंबार्क के समय का अभी तक निर्णय हो नहीं सका। डा० भांडारकर के अनुसार उनका निधन सन् १९७२ में हुआ था। अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि वे श्री रामानुजाचार्य के बाद के आविर्भूत हुए। वे तेलुगु ब्राह्मण थे। इनका जन्म कर्नाटक प्रान्त के अन्तर्गत बल्लारी नामक जिले के निंबार्कपुरम्-नगर में हुआ था। इनके कई नाम मिलते हैं - निंबार्कीचार्य, निंबादित्य, निंबास्वर और नियमानंदाचार्य आदि। यद्यपि वे कर्नाटक में अवतरित हुए थे, तो भी इनके जीवन का अधिकतर समय कुन्दावन में ही बीता। संप्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि निंबार्कीचार्य श्री विष्णु के सुदर्शन चक्र के अवतार हैं।

श्री निर्वर्णकार्य द्वारा प्रतिपादित मत शैलाक्षेप कथा 'मैदा मैद' कहलाता है। यह भी शैल के मायावाद के विरोध में कहा हुआ था। उन्होंने कभी सिद्धांतों के स्पष्टीकरण के लिए दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे -

(१) देवान्त पारिजात - सौरभ और (२) सिद्धांत रत्न। प्रथम ग्रन्थ ब्रह्म सूत्रों पर संक्षिप्त भाष्य के रूप में है। द्वितीय ग्रन्थ का दूसरा नाम "दशश्लोकी" है।

निर्वर्ण-मत के अनुसार जीव, ज्ञात और ईश्वर कथपि भिन्न भिन्न है तो भी जीव तथा ज्ञात का व्यापार सर्व अस्तित्व ईश्वर की इच्छा पर ही अवलंबित है। जीवात्मा अवस्था-भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी। जीवात्मा अणुरूप है, विभिन्न शरीरों में पृथक्-पृथक् है, अन्त्य विच्छिष्ट और जानी है। यह जीवात्मा ज्ञादि-माया से बंध रहता है और तीन गुणों से संयुक्त रहता है। ईश्वर की कृपा से ही उसे अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है।

इस मत के अनुसार ब्रह्म ब्रह्मेत, अविकृत और सदा निर्विकार है। वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सब गुणों का आश्रय भी है। यद्यपि ब्रह्म निर्विकार है, तो भी माया के कारण इसका स्वाभाविक आनन्द अन्त रूपों में अनुभूत होता है। ब्रह्म में ऐसी शक्ति है कि वह अपने को अविकृत अविकृत रखी हुए नाना रूपात्मक पदार्थों में उत्पन्न करके आनन्द का अभोग कर सकता है। जीव और ईश्वर का संबन्ध शक्ति और शक्तिमान तथा बंध और बंधी<sup>का</sup> है। नारायण, भगवान्, कृष्ण, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, आदि परमात्मा के ही विविध नाम हैं। ब्रह्म के चार रूप माने गये हैं - 'पर ब्रह्म' अर्थात् परम कर्तारत्व, 'अपर ब्रह्म' अर्थात् सर्व स्वच्छा और 'अपर मूर्ति' अर्थात् जीव रूप है। इन्हीं कारणों से ही यह मत मैदानेद या शैलाक्षेप कहलाता है।

निर्वर्ण-मत की साक्षात् रूपिणी भक्ति श्री रामानुज के श्री संप्रदाय के भक्ति-योग से साम्य रखती है। इस मत में श्रीप्रपत्ति कथा शरणार्थि तत्त्व पर विशेष और दिया गया है। जीव प्रपत्ति द्वारा ही भगवान् के अनुग्रह का अधिकारी होता है। ~~यदि~~ भावतुमा से आत्मा के अन्दर भक्ति-भाव का आविर्भाव होता है जिस से भगवान् के साक्षात्कार की सिद्धि होती है। जीव का जब तक शरीर से संबन्ध है तब तक भावदू - भावोत्पत्ति संभव नहीं है, अतः जीवन्मुक्ति की वशा भी संभव नहीं है।

कतः जीवन्मुक्ति की दशा भी संभव नहीं है।<sup>१</sup> श्री निंबार्क के अनुसार भक्ति किसी भी भाव से की जा सकती है, साधक के लिए किसी विशेष भाव की स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं। नवधा भक्ति के अन्वय से भावान के प्रति प्रेम कहा राशि मिलती है। ६ प्रेम भक्ति इस संप्रदाय में पांच भावों से पूर्ण की गई है - ज्ञान, दास्य, सत्य, वात्सल्य और उज्ज्वल। श्री निंबार्क का "वेदान्त-पारिजात" की "सिद्धान्त-रत्नावलि" टीका में इन पांचों रसों का सुन्दर पदिक्य दिया गया है। यद्यपि प्रथम चारों भक्ति-भावों के प्रति उपेक्षा नहीं दिखाई, गई है तो भी अंतिम भाव माधुर्य या "उज्ज्वल भाव" की विशेष महत्त्व दिया गया है। इस संप्रदाय में परम उपास्य-देव श्री कृष्ण हैं जिनके चरणारविन्दों को छूँकर भक्तों के लिए और कार्य गति नहीं है। ब्रह्मा शिव आदि भी उनकी कन्दना करने हैं। भक्तों की इच्छा है वे कृष्ण-भक्तों के ध्यान के योग्य आकार धारण करते हैं। उनकी शक्ति अचिन्त्य और अमर्य है। श्री कृष्ण केवल स्मरण मात्र से अविद्या पर्यन्त समस्त अनर्थों के हरने वाले हैं। कतः वे हरि कहलाते हैं।

निंबार्क संप्रदाय के भक्ति - मार्ग की एक विशेषता राधा की उपासना है। इस संप्रदाय में उपास्य - देव श्री कृष्णचन्द्र हैं जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्तियों के द्वारा राधा तथा अन्य बाह्यादिनी गौपी स्वरूपा शक्तियों से परिवेष्टित रहते हैं। राधा के स्वरूप का विवेक इस संप्रदाय के लोक शास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। निंबार्क ने श्री राधा की अनुकूल-सौम्या माना है क्योंकि उनका स्वरूप कृष्ण के अनुकूल ही है। श्री कृष्ण चन्द्र जिस तरह सर्वेश्वर हैं, उसी तरह राधा भी सर्वेश्वरी हैं। शक्ति वृषभानु की कन्या हैं जो कृष्ण के वामांग में सुशोभित हैं, स्वर्गों शक्तियों से परिवेष्टित हैं और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। निंबार्क ने राधा को स्वकीया और विवाहिता माना है। परन्तु यह अवतार जीजा के विषय में ही सत्य है। नित्य जीजा में तो स्वकीया और परकीया में भेद नहीं रहता।

---

१- "वेदान्त रत्न-मञ्जूषा" दशरथजी के धर्म श्लोक पर टीका।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ तक निंबार्क संप्रदाय की भक्ति-साक्षा का उरणमति कक्षा प्रपञ्च है संबंध है, वह श्री रामानुज की भक्ति से मिलती जुलती है। किन्तु उसमें एक अन्तर दीख पड़ता है। जहाँ रामानुजाचार्य ने भक्ति भाव की उपनिषदों में विहित उपासना की कौटिक तक पहुँचा दिया और इसके मौलिक रूप को बख्श दिया, वहाँ श्री निंबार्क ने भक्ति के सहज मूल भाव को सुरक्षित करने की चेष्टा की है। रामानुजाचार्य के और निंबार्कचार्य के सिद्धांतों में एक और अन्तर यह है कि जहाँ रामानुज ने भक्ति को नारायण उन्मी, मू और लीला तक ही सीमित रखा वहाँ निंबार्क ने कृष्ण और शक्तियों द्वारा परिवेष्टित राधा को ही प्रधानता दी है। निंबार्क संप्रदाय में प्रेम-ल्लाण-रागत्मिका परा भक्ति ही भक्ति-साक्षा का चरम लक्ष्य है। वह सत्य है कि बचरी भारत में राधा-कृष्ण भक्ति का शास्त्रीय ढंग है प्रतिपादन करने का पूर्ण श्रेय श्री निंबार्कचार्य को ही मिलना चाहिए।

श्री निंबार्कचार्य की विचार-धारा बाङ्गारों की विचार-धारा के बहुत निकट है। भक्ति और प्रपञ्च के विषय में तो दोनों में बहुत साम्य है। श्री निंबार्क के समय तक बाङ्गारों के भक्ति-संबन्धी विचार समस्त दक्षिण भारत में फैले हुए थे और रामानुज-संप्रदाय के माध्यम से और कुछ बाङ्गारों के ग्रन्थों से। श्री निंबार्कचार्य भी दक्षिण के ही थे। अतः बहुत संभव है कि बाङ्गारों की विचार-धारा ने उन्हें प्रभावित किया हो। बाङ्गारों की तथा श्री निंबार्क की विचार-धाराओं में दीख पड़ने वाले साम्य को समष्ट करने के लिए एक स्वतंत्र अध्ययन ही अवशिष्ट है।

## विष्णुस्वामी और उनका संप्रदाय

~~वैष्णव~~

रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य और निवाकाचार्य के साथ

दक्षिण के वैष्णव आचार्यों में श्री विष्णुस्वामी का नाम भी उल्लेखनीय है जो स्क - संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। लेकिन एक की बात है कि कबो तक विष्णुस्वामी के ऐतिहासिक अस्तित्व का सम्यक् परित्यक्त न प्राप्त हो सका है और न उनके द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक सिद्धांतों का विश्लेषण और विवेक हो चुका है। विष्णु स्वामी के व्यक्तित्व, उनके समय, उनके मातृ संप्रदाय के विषय में मातृ वेद देखकर कभी कभी एक से अधिक विष्णुस्वामियों की भी कल्पना की जाती है। इस प्रकार अब चार विष्णुस्वामियों का उल्लेख किया जाता है। एक विष्णुस्वामी तमिऴ-प्रदेश के पाण्ड्य राजा के राज गुरु कैवेल्वर भट्ट के पुत्र थे जिन्होंने सर्व प्रथम वेदान्त सूत्रों पर "सर्वज्ञ सूक्त" नामक भाष्य लिखा था। इनका पूर्ण-नाम देवनन्द भी बताया जाता है। दूसरे विष्णु स्वामी कांचीपुरम निवासी राजापोड विष्णुस्वामी थे जिन्होंने कांची नगर में श्री वरदराज की मूर्ति की स्थापना की। इनके विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने दारिद्र्य में रणझोड़ी तथा सप्त - नगरियों में से अन्य है नगरियों में विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित कीं। प्रसिद्ध ग्रन्थ "श्री कृष्ण कर्णामृत" के रचयिता श्रीरामाचर विल्ल माल की इन्हीं का शिष्य बताया जाता है। एक तीसरे विष्णुस्वामी का उल्लेख मित्रा है जो बल्लभ - संप्रदाय के लोगों के विश्वास के अनुसार बल्लभाचार्य की गुरु - परंपरा के एक प्राचीन आचार्य थे।<sup>१</sup> डॉ० दीन दयालु गुप्त ने भण्डारकर रचित "इन्स्टीट्यूट ऐनल" में प्रकाशित एक लेख के आधार पर यह बताया है कि मात्साचार्य और

१- प्रो० भट्ट श्री बल्लभाचार्य श्री विष्णुस्वामी की शिष्य-परंपरा में नहीं मानते।

उन्होंने लिखा है --- ".... The connection between Vishnushwami and Vallabhacharya cannot therefore be accepted as historically and philosophically correct." —

Prof. G. H. Bhat, 8th Oriental Conference, Mysore.



साधनाचार्य के गुरु श्री विद्याशंकर थे जिसका दूसरा नाम विष्णु स्वामी था ।<sup>१</sup>

डा० मांडारकर ने विष्णुस्वामी का समय १३ वीं शताब्दी में माना है ।<sup>२</sup> प्रो० मट्ट ने कुछ प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि विष्णुस्वामी १० वीं शताब्दी में जन्म विद्यमान थे ।<sup>३</sup> किन्तु फिर भी पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में विष्णुस्वामी के विषय में निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि विष्णुस्वामी संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य विष्णु-स्वामी का आविर्भाव कब हुआ और कहाँ हुआ । एक अनुमति यह भी है कि महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला भागवत-धर्म जो कि जागे चले " वारकरी संप्रदाय " के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नाम देव आदि मक्त थे , वस्तुतः विष्णुस्वामी - मत का रूपान्तर ही था । इस संबंध में नामादास के निम्न लिखित प्रसिद्ध वृत्त्य का उल्लेख किया जाता है ।

नाम तिलीक शिष्य , सुरसति सद्गुरु उवाच ।

गिरा गंग - उन्हारि काव्य रचना प्रेमाकार ॥

आचार्य हरिदास कुत्सुल ज्ञानन्द दास ।

तिहि मारम वल्लभ विदित पुष्ट पक्ति परासन ॥

नवधा प्रधान सेवा सुदृढ मन वच ज्ञान हरिचरण रति ।

विष्णुस्वामि संप्रदाय बुद्ध ज्ञानदेव गम्भीर मति ॥

( वृत्त्य - ४८ )

परन्तु इस में सत्यांश किता है, यह कहा नहीं जा सकता । एक अन्य अनुमति है, जिसके अनुसार विष्णुस्वामी तमिल-प्रदेश के

१- अष्टादश और वल्लभसंप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ४२

२- Vaishnavism, Saivism and other minor religious sects, page 77.

३- "Vishnueswami and Vallabhacharya" (7th All India Oriental Conference, Baroda). Prof. G. H. Bhatt, page 449.

ब्राह्मण थे और कावेरी नदी के किनारे पर उल्लेख है। इसी कारण उनकी कावेरी विष्णुस्वामी भी कहा जाता है।<sup>१</sup> कहते हैं कि ये वेद-वेदांगों का अध्ययन कर आचार्य बने। भगवान् के साक्षात् दर्शन का सामान्य इन्हें प्राप्त हुआ था और इन्हें ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान तथा भक्ति-मार्ग की अनुभूति हुई थी। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी ने बहुत समय तक भक्ति-मार्ग का प्रचार किया था और वे भक्ति की मुक्ति से अधिक महत्त्व देते थे। उन्होंने वेद, उपनिषद्, स्मृति, वेदांत, याग आदि समस्त ज्ञान-साहित्य के सार-रूप में भक्ति की ही माना।

विष्णुस्वामी के लिखे कौन-कौनसे ग्रन्थों के नाम बताये जाते हैं। परन्तु, अभी तक, उनकी लिखी कतायी जानेवाली पुस्तकों में से केवल "सर्वज्ञ युक्त" ही एक ऐसी रचना है जो प्रामाणिक ठहरती है। इस ग्रन्थ से विष्णुस्वामी - संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों और भक्ति - पद्धति का परिचय मिलता है। श्रीचर ने अपनी टीकाओं में इस ग्रन्थ का उत्तम रूप प्रकाश किया है जिस से स्पष्ट होता है यह विष्णुस्वामी की ही रचना है। "सर्वज्ञ युक्त" पर लिखी श्रीचरी टीका के आधार पर विष्णुस्वामी संप्रदाय के वास्तविक स्वरूप का भली-भांति स्पष्टीकरण हुआ है। विष्णुस्वामी के अनुसार "ईश्वर" सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और वे अपनी ह्लादिनी सविद्व शक्ति के द्वारा 'वाश्लिष्ट' हैं। 'माया' ईश्वर के अधीन है। विष्णुस्वामी के इस ईश्वर की सत्, चित्, नित्य, निजाचित्य एवं पूर्णानन्दमय विग्रह चारी नृसिंह भी कहा गया है। विष्णुस्वामी के दृष्टदेव इस प्रकार, नृसिंहावतार भगवान् जान पड़ते हैं।<sup>२</sup> जीव, विष्णुस्वामी के अनुसार, "स्याविषासवृत्त" क्योंकि अपनी अवस्था द्वारा बाध्यादित है और घिरा हुआ है। वह 'संकोशनिकराकर' क्योंकि केशों का आगार - स्वरूप है। वह स्वयं ज्ञानन्द प्राप्त करने का अधिकारी है और स्वयं दुःख भी भोग करता है। अतः ईश्वर और जीव में परस्पर भेद है। कुछ अंशों में विष्णुस्वामी का दार्शनिक मत माध्वमत से मिलता - जुलता दोस पड़ता है।

१- Prof. Kane's History of Dharma Sutra, Vol. I. page 271.

२- वैष्णव धर्म, श्री परशुराम कुर्वेदी, पृष्ठ ६४-६५

हिन्दी कृष्ण - भक्ति - कवियों की प्रभावित करने वाले  
उत्तर भारत के भक्ति - संप्रदाय

पिछले पृष्ठों में संकर के मायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में दक्षिण में उत्पन्न चार दार्शनिक संप्रदायों और उनकी भक्ति - पद्धतियों का संक्षेप में परिचय दिया गया। यह भी दिखाया जा चुका है कि उक्त चार संप्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों ने तथा उनके अनुयायी अन्य वैष्णव आचार्यों ने वैष्णव - भक्ति और सात्त्विक सिद्धांत - वाद की स्थापना कर संकर के मायावाद और विवर्तवाद का खंडन किया। इन लोगों ने अपने मत का मुंडन और विपक्षी मत का खंडन करने के लिये प्राचीन ग्रन्थों पर भाष्य लिखने के साथ साथ नए नवीन ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। यद्यपि इनकी दार्शनिक विचार - धाराओं में थोड़ी बहुत भिन्नता थी, तीनों सब का उद्देश्य भक्ति-मार्ग की प्रशस्त करना ही था। इन संप्रदायों के अनुयायी - भक्तों के द्वारा भक्ति का प्रचार दक्षिण में ही नहीं, बल्कि उत्तरी भारत में भी हुआ। इन वैष्णव-आचार्यों के सिद्धांतों से प्रभावित होकर ईसा की १५वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी के अंत तक उत्तर भारत में कुछ अन्य वैष्णव - संप्रदाय भी पनपे जिनके द्वारा वैष्णव-भक्ति का व्यापक प्रचार समस्त उत्तरी भारत में हुआ। अपनी मधुर भावनापूर्ण विश्व ज्ञान तत्त्व - राशि के कारण इस समय राम - भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति का स्वर अधिक ऊँचा ही उठा रहा। इसका भव्य कृष्ण-भक्ति के प्रचारक भावुक वैष्णव आचार्यों को है। मध्यकाल में रामानन्द के उपरान्त राम - भक्ति का प्रचारक कोई उतना समर्थ वैष्णव आचार्य नहीं हुआ। इसके विपरीत कृष्ण - भक्ति के क्षेत्र में श्री वल्लभाचार्य, श्री चैतन्य आदि आचार्यों ने अमृत पूर्व कार्य किया। इस काल में उपास्य - देव कृष्ण के भिन्न - भिन्न रूप की लेकर पनपने वाले संप्रदायों में निम्न छिन्ति चार प्रमुख संप्रदाय हैं:-

- १- वल्लभ - संप्रदाय
- २- चैतन्य-संप्रदाय
- ३- राधा वल्लभ - संप्रदाय
- ४- हरिदासी संप्रदाय या सखी-संप्रदाय

कृष्णोपासना को पहले ही श्री मध्व, श्री विष्णुस्वामी, श्री निर्वाक बादि वाचार्यों ने अपनाया था। किन्तु उनके उपास्य - देव कृष्ण के स्मृति में अन्तर था। मध्वाचार्य के कृष्ण स्वयं विष्णु थे जो सर्वगुण संपन्न परमात्मा थे। विष्णुस्वामी ने कृष्ण के गोपाल का रूप स्वीकार किया था। निर्वाक ने अपनी उपासना में राधा तत्त्व का भी समावेश कर राधा कृष्ण की युगल - रूप को अपनाया था। मध्वाचार्य को कृष्ण की ~~मुक्त~~ कृष्णोपासना और विष्णुस्वामी की गोपालोपासना में मीथेन के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। अतएव जागे चलेकसी कृष्णोपासना को अपनाकर श्री बल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने उत्तरी भारत के भक्ति - बान्धवों को एक नई दिशा में मोड़ दिया। यद्यपि इन दोनों ने अपने पूर्ववर्ती वाचार्यों का न्यूनाधिक रूप से अनुसरण किया था तो भी अपने अपने का विशेष के कारण अपनी पूजा - पद्धति और मन्त्र - कीर्तनों के द्वारा कृष्णोपासना को व्यापक रूप देते हुए वैष्णव धर्म की जन - समाज के अत्यन्त निकट पहुंचाने का प्रयत्न किया। इन दोनों ने अपने राधावल्लभ कृष्ण गोपी - बल्लभ कृष्ण की उपासना द्वारा वैष्णव धर्म में नूतन शक्ति का संचार किया और समस्त उत्तरी भारत की जनता पर अपने आचारण व्यक्तित्व की छाप डाली।

जिस समय ब्रज भूमि में श्री चैतन्य और श्री बल्लभ का के भक्तों ने अपने अपने साक्षा - मार्ग का प्रचार प्रारंभ किया, लगभग उसी समय राधा कृष्ण की युगल - उपासना का एक दूसरा भक्ति प्रधान संप्रदाय प्रचलित हुआ जो राधावल्लभ संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी समय एक अन्य संप्रदाय का भी उदय हुआ जिस में राधाकृष्ण की युगल - उपासना का भाव से प्रचलित संप्रदाय संरक्षी - मंडा। उपयुक्त चार संप्रदायों के अन्तर्गत भक्त - कवियों द्वारा हिन्दी में कृष्ण - भक्ति के विपुल साहित्य का निर्माण हुआ। इन चार प्रमुख संप्रदायों और उनकी भक्ति - पद्धतियों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जाता है।

## वल्माचार्य और उनका संन्यास

महाप्रभु वल्माचार्य का जन्म सन् १४७८ ई० में हुआ। इनके जीवन वरित का विस्तृत परिचय वल्म दिग्विजय में मिलता है। श्री वल्म उत्तमण भट्ट नामक तेलंग ब्राह्मण के पुत्र थे जो बान्द्र प्रदेश के कांकावाड़ नामक स्थान के निवासी थे। श्री वल्म की माता की नाम हस्तमाताक था। श्री उत्तमण भट्ट अधिकतर काशी में ही रहा करते थे। ज्ञातः वल्म के समस्त संस्कार, शिक्षा - दीक्षा, पठन - पाठन काशी में ही हुआ था। कहा जाता है कि वल्माचार्य जी ने १० वर्ष की आयु में ही वेद, वेदांग, दर्शन, पराणों का अध्ययन कर लिया था और वे काशी में प्रसिद्ध हो गये। अपने पिता के निधन के पश्चात् उन्होंने लोक प्रधान तीर्थ - स्थानों की यात्रा की और लोक विद्वानों से शास्त्रार्थ करके मायावाद का संन्यास और ब्रह्मवाद और भक्ति का प्रचार किया। तीर्थयात्रा में वे दक्षिण की ओर भी गये थे। इस यात्रा में उन्होंने दक्षिण के वैष्णव - आचार्यों के सिद्धांतों का सम्यक् अध्ययन किया। यह प्रसिद्ध है कि कर्नाटक के विजय नगर साम्राज्य की राजधानी में वल्म ने माधव महाप्रभु की आचार्य व्यासराय के समापतित्व में आयोजित सभा में शास्त्रार्थ किया था और युक्तियुक्त तर्कों से उस सभा में उपस्थित नास्तिकों के उठाये गये प्रश्नों का समाधान कर उन्हें परास्त किया था और आचार्य की पदवी प्राप्त की। इस विषय पर प्रसन्न होकर राजा कृष्ण देव राय ने श्री वल्माचार्य जी का 'कलकामिर्भक्त' का स्वागत किया।

भारतवर्ष के प्रधान तीर्थों में भ्रमण करने के उपरान्त आचार्य ने कभी वृन्दावन, कभी मथुरा और कभी काशी में रहकर अपने भक्ति - सिद्धांतों का प्रचार किया। कहा जाता है कि वल्माचार्य जी की प्रथम ब्रह्म-यात्रा के समय गौवर्धन की गिरिराज पहाड़ी पर एक भगवद स्वरूप का प्राकट्य हुआ था, 'देवदत्त' नाम से जिसकी वर्ण ब्रह्मासी लोग जन्य ब्रह्मा और भक्ति के साथ करते थे। और अपनी दूसरी यात्रा में जब वे पुनः गौवर्धन पहुँचे तो ब्रह्मवासियों ने उनकी उक्त स्वरूप के दर्शन कराये। वल्माचार्य ने उस स्वरूप का नाम



“जीनाथ जी” या “गौदजीनाथ” रहा। इन्हीं प्रेरण से उन्होंने जी नाथ जी का पाटीस्तव किया और मगवान् की सेवा-विधि स्थिर की। जहाँ वे एक बार वे काशी गये और वहीं रहते हुए सन् १५३० में उन्होंने अपनी यह छोटी समाप्त की।

वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिये लोक छोटे बड़े ग्रन्थों का भी निर्माण किया था और “वल्लभ दिग्विजय” के अनुसार उनके पैंतीस ग्रन्थों बड़े जाते हैं। परन्तु अभी तक केवल छोटे बड़े तीस ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं जो वल्लभ-संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं। उनके लिये १६७ लघुकाव्य श्लोकालम्बक ग्रन्थों में प्रमुख हैं - ब्रह्म सूत्र पर लिखा हुआ “वष्णु भाष्य”;  
ग्रन्थ ‘जोडशा’ ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध है। उन के  
 पूर्व भीमार्सा भाष्य, तत्त्वदीप निबन्ध, मागवत की व्याख्या - सुवीथिनी आदि हैं।

वल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धांत “शुद्धाद्वैत” के नाम से प्रसिद्ध है। “शुद्धाद्वैत मार्तण्ड” में “शुद्ध” का अर्थ “माया सम्बन्ध रहित” दिया गया है। वल्लभाचार्य ने शंकर के “ब्रह्म” से भिन्नता दिखाने के लिये ही “ब्रह्म” के साथ “शुद्ध” शब्द जोड़ दिया। शंकर ने ब्रह्म में माया - समलित - ब्रह्म को जात का कारण माना। पर वल्लभ ने माया से बलिष्ठ नितांत शुद्ध ब्रह्म को जात का कारण माना है।<sup>१</sup>  
 वल्लभाचार्य का यह शुद्धाद्वैतवाद “ब्रह्मवाद” या “विविक्त परिणामवाद” के नाम से भी प्रसिद्ध है।

१- माया सम्बन्ध रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।

कार्यकारण रूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् । ।

----- शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, २८

बल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्, चित् और आनन्द स्वस्म है। वह व्यापक है और सर्व शक्तिमान है। वह स्वतंत्र है, सर्वज्ञ है और गुणों से वर्जित है। बल्लभ के अनुसार ब्रह्म के ऊर्ण और निर्गुण दोनों रूप नित्य हैं। जो ब्रह्म वर्णोत्पीयान् है वह भीता महीयान् भी है। पर ब्रह्म एक होकर भी अनेक है और स्वतंत्र होकर भी भक्तों के अधीन है ब्रह्म के तीन प्रकार माने गये हैं -- (१) आधि दैविक ब्रह्म, (२) आध्यात्मिक कर्त्तृ क्तार ब्रह्म और (३) आधि भौतिक कर्त्तृ क्तार रूपी परब्रह्म।

जात सत्य है क्योंकि ठीक नायक कानान् स्वयं जात <sup>ई, जगत कार्य। जब कारण सत्य है तो कार्य भी</sup> के रूप में फैला हुआ है। ब्रह्म कारण सत्य है। बल्लभ ने जात और ब्रह्म के संकल्प को छेड़ते गये वस्त्र से समझाया है। जिस प्रकार वस्त्र को फेंकने पर वस्त्र नहीं रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म जात के रूप में फैला है और प्रत्य काल में वही वस्त्र छिंटकर "कारण" ब्रह्म के रूप में सूक्ष्म रूप में हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म का आविर्भाव जात के रूप में होता है और तिरौभाव को अवस्था में कैल ब्रह्म ही रह जाता है। क्तार ब्रह्म ज्ञान से प्राप्त होता है। परन्तु परब्रह्म पुरुषोत्तम कैल अन्य भक्ति से ही मिलता है। ज्ञानसे पुरुषोत्तम की प्राप्ति नहीं होती। "क्तार ब्रह्म" के आनन्द को बल्लभ "गणितानन्द" कहते हैं। क्तार ब्रह्म और पुरुषोत्तम (पर ब्रह्म) के आनन्द में "मात्रा" का अन्तर है। इस रूपपूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म छः अवस्थाओं से व्यक्त हैं:- ऐश्वर्य, वीर्य, यश, स्त्री, ज्ञान और वैराग्य।

जैसे कि ऊपर कहा गया, बल्लभ के अनुसार जिस प्रकार ब्रह्म सत्य है, उसी प्रकार जात और जीव भी सत्य हैं। डा० मांडारकर ने बल्लभ का के ब्रह्म-जीव-जात संकल्प को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि परमात्मा ने एकाकी रूप में पूर्णतः प्रसन्न न रहकर अपने को ही प्रकृति, जीवात्मा तथा अंतर्धानी आत्मा में विभाजित किया और ये तीनों उस से वस्तुतः जलती हुई अग्नि की किमदारियों की भाँति निकले, परमात्मा की इच्छा से ही प्रकृति

में किन्तु सर्व ज्ञानन्द तथा जीवात्मा में केवल ज्ञानन्द का ज्ञाव और तीसरे में ये तीनों पूर्ण रूप में वर्तमान हैं। भगवान् की जब रमण करने की इच्छा होती है, तब वह अपने ज्ञानन्द आदि गुणों के बंधों को तिरौछित कर स्वयं जीव रूप धारण करता है। इस व्यापार में केवल भगवान् की इच्छा ही प्रधान है, माया का ज़रा भी संबन्ध नहीं रहता। जीव ज्ञाता, ज्ञात - रूप और वस्तु होता है। सच्चिदानन्द भगवान् के अविकृत सैवंत से जड़ का निर्गम होता है और अविकृत किंश से जीव का आविर्भाव। इस मत में ईश्वर की विरुद्ध घर्षों का जागार कहा गया है। वह निर्गुण भी है और गुण भी। निर्धर्मक है और सधर्मक भी। जो ब्रह्म मत और वाणी से परे है, वह ध्यान है, शुद्ध भाव है अपनी इच्छा मात्र से गोचर और गम्य हो सकता है।

बल्लभ मत में जीव तीन प्रकार के हैं -

१- शुद्ध २- मुक्त और ३- संतारी। यज्ञ, जी ज्ञानादि के तिरौछान के पूर्व जीव शुद्ध रहता है। ये देव और कुर दो प्रकार के होते हैं। देव जीव भी कर्मादा और पुष्टिमाणीय मेद से भिन्न भिन्न होते हैं। जीव सच्चिदानन्द भगवान् से नितांत अभिन्न है। संतारी दशा में जब पुष्टिमाणीय सेवा से भगवान् का नैसर्गिक अनुग्रह जब जीवों के ऊपर होता है तब उन में तिरौछित ज्ञानन्द के बंधों का प्रादुर्भाव हो जाता है। अतः मुक्तवस्था में जीव स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप बन जाता है और भगवान् से ज्ञेय प्राप्त कर लेता है। किंश जीव भी ब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न है जैसे सोने से ली बाभूषण सोने से अभिन्न है। उसी प्रकार जीव व ब्रह्म अभिन्न हैं।

बल्लभ ज्ञात की नित्य मानते हैं। उसकी उत्पत्ति व विनाश नहीं होता। केवल आविर्भाव व तिरौभाव होता है। बल्लभ ज्ञात और वृत्तार में अन्तर मानते हैं। यह एक सर्वथा नवीन विचार है। उनके अनुसार ईश्वर की इच्छा से ईश्वर के केवल सर्व बंध का विस्तार ज्ञात है।

परन्तु संसार अविद्या के कारण ममता रूप पदार्थ है। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। काँका, काँफ़ी, वैभव, शरीर, ये सब संसार हैं। लेकिन पुष्टि का अनादि प्रवाह "जात" है, जो नित्य पदार्थ है। ज्ञान के उदय होने पर ममतामय संसार का नाश होता है।

बल्लभ संप्रदाय के अनुसार अखिल रसामृत मूर्ति निखिल लीलाधाम श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। इस रूप में होने के कारण यह मधुर लीलाद भी करनी है, जिस में सम्मिलित हो "आनन्द प्राप्ति" है। इस लिए कृष्ण के दो रूप हैं - १) लोक-वेद कथित पुरुषोत्तम और २) लोक वेदातीत पुरुषोत्तम। श्री कृष्ण अपनी आनन्द शक्तियों से परिवेष्टित होकर अपने भक्तों के साथ व्यापी वैकुण्ठ में निन्य लीला करते हैं। यह लोक विष्णु के वैकुण्ठ से ऊपर स्थित है और गौलीक भी इसी वैकुण्ठ का एक अंश मात्र है। भगवान में अनन्त शक्तियाँ हैं जिस में श्री, पुष्टि, गिरा, कान्धा, श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा, यमुना आदि आरह प्रधान हैं। श्रीला के हेतु भगवान का समस्त परिवार इस पृथ्वी पर अवतरित होता है। सब व्यापी वैकुण्ठ ही गोकुल के रूप में विराजता है।

आचार्य बल्लभ के अनुसार कृष्ण की प्राप्ति ही मुक्ति है। इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए वे निवृत्ति-मार्ग से प्रवृत्ति-मार्ग को श्रेष्ठ मानते हैं।

बल्लभ आचार्य का उद्वाहैतवाद भक्ति-साधना-मार्ग में "पुष्टि-मार्ग" कहलाता है। पुष्टि या पोषण भगवान् के अनुग्रह को कहते हैं। जीव जब तक भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि को प्राप्त कर नहीं पाता तब तक उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। साधन - मार्ग तीन

प्रकार के हैं - (१) बाधित भौतिक, कर्म-मार्ग है, (२) बाध्यात्मिक ज्ञान-मार्ग है और (३) परम मार्ग भक्ति-मार्ग है जो पुष्टि-मार्ग कहलाता है। ज्ञान-मार्ग से ज्ञान प्राप्त हो सकता है, पुरुषोत्तम की प्राप्ति तो परम-मार्ग अर्थात् "पुष्टि-मार्ग" से ही होती है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के चार भेद हैं:-

- (१) स्यादा पुष्टि भक्ति
- (२) प्रवाह पुष्टि भक्ति
- (३) पुष्टि पुष्टि भक्ति
- (४) शुद्ध पुष्टि भक्ति

स्यादा पुष्टि भक्ति में भक्त भगवान् के गुणों का जानता हुआ भक्ति करता है। प्रवाह पुष्टि में भक्त कर्म में विशेष रुचि रखता है। पुष्टि पुष्टि भक्ति में भक्त स्नेह संयन्त्र ही जाता है। शुद्ध पुष्टि भक्ति में पूर्ण प्रेम पूर्वक हरि की परिक्रिया करता हुआ गुण श्रवण ध्यान आदि में दत्तचित्त रहता है। भजन, पूजन आदि साधनों के द्वारा जो भक्ति प्राप्त होती है वह स्यादा भक्ति है। किन्तु जो भक्ति बिना किसी साधन के भगवान् के अनुग्रह मात्र से स्वतः उदित होती है, जिसमें जीवों पर दया कर भगवान् अपने अनुग्रह को प्रकट करते हैं वह पुष्टि भक्ति कहलाती है। यह रागात्मिका भक्ति (प्रेम लक्षणा) है। भगवान् का जिस पर अनुग्रह होता है उसे पहले भगवान् की ओर प्रवृत्ति होती है, भगवान् बन्धे लाते हैं। तदुपरान्त वह भगवान् के स्वरूप - परिक्रिया के लिए ज्ञान प्राप्त करता है। उसके पश्चात् प्रेमा भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस की तीन भूमियाँ हैं - (१) प्रेम (२) वासक्ति और (३) व्यसन। व्यसन प्रेम की परिपुष्टि दशा है। जो भक्त इस दशा तक पहुँच पाता है, वह चारों मुक्तियों का तिरस्कार कर देता है। उसके भीतर, बाहर, सर्वत्र, सब भगवान् दिखाई पड़ते हैं। पुष्टि मार्गीय भक्ति



में ईश्वर के प्रति बुद्ध और उत्कट प्रेम की आवश्यकता है। इस प्रेम के उत्कर्ष के लिए भगवान् से बिछुड़ने का ज्ञान और उन से मिलने की उत्कट अभिलाषा तथा विह्वलता का होना आवश्यक है। इस प्रेम के बिना ब्रविषा का नाश नहीं हो सकता। ब्रविषा विषा से नष्ट होती है और भक्ति विषा का एक पर्व है। परन्तु यह भक्ति भी भगवान् के अनुग्रह पर ही संभव है। भगवान् का अनुग्रह ही पुष्टि मार्गीय भक्त के सभी कार्यों का नियमक है।

श्री बल्लभ ने भक्त की भगवान् की सेवा तीन प्रकार से करने का आदेश दिया है :- तनुजा, विज्जा और मानसी। भगवान् के निमित्त ही अपने शरीर और उसके व्यापारों का एक - निष्ठा से कर्षण तनुजा सेवा है। अपने मन और संपत्ति से और मन के द्वारा भगवान् की सेवा करना क्रमशः विज्जा और मानसी कहलाती है। मानसी सेवा भयस्कर कायी गयी है। श्री बल्लभ ने तो भगवान् को सर्वमाय से मज्जीय माना है तथा प्रत्येक स्थिति में कृष्ण की शरण लेकर उसे ही अपना साक समझकर भक्त को सदा उसी पर विश्वास रखने को कहा है। चाहे फल - प्राप्ति में विर्लब्ध हो जाए, किन्तु भक्त को उसके विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं कर केवल यही समझना चाहिए कि वह भगवान् का सेवक है। पुष्टि मार्गीय भक्ति की विशेषता है कि श्री कृष्ण की शरण में गये किन्ता मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। जिस प्रकार गीता में "सर्व धर्मान् परित्यज्य शारणां ब्रज" कहा गया है, उसी प्रकार बल्लभ मत में कहा गया है:-

तस्मान् स्वात्मता नित्यं श्री कृष्णः शरणं मम ।

वदद्भिरेव सततं स्थैर्यमित्थेन मे मतिः ॥

-- नवरत्न - श्लोक ६

श्री बल्लभ मत का मंत्र है " श्रीकृष्णः मम " ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शरणगति और कान्य भक्ति ही बल्लभ -संप्रदाय का परम लक्ष्य है।

श्री बल्लाचार्य ने भगवत्प्रेम की प्राप्ति करने के लिए भागवत में प्रतिपादित नवधा भक्ति की सराहना करते हुए 'सुबोधिनी' टीका में उसके साधन - क्रम को बखानने का वादेश दिया है। किन्तु इन समस्त साधनों में आत्म निवेदन या आत्म समर्पण की अत्यन्त महत्व देते हुए 'कृतःकरण प्रबोध' नामक ग्रन्थ में उन्होंने 'सर्व समर्पित भक्तन्या ज्ञाथो'दृष्टि सुखी भव' नामक उक्ति द्वारा भक्त को आत्मा सहित पूर्ण रूपेण कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण करने का वादेश दिया है। जैसा कि आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है - "पुष्टि मार्ग में जाने के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि लोक और वेद दोनों के प्रतीपन से दूर हो जाय, इन फलों की आकांक्षा छोड़ दे, जो लोक की अनुसरण करने से प्राप्त होते हैं तथा जिनकी प्राप्ति वैदिक कार्यों के समादन द्वारा कही गयी है। यह तभी हो सकता है जब कि साधक अपने को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दे। इस समर्पण से स्व मार्ग का आरम्भ होता है और पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप का अनुभव और ठीका सुष्टि में प्रवेश हो जाने पर कृत ।"

ऊपर कहा जा चुका है कि बल्लाचार्य ने प्रवृत्ति-मार्ग को ही निवृत्ति-मार्ग से श्रेष्ठ माना था। वे गृहस्थ थे। उनके गोपीनाथ एवं विठ्ठलाय नामक दो पुत्र भी हुए। श्री बल्लभ जी का देहान्त होने पर श्री विठ्ठलाय, उनकी गद्दी पर बैठे। श्री विठ्ठलाय ने संप्रदाय के प्रचार के लिये कौक प्रयत्न किये।

पुष्टि-मार्ग के अन्तर्गत कौक भक्त कवियों ने हिन्दी में कृष्ण-भक्ति के विपुल साहित्य का निर्माण किया। "अष्टशाय" पुष्टि-मार्ग की महत्वपूर्ण देन है, जिसके कवियों ने श्री कृष्ण की विविध - लीलाओं को लेकर भजन - कीर्तन रचकर हिन्दी के भक्ति - साहित्य के भंडार को भर दिया। उनके द्वारा उत्तर भारत के भक्ति - आन्दोलन में नयी स्फूर्ति का संचार हुआ।

### कैतन्य महाप्रभु और गौडीय संप्रदाय

समस्त उचरी भारत की विशेषतः काठ की मजि - रस से बाष्पावित करने का येय महा प्रभु कैतन्य की है। बाप मजि - रस की सजीव मूर्ति है। और ये उदान्त मधुर भाव का जाज्वल्यमान प्रतीक। कैतन्य महाप्रभु की बल्लाचार्य के समकालीन थे। श्री कैतन्य का जन्म सन् १४८५ में काठ के नदिया (शांतिपुर) नामक स्थान में हुआ। इनका जन्म का नाम विश्वम्भर था, बाद में उनके कुन्यायियों द्वारा कृष्ण - कैतन्य कहे जाने लगे। बहुत गौर वर्ण होने के कारण इनका नाम गौरांग भी पड़ा। अपनी कठारह वर्ष की अवस्था में विवाह करके अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते रहे। इस समय इनका मुख्य कार्य गंभीर अध्ययन और अध्यापन था। इन्होंने समस्त शास्त्रों में, विशेषकर तर्क - शास्त्र में निपुणता प्राप्त की। इनकी प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया। अतः दूसरा विवाह कर एक समय पितरों की आद-क्रिया करने गया-धाम पधारे। वहाँ 'ईश्वरपुरी' नामक एक प्रसिद्ध वैष्णव से उन्होंने मेंट की। कहा जाता है कि कैतन्य देव ईश्वरपुरी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए और वहीं सन्यास लेने का संकल्प लेकर, लौटने पर घर-बार त्याग दिया। इनमें बहुत परिवर्तन आ गया। इनके विचार बल बढ़ गये। इन्होंने कर्मकाण्ड की कड़ी बाँझीका की। मोक्ष के लिए हरिनाम - स्मरण और कीर्तन की एक मात्र साधन बताकर इन्होंने वर्णव्यवस्था को व्यर्थ बताया। इनकी इस नवीन विचार-धारा के समर्थक और इनके सहयोगी इनके शिष्य नित्यानन्द थे जिन्हें वे माई के समान मानते थे। ये पछे घर में कीर्तन - भजन करते थे और प्रेम में मस्त होकर नाचा करते थे। इनकी बातों से प्रेमाश्रु की अविरल धारा बहा करती थी।

चैतन्य देव ने भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थों में भ्रमण किया वे दक्षिण भारत में विशेषकर तमिल-प्रदेश के वैष्णव क्षेत्रों में भी गये।<sup>१</sup> बहुत संभव है कि तमिल-प्रदेश की अपनी यात्रा में वे नायक भक्त कवि बाङ्गारों की रचनाओं से परिचित और प्रभावित हुए हों। श्री टी. व्हेन. गान्गुली ने लिखा है कि चैतन्य नम्माङ्कार के जन्म - स्थान "बाङ्गार तिरुनगरी" में जाकर उनके पद-संग्रहों की हस्त लिखित प्रतियाँ अपने साथ ले गये थे।<sup>२</sup> फिर वे पुरी जादि प्रसिद्ध स्थानों में कई वर्षों तक भ्रमण करते हुए वे अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। यह प्रसिद्ध है कि श्री चैतन्य अपने अंतिम दिनों में कृष्ण की मूर्ति में इस प्रकार भावावेश में आते थे कि वे मूर्द्धित हो जाते थे। इनका गोलोक-गमन सन् १५३३ में हुआ।

श्री चैतन्य के विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने अन्य आचार्यों की भांति अपने संप्रदाय को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास नहीं किया और न उन्होंने "प्रस्थान त्रयी" पर कोई भाष्य ही प्रस्तुत किया। वे प्रेममय कृष्ण की मधुर - भाव की मूर्ति में इस तरह भाव मग्न रहते थे कि अपने मन के तात्त्विक स्पष्टीकरण के लिए किसी ग्रन्थ की रचना करना उनके लिये संभव ही नहीं था। उनके रचित केवल दस श्लोक ही उपलब्ध हैं। इसी कारण उनके सिद्धांतों का सुव्यवस्थित रूप उनके अनुयायी पंडितों द्वारा जागे बतकर प्रस्तुत किया गया।

जिस समय चैतन्य का आविर्भाव हुआ था, उस समय कांठ में विष्णु - मूर्ति का बहुत कम प्रचार था और कांठी-भूजा और हाठों की प्रकृता थी। उस परिस्थिति की प्रतिक्रिया चैतन्य पर गहरी पड़ी थी। इसके अलावा जिस वातावरण में चैतन्य का पिह्ला जीन व्यतीत हुआ, उस पर निर्माली, बिल्वमाल, ज्यदेव, चंडीदास और विद्यापति की मूर्तों और कवियों का प्रभाव भी असीमित मात्रा में पड़ा था। इन सब के सम्मिश्रण से चैतन्य के ऊपर प्रेममय कृष्ण के प्रति आधुनिक मूर्ति का

१- "He visited all the shrines of Tamil Country and also Conjeeparam, Sri Rangan, Madura, Sijali, Kumhakanam and Tanjore." - "Sri Chaitanya Maha Prabhu" - by Tritanda Bhikkhu Bakshi Pradipa Tirtha, page 79.

२- "The life of Sri Gouranga", Sri D. N. Ganguli, page 45.  
(भगवत् विषयम्, पृष्ठ ४१ से उद्धृत)

रंग बड़ गया था। भगवान का नाम संकीर्तन चैतन्य का अन्यन्त लोक-प्रिय साधक था, जिस के द्वारा जन साधारण को अपने बान्धोजन के प्रति बाहुल्य करने में वे सफल हुए। फलतः इन के शिष्यों की एक बड़ी मंडली संगठित हुई जिस में प्रधानतः नित्यानन्द और ब्रह्माचार्य नाम के दो महात्मा थे। ये दोनों ब्रह्म भक्त ही नहीं, बल्कि प्रगाढ़ शास्त्र-वेत्ता भी थे। वैष्णव-धर्म की लोक-प्रिय ज्ञान के हेतु नित्यानन्द ने तो सब के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। चैतन्य की अन्य शिष्य परंपरा में श्रीः नरकों का विशिष्ट स्थान है, जो "चट्ट गोस्वामी" के नाम से प्रसिद्ध है। इन गोस्वामियों ने वृन्दावन को चैतन्य मत के प्रचार का केन्द्र बनाया। वृन्दावन में रहते हुए चैतन्य - संप्रदाय की भक्ति का शास्त्रीय विवेक प्रस्तुत करने के हेतु इन गोस्वामियों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इनमें तीन के नाम उल्लेखनीय हैं। वे हैं रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी। रूप गोस्वामी के लिये "भक्ति - रसामृत - सिन्धु," "उज्ज्वल नील मणि" और "लक्ष्मणवतामृत" भक्ति का शास्त्रीय विवेक करनेवाले अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। सनातन गोस्वामी के "श्रीमद् भागवत दशम स्कन्ध की टीका" तथा "ब्रह्म भागवतामृत" और जीव गोस्वामी के "चटसंदर्भ" हैं तथा "गोपाळ चंद्र" बादि भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

चैतन्य मत "अचिन्त्य भेदा भेद" कहलाता है।

कुछ लोग चैतन्य - संप्रदाय को माध्य - संप्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। इस संबन्ध में डा० सुशील कुमार डे ने अपने "वैष्णव फाथ एण्ड मूवमेंट इन बंगाल" ग्रन्थ में बड़ी निस्पक्ष दृष्टि से तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार माध्य संप्रदाय और चैतन्य - संप्रदाय में दार्शनिक घरातल पर समता नहीं है।<sup>१</sup> यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माध्य मत की शक्ति होने पर भी चैतन्य मत का दार्शनिक दृष्टिकोण सर्वथा स्वतंत्र है। माध्य की मूल दृष्टि द्वैत की है। लेकिन चैतन्य मत "अचिन्त्य भेदा भेद" है। चैतन्य मत में परम तत्त्व स्वयं की कृष्ण है। यह तत्त्व सच्चिदानन्द स्वल्प ज्ञान शक्ति से पूर्ण है तथा ज्ञादि है। शक्ति और ज्ञान में न तो परस्पर भेद है और न जोड़ ही। इन दोनों का संबन्ध तर्कों के द्वारा अचिन्त्य है। अतः यह सिद्धांत "अचिन्त्य भेदा भेद" की संज्ञा से अभिहित है। इस संबन्ध में रूप

१- "Vaishna Faith and Movement in Bengal", Dr. S. K. De, page 19-20.



ИЗДАНИЕ

ВТОРОЕ

ИЗДАНИЕ

ВТОРОЕ

तब उनका "आवेश" रूप कहलाता है। भगवान् के अवतार भी तीन प्रकार के हैं -

१-पुरुषावतार, २- गुणावतार और ३- लीलावतार।

परब्रह्म का आदि अवतार पुरुषावतार है जिसे वायुदेव कहते हैं। पुरुषावतार वायुदेव के तीन भेद हैं। - संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रवन्त। प्रकृति के तीन गुण - सत्, रज, तम - के अधिष्ठाता तीन गुणावतार हैं। ये हैं - विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र। नारद जननादि भगवान् के लीलावतार हैं और रामचन्द्र, बुद्ध कल्कि आदि लीलावतार हैं।

अन्तः शक्ति संपन्न भगवान् कृष्ण की शक्तियों तीन प्रकार की हैं - अन्तरंग - शक्ति, बहिरंग शक्ति और तटस्थ शक्ति। भगवान् की अन्तरंग शक्ति स्वरूप शक्ति है जो सत्, चित् तथा आनन्द युक्त है। शक्ति शक्ति माया कहलाती है जिससे बहु-प्रकृति का उद्भव होता है। माया भी दो प्रकार की है - द्रव्य माया और गुण - माया। अन्तरंग और बहिरंग दोनों शक्तियों के बीच की तटस्थ शक्ति से जीव का संबन्ध है। अन्तरंग शक्ति के भी तीन रूप हैं-संक्षिप्त, संवित् और ह्लादिनी। संक्षिप्त रूप शक्ति के कद पर भगवान् स्वयं सत्ता धारण करते हैं। ह्लादिनी शक्ति के रूप में भगवान् स्वयं आनन्द स्वरूप हैं जो दूसरों को आनन्द देने वाले हैं।

भगवान् जो करने का करने का सर्वोच्च साधन शक्ति है। जीव की शक्ति, भगवान् की कृपा से ही मिलती है। शक्ति दो प्रकार की है - वैधी तथा रागानुभा। वैधी शक्ति भगवान् के ऐश्वर्य का मार्ग है ~~सिद्धि~~ इस शक्ति के अनुगामी जीव भगवान् के मसुरा द्वारिका घाट में प्रवेश पाते हैं। रागानुभा शक्ति का मार्ग माधुर्य-मार्ग है। वैतन्य, संप्रदाय का प्रसिद्ध शक्ति - ग्रन्थ "शक्ति रसामृत - सिन्धु" में वैधी और रागानुभा शक्ति के शास्त्र पर बड़े विस्तार से लिखा गया है।

भगवान् श्री कृष्ण की भावमयी लोक लीला चार भावों से संबन्ध रखती है - सत्य, वात्सल्य, दास्य तथा माधुर्य। इन्हीं चार भावों से कृष्ण - चैतन्य संप्रदाय में प्रेम - भक्ति होती है। इन भावों में सब से अधिक उत्कर्ष माधुर्य - भाव का है। ~~क्योंकि~~ क्योंकि इस प्रेम के अन्तर्गत अन्य प्रेम - भावों का भी समावेश है। प्रेम और आनन्द की शक्ति - स्वरूपा गोपियों में राधा महाभाव-स्वरूपा है। मधुर भाव की रति तीन प्रकार की मानी जाती है-

१ - साधारण रति ~~है~~ २- समंजसा रति और ३- समर्था रति। साधारण रति का उदाहरण कुब्जा है। समंजसा रति का दृष्टान्त रुक्मिणी, जाम्बवती है समर्था रति के उदाहरण ब्रज गोपियों हैं। इस भाव को धारण कर भक्त भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा उनके आनन्द के लिए करते हैं। इस भक्ति-भाव की साधना में किसी प्रकार के विधि-नियम या शास्त्र-मर्यादा का ध्यान नहीं होता। यही भाव अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचकर 'महा भाव' या 'राधा - भाव' के रूप में परिणत होता है।

चैतन्य मत में इस - साधना ही प्रधान साधना है। स्वयं श्री कृष्ण चैतन्य भगवान् कृष्ण के प्रेम में इस तरह तन्मय हो जाते थे कि सारी सुधसुध सोकर उन्मत्त हो चीखने-चिल्लाने भी लग जाते थे। यही भक्ति 'राधा - भाव' की कहलाती थी अर्थात् वे स्वयं राधा स्वरूप होकर कृष्ण के प्रेम में 'महाभाव' <sup>का अनुभव करते थे। इसी कारण लोग चैतन्य को राधा</sup> के अवतार के रूप में मानते थे। चैतन्य संप्रदाय की मधुर - भक्ति बल्लभ - संप्रदाय की मधुरा भक्ति से साम्य रखती है।

अन्य वैष्णव मतों की तरह चैतन्य - संप्रदाय में भी सत्संग, नम्र महिमा, भगवान् की लीला का कीर्तन, भजन, वृन्दावन वास, भागवत - श्रवण, गुरु-सेवा, तुलसी पूजन आदि भक्ति के विभिन्न साधनों पर जोर दिया गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है चैतन्य मत में भगवद् - भक्ति का द्वार समाज की सभी श्रेणियों के लोगों के लिए खुला है। इस कारण उत्तर भारत के भक्ति - आन्दोलन में श्री चैतन्य देव का महत्वपूर्ण योगदान है। इस संप्रदाय के अन्तर्गत ~~कई~~ <sup>कृष्ण - भक्ति - साहित्य</sup> ~~कई~~ <sup>का</sup> निर्माण किया और हिन्दी - भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया है।

### राधावल्लभीय संप्रदाय

एक भूमि में वैतन्य और वल्लभ-संप्रदायों के भक्तों ने अपनी साधना - मार्ग का प्रसार प्रारंभ किया था। तीर्थहरी उद्योग के पूर्वादि में राधा-कृष्ण की युगल - उपासना को लेकर एक अन्य संप्रदाय ब्रजभूमि में प्रचलित हुआ जो 'राधावल्लभीय संप्रदाय' कहलाया। इस संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिकों हैं। श्री हितहरिकों के विषय में यह कहा जाता है कि वे प्रारंभ में माध्व भक्तावली हैं और बाद में उन्होंने निर्वाक स्वामी की साधना-पद्धति का अनुकरण कर अपना अलग भक्ति - संप्रदाय चलाया। श्री हितहरिकों को ने पुनर्वाक में एक मन्दिर बनवाकर अपने राधावल्लभ की की मूर्ति की स्थापना की। लगभग सन् १५३४ ई० में उनके मन्दिर के प्रथम 'पट्ट-महोत्सव' के समय हितहरिकों को ने अपनी कृष्ण-भक्ति-पद्धति का सम्पूर्ण प्रसार प्रारंभ किया। उन्होंने अन्य वाधायों को तब ही अपने संप्रदाय के लिए न किसी दार्शनिक सिद्धांत का निरूपण किया, न ही और ज्ञान के साधनों की आवश्यकता ही बतायी। उन्होंने राधा और कृष्ण की प्रेम और आनन्द-लीला के ध्यान और मनन में तथा युगल-मूर्ति की पूजा में परमानन्द-प्राप्ति का साधन पौंचित किया। उन्होंने कृष्ण से राधा को पूजा और भक्ति को अधिक अधिक महत्वपूर्ण बताया।

स्मरण रहे कि राधावल्लभीय संप्रदाय एक साधन-मार्ग था, सात्विक सिद्धांत की दृष्टि से वैदान्त के विन्ध्य-विन्ध्य वादों के अन्तर्गत आनेवाला कोई 'माद' नहीं था। हितहरिकों के समकालीन मत नानादास को ने अपने 'मठमात' में राधावल्लभीय संप्रदाय की कृष्णोपासना पर प्रकाश डाला है। उनका हृष्य इस प्रकार है -

“श्री हरिकों गुरुार्थ भजन को रोति सुकृत कौड धानि है।

श्री राधाचरण प्रसाद हृष्य वति सुख उपासी। सुं कैलि दम्पती तहाँ की करत उपासी। सर्वस महु प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी। विधि निषेध नहिं दात अन्य उत्कट प्रतपारी। श्री व्यास सुक पय अकुरि रीति मी पशिवानि है। श्री हरिकों गुरुार्थ भजन को रोति सुकृत कौड धानि है।

(हृष्य - ६०)

राधावल्लभ संप्रदाय की कुछ छानबीन के निबन्धों में वक्त की  
 मृन्दाका काका मानते हैं और कुछ छानबीन के निबन्धों में वक्त की  
 विष्णु स्नातक ने अपने ग्रन्थ "राधावल्लभ संप्रदाय" : सिद्धांत  
 और साहित्य" में यह सिद्ध किया है कि यह संप्रदाय अपनी साक्षात्-  
 पद्धति, विचार - भाषा, सेवा-पूजा आदि में किसी संप्रदाय का  
 अनुगत नहीं है । वास्तव में गौस्वामी जी ने विभिन्न संप्रदायों की  
 पद्धतियों का मनन कर अपनी स्वतंत्र प्रणाली है इस संप्रदाय की स्थापना की ।  
 उन्होंने विधि विनियम के बाह्यकार की एकदम की निर्यात और  
 उपेक्षाणीय बताया । उन्होंने अपनी वाणी है माधुर्य भाव की प्रेम  
 छाया भक्ति का जोड़ा रूप प्रकट किया । उन्होंने प्रेम-सिद्धांत की  
 स्थापना में वैदिक ब्रह्म मर्यादा का जिक्र नहीं किया और नैतिक रूप है  
 प्रभावित होनेवाले प्रेम की जोड़ या हाथ की सीमाओं में बांधा अनुचित  
 बताया । श्री हितहरिकंठ की है दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं - "राधाकृतानिधि"  
 और "चित्त बीरासी" । इन ग्रन्थों में राधाकृष्ण की रूप-माधुरी  
 और सेवा-माधुरी का कवित्वपूर्ण वर्णन है ।

राधावल्लभ संप्रदाय का मूल आधार राधा-प्रेम है।  
 इसके आधार ही साधक का साधन और साध्य निश्चित रहता है ।  
 आस्थापन करने पर यह प्रेम ही "रस" कहलाता है । इस में राधाकृष्ण-प्रेम  
 की निष्काम प्रेम की संज्ञा दी गयी है । इस में राधा की आराधना है  
 बिना कृष्ण की आराधना का निषेध है । इसमें राधा के बिना कृष्ण की  
 कल्पना ही नहीं है । श्री हितहरिकंठ ने राधा की परकीया- भाव है  
 पृथ्वी रत्ना और राधिका जी की लष्ट देवी के रूप में मानने का उपदेश दिया ।  
 उनके अनुसार राधा की सेवा स्वीकार्य- परकीया के रूप में न होकर स्वतंत्र  
 रूप में है । श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है - "हरिकंठ जी इस प्रकार

न अवतार जी कृष्ण की वफा लष्ट मानते हैं और न कुछ किछोर नन्दन

---

१-राधावल्लभ संप्रदाय: सिद्धांत और साहित्य, पृष्ठ ५३



क्या श्री कृष्ण-मातुली की। वे नित्यविहारिणी श्री राधा की ही अपना स्पष्ट मानते हैं। उनका क्या स्पष्ट है कि राधा स्वतः पराशक्तिरूपा है। वह महाशक्तिरूपा है। वही सेव्या - वाराध्या है।<sup>१</sup>

एक संप्रदाय के अनुयायियों ने श्याम-पाका की न जमाकर केवल कोंार की श्याम-छायाओं की ही अपनाया है। एक संप्रदाय में राधाकृष्णक की कुं-छाया के ही मन से श्री बालनन्द प्राप्त होता है, जो 'परम रूप माधुरी भाव' कहा गया है। राधा और कृष्ण का मिलन नित्य पुनरावृत्ति में संपन्न होनेवाली नित्य छाया है। वहाँ श्याम की कोई स्थान नहीं है। 'हरिकी' संप्रदाय कथितः "एक संप्रदाय" है। उसी श्री-मूर्ति श्री राधा और कृष्ण के नित्य मिलन के अवसर पर तात्कालिक भाव से उनकी सेवाओं में लगा रहता है।

संप्रदाय-प्रवर्तक श्री शिवहरिकों स्वयं स्पष्ट कवि से और उनके परचाय एक संप्रदाय के अन्तर्गत और वह कवि हुए चिन्मयी और भक्ति-प्रधान ग्रन्थों का रचना की। एक संप्रदाय के कुछ वर कवियों ने इस भाषा में विपुल भक्ति-साहित्य का उर्जा किया है।

### हरिदासी अथवा सती संप्रदाय

सौतहरी सती में राधा-कृष्ण की युग-उपासना की ऊँच एक और संप्रदाय प्रचलित हुआ जो 'सती संप्रदाय' कहा गया। एक संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे, जिनके नाम पर उस भक्ति-संप्रदाय की 'हरिदासी संप्रदाय' भी कहा जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मत निर्भार - संप्रदाय की ही एक शाखा है। श्री स्वामी हरिदास जी प्रारंभ में निर्भार मत के अनुयायी थे और बाद में उन्होंने गौपी-भाव की कवकप्राप्ति का एक भाव साधन मानकर अपनी साधना-पद्धति को प्रतिष्ठा की। श्री हरिदास जी ने आरम्भिक काल में इसी संप्रदाय की वैदन्त के किसी बाद का अपना अन्य किसी दार्शनिक

१- भागवत संप्रदाय, श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ, ४४०

सिद्धांत का प्रसार करने के लिए माध्यम नहीं बनाया था । उनका एक मात्र उद्देश्य राधाकृष्ण को सुनते-उपासना का सही माध्यम प्रसार करना था । बताया जाता है कि कृष्णार्क में श्री स्वामी जी के समय में ही विहारी जी का मन्दिर बनवाया गया था ।

स्वामी जी के एकमात्र नाम नामाचार्य ने उनकी गति-व्यति का परिचय देते हुए लिखा है -

“ बासवीर उपास कर “रक्षि” नाम हरिदास की ।

कुछ नाम ही मैं कम नित कुं विहारी ॥

अकालीन रहे कैलि सही सुत की अधिकारी ।

गान-कला-गन्धर्व स्वाम- स्वामा हीं तोषे ।

.....

नामाचार्य जी के कथन से यह विदित होता है कि स्वामी जी गान-कला में निष्णात थे और अनेक सुनझु मन्त्री द्वारा स्वामा - स्वाम को स्तुति किया करते थे । स्वामी जी की रची हुई “कैलिमाल” नामक फाफली विख्यात है जिसमें कन्धारों के मधुरतम भाषों की सुन्दर व्यंजना हुई है ।

डा० विमोन्द्र साहू ने सही संप्रदाय की निर्गार्ह संप्रदाय है पृथक् माना है । वे लिखते हैं - “कहा जाता है कि निर्गार्ह संप्रदाय के सिद्धांतों का अङ्गारण करके श्री स्वामी हरिदास जी ने अपना संप्रदाय बनाया । किन्तु सही संप्रदाय की धारणा - पद्धति में बड़ा मोल्लि के है । स्वामी हरिदास जी के अङ्गार सहीमाय है उपासना करने का विधान है श्री निर्गार्ह संप्रदाय में गृहीत नहीं होता । सही संप्रदाय वैदिक सिद्धान्त का ही प्रत्यक्ष रूप है श्री मूल नहीं करता । --- ट्टो संघान (कृष्णार्क) में सही संप्रदाय की श्री शिष्य - परम्परा और साहित्य उपलब्ध होता है, यह श्री निर्गार्ह संप्रदाय है सम्बद्ध प्रतीत नहीं होता । कुछ सरकार को बाराध्य मानने पर भी सही रूप है उसी बाराकता का विधान सही संप्रदाय में है श्री स्वीपासना को वाशीनिक मूल्य है सर्वथा अस्मृत श्री”

१- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृष्ठ ५१-५२

श्री हरिदास जी को शिष्य-परंपरा में जानेवाले बनेक कवी ने भक्ति-प्रदान गन्ध लिये हैं जिन से इस संप्रदाय के सिद्धान्त स्पष्ट हुए हैं। इस संप्रदाय के अनुसार प्रिया है समस्त लीला-विहार प्रियतम है हेतु और प्रियतम है प्रिया है हेतु हैं। प्रिया-प्रियतम एक प्राण दो दैव हैं। इसलिए उनके वानन्द-गोचर सखियों का प्रसन्नता के लिए हैं। श्री ठाकुरीलाल के सुख में सखियों की प्रसन्नता है। इस प्रकार अपनी छि उनमें किसी का सुख नहीं है। ठाकुरीलाल का प्रेम काम से कौड़ी दूर है। श्री कृष्ण काम के बंध में नहीं हैं। इस श्यामा-स्वाम के प्रेम में स्वरसता और नित्य नवीनता है। प्रियतम जब जब प्रिया का सुख देखती हैं तब तब वह क्या सा लगता है। प्रिया-प्रियतम निरन्तर अपरक नैमी से एक छूरी की रूप-भाषुरी का पान करते हैं। दोनों के एकाकार में भी एक छूरी का स्पर्श न दास पड़ने का किमौन-मय है। इसी स्पष्ट प्रेम और स्पष्ट प्रिय का कल्पना नहीं हो सकती। राधा-कृष्ण का यह प्रेम और नित्य विवाह बहुधा सुखता के कारण सब के लिए दुर्लभ है।

ब्रजगीतियों का प्रेम स्वपिरि है। परन्तु यह श्यामा-स्वाम का निरुद्ध विहार उनकी दुर्लभ है। ललितदि सखियों की हां यहाँ तक पहुँचें हैं। क्योंकि वे निरुद्ध-निरुद्ध को फिर सहचरी हैं और उन्हें अपनी सुख की बाह नहीं है। उनका सुख ठाकुरीलाल को बमिजावा की पूर्ति ही है। स्वामी हरिदास जी के निरुद्ध-विहारी ब्रज के नहीं हैं। ब्रज विहारी निरुद्ध-विहारी के अंतर्गत हैं। वे स्वप्न में भी नित्य विहार की होकर निरुद्ध से बाहर नहीं जाते। नित्य बुन्दाका अवसुत और अलौकिक है। विहारी-विहारिणी जी का नित्य विहार निरन्तर चलता है।

इस संप्रदाय के अनुयायी श्री हरिदास जी की ललित सखी का अवतार मानते हैं। श्री ललितवतार स्वामी हरिदास जी श्यामा-स्वाम के इस नित्य विहार की अनन्य सहचरी हैं। स्वामी जी इस निरुद्ध-रस के उदारक हैं। उसका प्राप्त उनका कृपा के बिना अशभव है। श्री निरुद्ध विहारी का प्रेम उनकी कृपा से ही प्राप्त होता है। इसके लिए साधक को "सखीमाव" से राधाकृष्ण की सुगठ-भूर्ति का उपासना में लीन रहना चाहिए।

श्री स्वामी हरिदासजी स्वयं अच्छे कवि थे। उनके संप्रदाय के अनुयायी सुख और मोक्ष के लिए जिन्होंने ब्रजभाषा में उच्च भक्ति - साहित्य का निर्माण किया है।

द्वितीय अध्याय

“ कवि और काव्य ”

### तमिल के वैष्णव-मक्त - कवि : बालवार

तमिल में बालवार शब्द का साधारणतया उन बादल वैष्णव मक्तों के लिए प्रयुक्त होता है जिनके पद "नालाविर दिव्य प्रबन्धम्" में संगृहीत हैं। "प्रबन्धम्" में कहीं भी "बालवार" शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल एक स्थान पर यह शब्द बाया है, परन्तु वैष्णव-मक्त के कर्म में नहीं। नमालवार की रचनाओं में "वैष्णव मक्त" के लिए "वडियार" जवा" मावर" शब्द ही मिलता है। वस्तुतः "बालवार" शब्द उन मक्त कवियों के जीवन-काल के पलायु ही प्रयोग में आया। इसका प्रथम प्रयोग श्री रामानुजाचार्य के समय में श्री पिळ्ळान द्वारा "प्रबन्धम्" पर लिखी गई टीका में मिलता है।

"बालवार" शब्द का एक कर्म "मग्न" होना है। इस कर्म में यह शब्द किसी भी छोटे बड़े महात्मा के लिए प्रयुक्त हो सकता है, जिसे बाध्यात्मिक ज्ञान की सागर में गोता लगाया हो। कुछ शिस्तियों से कहा जाता है कि प्रारंभ में यह शब्द केवल वैष्णव मक्तों के लिए न होकर, जैन, वैदिक-मक्तों तथा भावान् कुद के लिए प्रयुक्त होता था। "बालवार" शब्द का एक दूसरा कर्म "शासन करनेवाला" भी है। (बालवत् = शासन करना) अतः बालवार शब्द से वास्तव उस व्यक्ति से है जो भावद् - मुक्ति तथा भावद् गुणों के अनुभवों में मग्न रहने के कारण भावान् पर प्रेमपूर्ण <sup>आधिपत्य</sup> कर रहा हो। परन्तु जब यह शब्द तमिल प्रदेश में केवल उन बाह्य वैष्णव-मक्तों के लिए ही प्रयुक्त होता, जिसे प्रस्तुत व्यक्त सन्ध्या रहता है।

१- नानमुक्क तिरुवन्तादि, पद संख्या १४

२- तिरुवायमोळी ५ : २ : ६

३- "The word 'Alvar' has peculiar significance of its own. It means one who has sunk into the depths of his existence or one who is lost in a rapturous devotion to the Lord. It is a word quite descriptive of all god-intoxicated men" - "Grains of Gold", R. S. Desikan, page. 6.

४- South Indian Inscriptions, Vol. III, page 102.

५- नीलेशी, मोक्कला, ८२ टीका



बालवार भक्तों के जीवन-काल को निश्चित करने में कड़ी कठिनाई है। ऐसा कोई इतिहास-ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता जिसमें बालवार सम्बन्धी प्रामाणिक सामग्री सुरक्षित मिलती हो और बालवार भक्तों ने भी अपनी स्मृतियों में अपने जीवन-काल बादि का स्पष्ट उल्लेख देना उचित नहीं समझा। संप्रदाय में प्रचलित ग्रन्थों में जो सामग्री मिलती है, उसके आधार पर बालवारों के वास्तविक जीवन-काल को निश्चित करना कठिन ही नहीं, कर्तव्य है। संप्रदाय में प्रचलित गुरु-परंपरा - ग्रन्थों में तो बालवारों को देवी गुरुजन माना गया है और उन ग्रन्थों के अनुसार बालवारों का अवतार-काल ज्ञात है तीन-चार सहस्र वर्षों के पूर्व पड़ता है।

बालवारों के जीवन-काल तथा जीवन-वृत्त का विवरण मुख्य-तया तीन स्रोतों से मिलता है :-

१- गुरु परंपरा-ग्रन्थ जिनमें "दिव्य चरितम्", गुरु परंपरा प्रभावम्", रामानुजाचार्य दिव्य चरितम्", "परिय तिरुमुटिर्येण्डु", उपदेश रत्नमाला", यतीन्द्र प्रण प्रभावम्, "प्रपन्नामृत" बादि मुख्य हैं।

२- "नालायिर दिव्य प्रबन्धम्" में स्वयं बालवारों द्वारा किये गये कुछ सम्प्रामाणिक घटनाओं के वस्मष्ट उल्लेख।

३- पत्थरों एवं धातुओं पर अंकित कुछ सम्प्रामाणिक तैलादि।

गुरुपरंपरा - ग्रन्थों में बालवारों की जीवन-घटनाओं से सम्बन्धित जैके समस्कारपूर्ण तथा - कर्तविक कथार दी गई हैं। इस प्रकार की कथाओं में विश्वास रखनेवाले मातुल भक्तों को ज्ञानानन्द प्राप्त हो सकता है। किन्तु अन्य व्यक्तियों के लिए ज्ञान रुचि होना कठिन है। बालवार भक्तों की प्रामाणिक जीवन-घटनाओं को प्रस्तुत करने में सबसे कड़ी आविधा यह है कि गुरुपरंपरा - ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य साधनों से उनपर बहुत कम प्रकाश पड़ता

है। वहाँ अन्य शास्त्रों से काम नहीं चलता, वहाँ बाध्य होकर गुरु-ग्रन्थों का ही सहारा लेना पड़ता है।

डा० कृष्ण स्वामी वर्क्यार, श्री टी० ए० गोविन्द राव, श्री एस० श्रीनिवास वर्क्यार, श्री एस० राघव वर्क्यार, श्री वी० जार० रामचन्द्र दीक्षितार आदि विद्वानों ने विभिन्न श्रोतों से बाधार लेकर बाल्वारों के जीवन-काल निश्चित करने का प्रयत्न किया है। परन्तु उनमें पर्याप्त फरक है। जो मत अधिक समीचीन तथा तर्क-पुष्ट दीप्त पड़ता है, उसी को यहाँ लिखा गया है। अधिकतर विद्वान् बाल्वारों का काल सामान्य तः से चौथी सताब्दी से नहीं सताब्दी तक मानते हैं। पाल्नात्य विद्वान् डा० काल्नेल की धारणा कि बाल्वार रामानुज के शिष्य थे तथा उनके परवर्ती थे, आधुनिक विद्वानों द्वारा, जब पूर्णतया निरर्थक और भ्रान्त सिद्ध कर दी गई है।

#### बाल्वारों का क्रम और संख्या-

हमारे सामने एक अन्य कठिनाई और भी उपस्थित है। यह कि वस्तुतः बाल्वारों का क्रम किस प्रकार निर्धारित था और उसकी संख्या क्या थी। बाल्वारों की संख्या साधारणतः १२ मानी जाती है। श्री रामानुजानन्द्य के शिष्य श्री पिल्लान ने गुरु के वाक्य पर "दिव्य प्रबन्ध" के पदों पर टीका तथा उनका संपादन करते समय एक संस्कृत श्लोक द्वारा बाल्वारों के नामों की गणना कर उनका समय निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। उस श्लोक में दिये हुए क्रम के अनुसार बाल्वारों का क्रम इस प्रकार है :-

- १- "Early History of Vaishnavism in South India"
- २- "The History of Sri Vaishnavas."
- ३- "Tamil Studies"
- ४- बाल्वारस्य कालनिर्देश (तमिल)
- ५- "Early Tamil Religious Literature" in Indian Historical Quarterly, Vol. 18.
- ६- Early History of Vaishnavism in South India, page, 4.
- ७- भूत सरस्वत महादेव्य मदनराय, श्री भक्तिभार कृतोत्तर योगिवाल्म्य ।

महर्षिप्रोणु पश्चात् मतीन्दु मित्रान् श्री मत्पाराङ्कल मुनिं प्रणतोऽतिनित्यम् ॥

भूतवाल्मीकवार , पोयी वाल्वार, पेयाल्वार, पेरियाल्वार ,  
तिरुमल्लिई वाल्वार , कुलैतराल्वार , तिरुप्पान वाल्वार , तौंडरहीपोडी  
वाल्वार , तिरुमौ वाल्वार, मधुरकवि वाल्वार तथा नम्माल्वार । ये नाम  
संख्या में केवल ११ ही होते हैं और वांछाल को जमें सम्मिलित नहीं किया गया  
है। श्री रामानुजानाचार्य के एक दूसरे शिष्य श्री रामनाथी जमुदन ने 'दिव्य प्रबन्धम्'  
का संपादन करते समय वाल्वारों के नाम एक भिन्न क्रम से गिनाये हैं और उनकी  
सूची में मधुरकवि वाल्वार का नाम नहीं है। इसलिए डा० कृष्णास्वामी जमुनार  
ने विभिन्न श्रमों तथा सूचियों की पारस्परिक तुलना करके निष्कर्ष निकाला है कि  
उनमें दीख पड़ने वाली भिन्नता केवल श्लोक-रचना की कठिनाई जम्मा तिले के  
विशिष्ट उद्देश्य के कारण ही हो गई है।<sup>१</sup> अब, श्री वेदान्तदेविकानाचार्य ने वाल्वारों  
का जो क्रम तथा नामों की सूची दी है, उसे कोई अन्य अधिक प्रामाणिक बाधर  
न मिल सकने के कारण सर्वसम्मत समझा जाता है। वह इस प्रकार है :-

तमिल नाम	संस्कृत नाम
१- पोयी वाल्वार	१- सरीयोगी
२- भूतवाल्मीक	२- सद्योऽपि० वा० वा०० योगी भूतयोगी
३- पेयाल्वार	३- महयोगी या प्रांत योगी
४- तिरुमल्लिई वाल्वार	४- भक्तिवार
५- नम्माल्वार	५- शठोप
६- मधुरकवि वाल्वार	६- मधुर कवि
७- कुलैतराल्वार	७- कुलैतर
८- पेरियाल्वार	८- विष्णुचित्त
९- वांछल	९- गोदा
१०- तौंडरहीपोडी वाल्वार	१०- मन्तांघ्रिणु

१- Early History of Vaishnavism in South India,  
page 37-38.

२- डा० वार० जी० माण्डर ने भी इसी को उद्धृत किया है।

- वष्णाविजय , वैविजय कंड वार माण्डर रितिविजय चैट्स ५० ६६

११- तिरुप्पाण बालवार

११- योगीबालन

१२- तिरुमी बालवार

१२- परावत

इस क्रम के बाधार पर क्रम चार को प्राचीन, बाद के पाँच को मध्य तथा शेष तीन को अंतिम काल के मानने की परिपाटी भी बली जाती है। ये सभी बालवार तमिल भाषी के बीच उनकी रचनाओं में उनके तमिल नाम ही मिलते हैं। अतः ये तमिल- प्रदेश में अपने तमिल नामों से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

### “नालायिर दिव्य प्रबन्धम्”

बालवारों की रचनाएं उनके जीवन-काल में संगृहीत नहीं हुई थीं। उनकी रचनाओं के जो नाम आज मिलते हैं, वे बालवारों के अपने दिये हुए नहीं मालूम पड़ते। उनके पद स्तावदियों तक केवल मौखिक रूप में भीषित रहे। इसलिए संभव है कि बहुत से पद नष्ट हो गए हों। नहीं स्तावदी के अंत में श्री नाम-मुनि ने बड़े परिश्रम से इन पदों का संकलन किया और पद-कर्त्री, विषय कथा इत्यादि के बाधार पर अलग अलग नाम दिये। बालवारों की रचनाओं के संग्रह का नाम सभी से “दिव्य प्रबन्धम्” कथा “बहुलितैयल” कथात् “बुद्धलपूर्णं दान” पड़ा। श्री रामानुजाचार्य के समय में उनके एक शिष्य श्री रंगम बासी अमुदन ने गुरु रामानुजाचार्य की स्तुति में तमिल भाषा में एक सौ पद रचे थे, जिनकी भी “रामा-नुज नूट्टान्तादि” के नाम से “दिव्य प्रबन्धम्” में समाविष्ट किया गया है। इस पूरे संग्रह के पदों की संख्या ४,००० के लगभग है। अतः सुविधा के लिए इस पद-संग्रह को “नालायिर दिव्य प्रबन्धम्” कथात् “चार सहस्र पावन पद” की संज्ञा दी गई है।

जब बालवारों के जीवन-काल पर संशय में प्रकाश डालकर उनकी रचनाओं और उनके वर्ण्य विषय का परिचय दिया जाता है।



### पौकी वालवार

( सरौयोगी )

वालवार मन्त्रों की परंपरा में प्रथम तीन वालवारों को "मुदवालवार" कहा जाता है। इन तीनों में भी पौकी वालवार को "वादि कवि" कहते हैं। इसका जीवन-कृत तिमिराश्रित है। कहा जाता है कि इसका जन्म तमिल-प्रदेश में कोचीपुरम के उच्च भाग में स्थित "तिरुवेहा" के एक तालाब में कमल पुष्प पर हुआ था। इसको विष्णु के रत्न का अवतार भी माना जाता है। इसका जन्म तालाब के फूल से होने के कारण इसका नाम "पौकी" (तालाब) वालवार पड़ा। "गुरु परंपरा" ग्रन्थों के अनुसार इसका जन्म ४२० ई० पू० में हुआ था। परन्तु वास्तविक विद्वानों को यह मान्य नहीं है।

"पौकी" के नाम से एक दूसरे कवि का भी पता चला है जो तमिल-साहित्य के "संस्कृत" (दूसरी और तीसरी शताब्दियाँ) में जीवित थे। इस कवि की रचना "इन्निरे" है जो हाल में प्रकाशित हुई है। "वाय्पिरु-गल विरुन्ति" नामक तमिल-फिल व्याकरण ग्रन्थ में "बन्तादि" इत्य के उदाहरण के लिए जो पद दिये गये हैं, वे पौकी वालवार के ही हैं। इस ग्रन्थ में "वार्ण-रचना" के उदाहरण के अन्तर्गत पौकी वालवार<sup>के</sup> कुछ शब्दों में ३ त्रुटियाँ दिखायी गई हैं। डा० कृष्णास्वामी अय्यर जैसे कुछ विद्वान् कवि पौकी और पौकी वालवार को एक ही व्यक्ति मानकर इसका समय दूसरी शताब्दी में निश्चित करते हैं। प्रो० ई० स० वरदराज अय्यर के मतानुसार इसका समय इठी शती के प्रारंभ मानना चाहिए। सामान्य रूप से इसका समय चौथी या पचिवीं शताब्दी माना जा सकता है।

पौकी वालवार के जीवन की घटनाओं का पता नहीं चलता। कृत साध्य के आधार पर इसके स्वभाव-चरित्र आदि के विषय में कुछ जाना जा सकता

१- ब्राह्मि मुनिवल्लु, से० स० राधाकृष्ण पिल्लै, पृ० ४

२- Early History of Vaishnavism in South India, page 72-73.

३- A History of Tamil Literature, Prof. E. S. Varadaraja Iyer, page 254.



है। पौखी बालवार कल्प है ही विष्णु के अनन्य उपासक थे। एक पद में इन्होंने लिखा है कि इनके प्रारंभिक जीवन का वातावरण भक्तिमय था। अतः अनुमान किया जा सकता है कि इन्होंने कल्प में विष्णु-कथारं सुनी होगी और इनका मन गोपात कृष्ण की लीलाओं में रमा होगा। पौखी बालवार के समकालीन काशीपुरम के राजा भी वैष्णव भक्त थे। और एक पद में इन्होंने लिखा है कि मेरा मुँह केवल उस चक्रधारी विष्णु की ही स्तुति करेगा। मेरे कान केवल उन्हीं की गुण-गाथाओं को सुनेंगे। मेरे हाथ केवल उन्हीं की नमस्कार करेंगे और किसी की नहीं<sup>१</sup>। ऐसे पौखी बालवार के उत्कट वैष्णव भक्त होने का फल चलता है। इन्हें योग इत्यादि का भी विशेष ज्ञान था। कीन्द्रियों को कल में कर सर्वदा भगवान् के ध्यान में रहने वाले भक्तों की इन्होंने स्तुति की है। एक पद में इन्होंने लिखा है कि मैं किसी परायी वस्तु की कामना नहीं करूँगा। दुष्टों की संगति में नहीं जाऊँगा और साधु सन्तों की सेवा में ही सर्वदा रहूँगा।

ये श्रेष्ठ ज्ञानी थे। वेद-उपनिषदों का भी इन्हें विशेष ज्ञान था। घूमघूमकर वैष्णव भक्ति का प्रचार करते थे और स्थायी रूप से एक स्थान में न रहे। इन्होंने दूधरे धर्मों का तण्डन न किया है और इनमें धार्मिक सहिष्णुता की भावना दीस पड़ती है जो कि अन्य बृह बालवारों में नहीं। इनका जीवन बहुत ही सादा था और भक्ति करना ही इनके जीवन का एक मात्र ध्येय था। नमालवार और तिरुक्की बालवार जैसे परवर्ती बालवारों ने इनकी भक्ति-भावना की बड़ी स्तुति की है।

#### रचनाएँ -

पौखी बालवार के एक ही पद "मुदल तिरुवतादि" के नाम से मिलते हैं। ये "वन्तादि" इन्द्र में रचित हैं और "दिव्य प्रबन्धम्" के "रूपपा" विभाग में संगृहीत हैं। ये स्फुट पद हैं। इनमें कोई कथा वर्णित नहीं है। पद

१- मूवर स्ट्टिय मोली विलक्कु, ले० श्री पी० श्री बाचार्य, पृ० ३७

२- मुदल तिरुवतादि, पद ११

३- मूवर स्ट्टिय मोली विलक्कु, ले० श्री पी० श्री बाचार्य, पृ० ३६

४- मुदल तिरुवतादि, पद ६४

मुख्यतः भक्ति, उपदेश आदि से सम्बन्धित हैं। इन्होंने अपने एक पद में भक्ति को सबसे सही मार्ग बताया है - "भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है। जिस नाम को चाहते हैं, वही उसका नाम है। भक्त जिस ढंग से भी उपासना करें, उसी ढंग से चक्रधर विष्णु उनका उपास्य बन जाता है।" १

कृष्ण पदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख है और भगवद् गुण, लीला इत्यादि का वर्णन है। कवि का मन विशेष रूप से कृष्ण की बात-लीलाओं में रमा है। तिरुवर्णम, तिरुक्कैट्टम् आदि तमिल-प्रदेश के विष्णु-स्थलों में विराजमान विष्णु के अवतार-रूपों की भी स्तुति है।

---

१- मुद्रल तिरुवर्णम, पद १४

### भूतबालवार

( भूतयोगी )

भूतबालवार का जन्म "गुरुपरंपरा" ग्रन्थों के अनुसार "तिरुक्कडन मल्लै" ( वर्तमान महाबलीपुरम ) में मादवी पुष्प पर हुआ था । इसकी रचना में भी इसके जन्म-स्थान "मामल्लै" का उत्तम भित्ति है । इन्हें विष्णु की गदा का अवतार माना जाता है । इसके जीवन-कृत्य के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है । ये पीयूषी बालवार के सम्प्रदायी माने जाते हैं । सामान्यतः इनको चौथी या पाँचवीं शती में जीवित मान सकते हैं । श्री राघव व्यङ्गार ने इसका जीवन-काल पाँचवीं शती के उत्तरार्ध में माना है ।

कहा जाता है कि ये बाल्यावस्था से ही संत, सवित्र, निष्कलंक, ज्ञान के पूर्ण भंडार और प्रेष्ठ भगवद् बुरागी थे । इसकी रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्होंने वेद, उपनिषदों को अवश्य पढ़ा था । ये भी पीयूषी बालवार की तरह धूम धूम कर भगवद्-भक्ति का प्रचार करते थे और लोगों को उपदेश देते थे । एक स्थान पर स्पष्ट रूप से न रहे । कहा जाता है कि ये सिद्ध-महात्मा थे । इसका जीवन अत्यन्त सादा था और इन्होंने अपना सारा जीवन भगवद् भजन में बिताया । नन्पालवार ने इसकी कड़ी स्तुति की है । भूतबालवार ने अपनी एक पद में तमिल भाषा के प्रति अपने अपार प्रेम का परिचय दिया है । "भूत" का ज्येष्ठ पंथभूत संज्ञासित जीवन है और भूतबालवार का विश्वास था कि अपना भौतिक अस्तित्व भगवान् पर ही पूर्णतया बाधारिष्ठ है ।

#### रचनाएँ-

भूतबालवार के साँ पद "तिरुवन्तादि" इन्द्र में रचित मिलते हैं और "इष्टाम तिरुवन्तादि" के नाम से "प्रबन्धम्" के "व्यंसा" विभाग में संगृहीत हैं । ये स्फुट पद हैं । इनमें किसी कथा का निर्वाह नहीं है । कवि के समाधिमुख दाणों में मानस में निकले हुए अनुभूतिपूर्ण उद्गार भावमयी भाषा में

वमिष्यन्त हुर हैं । मावद् गुण , मवित की महिमा , शरणानति आदि वर्ण्य-  
विषय हैं । कवि ने विष्णु के कैंके अवतारों का स्मरण किया है। कृष्ण की  
बात-लीलाओं की वीर भी उल्लिखित है। कैंके वैष्णव-मन्दिरों की स्तुति की गई  
है । पर्वतीय-क्षेत्रों का वर्णन करते समय कृतृति का सुन्दर चित्रण किया है ।

रहस्यवाद की सुन्दर फलक कहीं कहीं दीख पड़ती है ।

उनकी रचना का प्रथम पद बहुत प्रसिद्ध है - " प्रेम के दिव्य में वमिलाणा का  
घी डाल , सिन्धु हृदय की बाती लगाकर , स्नेह द्रवित वात्मा के साथ मैं ने  
नारायण के सम्मुख ज्ञान का दीप जलाया । "

---

१- ईस्टम निरुपतादि पद १

### पेयालवार

( महषोमी या प्रातःयोगी )

कहा जाता है कि पेयालवार वर्तमान मद्रास नगर के वर्तमान " मैलापुर " नामक स्थान में किसी कुरे के ताल कपल पुष्प से प्राप्त हुए । चूंकि इन बालवारों के जन्म, परिवार इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं, इसलिए उनकी देवी उत्पत्ति की कल्पना जन-मानस ने की होगी । मद्रास में पेयालवार के नाम से एक मन्दिर भी है । श्री रामदास वाले इन्हें विष्णु के लङ्का का अवतार मानते हैं । कहते हैं कि भावदू भक्ति के परमावेश में द्रवित होकर ये रौते, लंगे, गाले, नाचते और चिल्लाते थे । अतः लोगों ने इन्हें पागल समझकर उनका नाम " पेयालवार " रख दिया था ।

उनका जीवन काल भी विवाद का विषय रहा है । साधारणतया इनकी पोथी बालवार और भूतबालवार का सम्कालीन माना जाता है । ये परम वैष्णव भक्त थे और जीवन भर वैष्णव भक्ति का प्रचार करते रहे । ये एक स्थान पर स्थाई रूप से नहीं रहते थे और सदा भ्रमण कर लोगों को उपदेश देकर उनके ब्रह्मानन्द-बन्धन को दूर करते थे । उनका जीवन बत्यन्त सादा था और धन, कीर्ति वादि का मोह किंचित भी नहीं था ।

पोथी बालवार, भूतबालवार और पेयालवार, इन तीनों को " मुनित्रय " भी कहते हैं । सांप्रदायिक मतानुसार ये तीनों त्रयीनिभ थे और भावानुसार भक्ति-प्रचार के लिए भेजे गये थे और उनका जन्म एक ही महीने में हुआ था । इस प्रकार इन्हें सम्कालीन ठहराने का प्रयत्न किया गया है । ये तीनों बालवार पूर्ण परिचित नहीं थे । इनके एक दूसरे से परिचित होने के सम्बन्ध में एक घटना बहुत ही प्रसिद्ध है । एक दिन पोथी बालवार भक्ति-प्रचार करते हुए " तिरुकोल्लूर " नामक स्थान में जा पहुँचे । शाम हो गयी थी । भारी वर्षा होने लगी और बन्देरा भी झा गया था । मींगते मींगते पोथी बालवार जाये और वर्षा से अपने को बचाने के लिए और रात गुज़ारने के लिए स्थान ढूँढ़ने लगे । बाहिर उन्हें एक लोटी सी कुटिया के बरामदे में सोने के लिए जगह मिल गयी और ये विजान करने लगे । थोड़ी देर के



बाद एक दूसरा व्यक्ति वहाँ जा पहुँचा और उसने पौकी बातवार से कत्ते लिए जगह मानी। यह व्यक्ति भूतबातवार थे। पौकी बातवार ने यह कहकर कि यहाँ से बादमी बैठ सकता है, दो बैठ सकते हैं, भूतबातवार को भी बैठने की जगह दी और दोनों वाध्यात्मिक कर्माँ करते रहे। कत्ते में वहाँ एक तीसरे बादमी का भी जाना हुआ जिसने भी कर्माँ से कत्ते को कत्ते के लिए उन दोनों से थोड़ी जगह मानी। ये पेयातवार थे जो कहीं से वहाँ जा पहुँचे। पौकी और भूतबातवार ने यह कहकर कि यहाँ से बादमी बैठ सकता है, दो बैठ सकते हैं, तीन लड़े हो सकते हैं, पेयातवार को भी जगह दी। जब तीनों लड़े होकर भावद् गुण गान करते लगे कि कत्ते उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि नानों उनके बीच में कोई अन्य व्यक्ति भी उपस्थित हुआ है। ये तीनों भक्त कत्ते मध्य राजात् भगवान् को पाकर प्रान्न हुए। भगवान् ने उनके कोई वर माँगने को कहा। कत्ते, कत्ते को बात के बतावा ३४२ क्या चाहिए? तीनों भक्तों ने भगवान् से यही प्रार्थना की कि हम सदैव बाफ़ा ही गुणगान करते रहें और बाफ़ा ही का स्मरण हमें सर्वदा रहे, बाप यही वरदान दे दें। कहते हैं कि उस समय दिव्यालोक का वहाँ आ गया। उस समय तीनों बातवार बानन्दावेश में थे और उनके मुँह से कविता फूट निकली। तीनों ने सों सों फ़ गायें। इस घटना की पुष्टि पौकी बातवार के एक फ़ से होती है। इस घटना में बातवारी सिद्धान्तों का मूल है। कत्ते कत्ती पिशाच-हृदय का परित्यक्त है। कहा जाता है, पेयातवार ने ही तिरुमल्लिई बातवार को जो पत्ती कट्टर रत्न-भक्त थे, शास्त्रीय वाद-विवाद में परास्त किया और उनको परम वेष्णव भक्त बना दिया। इस सम्बन्ध में एक कथा भी प्रसिद्ध है। कत्ते ज्ञात होता है कि पेयातवार लड़े जानी थे।

### रत्ना-

पेयातवार के सों फ़ "मूद्रान तिरुवतादि" के नाम से "प्रबन्धम्" में उल्लिखित है। ये "तिरुवतादि" इन्द्र विशेष में रचित स्फुट पद हैं। किसी कथा का आधार नहीं लिया गया है। कत्ते भक्त-हृदय के वे उद्गार अभिव्यक्त हुए हैं, भावद् गुण, भक्ति की महिमा, शरणार्थिता आदि के विषय

वर्णित हैं। इनके कवि के वेद, उपनिषद्, गीता आदि के ज्ञान का परिचय मिलता है। एक पद में कवि ने कहा है - "वह ईश्वर है, पूरुषी, वाकास, वाठों विशाजी, वेद, वेदार्थ सर्वत्र जन्तुनिहित हैं। पर वास्तव्य यह है कि उसका निवास है मेरे हृदय में"। इन्होंने भक्ति को सबसे सरल मार्ग बताया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों का भी उल्लेख है। कृष्ण की बाल - लीलाओं की बोर संकेत है। कहीं कहीं प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है।

### तिरुमल्लिई वात्वार

( भक्तितार )

तिरुमल्लिई वात्वार का जन्म कर्णिकपुरम के पास स्थित "तिरुमल्लिई" ( महीसपुर ) नामक ग्राम में हुआ था। संप्रदाय में इनको विष्णु के एक का अवतार माना जाता है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है, जिसके अनुसार ये मार्गि मुनि तथा कनकांगी नामक अचारा के संयोग से उत्पन्न हुए थे और माता के परित्याग कर देने पर "तिरुवात्तन" नाम के एक व्याध ने उस नवजात शिशु का पालन-पोषण किया था। उनके समय का निर्णय करना कठिन है। परन्तु ज्ञाना निश्चित है कि ये पल्लव-राजाओं के शासन-काल में ही जीवित थे। श्री राघव व्यथार इनका जीवन-काल इठी सताब्दी के उपरांत तथा सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में मानते हैं। तिरुमल्लिई के कुछ पदों में स्ववर्णित सम्बन्धी कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। एक जगह इन्होंने बसे को निम्न-वादि का बताया है।

कहा जाता है कि बाल्यावस्था में ये कभी किसी स्त्री का स्तन-पान नहीं करते थे। अतः एक वृद्ध पुरुष यह सम्झकर कि यह कोई अज्ञा-धारण बालक है, इन्हें गाय का दूध पिलाने लगा और वात्वार के दुग्ध - पान करने के पश्चात् पात्र में शेष बचेवाले दूध को वह खुद पीता था और अपनी पत्नी को भी पिलाता था। कुछ दिनों के पश्चात् उस वृद्ध पुरुष को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम "कणिकन्नन" रखा गया। वागे उत्तर "कणिकन्नन" तिरु-

मल्लिकार्जुन का प्रधान शिष्य बन गया ।

यह प्रसिद्ध है कि तिरुमल्लिकार्जुन प्रारम्भ में कट्टर शैव थे और उनकी नाम "शिवबाबय" था । उन्होंने शैव-धर्म पर कुछ ग्रन्थ भी लिखे थे और शैव धर्म का प्रचार किया था ।<sup>१</sup> फेयाल्वार और उनकी शास्त्रीय वाद-विवाद हुआ था और अन्त में शिवबाबय पराजित होकर फेयाल्वार के शिष्य बन गये और अपना नाम "तिरुमल्लिकार्जुन" रखा था । तत्पश्चात् ये शैव, जैन और बौद्ध धर्मों के कट्टर विरोधी बन गये और वैष्णव धर्म के पक्षे समर्थक हो गये । उनकी रचनाओं में अन्य धर्मों का सण्डन मिलता है । एक स्थान पर उन्होंने लिखा है -<sup>२</sup> "ब्रमण या जैन मूर्त हैं, बौद्ध ब्रम-बाल में फड़े हैं, शैव निर्दोष जानती हैं । विष्णु की पूजा नहीं करने वाले निम्न जेणी के हैं ।"<sup>३</sup> इससे उनके कट्टर वैष्णव-मन्त्र होने का पता चलता है ।

तिरुमल्लिकार्जुन के पदों को देखने से विदित होता है कि उन्होंने महाभारत, रामायण, विष्णु पुराण आदि ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था । ये संस्कृत और तमिल के बड़े विद्वान् थे । अनुमान किया जा सकता है कि फेयाल्वार के संर्क में जाने के पहले तिरुमल्लिकार्जुन जैन, बौद्ध आचार्यों के यहां रहकर विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया होगा । तभी उन्होंने स्वयं अपने को इन शास्त्रों में विद्वान् कहा है । उनकी सांख्य, न्याय, वैशेषिका, फलसूत्र के योग-दर्शन का भी ज्ञान था । उनकी रचनाओं में श्री वैष्णव संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का मूल स्रोत देखने को मिलता है । उनकी रचना में ही प्रथम बार बाल्वार-साहित्य में परिचित धर्म के व्यूह-वाद का वर्णन मिलता है ।

तिरुमल्लिकार्जुन सिद्ध-योगी थे । उनकी योग-शक्ति के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं । कहा जाता है कि चूंकि तिरुमल्लिकार्जुन शैव-धर्म को छोड़कर, वैष्णव बन गये थे, इसलिए शिव जी ने विष्णु की उपासना में तीन बाल्वार की परीक्षा लेनी चाही । शिव जी ने स्वयं प्रकट होकर तिरुमल्लिकार्जुन से वर मांगने को कहा । तिरुमल्लिकार्जुन ने यद्यपि कुछ मांगना नहीं चाहा तो भी शिवजी

१- बाल्वारकृत कालनिरुति, से० श्री स्व० राघव व्यसंगार, पृ० ३६

२- "Baktisara", Sri Saira - "Vedanta Kesari", Vol. 31. Page 189.

३- नानमुक्त तिरुवन्तादि, पद ६

४- Journal of Indian History, Madras. (Vol. 21.) 1942.  
- Dr. K. C. Varadachari, page 83.

के बार बार जाग्रह करने पर उनसे पूछा कि आपका मुँह मोटा दिता सकते हैं और मेरी वायु को बढ़ा सकते हैं। शिवजी ने इन दोनों कार्यों में अपने को काम्य बजाकर और कुछ मांगने को कहा। उस पर तिरुमल्लिई हँस पड़े। शिवजी उसको अपनी जवहेरना समझकर कुछ दूर और उन्होंने तिरुमल्लिई को मरम कर देना चाहा। परन्तु तिरुमल्लिई की दृढ़ भक्ति-भावना और योग-शक्ति को देखकर उनकी प्रतीति की और "भक्ति-सार" नाम उसको दिया। कहा जाता है कि तिरुमल्लिई बाल-वार ने अपनी योग-शक्ति से शुक्तिसार नामक प्रसिद्ध सिद्ध-योगी तथा अन्य अनेकों मतवादियों को पराजित किया।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार तिरुमल्लिई ने एक कृदा स्त्री को जो उनकी सेवा करती थी, सुवर्ण बना दिया और उस स्त्री के सौन्दर्य पर मोहित तत्कालीन पल्लव राजा ने उससे विवाह कर लिया। कुछ समय के पश्चात् राजा ने उस स्त्री के सौन्दर्य को और भी बढ़ता देखकर उसका रहस्य पूछा। राजा ने पुनः यौवन को प्राप्त करने की इच्छा से "कणिकन्न" से, जो तिरुमल्लिई बालवार का शिष्य था और जो राजा के यहाँ भिक्षा मांगने जाता था, अपनी इच्छा प्रकट की और तिरुमल्लिई को बुलावाने को कहा। "कणिकन्न" के यह कहने पर कि तिरुमल्लिई राजा के प्रलोभनों में नहीं बाँधी, राजा क्रुद्ध हुआ और "कणिकन्न" को देश निकाले का दण्ड दिया। कणिकन्न ने तिरुमल्लिई के पास बाहर चारा वृत्तान्त सुनाया तो तिरुमल्लिई भी उसके साथ निकलने को तैयार हो गये। फिर उन्होंने मन्दिर के अन्दर बाहर प्रार्थना की— "हे वात्सल्यमय भगवान्। कणिकन्न उस नारी को छोड़कर जा रहा है और उसके साथ मुझे भी जाना होगा। इसलिए आप मो बादि शेष सभी सेवा को समेटकर मेरे साथ चलने की कृपा करें। कणिकन्न सक्ति तिरुमल्लिई बालवार के नगर के बाहर जाने पर नगर में अन्धकार हो गया। इस दुःखस्था को देखकर राजा तिरुमल्लिई और कणिकन्न के पास आया और दामा मांगने लगा। तिरुमल्लिई ने जब राजा पर दयाकर, भगवान् से अपने साथ सौटने की प्रार्थना की और भगवान् ने भी ऐसा ही किया। पुनः वे अपने निवास-स्थान की ओर पहुँचे। उस स्थान पर स्थित मन्दिर आज भी "यमोक्तकारी" के नाम से प्रसिद्ध है।



कहते हैं कि एक बार तिरुमल्लिई कुंभकोणम नामक नगर में स्थित प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर के दर्शनार्थ गये थे। वहाँ कुछ ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। तिरुमल्लिई को देखकर उन्हें नीच जातिवाला तथा वेद-वाक्य के अवण का अनधिकारी समझकर ब्राह्मणों ने वेद-पाठ बन्द कर दिया। तिरुमल्लिई उनके अभिप्राय को समझकर वहाँ से उठकर वन्यत्र चले गये। जब ब्राह्मणों ने पुनः वेद-पाठ शुरू करना चाहा, तब किसी को भी याद नहीं आया कि उन्होंने कहाँ वेद-पाठ बन्द किया था। उसे तिरुमल्लिई का अपमान करने का फल समझ कर, वे तिरुमल्लिई के पास जाकर क्षमा मांगने लगे। तिरुमल्लिई ने उन्हें वेद का वह वाक्य बताया, जहाँ से उन्हें प्रारंभ करना था। यह भी कहते हैं कि श्री विष्णुवत्सलप्रदाय के अनुयायियों में तिलक लगाने के लिए श्री चूर्ण का प्रयोग इन्होंने ही पहले प्रस्तुत किया था। गुरु परंपरा-ग्रन्थों के अनुसार ये ऐकहों वर्ण जीवित रहे।

#### रत्नारं :

तिरुमल्लिई जालवार की दो रत्नारं "प्रबन्धम्" में संगृहीत मिलती हैं - "नाममुत्तम तिरुवन्तादि" तथा "तिरुचन्द विरुचम"। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने कई रत्नारं की थीं और उनके संतुष्ट न होकर उन्हें कावेरी नदी में डाल दिया और कई रत्नारं सरिता के प्रवाह में बह गयीं और केवल "नाममुत्तम तिरुवन्तादि" तथा "तिरुचन्द विरुचम" प्रवाह के साथ न बहकर अपने आप किनारे की ओर लौट आयीं।

नाममुत्तम तिरुवन्तादि जालवार की रत्नारं में सबसे पहले रचित मालूम पड़ती है। इसमें "वन्तादि" शब्द में रचित दो पद संश्लिष्ट हैं। इसमें विष्णु को परमात्मा मानकर शिव और ब्रह्मा को उनकी कृति बताया गया है। भक्ति-मार्ग की वैष्टता, भगवान् के वात्सल्य, प्रेम आदि विशिष्ट गुणों का वर्णन है। सभी पद भक्ति तथा उपदेश परक हैं विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख है। पर कृष्णावतार में कवि की वात्सा है। संसार की चारहीनता, मावद्-ध्यान करने से आनन्द शरणानति आदि विषय भी वर्णित हैं। कहीं कहीं प्रकृति-वर्णन की सुन्दर छटा है।



तिरुचन्दविरुचम में १२० पद हैं। फर विविध रागों में हैं। इसका पूर्वार्ध वैष्णव-धर्म के उपदेशों से सम्बन्धित है। वेद, उपनिषदों का सार दिया मिलता है। "नानमुत्तम तिरुवन्तादि" की अपेक्षा इसमें दर्शन के गूढ़ सत्त्वों का विवेचन है। उच्चार्ध के कुछ पदों में एक विरहिणी नायिका के रूप में भगवान् से मिलने के लिए वात्सल्य प्रकट की गई है। बालवार-साहित्य में प्रथम बार नायक-नायिका के बीच विरह-स्तिन के रूप में भगवान् और मन्त्र के बीच मिलन-वात्सल्य तिरुमल्लिरु की रचना में ही वर्णित हुई है।

### नम्माळ्वार

( शठोप )

बालवार-गोष्ठी में नम्माळ्वार का स्थान सर्वोपरि है। दक्षिण के समस्त वैष्णव-भक्ति-साहित्य के इतिहास में नम्माळ्वार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नम्माळ्वार, शठोप, पराङ्गुश, कुरुवाभरण, मास्त वादि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि शैलवास्या में "शठ" नामक वायु पर, जो मनुष्यों को पीड़ित करता है, अपना क्रोध प्रदर्शित कर इन्होंने मगाया था। तब: इसका नाम "शठोप" पड़ा। "कुरु" नामक पुष्प को धारण करते हैं "कुरुवाभरण" तथा अन्य मृतावर्तवियों को अपने तर्क स्वीकृत से परास्त करते हैं "पराङ्गु" नाम लगे मिले।

नम्माळ्वार का जन्म पाण्डिय देश में तिरुनेल्वेली जिले में ताम्र-वर्णी नदी के किनारे पर स्थित तिरुचुरुडूर ( वर्तमान बालवार तिरुनारी ) में हुआ था। जिस तरह अन्य बालवारों को विष्णु के वायु-विशेष या वायुगण विशेष का अवतार माना जाता है, उसी प्रकार नम्माळ्वार को विष्णु सेन का अवतार माना जाता है। इनकी "कवची" तथा शेष बालवारों को "कवच" भी कहते हैं। इसका जीवन-काल बहुत समय से विवाद का विषय रहा है। यहाँ पाँचवीं

१- The Holy lives of Azhvans or Dravida Saints,  
— A. Govinda Charya, page 191

२- Studies in Tamil literature and History,  
V. R. R. Dikshitar, page 105.

३- श्री भावदू विजयम्, २० गंगाधर मुतालियर, पृ० १८-१९

शती से नवीं शती तक दोलायमान है। गुरुपरंपरा ग्रन्थों के अनुसार इनका जन्म कलियुग-प्रारम्भ के ४३ वें वर्ष में लगभग था है ५००० वर्ष पूर्व हुआ था। यह मत विश्वसनीय नहीं हो सकता। आधुनिक विद्वानों में डा० कृष्ण स्वामी वायसंगार इनका जीवन-काल कड़ी शताब्दी में मानते हैं। बी टी० ए० गोपीनाथ राव ने वान-मलाह के शिलालेख के आधार पर, <sup>आ</sup> इनका नवीं शताब्दी बताया है। बी बी० वार० बार० दीक्षितर ने वेत्तवीकुडी दान-पत्र के आधार पर इनका समय सातवीं शताब्दी माना है। यही मत अधिक समीचीन माना जा सकता है।

नम्माळ्वार के पिता का नाम करिमारन तथा माता का नाम उदयनी था। इनके पिता पाण्ड्य राजा के यहाँ एक उच्च पदाधिकारी थे और बागे चलाकर वल्लुविल्लेनादु नामक एक छोटे राज्य के अधीश हो गये। बहुत समय तक कोई सन्तान न होने पर करिमारन ने पत्नी सहित तीर्थाटन कर श्री विष्णु भगवान् से पुत्र-सौभाग्य प्रदान करने की प्रार्थना की। कहा जाता है कि उस पर विष्णु भगवान् ने स्वयं उनके पुत्र रूप से अवतार लेने का वायदा किया था। अनुरक्ति के अनुसार वास्तव में नम्माळ्वार ने जन्म लेने के उपरान्त दस दिनों तक न तो अपनी बाँझें खोलीं और न अपनी माता का दूध पिया और न, रोया भी था। कास इनके माता-पिता, बारहों दिन उन्हें स्थानीय विष्णु-मन्दिर में किसी लम्बी के वृक्ष के कोटर में डोढ़ बाँधे। वहीं पर नम्माळ्वार सोलहवर्ष तक योग-मुद्रा-धारण किये रहे और कहते हैं कि विष्णु भगवान् ने इनका पालन-पोषण किया था।

योग-मुद्रा से इनके जागने के सम्बन्ध में एक विचित्र घटना बतायी जाती है। कहा जाता है कि मधुर कवि नामक एक विद्वान् ब्राह्मण उच्च भारत के विभिन्न तीर्थों में घूमते हुए जब वयोध्या पहुँची, तब उन्होंने दक्षिण दिशा में एक विचित्र ज्योति-स्वप्न देखा। उन्हें ऐसा लगा कि वह ज्योति-स्वप्न उनका

- 
१. "Early History of Vaishnavism in South India", page
  २. "History of Sri Vaishnavas", pages 18-21.
  ३. "Studies in Tamil Literature and History", <sup>page</sup> 104-105.

वार्धक्य कर रहा है। उस चार्क निर्वर्ण से वाकणित होकर मधुर कवि झारों मोत दक्षिण की ओर, उस ज्योति की दिशा में चले। कई पुण्य-दोनों को पार करते हुए, वन्त में ताम्रवर्णी नदी के किनारे पर स्थित मन्दिर के झली वृक्ष के पास जा पहुँचे। अब उन्हें स्पष्ट हो गया कि वह ज्योति योग-निष्ठा-वस्था में विराजमान नम्माळ्वार के शरीर से ही स्फुरित हो रही है। उन्होंने कीचु-स्त्वश से पत्थर उठाकर नम्माळ्वार के सामने फट्ट दिया। उसकी बाजाल सुनते ही 'नम्माळ्वार' की बत्ति जल गयी और दोनों के बीच बाध्यात्मिक जर्न होनी लगी। मुक्त नम्माळ्वार की ज्ञान-राशि से वृद्ध ब्राह्मण विद्वान् मधुरकवि छत्तिने प्रभावित हुए कि उन्होंने नम्माळ्वार को निज गुरु के रूप में अपनाया। तत्पश्चात् मधुरकवि ने वही वाचार्य के मुख से निकलते जाने वाले पदों की व्याख्यान लिपिबद्ध किया। ये ही अब नम्माळ्वार की रचनाओं के नाम से संगृहीत हुए हैं।

यद्यपि सभी गुरुपरंपरा-ग्रन्थ से ही स्वर से घोषित करते हैं कि नम्माळ्वार ने झली के पेड़ के कोटर में रहते हुए बाध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था और दुनिया से उनका कोई सम्बन्ध न था, तथापि नम्माळ्वार की रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये समाज में अवस्थित थे और मनुष्य जीवन की समस्याओं का सामना उन्हें भी करना पड़ा था। कतः उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है। कुछ पदों में तमिल प्रदेश के बनेक स्थलों का ज्ञात वर्णन है जो उन स्थलों को बिना देखे संभव ही न था। उनकी रचनाओं में उनके पूर्व के तमिल-साहित्य में प्राप्त होनेवाली सभी साहित्यिक परंपराओं का निर्वाह हुआ है। कतः कहा जा सकता है कि उन्होंने तमिल-साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। ई ये संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे। क्योंकि उनकी रचनाओं में वेद, उपनिषद् तथा गीता के सार का समावेश हुआ है।

नम्माळ्वार की वन्य जीवन घटनाओं का पता नहीं चलता। ये अविवाहित ही रहे और साक्षात्क वस्तुओं में उनका मोह न था। कहा जाता है कि ये केवल ३५ वर्ष तक ही जीवित रहे।

खनार :

नम्पालवार के निम्नलिखित चार ग्रन्थ 'दिव्य प्रबन्धम्' में  
उपाविष्ट हैं :-

- १- तिरुविरुत्तम
- २- तिरुवाचिरियम
- ३- पेरिय तिरुवन्तादि
- ४- तिरुवायमोली

'तिरुवायमोली' नम्पालवार का सबसे बड़ा ग्रन्थ है और यह 'दिव्य प्रबन्धम्' का पूरा चौथा भाग बन गया है।

'तिरुविरुत्तम' को कुन्वेद का सार कहा जाता है। इसमें १०० पद हैं। इसमें भगवान् के प्रति प्रेम और सन्मय भाव के सम्बन्ध में विस्तार से कहा गया है। कवि ने स्वयं को विरहिणी नायिका के रूप में और भगवान् को प्रियतम-नायक के रूप में मानकर माधुर्य-भाव से भक्ति-भावना झूट की है। नायिका का प्रियतम से मिलने के लिए बाधुर होना, समस्त प्रकृति को अपने प्रतिकूल पाना, विह्वल होना, नायक की प्रतीक्षा करते करते पण्डित होना, भय, पत्नी द्वारा सन्देश भेजना, वन में मरने तक को तैयार हो जाना आदि बातों का विस्तृत वर्णन है। अथा में प्रबन्धात्मकता की छटा है। ऊपर से देखने पर यह एक लौकिक प्रेम-काव्य मालूम पड़ेगा। परन्तु इसमें कवि ने विरहिणी नायिका के रूप में भगवान् के प्रति अपनी स्थिति का ही वर्णन किया है। यह मधुर भक्ति का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह रहस्यानुभूतियों का भण्डार है। कवि ने तमिल के 'संफास' के काव्यों में प्राप्त लौकिक लौकिक प्रेम सम्बन्धी सभी साहित्यिक परम्पराओं को लेकर उनका उपयोग इस प्रकार कर दिया है।

'तिरुवाचिरियम' में ७ पद हैं तथा 'पेरिय तिरुवन्तादि' में ८७ पद हैं। इनकी क्रमशः यशुः और कर्त्त वेदों का सार कहा जाता है। इनमें कोई कथा वर्णित नहीं है। सभी पद भक्ति तथा उपदेशरूप हैं। इनमें भगवद् स्वरूप, गुण, विभूति, भक्ति-तत्व, शरणालाति तत्व आदि की कथा है।

'तिरुवायमोली' :

'तिरुवायमोली', नम्पालवार के ग्रन्थों में ही नहीं, बल्कि



समस्त बालवार-साहित्य में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। "तिरुवायमोली" का अर्थ है, "संत महात्मा के मुँह से निकली हुई दिव्य वाणी"। "वायमोली" शब्द प्राचीन तमिल-साहित्य में "वेद" के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसमें ११०२ पद हैं, जो विभिन्न राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं। "तिरुवायमोली" को रामैद का सार कहा जाता है। इसके स्फुट पद दशकों में बँटे हैं और प्रत्येक ग्यारहवें पद में फल-श्रुति है। इसमें भक्ति, उपदेश, शरणागति, गुरु-महिमा आदि विषय वर्णित हैं। उच्च कोटि के दार्शनिक विचार भी अभिव्यक्त हुए हैं। माधुर्य और सत्य भाव से भक्ति का विवेचन हुआ है। इसमें भी अनेक दशकों में नायक-नायिका के माध्यम से जीवात्मा-परमात्मा सम्बन्ध की रोचक व्याख्या हुई है।

### प्रसिद्धि :

तमिल के भक्ति-साहित्य से नम्माळ्वार को जो स्थान प्राप्त हुआ है, वह शायद ही अन्य किसी कवि को मिला हो। इन्हें "दिव्य कवि" भी कहते हैं। इनके पदों में व्याप्त उच्च कोटि के दार्शनिक विचार ही श्री वैष्णव मत के मूल स्रोत हैं। इस कारण इन्हें "श्री वैष्णव-मूल-भक्ति" भी कहा जाता है। तमिल-प्रदेश के अनेक वैष्णव-मन्दिरों में श्री विष्णु की "दिव्य पादुका" श्री शङ्कोप के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे भक्त लोग अपने चिर पर धारण करते हैं। इनके नाम पर अनेक प्रशस्ति ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें मधुर कवि कृत "कण्णिनुल चिरुत्ताम्", बाचार्य हृदय, "पादुका सहस्रम्" द्राविड उपदेश-रत्नावली, उठ-कोपरन्तादि बालवार अनुभूति, दिव्य सूरि चरितम् मुख्य हैं। इनमें नम्माळ्वार की बड़ी स्तुति की गई है।

कहते हैं कि तमिल के कवि-कवियों के नाम से विख्यात कंवर द्वारा रचित "रामायणम्" को भगवान् श्री रामाय ने सभी स्वीकार किया, जब उन्होंने नम्माळ्वार की प्रशंसा में "उठकोपरन्तादि" की रचना की। कवि कंवर का कहना है - "क्या विश्व के समस्त काव्य - संग्रह नम्माळ्वार के एक शब्द की बराबरी कर सकते हैं ? क्या संपूर्ण कंजुमाली के सामने ब्रह्म कर सकते हैं ?" - इत्यादि। प्रसिद्धि

१- ज्ञान सिलसु ५ से० पी० श्री बाचार्य पृ० ६६

२- "उठरिपुरे स्व कमलापति दिव्य कविः" - दिव्यसूरि कथामृतम्, श्री पी० बी० वण्णगराचार्य, पृ० १२

३- वही पृ० १३



है कि जब कंबर ने भगवान् श्री रंगनाथ के सामने "शठोपरान्तादि" के पदों को गाकर सुनाया तो भगवान्ग्रह में से बाबाबु निकली - ये ही हमारे बालुवार ( नम्माळुवार ) हैं , तभी से इसका नाम "नम्माळुवार" हो गया ।

इन्हें दक्षिण का समस्त वैष्णव<sup>२</sup> जगत् "कृत-पूजण-भास्कर" कहकर पुकारता है। ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्यत् पुराण , मार्कण्डेय पुराण आदि में नम्माळुवार ( शठोपाचार्य ) सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। ये "तमिः-वेद-प्रणेतृ" ज्येष्ठा "तमिः वेद व्यास" के नाम से भी प्रसिद्ध हैं<sup>१</sup>। जिस हस्ती-वृद्ध के कोटर में रहकर नम्माळुवार ने ज्ञानोदय प्राप्त किया था, वह बाप भी बालुवार तिरुनारी में विष्णुन है और मन्त्र उसके दर्शन कर जाते हैं।

नम्माळुवार की रचनाएं "द्राविड़ वेद सागर" के नाम से प्रसिद्ध हैं<sup>३</sup> कहा जाता है कि रामानुजाचार्य ने ब्रह्म-सूत्रों पर भाष्य लिखी समय अपने सन्देशों का समाधान नम्माळुवार की रचनाओं को देखकर ही किया था । वेदान्तदेशिकाचार्य ने भी वेद-रहस्यों को नम्माळुवार की रचनाओं को पढ़कर ही समझा था ।

नम्माळुवार की "तिरुवायमोली" पर जैन भाष्य ज्येष्ठा टीका-ग्रन्थ लिखे गये हैं। तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। संस्कृत में "सहस्र गीति" के नाम से यह श्लोकों में अनूदित है। जहाँ तक "ति-स्वायमोली" के साहित्यिक महत्व का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि इसने पश्चिमी भक्ति-साहित्य को बहुत प्रभावित किया । इसके उच्च आदर्श को पश्चिमी कवियों ने अपने सामने रखा है। जैन व्याकरणों ने नम्माळुवार के पदों को ही वैष्ट उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है।

### मधुरकवि बालुवार

( मधुर कवि )

मधुर कवि तथा नम्माळुवार दोनों की जीवनियाँ एक दूसरी

१- ज्ञान शिखरम् , से० श्री श्री० श्री आचार्य पृ० ६५

२- वही पृ० ६४

३- वही पृ० १००

४- "It is Tiruvaymoli that has shaped the furniture of Sri Ramanujai's Capacious mind and heart."  
— R. S. Desikan, "Vedanta Kesari", May 1961, Page 47.

वे विभिन्न सम्बन्ध रखती है। मधुर कवि नाल्वार का जन्म तिरुचुरुहूर के समीप-वर्ती ग्राम तिरुकोल्लूर में एक "कन्न- शिखी" ब्राह्मण- परिवार में हुआ था। श्री वैष्णव संप्रदाय में उन्हें विष्णु के वाहन गरुड़ का अवतार माना जाता है। गुरु-वर्ण-परा-ग्रन्थों से भी उनके जीवन-वृत्त पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। मधुरकवि ने कन्या में वेद तथा अन्य शास्त्रों का नियमवत अध्ययन किया था। संस्कृत तथा तमिल दोनों भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त किया था। कन्या से गीत- रचना करते थे और सुमधुर कंठ से गाते थे। कदाचित् उनकी मधुर- ध्वनि से प्रभावित होकर लोगों ने उन्हें "मधुरकवि" के नाम से पुकारा होगा। उनके असली नाम का पता नहीं चलता।

कहते हैं कि मधुर कवि श्रेष्ठ मन्त्र थे। इन्होंने विद्या के साथ प्रेम और भक्ति को भी महत्व दिया था और ये साधु-सन्तों की संगति किया करते थे। परन्तु किसी में भी अपने गुरु होने की योग्यता न देखकर, जन्म में ये सद्गुरु की सौज में कैसे ही निरस्त रहे। इन्होंने दक्षिण और उत्तर के विभिन्न तीर्थ- स्थानों के दर्शन किये, पर कहीं भी सद्गुरु प्राप्त नहीं हुआ। कहा जाता है कि जब ये कनेक तीर्थों में घूमते हुए बाहिर व्योध्या पहुँचे, तब इन्होंने दक्षिण-दिशा में बाकायत में एक ज्योति- पुंज को देखा। उस तेज- पुंज का पता लगाने की तीव्र इच्छा से उसे लेकर दक्षिण- दिशा में तब मार्ग को पाकर जन्म में तिरु-चुरुहूर वा पहुँचे, जहाँ नम्माळ्वार हमसी- वृद्ध के कोटर में समाधिस्थ थे। समाधि- अवस्था से जगाने के उद्देश्य से मधुरकवि ने नम्माळ्वार से यह प्रश्न किया कि यदि सत्- फलार्थ (सूक्ष्म चेतना शक्ति) कस्तु (जड़ प्रकृति) के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है तो वह क्या लाधा और कहाँ विश्राम करेगा। नम्माळ्वार ने जब वहीँ सीढ़ी और उतर दिया कि वह उसी का बाह्यार करेगा तथा वहीं पर विश्राम भी करेगा। उस सूक्ष्म उतर का वाक्य सम्मकर मधुरकवि बने प्रभावित हुए कि नम्माळ्वार का शिष्यत्व ग्रहण किया। जिस सद्गुरु की सौज में ये निरस्त थे, उन्हें नम्माळ्वार के रूप में पाकर इन्होंने अपने जीवन की धन्य समझा और गुरु की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। उस जमाने में एक वयोवृद्ध ब्राह्मण का निम्न जाति के एक युवक को गुरु मानना शान्तिकारी घटना थी। नम्माळ्वार

इन्हे लिए गुरु ही नहीं, माता- पिता तथा ईश्वर तक थे । प्रसिद्ध है कि मधुर कवि ने शेष जीवन गुरु- सेवा में ही वर्फित किया था । कहा जाता है कि १६ वर्ष के गुरु की सेवा में रह रहे और उनके मुख से निरुत्पन्न पदों को लिपिबद्ध करते रहे । जब नम्पालवार ने अपने ३५ वें वर्ष में छलोक-सीता समाप्त की, तब इन्होंने गुरु के विरोग में अत्यधिक दुःख हुआ । गुरु के पदों का साधारण जनता में प्रचार करना ही अपने जीवन का एक मात्र ध्येय समझा । गुरु के स्मरणार्थ इन्होंने उनकी जन्म- स्थान तिरुदुरुहूर में उनकी एक शिला ( मूर्ति ) स्थापित की । गुरु की महिमा गाते हुए विभिन्न स्थानों में जाकर उनके उत्कृष्ट पदों का महत्व साधारण जनता को बताया और जनता में भक्ति- भावना जगा दी । गुरु नम्पालवार को इन्होंने ईश्वर- तुल्य समझा था और उनके पदों को " देव- वाणी " और उनकी " देव- कवि " कहकर स्मरण किया । कहा जाता है कि प्रसिद्ध तमिल- संप ( कवि- मण्डल ) में जाकर इन्होंने नम्पालवार के एक एक पद में व्याप्त महान् गूढ़ रहस्य को समझाया और नम्पालवार के श्रेष्ठ कवित्व का भी परिचय दिया ।

मधुर कवि बायु में अपने गुरु नम्पालवार से कहें थे । गुरु के गोलोकवास के पलायन भी ये १५ वर्ष तक जीवित रहे । कहा जाता है कि इन्होंने बालवारों में सबसे लंबी बायु प्राप्त की थी और १७९ वर्ष की अवस्था में अपने गाँव तिरुकोल्लूर में गुरु का स्मरण करते हुए अपनी छलोक-सीता समाप्त की । चूंकि मधुर कवि अपने को नम्पालवार का दास मानते थे , इसलिए नम्पालवार की पादुका को " मधुर कवि " नाम प्राप्त है।

#### रचना-

मधुर कवि बालवार की एक मात्र रचना " कण्ठानु तिरुतायु " उपलब्ध है जो " दिव्य प्रबन्धम् " में संगृहीत है। इसमें केवल ११ पद हैं, जिनमें गुरु नम्पालवार की महिमा गाई गई है। गुरु को इन्होंने ईश्वर तुल्य समझकर उनकी स्तुति प्रस्तुत की है। श्रेष्ठ गुरु की आवश्यकता, गुरु के सदाण, भक्ति की आवश्यकता आदि विषयों की भी चर्चा है। कहा जाता है कि कवि-कवियों ईश्वर ने

शङ्कोपाचार्य ( नम्पालवार ) की प्रशस्ति में " शङ्कोपरन्वादि " नामक ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा " कण्ठानुल चिरुवायु " से ही प्राप्त की थी ।

" चिरुवायमोदी " के पाठ का आरम्भ " कण्ठानुल चिरुवायु " के पठन के बाद ही होता है।

### कुलशेखरालुवार-

( कुलशेखर )

चैतन्यीय राजा कुलशेखर का बालुवार- भक्तों में एक प्रमुख स्थान है, जिसकी तमिल वैष्णव-भक्ति-साहित्य को देने बहुत ही स्थायी है। " केरलोत्पति " नामक ग्रन्थ में केरल प्रान्त के चैतन्यीय शासकों की वंशावली दी गई है। ये शासक " पेरुमाल " नाम से भी प्रसिद्ध थे। वतः कुलशेखरालुवार को " कुलशेखर पेरुमाल " भी कहते थे। कहा जाता है कि राजा वृद्धव्रत की पुत्र-प्राप्ति के हेतु बनार तपस्या के फलस्वरूप उनके पुत्र-रत्न के रूप में कुलशेखर का जन्म हुआ। वृद्धव्रत ने अपने पुत्ररत्न को अपने कुल का " शेखर " मानकर उनका नाम कुलशेखर रख दिया था। गुरुपरंपरा-ग्रन्थों में कुलशेखरालुवार को विष्णु के वदात्म्य की कौस्तुभ-मणि का अवतार माना जाता है।

कुलशेखरालुवार के जीवन-काल के विषय में जो कुछ मत हैं। डा० मण्डाकर के जीवन-काल के विषय में जो कुछ मत हैं। डा० मण्डाकर का समय १२ वीं शती में मानते हैं। उनका तर्क है कि चूंकि कुलशेखरालुवार मुख्यतया रामोपासक थे। और रामोपासना १२ वीं शती में ही विकास को प्राप्त हुई, इसलिए उनका काल १२ वीं शती के आस पास मानना ही उचित है। परन्तु वस्तु-स्थिति भिन्न है। कुलशेखरालुवार जितने राम-भक्त थे, उतने ही कृष्ण-भक्त भी थे। कुलशेखर के पहले के बालुवारों ने भी रामोपासना की थी। डा० कृष्ण स्वामी व्यंकटार ने कुलशेखर का जीवन-काल सातवीं शताब्दी में माना है। कुलशेखरालुवार

१- भक्ति पूंजा - ले० श्री एतिरायु नायडू , पृ० ५

२- "Vaishnavism, Saivism and other minor religious Sects" page -

३- "History of Tirupati", vol. I, Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar, page 166.



की खानाजों में उपलब्ध कंसापाय तथा शिलासिंघों के बाधार पर कहा जा सकता है कि ये बाठ्ठीं शताब्दी में जीवित थे<sup>१</sup>। उनके विद्वानों ने यह मत स्वीकार कर लिया है<sup>२</sup>। कुल्लुत्तरासवार ने अपने को द्राविय कुल का तथा "कोयु"<sup>३</sup> देश का राजा बताया है और अपनी राजधानी "कोल्ली" (वर्तमान कल्लोन) का उल्लेख किया है। अपनी खाना "मुहन्दमाला"<sup>४</sup> में उन्होंने विजयनगर तथा फुल्लार नामक अपने दो मित्रों का परिचय दिया है।

राज-परिवार में उत्पन्न होने के कारण कुल्लुत्तर की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध हुआ था। विभिन्न शास्त्रों और नाना कलाओं में उन्होंने विद्वत्ता वर्धित की। संस्कृत तथा तमिल दोनों भाषाओं में समान रूप से पांडित्य प्राप्त किया। द्राविय होने के कारण ये शस्त्र-विद्या में भी निपुण सिद्ध हुए। उन्होंने पास के छोटे राज्यों को जीतकर एक बड़ा शक्तिशाली राज्य कायम किया। कहा जाता है कि पुत्र की योग्यता से पूर्णतः सन्तुष्ट होकर राजा इन्द्रवज्र ने कुल्लुत्तर का राज-तिलक कराकर स्वयं वनवास से लिया। वनवास से ही कुल्लुत्तर ने भगवद् कथाएं सुनी थीं और इनका मन भक्ति की ओर मुका हुआ था। उनके यहां वैष्णव भक्तों का बड़ा वादर-सत्कार होता था और भगवद् भक्त भी होती थी। शिलासिंघ होने के कुछ काल ही के पश्चात् राजा कुल्लुत्तर का मन शासन सम्बन्धी कार्यों से ऊब गया। कहा जाता है कि एक दिन उन्होंने स्वप्न में भगवान् के दर्शन किये तथा तत्पश्चात् इनका मन भक्ति की ओर झुककर किसी दूसरे कार्य में नहीं लगा। राज्य को त्यागकर श्री रंग की मूर्ति-गोष्ठी में जा मिलने की उन्हें तीव्र उत्कण्ठा हुई।

कुल्लुत्तरासवार की तीव्र भक्ति-भावना को संतुष्ट करनेवाली उनके अनुरोधों पर प्रसन्न हैं। जब से राजा कुल्लुत्तर का मन शासन - सम्बन्धी कार्यों

१- नवीं शती के एक शिलासिंघ में कुल्लुत्तरासवार के एक पद की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हुई हैं जिसके बाधार पर कहा जा सकता है कि इनका जीवन-काल कदापि उत्तरे पूर्व था।

२- बालुवास्तु काव्यनिलै, से० श्री रायन बायफार - पृ० १६१

३- *Studies in Tamil Literature and History*, V.R.R. Dikshitar, page 106.

४- पेरुमालु तिरुमोली ८ : ३

५- वही ३ : ६

६- वही ६ : १०

७- मुहन्दमाला श्लोक ४० ( प्रकाशक श्री बी० बी० के रंगारो , काजीनाडा )



में नहीं लगा, तब से अमात्य तथा राज-परिवार के लोगों की बड़ी चिन्ता हुई। कहा जाता है कि हर बार जब ये राज्य त्यागकर श्री रंगम् जाने की तैयारी करते, तब अमात्य उनके पास किसी एक नये वैष्णव भक्त को फेर देते और उस वैष्णव भक्त का बादर-सत्कार करने के लिए कुतूहल रह जाते थे। इस प्रकार उनकी श्री रंगम्-यात्रा स्थगित होती जाती थी। यह तो कहा जा चुका है कि कुतूहल के यहाँ वैष्णव भक्तों का बड़ा सम्मान था। भक्तों के प्रति राजा की उधरौधर बढ़ती हुई बढ़ा को देखकर अमात्य तथा राज-परिवार के लोगों की ईर्ष्या हुई और उन लोगों ने, राजा के मन में भक्तों के ईर्ष्या के प्रति अविश्वास फैला करने के लिए एक उपाय बूँटा। उन्होंने एक मूल्यवान् रत्नमाला को छिपाकर उसके चोरी हो जाने की बात कुतूहल से कही और चोरी का अपराध वैष्णव-भक्तों पर लगाया। राजा का झूठ विश्वास था कि वैष्णव भक्त ऐसा अपराध नहीं कर सकता था। कहा जाता है कि राजा ने एक घड़े में विषधर को डालकर लाने को कहा और यह कह कर कि अगर किसी वैष्णव भक्त ने चोरी का अपराध किया हो तो यह सर्प मुझे मार डाले, नहीं तो मुझे कुछ न करे, उस घड़े के बन्दर हाथ डाले। विषधर ने राजा को कुछ नहीं किया और इस प्रकार भक्तों की निष्कलंका स्थापित की। इस घटना से अमात्य लोगों को बड़ा अपमान हुआ और उन लोगों ने राजा से दामा माँगे।

कुतूहल की राम-भक्ति को लक्ष्य करने वाली जैक बन-हुतियाँ प्रचलित हैं, जिनमें प्रसुत दो-एक को यहाँ दिया जाता है। एक बार जब ये कथावाक्क से रामायण का व्याख्यान सुन रहे थे और उसमें सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को नियुक्त कर जैले ही श्री रामचन्द्र का लक्ष्मण की विपुल सेना से युद्ध करने का प्रार्थन किया, तब कुतूहल ने तन्मय होकर, राम की सहायता के लिए अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। कथावाक्क के यह कहने पर ही कि राम जैले ही सक्की भाकर सीता सहित विजयी होकर लौटे, कुतूहल ने

---

१- नर्तुदत्ताल्लजाणि रत्नाणि भीमार्पणाम् ।

एकल रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥

- वाल्मीकि रामायण ३-२४-२३

अपनी सेना को वापस बुलाया। एक अन्य अवसर पर जब कथावाचक ने कहा कि रावण ने सीता का हरण किया, उन्होंने भीलका पर चढ़ाई कर सीता जी को लाने की आज्ञा सेनापति को दी और स्वयं समुद्रतट तक जाकर समुद्र में उतरने लगे। कथावाचक के यह कहने पर कि श्री रामचन्द्र रावण को मारकर सीता जी सहित लौटे, ये राजमल्ल की ओर वापस वापस वापस।

अन्त में जब कृतेश्वर श्री रंगम् के विशालकाय मंदिर के प्रांगण में भगवान की भक्त-मण्डलियों में सम्मिलित होकर नृत्य, भजनादि से द्रवित जीवन किताने की अपनी तीव्र उत्कंठा का संवरण न कर सके, तब राज्य, ऐश्वर्य को त्यागकर पुण्य-पीठों के दर्शन के लिए निकल पड़े। श्रीरंगम्, तिरुपति वादि वैष्णव स्थलों के दर्शन उन्होंने किये। दिव्यसूरिचरितम् में कहा गया है कि उन्होंने अपनी पुत्री स्ता का विवाह भगवान् श्री रंगनाथ के साथ कराया। तमिल-जनता के बीच में कृतेश्वर सम्बन्धी प्रसिद्धियाँ ही बहुत अधिक प्रचलित हैं। परंपरा-ग्रन्थों के अनुसार उन्होंने अपनी तीव्र भक्ति-भावना को पदों में अभिव्यक्त कर अपने ६७ वें वर्ष में अपनी स्वसीता समाप्त की। उनके पद भक्त-हृदय को बहुत ही द्रवित करते वाले हैं। कृतेश्वर ने अपने एक पद में भगवान् से यह प्रार्थना की है कि कलौ जन्म में वे उन्हें कम से कम वह सीढ़ी बना दें जिस पर चढ़कर भक्त भगवान् के दर्शन के लिए देवालय में प्रवेश करते हैं। बाव भी वैष्णव मन्दिरों की सबसे ऊँची सीढ़ी को "कृतेश्वर सोपान" कहते हैं।

रचनारं -

कृतेश्वरालुवार के नाम से दो रचनारं मिलती हैं। एक तमिल भाषा में है और दूसरी संस्कृत में है। उनकी तमिल-रचना "पेरुमालु तिरुमोली" कहलाती है, जिसमें १०५ सूक्त हैं। केवल ये ही तमिल पद दिव्य प्रबन्ध में संगृहीत हैं। उनकी संस्कृत-रचना "सुन्दमाला" के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें ४० सूक्त हैं।

१- पेरुमालु तिरुमोली १ : ६

२- श्री विद्वान् अग्रगण्य ग्रन्थ मानते हैं।

३- पेरुमालु तिरुमोली ४ : ६

श्री के० रामफिरोठी<sup>१</sup> "मुहन्दमाला" को कुलेश्वरालुवार कृत नहीं मानते। उनका तर्क यह है कि चूंकि कुलेश्वर के नाम से एक से अधिक राजा केरल में हुए थे, इसलिए यह कहना कठिन है कि यह किस कुलेश्वर की यह रचना है। "मुहन्दमाला" को तमिल कुलेश्वरालुवार की रचना न मानने के सम्बन्ध में श्री फिरोठी का कथन है कि चूंकि तमिल कुलेश्वरालुवार मुख्यतः राम-भक्त थे और "मुहन्दमाला" के रचयिता ने केवल कृष्ण की ही स्तुति की है, इसलिए यह रचना तमिल बालवार की नहीं हो सकती। पर "मुहन्दमाला" का बाणोपान्त अव्यक्त करने से पता चलता है कि उसमें कृष्ण की वन्दना ही नहीं, बल्कि राम-वन्दना भी है<sup>२</sup>। और हमारे बालुवार जितने राम भक्त थे, उतने ही कृष्ण-भक्त भी। "पेरुमालु तिरुमोली" तथा "मुहन्दमाला" में वही स्थान पर भाव-साम्य दोस पड़ता है।

कतः "मुहन्दमाला" के तमिल कुलेश्वरालु<sup>३</sup> कृत होने में किंचित् भी सन्देह नहीं है। कतः श्री फिरोठी का मत अमान्य सिद्ध होता है।

### "पेरुमालु तिरुमोली" -

इसके पद दशकों में विभाजित हैं। पद विभिन्न राग-रगि-नियों में गाने योग्य हैं। प्रथम पाँच दशकों के पद आत्म-निवेदनपरक हैं। इनमें श्रीसम् की भक्त-मण्डली में सम्मिलित होकर नृत्य भवनादि करने की कवि की तीव्र उत्कंठा, सांसारिक जीवन के प्रति कवि की विमुक्तता, भगवान् के सम्मुख कवि की दीनता तथा कति जन्य में श्रीवेंकट गिरि में भगवान् कृष्ण की सेवा में प्रस्तुत किसी भी वस्तु के लभ में जन्य होने की उनकी कामना आदि बातें भावमयी भाषा

१- श्री मुहन्दमाला - संपादक श्री राम फिरोठी, भूमिका-भाग, प्रकाशक :  
बन्नामल्ल विश्वविद्यालय

२- श्रीनरम नरसिंयण वासुदेव, श्रीकृष्ण भक्त प्रिय चक्रपाणी ।

श्री पद्मनाभान्युक्त वेंटमारे, श्रीराम पद्मनाभ हरे मुरारे ।

- श्री मुहन्दमाला, श्लोक ३६

३- "It is therefore clear that the views of Mr. Pisharoti are untenable and incorrect." - Dr. K.C. Varadachari  
- Journal of Sri Venkateswara Oriental Research Institute, Vol. III, part II, page, 168.

तथा हृदय को द्रवित करनेवाली शैली में वर्णित है। इठे दशक में बाल गौपात की विचित्र चैष्टाओं का विशद वर्णन है। सातवें दशक में कृष्ण की शिशु-सीताओं के स्नात्नादन से वंचित मातादेवकी के करुण विलाप का वर्णन है। आठवें दशक में दशरथी राम की पालने में कौशल्या के लीरी गाने का तथा नवें दशक में राम के वन-गमन पर दशरथ-विलाप का वर्णन है। अन्तिम दशक में संपूर्ण रामायण की कथा संक्षेप में दी गई है।

### मुकुन्दमाला-

यह कोमलानन्द-कदावली में रचित ऐणशायी विष्णु की कवि की "गीताजि" है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इनमें इसके ४० श्लोक तक मिलते हैं। इस छोटी सी रचना में कवि ने अपार कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। यह संस्कृत का सभी सुन्दर, स्तौत्र-काव्य है तथा टीकाकार राघवानन्द के द्वारा यह "मुकुन्द वष्टाचार मंत्र" का सफल प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है। १७ वीं शती के श्री राघवानन्द ने इस पर टीका लिखी है जो "मुकुन्दमाला-तात्पर्य-दीपिका" नाम से प्रसिद्ध है। सांसारिक पाया-मोह के जाल से मुक्त होकर सर्वदा भगवान् के गुण-गान में तल्लीन रहने का उपदेश दिया गया है। कवि ने कृष्ण-भगवान् की विभिन्न सीताओं की वीर भी संक्षिप्त किया है।

### पेरियाल्वार -

( विष्णुचिन्म )

बालुवारों में "पेरियाल्वार" का एक विशिष्ट स्थान है। "विष्णुचिन्म" इसके कवच का नाम था। जाति के ये ब्राह्मण थे। इसकी रचनाओं में इसके ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने तथा पांडुराय राज्य के अन्तर्गत प्रसिद्ध श्री विस्ति-पुथूर नामक गाँव में इसका जन्म होने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इन्होंने अपनी

१- श्री मुकुन्दमाला- हार्मिका-भाग, श्री के० राम पिशाखी

प्रकाशक : अन्नामलै विश्वविद्यालय

२- श्री हेमचन्द्रराय चौधरी ने अपने ग्रन्थ "श्री हिस्टरी ऑफ़ दी वैष्णव सेक्ट" ( पृ० ११० ) में मलती से इन्हें "पेर्या" जाति में उत्पन्न बताया है।



रचनाओं में जैसे स्थान पर जमी समकालीन पांडित्य राजा "वत्समदेव पांडित्य" का उल्लेख किया है। वत्सम देव (शासनकाल: ईस्वी ७४०-७६७) ने इन्हें जमी ज्ञान-गुरु के रूप में जमानाया था। कतः अधिकारी विद्वान् ज्ञान जीवन-काल बाँटती स्त्री में मानते हैं। इन्हें उक्त राजा ने "फूटर पिरान" (श्रेष्ठ ब्राह्मण) की उपाधि भी प्रदान की थी।

गुरु - परम्परा-ग्रन्थों के अनुसार पेरियाल्वार के पिता का नाम मुन्दाचार्य था और माता का नाम पद्मा था। जलन से ही विष्णु-चित्र का चित्र विष्णु की उपासना में रम गया था। ये साधारण बालकों से वि-लक्षण प्रतीत होते थे और जमा अधिकारी समय भगवद्-ध्यान में व्यतीत करते थे। शास्त्राध्ययन ज्ञान विशेष न हो सका। इन्होंने एक कथावाचक पौराणिक से कृष्ण-कथा-प्रसंग में यह स्वीकृति प्राप्त परमात्मा नाथों मम गेहमुपागती। धन्योऽहर्मायिष्यमी-त्याह मात्योपजीवनः" सुनकर यह निश्चय किया कि प्रतिदिन श्रीभगवान् के श्री-चरणों में पुष्पमालाओं का समर्पण करना ही भगवन्मुखीलास को बढ़ानेवाला श्रेष्ठ कार्य है। तत्पश्चात् इन्होंने एक सुन्दर कौचा लगाया। नित्य स्त्रीन सुप्तों का जल कर उनकी माताएं गूँफकर स्थानीय विष्णु-मन्दिर के "वटपत्रशायी" के चरणों में वर्फित करते थे और अधिकारी समय मन्दिर में ही व्यतीत करते और विष्णु-सहस्र-नाम को गाया करते थे।

कहते हैं कि समकालीन पांडित्य राजा वत्समदेव ने शास्त्र-मर्मज्ञों को एक सभा बुलायी थी और यह घोषणा की थी कि जो विद्वान् उस सभा में जाकर वैदिक प्रमाणों का निरूपण कर ठीक तरह से परब्रह्म को निर्धारित करें उन्हें पुरस्कार और गौरव प्रदान किया जायगा। एक दिन "वटपत्रशायी" ने स्वप्न में प्रकट होकर पेरियाल्वार को वादेश दिया कि पांडित्य राजा के दरबार में जहाँ विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि शास्त्रार्थ में भाग ले रहे हैं, तुम भी शामिल होकर

१- भगवाने वल्लभा भक्त - ले० श्री पी० श्री० वाचार्य, पृ० ५६

२- बालुवाकलु कालनिले - ले० श्री स्व० राघव व्यंकटार, पृ० ६६

३- दिव्य सुरि कथापुत्र - ले० श्री पी० श्री० वी० वर्णागराचार्य, पृ० १७



शास्त्रज्ञ ज्ञानन्द की उपलब्धि का मार्ग दिखाकर भौ प्रेम और भक्ति का महत्व सर्व-साधारण को बता दो । विष्णुचिन्म ने इस कठिन कार्य के लिए अपनी की कम योग्य समझा । परन्तु भगवान् की आज्ञा का पालन करना तो था ही , अतः भगवान् पर मरौवा रखकर ये पांडित्य राजधानी मधुरा में जाकर राजा द्वारा संगठित विद्वानों की गोष्ठी में शामिल हुए । इन्होंने विभिन्न धर्मावलंबी पंडितों की उठाई गई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया और यह साबित किया कि श्री लक्ष्मी-नारायण ही पर देवता हैं जिनके चरणों में शरण लेना ही शिखर है और मोक्षदायक है । राजा ने विष्णुचिन्म के कानूय तर्कों से प्रभावित होकर उन्हें किसी भी षोणित किया । बाबुवार को द्रव्यादि के साथ 'फूटर पिरान्' की उपाधि भी प्राप्त हुई । राजा ने बाबुवार<sup>को</sup> सम्मानित करने के लिए उन्हें हाथी पर बिठाकर नगर में एक जुलूस निकाला । कहा जाता है कि उस समय श्री विष्णुचिन्म ने अपनी प्रतिष्ठा की भवदुग्ध का ही फल समझकर वाफाश की ओर देखा तो वापसा विष्णु महालक्ष्मी के साथ गहड़ाहू होकर प्रसूत हुए । श्री विष्णुचिन्म ने अपने उपासकैव के दर्शनकर अपनी जीवन की धन्य समझा । भगवान् की दिव्य-कौशल-शोभा को देखकर उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही । परन्तु उनके मन में एक विचित्र चिन्ता पैदा हुई कि भगवान् की यह शौन्दर्य-राशि किहू न जाय । उसके लिए इन्होंने प्रार्थना की कि वह क्षुद्र शौन्दर्य सहस्रों करोड़ों वर्ण शास्त्र रहे । जहाँ दूसरे बाबुवारों ने भवदुग्ध की ही याचना की है, श्री विष्णुचिन्म ने स्वयं भगवान् की भी क्लीम वात्सल्य से मंगल-कामनाएं वर्णित कीं । इसी कारण इन्हें 'पेरियात्वार' अर्थात् 'महान् बाबुवार' विरुद्ध प्राप्त हुआ ।

पांडित्य = राजधानी में प्राप्त धन-राशि को लेकर पेरियात्वार अपने निवास-स्थान श्री विल्लिपुत्तूर को सौंप जाये और उस धन को अपने इष्ट देव की सेवा में वर्णित करने की इच्छा है 'वटपत्रशायी' के मन्दिर के 'गोपुर'

१- तिरुवल्लाहि , पद १-१०

२- उपनिषद् रत्नमाला , पृ० १८

को कानने में लगा दिया । तत्पश्चात् भी ये पूर्ववत् सुप्त-व्यस कर मालाएं गूँथने और "वटव्रताची" के चरणों में अर्पित करने के दिव्य-कार्य में लगे रहे । पुष्पावलि के साथ गीतावलि भी करते रहे । ये संस्कृत के भी बड़े पंडित थे । कहा जाता है कि कल्पसूत्रों पर इन्होंने एक टीका लिखी ।

रत्नाकर -

परियायवार के पद "तिरुपत्ताहु" तथा "परियायवार तिरुमोली" नामक दो संग्रहों में मिलते हैं और ये पद "दिव्य प्रबन्धम्" के प्रथम भाग में प्रारंभ में दिये गये हैं । "तिरुपत्ताहु" में १२ पद हैं । जिनमें परियायवार ने यह फील-कामना की है कि भगवान् का अनुसंधान सौन्दर्य करौड़ों वर्ण तक शाश्वत रहे । कवि ने इन पदों में विष्णु की विभिन्न अवतारों का भी स्मरण किया है तथा भक्तों को सदैव भगवत्सेवा में ही तल्लीन रहने का उपदेश दिया है । "तिरुपत्ताहु" का धार्मिक महत्व अत्यधिक है । "नित्य पाठ" में इसको स्थान प्राप्त है तथा इसका पाठ श्री वेष्णवों के घरों में प्रतिदिन होता है ।

"परियायवार तिरुमोली" में आठवार के ४६१ पद संगृहीत हैं । बालकृष्ण की मधुर-सीतावी में कवि का मन रम गया है । अतः कवि ने कृष्ण के शिशु-रूप और सारथ्य से आकर्षित होकर हृदय-द्राक्क मार्मिकता के साथ बालकृष्ण की विविध चेष्टाओं का वर्णन कर वास्तव्य रूप की ऐसी कद्रुत धारा प्रवाहित की है, जो समस्त तमिऴ साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती । जिनमें कृष्ण का जन्मोत्सव, गोधृत में हर्णात्तास, कृष्ण को बालने में रखकर खोदा का लोरी गाना, कृष्ण का चन्दा-माया को बुलाना, कर्ण-ज्येष्ठ संस्कार, दृष्टि-दोष परिहार, माखन-चोरी, गोपियों की खोदा से शिकायतें, कृष्ण को नाच बराने वन भेजने पर खोदा का विताप, कृष्ण के त्वार सौन्दर्य पर गोपियों का मोहित होना, मुखी-माधुरी आदि अनेक प्रसंगों का सस्र वर्णन है । शिशु के लोटने, कलने, झिलकने, रोने, खेले आदि का कवि ने मार्मिक चित्र उपस्थित किया है । ऐतवकाल की विभिन्न अवस्थाओं में शिशु की चेष्टाओं में होने

१- Dr. K. C. Varadachari, T. S. V. O. I. Vol. II (1949) page 454.  
 २- History of Tamil Literature, E. S. Varadaraja Iyer, page 277.

वाले परिवर्तनों की मानों मनोवैज्ञानिक व्याख्या ज़रूरें हुई है। वास्तव में, ऐसी-वैसी वर्णों से वर्णों को खिंचते, फिलाते, बुलाते और प्यार करते समय तमिल-ब्रह्म की मातृशक्ति जो मधुर लोक-गीत गाया करती थी, उसकी साहित्यिक रूप देकर परियाल्वार ने तमिल साहित्य की महान् सेवा की है। "पिल्लै तमिल" कहलाने वाली इन गीतों की शैली के प्रणेता स्वयं परियाल्वार ही माने जाते हैं। इनके बाद जैसे कवियों ने एक विशिष्ट "पिल्लै तमिल" काव्य-शैली बनाया। परियाल्वार के कुछ कवियों में राम-कथा के कुछ प्रसंगों का भी वर्णन मिलता है।

### वाडालु -

( गोदा )

वेण्णाव संत कवयित्री वाडालु का तमिल के भक्ति-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। "वाडुवार" नाम से प्रसिद्ध वेण्णाव-भक्त-कवि समूह में वाडालु ही एक मात्र स्त्री थी। वाडालु श्री विल्लीपुटूर निवासी परियाल्वार जन्मा विष्णुचिद की पौष्पकुत्री थीं। संप्रदाय में वाडालु को भूदेवी का की माना जाता है। "गुरु परंपरा" ग्रन्थों के अनुसार वाडालु का जन्म कलियुगात्थ के ८७ वें वर्ष में हुआ था। परन्तु वाडालु की एक रचना में प्राप्त ज्योतिष से सम्बन्धित एक विवरण के आधार पर जैसे बाधुनिक विद्वानों ने वाडालु का जन्म सन् ७२६ ईस्वी में माना है।

वाडालु की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक बहुत प्रसिद्ध कथा है। कहते हैं कि नियमानुसार परियाल्वार एक दिन प्रातःकाल अपनी वाटिका में, भगवान् की वरिष्ठ करने के लिए पुष्प-चयन कर रहे थे। अचानक उन्हें सुखी-दलों के बीच एक नवजात बालिका कुलों की शैव पर पड़ी दृष्टिगोचर हुई। परियाल्वार तो

१- History of Tirupati, Vol. I., Dr. S. Krishna Swamy Aiyengar page 161.

२- वाडालु ने अपनी रचना "तिरुप्पावे" (फ १३) में ज्योतिष से सम्बन्धित एक विवरण दिया है। वह है, उष्ण काल में गुरु<sup>का</sup> जन्म तथा शुक्र का उदय एक ही समय होना यही तिरुप्पावे का "रचना-काल" बताया गया है। यह घटना ज्योतिषियों के अनुसार सन् ७३१ ई० दिसम्बर १८ को उष्ण काल में हुई थी। गुरु परंपरा ग्रंथों में वाडालु की आयु १६ वर्ष की बतायी गयी है। अतः उक्त तिथि से १६ वर्ष घटाकर अनुमानतः वाडालु का जन्म सन् ७१६ ई० में हुआ माना जाता है-

- वाडुवार काल निर्दिष्ट- १०० स्म० राघव व्युत्पत्ति, पृ० ८३

विविवाहित थे ही । उस बालिका को देवी वरदान सम्पन्न कर घर से बाये बाँर  
वत्यन्त स्नेह के साथ उसका पालन-पोषण करने लगे । पुष्प-वाटिका में प्राप्त  
होने के कारण, पेरियाल्वार ने उस बालिका का नाम "कोदे" ( फूल का गुच्छा )  
रखा ।

पेरियाल्वार की पौष्पपुत्री के रूप में बाँडालु धीरे धीरे बड़ी  
हुई । पेरियाल्वार की कूटिया के सरस भवित्तमय वातावरण में पलने के कारण  
बाँडालु का मन भगवान् विष्णु में स्वाभाविक रूप से रम गया । विष्णु के सर्वांग  
सुन्दर रूप, वहीम शक्ति और सरस सीताबों ने बाँडालु को मुग्ध कर दिया । पुत्रा  
बाँर भजन में वे पेरियाल्वार की सहायता करती थीं । नन्दवन में जाकर फूल तोड़  
ताती बाँर पिता द्वारा भगवान् को अर्पित करने के लिए माताएँ मूँधा करती थीं ।  
कहा जाता है कि भगवद्-प्रेम में इस तरह तन्मय हो जाती थी कि भगवान् के लिए  
मूँधी हुई पुष्प-माताबों को स्वयं पहनकर दर्पण में अपना सौन्दर्य देखा करती थीं ।  
वे यही देखा चाहती थीं कि उनका सौन्दर्य उनके अग्रिम भगवान् को आकर्षित  
कर लौगा कि नहीं । एक दिन इस प्रकार झुँगार करते समय पेरियाल्वार ने देख  
लिया । यह विचारकर कि एक बार पहनी गयी माताएँ भगवान् पर बढ़ाने योग्य  
न होतीं, अपनी पुत्री के इस नित्य दुराचरण पर बड़े क्रुद्ध हुए । उन्होंने बाँडालु  
को बहुत डाँटा बाँर एक दूसरी माता बनाकर उस दिन भगवान् की सेवा में अर्पित  
की । कहते हैं कि जब वे उस दिन रात को निन्ताग्रस्त हो सो रहे थे तब स्वप्न  
में भगवान् ने जाकर सन्देश दिया- " मुझे बाँडालु द्वारा पहनी गयी माताएँ ही  
अधिक पसंद हैं बाँर जाने उन्हीं माताबों से मुझे आभूषित करो । " सभी ने

१- "कोदे" ही "गोदा" का शुद्ध रूप है । इस शब्द के जौक अर्थ हैं । " दिव्य सूरि  
चरितम् " नामक गुरु परंपरा ग्रन्थ में "कोदे" या "गोदा" का अर्थ "वाक सवितदा-  
यिनी" दिया गया है । - बाल्वार कालुमिर् - पृ० ६६

(स) सर मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-वीथी कोण में "गोदा" को "सामवेद"  
संहिता की एक प्रसिद्ध ऐतिहास्य बताया है। चूंकि पेरियाल्वार संस्कृत के भी बड़े पंडित  
थे, इसीलिए कदाचित् उन्होंने अपनी पुत्री के लिए भी उस प्रसिद्ध ऐतिहास्य का नाम  
रखा होगा-

- कोदे बल्लंतु कादल वैल्लम - श्री पी० श्री बाचार्य, पृ० ६४



बाँडाल का नाम "तृहिनोदुव नाच्चियार" ( कर्पातु पहनी हुई माला बर्झित करने वाली ) पढ़ गया ।

कहते हैं कि बाँडाल के कथाधारण व्यवितत्व का परिचय वाकर ने अपने दृष्टदेव की बाँडाल द्वारा पहनी गयी मालाओं से ही वर्तकृत करते थे । ज्यों ज्यों बाँडाल की अवस्था बढ़ती गई , त्यों त्यों भगवान् के प्रति बाँडाल का अनुराग भी बढ़ता गया । जब वे पूर्ण यौवन की प्राप्ति हुईं तो पेरियालवार उनके लिए सुयोग्य वर ढोवने में लगे । योग्य वर न मिलने के कारण वे बहुत चिंतित हुए । जब बाँडाल को अपने पिता की चिन्ता का कारण मालूम हुआ तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया - " मैं ने श्रीरंगम् के भगवान् को ही अपने पति के रूप में वारण कर लिया है । यदि कोई कहे कि मैं किसी दूसरे की हूँ तो अपने प्राण त्याग दूँगी । " कथा बताता है कि उसी दिन रात को भगवान् रंगनाथ ने स्वप्न में वाकर पेरियालवार को आदेश दिया कि मेरी प्रियतमा बाँडाल की सभी वाभूषणों से वर्तकृत कर श्रीरंगम् से बाबो वार में उसके पाणि-ग्रहण करूँगा । वात्सल्य वार बानन्द के साथ पेरियालवार दूसरे दिन बाँडाल को एक शिक्षा में बिठाकर, बन्धु-मित्र सहित , मंगल वाचों के साथ श्रीरंगम् ले गये । वहाँ श्री रंगनाथ के मन्दिर में पेरियालवार ने विधिवत् विवाह-संस्कार कराकर बाँडाल को भगवान् की समर्पित किया । बाँडाल अपनी अधिष्ठाया की पूर्ण देकर बहुत प्रसन्न हुईं । गर्भगृह में प्रवेश कर भगवान् की श्रेण-श्रेया पर चढ़ीं तो एक दिव्यालोक का वर्ण व्याप्त हो गया और बाँडाल विभु की चमक के सदृश्य उस ज्योति के द्वारा भगवान् में समा गईं । इस प्रकार बाँडाल ने अपने प्रेम द्वारा भगवान् को जीत लिया । " बाँडाल "

१- नालाथिर दिव्य प्रबन्धम् - संपादक: एम्.कुष्णमाचारियार, बाँडाल कैवयम् पृ० ६६

२- " नाच्चियार तिरुमोली " पद १: ५

३- श्री गुरुत्वात्मन पंडित कृत " दिव्यसूरि चरितम् " नामक काव्य में श्री रंगनाथ के साथ बाँडाल के विवाह का वर्णन नाटकीय शैली में विस्तार से मिलता है। जहाँ लिखा है कि इस अवसर पर नम्मालवार, तिरुमैयालवार, शृंगेरालवार आदि श्रेण सभी बालवार बार हुए थे और उन्होंने आशीर्जन दिये । ( दिव्यसूरि चरितम् ,

बाँडाल कैवयम् , पद २-७ पृ० १२५ तथा - *Journal of Indian History*, Vol. 13. pages 181- 203. Article on "Divya Suri Charitam" by Sri, B.V. Ramanujan, M.A.



( क्योंकि भगवान् पर प्रेमाधिन्य करनेवाली ) शब्द भी इस घटना को सूचित करने वाला है । दक्षिण के सभी वैष्णव मन्दिरों में अब भी प्रतिवर्ष बाँडाल का विवाहोत्सव धूमधाम के साथ मनाया जाता है। गुरुपरंपरा ग्रन्थों के अनुसार बाँडाल की वायु , वन्तर्धान के समय सौतह वर्ण की थी ।

यद्यपि पेरियाल्वार को अपनी पुत्री बाँडाल को भगवान् को सौंपकर सधुर बनने का भाग्य प्राप्त हुआ था, तो भी पुत्री का वियोग उन्हें बसह-नोय हो गया । अपने निवास-स्थान श्री विल्लीपुटुर की सीट जाने पर, पुत्री की अनुपस्थिति में शरा वातावरण उन्हें घुना दीख पड़ा । पुत्री के वियोग में उन्होंने जोक पद गाये हैं । एक पद में वे कहते हैं -“ मेरी एक पुत्री थी जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैली थी । पर मरु भी बहूणिम मैनोंवाला माधव उसे हर ले गया । अब मैं उस अनुपम पुत्री को कहाँ पाऊँ ? ”

रत्नारं :-

बाँडाल महान् मन्थित होने के साथ ही, उच्च कोटि की कवि कवयित्री भी हैं । उनकी रत्नारं तमिल-साहित्य की ही नहीं, बल्कि समस्त भारतीय साहित्य को गौरव प्रदान करनेवाली हैं । कई मौखिक तथा पाश्चात्य विद्वान् तथा दार्शनिकों ने मुक्त कंठ से बाँडाल की रत्नारं की , काव्य-कला और विचार-धारा दोनों की दृष्टियों से बड़ी प्रशंसा की है । बाँडाल की निम्नलिखित दो प्रसिद्ध रत्नारं दिव्य प्रबन्धम् में संगृहीत हैं :-

१- तिरुप्पावे

२- नाञ्जियार तिरुमोली

तिरुप्पावे -

इसमें तीस पद हैं जो विभिन्न राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं । इस में तमिल-समाज की एक पुरानी प्रसिद्ध प्रणाली नोन्नु ( कात्यायनी व्रत ) वर्णित है । महीनों में श्रेष्ठ मार्गशीर्ष में नव कुतिया योग्य वर

---

१- पेरियाल्वार तिरुमोली ३ : ४

की प्राप्ति के लिए वह व्रत रखती हैं। लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार व्रत रखने से व्रत-धारिणियों को ही नहीं, बल्कि बर्षा, धन-धान से समस्त देश को भी लाभ पहुँचा<sup>१</sup>। तिरुप्पावे के भाव-लोक की विशेषता यह है कि कास, स्थान की परिधि को लाँकर बाँडालु स्वयं गोपी बन जाती हैं और अन्य सहेलियों के साथ अपने उपास्य देव कृष्ण के पास व्रत की फल-प्राप्ति के लिए पहुँच जाती हैं। वक्तः<sup>२</sup> "तिरुप्पावे" में बाँडालु ने अपनी ही कहानी कही है। तिरुप्पावे का वर्ण्य विषय संतोष में इस प्रकार है "मार्गशीर्ष" की पूर्णिमा के दिन बाँडालु अपनी सहेलियों से "मार्गशी नौन्यु"<sup>३</sup> का अनुष्ठान करने के लिए कहती है और यह विश्वास दिलाती है कि भगवान् अवश्य हमारी इच्छित वस्तुओं को प्रदान करेंगे। बाँडालु "तिरुप्पावे" के प्रारम्भ के कुछ पदों<sup>४</sup> "मार्गशी नौन्यु" की विशेषता, तथा विधि-विधान आदि का वर्णन करती है। इस व्रत का प्रधान व्रत उणाकास में उठकर स्नान कर जाना है। वक्तः बाँडालु अपनी सहेलियों से चुपेरा ही जाने की सूचना देती है और निद्रा तनकर अपने साथ चलने को कहती है। जब सभी सहेलियाँ एकत्र हो गयीं तो बाँडालु कृष्ण तक पहुँचने के लिए सफल मार्ग का वन्देन करती है और सहेलियों के दल को लेकर कृष्ण भगवान् के निवास-स्थान की ओर चलती है। दार-पालक से अपना परिचय इस प्रकार देती है कि हम गोपियाँ, श्रीकृष्ण भगवान् को गीत गाकर जमाने के लिए बायीं हुई हैं और दारपालक से प्रार्थना करती है कि वह उनके जाने का समाचार श्रीकृष्ण तक पहुँचा दे<sup>५</sup>। जब बाँडालु कृष्ण से मिलने के पक्षे, उनकी प्रिया "नय्यिन्ने"<sup>६</sup> (तमिल की "राधा") से निवेदन करती है कि वे उन्हें श्री कृष्ण से मिलने दें। "नय्यिन्ने" को प्रसन्न करने के पश्चात् बाँडालु श्री कृष्णानन्द का यत्नमान करती है और श्रीकृष्ण को जगाती है। श्रीकृष्ण से सहेलियाँ सहित अपने जाने का कारण बताती है और प्रार्थना करती है कि उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जावें।

१- तिरुप्पावे - पद ३

२- " " पद १ से ५ तक

३- वही पद ६ से १५ तक

४- वही पद १६

५- वही पद १७ से २० तक

६- वही पद २१ से ३० तक

इन पदों में बांडाल के मन्त्र-भाव और तत्कालीन ग्राम्य जीवन के सौन्दर्यपूर्ण स्वीय चित्र देखने को मिलते हैं। प्रकृति का भी संपूर्ण वर्णन है। "तिरुप्पावे" का धार्मिक महत्व अत्यधिक है। वैष्णव मन्दिरों में और वैष्णवोपासकों के घरों में "मार्गशीर्ष" महीने के तीरों दिन अत्यन्त बड़ा और मन्त्र के साथ "तिरुप्पावे" के पद गाये जाते हैं। बांडाल द्वारा प्रसारित यह "मार्गशीर्ष" समस्त दक्षिण भारत में ही नहीं, सुदूर स्याम देश में भी उतावड़ियों से फाया जाता है।

### नाम्मायार तिरुमोली -

इसमें १४३ स्तुति पद हैं। पद विभिन्न राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं। इसमें सीतानाटक कृष्ण की अपना प्रियतम और अपने को उनकी प्रेमिका मानकर रचे गये बांडाल के पद संगृहीत हैं। कामदेव से श्रीकृष्ण से अपने को मिला देने का निवेदन, कोकिल, मेवादि से कृष्ण के पास सन्देश भेजना और उन्हें बुलाने की प्रार्थना, स्वप्न में माधव से विवाह और मित्त और फिर वियोग, जादि वार्ते इस संग्रह के पदों में वर्णित हैं। इसके कुछ पद वैष्णवोपासकों के घरों में विवाहीत्यव के अवसर पर अवश्य गाये जाते हैं।

### बांडाल की प्रसिद्धि :

बांडाल की दोनों रचनाओं ने तमिल जनता के धार्मिक जीवन को बहुत ही प्रभावित किया है, इस में सन्देह नहीं। कहा जाता है कि श्री रामा-तुवाचार्य, जिन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, बांडाल के पदों की गा-गाकर जात्म विमोह हो जाते थे। बांडाल की रचना "तिरुप्पावे" में उनकी तल्लीनता को देखकर उन्हें "तिरुप्पावे बीयार" (ज्यात् "तिरुप्पावे प्रेमी") कहा जाता था। श्री वेदान्त देसिकाचार्य ने बांडाल की प्रशस्ति गाते हुए "गोदा स्तुति" नामक ग्रन्थ लिखा है। एक दूसरे वैष्णव मन्त्र ने कहा एक कहा

१- श्री पी० श्री बाचार्य का लेख 'Voice and Vision of Andal',  
All India Writers Conference Souvenir, 1959. Page 154.

२- वेदान्त केसरी, मई, १९६१ पृ० ४५

है -<sup>१</sup> " वह व्यक्ति वसुधा के तिर मार स्वरूप है जिसने बाँडालु द्वारा वसिष्ठ में रचित " तिरुप्पावै " के तीस पदों को हृदयमग्न नहीं किया हो<sup>२</sup> । " कहा जाता है कि प्रसिद्ध शैव कवि माणिकव्यासकर ने भी " तिरुप्पावै " का अनुकरण करके ही उसी विषय को लेकर " तिरुवैवायै " नामक काव्य की रचना की । श्री बाँडालु की प्रेम साधना की अपनी कथावस्तु बनाकर राजा श्री कृष्णदेव राय ने स्वयं तेलुगु भाषा में " बामुवतमात्मका " नामक महाकाव्य रचा ।

तोंडरहीपोडी बालुवार -

( भक्तान्ध्रिरेणु )

तोंडरहीपोडी बालुवार का जन्म बील राज्य में कावेरी नदी के तट पर स्थित तिरुमंडनकूडी नामक ग्राम में एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था । इनके पिता " वेद विशारदर " कहे जाते थे<sup>३</sup> । " विप्रनारायण " बालुवार के बचपन का नाम था । बाल्यावस्था में उन्होंने मली मांति शास्त्राध्ययन किया था । वसिष्ठ और संस्कृत दोनों भाषाओं में पर्याप्त पांडित्य प्राप्त किया था । इनका मन भक्ति की ओर झुका हुआ था और उन्होंने भगवत्सेवा में ही अपने जीवन को लगाने का निश्चय किया । इसके तिर ये श्रीरंगपुर के निकटवर्ती एक ग्राम में एक सुन्दर तुलसी-वन बनाकर रहने लगे और वित्त ( पेरियालुवार की तरह ) पुष्प मालाएँ तैयारकर श्री रंगनाथ को समर्पित कर जाते थे । केवल इसी सेवा की अपने जीवन का परम ध्येय समझते थे । युवावस्था में होने पर भी अत्यन्त निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य का पालन कर सन्यासी की तरह जीवन बिताते रहे । ये अपने को " भगवान् के दासों का दास " कहना पसंद करते थे और भक्तों की सेवा को भगवत्सेवा के तुल्य समझते थे । अतः उन्हें तोंडरहीपोडी बालुवार ( भक्तान्ध्रिरेणु ) क्योंकि " भगवद् दासों के चरणों की धूली " कटकर लोग फुलाने लगे । संप्रदाय में उन्हें विष्णु की वनमाला का कण्ठ माना जाता है ।

तोंडरहीपोडी बालुवार के जीवन-काल का निर्णय करने में कठिनाई है । इनकी रचनाओं में उपलब्ध कुछ उल्लेखों के आधार पर इनका समय

१- द्राविड मुनिवरकल , श्री राधाकृष्ण पिल्लै पृ० ६१

२- बाल शण्डिया रास्टर्स कान्करेन्स, मद्रास १९५६ , श्री पी० श्री बालार्य का लेख " दो विज्ञान शण्ड वाक्य बाबु बाँडालु " पृ० १६१

३- तुयिल एल्फिन्ग टोंडर, ले. श्री. जी. श्री. आचार्य, पृ. ७.

४-  
५-



बाठवीं शती के उत्तरार्द्ध में माना जा सकता है। कुछ विद्वान् उन्हें तिरुप्पाण बालुवार तथा तिरुमी बालुवार का सम्कालीन मानते हैं।<sup>२</sup>

तोंडरडीपोडी के सम्बन्ध में एक कथा बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी पुष्टि में बालुवार के कुछ पद प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि एक दिन प्रातःकाल ये नियमानुसार अपने तुलसी-वन में भगवान् का नाम-स्मरण करते हुए ब्यारियों को सुधाकर पानी लगाने में व्यस्त थे। उस समय देवदेवी नामक एक वेश्या चोत-नोरत के कला-मवन में अपने नृत्य, गीत आदि का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन कराकर तथा पुरस्कार प्राप्तकर अपनी बहिन तथा सखियों के साथ लौट रही थी। बालुवार के तुलसी-वन ने उनकी इतना आकर्षित कर दिया कि वहीं थोड़ी देर विराम कर जाने की इच्छा से प्रेरित होकर तुलसी वन में जा चुकीं। दूर से ही तिरुमी नवशुक्ल सन्ध्याधी बालुवार को देखकर देवदेवी उन पर मुग्ध हो गयी। परंतु देवदेवी के मनपोहन रूप-सौन्दर्य का कुछ भी असर बालुवार पर नहीं पड़ा। देवदेवी ने, जिसकी अपने रूप का गर्व था, बालुवार के इस तिरस्कार-भाव को देखकर मन ही मन निश्चय किया कि मैं इनको अपने वश में करके ही यहाँ से जाऊँगी। उसकी बहिन तथा अन्य सखियों ने उसे सम्झाया कि ये महात्मा बड़े विरहवत हैं और इन पर नारी-सौन्दर्य कुछ भी असर कर नहीं सकेगा और इनके मन को विचलित नहीं कर सकेगा। देव-देवी ने उनकी बात नहीं मानी और यह कह कर उन्हें भेज दिया कि मैं यह प्रण कर लिया है कि उन्हें किसी न किसी तरह अपने वश में करके ही यहाँ से लौटूँगी। देवदेवी ने गेरुआ वस्त्र पहनकर तोंडरडीपोडी बालुवार के सम्मुख जाकर उनके चरणों में नत हुई। बालुवार ने यह पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आयी हो। देवदेवी ने हाथ जोड़कर कहा कि मैं वेश्या हूँ। जब उस जीवन से मुझे घृणा पैदा होगई है और अपना उद्धार करने की इच्छा से आपके पास आई हूँ। आप मुझ पर दया कर, इस उपवन में रहने दें और श्रीरंगनाथ की सेवा में मुझे भी अपना जीवन व्यतीत करने का अवसर दें। तोंडरडीपोडी ने अपनी सज्ज सरलता के कारण देवदेवी की बातों पर विश्वास कर उसे वहाँ रहने की अनुमति

१- बालुवारकुल बरहलमोली - ले० स्वामी चिदम्बरनार पृ० ७५

२- हिस्ली बाबू श्री वैष्णव्यायु, टी० ए० गोपीनाथ राव पृ० २६



दे दी । तत्पश्चात् देव-देवी तुलसी बन की वृद्धि में बालुवार की सहायता करने लगी । कुछ समय के पश्चात् एक दिन जब देवदेवी फूल चुन रही थी , तब बड़े जोर से बर्षा होने लगी । बालुवार की मीठी देव देवी पर दया बायी और उन्होंने उसे अपनी कूटी के बन्दर बुला लिया । बहुत देर तक पानी का बरतना बन्द नहीं हुआ तो देवदेवी की उसी कूटिया में रह जाना पड़ा । अनुकूल अवसर पाकर देव देवी युक्त सन्यासी से अपने शरीर को स्वीकार करने की प्रार्थना की और अपने उप-हावप्य से उनके मन में काम की ज्वाला उत्पन्न कर दी । भक्त का चित्त चलायमान हो गया और भगवान् की उप-सुधा से छटकर गहिरा नारी की ओर जा चिफका । देव देवी जिस उद्देश्य के लिए वहाँ आयी थी, बाहिर उसकी पूर्ति हुई । देव देवी के प्रेम-पाश में पड़कर बालुवार ने भगवान् को विस्मृत कर दिया । कुछ समय के बाद जब देवदेवी ने अनुभव किया कि उस सन्यासी के साथ रहने में विशेष आनन्द नहीं है, तो वह उन्हें छोड़कर वहाँ से चली गयी । भगवान् की भक्त की उस दशा पर दया बाई । एक रात को कोई बने को लोडखीपीडी बालुवार का सेवक बताकर सोने की एक थाली देव देवी के घर दे बाया , जिससे प्रसन्न होकर देवदेवी ने बालु-वार को सप्रेम अपने पास बुला लिया । परन्तु वह स्वर्ण-थाल राजमहल की थी । बात: दूसरे ही दिन बालुवार चोरी के अपराध में फँदे गये और उन्हें कारावास का दण्ड मिला । कहते हैं कि फिर श्री रंगनाथ ने राजा के स्वप्न में प्रकट होकर बालु-वार को मुक्त कर देने की आज्ञा दी । बालुवार की बने अपराध पर पश्चात्ताप हुआ । अब उन्होंने जेल से ही नहीं , नारी-प्रेम से भी मुक्त होकर , फिर से भगवत्सेवा तथा भक्ति में तन-मन को लगाया । बालुवार की यह धारणा थी कि भागवतों की सेवा भगवत्सेवा से भी श्रेष्ठ है । वे मंदिर में जाने वाले समस्त भक्तों की चरण-पूजा का सेवन कर भजन-कीर्तन में रत रहने लगे ।

रचनारं :

लोडखीपीडी बालुवार की दो रचनारं उपलब्ध हैं :-

१- तिरुमावि

२- तिरुपत्ती स्तुत्ती

तिरुमावि का अर्थ है ' पवित्र माता ' । श्री कवि की ' गीताजलि ' कह सकते हैं ।

यह ४५ पदों का एक गीत - संग्रह है। अधिकांश पद आत्मनिवेदनपरक हैं। कवि कवि ने भगवान् के सम्मुख अपनी दोनता का प्रकाशन कर अपने को उनके दातानुदाह के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की है। इसमें उत्कृष्ट भक्ति-भावना के साथ, काव्य-सौन्दर्य भी फलकता है। तमिलनाडु में एक प्रसिद्ध कहावत है- "तिरुमालु वरियान, तिरुमालु वरियान" "ज्यांत्" "जी" "तिरुमालु" "को नहीं जानता, वह" "तिरुमालु" (विष्णु) "को नहीं जानता।" "जैसे" "तिरुमालु" का महत्व स्पष्ट होता है।

तौडरडीपीडी बालुवार की दूसरी रचना "तिरुपल्ली एलुन्नी" विशेष महत्व की है। क्योंकि इसको "नित्यानुरंधान पाठ" "ज्यांत्" "नित्यपाठ" में स्थान प्राप्त है। अतः इसका गायन नित्य प्रति प्रातःकाल प्रत्येक विष्णु मन्दिर में होता है, जिससे इस रचना का धार्मिक महत्व जाना जा सकता है। "तिरुपल्ली एलुन्नी" से तात्पर्य भगवान् को ज्ञान के सुप्रभात गीतों "से है। इसमें केवल १० ही पद हैं। प्रत्येक पद में प्रातःकाल होने की सूचना देनवाले प्राकृतिक तत्त्वों का वर्णन कर भगवान् से अपनी शैया से उठने की प्रार्थना की गई है। प्रत्येक पद में प्रातःकालीन वातावरण का सुन्दर चित्रण है। प्रकृति के ऐसे सुन्दर सजीव चित्र बन्धन विरले ही मिलते हैं। पदों में शब्द-बन्धन चित्ताकर्षक है।

### तिरुप्पाण बालुवार -

( योनी बालन )

तिरुप्पाण बालुवार की "मुनिवाहन" अथवा "पाण पेरुमालु" भी कहा जाता है। इसका जीवन वृष तिमिरादिन्म है। गुरु-परिवार - ग्रन्थों में इसको "ख्योनिज" कहा जाता है। इसका जन्म स्थान श्रीरंगम् के दक्षिण भाग में कावेरी नदी के किनारे पर स्थित "उरैयूर" गाँव था। कहा जाता है कि ये उरैयूर के किसी ब्राह्मण के भेत में फँदे हुए थे। वहाँ से "पाणन" कुल का एक व्यक्ति इन्हें ले लाया और उसी ने इसका पालन-पोषण किया।

“पाणन” कृत के लोग गायक होते थे और वे राजाओं और धनी लोगों के यहाँ बीणा बादि वाद्य-यन्त्रों के साथ गायक कर उनके पुरस्कार प्राप्त कर बीविका चलाने वाले थे। एक समय तमिल-समाज में उन्हें बड़ा गौरव प्राप्त था। परन्तु हमारे बालुवार के समय में “पाण” जाति एक निम्न जाति मानी जाती थी। “वदवः” “पाणन” कृत में पत्नी के कारण बालुवार का नाम भी “तिरुप्पाण” (“पवित्र पाण”) पड़ा।

गुरु-परंपरा - ग्रन्थों में तिरुप्पाण बालुवार का जीवन-वृत्त बहुत ही संक्षिप्त रूप में मिलता है। इस की रचना में भी कहीं उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाला कोई भी उल्लेख नहीं है। उनके समय का निर्णय करने के लिए कोई आधार उपलब्ध नहीं है। गुरु-परंपराओं के अनुसार इनका जन्म कलिंग के ३४३ वें वर्ष में हुआ था। तोंडरडिपोडि बालुवार ने अपने एक पद में कहा-  
चित् “तिरुप्पाण” का ही स्मरण कर यह सिखा है - “” है, भगवान् नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी अपने भक्त होने के कारण तुम्हें भक्त की कमी पास कुला सिया और यह साबित किया कि नीच वह है जो तुम्हारा भक्त नहीं, चाहे वह उच्च कुलोत्पन्न क्यों न हो।” अधिकांश विद्वान् अनुमानतः तिरुप्पाण बालुवार को तोंडरडिपोडि बालुवार का सम्कालीन मानकर उनका समय बाठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा नवीं शती के पूर्वार्ध में निश्चित करते हैं।

अनुक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तिरुप्पाण बालुवार कल्पन से ही गायक-विद्या में निपुण थे। बीणा बजाकर ये मधुर गीत गाया करते थे और लोग मंत्र-मुग्ध से होकर सुनते थे। स्वयं भी ये भक्ति परक पद गा-गाकर सन्मयावस्था में मुग्ध हो जाते थे। गुरु परंपराओं के अनुसार ये भगवद् गान-विषय सार्वभौम के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

तिरुप्पाण बालुवार श्रेष्ठ वैष्णव भक्त थे। उन दिनों श्रीरंगम का मन्दिर वैष्णव भक्तों का मुख्य केन्द्र था। चूंकि बालुवार की “पाणन जाति” निम्न कोटि की मानी जाती थी और उस जाति के लोग बस्पृश्य समझे जाते थे, इसलिए ये विष्णु के वर्णवतार रूप श्री रंगनाथ के मन्दिर में प्रवेष्टकर भक्त-

गोष्ठी में जा नहीं सकते थे। उनके जीवन की सबसे बड़ी कामना यही थी कि श्रीरंगनाथ के सौन्दर्य-स्वरूप के दर्शन कर अपने जीवन को धन्य बनायें। परन्तु "पापान" कुलोत्पन्न होने के कारण मन्दिर में प्रवेश करने के माग्य से वंचित रहे। अतः ये कावेरी के दक्षिणी तट पर एक कुटी बनाकर रहने लगे और वहीं खड़े होकर श्रीरंगनाथ के मन्दिर की ओर देखते हुए प्रतिदिन श्री रंगनाथ की स्तुति में मग्न गाने रहे। मधुर गीत गा-गाकर आत्म विभोर हो जाते थे और उन्हें अपने शरीर की सुध तक नहीं रहती।

कहा जाता है कि भगवान ने तिरुप्पाण की तीव्र भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें मन्दिर में प्रवेश कराकर अपने दिव्य दर्शन देने का निश्चय किया और उनके <sup>सिर</sup> एक उचित अवसर भी दूँटा। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। श्री रंगनाथ के मन्दिर का "लोकसारंग" नामक एक ब्राह्मण पुजारी अपने शिष्यों के साथ श्री रंगनाथ की मूर्ति के अभिषेक के लिए पड़े में कावेरी-तट लेकर जा रहा था। कावेरी-तट से मन्दिर की ओर जाते समय उन लोगों ने देखा कि तिरुप्पाण बालुवार मार्ग के समीप भगवद् मन्त्र में तल्लीन होकर बीणा बजाते हुए तन्मयस्थ में बैठे हुए थे। यह सोचकर कि तिरुप्पाण निम्न जाति का है और इसलिए वर्णविवेक है, उन लोगों ने तिरुप्पाण से मार्ग से दूर हट जाने के लिए कहा। चूंकि बालुवार भगवद् मन्त्र में समाधिस्थ थे, इसलिए ये उन लोगों की बाबाज सुन न सके। पुजारी समेत अन्य लोग बालुवार की वहाँ से भाग जाने के लिए बुलंद बाबाजू में चिल्लाने लगे। परन्तु तिरुप्पाण गायन में इतने मग्न थे कि उनके चिल्लाने का कोई असर उन पर पड़ा और ये टह से मत न हुए। "लोक सारंग" को जब क्रोध जाया और बहकावश उसने एक पत्थर बालुवार पर फेंक दिया। बालुवार के सिर पर जोट लगी और हून वह निकला। जब तिरुप्पाण जाग उठे और पना-याचना करते हुए वहाँ से चले गये। लोकसारंग को अपने दूर कार्य पर पश्चात्ताप होने लगा। जब वह उस दिन रात को चिन्ताग्रस्त होकर सो रहा था, तब श्री रंगनाथ ने स्वप्न में प्रकट होकर आदेश दिया - "तुम्हारे फेंके हुए पत्थर से मेरे सिर पर ही जोट लगी है। तुमने बड़ा अन्याय किया है। तिरुप्पाण मेरे दैष्ट मन्त्र, भक्ति और दास हैं। अतः तुम अपने प्रायश्चित्त के रूप में उन्हें अपने कन्धों पर बिठाकर लावो



बीर भी सम्पुल्ल उपस्थित करी । यही तुम्हारे पाप का उचित प्रायश्चित्त है । ”  
दूसरे दिन प्रातःकाल कलौक्यार्य मुनि भगवान् की आज्ञा का पालन करने के हेतु  
बालुवार के पास जाया और उसने बालुवार से रामा माँगी । भगवान् का वादेन  
सुनाकर, बालुवार को अपने कन्धों पर बिठाकर श्री रंगनाथ के 6 मन्दिर में ले  
जाया । “मुनि की पीठ” पर बारुद होकर मन्दिर के अन्दर प्रवेश करने के क  
कारण बालुवार को “मुनिवाहन” भी कहा जाता है। कहते हैं कि श्री रंगनाथ के  
मन्दिर में प्रवेशकर तथा मूर्ति के सौन्दर्य का आस्वादन कर तिरुप्पाण बालुवार  
को इतना आनन्द मिला जितना अन्य को दृष्टि मिलने पर । वात्स्य विभीर होकर  
बालुवार ने भगवान् के सौन्दर्यपूर्ण प्रत्येक लीला का वर्णन ( नर से शिशु तक ) किया  
और भगवान् की स्तुति में लगे पद गाये । अन्तिम पद में उन्होंने गाया कि जिन  
बाँसों ने इस अलौकिक शाश्वत सौन्दर्य को देखा है, वे किसी दूसरी वस्तु को न  
देखें । कहते हैं जब बालुवार ने भगवद् सौन्दर्य-वर्णन समाप्त किया, तब वहाँ  
दिव्यालोक का सर्वत्र व्याप्त हो गया और उस ज्योति में तिरुप्पाण बालुवार  
अन्तर्धान हो गये । गुरु परंपरा ग्रन्थों के अनुसार उस समय बालुवार की आयु ३०  
वर्ष की थी ।

### रत्नाई -

तिरुप्पाण बालुवार की एक मात्र रत्नाई “अमलनादिपिरान”  
है । यह १० पंक्तियों वाली एक कविता है । इस कविता का आरम्भ “अमलन”, “बादि-  
पिरान” बादि भगवद् गुण विशेषणों से होने के कारण इसका नाम “अमलनादि-  
पिरान” रखा गया । तिरुप्पाण बालुवार की अन्य रत्नाई उपलब्ध नहीं होतीं ।  
“अमलनादिपिरान” में श्रीरंगनाथ के अद्भुत सौन्दर्य का नर से शिशु तक वर्णन है ।  
प्रत्येक पद्वय में विष्णु की विभिन्न लीलाओं की ओर विशेषकर कृष्ण लीलाओं  
की ओर संकेत है । दसों पंक्तियों में दस लीलों का वर्णन है ।

“अमलनादिपिरान” का धार्मिक महत्व अत्यधिक है। इसको

१- अमलनादिपिरान - पृष्ठ सं० १०

२- दिव्य सूरि कथाकृतम् - ले० श्री पी० बी० अण्णनगराचार्य पृ० २८



विष्णु मन्दिरों में "नित्यानुरोधान" कर्णार्थ "नित्यपाठ" में स्थान प्राप्त है। श्री वेदान्तदेशिकाचार्य ने बिक्रमे केके ग्रन्थ तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं में मिलते हैं, बालुवारों की रचनाओं में से केवल "अमलनादिपिरान" पर ही टीका लिखी है। उसका नाम है "मुनिवाहन मोगम्"। इसके अलावा धार्मिक महत्व जाना जा सकता है।

### तिरुमै बालुवार -

( परकात )

बालुवार - परंपरा में तिरुमै बालुवार अंतिम बालुवार माने जाते हैं। संक्रांत में इन्हें विष्णु का शरणांग माना जाता है। इस बालुवार का जन्म चोल-राज्य में "तिरुवाली तिरुनारी" नामक दिव्य क्षेत्र के पास अवस्थित "तिरुहुरेयूर" नामक स्थान में हुआ था। इनकी जाति का नाम कल्लर था। इस जाति के लोग जंगली पहाड़ों में वास कर सूटमार से जीविका चलाने वाले व्याध थे। इनके पिता चोल राजा के यहाँ सेनापति थे। तिरुमै का पुराना नाम "नीलन" था। "कलिया", "बहुलमारी", "परकातन" आदि कई नामों से भी प्रसिद्ध हैं।

जन्म बालुवारों की अपेक्षा, इस बालुवार का जीवन-वृत्त इनकी रचनाओं में प्राप्त अंतःसाक्ष के आधार पर बहुत कुछ सिता जा सका है। इन्होंने "परमेश्वर विष्णुगर" नामक मन्दिर का उत्थेस किया है, जिसका निर्माण पल्लव नन्दीवर्मन द्वितीय ( ईस्वी सन् ७३१ से ७६६ तक जीवित ) के शासन-काल में हुआ था। लिखालेखों से भी पता चलता है कि तिरुमै बालुवार का जीवन-काल बाल्मीकी शती के उधरार्ध में था। केके आधारों की प्रस्तुत कर श्री० एस० वैयापुरिपिल्लै इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तिरुमै बालुवार ईस्वी सन् ८०० तथा ८७० के बीच में जीवित थे।

तिरुमै बालुवार युद्ध-विद्या में निपुण थे। अतः चोल

१- नात्तायिर दिव्य प्रबन्धम् - तिरुमै केवम् पृ० ४ संपादक श्री एस० कृष्ण-  
माचारियार

२- Epigraphia Indica, vol. IV. page. 334.

३- History of Tamil Language and Literature,  
— Prof. S. Vayyapuri Pillai, page 128.

राजा ने, इनके पिता की मृत्यु के पश्चात् इन्हें अपना सेनापति बना दिया ।  
 राजा के विरोधियों को बड़ी बालानी से परास्त कर देने के कारण इन्हें "पत्तालन"  
 ( जर्मातु शत्रुओं का "कासन" - यम ) कहते थे । इनकी वीरता से प्रसन्न होकर चोल  
 राजा ने इन्हें "तिरुमी" नामक प्रदेश का सामन्त राजा बना दिया । तत्पश्चात्  
 ये "तिरुमी मन्नन" के नाम से प्रसिद्ध हुए । जिस प्रकार बुद्ध-कला में कुशल थे, उसी  
 प्रकार संगीत, नृत्य, नाटक, काव्य-कलाओं में भी थे पारंगत थे । ये तमिल और  
 संस्कृत दोनों भाषाओं के क्राण्ड पंडित सिद्ध हुए । इनकी रचनाओं का अध्ययन  
 करने से पता चलता है कि इन्होंने अपने पूर्व के तमिल-साहित्य का गंभीर अध्ययन  
 किया है और अपनी रचनाओं में विभिन्न-काव्य-शैलियों को कुशलतापूर्वक अपनाया  
 है । बालुवार भक्त-कवियों में सबसे श्रेष्ठ साहित्यिक मर्मज्ञ ये ही हैं ।

तिरुमी बड़े ही रसिक थे । अपने पास यौवन तथा जीवन  
 की सारी सुविधाओं के रहने से ये बड़ी विलासितापूर्ण जीवन बिताते थे । बहुत  
 समय तक ये अविवाहित रहे । इनके विवाह तथा बाद के जीवन से सम्बन्ध रखी  
 वाली अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं । कहते हैं कि उस समय "तिरुवेल्कुलुम" नामक  
 गाँव में एक वैष्णव वैद्य रहते थे जिनके एक इप्सती कन्या थी । लड़की का नाम  
 "कुमुदवल्ली" था और उसकी लावण्यता इतनी अत्यधिक थी कि बड़े बड़े राजा  
 उससे विवाह करने को इच्छुक हुए । तिरुमी ने कुमुदवल्ली के रूप से मोहित होकर  
 उसके पिता से कुमुदवल्ली के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की । दो  
 शर्तों पर कुमुदवल्ली, तिरुमी से विवाह करने को तैयार हुई । एक शर्त यह थी  
 कि सबसे पहले तिरुमी को परम वैष्णव भक्त बनना चाहिए । दूसरी शर्त यह थी  
 कि उठते पहले विष्णुकी कइ प्रतिदिन १००८ वैष्णव भक्तों का भोजन कराकर ही  
 स्वयं भोजन करना चाहिए । दोनों शर्तों को स्वीकार कर तिरुमी ने कुमुदवल्ली  
 से विवाह कर लिया । प्रतिदिन १००८ वैष्णव भक्तों के भोजन का प्रबन्ध किया  
 गया । कुछ समय के अनन्तर तिरुमी की सारी संपत्ति इस कार्य में खर्च हो गयी ।  
 यहीं नहीं, तिरुमी ने इस कार्य में राजकोष का पूरा धन भी समाप्त कर दिया ।  
 चोल राजा को इस बात का पता चला तो उसने तिरुमी से राजकोष के संपूर्ण  
 धन को लौटा देने की आज्ञा दी । चूंकि तिरुमी राजा के धन को लौटा न सके,

किसीर उनको गिरफ्तार कर कारागार में भेज दिया गया। कहा जाता है कि यहाँ रहते हुए तिरुमू की देवी प्रेरणा से कांचीपुरम् में एक स्थान पर जमीन में गड़ी हुई किसी मुक्त संपत्ति का पता चला। बालुवार ने इस संपत्ति को प्राप्त कर राजकोष का संपूर्ण धन लौटा दिया और बन्दीगृह से मुक्त कर दिये गये। कुम्भ-वल्ली को दिये गये ज्वन का पालन करने के लिए, जब कोई दूसरा मार्ग न होत पड़ा तो उन्होंने अपने बातीय पैसा डाका-डालना - प्रारम्भ कर दिया। द्रव्य जुटाने के लिए उन्हें कुरतापूर्ण व्यवहार करना पड़ा। परन्तु लूटमार से जो कुछ भी मिलता उसे वैष्णव भक्तों की सेवा में वर्धित करते थे। कहते हैं कि भगवान् बालुवार को सुमार्ग पर लाने के लिए स्वयं एक छोटी ब्राह्मण यात्री के रूप में उस रास्ते से जाये, जहाँ तिरुमू डाका डाला करते थे। तिरुमू तथा उनके साथियों ने ब्राह्मण यात्री के सारे धन को लूटा। परन्तु प्राप्त धराशि को वे उठा नहीं सके। यह विचारकर कि ब्राह्मण ने किसी मंत्र को प्रयोग किया होगा, उन लोगों ने यात्री को डाँटकर वह मंत्र बताने को कहा। इस पर ब्राह्मण यात्री ने तिरुमू को अपने पास बुलाकर उन्हें वेद-सार-इसी वृष्टाकार मंत्र का उपदेश दिया। तिरुमू को मान्य हुआ कि वस्तुतः विष्णु भगवान् ही उनका उद्धार करने के हेतु जाये हुए थे। उस समय से बालुवार के जीवन में महान् परिवर्तन आ गया और वे एक श्रेष्ठ भगवद् भक्त बन गये।

बालुवार का वह युग धार्मिक संघर्ष का था और प्रत्येक धर्मा-नुयायी अपने अपने धर्म के प्रचार के कार्य में लगे हुए थे। बौद्ध और जैन धर्म फली-न्युल हो चुके थे, यद्यपि पूर्ण रूप से उनकी शक्ति न मिटी थी। शैव संत अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित कर लोगों को शैव - भक्त- बनाने के कार्य में लगे हुए थे। तिरु-मू ने भी अपने युग की पाँव की भली भाँति समझकर सारे देश में घूमघूमकर वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने बौद्ध तथा जैन धर्मों का सफ़हन भी किया था। कहते हैं कि नागपट्टिनम में स्थित भगवान् बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति को उन्होंने तोड़ डाला और उससे प्राप्त धन से श्रीरंगम के मन्दिर का तीसरा प्राकार (बहार

---

१- History of India, Part I, Ancient India,  
Prof. K. A. Nilakanta Sastri, page 267.

दीवारी) बनवाया<sup>१</sup>। इन्होंने ही श्रीराम के मन्दिर में नव्यालुवार के पदों के गायन का प्रबन्ध किया था। ये दक्षिण और, वक्रिकाग्रम तक के वैष्णव केन्द्रों के दर्शन कर वाये। इन्होंने इन सभी स्थानों की वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। कहा जाता है कि इन्होंने दूसरे मतावलम्बियों के साथ धार्मिक वाद-प्रतिवाद में भी भाग लिया था। एक जनश्रुति के अनुसार इन्होंने प्रसिद्ध शैव-संत तिरुजान सबन्ध को भी धार्मिक जर्ग में परास्त किया था। परन्तु इसका कोई बाधार नहीं है<sup>२</sup>। गुरु-परंपरा-ग्रंथों के अनुसार ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे और इनका देहान्त "तिरुकुडिडी" नामक स्थान में हुआ।

यह सिद्ध हो चुका है कि तिरुमूनी बालुवार तमिल तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के प्रमाण्ड पंडित थे। ये सहृदय कवि और प्रकृति-प्रेमी भी थे। तमिल की कोई भी काव्य-शैली ऐसी नहीं जिसमें इन्होंने मधुर कविताई नहीं रची हो। "वायु", "मधुरम्", "चित्तम्", "विस्तारम्" नाम के चार प्रकार की काव्य-शैलियों में सकल रचना करने के कारण इन्हें "नालु कवि पेरुमाल" (काव्या-नार्य) भी कहा जाता है। भक्त भी ये उल्लेखीटि के थे ही। इनके पद के अनुसार शुद्ध तपस्या व्यर्थ है और नवधा भक्ति ही मोक्षदायिनी है। इनके सम्बन्ध में एक बातचीत का कहना है कि तिरुमूनी बालुवार ऐसे भक्त थे जो "वात्मा को धर्म की धूम में सुलाना और शरीर को शया की ठंठ में पालना चाहते थे।

रत्नाएँ :

संस्था की दृष्टि से "नालायिर दिव्य प्रबन्धम्" में संगृहीत पदों में सबसे अधिक पद तिरुमूनी बालुवार के हैं। ये सभी पद विविध राग-रगि-नियों में हैं। इनकी निम्नलिखित ६ कृतियाँ मिलती हैं।

- १- पेरिय तिरुमोली
- २- तिरुक्कुरुन्तारुक्कम्
- ३- तिरुनेल्लुत्तारुक्कम्
- ४- तिरुनेल्लु तिरुवर्क

१- "कावलात गतिपेर्टेवर" - ले० श्री पी० श्री० बालार्य पृ० ४०

२- बालुवार कालनिर्ले - ले० श्री एम० रामय्य अय्यंगर , पृ० १३७



५- चिरिय तिरुमळ

६- पेरिय तिरुमळ

ये हे कृतियाँ वैष्णवों के बीच में "वैदांग" के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

पेरिय तिरुमोली में १०८४ पद हैं । बनेक पद तीर्थ-यात्रा करते समय तिरुकी बालुवार ने बितने भी वैष्णव दिव्य-शक्तियों के दर्शन किये थे, उनमें विराजमान विष्णु की अवतार-मूर्तियों की स्तुति में गाये गये हैं । कवि ने प्रारंभ के कुछ पदों में यावनावस्था में किये गये उनकी कृतियों पर पश्चात्ताप प्रकट कर भगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त की है। अधिकतर पद दार्शनिक विचारों से भरे पड़े हैं । कृष्ण-कथा के प्रसंगों का भी वर्णन मिलता है । कुछ पदों में तमिल के <sup>संय-</sup>सहित साहित्य की "ब्रह्म" काव्य-शैली में नायिका की विरह-वेदना, नायक से मिलने की वात्सल्यता, भय, कोकिल, प्रेमर इत्यादि द्वारा सन्देश भेजना आदि वर्णित हैं ।

"तिरुकुरुन्ताळम्" में २० पद हैं तथा "तिरुनेल्लुन्ताळ-कम्" में ३० पद हैं । इनमें सांसारिक माया-मोह के बन्धनों से विमुक्त होकर परम वास्तव्यमय भगवान् की शरण में जाने का उद्देश है । इस भवसागर को पार करने के लिए उसी को एक मात्र सहायक कहा है । तांळम् शब्द का अर्थ है, "सहायक छड़ी" जो पृथ्वी के लिए चलने में और पर्वत पर चढ़ते समय पैर के न फिसलने के लिए सहायक होती है। एक मात्र भगवान् को ही वह "सहायक छड़ी" कहा गया है। "तिरुवेल्लुतिरुक्कै" एक संवा पद है । इसमें कवि के आत्मसमर्पणपूर्ण भाव व्यक्त किये गये हैं ।

"चिरिय तिरुमळ" तथा "पेरिय तिरुमळ" में तमिल-समाज की "मळ" प्रथा का वर्णन है। नायक और नायिका के बीच प्रेम के विकास को कई अवस्थाओं में विभाजित कर वर्णन करने की परंपरा, "ब्रह्म" काव्य-शैली में मिलती है । पहले यह प्रेम गुप्तावस्था में ही रहता है । धीरे धीरे विकसित होकर वह उस अन्तिम दशा में पहुँच जाता है जब नायक लोक-मर्यादा की भी परवाह न



कर वसी दृढ़ प्रेम की जग्गि- परीक्षा देने के लिए भी तैयार हो जाता है। अगर उसे वसी प्रिया को प्राप्त न करने में बाधा पड़े तो वह "मडल" पर चढ़कर मरण को प्राप्त करने की धमकी देता है। दोनों "मडल" कृतियों में विरहजी ने हाँफिक प्रेम की तीव्रता स्थापित करने वाली "मडल" प्रथा का बाधार लिया है। परन्तु कवि ने अपने ही विरहिणी नायिका मानकर प्रियतम भगवान् को प्राप्त करने के हेतु "मडल" पर चढ़कर वसी तीव्र प्रेम की परीक्षा देने की घोषणा की है।

- १- ताड़ के पत्तों का काा घोड़ा जिस पर चढ़कर निराश प्रेमी आत्महत्या करने की घोषणा करता है और वन्त में अपनी प्रेम्िका को प्राप्त करता है।
- २- जिस प्रकार सूफीमत में हंस्वर तक पहुँचने के लिए विभिन्न- दशावर्त बतायी गयी हैं और अन्तिम दशा में प्रेम की तीव्र- परीक्षा होती है, उसी प्रकार "मडल" भी प्रेम की "जग्गि- परीक्षा" है। प्रेम की इस पराकाष्ठा पर पहुँच कर प्रेम की परीक्षा में उषीर्ण होकर सन्ने बटल प्रेम का परिचय देकर प्रेमी प्रेम्िका को पाता है और प्रेम्िका, प्रेमी को।

१६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण-मन्त्र कवि

इसकी सौतलकी शताब्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट महत्व रखती है। धार्मिक भावना की लेकर वह साहित्य रचना उस सम-न्यात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे शताब्दियों और सहस्राब्दियों तक की परंपराएं निहित हैं। बन्धुभाव्य साधनाओं का वैसा सुन्दर चार्मस्य इस शताब्दी के साहित्य में दोस पड़ाव वैसा पहले कभी प्रस्तुत नहीं हो सका और नहीं वास्तव संभव हो सका है। साहित्य धर्म और नीति की त्रिविणी का पावन तीर्थराज इसी शताब्दी में संभव हो सका। विभिन्न युगों के ज्येष्ठ स्तरों के बीच से मन्द मन्द किन्तु व्यापक गति से बहती हुई, कनेक दिशाओं से उल्टी सीधी बहकर जानेवाली विविध विचार-धाराओं की वात्सलात् करती हुई, भिन्न भिन्न संक्रावियों की सिद्धान्त-सार-सुधा से प्राणियों के वन्तःकरण को वृन्त करती हुई भारतीय साधना की इस त्रिविणी ने साहित्य-सागर को इतना लज्जालव भर दिया कि बाव भी उसकी तरल तरंगों में मँजून और वगनाहन करने से चिर ज्ञान्ति प्राप्त होती है<sup>१</sup>।

सुखी, मूर, बायसी जैसे महान् कवि इस शताब्दी में ही हुए हैं। वह हिन्दी का गौरवपूर्ण युग था। इस शताब्दी की हिन्दी साहित्य के इतिहास में छोड़ दिया जाय तो हिन्दी-साहित्य में कुछ भी नहीं रह जाता। यह एक अक्षुण्ण विरोधाभास है, किन्तु है सन। हिन्दी की साहित्य-सम्पन्नता की परस के सिरे एक शताब्दी के साहित्य का मूल्यकिन पर्याप्त है।

छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक समिल मन्त्र-साहित्य की पावन मृमि को सिंचित कर, उज्जर की ओर प्रवाहमान वैष्णव-मन्त्र-सरिता व्यापक गति से बहती हुई विभिन्न संक्रावियों की विचार-धाराओं की वात्सलात् करती हुई सौतलकी शताब्दी में हिन्दी की विशाल मन्त्र-मृमि को वात्सलवित कर देती है। जहाँ तक कृष्ण-मन्त्र-काव्य का इस मन्त्र-परंपरा से सम्बन्ध

---

१- परमानन्द सागर - सं० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल - मुम्बई से० डा० हरकेश लाल शर्मा - पृ० १

है, सोलहवीं शताब्दी में ही कृष्ण-काव्य का विशेष निर्माण हुआ, जिस पर दक्षिण के विभिन्न वैष्णव-भक्ति-संप्रदायों की विचार-धाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।<sup>१</sup> सोलहवीं शताब्दी के पहले भी कृष्ण-काव्य लिखा गया था, लेकिन यह सबका सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेव कृत गीत-गोविन्द, या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिल कोकिल-कृत फदावली। ब्रज भाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी के पहले की प्राणाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।<sup>२</sup>

सोलहवीं शताब्दी के ब्रज भाषा-कृष्ण-काव्य में अधिकतर रचनाएँ विभिन्न संप्रदायों की विचार-धाराओं की आधाराभूमि पर ही लिखी मिलती हैं। कृष्ण-भक्तों के उपासना-क्षेत्र में यद्यपि साध्य की रूपा भी कर्वातु सभी ने कृष्ण की अपने आराध्य के रूप में ग्रहण किया था, तो भी उनकी सेवा-विधि तथा कृष्ण के विभिन्न रूपों सम्बन्धी मान्यताओं में थोड़ा बहुत अन्तर था। इसी कारण विभिन्न वैष्णव संप्रदायों की स्थापना हुई जिनमें वल्लभ, राधावल्लभीय, गौडीय, निम्बार्क और हरिदासी संप्रदाय प्रमुख हैं। अधिकतर हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवि इनमें से किसी न किसी संप्रदाय से सम्बन्धित थे। कुछ संप्रदाय-मुक्त कवि भी थे। सोलहवीं शताब्दी के निम्नलिखित प्रमुख हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों का परिचय आगे दिया जाता है (जिनकी रचनाओं तक ही इस सूत्रात्मक अध्ययन की परिधि को सीमित रखा गया है।)

#### १- वल्लभ-संप्रदाय

- १- सुरदास
- २- परमानन्द दास
- ३- नन्ददास
- ४- रसलान

#### २- राधावल्लभीय-संप्रदाय

- १- हितहरिवंश
- २- दामोदरदास (सेक जी)
- ३- हरिराम व्यास

---

१- नाम- माहात्म्य श्री ब्रजार्क, अस्त सन् १६४०, "ब्रजभाषा" नामक लेख, लेखक डा० धीरेन्द्र वर्मा। "वष्टावप और वल्लभ संप्रदाय" पृ० २७ से उद्धृत।

### ३- गाँधीय संप्रदाय

- १- गदाधर मट्ट
- २- सुरदास मदनमोहन

### ४- निम्बार्क संप्रदाय

- १- श्री मट्ट
- २- हरिश्चात जी

### ५- हरिदासी संप्रदाय

- १- स्वामी हरिदास
- २- विद्वत् विपुलदेव

### ६- संप्रदाय- मुक्त- कवि

- १- मीरासाई
- २- रहीम
- ३- नरोत्तमदास

### महाकवि सुरदास-

महाकवि सुरदास हिन्दी साहित्य-मगन के तैलीमय सूर्य हैं। उनकी रचनाएँ उनके जीवन-काल से अब तक अनगिनत भावार्थ मूल्यों और साहित्यानुशासनी रसिक बनों की कक्षीभित्त आनन्द प्रदान कर रही हैं। हनीतज्ञों के लिये तो सुर के पद मानों प्राण हैं। इस महान् कवि की रचनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर हिन्दी साहित्य के सुयोग्य विद्वानों ने अन्तःसाध्य और बाह्य साध्य के बाजार पर सुरदास के जीवन पर प्रकाश डालने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। परन्तु सर्वसम्पन्न जीवनी अब तक लिखी नहीं जा सकी है।

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश वाली "मीरासाई वैष्णवन



की वार्ता<sup>१</sup> के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली से ४ कोस दूर ब्रज की ओर स्थित<sup>२</sup> "सीही" नामक ग्राम में हुआ था। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने भी यही माना है<sup>३</sup>। संप्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि सूरदास जी श्री बल्लभाचार्य जी से १० दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म-दिवस सं० १५३५ की वैशाख कृष्णा १९ रविवार है। इसलिए सूरदास जी की जन्म तिथि वैशाख शुक्ल ५ मंगलवार सं० १५३५ ठहरती है<sup>४</sup>। आचार्य नन्ददुतारे बाबपेयी स्वका जन्म संवत् १५३० मानते हैं<sup>५</sup>।

सूरदास जी की जाति तथा वंश भी विवाद ग्रस्त हैं। "साहित्य सहरि" का एक पद सूर की जाति और वंश पर प्रकाश डालता है। परन्तु इसकी प्रामाणिकता पर विद्वानों ने सन्देह किया है। इस पद के बाधारे पर कुछ लोगों ने उन्हें बन्द का वंश मान लिया है। सूरदास ने सूरदास में जैसे स्थानों पर अपने लिए "ढाढी" शब्द का प्रयोग किया है, जिसके बाधारे पर कुछ लोगों ने उन्हें "ढाढी" जाति का मान लिया है। परन्तु कई विद्वानों ने वार्ता - साहित्य के अनुसार सूर की सारस्वत जाति माना है। यही सर्वमान्य है और जनश्रुति भी इसके अनुसार है।

सूरदास के जन्मत्व के विषय में भी बड़े धारणाएँ हैं। कुछ उन्हें जन्मान्ध, कुछ बाल्यावस्था में बन्धे हुए तथा कुछ उन्हें वृद्धावस्था में बन्धे हुए मानते हैं। भक्तमाल के टीकाकार श्री महाराज सूरदाससिंह ने "रामरत्नावली" में लिखा है - "जन्महि ते नैन विहीना, दिव्य दृष्टि देखहि सुख मीना।" डा० दीनदयाल गुप्त सूर का बाल्यावस्था में बन्धा होना तथा डा० हरकृष्ण लाल शर्मा

१- वष्टशाप, कफिरौली पृ० ३

२- सूर और उनका साहित्य- डा० हरकृष्ण लाल शर्मा पृ० २३ द्वितीय संस्करण तथा वष्टशाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० १६६

३- बल्लभ दिग्विजय पृ० ७

४- सूर और उनका साहित्य- डा० हरकृष्ण लाल शर्मा पृ० २४

५- महाकवि सूरदास - आचार्य नन्ददुतारे बाबपेयी पृ० ३७ ६३

६- सूरदासकृत साहित्य सहरि पद १९८

७- सूर और उनका साहित्य - डा० हरकृष्ण लाल शर्मा पृ० २५

८- वष्टशाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० २०२



उनका बन्सान्ध होना मानते हैं<sup>१</sup>।

सुरदास के बन्धे होने के कारण माँ-बाप उनकी बीर उदासीन रहते थे। उपेक्षा बीर निर्धनता के कारण इन्होंने घर त्याग दिया। ये अपने गाँव से चार कोस की दूरी पर एक तालाब के किनारे रहने लगे। वहाँ ये पद बजाते थे बीर इन्होंने गान-विद्या का सब साधु झटूटा कर लिया था<sup>२</sup>। वहाँ ये झुन भी बनाने लगे। लोग इन्हें "स्वामी" कहकर पुकारने लगे। वहाँ के जमींदार ने वहाँ उनकी सेवा के लिए एक फौजड़ी छत्वा दी तथा एक नौकर को रख दिया। क्रमशः उनका कैभव बढ़ गया। एक रात्रि को ज्ञानक उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ तो इन्होंने अपने माता-पिता को बुलवाकर वहाँ की सब संपत्ति उन्हें सौंप दी बीर ये ब्रज की बीर चल दिये। ये जागरा बीर मथुरा के बीच यमुना के किनारे "गऊ घाट" पर रहने लगे<sup>३</sup>। उस समय ये विनय<sup>४</sup> पद गाते थे। १८४४ वाता में बताया है कि एक बार वल्लभाचार्य जी दक्षिण देश तथा काशी में मायावाद का सप्हन बीर भवित-मार्ग की स्थापना कर, कहेल से ब्रज की बीर बाते हुए गऊघाट पर ठहरे। सूर के वहाँ मिलने पर इनके आचार्य जी ने भगवत, यह वर्णन करने को कहा। सुरदास के "हो हरि सब पतितन को नाक" पद गाने पर आचार्य जी ने इनके कहा - "तुम क्यों पिपियाते हो?" सूर के यह कहने पर कि ये सीला का रहस्य नहीं जानते, आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत पर अपनी तिली टीका सुबोधिनी सुनाई<sup>५</sup> बीर इन्हें अपने संप्रदाय में ले लिया। गऊघाट से आचार्य जी सुरदास को गौकुल ले गये। श्रीनाथ जी का नया मंदिर बन गया था बीर इन्होंने सुरदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा सौंप दी<sup>६</sup>। सुरदास जी लगभग सं० १५६६ में जबकि उनकी आयु लगभग ३२ वर्ष की थी, श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में जा गये थे। सुरदास की मेंट

१- सूर बीर उनका साहित्य पृ० २६ द्वितीय संस्करण

२- वष्टहाप, कंकिरीली, पृ० ६

३- वही पृ० १०

४- वही पृ० १३

५- वही पृ० १६

६- वष्टहाप बीर वल्लभ-संप्रदाय पृ० २१३

हुई बताया जाती है। डा० दीन दत्तात्रेय गुप्त के अनुसार कबीर सूरदास जी से या तो सन् १५७७ ई० की आसपास यात्रा से लौटकर मिला हो सकता सन् १५७६ ई० की आसपास यात्रा से फतहपुर सीकरी को लौटता हुआ, रास्ते में मथुरा में मिले मिला हो। सन् १५७६ ई० में मिलना अधिक संभव लगता है। श्री प्रसूदयाल मीतल सूर और तुलसी का मिलन-काल स० १६२६ में गोवर्द्धन के निकटवर्ती पारसोली ग्राम में मानते हैं<sup>१</sup>।

सूरदास एक त्यागी, विरक्त तथा प्रेमी भक्त थे। पुष्टिमाग के सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता थे। भगवान् की सेवा सदैव करनी चाहिए। उसकी सिद्धि मानसी सेवा में है। सूर तुलसी, वित्तभा और मानसी में - सर्व वैष्ट "मानसी" सेवा के अधिकारी थे। दीनता नम्रता के साक्षात् प्रति-मूर्ति थे। भगवान् की सीला और उनके माहात्म्य की होकर किसी लौकिक पुरुष का सूर ने मान नहीं किया। गोस्वामी विद्वत्तनाथ जी ने उनकी प्रशंसा के भावपूर्ण शब्दों में की है और सूर के अन्त-समय में उनके विषय में कहा- "पुष्टि मार्ग की महान बात है जो बाकी कहु तेनो हो सो लेउ<sup>२</sup>।" कहा जाता है कि सूर अपने अन्तिम समय में गोवर्द्धन से पारसोली चले गये थे और वहीं अष्टज्ञाप के कवि जगन्मोहनदास, गोविन्दस्वामी और कृष्णदास स्व गोस्वामी जी के सम्मुख अपने नखर शरीर की त्याग दिया। अन्त-समय इनका ध्यान झुल ६५ राधा-कृष्ण में लगा था। इनके विद्वानों ने सूर की गौलीकवास- तिथि संवत् १६४० मानी है। उस समय इनकी आयु लगभग १०५ वर्ष की थी<sup>३</sup>।

१- अष्टज्ञाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० २१८

२- अष्टज्ञाप परिचय, प्रसू दयाल मीतल पृ० १२६

३- अष्टज्ञाप, कांकिरोली पृ० ५७

४- अष्टज्ञाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० २०८

५- अष्टज्ञाप, कांकिरोली पृ० ५०

६- वही पृ० ५४

७- वही पृ० ५५

८- सूर निर्णय पृ० १०३

सूर और उनका साहित्य पृ० ३३

महाकवि सूरदास पृ० ७६

### रचनाएँ और वर्ण्य विषय-

सूर कृत कहे जाने वाले ग्रन्थों की सूची डा० हरबंस लाल शर्मा ने इस प्रकार दी है :-

- १- सूर चारावली
- २- भागवत भाष्य
- ३- सूर- राधायण
- ४- गीवर्धन लीला ( रास लीला )
- ५- भंवरगीत
- ६- प्राणप्यारी
- ७- सूर बाठी
- ८- सुस्वास के विनय वादि के स्फुट पद
- ९- स्वादली महात्म्य
- १०- साहित्य लहरी
- ११- वल्लभ - रसध माणा
- १२- मान-लीला
- १३- नाग लीला
- १४- दृष्टिकूट के पद
- १५- सूर फनीसी
- १६- नल दमयन्ती
- १७- सूर- बागर
- १८- सूर-बागर-बार
- १९- राधा- रस- कैलि - कौटुहल
- २०- दान-लीला
- २१- व्याहली
- २२- सूरसक्त
- २३- सेवाकल

२४- हरिवंश टीका ( संस्कृत )

२५- राम जन्म

जन्म से कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित हैं । इन रचनाओं की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं । डा० श्रीधर वर्मा एक मात्र सूर सागर को ही सूर की प्रामाणिक रचना मानते हैं<sup>१</sup> । डा० दीन दयालु गुप्त, मुंशीराम शर्मा तथा दासदास परीत आदि विद्वानों ने साहित्यकहरी और सूर सारावली को भी प्रामाणिक सिद्ध किया है<sup>२</sup> ।

यहाँ सूर की प्रमुख तीन रचनाओं पर प्रकाश डाला जाता है ।

#### सूरसागर-

यह सूरदास की उत्कृष्ट विस्तारकाय और महत्वपूर्ण रचना है । उपलब्ध सूरसागर भागवत की तरह ही दास स्कन्धों में विभाजित है । हो सकता है कि सूरदास ने स्कन्ध रूप में ही इसकी रचना की हो<sup>३</sup> । इसमें प्रथम, नवम और दशम के पूर्वादों और उत्तरादों विस्तार और महत्वपूर्ण हैं । शेष उल्लेख महत्वपूर्ण नहीं । संपूर्ण पदों की संख्या ४५७८ है । सूर सागर में श्रीकृष्ण की बात-सीताजी, राधा और गोपियों के प्रति उनकी जीक नैष्टाजी तथा गोपियों के विरह का विरह वर्णन है । भागवत की कथाओं और तत्त्वों को सूर ने इसमें अपनी भावना के अनुसार ही प्रस्तुत किया है ।

१- सूरदास पृ० ६७

२- अष्टाश्व और वल्लभ संप्रदाय पृ० २६८

सूर सौम्य पृ० ३ ( प्रथम भाग )

सूर निर्णय पृ० १६६

३- श्रीमुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समझाई ।

ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद व्यास सुनाई ।

व्यास कहे भुवदेव सौं दास कन्ध बनाई ।

सूरदास सौं कहे पद भाषा करि गाई ।।।

- प्रथम स्कन्ध, सूरसागर पद सं० २२४ ( ना. प्र. सं० )



### सूर सारावली :

इसकी कुछ विद्वानों ने सूर सार की "कुसुमणिका" जैसा "सूरी-फर" तक कहा है। परन्तु वास्तव में यह एक स्वतन्त्र रचना है और इसकी शैली में १६००-१७०० की उसी भिन्नता है। इसमें कुल ११०७ छन्द हैं। इसमें सूर ने इस संसार की शोरी के खेल का हफा माना है जिसमें लीला पुरुष की जड़-मुल लीलाएँ निरन्तर चलती रहती हैं। इस हफा का निर्वाह जत तक किया गया है। अवतारों के वर्णन में भागवत का अनुकरण है। नयी कल्पनावी का भी वाक्य लिया गया है। अन्तिम भाग में रुक्मिणी के प्रसन्न के उत्तर के रूप में ब्रह्म, इंद्रावन, राधा, यशोदा तथा रास बादि लीलाओं का समावेश है।

### साहित्य संहरी :

इसकी सूरदास के दृष्टिकोण पदों का संग्रह तथा रस, बर्णन और नायिका भेद की एक रीति प्रधान रचना कहा जाता है। इसमें ११५ पद हैं। "साहित्य संहरी" के बाधार पर कुछ विद्वानों ने सूर की भक्ति-भावना को ईगार के कर्म से लक्षित और दूषित भी ठहराने का प्रयत्न किया है। परन्तु डा० हरवंश लाल शर्मा का कहना है - "सूर ने अपने बाराध्य की अनेक प्रणय-पूर्ण लीलाओं के मधुर गान का जो स्वर उठाया है, उसमें सरसता है, किन्तु कर्म नहीं, विष्वक्ता है, किन्तु वासना नहीं, शौन्दर्य रस पान की बाहुल पिपासा है, किन्तु ऐंद्रिय लोलुपता नहीं। वाक्य की सरलता है किन्तु दृढ़ता के साथ, मुक्तान की मादकता है किन्तु चेतना के साथ, अनुभूतियों की चपलता है किन्तु स्थिरता के साथ। कहाँ तक कहें, लौकिकता है, परन्तु अलौकिकता के साथ।"

### परमानन्ददास :

कविवर परमानन्ददास का जन्म "चौराही वैष्णवन की वार्ता" के अनुसार कर्नाव विंश कुरुतावाद में हुआ था। पुष्टि-संक्राय में यह मान्यता है कि जिस दिन श्री गोकुलनाथ जी का प्राकट्य हुआ, उसी दिन

---

१- सूर और उनका साहित्य - द्वितीय संस्करण पृ० ४६

२- अष्टशाय, कर्कशांती पृ० ५



परमानन्ददास जी वाविभूत हुए । “ वत्सल दिग्विजय ” के अनुसार यह तिथि ज्ञान सुदी ७ संवत् १५५० की पड़ती है । डा० दीनदयालु गुप्त ने भी इनका जन्म संवत् १५५० माना है । ये वाति के कान्कड़वा ब्राह्मण थे । इनके पिता निर्धन थे । छ्हर उछर से दान बाँटि मिलने पर ही उनकी गृहस्त्री चलती थी और वाय का विशेष साधन नहीं था । परमानन्ददास के जन्म के दिन एक सेठ ने इनके माता पिता को बहुत सा धन दिया, जिससे उनको परमानन्द हुआ और पुत्र का नाम परमानन्द रख दिया । प्रसन्नता में बड़े बड़े उत्सवों का भी आयोजन किया गया और उचित समय पर यज्ञोपवीत भी करा दिया गया । कन्याज में काल पड़ने पर वहाँ के हाकिम ने इनके पिता का समस्त धन छूट लिया । इनके पिता धनो-पाजन के लिए निकल गये और दक्षिण में धन मिलने पर वहीं रहने लगे । परन्तु परमानन्ददास कन्याज में ही रहते थे । ये बाल्यकाल से ही त्यागी और निर्लोभी थे । प्रारम्भ से ही ऋषि वैराग्यमयी थी । इसी कारण पिता के वाग्रह करने पर भी उन्होंने विवाह करने और धन-संचय करने से इनकार कर दिया ।

कल्प से ही उन्हें कविता करने, गाने का शौक था । इनके साथ कीर्तन करने वालों का समाज बहुत था और वे “ स्वामी ” कहलाते थे । वत्सल संप्रदाय में जाने से पूर्व ही ये एक योग्य व्यक्ति, कवीश्वर और गर्वये प्रसिद्ध हो गये थे । ये बड़े कला प्रेमी थे और गान विद्या में निपुण थे । इनके यहाँ दूर दूर से भक्त कीर्तन सुनने जाते थे और प्रभावित होकर इनके शिष्य हो जाते थे ।

१- वष्टज्ञाप और वत्सल संप्रदाय- डा० दीनदयालु गुप्त पृ० २२६

२- वष्टज्ञाप, काँकरीली पृ० ५८

३- हरिराय जी कृत भाव प्रकाश पृ० ७८८

४- वष्टज्ञाप, काँकरीली पृ० ५६

५- वही पृ० ५६

६- वही पृ० ६०

७- हरिराय जी कृत भाव प्रकाश पृ० ७८६, ७८७

८- वष्टज्ञाप, काँकरीली पृ० ५६

९- हरिराय जी कृत भावप्रकाश पृ० ७६१

रु बार मर फर ये प्रयाग गये थे वर वहाँ कल में महाप्रभु वल्लभाचार्य से मेट हुई । वाचार्य जी के भावद् सीता-वर्णन करने की कहने पर इन्होंने विरह के कहें उन्हें पद सुनाये । तब वाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की कृष्णमणिका इनकी सुनायी । इसी समय संवत् १५७६ में उन्होंने परमानन्ददास को अपने संप्रदाय में दीक्षित कर लिया । परमानन्ददास जी ने अपने कल पदों में गुरु वल्लभाचार्य का बड़ा सखि स्मरण किया है । फिर गोकुल में वाकर परमानन्ददास ने वाचार्य जी की नवनीत प्रिय की बात- सीता के कल नवीन नवीन पद सुनाये । कल पदों से प्रसन्न होकर वाचार्य जी ने इनकी श्रीनाथ जी के कीर्तन - सेवा सोंप दी । कल-काल तक ये गोकुल में ही रहे । संवत् १६०२ में विट्ठलनाथ जी ने वष्टशाप की स्थापना की तो ये उसमें सम्मिलित हो गये । इन्होंने बाल भाव, कान्ताभाव वर दास्य भाव से भक्ति की । वार्ता के अनुसार वाचार्य जी पुरदास वर परमानन्ददास दोनों की ही सर्व श्रेष्ठ मानते थे वर इन्हीं दोनों की उन्होंने "सागर" के की उपाधि दी ।

जब परमानन्ददास गोकुल जाये थे , तभी से इन्होंने अपने रहने के लिए "सुरभी कुण्ड" पर रू कुटी बनायी थी, वर वहाँ से कीर्तन- सेवा करने के लिए ऊपर जाया करते थे । यहाँ पर कला नित्य-सीता-प्रवेश संवत् १६४० में गौस्वामी विट्ठलनाथ जी की विमानता में हुआ । इन्होंने अनुमाष्टमी उत्सव के दोरे दिन नवमी को " दक्षिणा " के उपरान्त अपनी भौतिक देह का किर्तन किया । गौस्वामी विट्ठल नाथ जी ने परमानन्ददास जी की मृत्यु

१- ८४ वैष्णवन की वार्ता पु० ७६२ से ८०५ तक

२- परमानन्ददास - डा० गोकुल नाथ शुक्ल पु० २६६ पद सं० ८५२

३- वष्टशाप कलरोली पु० ८६

४- वही पु० ८३

५- वही पु० ७५

६- ८४ वैष्णवन की वार्ता पु० ८१० से ८३६ तक

७- भाव प्रकाश पु० ८३३ तथा परमानन्ददास ( पद संग्रह ) डा० गोकुल नाथ शुक्ल

के बाद उनकी जी प्रशंसा की, उसके सम्बन्ध में बातों में लिखा है :- "सो तो समय भी गुवाह जी बापु उन वैष्णवों के बागे यह वन भीमुख सो कहे, जो ये पुष्टिमार्ग में दोह सागर भये- एक तो सुरदास और दूसरे परमानन्ददास । जो तिन की हृदय लगाव रख, भगवद् लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं सो या प्रकार श्री गुवाह जी बापु भी मुख सो परमानन्ददास की सराहना किये ।" परमानन्ददास जी की बातों में दिन की गोपारण- लीला में "लीक" सदा और रात्रि की कृष्ण लीला में "चन्द्रभागा" सही लिखा है ।

#### रत्नाई और धर्म विषय-

परमानन्ददास द्वारा रची हुई मानी जाने वाली रत्नाई निम्नलिखित हैं :-

- १- दान लीला
- २- ध्रुव चिह्न चरित्र
- ३- उदय लीला
- ४- संस्कृत रत्नमाला
- ५- दीर्घ लीला
- ६- परमानन्द जी के फल
- ७- परमानन्द सागर

उपर्युक्त ग्रन्थों में पहले ५ ग्रन्थ अप्रामाणिक और अनुपलब्ध हैं । इन्हीं ग्रन्थ सातवें का ही जी मात्र है । परमानन्द सागर जो उनके भक्तों द्वारा उनके फलों के लिए दिया हुआ नाम है, उनकी प्रामाणिक रचना ठहरती है । परमानन्दसागर का विस्तार लगभग २००० पदों तक जाता है । यह संख्या नाथ-द्वार और काँकरोली में प्राप्त इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों पर आधारित है । परमानन्ददास जी के फलों में परमानन्द नाम की निम्नलिखित छापें मिलती हैं :-

- १- परमानन्द प्रभु

१- वष्टशाप काँकरोली पृ० १००

२- वही पृ० ५०

३- परमानन्द सागर ( फल-संग्रह ) डा० गोवर्धन नाथ कुवत पृ० १२

२- परमानंद स्वामी

३- परमानंद दास

४- दास परमानंद

५- परमानंद

इन पदों के वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में डा० दीन दयालु गुप्त लिखते हैं :-<sup>१</sup> "उत्तरे पदों में दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और मंवर-गीत तक का ही मुख्यतः वर्णन है। मुरदास जी ने तो स्वयं कई स्थलों पर अपनी रचना में कहा है कि वे भागवत के अनुसार अपने विषय को लिख रहे हैं। परमानंद दास के पदों में इस प्रकार का उल्लेख देखने को नहीं मिलता। उन्होंने कुछ स्फुट पद, वनाय छूतीया, दीपमास्त्रिका, राज जन्म-वृक्षिह, वासन अवतारों की प्रशंसा आदि विषयों पर भी लिखे हैं जो बहुधा बल्लभ-संप्रदायी वर्णोत्सव-कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं।"<sup>२</sup>

इन पदों का रूप, रागों के अनुसार न होकर, विषय के अनुसार है। कवि का काव्य-विषय मुख्यतः श्रीकृष्ण की किशोर-सीता माना था। "परमानंद सागर" में "सूर सागर" की तरह भागवत की संपूर्ण कथा का समावेश न होकर, केवल दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध, कृष्ण के मथुरा गमन और मंवर गीत का वर्णन है। इनके अधिकतर पद कृष्ण की बाल-सीता, गौपी-प्रेम, और गौपी - विरह पर लिखित हैं। इनके अतिरिक्त राधा को लेकर मान, सपिंडता, सुत-सीता, रास आदि पर तथा अन्य स्फुट विषयों पर भी इनके पद उपलब्ध होते हैं।

नन्ददास :

नन्ददास का जीवन वृत्तान्त "दो सौ बावन वैष्णवन की बातें" सं० ४ और "वष्टसप्तान की बातें" सं० ८ पर दिया हुआ मिलता है। इनके जन्म-स्थान, जन्म - संवत् तथा जाति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। "मन्तमास" में नन्ददास का निवास - स्थान रामपुर ग्राम दिया हुआ है।<sup>२</sup>

१- वष्टशप्त और बल्लभ संप्रदाय - डा० दीनदयालु गुप्त पृ० ३११

२- मन्तमास, मन्ति सुधास्वाद - तिलक, हफला पृ० ६०२



२५२ वार्ता उन्हें पूर्व देश का निवासी बताती है। वार्ता और मन्तमाल के आधार पर नन्ददास को गोकुल - मयुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर ग्राम का निवासी कहा जा सकता है। डा० श्यामसुन्दरदास तथा डा० दीन दयालु गुप्त इनका जन्म - संवत् लगभग १५६० वि० मानते हैं<sup>१</sup>। "मूल गीताई चरित" में उन्हें काव्य कुक्क ब्राह्मण कहा गया है। परन्तु वार्ता के अनुसार ये सनाढ्य कुलोत्पन्न ब्राह्मण थे। विद्वानों को वार्ता का कल्प ही मान्य है। इनके माताकर्म पिता के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

नन्ददास को महाकवि तुलसीदास का माई भी कहा जाता है। वार्ता में इसका प्रमाण मिलता है<sup>२</sup>। परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि ये तुलसी के सौ माई थे या चचेरे। तुलसीदास और नन्ददास दोनों ही काशी में रहते थे। तुलसी के प्रभाव से ये रामानन्द संप्रदाय के अनुयायी हो गये। प्रारम्भ में नन्ददास का मुकाबल लौकिक बातों की ओर अधिक था। जब कहीं नृत्य या संगीत का वायोजन होता तो ये वहीं पहुँच जाते थे। तुलसी के उन्हें ऐसी जगहों पर न जाने के लिए कहने पर भी ये नहीं मानते थे। काशी से एक बार एक यात्री-दल रणझोर जी के दर्शन के लिए झारका जी को चला। नन्ददास भी बड़े माई तुलसीदास से अनुमति लेकर उस दल के साथ चल दिये। चलते - चलते नन्ददास रास्ता भुल कर "सिंहनाद" गाँव में जा पहुँचे। वहाँ जब घूम रहे थे तो उन्हें इत पर लड़ी एक उत्कृष्ट सुन्दर स्त्री दिखाई पड़ी। नन्ददास उस स्त्री के रूप पर मुग्ध हो गये और नित्य उसके मुख को देखने उसके घर जाने लगे। जब उस स्त्री के परिवारों को यह बात मालूम हुई, तो वे लोकाफ्लाद के डर से अपना गाँव छोड़कर सब के सब गोकुल चले गये। जब लौकिक प्रेम में मुग्ध नन्ददास यमुना के तट पर बैठकर यमुना स्तुति के पद गाने लगे। निरुपाय नन्ददास को गौस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने अपने शेरक द्वारा अपने पास बुलवाया। उनके दर्शन और उपदेश से नन्ददास का मन लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर भगवान् कृष्ण के चरणों में जा लगा। गौस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने उनके मजन-कीर्तन से प्रसन्न होकर संवत् १६१७ में पुष्टि संप्रदाय में दीक्षा कर लिया।

१- हिन्दी साहित्य पृ० १६२ ( डा० श्यामसुन्दर दास )

तथा अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० २६१

२- दो सौ बावन की वार्ता - पृ० २५६



कहा जाता है कि संप्रदाय में प्रवेश करने के पश्चात् भी एक बार इनमें गृहस्थी का मोह जाग उठा था और कुछ साल गृहस्थी रहकर ये गोष्ठित्त वाये। तदन्तर वैरागी नन्ददास ने संसार की ओर दृष्टि नहीं उठायी। वार्ता से ज्ञात होता है कि तुलसीदास ने एक बार मधुरा जाकर नन्ददास को राम-भक्त बनाने का प्रयत्न किया था। पर इस प्रयत्न में वे असफल रहे।

नन्ददास संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। ये सहृदय, सौन्दर्य-प्रेमी तथा रसिक व्यक्ति थे। बल्लभ संप्रदाय में जाने के बाद इनका जीवन कृष्ण-भक्ति तथा गोष्ठित्त सर्व गोवर्धन पर स्थित मन्दिरों की कृष्ण-मूर्तियों के दर्शन और सेवा में ही बीता। २५२ वार्ता तथा बृष्टसप्तान की वार्ता से नन्ददास के कब्र की वैष्णव - लौंडी से मिलने, उसके ठेरे मानसी गंगा पर जाने, बीरबल के इनसे मिलने जाने और कब्र के इन्हें बुलाने का विवरण मिलता है। वार्ता में लिखा है कि हरणानति के पश्चात् गोस्वामी जी ने नन्ददास को कुछ समय के लिए महा-कवि सुरदास के सत्संग में रखा। सुरदास के सात्विक जीवन के प्रभाव से नन्ददास के हृदय में वैश्य भाव का संसार हुआ और इनकी काव्य - प्रतिभा की भी उन्नति हुई। इन्होंने तुलसी के "रामचरित मानस" की भाँति "श्री मागवत" भी लिखा था। कदाचित् इसी वाता से प्रेरित होकर इन्होंने "श्रीमद्भागवत" के दशम स्कन्ध की कथा के आधार पर "श्रीमद्भागवत दशम्" की रचना की। पर बाद में गोस्वामी विद्वत्नाथ जी की अनुमति पाकर इन्होंने उसमें से केवल ब्रज-सीता के वंश की अपनी पाठ रहकर शेष की अनुमति में बहा दिया।

गोवर्धन जाने पर ये स्थायी रूप से मानसी गंगा पर रहने लगे। वहीं पर रहते हुए अपना शेष-जीवन इन्होंने भजन-कीर्तन और ग्रन्थ - रचना में लगाया। वन्त में संवत् १६४० के लगभग मानसी गंगा के किनारे एक पीपल वृक्ष के नीचे इनका देहावसान हुआ।

१- २५२ वार्ता पृ० २६६ से २७१ तक

२- बृष्टसप्तान, काँकरीली पृ० ३४२ - ३४३

३- वही पृ० ३५१

४- वही पृ० ३५१

५- २५२ वार्ता पृ० २७५

### रचनाएँ और वर्ण्य विषय-

नन्ददास ने अन्य वृष्टवासी कवियों की तरह स्फुट फल भी रचे थे, पर साथ ही उन्होंने बड़े स्वतंत्र-ग्रन्थों की भी रचना की जिनमें कुछ अब अनुपलब्ध हैं। क्रान्तीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास में (सन् १८७० ई० में) नन्ददास के ३० ग्रन्थों का उल्लेख किया है। परन्तु डा० दीन दयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास के निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रामाणिक हैं :-

- १- रस मंजरी
- २- जैकार्य मंजरी
- ३- मान मंजरी
- ४- दशम स्कन्ध
- ५- श्याम सगाई
- ६- गोवर्धन लीला
- ७- सुदामा चरित्र
- ८- विरह मंजरी
- ९- रूप मंजरी
- १०- रुक्मिणी मंगल
- ११- रास कैलाश्यायी
- १२- मंजर गीत
- १३- सिद्धान्त कैलाश्यायी

“रस मंजरी” ग्रन्थ का विषय नायक - नायिका भेद है। “जैकार्य मंजरी” में एक एक शब्द के अनेक अर्थ दोहरा बढ़ करके दिये गये हैं। “मान मंजरी नामालाल” में अगर कौन के बाधारे पर शब्दों के पर्यायवाची रूप दिये गये हैं। इस में राधा का मान-वर्णन भी है। “दशम स्कन्ध” में मागवत दशम स्कन्ध के उन्नीस अध्यायों का भावानुवाद है। कवि को इतनी सिलसिले की प्रेरणा तुलसी के “रामचरित मानस” से मिली थी। यह अपूर्ण रचना है। “श्याम सगाई” में कृष्ण के साथ राधा की सगाई होने का उल्लेख है। यह कथा मागवत

में नहीं है। कृष्ण गारुडो बनकर इस से राधा का काल्पनिक विष्ण उतारते हैं और इस प्रकार वेत में सगर्ह स्वीकृत कराने में सफल होते हैं।

“गोवर्धन लीला” में कृष्ण चरित्र की लीलाओं का वर्णन और गुणगान है। “सुदाना चरित्र” में कृष्ण की दयालुता, भक्तवत्सलता, मैत्री-निर्वाह आदि भावों को दिखाया गया है। “विरह मंजरी” में नन्ददास के “आदश मास विरह की कथा” का चित्रण है। इसमें ब्रजवासिनियों की विरह-व्यासा का मार्मिक वर्णन है। “रूप मंजरी” में रूपवती और रूपमंजरी के रूप तथा उसके लौकिक प्रेम का त्याग तथा कृष्ण के साथ प्रेम करने का वर्णन है। दोहा-चौपाई की शैली में वर्णित इस कथा का आधार भागवत से लिया गया है। “रुक्मिणी मंगल” में कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की कथा है, जो भागवत पर आधारित है। कथा-कथन में कल्पना को भी स्थान मिला है।

“रास फेलाव्यायी” में भागवत दशम स्कन्ध पुरांद के रास वध्यायों में वर्णित रास-लीला का वर्णन रीता इन्द में हुआ है। अपनी कोमल-कान्त-फदावली और श्रुति मधुर भाषा शैली के कारण यह ग्रन्थ हिन्दी का “गीतगोविन्द” कहा जा सकता है। “भ्रमर गीत” में उदय-गोपी-संवाद के रूप में निर्गुण पर सगुण की विषय और योग और ज्ञान-मार्ग पर प्रेम की विषय दिखायी गयी है। ऐसा लगता है कि यह सुरदास के “भ्रमर गीत” से प्रभावित होकर लिखा गया हो। “सिद्धान्त फेलाव्यायी” में “रास फेलाव्यायी” में वर्णित रास-लीला की आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। ऐसा लगता है कि रास-प्रसंग के शृंगारिक वर्णनों की वलोकिकता पर की गई शंकाओं का शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करना ही इसकी रचना में कवि का उद्देश्य था।

“नन्ददास की फदावली” में पदों की संख्या ७०० और ८०० के बीच में है। विषय की दृष्टि से इन पदों में पुष्टिमार्गीय वर्णोत्सव सम्बन्धी लगभग सभी प्रसंगों का वर्णन मिलता है। बाललीला पर नन्ददास की कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती है। परन्तु इनके पदों में कहीं कहीं उसका भी समावेश है। इनकी फदावली के मुख्य विषय इस प्रकार हैं - गुरु-स्तुति, यमुना-स्तुति,

सीता-फल , कृष्ण-बन्ध , बघाई , पालना , बालरूप , गोचारण , गोदोहन , फण्ट , दान सीता , हिंदोला , राधा-कृष्ण कुराग , कैलि , कृष्ण हय , वर्णन , राधा-हय-वर्णन , राधा-कृष्ण का विवाह वर्णन , रास राधा मान , होली , फूल मंडली , बसंत , लड्डिया , मल्हार , वर्णा , दीप-मास्त्रिका , कदाय वृत्तीया बादि त्योहार । नन्ददास के काव्य में भाषा की मधुरता तथा शब्दों की सजावट है । इसलिए और कवि गढ़िया , नन्ददास बढ़िया की उक्ति प्रचलित हो गयी है ।

### रसखान-

रसखान हिन्दी के सुप्रसिद्ध मुसलमान कृष्ण भक्त कवि हैं, जिनकी देन कृष्ण-काव्य को वृत्ति प्रसिद्धि मिली है । इनका जीवन-वृत्त तिमिरा-शून्य है और इनका प्रामाणिक जीवन वृत्तान्त अभी तक लिखा नहीं जा सका है । " शिवसिंह सरोज ", गोस्वामी राधाचरण कृत भक्त-माल , बाबा बेनी माधव दास कृत " मूल गोसाईं चरित " बादि में रसखान के सम्बन्ध में उल्लेख हैं । रसखान के निम्नलिखित दोहे तथा " २५२ वैष्णवन की बातें " से पता चलता है कि ये किसी बादशाह खानदान के थे ।

" देखि गदर हित साहिबी , दिल्ली नगर मखान ।

जिनहिं बादशा - बंस की, ठसक हाँडि रसखान ॥ "

- प्रेम वाटिका , दोहा ४८

कुछ लोग उन्हें सैयद ख़ाहीम फिह्रानी वाले समझते हैं । परन्तु कवि रसखान उनसे भिन्न व्यक्ति थे । रसखान के जन्म-संवत् और निधन

१- शिवसिंह सरोज में लिखा है कि रसखान कवि सैयद ख़ाहीम फिह्रानी वाले सं० १६३० वि० में हुए । ये मुसलमान थे । श्री वृन्दावन में जाकर कृष्णानन्द की मक्ति में रहे हुए कि फिर मुसलमानी धर्म त्यागकर बाला-कंठी धारण किये हुए वृन्दावन की रज में मिल गये । इनकी कविता निपट सक्ति माधुरी से पूरी हुई है ।

२- प्रेममाधुरी चार पृ० १४७ वसुधा संस्करण



संवत् का निर्णय करना कठिन है। पंडित चन्द्रशेखर पाटिल<sup>१</sup> और वेदभक्त<sup>२</sup> ने उनका जन्म संवत् १६१५ लिखा है। परन्तु इसका कोई बाधार नहीं दिया है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल केवल उनके कविता-काल का उल्लेख करते हैं जो उनके अनुसार संवत् १६४० है<sup>३</sup>। कवि ने अपनी रचना 'प्रेम-वाटिका'<sup>४</sup> में एक दोहे में उसके रचना-काल का उल्लेख किया है।

विष्णु सागर रस रंजु सुम, बरस सरस रसखान ।

प्रेमवाटिका रचि रुचिर, निर हिय हरणि बखान ॥

इस दोहे के बाधार पर 'प्रेम-वाटिका' का रचना-काल संवत् १६७१ निकलता है। यह प्रसिद्ध है कि रसखान दिल्ली छोड़कर गौतम गये थे और वहाँ गौस्वामी विट्ठलनाथ ने (संवत् १५७२ - १६४२) रसखान का प्रवेश बल्लभ संप्रदाय में कराया था। प्रसिद्ध किंवदंतियों से अनुमान किया जा सकता है कि जब ये वृन्दावन गये, तब काफी व्ययस्क व्यक्ति अवश्य थे। अतः उनका जन्म संवत् १५६० के आस पास ही मानना समीचीन होगा। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का अनुमान है कि रसखान का जन्म १६ वीं शती के मध्य में हुआ होगा।<sup>५</sup> चूंकि 'प्रेम वाटिका' की रचना संवत् १६७१ में हुई, इसलिए रसखान का निधन-संवत् १६७७ के लगभग माना जा सकता है। डा० दीन दयालु गुप्त रसखान को अष्टज्ञाप कवियों के समकालीन मानते हैं<sup>६</sup>।

रसखान के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक कथा यह है कि ये एक स्त्री पर वासवत थे। वह स्त्री रूपवती होने के कारण उनका बड़ा तिरस्कार करती थी, जिस पर भी ये उससे प्यार करते थे। एक दिन रसखान श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। गोपियों का वियोग-वर्णन पढ़

१- रसखान और उनका काव्य पृ० २

२- कृष्ण काव्य की इप्रीसा पृ० ६८

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २३२

४- हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० २०७

५- अष्टज्ञाप और बल्लभ संप्रदाय - डा० दीन दयालु गुप्त पृ० २२



कर इन्होंने सोचा कि जिससे सबको गोपियां प्यार करती हैं, उससे क्यों न हल्क किया जाय। वस, भावावेश में ये उस अभिमानिनी स्त्री को झोड़कर वृन्दावन चले गये। “ २५२ वैष्णवन की वार्ता ” में लिखा हुआ है कि रसखान पहले किसी बनिर के लड़के पर वासवत थे। बाप उस लड़के पर इतना अधिक लट्टू हो गये थे कि उसका बूठा लकड़ा लिया करते थे।

एक दिन एक वैष्णव-भक्त ने इनसे कहा कि जितना अधिक प्रेम तुम इस लड़के से करते हो, यदि उतना ही भगवान् से करते तो सुखारी मुक्ति हो जाती। रसखान ने पूछा कि भगवान् कौन है ? कैसे हैं और कहाँ रहते हैं ? तब उस वैष्णव भक्त ने रसखान को बीनाथ जी का एक चित्र दिखाया। उस चित्र को देखकर रसखान बीनाथ जी की ओर बाकूष्ट हुए और गौकृत चले गये। उनकी सच्ची लान देखकर गौसाईं विट्ठलनाथ जी ने इन्हें अपने संप्रदाय में ले लिया।

रचनाएँ -

रसखान की दो रचनाएँ मिलती हैं :-

१- प्रेम-वाटिका

२- सुजान-रसखान

प्रेम-वाटिका में ५२ दोहे हैं जिनमें प्रेम की महिमा का वर्णन है। कवि ने प्रेम को ईश्वर से भी बढ़कर प्रधान दिखाने का प्रयत्न किया है। इनका प्रेम रीतिकालीन कवियों का सा वाचनामूलक न होकर सच्चा प्रेम है जो भावप्रेम में परिणत होता है। कहीं कहीं वाक्यात्मिकता की भी फाँक मिलती है।

“ सुजान रसखान ” में कवित्त और सर्वये हैं। “ राग-रत्नाकर ” में रसखान के १३० पद संगृहीत हैं। इन पदों में मुरलीधर मनमोहन और गोपी-

१- इसकी पुष्टि निम्नलिखित दोहे से होती है :-

तौरि मानिनी तैं हियो, फौरि मोहिनी-मान।

प्रेमदेव की हविहिं लसि, भये मियाँ रसखान ॥ - प्रेमवाटिका दोहा ५०

२- २५२ वैष्णवन की वार्ता पृ० सं० २१८

३- ब्रजमाधुरी सार पृ० २०६

कृष्ण प्रेम का प्रधानतः वर्णन है। अन्य लीलाओं का वर्णन नहीं है। इसमें निरुक्त-  
वदथा का अभाव है। कुछ इन्हीं में बाल रूप का भी वर्णन मिलता है।

रसज्ञान की भाषा सरल, सरस ब्रजभाषा है जो अपने  
माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य को इनकी देन समूल्य है।  
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं :- “सत्य वात्स्य समर्पण, अलप्य विश्वास  
और अनन्य निष्ठा की दृष्टि से रसज्ञान की रचनाओं की तुलना बहुत थोड़े स्वत-  
कवियों से की जा सकती है।” भारतेन्दु जी का यह कथन है :- “इन मुख्य-  
मान हरिजन पर कीटिन हिन्दुन वारिए।”

### हितहरिवंश -

राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश जी का हिन्दी  
कृष्ण-काव्य के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनके जीवन-वृत्त  
पर उत्तमदास जी, हरिराम व्यास जी, शैक जी तथा चतुर्मुखदास आदि कुछ  
उल्लेख मिलते हैं। इनका जन्म-स्थान मसुरा से चार कोस की दूरी पर स्थित “बाद”  
नामक गाँव में था, इनका जन्म गौड़ (मि.) ब्राह्मण कुल में हुआ था।

मित्रबन्धु विनोद तथा “हितहरिवंश चरित” के लेखक  
श्री गोपाल प्रसाद शर्मा के अनुसार श्री हितहरिवंश का जन्म संवत् १५३० में हुआ  
था। परन्तु इसे अनेक प्रमाणों द्वारा डा० दीन दयालु गुप्त ने गलत सिद्ध किया  
है। श्री अतिवल्लभ जी की वाणी, जय कृष्ण जी की वाणी तथा अन्य सत्रि-  
यादिक रचनाओं में हितहरिवंश जी का जन्म संवत् १५५६ ही दिया गया है। आन्तरिक

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

२- धर्मरहित जानी सब दुनी। जहाँ “बाद” फाटि जग धनी ॥ (शैक जी)

३- तथा - “माणवत संप्रदाय” श्री कलदेव उपाध्याय पृ० ४२२

४- मित्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग पृ० २४० चतुर्थ संस्करण

५- हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १६५

६- अष्टज्ञान और वल्लभ संप्रदाय - डा० दीन दयालु गुप्त पृ० ६४

रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० दीन दयालु गुप्त ने संवत् १५५६ में ही उनका जन्म माना है। यही मान्य है।

श्री भगवतमुदित तथा अन्य अनेक वैष्णवों ने हितहरिवंश जी के पिता का नाम व्यास मिश्र बतलाया है। गोपाल प्रसाद शर्मा तथा मिश्र बन्धु गण में व्यास मिश्र का नाम केशवदास और कविराम शुक्ल लिखा है। इनके पिता व्यास मिश्र सहरानपुर जिले के देवबन्द नामक स्थान के रहनेवाले थे और अपने समय के बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। दिल्ली के दरबार में उनका बड़ा सम्मान होता था। हरिवंश जी की माता का नाम तारावती या तारारानी था। आठ वर्ष की आयु में हित जी का उपनयन-संस्कार हुआ और सोलह वर्ष की आयु में विवाह। उनकी पत्नी का नाम रुक्मिणी देवी था। इनके एक पुत्री तथा चार पुत्र - वनचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गोपीनाथ तथा मोहन चन्द्र हुए। हित जी की माता का निर्धन-गमन संवत् १५८६ में तथा पिता व्यास मिश्र का निर्धन-गमन संवत् १५६० में हुआ। अपने माता-पिता के गोलोकवास के पश्चात् संवत् १५६० में किसी देवी प्रेरणा से गृहस्थ होते हुए भी, घर-परिवार को त्यागकर ब्रजभूमि की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वप्न होने के कारण "चिड़ियावल" के आत्मदेव नामक ब्राह्मण की कृष्णदासी और मनोहरदासी नाम की दो कन्याओं को सहर्ष स्वीकार कर लिया और कृष्णचन्द्र की एक सुन्दर मूर्ति भी प्राप्त की।

वृन्दावन पहुँचकर बाकी मदनटार नामक स्थान पर डेरा डाला। मदनटार से बीरघाट तक की भूमि उन्हें उपहार में मिली। वृन्दावन में उन्होंने राधावल्लभ जी की मूर्ति<sup>की</sup> स्थापना की और एक मन्दिर बनवाया। संवत् १५६९ में उस मन्दिर का प्रथम "फट महोत्सव" हुआ। उन्होंने यहीं पर अपनी चलाई हुई कृष्ण

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २१८

२- अष्टशाय और वल्लभ संप्रदाय - डा० दीनदयालु गुप्त पृ० ६४

३- श्रीहित चरित्र - गोपाल प्रसाद शर्मा कृत वंशावली परिशिष्ट सं० २

४- मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग पृ० २४० चतुर्थ संस्करण

५- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० ११०

मवित- पद्धति का प्रचार करना प्रारंभ किया। उन्होंने प्रचलित कर्मकांडों और बाह्याचार की जैसी परिपाटियों को स्वीकार न कर विधि निषेध की न्यूनता के साथ प्रेम को इस रूप में अपनाया और राधा-कृष्ण की युगल उपासना का उपदेश दिया। अपने बड़ाबु मयतों को अपने शिष्य बनाये जिनमें भैरव के अधिपति नरवाहन तथा रेवाही के श्री मवलदास और पुरनदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

वृन्दावन में निवास करते हुए श्री हरिवंश जी ने साधना के निमित्त चार "सिद्ध-कैलि-स्थलों" का प्राकट्य किया। मानसरोवर, सेवा-कुंज, रासमंडल और वंशीवट नाम के बाव भी ये चार स्थान वृन्दावन में प्रसिद्ध हैं। सेवाकुंज का अधिक माहात्म्य इसलिये है कि यहीं पर हितहरिवंश जी ने सर्वप्रथम राधावल्लभ के विग्रह की प्रतिष्ठा की थी।

नागरीदास ने अपने अष्टक में श्री राधा को ही हरिवंश जी का दीप्ता-गुरु बताया है। जननलाल जी ने अपने "रसिक जनन्य चार" में गुरु प्रसंग वर्णन में राधा का नाम ही लिखा है। "हित हरिवंश चरित" के अनुसार, हित जी ने अपने घर के पास एक कुई से राधा-कृष्ण के "युगलरूप" की मूर्ति प्राप्त की और थोड़ी ही अवस्था में उन्होंने राधिका जी से स्वप्न में गुरु-मंत्र की दीप्ता प्राप्त की।

श्री हित जी पूजा-कर्ता में सदा लीन रहते थे। वे राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे और युगल उपासना ही उनके सिद्धान्त का सार है। ये प्रेम का साक्षात् स्वरूप थे। उनके शिष्य हरिराम व्यास ने लिखा है :-

हुतीं रस रसिकन की बाधार ।

बिन हरिवंशहि सरस रीति की, का पे नलिहि मार ?

की राधा हुतरावै गावै कन सुनावै चार ।

वृन्दावन की सख माधुरी, कहि है- कौन उपार ॥

फर रचना जब का पे ह्वै है ? निरस मयी संसार ।

बढी जमाग जनन्य सभा की, उठिगौ ठाठ सिंगार ॥



जिन विन दिन दिन जुग सम बीतत रह्य रूप बागार ।

“व्यास” एक कृत-सुमुद-चंद विनु उदुगन बूठों धार ॥ १

हितहरिवंश = रित, यक्षुष्ण की बाणी, रत्नमाल बादि के अनुसार स्वामी जी का निर्जुन-गमन संवत् १६०६ में हुआ ।

रत्नारं :

श्री हितहरिवंश जी का ब्रज भाषा तथा संस्कृत दोनों पर समान अधिकार था । प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ “राधा सुधा निधि” के रचयिता बाप ही हैं । कुछ विद्वानों ने प्रमत्त जी प्रबोधानन्द सारस्वती की रचना बताया है । इसमें २७० सुन्दर श्लोकों में राधारानी की प्रशंसा गायी गई है। चूंकि श्रीहितहरिवंश जी की इष्टाराध्या राधा है, इसलिए उसकी पूजा, उपासना, वन्दना, प्रशंसा के लिए उन्होंने इसी रचना की है । यह स्तोत्र-काव्य का प्रमुख ध्येय श्री राधा की इष्टा-राध्या के रूप में प्रस्तुत करना ही है। “राधा सुधा निधि” की पदावली कौमल कान्त और सरस है । यह हिन्दी अनुवाद सक्ति, बाद ग्राम निवासी बाबा हितदास द्वारा प्रकाशित है ।

श्री हित हरिवंश जी की संस्कृत में दूसरी रचना “यमुनाष्टक” है । यह यमुना की वन्दना में बाठ श्लोकों में लिखा हुआ प्रशंसा-काव्य है । ब्रज भाषा में श्री हितहरिवंश जी की दो रत्नारं प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं ।

१- श्री हित चौरासी

२- श्री हित स्फुटबाणी

श्री हित चौरासी , मधुर ब्रजभाषा में सरस-कौमल-पदावली में रचित ८५ पदों

१- व्याख्याणी , पृष्ठ २४

२- (ब) “The Stotra Kavya named “Radha Sudha Nidhi” printed in 2 parts from Bhakti Prabha Office, Hugli (1924-25) is wrongly ascribed to Prabhodhanand..... It is obviously a case of appropriation by the Chaitanya Sect of a work composed by Hit Hari Vamsh of the Radha Vallab Sect.” “Early History of Vaishnava faith and movement in Bengal.” - Dr. S. K. De, page 99.

२- (बा) हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १६६- १६७



वाली एक उत्कृष्ट रचना है, जिसके कुछ पद बयौव और विद्यापति के पदों की याद दिलाते हैं। यह रचना हित संप्रदाय में गीता जथा भागवत के समान पूज्य मानी जाती है और सभी सांप्रदायिक कवियों ने इसे वादश रूप में बनाया है। इसमें राधा कृष्ण के प्रेम, संभोग, कूल झीड़ा, रास, मान, नलसित आदि का वर्णन है। इसके पद मीन मीन रागों में विभाजित हैं। हित चौरासी के ऊपर लोक टीकाई निकली है :-

- (क) हित धरणीधर की टीका १६ वीं शती,
- (ख) गोस्वामी सुलाल जी की १७ वीं शती,
- (ग) लोकनाथ जी की
- (घ) श्री तुंगलदास की
- (ङ) प्रेमदास जी की
- (च) कैसिदास की १८ वीं शती
- (झ) श्री रत्नदास जी की आदि<sup>२</sup>।

स्फुटवाणी में १५ पद, ३ सवैये, २ छप्पय, २ कुंडलिया तथा एक अरित्त-कुल २३ मुक्तक संगृहीत हैं। परन्तु पदों के प्रकीर्ण होने पर भी, उसे एक स्वतंत्र ग्रन्थ का स्थान प्राप्त हो गया है। इसका वर्ण्य विषय कृष्ण-भक्ति की महत्ता है।

इसके अतिरिक्त श्री बलदेव उपाध्याय ने और तीन ग्रन्थ इसके नाम से बताये हैं :- १- वाशास्तव

२- चतुःस्तोत्री तथा

३- राधातन्त्र ग्रन्थ।

१- हे पद विभास मार्ग सात हैं बिलावल में टोडी में चतुर वाशावरी में हैं वनें ।

सप्त हैं घनाली में तुंगल बलन्त कैसि देवगंधार के दोय रस सों सने ।।

शरंग में जोडश हैं चार ही मलार एक गोंड में सुहायो नव गौरी रस में पनें ।

जट कल्याण निधि कान्हो केदारी वेद बानी हित बू की सब चौदह राग में गनें ॥

- श्री हितामृत सिन्धु- हितचौरासी- ब्राह्मदास जी महाराज फलस्तुति कवित्त - पृ० ६४

२- भागवत- संप्रदाय- श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ४२६

३- वही

पृ० ४२६

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दो और रचनाएँ इनके द्वारा रचित बतायी हैं :-

१- वृन्दावन शतक

२- हित सुधा सागर

चूंकि इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख राधावल्लभ भक्तमाल, साहित्य रत्नावली आदि सांप्रदायिक ग्रन्थों में नहीं मिलता, इसलिए ये हित हरिवंश जी की प्रामाणिक रचनाएँ मान्य नहीं पड़तीं। नागरी प्रचारिणी सभा की सौज रिपोर्ट में हस्तलिखित पुस्तकों के विवरण में "प्रेम सता" नामक ग्रन्थ का रचयिता श्री हितहरिवंश को बताया है।

दामोदरदास ( सेवक जी )

श्री हितहरिवंश जी की वाणी के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने वाले भक्त रसिकों में श्री सेवक जी का स्थान सर्वोपरि है। राधावल्लभ-संप्रदाय में इनको एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। राधावल्लभ भक्तमाल, भक्तनामावली जैसे सांप्रदायिक ग्रन्थों में इनकी स्तुति की गई है। संप्रदाय की अनेक वाणियों में सेवक जी का वर्णन मिलता है। भगवतमुदित ने तथा उत्तमदास ने अपने "रसिक जन्य-माल" और प्रियादास ने अपने "सेवक चरित्र" में विस्तार से इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला है। श्रीभगवत मुदित के ६७ पदों में तथा श्री उत्तमदास के २१ पदों में सेवक जी के जीवन की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु इन सबका ऐतिहासिक आधार ढूँढना कठिन है। भगवत मुदित ने लिखा है कि गोंडवाना प्रदेश में

१- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का चौदहवाँ वाणिर्क विवरण सन् १६२६-१६३१ स० डा० पीताम्बरदत्त बहुष्वाल ।

२- सेवक सम सेवक नहीं, धर्मिन् मार्ग प्रधान ।

- राधावल्लभ भक्तमाल पृ० २५२

३- सेवक की सम को करै भजन सरोवर रस ।

मन वन के घरि एक व्रत गाये श्री हरिवंश ॥

वंश बिना हरि नाम हूँ सियो न जाके टेक ।

पावे सोई वस्तु को जाके है व्रत एक ॥

- भक्त नामावली

गढ़ा नामक एक प्रसिद्ध गाँव में, एक ब्राह्मण परिवार में सेवक जी का जन्म हुआ था<sup>१</sup>। बाल्यकाल में इनका नाम दामोदरदास था<sup>२</sup>। "राधावल्लभ वल्सम भक्तमाल" से विदित होता है कि एक स्वामी चतुर्भुजदास से, जो उनके रिश्तेदार तथा पड़ोसी थे, उनकी बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। उन दोनों में सख्त, सख्त बन्धन और निश्चल प्रेम था। दोनों ही बड़े विनीत, सज्जन, पंडित और कृतीन थे। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने त्रियादास लिखित (श्री सेवक चरित्र) का आधार लेकर संवत् १९७७ के आसपास सेवक जी का जन्म-संवत् माना है।

सेवक जी स्वभाव से ही रसिक-वृत्ति के मज्जत थे और दैनिक कार्य-कलाप से निवृत्त होने पर हरि-सेवा में लीन हो जाते थे। इनके मन में बहुत समय से ही अपनी भक्ति-पद्धति को शुद्धीकरण करने के लिए किसी संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा थी। एक बार ब्रज मंडल से कुछ साधु-महात्मा प्रमण<sup>४</sup> करते हुए गढ़ा जाये और उन्होंने स्वामी हितहरिवंश जी के कुछ पदों का गायन किया। सेवक जी और उनके मित्र चतुर्भुजदास दोनों ही उन पदों को सुनकर इतने प्रभावित हुए कि वृन्दावन जाकर हरिवंश जी से गुरु-दीक्षा लेने का निश्चय किया। परन्तु वे गृहस्थ के प्रबंधों से छुटकारा न होने के कारण अविलंब वृन्दावन जा नहीं सके। इस बीच में श्री हित जी इत्थोक-सीता उपासक कर निर्भुज - सीता में प्रवेश कर गये। श्री हित जी के निधन का समाचार सुनकर वे बड़े दुःखी हुए। कहते हैं कि उन्होंने हित जी को मानस गुरु बना लिया था और एक स्वप्न में राधा जी ने उन्हें दीक्षा-मंत्र प्रदान किया। मंत्र-प्राप्ति के पश्चात् सेवक जी की चित्तवृत्ति बहुत अधिक परिष्कृत और उदात्त हुई। वे "हित चौरासी" के प्रत्येक पद के गूढ़ा-

१- श्रीभगवत मुदितक कृत "वनन्यमाल" - सेवक प्रकरण

२- हितमृत सिन्धु - सेवक चरित्र पृ० ६५

३- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० ३४६

४- श्री हित चौरासी पद २६

निगूढ़ रहस्य को समझने लगे। उन्होंने अपनी वाणी के १६ प्रकरणों में गुरु हरिवंश जी का माहात्म्य तथा राधा बल्लभ सम्प्रदाय का तार्किक विवेचन प्रस्तुत किया। जब इनके पदों की प्रसिद्धि हुई तो बाजारों हित हरिवंश जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र जी ने विज्ञप्ति कर दी कि हित चौरासी को पढ़ने समझने के लिए श्रेष्ठ वाणी को पढ़ना, समझना आवश्यक है। इस घोषणा के फलस्वरूप आज तक दोनों वाणियाँ एक साथ ही मिली, पढ़ी और छापी जाती हैं।

कहा जाता है कि श्री श्रेष्ठ जी के, वृन्दावन में श्री जी के मन्दिर में दर्शनार्थ जाने पर श्री वनचन्द्र ने अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिए, समस्त प्रसादी पदार्थ का वितरण कर दिया। श्रेष्ठ जी बहुत समय तक वृन्दावन वास कर लगे। वे एक सन्ने, रसिक महात्मा थे। सदैव मजन-पूजा में लीन रहते थे और उनका संसार के प्रति विरक्त भाव था। एक बार रास मंडल में बट-वृत्त के नीचे ध्यानस्थित में बैठे बैठे ही वे इश्लीक-लीला संवरण कर गये।

श्रेष्ठ जी का निधन- संवत् संदिग्ध है। परन्तु साहित्य रत्नावली में श्रेष्ठ जी का जीवनकाल संवत् १६५० तक बताया गया है।

### रचनाएँ :

“श्रेष्ठ जी की वाणी” श्री हित चौरासी का समीक्षाटन करने से तथा सांप्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन करने से हित चौरासी की पूरक वाणी मानी जाती है। अतः गुरु की रचना के साथ ही “श्री हित चौरासी श्रेष्ठ वाणी” के नाम से प्रकाशित हुई है। यह सोलह प्रकरणों में विभक्त है। सरल तथा सरस ब्रज

१- इस विषय में सांप्रदायिक मान्यता है :-

रसिक श्री वनचन्द्र जू बोले सबन उमंग ।

श्रेष्ठ वाणी भूँ पढ़ी, श्री चतुरासी संग ॥

२- रास मंडल में जाय के, करि प्रदक्षिणा सात ।

बट-वृत्तों सय हुँ गये, श्रेष्ठ चरित उजास ॥

- राधावल्लभ भक्तमाल पृ० २५७

३- साहित्य रत्नावली भूमिका पृ० 'ण'



माण्ड में लिखित इस में १८७ पद और २१ इन्द्र हैं । यद्यपि इसका वर्णन विजय  
चतुस्र रूप से कीर्तित जी प्रस्ता है, तो भी " श्री हित रस रीति प्रकरण " और श्री हित मन्तव्यन प्रकरण आदि कुछ प्रकरणों में राधा कृष्ण के कीर्तन-कीर्तन का वर्णन है । शैव वाणी की प्रस्ता में स्वामी चतुस्रदास ने लिखा है :-

शैव वाणी नै नहिं जानै ।

ताकी बात रसिक नहिं मानै ॥

मित्रबन्धुओं ने शैव वाणी के अतिरिक्त उनके " मन्तव्य वरि-  
चावली माल " नामक एक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। परन्तु यह न प्राप्य है और  
इसका उल्लेख " राधावल्लभ " मन्तव्यमाल " और " साहित्य रत्नावली " में मिलता है ।

### हरिराम व्यास -

" मन्तव्य शिरोमणि व्यास जी का पूरा नाम हरिराम सुबल  
था । " व्यास " तो उनकी उपाधि थी । इसका वर्णन नामादास के मन्तव्यमाल, भगवत-  
मुद्रित के " रसिक जनन्यमाल " तथा उत्तमदास के " रसिकमाल " में विस्तार से मिलता  
है । राधावल्लभ संप्रदाय के अनेक कवियों ने अपनी वाणियों में व्यास जी का स्मरण  
किया है जिससे उनके राधावल्लभीय होने का प्रमाण मिलता है। नामा जी के मन्त-  
माल में व्यास जी के परिचय-दिये हुए इष्य का शीर्षक " श्री हरिवंश जी के शिष्य  
व्यास जी " है और उत्तमदास कृत " रसिकमाल " में शीर्षक " श्री हितमन्त-  
व्य व्यास जी की चरित्र " है ।

हरिराम व्यास के जन्म-संवत् के विजय में मतभेद है । जानार्थ

- १- विपदी ३२, दुपर्व ८, गाना ४, तोटक १४, रट्ट ८, सवेया १७,  
मातली ६, मदिरा १, पनावली १, सोरठा २०, कूडलिया २२,  
गाहा ४, च्यार ४, फिरीट ६, दुर्मिल २, मल्लिका १, रौला १,  
दण्डक १, नारायण ४, दोला ६, इष्य ६ ।

- २- मित्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग पृ० ३३२



रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री वियोगी हरि ने इनका जन्म- संवत् स्थिर न कर केवल संवत् १६२० के आसपास उनका कविता- काल लिखा है । " व्यास जी की बधाई, तथा अन्य जाह्नव साह्य के आधार पर उनका जन्म- संवत् १५६७ ( ईस्वी सन् १५१० ) ठहरता है । श्री बाबुदेव गोस्वामी का भी यही मत है । वे सनाढ्य ब्राह्मण थे । बाल्यकाल में इनका नाम हरिराम था । " व्यास " जाति का श्रुति न होकर, पांडि- त्य का श्रुति है जिसे काशी के पंडितों ने उनकी कविता से मुग्ध होकर प्रदान किया था ।

इनका जन्म- स्थान निर्विवाद रूप से जोरहा ( टीकमगढ़ ) राज्य माना जाता है। इनके पिता का नाम समौल था और माता का देविका । व्यास जी ने अपनी रचनाओं में अपने माता- पिता का स्पष्ट उल्लेख किया है । इनके पिता परम वैष्णव थे और चैतन्य महाप्रभु के गुरु भाई बाघमदास जी के शिष्य थे । जोरहा नरेश के दरबार में इनके पिता का बड़ा सम्मान था । व्यास जी का परिवार काफी बड़ा था जिसमें उनका एक छोटा भाई, बहिन, एक पुत्री और तीन पुत्रों की सूचना मिलती है । युवावस्था में इनका विवाह हो गया था, इनकी पत्नी का नाम गौरी कहा जाता है । व्यास जी ने अपने परिवार की पाँपरा के अनुसार बाल्य काल में ही संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था । बाद में पुराण तथा स दर्शन- शास्त्र का अध्ययन किया । वे तो विद्या- व्यसनी विद्वान् थे । कहा जाता है कि वे पंडितों के साथ शास्त्र- चर्चा करते थे और अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया भी था । उन्होंने काफी प्रमत्त कर देश के प्रमुख स्थलों के दर्शन किये थे । काशी में जाने पर उनकी शास्त्रार्थ- वृत्ति में कुछ परिवर्तन आया और शास्त्रार्थ की जगह भक्ति- भाव की ओर उनका मुकाब हुआ । अपने पिता जी के निधन के पश्चात् वे जोरहा नरेश के गुरु बने ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २११ , २२८

२- ब्रजमाधुरी सार - श्री वियोगी हरि , पृ० ११५- ११६ अष्टम संस्करण

३- श्री व्यास जी की जन्म बधाई , पृ० २२, २३, २७

४- भक्त कवि व्यास जी, श्री बाबुदेव गोस्वामी , पृ० १०७

५- व्यास वाणी , पृ० ६२

६- भक्त कवि व्यास जी - ले० बाबुदेव गोस्वामी पृ० ५२

व्यास जी के गुरु के विषय में मतभेद है। इन्होंने अपने पिता जी को ही विद्या-गुरु सिखा है। परन्तु ये, धुवदास जैसे समकालीन ग्रन्थकार के साक्ष्य के बाधारे पर भी हित हरिवंश जी के शिष्य और राधावल्लभ जी के उपासक माने जाते हैं -

सेवक की छरि की कर मन सरोवर छै ।

मन बन के धरि एक व्रत गार श्री हरिवंश ॥

- भक्तनामावली, दोहा ४४

दोनों का समन्वय कर श्री बलदेव उपाध्याय ने व्यास जी के पिता को विद्या-गुरु और हरिवंश जी को दीक्षा-गुरु सिखा है<sup>१</sup>। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अनेक प्रमाणों द्वारा हित हरिवंश को ही व्यास जी का दीक्षा गुरु और उनका राधावल्लभीय होना साबित किया है<sup>२</sup>।

व्यास जी संवत् १५६१ में राधावल्लभीय साधु नवलदास के बीरहा जाने पर उनसे प्रेरणा प्राप्त कर प्रथम बार वृन्दावन आये। यहाँ जाकर वे हरिवंश जी के दर्शन से मोहित हुए और उनसे दीक्षा ग्रहण की। वृन्दावन जाने पर कविता की और उनकी प्रवृत्ति हुई और उसके बाद बाजीवन काव्य-रचना में लीन रहे। ये वृन्दावन में ही रम गये। एक किंवदन्ती है कि महाराज महुँकर शाह उन्हें फिर बीरहा से जाने के लिए आये, परन्तु वे किसी भी शर्त पर वापस जाने को तैयार न थे। वृन्दावन में रहते हुए उन्होंने अपने कृष्णदेव का मन्दिर जुगतकिशोर<sup>३</sup> के नाम से बनवाया और उसमें अपने साथ पहले ही लार हुए विग्रह को स्थापित किया।

व्यास जी के चरित्र और स्वभाव पर प्रकाश डालने वाली अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। वे अतिथि-सत्कार के लिए वित्यात थे। उनके यहाँ से कोई साधु कभी अशुन्न होकर नहीं लौटता। उन्हें ईर्ष्या, द्वेष, ईश, कष्ट इ. भी नहीं गया था। उनका हृदय प्रेम, ममता, दया और वात्सल्य से परिपूर्ण था। उनकी

१- भागवत संप्रदाय - श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ४३०

२- देखिए- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३७०-३७६

३- देखिए - कल्याण - भक्तार्क लेख - भक्त व्यास जी - ले० श्री ब्रज भूषण

विशाला सखी का अवतार माना जाता है। व्यास जी अपनी भक्ति-साधना में इतना अधिक विश्वास रखते थे कि भगवान् से भी कभी कभी रूठ पड़ते थे<sup>१</sup>। एक जनश्रुति है कि उन्होंने अपने पार्थिव वैभव को तीन भागों में - प्रथम में जुगल शिकोर जी की सेवा-पूजा, दूसरे में मकान और संपत्ति और तीसरे में केवल इष्ट, तिलक और माला-विभाजित कर अपने तीन पुत्रों में इसी क्रम से बंटवारा कर दिया था।

वृन्दावन के तीन सर्व श्रेष्ठ भक्त रसिकों में व्यास जी की भी गणना है<sup>२</sup>। दूसरे संप्रदायों के अनुयायियों पर व्यास जी का प्रभाव था। एक जनश्रुति के अनुसार अकबर बादशाह ने भी इनकी स्तुति की थी जिसका उल्लेख अकबर नामा में मिलता है<sup>३</sup>।

परंपरागत किंवदंतियों के अनुसार व्यास जी दीर्घायु थे। बासुदेव गोस्वामी ने लिखा है कि व्यास जी ने संवत् १६६६ के आस पास जबकि उनकी आयु १०२ वर्ष के लगभग थी, निरुंज-सोला में प्रवेश किया<sup>४</sup>। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उनका निरुंज-गमन संवत् १६५० से १६५५ के मध्य माना है<sup>५</sup>।

### रत्नावली :

हरिराम व्यास जी उच्च कोटि के भक्त और दार्शनिक होने के साथ साथ कृतज्ञ कवि भी हैं। संस्कृत में तो वे पूर्ण पंडित थे ही। इनके नाम से दो संस्कृत ग्रन्थ 'नवरत्न' तथा 'स्वर्धर्म पद्धति' विख्यात हैं। काली, नागरी प्रचारिणी सभा की लीज रिपोर्टों में इनके नाम से निम्नलिखित रत्नावली का उल्लेख मिलता है :-

१- भक्तमाल - नामा जी, प्रियादास की टीका के कवित्त सं० ३५६ और ३६१

२- जग दान जलायी भक्ति की, ब्रह्म सरवर जल जलम मिलि ।

जान्यों वृन्दावन रूप, हरिदास, व्यास, हरिवंश मिलि ॥

- उत्तरार्द्ध, भक्तमाल : बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

३- अकबरनामा : नवलशिकोर प्रेस ( फारसी में ) भक्त कवि व्यास जी पृ० १०६

४- भक्त कवि व्यास जी - ले० श्री बासुदेव गोस्वामी पृ० १०४

५- राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० ३८३

- १- रागमाला<sup>१</sup> - इसमें ६०४ श्लोक हैं। यह संगीत-शास्त्र का ग्रन्थ है।
- २- रस के पद<sup>१</sup> - इसमें १३०० पद हैं।
- ३- व्यास जी की वाणी<sup>१</sup> - इसमें १५७५ पद हैं।
- ४- पदावली<sup>२</sup> - इसमें ८०७ श्लोक हैं।
- ५- रासपञ्चाध्यायी<sup>३</sup> - इसमें ११२ पद हैं।
- ६- व्यास जी की संक्षेप<sup>४</sup> - इसमें ५४ पद हैं।

विश्वम्भुवों की दो हुई सूची और नागरी प्रचारिणी सभा की उपर्युक्त सूची में विशेष अन्तर नहीं है। श्री विद्योनी हरि के पद-संग्रह में व्यास जी के ८०० पद हैं<sup>५</sup>। इन पुस्तकों का निरीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल "व्यास जी की वाणी" ही व्यास जी लिखित प्रामाणिक रचना है। मालूम पड़ता है कि इसी एक ही कृति के पदों का विभिन्न शीर्षक में संग्रह कर अलग अलग नाम दिये गये हैं। प्रकाशित "व्यासवाणी" में पद संख्या ७५६ है और साथ में १४६ साक्षियाँ और दोहे भी हैं। ये दो भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग में सिद्धान्त रस के ३०१ पद हैं तथा द्वितीय भाग में "रस विहार" के ४५५ पद हैं।

"सिद्धान्त रस" के संपूर्ण पद सिद्धान्तपरक नहीं हैं। प्रारम्भ में वृन्दावन, मधुपुरी, यमुना, महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति है। श्री साधु की स्तुति "प्रकरण" में समस्त प्रसिद्ध भक्तों का एक-गान है। शेष पदों में विनय, विरह, मनोपदेश, भक्ति, ज्ञान आदि विषयों की वर्णन है। इन पदों में उन्होंने जीवन के व्यवहार-पदा का<sup>क</sup> जालन करते हुए सांसारिक दृष्टि से वस्तुओं का विश्लेषण-विवेचन किया है। इनमें व्यवहार पदा की प्रधानता है। सूत्र, सिद्धान्तिक

---

१- खोज रिपोर्ट, वर्ष १९०६ - ८ - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२- वही, ,, १९०६ - ११, ,,

३- वही, ,, १९१२ - १४, ,,

४- वही, ,, १९२० - २२, ,,

५- ब्रजमाधुरी सार - श्री विद्योनी हरि पृ० ११८

६- श्री व्यास वाणी, पूर्वाध्याय कलाव्य पृ० ३०



वनाज से दूर रहकर लौकिक, धरातल पर ही व्यास जी ने अपनी बात कही है ।  
 "सविहार" के पदों में राधाकृष्ण की कृष्ण-क्रीड़ा, वस-क्रीड़ा, उग्र-विहार ,  
 णोडश शृंगार नललित, मान, होली , हिंडोला आदि अनेक विषय वर्णित हैं ।  
 "रास पंचाध्यायी" अलग रूप से पद्य-बद्ध की गई है।

### गदाधर मट्ट -

चेतन्य संप्रदाय के कवियों में श्री गदाधर मट्ट का स्थान  
 मुख्य है । ये राधा कृष्ण के अनन्य उपासक थे और महाप्रभु चेतन्य के सकासीन  
 थे । दुर्भाग्यवश उनके सम्बन्ध में बहुत कम विवरण मिलता है । श्री वियोगी हरि<sup>२</sup>  
 तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल ने केवल इतना ही लिखा है कि ये दादिणात्य ब्राह्मण थे  
 और श्री चेतन्य को भागवत सुनाया करते थे । मिश्रबन्धु विनोद ने इनका कविता-  
 काल संवत् १७२२ के लगभग लिखा<sup>३</sup> जो ठीक प्रतीत नहीं होता । श्री रामचन्द्र शुक्ल  
 ने चेतन्य महाप्रभु के आविर्भाव संवत् १५४२ तथा गोलोकवास संवत् १५८४ के आधार  
 पर इनका दीप्ताकाल संवत् १५८४ के भीतर माना है । शुक्ल जी ने उनकी रचनाओं  
 का आरम्भ संवत् १५८० से और अन्त संवत् १६०० के बीच माना है । डा० राम कुमार  
 वर्मा ने इनका कविता-काल संवत् १५६० के आस पास माना है ।<sup>४</sup>

नामादास कृत भक्तमाल के टीकाकार प्रिया दास ने मट्ट जी  
 के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश इस प्रकार है :- "प्रारम्भ से  
 ही मट्ट जी राधा-माधव के अनन्य उपासक थे । इनकी कविता बड़ी मधुर होती  
 थी । वो साधुओं ने एक दिन श्री जीव गोस्वामी के आगे मट्ट जी का बनाया एक  
 पद गाया । पद सुनकर जीव गोस्वामी जी ने मट्ट जी के पास एक पत्र भेजा । उसमें

१- डा० विजयेन्द्र स्नातक - राधा वल्लभ संप्रदाय : साहित्य और सिद्धान्त पृ० ३८५

२- ब्रजमाधुरी सार , पृ० ७५

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० २२०

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० १८३

५- हिन्दी साहित्य का बालोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार वर्मा पृ० ५८८



जो श्लोक था, उसे पढ़कर भट्ट जी मुर्झित हो गये। संज्ञा प्राप्त होने पर वृन्दावन चले गये।<sup>१</sup> इस विवरण में दो बातें ज्ञात होती हैं- एक तो भट्ट जी संवत् १५८०-१६०० के बीच विद्यमान थे और दूसरी, वे जीव गौस्वामी के शिष्य थे। भक्तमाल में भट्ट जी के चरित्र और स्वभाव का वर्णन मिलता है। नाभादास जी ने लिखा है कि भट्ट जी सज्जन, सहृदय, सुशील व्यक्ति थे और जनन्य भाव से भजनादि करते थे। ~~और जनन्य भाव से भजनादि करते थे।~~

सज्जन सुहृद, सुशील कन बारण प्रतिपालय ।

निर्मत्सर निकाम कृपा करुणा को बालय ॥

जनन्य भजन दृढ करनि धरयो बपु भक्तनि कर्षे ॥

परम धरम को सेतु विदित वृन्दावन गार्षे ॥

भार्गात सुधा बरर्षे बदन काहुँ को नाहिन दुखद ॥

गुन निकर गदाधर भट्ट बति सबहिन को लार्ग सुखद ॥

- नाभादास कृत भक्तमाल, द्वितीय, १३८, पृ० ७६३

“कल्याण” के भक्तार्क में (पृ० ३६-३७१) उनके सम्बन्ध में अनेक हानियाँ दी गई हैं। परन्तु भट्ट जी के पदों से उनके जीवन-वृत्त पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। केवल इतना निश्चित है कि वे महाप्रभु चैतन्य के समस्तान्वित थे।

रचनाएँ -

गदाधर भट्ट की रचना प्रधानतः पदों के रूप में ही मिलती है। “मोहिनी वाणी गदाधर भट्ट की” के नाम से संगृहीत वाणी में पदों के अलावा कुछ संस्कृत के गीत और वृन्दावन की प्रशंसा में लिखित ५४ रीता इन्दों का “योगपीठ” भी सम्मिलित है। “योगपीठ” गदाधर भट्ट जी की वाणी का

१- जनाराध्य राधापदाभोजमुग्मनामित्य वृन्दाटवीं सत्पदाङ्काम् ।

कर्मभाष्य तद्भावाभिरक्षितान् , कृतः श्यामसिन्धोः स्वस्वावगाहः ॥

- ब्रज माधुरी चार पृ० ७६

ही एक भाग है और न पुष्कल रचना, जैसे कि कुछ विद्वानों की भ्रान्त धारणा है। यद्यपि रास के कुछ पदों में यशोदा, नन्द, बघाई, वन्दना, यमुना, वंशी, वणां, कन्द, होली किंहीला आदि विषय वर्णित हैं, तथापि अधिकांश पदों में राधा-कृष्ण के रंगार, रास, विलास, विवाह तथा मान आदि का विस्तार से वर्णन है। एक दो स्थल पर श्रीकृष्ण की ब्रज-गोकुल-सीताओं का भी वर्णन मिलता है। नन्द पदों में नाम-माहात्म्य तथा दैन्य भाव की भी व्यंजना हुई है। इस संग्रह में झोटे बड़े सभी प्रकार के पद हैं, जिनकी संख्या ८० के लगभग है।

भट्ट जी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। उक्त: उनकी भाषा कहीं कहीं संस्कृत गर्भित दोस पड़ती है और काव्य-ऐसी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। बालीनक रामलन्द्र शुक्ल ने लिखा है-“संस्कृत के जूझांत पंडित होने के कारण उर्दू पर उनका बहुत विस्तृत अधिकार था। उनका पद-विन्यास बहुत ही सुन्दर है।”

### सुरदास मदनमोहन-

सुरदास मदनमोहन कन्नर के दरबार की ओर से नियुक्त संधीसे के जमीन थे। उनका कसली नाम “सुरध्वज” था और ये मदनमोहन के जनन्य उपासक थे। उनकी नाम के साथ जमीन इष्टदेव के नाम की धनिष्ठता स्थापित करने के कारण उनका वास्तविक नाम छिप गया और ये सुरदास मदनमोहन के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। वैष्णव भक्त-वृत्तान्तों से उनके जीवन-वृत्त पर अल्प प्रकाश ही पड़ता है। नाभादास ने उनके सम्बन्ध में एक हृष्य में इस प्रकार लिखा है :-

गान काव्य गुण राशि सुकृप सहचरि अवतारी ।

राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुत के अधिकारी ॥

भवस मुल्य रिंगार विविधि भांति करि गायी ।

बदन उल्लरित बेर सहस पावनि ह्वै धायी ॥

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामलन्द्र शुक्ल पृ० २२२

२- भक्तमाल पृ० ७५२, ७५३

कीकार की वधि यह, ज्यों जात्या प्राता जगत ।

(वर्ष ६) मदनमोहन सूरदास की नाम ईश्वर पुरी जल ॥

— मन्तमाल , हप्पय १२६, पृ० ७५१

प्रियादास ने उपर्युक्त हप्पय की टीका में लिखा है कि यद्यपि उनके नयन कमल के समान सुन्दर थे, तो भी वे सूरदास कहलाते थे । ये बड़े भक्त थे और साधु-महात्माओं की सेवा में सब कुछ देते थे । एक बार संडीले की मालगुजारी से कबूल हुए १३ लाख रुपये वापसे साधु-सेवा में खर्च कर दिये और पुन्दावन को भाग गये । जब टोडरमल को इसका पता चला तो उसने सूरदास मदनमोहन को कैद कर कारागार में डाल दिया । वहाँ "दसनम" नामक कारागाराध्यक्ष द्वारा बहुत सताये जाने पर इन्होंने कब्र की निम्नलिखित दोहा लिखकर भेजा:-

यह तम अधियाही करे शून्य दर्ह पुनि ताहि ।

दसतम ने रक्षा करी दिन मनि कब्र ताहि ॥

कब्र ने इस दोहे से प्रभावित होकर उन्हें मुक्त करने की आज्ञा प्रदान की । तत्पश्चात् वे पुन्दावन चले गये ।

"सूरदास" का उल्लेख "जाहने कबरी", "मुन्तरिवकुल तवारीख" तथा "मुंसियाते अबुल फजल" में मिलता है। "जाहने कबरी" में ग्वा-लियरवासी रामदास के कबरी दरवार में संगीतज्ञ होने तथा उसके पुत्र सूरदास के वहाँ जाया करने का भी उल्लेख है। कलकत्ता की पुस्तक "मुन्तरिवकुल तवारीख" में संगीतज्ञ रामदास को एक लाख रुपये पुरस्कार स्वरूप मिलने का जिक्र है । अबुल फजल द्वारा सूरदास को लिखा गया एक पत्र भी है जिसका अनुवाद मुंशी देवी प्रसाद ने दिया है। इस पत्र द्वारा अबुलफजल ने सूरदास को सूचित किया था कि जब बाद-शाह अलाहाबाद जायेंगे तब वे उनसे मिलें । इन सूत्रों का निरीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इनमें वर्णित सूरदास, सूरदास मदनमोहन ही हो सकते हैं ।

१- मन्तमाल पृ० ७५५ - ७५६

२- जाहने कबरी पृ० ६१२

३- सूरदास का जीवन चरित्र, मुंशी देवी प्रसाद पृ० ३०

बदशाह और बल्लम संक्राव पृ० १६९

सूरदास मदनमोहन की जन्म-तिथि तथा निधन-तिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता । उनकी जाति के विषय में भी मतभेद है। श्री वियोगी हरि उन्हें ब्राह्मण और चैतन्य संप्रदाय के अनुयायी बताते हैं। बाणार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार सूरदास मदनमोहन ब्राह्मण थे और गौड़ीय संप्रदाय के अनुयायी थे । डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल ने उनकी जाति कायस्थ बताया है। बुन्दारन में हमारे कवि के आराध्य देव मदनमोहन का एक मन्दिर है, जो गौड़ीय संप्रदाय का है। अतः उन्हें गौड़ीय संप्रदाय का अनुयायी मानना पड़ेगा । मित्रबन्धु विनोद ने सूरदास मदन मोहन का कविता-काल संवत् १५६५ के लगभग बताया गया है। बाणार्य शुक्ल जी भी उनका कविता-काल संवत् १५६०-१६०० के बीच मानते हैं ।

### रचनाएँ-

सूरदास मदनमोहन के अनेक पद कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। उनकी कविता सरस और मनोहारिणी तथा नाम सूरदास होने से इनके अनेक पद "सूरसागर" में छल मिल गये हैं। परन्तु इनके समस्त पदों में "सूरदास मदन मोहन" की छाप मिलती है। "सुहृत् वाणी श्री सूरदास मदन मोहन की" नाम से प्रकाशित संग्रह में इनके १०५ स्फुट पद हैं । डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने अपनी ग्रन्थ में इनके केवल १२ पद दिये हैं और उन्हीं को प्रामाणिक माना है। पदों में बाल रूप, बंशी, विवाह, संछिता, होली धमार, फाग, छिंडोला आदि विषय वर्णित हैं। मत्त शित, रास विलास तथा मान का भी बहुत ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

### श्रीमट्ट -

श्री मट्ट निम्बार्क संप्रदाय के प्रथम प्रवर्तमान कवि थे ।

१- ब्रजमाधुरी सार, श्री वियोगी हरि पृ० १००

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २२७

३- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल पृ० ४६

४- मित्रबन्धु विनोद, भाग १ पृ० २६८ कवि संस्था १८८८ तथा अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४७



इन्को निम्बार्कान्त्य की तीसरी पीढ़ी में माना जाता है। श्री महन्त रामकृष्ण दास कृत "श्री गुरु-परंपरा स्तोत्रम्" के अनुसार श्री भट्ट जी के पूर्व सांप्रदायिक गुरु-परंपरा में १२ जान्नाय तथा १७ भक्त हुए थे। ये संप्रदाय में ब्रजभाषा के प्रथम कुशल कवि ही नहीं, बल्कि संप्रदाय की उत्पत्ति की आधार-शिला भी माने जाते हैं। श्री वियोगी हरि लिखते हैं :- वास्तव में, केशव काश्मीरीजी ने जान्ना-यौचित् वह कार्य किया, जिसके कारण निम्बार्क-संप्रदाय की नींव सदा के लिए सुदृढ़ हो गयी। बाकी शिष्य श्री भट्ट जी ने तो मानों संप्रदाय-मन्दिर पर कलश ही रत दिया। गुरुदेव यदि भगवान् के ऐश्वर्य के पूर्ण प्रतिपादक थे, तो भट्ट जी माधुर्य के सच्चे मधुसूत।<sup>१</sup>

श्री भट्ट, केशव काश्मीरी के अंतरंग शिष्य होने के कारण उनके उपरान्त उनकी गद्दी पर पिरावमान हुए। उनके गुरुदेव भगवान् के ऐश्वर्य भाव के उपासक थे, तो ये माधुर्य भाव के रसोपासक थे और रामकृष्ण की ललित लीलाओं के जानन्द में सदा विभोर रहते थे। रूप रसिक देवने उनके कृत के सम्बन्ध में कुछ उचित दिया है। उनके अनुसार उनके पूर्वज हिसार जिले के वासी थे और ये गौड़ ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। बाकी जन्म के बहुत पहले ही बाकी पूर्वज में जा बसे थे। उनके परिवार के व्यक्ति नारद टीला या ध्रुव टीला मथुरा में निवास करते हैं जो भट्ट-गोसाईं कहलाते हैं।<sup>३</sup>

इन्के आविर्भाव-काल तथा रचना-काल के विषय में मत्नैद है। उनके अनुसार स्वयं केशव काश्मीरीजी संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं कि केशव काश्मीरीजी श्री भट्ट के गुरु थे, कलाउद्दीन के समय में अपनी धार्मिक विचारों का प्रचार करते थे और उन्होंने सुलतानों के अत्याचारों से मथुरा को बचाया जब नामादास का भी कहना है :-

मथुरा मध्य मल्लिक बदल करि बरबर जीते ।

काजी अजित जैक दैलि परै मय मीते ॥ (भक्तमाल अध्याय पृ० ६०७५)

१- श्री गुरु परंपरा स्तोत्रम् स० रामकृष्णदास ।

२- ब्रजभाषुरी सार, श्री वियोगी हरि पृ० १०८ संस्करण २०११

३- सर्वेश्वर वृन्दावनार्क पृ० २१७ वृन्दावन



एक <sup>१</sup>हिंदी स्त्री भी है कि वे श्री रामानन्द जी से मिले ।  
 कलाउद्दीन और रामानन्द जी का समय १४ वीं शती है। निम्बार्क संप्रदाय के भक्त  
 श्री ब्रजलारी बिलारी शरण के अनुसार बाजार्य द्वारा मुसलमानों को परास्त कर  
 मथुरा को छुड़ाने पर श्री भट्ट जी का संप्रदाय में विनाम घाट पर प्रवेश हुआ ।  
 साम्प्रदायिक दृष्टिकोण में श्री भट्ट का काल १४ वीं शती में पड़ता है। श्री बलदेव  
 उपाध्याय के अनुसार <sup>२</sup>“जुगल शतक” की भाषा भी उतनी प्राचीन नहीं है कि उसे  
 १३ वीं शती की रचना माना जाय । इनकी प्रमुख रचना <sup>३</sup>“जुगल शतक” के रचना  
 काल का बोध करने वाले दोहे का भिन्न भिन्न रूप मिलता है :-

बैन बान पुनि राम ससि, गिनी कंक गनि बाम ।

<sup>४</sup>पुनः जुगल शतक-मयी संवत् बति बभिराम ॥

इस छंद पाठ मान लिया जाय तो ग्रन्थ का रचनाकाल संवत्  
 १३५२ है। परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित प्रति में “राम” के स्थान  
 पर “राग” मिलता है, जिसके बाधार पर इसका समय संवत् १६५२ ( १५६५ ई० )  
 ठहरता है। श्री वियोगी हरि तथा पं० रामानन्द शुक्ल ने भी संवत् १६५२ को ही  
 उक्त ग्रन्थ का रचना काल माना है।

श्री भट्ट उक्त कोठिड के भक्त थे और उन्होंने अंतिम समय  
 तक संप्रदाय की बाजार्य-गद्दी को सुशोभित किया था । जिस प्रकार स्वामी हरि  
 दास जी के अनुयायी उन्हें श्री राधा कृष्ण की मुख्य सखियों में से श्री सतिता सखी  
 का अवतार मानते हैं, उसी प्रकार इस संप्रदाय के लोग इन्हें श्रीहित सखी का अवतार  
 मानते हैं । श्री रूप रत्निक कृत एक ज्ञाप्य बापके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है :-

ये वर बनि शरण नाप त्रय तिनके हरहीं ।

तत्त्वदर्शी से० होय हस्तजा मस्तक धरहीं ॥

१- निम्बार्क माधुरी पृ० ८

२- नागवत संप्रदाय - श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ३२२

३- ब्रज माधुरी चार - श्री वियोगी हरि पृ० १०६

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामानन्द शुक्ल पृ० २२७, २८

गुणनिधि रसिक प्रवीण भक्ति वशधा की जागर ।  
 श्री राधा कृष्ण स्वरूप ललित लीला रस सागर ॥  
 कृपा दृष्टि संतन सुन्द मन्त्र भुप दिग्य भववर ।  
 कल्प विटप श्रीमट प्रमट कलि कल्पका दुःख दूरि कर ॥

इनकी भक्ति-भावना से प्रभावित होकर नामादास ने ठीक  
 ही लिखा है :-

मधुर- भाव संवसित ललित लीला सुवलयि हवि ।  
 निरञ्जत हरणत हृदय प्रेम वरञ्जत सुकसित कवि ॥  
 भव विस्तारन हेतु देन दृढ भक्ति सबनि नित ।  
 जाहू सुखसु सखि उदै हरन अति तम भ्रम सुमन्त्रित ॥  
 जानन्दकंद श्री नंदसुत श्री वृष्णभानुसुता- मयन ।  
 श्री मट्ट सुमट प्रादयो जपट रस रसिक- मन- मोद- धन ॥ १

### रत्नारंभ

श्री भट्ट संस्कृत तथा ब्रज भाषा दोनों में प्रकाण्ड पंडित थे । संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने १०००० पद ब्रज भाषा में लिखे थे और वे सब पुंगार रस के थे । कहा जाता है कि भट्ट जी ने गद्दी स्वीकार करने के पूर्व अपने गुरु केशव काश्मीरी के सम्मुख उन पदों को उपस्थित किया, जिनको गुरु ने कलिया के लोंगों के लिए व्यर्थ समझकर जमुना जी में फेंक देने की आज्ञा दी । जब उन १०,००० पदों में केवल ६ पद उपलब्ध हैं जिनको 'जमुना जी का प्रसाद' कहा जाता है।<sup>२</sup>

भट्ट जी ने ब्रज भाषा में 'कृष्ण चरनापति स्तोत्र' नाम से १०० पदों की एक रचना की थी । यही ग्रन्थ 'वादिवाणी' कथवा 'कुल शक्त' के नाम से प्रसिद्ध है । पंडित रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार भट्ट जी ने 'वादि वाणी'

१- भक्तमाल सटीक - पृ० ५४६

२- श्री कुल शक्त की भूमिका पृ० ४५, ४६

जीर 'सुल शक्त' नाम से दो भिन्न ग्रन्थ रहे हैं। परन्तु वास्तव में 'बादि वाणी' और 'सुल शक्त' एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। राधा कृष्ण की 'सुल मूर्ति' की उपासना का प्रतिपादन करने के कारण इसका नाम 'सुल शक्त' पड़ा और ब्रज भाषा में रचित प्रथम रचना होने के कारण 'बादिवाणी' नाम इस को प्राप्त है। सांक्रांतिक मतानुसार 'बादिवाणी' केवल 'सुल शक्त' का ही विशेषण है। जैसे कि नाम से स्पष्ट है इसमें १०० पद हैं। उनके ज्ञाता वर्ग में जीर को दोहरे दिये गये हैं। एक में रत्ना-काल का उत्सव और दूसरे में फल-प्राप्ति की प्रार्थना है। विषय के अनुसार 'सुल शक्त' के पद है भागों में विभाजित हैं :-

- १- सिद्धान्त सुल
- २- ब्रजलोला सुल
- ३- सेवा सुल
- ४- सहज सुल
- ५- सुखसुल तथा
- ६- उत्सव सुल

इन पदों में भट्ट जी ने राधा कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य और ब्रज के वानन्दमय वातावरण में उनकी सस्र लीलाओं का सुन्दर तथा सुसंस्कृत ब्रज भाषा में वर्णन किया है।

### हरिव्यास जी

जी हरिव्यास देव जी का जन्म मथुरा में बादि गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये बाणाय भट्ट के वन्तराज और प्रसूत शिष्य थे। बाप निष्कार संप्रदाय की एकतीसवीं पीढ़ी के महान् बाणाय हुए। ये मथुरा में छुवटीला जयका नारद टीला पर रहा करते थे। इसका समाधि-स्थान भी नारद टीला है जहाँ नारद जी की मूर्ति विराजमान है।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २२७

२- सुलशक्ति शक्त मुद्रिका पृ० ९

३- - ब्रज माधुरी सार पृ० १५६

इनके आविर्भाव-काल, कविता-काल आदि के विषय में पर्याप्त मतभेद है। "निम्बार्क माधुरी" के अनुसार इनका जन्म संवत् १३२० के लगभग है। "महावाणी" की प्रुक्ति में उनका जन्म १४ वीं शती के प्रारम्भ में बताया गया है। श्री बलदेव उपाध्याय इनकी गोस्वामी तुलसीदास का सम-कालीन मानकर १६ वीं शती में जीवित मानते हैं। इनका जन्मोत्सव कार्तिक बदी षादशी को मनाया जाता है।

व्यास जी के सम्बन्ध में उत्तरेष्ट श्री कृष्ण रसिक ने "हरिव्यास रसामृत" तथा स्वामिनीदास ने "श्री हरिव्यास हवीसी" में किये हैं। "श्री आचार्य चरित" नामक संस्कृत ग्रन्थ में भी इनकी जीवनी पर्याप्त विस्तार से दी गयी है। नामादास के मन्तमाल में और प्रियादास की टोका में इनकी उत्कृष्ट वैष्णवता और उद्दाम भक्ति-भावना का वर्णन मिलता है। नामादास ने लिखा है कि उन्होंने देवी जी को वैष्णवधर्म की दीक्षा दी। कदाचिदप्रान्त के "गदुयावल" नामक गाँव में देवी को बलि चढ़ाने के निमित्त एक निरीह स्त्रियों को देखकर व्यास जी के हृदय में कारुण्य का भाव इतना उमड़ आया कि देवी ने स्वयं उनसे प्रभावित हो

१- निम्बार्क माधुरी पृ० २३

२- महावाणी : महावाणी प्रणेता परिचय पृ० १५ प्रथम संस्करण- २००८,

प्रकाशक : ब्रजवारी विहारो हरण

३- भागवत संप्रदाय - श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ३२५, ३२६

४- लोहर नर की शिष्य निपट करण यह आवे

विदित बात संसार संतमुख कीरति गावे ।

वैरागिन के वृंद संग स्याम सनेही ।

ज्यों जोगेस्वर मध्य मनो सोमिन वैदेही ।

श्रीभट्ट चरन रज परसि के सकल दृष्टि जाकी नई ।

श्रीहरिव्यास तेज हरि- मजन- बल देवी को दीक्षा दई ॥

- मन्तमाल, इप्यय ७७

कर वैष्णव धर्म की दीक्षा ली और राजा को स्वप्न में हरिव्यास जी से वैष्णवी दीक्षा लेने की आज्ञा दी। कहा जाता है कि राजा सहित राजा वैष्णव बना और राजा भी उधर वैष्णवी देवी के यहाँ जीवों का बलिदान नहीं होता।

श्री हरिव्यास जी घुमघुमकर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के बल पर अपने संप्रदायिक सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और उनके साथ वैरागियों के झुण्ड रहते थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम उत्तर भारतीय संप्रदायों को मानते हैं। क्योंकि इनके पूर्व के आचार्य दाक्षिणात्य हुए थे। इनके शिष्यों में प्रधान बारह हुए जिनके नाम पर संप्रदाय के १२ बारें अर्थात् शाखाएँ पड़ीं। उन बारह शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं :-

- १- स्वयुदेवाचार्य
- २- वोहिनदेवाचार्य
- ३- मदनगोपाल देवाचार्य
- ४- उद्धव देवाचार्य
- ५- बाहुबल देवाचार्य
- ६- परशुराम देवाचार्य
- ७- गोपाल देवाचार्य
- ८- कृष्णकेश देवाचार्य
- ९- माध्व देवाचार्य
- १०- केशव देवाचार्य
- ११- गोपाल देवाचार्य और
- १२- मुहूर्त देवाचार्य

हरिव्यास जी माधुर्य भाव के उपासक थे। निम्बार्क-संप्रदाय के अन्तर्गत होते हुए भी उन्होंने "रक्षि संप्रदाय" नाम से एक शाखा चलायी। इस मत में भगवान् के गुंगारी रूप की उपासना की प्रधानता है। इस शाखा के लोग "हरिव्यासी" के नाम से प्रसिद्ध हैं।



### रचना

हरिव्यास जी ने संस्कृत में निम्नलिखित ग्रन्थ रचे थे :-

- १- सिद्धान्त रत्नावलि
- २- वष्टयाम
- ३- तत्त्वार्थ फल
- ४- फलस्कार निरूपण
- ५- प्रेम भक्ति विवर्धिनी - श्री निम्बार्क अष्टोत्तशत नाम की टीका

इनकी एक मात्र हिन्दी रचना "महावाणी" है जिसकी रचना बने गुरु के वादेशानुसार "कुल शक्त" के भाष्य के रूप में लिखा था। "कुल शक्त" एक साधारण ग्रन्थ है, तो "महावाणी" काव्य गुणों से शोभित एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें राधा कृष्ण की नित्य-विहार लीलाओं का बड़ा मार्मिक और हृदय स्पर्शी वर्णन है जो एक भक्त कवि की वात्मानुभूति की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति है। इसमें भक्त मानसिक दशा के भाषावैशेष में वर्तुल विषय के साथ तादात्म्य स्थापित कर उसमें पूर्णतः अपने को ली जाता है। महावाणी की भाषा कोमल रूप भाषा है जो सुन्दर, प्रसाद गुण युक्त, इतैणादि अलंकारों से अत्यन्त गार्भीय लिये हुए है। हरिव्यास जी पदों में अपना नाम "हरिप्रिया" रखते थे। इनके पदों की रचना सुलभ होने पर भी उसका वात्स्वादन प्रार्थनिक रूप में किया जा सकता है। श्री महावाणी में पाँच सुत हैं :-

- १- सेवा
- २- उत्सव
- ३- सुरत
- ४- सख्य और
- ५- सिद्धान्त।

"सेवा सुत" में नित्य विहारी श्री राधाकृष्ण की वष्टयाम सेवा का वर्णन है। प्रारम्भिक ३६ पदों में पूर्व जानार्यों का "सखियों" के रूप में

स्मरण किया गया है। "उत्सव सुत" में नित्य विहार के नैमित्तिक उत्सवों के वानन्द का वर्णन है जिससे सत्त्वियों को नित्य नवीन सुख का अनुभव होता है। "सुरत सुत" में राधा और कृष्ण के परस्पर एक एक के सुख सागर में निमग्न रहने का वर्णन है। "सत्य सुत" में स्वामादिक प्रेमावस्था में विभोर होने का वर्णन है। श्री कृष्ण अपनी बाह्यादिनी सखि श्री राधा रानी के साथ नित्य-विहार का सुख वृन्दावन धाम में अनुभव करते हैं। "सिद्धान्त सुत" का विषय ब्रह्मन्तर्गम्य है। इसमें वेष्णव धर्म के सिद्धान्तों का जैसे उपास्य तत्व, धर्म तत्व, सभी नामावली आदि का वर्णन है। इसके अनुसार अपार माधुर्य की मूर्ति, सौन्दर्य-रस-चिन्धु श्री सर्वेश्वर कृष्णचन्द्र ही एक मात्र परात्पर तत्व हैं और निर्गुण, निराकार ब्रह्म उस सीखा नायक के निर्देश मात्र हैं। सभी नामावली में प्रधान सत्त्वियों तथा उनके उपनामों की जहाँ है। संक्षेप में यही "महावाणी" का वर्ण्य विषय है।

हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों में हरिव्यास जी का सम्मान पूर्ण स्थान है। श्री बलदेव उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है :-

“निर्वाक मत्तावलम्बी कवियों में श्री हरिव्यास देव जी का वही स्थान है जो बल्लभमत्तानुयायी कवियों में सुरदास जी को प्राप्त है। दोनों ही हिन्दी-कविता कामिनी के कलेवर को शोभित करने वाले दो रत्न हैं तथा अपने भक्ति-संप्रदाय के बाष्पत्यमान होकर हैं।”

### परशुराम देव-

श्री परशुराम देव, हरिव्यास जी के बादश शिष्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उनका जन्म आदि गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था और उनके पिता का नाम बाह्यदेव था। उनका जन्म-स्थान बक्सुर राज्यान्तर्गत किसी गाँव में था। बचपन से ही माता-पिता से होन होने के कारण हरिव्यास जी की शरण में जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। गुरु के गौरीकवासी होने पर वे उनके उत्तराधिकारी हुए।

कहा जाता है कि ये छिद्र महात्मा थे और उनकी सिद्धियों के सामने बाजमेर के पास सलीम शाह नामक एक फकीर को परास्त होना पड़ा। इस घटना के बाजार पर उस स्थान का दूसरा नाम "परशुराम पुरी" भी हुआ। जिसका पक्ष नाम "सलेमाबाद" था। इस स्थान पर इन्होंने सर्वेश्वर का एक विशाल मन्दिर बनवाया। निम्बार्क संप्रदाय का प्रधान बाजार-पीठ यहीं वर्तमान है। परशुराम देव के जीवन की कौन-कौनसी घटनाएँ बतायी जाती हैं।

कहीं भी परशुराम देव की जन्म-तिथि तथा निधन-तिथि का उल्लेख नहीं है। श्री बलदेव उपाध्याय के अनुसार ये गौस्वामी तुलसीदास के सम-कालीन थे। ब्रजगौरी विहारीशरण ने निम्बार्क माधुरी में परशुराम देव को १६ वीं शती का कवि बताया है। श्री ब्रज बल्लभ शरण ने "कुल शतक" की प्रतिका में श्री परशुराम देव को दिये गये दो दान-पत्रों का उल्लेख किया है जिनके बाजार पर कहा जा सकता है कि परशुराम देव संवत् १५१५ तथा १६६६ के बीच में विद्यमान थे। "सलेमाबाद" में जहाँ परशुराम जी की समाधि है, उसके जिलासेब से विदित होता है कि उनके फूट शिष्य श्री हरिवंश देवाचार्य ने उसके समीप एक मन्दिर बनवाया। शिला लेख का समय १६८६ वि० अर्थात् १६३२ ई० है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इससे कुछ वर्ष पूर्व ही परशुरामदेव का गोलोकवास हुआ था।

१- निम्बार्क माधुरी पृ० ६६, ७४

२- भागवत संप्रदाय- श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ३३०

३- निम्बार्क माधुरी पृ० ६६

४- वही नख्त तारीख बकील कदुराज की

बोधपुर से उद्धृत — सेमड़लारा माटी

सरदारन की त्वारीख — सं० १५१५ पन्द्रह सौ पन्द्रह की साल बहुरीरा ।

तथा

बेटा —

बसुना जी रे तटै माये सा: ( स्वामी )

परशुराम जी कन्ठी बाँधी ।

बधि श्री महाराजा राजा श्री किशन सिंह की कन्यायन स्वामी श्री ।

परशुराम जी नौ पुण्य कर्म इत्यादि सं० १६६६ मु० कोटाखत

परशुराम ने काफी लंबी वायु प्राप्त की थी । मन्त्र जनों के बीच में ही नहीं, बल्कि साधारण जनता के बीच में भी उनकी बड़ी कीर्ति है । उनकी उत्कृष्ट भक्ति-भावना और व्यापक प्रभाव को दिखाने के लिए नाभादास के निम्नलिखित हृष्य का उद्धरण देना ही पर्याप्त होगा ।

ज्यों चंदन को पवन नीच पुनि चंदन करै ।  
बहुत काबु तम निविह उदय दीपक ज्यों हरै ॥  
भी मट्ट पुनि हरिव्यास संत मारग कसूरै ।  
कथा कीरतन नेम रखनि हरिगुन उल्लरै ॥  
गोविन्द भक्ति नदरीन गति तितक दाम छद पैद हव ।  
जंगली देव के लोग सब भी परशुराम किये पारणद ॥

- मन्त्रमाला, हृष्य, १३७ । ७७

### रत्नाई-

परशुराम देव बड़े मन्त्र होने के साथ ही, एक श्रेष्ठ कवि भी हैं। ये शृणुणीपासक तो थे ही । परन्तु निर्गुण ब्रह्म पर भी कबीर की भाँति काव्य-रत्ना उन्होंने की है। उनके १३ ग्रन्थों का कता जता है :-

- १- तिथि लीला
- २- बार लीला
- ३- बावनी लीला
- ४- विप्रमतीसी
- ५- नाथलीला
- ६- फदावली
- ७- रागरत्नाम लीला निधि
- ८- सानि निषेध लीला
- ९- हरि लीला
- १०- लीला सम्प्रदी
- ११- नदान लीला
- १२- निज रूप लीला
- १३- निर्वाण

प्रथम चार ग्रन्थ विषय और नाम साम्य की दृष्टि से कबीर के कहे जाने वाले इन्हीं नाम वाले ग्रन्थों से कुछ मिलते जुलते हैं। "नाथ सीता" में महापुरुषों के नाम दिये गये हैं। "हरिलीला" में भगवान् की सीताओं का दार्शनिक विवेचन है। "नाना सीता" में नानाओं का दार्शनिक निरूपण है। "निब रूप सीता" में भगवान् के स्वरूप का विवेचन है। "निर्वाण" में संसार की खीरहीनता का परिचय देकर संसार में त्याग और भगवद्-भक्ति का उपदेश दिया गया है। इन तेरह ग्रन्थों का संग्रह ही "पद्मुराम सागर" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें २२ चौ दोहे और छप्पय इन्द्र और १००० पद हैं। यह अभी अप्रकाशित है और इसकी एक हस्तलिखित प्रति "सत्यवादी" में सुरक्षित है।

#### हपरसिक जी-

निर्वाण संप्रदाय में श्री रूप रसिक जी एक महान् मन्त्र, दार्शनिक और धर्म प्रचारक के रूप में प्रख्यात हैं। इनके जीवन-वृत्त पर विवेचन विवरण कुछ नहीं मिलता। ब्रज बिहारी शरण ने इनके जीवन की एक घटना का उल्लेख किया है जिससे रूप रसिक के दृढ़प्रती होने का पता चलता है। स्वामी हरिव्यास जी से बहुत प्रभावित होकर उनका शिष्यत्वं ग्रहण करने की प्रवृत्ति इनका है वे वृन्दावन के लिए रवाना हुए। परन्तु वृन्दावन पहुँचने पर इन्हें माहूम हुआ कि स्वामी जी का निधन हो गया था। विधि की विहम्बना उनके लिए आवश्यक थी। अतः वहीं बैठे बैठे सात दिन तक कुछ न खा पीकर तपस्या में समाधिस्थ रहे जिसके फलस्वरूप बाठवें दिन उन्हें स्वर्गीय गुरु के दर्शन प्राप्त हुए।

इस घटना की ऐतिहासिकता में सन्देह है। स्वामी हरिव्यास जी के प्रसिद्ध बारह शिष्यों में से हपरसिक का नाम न होना इसकी ओर भी पुष्ट करता है। परन्तु हो सकता है कि हपरसिक ने हरिव्यास जी के जीवन-

१- निर्वाण-पाधुरी पृ० ७४, ७५

२- " " ६६

३- " " २६, २७



काल में नियमित रूप से उनका शिष्यत्व ग्रहण न किया हो और अपनी कक्षा से ही उन्हें गुरु मान लिया हो। रूप रसिक की जन्म-तिथि को निश्चित करने के लिए कोई बाधा नहीं है। 'निम्बार्क-माधुरी' में रूप रसिक के हरिव्यास को गुरु रूप में स्वीकार करने का निश्चय करने के समय का वक्ष्य उल्लेख मिलता है<sup>१</sup>। इसके अनुसार २६ वर्ष की आयु में वे 'सद्गुरु' की तलाश में वृन्दावन जा पहुँचे<sup>२</sup>। चूंकि हरिव्यास जी की निधन-तिथि के विषय में मतभेद नहीं है, इसलिए उसके बाधा पर रूप रसिक के जाविर्भाव-काल को निश्चित करना कठिन है। ऐसी दशा में उन्हें सामान्य रूप से २६ वीं शती का कवि मानना उचित नहीं होगा। कहा जाता है कि रूप रसिक एक द्राविड़ ब्राह्मण थे और उनके पूर्वज दक्षिण भारत से उत्तर में जाकर बसे थे। परन्तु रूप रसिक की भाषा में कहीं भी दक्षिणी भाषाओं का प्रभाव नहीं देखा पड़ता।

### रत्नाई -

रूप रसिक की तीन रत्नाओं का परिचय, हिन्दी-जगत में<sup>३</sup> मिलता है।

- १- बृहदोत्सव मणिमाल
- २- हरिव्यास यक्षामृत
- ३- नित्य विहार फदावली

बृहदोत्सव मणिमाल एक बृहद ग्रन्थ है जिसके पदों की संख्या १६६४<sup>४</sup> है। इसमें कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों का भी वर्णन है। परन्तु विशेष रूप से राधा कृष्ण के जन्म, मंगल बधाई, नित्य वसन्त, होरी, फूला जादि समस्त उत्सवों का ही विशद वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'महावाणी' के उत्सव सुस का अनुकरण कर लिखा गया है। यद्यपि इन दोनों में दैनिक और वार्षिक उत्सवों

१- निम्बार्क माधुरी पृ० ६५

२- कुल शतक की मुद्रिका पृ० ११ सं० २००६

३- निम्बार्क माधुरी पृ० ६६

४- " " १००

का वर्णन मिलता है, तो भी "बृहदौत्सव मणिमाल" में नैमित्तिक उत्सवों की प्रधानता दी गयी है।

"हरिव्यास कथावृत" में गुरु-महिमा वर्णित है। इसमें कृष्ण-मणित के स्वरूप पर भी बड़े पद, दोहे और लोपाख्या मिलती हैं।

"नित्य विहार कथावली" में १२० पद हैं, जो नित्य-कृष्ण-लीला पर लिखे गये हैं। ब्रज लीला के पद इसमें नहीं हैं।

### स्वामी हरिदास-

हिन्दी में कृष्ण-काव्य को वर्द्धित करने वाले कवि-रत्नों में सही संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। स्वामी जी के जन्म-स्थान, जन्म-संवत्, माता-पिता, गुरु आदि के विषय में विज्ञान एक मत नहीं है।

"भवत सिन्धु" के बाधार पर इस संप्रदाय के गौस्वामी लोग (गृहस्थ भक्त) स्वामी जी का जन्म-स्थान हरिदासपुर की बताते हैं। "स्निग्ध सिद्धान्त" के बाधार पर टट्टी-संस्थान (विरक्त भक्त) के महन्तों का मत है कि वृन्दावन के पास स्थित रावपुर गांव में उनका जन्म हुआ था। "निर्वाण माधुरी", सत्सरिचरण कृत गुरु प्रणातिका, स्निग्ध विनोद आदि में उनका जन्म-स्थान रावपुर ही दिया गया है। गौस्वामियों के अनुसार ये चार-स्वत ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम बाबुधीर और माता का गंगादेवी। टट्टी-संस्थान के वैष्णवों के अनुसार ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम गंगाधर और माता का नाम जिना देवी था। नामादास ने हरिदास जी को "बाबुधीर उषोत्कर" लिखा है। बाबुधीर उनके पिता न होकर, गुरु ही ठहरते हैं। रसिक देव ने बाजार्य-परंपरा में लिखा है :-

१- स्निग्ध माधुरी पृ० ६४

२- "भवत सिन्धु" एक संप्रदायिक ग्रन्थ है। श्री ग्रांज ने उनमें दी गयी सामग्री की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है।

३- श्री कैलियाल, प्रकाशक - कृष्ण विहारी पुस्तकालय, वृन्दावन

बाहुधरिष्य शिष्य योः हरिदासः प्रकीर्तितः

वनन्याधिपतिः श्रीमान गुरुणां गुरुः प्रभुः ॥

- रसिक देव, ब्रह्मचार्य

हरिदास जी के लगभग समकालीन नरहरिदास के एक श्लोक<sup>१</sup> में उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण ही बताया गया है। अतः सिद्ध<sup>२</sup> होता है कि हरिदास जी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम गंगाधर और माता का नाम जिना देवी था ।

‘मवत सिन्धु’ में हरिदास जी का जन्म संवत् १४४१ दिया गया है, जो गलत है। टट्टी - संस्थान के महन्तों के अनुसार उनका जन्म संवत् १५३७<sup>३</sup> है, जिसका वे कोई बाधा नहीं देते । गौस्वामियों के अनुसार हरिदास जी का जन्म पौष शुक्ला १३ संवत् १५६६ में हुआ था । चूंकि उसी दिन स्वामी जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है, इसलिए संवत् १५६६ को स्वामी जी का जन्म-संवत् मानना पड़ता है। डा० दीनदयाल गुप्त ने केवल इतना ही लिखा है कि हरिदास जी तानसेन के गुरु होने से उनके समकालीन थे । मथुरा गढ़टीर में हरिदास जी से कब्र की भेंट संवत् १६२७ में हुई लिखी गयी है। अतः संवत् १५६६ को स्वामी जी का जन्म-संवत् मानना ही अधिक समीचीन है।

कहा जाता है कि कल्प से ही हरिदास जी का कूकाव भक्ति की ओर था और ये घंटों एक ध्यान-मग्न रहा करते थे । पत्नीस वर्ण की बाधु में, अपनी पत्नी के निधन होने पर, पूर्ण रूप से विरक्त होकर वृन्दावन

१- सनाढ्यों हरिदासाऽथो रसिकानां शिरोमणिः

( नरहरिदास, गुरु प्रणातिका )

२-जी निम्बार्क माधुरी पृ० १६२

३- कैलिमाल की मुक्ता पृ० ३३

४- ब्रह्मशाप और वल्लभ संप्रदाय , डा० दीन दयालु गुप्त प्रथम भाग। पृ० ६६

५- गवेटियर बाबू मथुरा पृ० १६१

६- गृह में वर्ण पत्नीस बिताए, फिर वैराग्य त्याग उपहार ।

सतरी वर्ण कीन्हे बनवाया, गुप्त भाव कीन्हा परकाया ॥

- सङ्गरितरण की ‘गुरु प्रणातिका’

में रहने लगे। सत्तर वर्ष तक ये वृन्दावन के "निधि बन" नामक कुंड में भगवान् की पूजा में लीन रहे। स्वामी हरिदास जी अपने समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। उनके संगीत-गुरु का पता नहीं चलता। परन्तु प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन और कैफूबाबरा के उनके शिष्य होने से उनकी संगीत-कला-प्रवीणता का परिचय मिलता है। नाभादास ने उनके विषय में लिखा है :-

“कुशल नाम तौ नेम जपत नित कुंड विहारी ।  
ज्वलोकत रहैं कैसि सती सुत के बधिकारी ॥  
गान कला गन्धर्व, स्याम स्यामा की तोषैं ।  
उत्तम भोग लाय पौर मरुट तिमि पौर्ण ॥  
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन बाधा बाध की ।  
बाधघोर उषीकर, रसिक ह्राप हरिदास की ॥ १

स्वामी जी का जीवन बहुत ही सादा था। ये राधाकृष्ण के सुल-रूप के उपासक थे तथा उनकी ललित लीलाओं का ज्वलोकन सती भाव से कर वानन्द में डूबे रहते थे। मन्त्रों का मत है कि स्वयं ललिता सती ही हरिदास जी के रूप में धरा धाम पर दिव्य प्रेम-पार्श्व का उपदेश देने के निमित्त अवतरित हुईं। इस सिद्ध महात्मा के जीवन की अनेक अप्रत्याशपूर्ण घटनाएँ बाध की क्रम में बतायी जाती हैं। उनमें एक स्वामी जी से अकबर बादशाह की भेंट से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि तानसेन द्वारा, स्वामी जी का परिचय पाकर अकबर उनके दर्शन के लिए वृन्दावन आया। हरिदास जी का गायन सुनकर अकबर इतना मुग्ध हुआ कि वह उनके कूट मार्गन के लिए हठ करने लगा। बादशाह के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने यमुना जी के टूटे घाट की मरम्मत करने की कहा। अकबर के वात्सल्य की सीमा न रही जब उसने अपनी जाँतों से देखा कि घाट अमूल्य रत्नों से बना हुआ था और समूचे राज्य की केलने पर भी उसकी मरम्मत न हो सकती थी। उसने स्वामी जी के चरणों पर गिरकर अपने गर्व के लिए क्षमा माँगी। वृन्दावन में रहते हुए हरिदास जी ने एक मन्दिर बनवाया जिसमें उन्होंने "निधिवन" से मिली,



कसे वाराध्य देव वरुण विहारी की मूर्ति को स्थापित किया। यह इस संप्रदाय का प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है कि स्वामी जी ने ६५ वर्ष<sup>की</sup> लंबी वायु प्राप्त की थी और संवत् १६६४ में जलौक-लीला समाप्त की।

### रत्नाएँ-

स्वामी हरिदास जी का कविताकाल संवत् १६०० और १६४४ के बीच पड़ता है। उनकी संपूर्ण काव्य-रत्ना पदों के रूप में ही मिलती है। स्वामी जी सिद्धहस्त गायक थे ही। अतः उनके पद विविध राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं। उनकी रत्नाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है। डा० रामकुमार वर्मा<sup>१</sup> के अनुसार उनके जेठ संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें<sup>२</sup> हरिदास जी की बानी तथा 'हरिदास जी के पद' मुख्य हैं। पी० रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी तीन रत्नाओं का उल्लेख किया है :-

- १- हरिदास जी की ग्रन्थ
- २- स्वामी हरिदास जी के पद तथा
- ३- हरिदास जी की बानी

मित्रचन्द्रजी ने और एक ग्रन्थ 'माधुरी वैराग्य' को हरिदास जी कृत माना है। परन्तु इनमें से उपलब्ध ०४४४६ होनेवाली केवल दो ही रत्नाएँ हैं। पहली रत्ना 'सिद्धान्त के पद' है और दूसरी 'केलिमाल'। ये दोनों निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हैं। 'सिद्धान्त के पदों' की संख्या १८ है और 'केलिमाल' के पदों की संख्या १०८ है। शायद इन्हीं दो रत्नाओं का उल्लेख डा० दीनदयालु गुप्त ने 'साधारण सिद्धान्त' और रास के पद से किया है। 'केलिमाल' में 'कुल रूप, राधाकृष्ण के नित्य-विहार, नखसिंह, मान, दान, हौसी, रास वादि विषय वर्णित हैं।

- १- हिन्दी साहित्य का बालोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० ५६० चतुर्थ संस्करण
- २- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पी० रामचन्द्र शुक्ल पृ० १८६
- ३- मित्रचन्द्र विनोद- पृ० ३०२
- ४- वष्टशाप और वत्सल संप्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त पृ० ६६ भाग १



### विट्ठल विपुल देव-

हरिदासी संप्रदाय में श्री विट्ठल विपुल देव का नाम बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु उनके जीवन-वृत्त पर बहुत कम विवरण उपलब्ध है। 'निम्बार्क माधुरी' के अनुसार<sup>१</sup> उनका जन्म संवत् १५२० में हुआ था। श्री वियोगी हरि तथा श्री बलदेव उपाध्याय<sup>२</sup> उन्हें स्वामी हरिदास जी के मामा बताते हैं। लेकिन 'निम्बार्क माधुरी' के अनुसार<sup>३</sup> उन्हें स्वामी हरिदास जी के ममेरे भाई के रूप में मानना ही संगत पात्रुम होता है। उनका जन्म-स्थान तुन्दावन के पास स्थित राधापुर गांव था। उनकी माता का नाम कौस्तुभ्या देवी था। ये वायु में हरिदास जी से भी बड़े थे और उनके प्रथम शिष्य हुए। संवत् १५५० में, तीस वर्ष की वायु में उन्होंने गुरु से दीक्षा प्राप्त की। स्वामी हरिदास जी के गौलीक वास पर उन्हें गुरु की गद्दी प्राप्त हुई। सत्सरि शरण दे' सलित प्रकाश' में उनके सम्बन्ध में निम्न-लिखित विवरण दिया है।

विट्ठल विपुल सनादय जादय धन धरम पत्ताका ।

श्री अनुग्रह जनन्य अनुपम अनु सधि राका ॥

विभिन्न सुनिधिन सधन जहाँ जाकीं मन कटखी ।

व्यास की गनि वायु उदासी हूँ जित फटखी ॥

- सत्सरिशरण, सलित प्रकाश का गुरु अणात्मिका संद

विट्ठल विपुल के गुरु-प्रेम के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि गुरु के वन्दनार्थ होने पर उन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने नेत्रों पर पट्टी बांध दी। उनकी व्यास जी रास में लिवा ले गये। वहाँ पर स्वाभिनी के द्वारा हाथ फँदे जाने पर और करने पर कि नेत्र सोल्यो, आप स्वाभिनी-स्वरूप में विलीन हो गये।

१- ब्रह्माधुरी शार, श्री वियोगी हरि पृ० ६२ संस्करण २०११

२- भागवत संप्रदाय, श्री बलदेव उपाध्याय, पृ० ३५७

३- कृपा पात्र हरिदास पास पैवा मन तार,

मामा पुत्र प्रताप मखित हुलम पाये ॥

- श्री निम्बार्क माधुरी पृ० २२४

४- निम्बार्क माधुरी पृ० २२४

भक्तमाल में इनका उल्लेख इस प्रकार है :-

बृन्दावन की माधुरी इन मिति वात्स्वादन कियौ ।

सबै राधारमन, मट्ट गोपाल उजागर ॥

हृणीकेश भगवान विपुल बीठल सब सागर । इत्यादि

- भक्तमाल, इष्य ६४, पृ० ६१८

श्री विट्ठल विपुलदेव के शिष्य स्वामी बिहारिन देव ने अपनी वाणी में लिखा है :-

कर्म बरु धर्म धन धाम निहकाम करि,

भलि लोके बरु वेद विधि विषम नाणी ।

सकल सलि मण्डली मधि कहत धनि धनि ।

श्री हरिदास वंशी सब अनन्य वाणी ॥

त्रिपुन की बहार करनार उघटत लब्ध ,

श्रीवर बिहारिनदासि प्रेम माणी ।

रास ली सन की संग नृत्य में,

जै जै श्री बीठल विपुल सुख रैन राणी ॥

### रचनाएँ-

श्री विट्ठल विपुल की रचना स्फुट पद हैं जो कीर्तन संग्रहों वीर<sup>१</sup> राग कल्कलुष<sup>२</sup> में प्राप्त होते हैं। इनके जालीस पदों में उन्नीस पद<sup>३</sup> निम्बार्क माधुरी<sup>४</sup> में दिये गये हैं। इन पदों के द्वारा उन्होंने स्व संप्रदायात्मक<sup>५</sup> रस-सिद्धान्त एवं उपास्य तत्व की परिपुष्टि की है। इन पदों में स्वामी हरिदास जी के<sup>६</sup> केसि-माल<sup>७</sup> का सार निहित है। राधा-कृष्ण के नित्य-विहार, कृत्ता, मान, दान, नौक-फौक<sup>८</sup> आदि विषय वर्णित हैं।

१- श्री विट्ठल विपुल प्रताप का फाट सदा जब तल्ल रवि,

जालिस पद समय विरलि गायौ विविरल इल्ल इवि ॥

- निम्बार्क माधुरी पृ० २२४

### मीराबाई-

कृष्ण- भक्ति मीराबाई हिन्दी की सबसे अधिक प्रसिद्ध कवयित्री हैं। इनके ऊपर नयी- पुरानी बड़े- पुस्तकें निकल चुकी हैं जिनमें मीरा का जीवन- वृत्तान्त मिलता है। नाभादास कृत, भक्तमाल, ८४ वैष्णवन की वार्ता, २५२ वैष्णवन की वार्ता, राधदास कृत भक्तमाल आदि में भी मीरा सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। मीरा के जन्म- संवत्, मरण- संवत् आदि के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। किन्तु फिर भी अधिकांश मतों का आधार लेकर मीरा का जीवन- वृत्त संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

मीराबाई जोधपुर के संस्थापक प्रसिद्ध राठौड़ राजा राव जोधाजी के पुत्र राव बुदा जी की पत्नी थीं। इनके पिता का नाम रत्नसिंह और माता का नाम सुमुखर था। इनका जन्म- स्थान मेड़ता प्रान्त में "कुड़की" गाँव था। "मेड़ता" में जन्म लेने के कारण ये "मेड़ताणी" के नाम से भी प्रसिद्ध हुईं। इनका जन्म संवत् १५५५ वि० के आस पास जव्वा कुड़ ही पीछे हुआ था।

मीराबाई के बचपन की घटनाओं में प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था में ही श्री गिरिधरलाल से इनका आकर्षण हो गया था। एक बार एक साधु इनके पिता के यहाँ ठहरा, जिसकी श्री गिरिधरलाल की मोहन मूर्ति को देखकर ये उसकी ओर आकृष्ट हुईं और उसे लेने के लिए फलने लगीं। साधु ने पहले तो उसे देने से इन्कार कर दिया, परन्तु बाद में उसे देना पड़ा। यह मूर्ति, मृत्यु पर्यन्त मीरा के पास रही। कहा जाता है कि एक बार फड़ोस में किसी कन्या का विवाह होता देखकर, मीरा ने अपनी माँ से शिशु- सुलभ- मोलैपन में पूछा कि "मेरा वर कौन है?" उसके उत्तर में माता ने ने हँसकर गिरिधरलाल की मूर्ति की ओर संकेत

१- श्री बेटी राणीर की पाने राज दिये भगवान ।"

- मीराबाई , बैलवेडियर प्रेस, तृतीय संस्करण पृ० ४०

२- मीराबाई की जीवन चरित्र - सुशी देवी प्रसाद पृ० ६

३- "मेड़नियाँ घर जन्म लियो है मीरा नाम कहायो ।"

- मीराबाई , बैलवेडियर प्रेस पृ० ६७

४- मीराबाई की पदावली , श्री पद्मराम चतुर्वेदी पृ० २०

किया। तभी से मीरा को गिरिधरलाल में विशेष लान हो गयी।

मीरा की बाल्यावस्था में ही माता-पिता का देहान्त हो गया - माता का मीरा की तीन वर्ष की आयु में और पिता का मीरा की दस वर्ष की अवस्था में<sup>१</sup>। इनके पितामह राव बूदा जी ने स्नेहवश उन्हें कुकुरी से बुलाकर अपने यहाँ भेड़ता में रखा। यहाँ रहकर मीरा पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली। तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह प्रसिद्ध महाराणा रणा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज से<sup>२</sup> हुआ। इनका जीवन अपने पति के साथ सुखपूर्वक बीतने लगा। परन्तु विवाह के तीसरे वर्ष ही इनके पति का देहान्त हो गया। मीराबाई इस प्रकार अपने पति के सुख से अल्पकाल में ही वंचित रह गयीं। फलस्वरूप इनके हृदय में विरक्ति हो गयी। वातावरण ने इनके जीवन में बड़े परिवर्तन का अवसर दिया। इनका दृष्टिदेव के प्रति प्रेम सौ गुना बढ़ गया। उनका चित्त अब से भगवद् भक्ति और साधु-सन्तों की संगति में प्रतिदिन अधिकाधिक लगने लगा। वे भगवद् भजन में लीन रहतीं और साधु-सन्तों के पहुँचने पर, लोक-मर्यादा का भी ध्यान न कर, उनका आदर-सत्कार बड़ी ब्रह्मा से करती थीं। भगवान् के दर्शन के लिए ये बाहर के मन्दिरों में भी जाती जाती थीं और प्रेमावेश में बाहर पैरों में धुंधला बांध हाथों से करताल बजा-बजाकर भगवान् के सम्मुख <sup>गाती</sup> ~~मार्ग~~ और नाचती थीं। इनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी तो दूर दूर से लोग इनके दर्शन के लिए बाने लगे। यहाँ तक कहा जाता है कि बादशाह अकबर और गायक तानसेन मीराबाई के दर्शन के लिए बाये से और अनेक विजयों पर उन्होंने मीरा से बातें कीं। परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता।

१- मीरा-स्मृति-ग्रन्थ - ले० विमानन्द पृ० ५१

२- हिस्दी बाबू उदयपुर पृ० ३५-६०

३- यहाँ गिरधर बाबा नाच्यारी ॥ टंक ॥

पाज पाज यहाँ रसिक रिक्तावा, प्रीत पुरातन बाँच्यारी।

स्याम प्रति रौ बाधि धूमरुया मोहण म्हारो बाँच्यारी।

लोक लाज कुलरा मर्यादा जगमा जोकणा राँच्यारी।

प्रीतल फल हव पा विहरावा, मीरा हरि रंग राँच्यारी ॥

- पृ० १७, मीरा की कदावली, पारुराम चतुर्वेदी पृ० १०५



मीरा की लोक-मयादा का त्यागकर साधु-सन्तों से मिलना उनके देवर महाराणा रत्नसिंह तथा राज परिवार के अन्य लोगों को पसन्द नहीं आया। वे उन्हें समझाने और ऐसा करने से विरत करने लगे। परंतु मीरा पर उनका कोई बल नहीं पड़ा। महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु हुई और उसके छोटे भाई विक्रमजीत सिंह को महाराणा बनाया गया। उसे पहले से ही मीरा की भावदू भक्ति से चिढ़ थी। अब वह मीरा को कष्ट पहुँचाने और दण्ड देने लगा। कहा जाता है कि मीरा ने उसके भेजे हुए विष्णु की बहुत मानकर पी लिया और सर्प की तुलसी-माला की तरह गले में डाल दिया। परन्तु मीरा की भक्ति उत्तरोत्तर वृद्ध होती गयी। कहते हैं कि इन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित करने के लिए तुलसीदास जी से पत्र-व्यवहार भी किया था। कुछ काल के पश्चात् मीरा बाई भेवाड़ होकर अपने पोहर भेड़ता चली गयीं। भेड़ता में उन्हें बहुत ब्रह्मवाचन मिला। परन्तु दुर्भाग्य से उनके चाचा वीरमदेव पर विपत्तिपात हुआ। वीरम देव से जोधपुर के राजा मालदेव ने भेड़ता लीन लिया। परिस्थितियों से तंग आकर मीरा ने भेड़ता को भी छोड़कर तीर्थ-यात्रा करने का निश्चय किया। ये सर्वप्रथम वृन्दावन गयीं और वहाँ चैतन्य संप्रदायी श्री जीव गोस्वामी से मिलीं। वृन्दावन में कुछ समय रहकर, फिर ये द्वारिका पहुँचीं। कहा जाता है कि मीरा की द्वारिका से लौटाने के लिए भेवाड़ और भेड़ता से कुछ ब्राह्मण भेजे गये और उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। यह भी प्रसिद्ध है कि मीराबाई द्वारिका में रणशेख जी के मन्दिर में भगवान् की मूर्ति में समा गयीं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि संवत् १६३० के लगभग मीराबाई ने अपनी जीवन-सीला समाप्त की।

### रत्नाई -

मीराबाई के नाम से निम्नलिखित रत्नाई बतायी जाती हैं :-

- १- नरसी जी रो माहेरो
- २- गीत गोविन्द की टीका

---

१- मीराबाई : एक अध्ययन-श्रीमती फदमावती \* शब्दम \* पृ० ३०



- ३- राग गोविन्द
- ४- सौरठ के फ
- ५- मोरारिबाई का मलार
- ६- गवां गीत

परन्तु 'राग गोविन्द' तथा 'राग सौरठा' के केवल नाम मात्र मिलते हैं। 'नरसी जी रो माहेरी' मोरारिबाई की रचना नहीं मालूम पड़ती है। इनके फलों में निर्गुण ब्रह्मवाद, इठयोग, सूफी प्रेम-तत्व इत्यादि सम्प्रदायों के ब्रह्म भाषा में राजस्थानी का प्रभाव है। कृष्ण से संबंधित फलों में कृष्ण के प्रति मोरारि के प्रेम, विरह, मिलन, आत्म-निवेदन आदि के भाव अभिव्यक्त हैं। कुछ फल स्वचरित सम्बन्धी भी हैं।

#### रहीम-

बबुरहीम तानताना कबर के दरबार के प्रसिद्ध कवि-रत्नों में से हैं। अबुल फजल, अबुल कादिर, नदाउनी, अबुल बाकी आदि मुसलमानों इतिहासकारों के ग्रन्थों में रहीम के जीवन-वृत्त सम्बन्धी विवरण विस्तार से मिलते हैं। ये इतिहास-प्रसिद्ध बैरमखान के पुत्र थे। बैरमखान की बगल में पैदा की छोटी पुत्री से संवत् १६१३ में जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका नाम कबर ने बबुरहीम रखा।

१- हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने हिन्दी भाषा के दो रहीम कवियों का परिचय देने का प्रयास किया है। शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में प्रसिद्ध कवि बबुरहीम तानताना के अलावा और एक रहीम का उल्लेख किया है जिसके सम्बन्ध में भित्तारीदास का एक बन्द दिया है। इसके आधार पर मित्रबन्धुओं ने भी हिन्दी के दो रहीम कवि माने हैं। परन्तु तानताना एक ही व्यक्ति थे और वे कबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि रहीम ही हैं। डा० सरसूप्रसाद ने यह सिद्ध किया है।

- कबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १६५

२- कबर नामा भाग २ पृ० ७६

पं० रामचन्द्र शुक्ल<sup>१</sup>, डा० रामकृष्ण वर्मा<sup>२</sup> और रामनारायण त्रिपाठी ने रहीम का जन्म संवत् १६१० लिखा है। परन्तु पं० मायाशंकर याज्ञिक ने रहीम की जन्म-कुंडली के आधार पर संवत् १६१३ में रहीम का जन्म सिद्ध किया है। डा० सरयूप्रसाद का भी यही मत है।

बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् ज़क़र ने रहीम की <sup>उस</sup> शिक्षा का प्रबन्ध किया था और उन्हें "मिर्जाखाँ" की उपाधि प्रदान की<sup>३</sup>। ज़क़र ने रहीम का विवाह अपनी धाया बीबी माहम खाँ की पुत्री माहबानू से किया। रहीम एक होशियार युवक और योद्धा थे। कहा जाता है कि १२ वर्ष की उम्र में उन्होंने कविता करना शुरू किया था। उन्होंने कई लड़ाइयों में भाग लिया था। संवत् १६३५<sup>४</sup> शाहजहाँ की सहायता से कुंभमेर का काम दुर्ग जीता, जिसके उपरान्त में ज़क़र ने रहीम को "मीर-कुं" का पद दिया और कुछ समय के पश्चात् बाबुर की सूबेदारी और रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला भी उपहार में दिया<sup>५</sup>। संवत् १६४१ में गुजरात को जीतने पर उन्हें "खानखाना" की उपाधि मिली<sup>६</sup>। ज़क़र ने रहीम की योग्यता, कार्य-कुशलता और बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उन्हें "वकील" जैसा ऊँचा पद दिया था। शाहजादे सलीम की "बलात्करी" का मार भी ज़क़र ने इन्हीं को दिया था। बहांगीर के शासनकाल में भी इनका स्थान ऊँचा था। और दरबार में इनका बड़ा सम्मान होता था। इस प्रकार रहीम ने ज़िन्दगी का पूरा पूरा हुक्म उठाया। परन्तु कुछ समय के बाद अपने ऊँचे पद से इनका पतन भी हो गया। परिस्थितियों से विवश होकर इन्होंने बहांगीर के विद्रोही शाहजहाँ की सहायता की। इसी कारण कैद हुए और इनसे सारी संपत्ति छीन ली गयी।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २६४ प्र० सं०

२- हिन्दी साहित्य का बालीनात्क इतिहास पृ० ५६६ चतुर्थ संस्करण

३- कविता कौमुदी प्रथम भाग पृ० ३३० बाठवाँ संस्करण

४- ज़क़री दरबार के हिन्दी कवि पृ० १३४

५- ज़क़रनामा भाग २ पृ० २०३, २०४

६- मवाशिरे रहीमी, भाग २ पृ० ५६२

७- मवाशिरुल उमरा भाग २ पृ० १८३

८- मवाशिरे रहीमी भाग २ पृ० ५

रहीम का पारिवारिक जीवन शोकपूर्ण था। उनकी चार वर्ष की अवस्था में उनके पिता की हत्या होगयी थी। संवत् १६१५ में उनकी पत्नी भी मर गई। इनके एक पुत्री और तीन पुत्र इनके जीवन-काल में ही जल बसे। जीवन के अन्तिम काल में, ऊँचे पद से गिर जाने से और अपने पुत्रों की अकाल मृत्यु से ये बड़े दुखी हुए। अस्वस्थता के कारण काफी निर्बल हो गये थे और संवत् १६८३ में ७२ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई<sup>१</sup>।

सानसाना बख्श रहीम वैष्ठ गुणों की सान थे। सफल योद्धा और कवि थे। गुणवान्, प्रतिभा संपन्न और बुद्धिमान व्यक्ति थे। बरबी, तुर्की, फारसी और हिन्दी भाषाओं का उन्हें विशेष ज्ञान था। हिन्दू शास्त्रों का भी पर्याप्त ज्ञान उन्हें प्राप्त था। अपनी हिन्दी कविता में उन्होंने रहीम की शाय रही थी। उन्होंने हिन्दी के अनेक कवियों को पुरस्कृत किया था। अनेक हिन्दी कवियों ने इनकी गुण-ब्राह्मता और दानशीलता की प्रशंसा की थी<sup>२</sup>। कहा जाता है कि कवि स गंग के एक वृष्य पर रहीम ने ३६ लाख रुपये का पुरस्कार दिया था<sup>३</sup>। केशवदास, बासकरन, नरहरि, तारा, गंग आदि अनेक हिन्दी कवियों ने इनकी विद्वत्ता, उदार-मनोवृत्ति और गुणशीलता का परिचय दिया है। राजा अमरसिंह, रीवा नरेश रामचन्द्र, तुलसीदास आदि से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। कहा जाता है कि सानसाना जब बीन दशा में थे, एक यात्रक ने उन्हें वा घेरा। उन्होंने एक दोहा बिलकर रीवा नरेश के पास भेजा, जिस पर रीवा नरेश ने उस यात्रक को एक लाख रुपये दिये थे। कहा जाता है कि रहीम के बरवे इन्दों को देखकर ही तुलसीदास को बरवे इन्द में 'रामायण' लिखने की प्रेरणा मिली थी<sup>४</sup>।

रत्नाई :-

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रहीम की निम्नलिखित रत्नाई बतायी

- 
- १- मजासिरुल उमरा, भाग २ पृ० १६६
  - २- मजासिरे रहीमी भाग २ पृ० ५६२
  - ३- कविता काँमुदी - प्रथम भाग पृ० ३२७ बाठवाँ संस्करण
  - ४- वैष्णवी माधवदास, गोसाईं - रचित दोहा ६३

है :-

- १- रहीम दोहावली या सतसई
- २- बरवै नायिका भेद
- ३- रूंगार सौरठ
- ४- मदनाष्टक
- ५- रास फँसव्यायी
- ६- नागर शोभा
- ७- फुटकल बरवै
- ८- फुटकल कवित्त सवैये
- ९- रहीम काव्य
- १०- खेडकांतुम्

इनके ग्रन्थों में डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका', 'मदनाष्टक', 'रास फँसव्यायी' और 'रूंगार सौरठ' प्रसिद्ध हैं। दोहावली में प्रारम्भ में गंगा-स्तुति है। भक्ति, नीति, उत्तेश आदि विषयों की चर्चा है। रहीम की रचनाओं में 'मदनाष्टक' और 'रास फँसव्यायी' दोनों ही कृष्ण काव्य के अन्तर्गत आती हैं। मदनाष्टक में केवल आठ चौकड़े हैं और 'रास फँसव्यायी' में केवल दो पद ही उपलब्ध हैं।

'मदनाष्टक' रत्ना में कृष्ण की मुरली के व्यापक प्रभाव कृष्ण-सौन्दर्य से उदीप्त गोपी-प्रेम-भावना, गोपियों की विह्वलता और ~~हृद~~ <sup>हृद</sup> से मिलने की तीव्र आकांक्षा आदि का वर्णन है। "यह संपूर्ण <sup>वर्णन</sup> विमल रूंगार के अन्तर्गत स्मृति-संगीत के ही रूप में हुआ है। गोपियों में कृष्ण के वंशी-नाद, उसकी रूप माधुरी तथा उनकी मधुर जल-ढाल तथा बोलों ने उनके विरह को और भी उदीप्त कर दिया है और वे कृष्ण से मिलने के लिए सातायित हो उठती हैं।"

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २०२ ( सं० २०१४ )

२- हिन्दी साहित्य का बालीयनात्मक इतिहास पृ० डा० रामकुमार वर्मा पृ० ६००  
चतुर्थ संस्करण

३- रहीम रत्नावली, पायाईकर याज्ञिक द्वारा संपादित पृ० ३२



रहीम के पदों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन मधुर ब्रज भाषा में हुआ है।  
 पदों की शब्द-योजना सुत मधुर और संगीतात्मक है। भाव और भाषा दोनों  
 के दृष्टिकोण से ये पद सुरदास के पदों से मिलते हैं। कवित्त और छंदों में कृष्ण  
 का बाल-रूप-वर्णन, उनके गुणों का कथन और साधारण नीति तथा शिखा  
 के विषय आये हैं।<sup>१</sup>

### नरोत्तमदास-

नरोत्तमदास केवल एक छोटी रचना के ढिंवल पर हिन्दी  
 के श्रेष्ठ कवियों की रचना में स्थान पानेवाले अश्वितीय कृष्ण-भक्त थे। इनका  
 जन्म-काल संवत् १६०२ माना जाता है। ये सोतापुर जिले के बाड़ी ग्राम के  
 निवासी थे। "शिवसिंह सरोज" के अनुसार ये कान्य कुक्ष ब्राह्मण थे। इनके संबंध  
 में अधिक विवरण अज्ञात है।

नरोत्तमदास के दो ग्रन्थ कहे जाते हैं-"सुदामा चरित्र"  
 और "सुत चरित्र"। केवल 'सुदामा चरित्र' प्राप्य है। "सुत चरित्र" अभी तक उपलब्ध  
 नहीं हुआ। "सुदामा चरित्र" बहुत छोटी रचना होने पर भी इतनी सरस और  
 श्रेष्ठ है कि उसी ने कवि को जबर बना दिया। यह "चरित्र-काव्य" है जो जमी  
 वर्ग में "हिन्दी-कृष्ण-काव्य-दीप" में सर्व श्रेष्ठ है। इसकी कथा श्रीमद्भागवत के  
 दशम स्कन्ध पर आधारित है। यह एक लघु-काव्य है, जिसमें दोहा, सवैया, और  
 कवित्त इन्हीं में संबद्ध रूप से कृष्ण-सुदामा मिलन की कला का वर्णन है। पदों  
 की संख्या १२१ है। इसकी भाषा प्रवाहमयी और सरल है और ऐसी आकर्षक है,  
 जिसने अन्य कवियों को इसी के अनुकरण पर "सुदामा-चरित्र" लिखने की प्रेरणा  
 दी।

१- कन्नौरी दरबार के हिन्दी कवि- डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल पृ० १७३

२- हिन्दी साहित्य का बालीनात्मक इतिहास - डा० रामकृष्ण वर्मा,

पृ० ५६० अतुल्य संस्करण



कृष्ण-काव्य-जगत में इसकी विशेषता यह है कि यह राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन न कर, बालाघोष श्रीकृष्ण के हृदय की कोमलता, दयाशीलता और सुदामा के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता का परिचय देता है। इसमें दोन हृदय के बड़े सजीव चित्र हैं।

तृतीय अध्याय

“ मध्ययुगीन कृष्ण- भक्ति- साहित्य की प्रभावित करनेवाली

“ प्रवन्ध ” के तत्त्व ”

## मध्ययुगीन कृष्ण - मयित - साहित्य की प्रभावित

### करनेवाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्व

तमिलु- प्रदेश में इठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक मयित का जो तीव्र बान्दोलन चला, उसमें बालुवारों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रथम अध्याय में हम यह दिखा चुके हैं किन किन परिस्थितियों से तमिलु - प्रदेश में मयित- बान्दोलन का बाविर्भाव हुआ और उसमें बालुवारों की देन क्या थी ? उक्त मयित- बान्दोलन को जन- बान्दोलन के रूप में व्यापक और विशाल बनाने का पूरा पूरा श्रेय बालुवारों को है। बालुवार मयितों ने मयित-मार्ग को ही ईश्वर- प्राप्ति का सर्व सुलभ और राजमार्ग घोषित किया। बालुवारों के मयित प्रधान नीतियों में एक बहुमुक्त मयित थी जिसने तमिलु- प्रदेश की समस्त जनता को मयित- मार्ग पर बाधुष्ट किया। कितने ही मयित बालुवारों के सरल और मधुर नीतियों को ना गाकर बाल्य- विमोह हो जाते थे। वह युग मयित के भावावेश का युग था और मयित ही उस युग की सबसे ऊँची बाबाजू थी। " किजली की चक्र " के समान बालुवारों का मयित- सन्देश समस्त दक्षिण भारत के कोने २ में पहुँच गया। बालुवारों द्वारा प्रचारित मयित की धारा नवीं शताब्दी के बाद भी अव्याहत गति से प्रवाहमान रही।

फले कहा जा चुका है कि इठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल तमिलु- साहित्य के इतिहास में मयित- काल के नाम से अभिहित है। तमिलु को छोड़कर भारत की प्रायः सभी आधुनिक भाषाओं का विकास नवीं शताब्दी के अनन्तर ही हुआ है। दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी मयित-साहित्य का बाविर्भाव अधिकतमः नवीं शताब्दी के पश्चात् ही हुआ है। नवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं - सत्रहवीं शताब्दी तक के साहित्य को मध्ययुगीन साहित्य की संज्ञा दी जाती है। तमिलुत्तर समस्त भारतीय आधुनिक भाषाओं के मयित- साहित्य का

काल इस मध्य युग में ही पड़ता है। यह देता जा चुका है कि बड़ी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक मलित का जो शक्तिशाली बान्दोलन तमिल- प्रदेश में चला, उसने तमिल में उच्च कोटि के मलित- साहित्य को जन्म दिया। तमिल के इस मलित- साहित्य ने दक्षिण की अन्य संगीत भाषाओं के मलित- साहित्यों को प्रभावित किया हो, इसमें वास्तव्य की बात तनिक भी नहीं है। बालुवारी के पन्नात् जाने- वाली भाषाओं की परंपरा ने मध्ययुग में मलित- बान्दोलन को देश व्यापी बना दिया, जिसके फलस्वरूप भारत की विभिन्न भाषाओं में मलित- साहित्य का निर्माण हुआ। तमिल- प्रदेश में बड़ी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में जन- बान्दोलन के रूप में जिस मलित- बान्दोलन के दर्शन होते हैं, ठीक उसी प्रकार के मलित-बान्दोलन की काफी मध्ययुगीन तमिलेत्तर समस्त भारतीय भाषाओं के मलित- साहित्यों में मिलती है। इस प्रकार बालुवारी का मलित- साहित्य "प्रबन्धम्" मलित- बान्दोलन का मूल ग्रन्थ ठहरता है। हमारा उद्देश्य यह स्थापित करना नहीं है कि भारतीय भाषाओं के मध्य-युगीन, मलित- साहित्यों को प्रभावित करनेवाला एक मात्र स्रोत "प्रबन्धम्" है। कई अन्य स्रोतों ने भी प्रभावित किया होगा। परन्तु "प्रबन्धम्" का जो प्रभाव अन्य साहित्यों पर मलित- बान्दोलन के मूल ग्रन्थ के रूप में पड़ा है, वह निर्विवाद है, चाहे तो वह प्रभाव <sup>असाकाल रहा हो,</sup> चाहे उस प्रभाव के माध्यम ~~आत्मन्~~

१- " इस प्रकार प्रबन्धम् मलित-बान्दोलन का जादि ग्रन्थ बन गया। अभी तक भागवत पुराण ही मलित- बान्दोलन का मूल ग्रन्थ समझा जाता है। किन्तु, हमारा अनुमान है कि इस बान्दोलन का मूल ग्रन्थ भागवत नहीं, प्रबन्धम् है। यह इस कारण कि यद्यपि भागवत और प्रबन्धम्, ये दोनों ग्रन्थ, एक ही समय में लिखे गये, फिर प्रबन्धम् की बहुत सी कवितारें दूसरी- तीसरी सदी से प्रचलित चली आ रही थीं। साथ ही, यह भी विचारणीय है कि प्रबन्धम् की कवितारें जनता की मलित-साधना की सीधी अभिव्यक्ति हैं। किन्तु भागवत की रचना साहित्य के स्तर पर की गयी है। प्रबन्धम् मलित बान्दोलन का मूल- ग्रन्थ क्यों माना जाय, इसका संकेत भी भागवत ही देता है। क्योंकि उसका भी मत है कि मलित का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था। "

- संस्कृति के चार अध्याय - श्री रामधारीसिंह दिनकर पृ० २६८ द्वितीय संस्क०

रहा हो, या बँक हों। "प्रबन्धम्" के बहिलय शक्तिसासी बाजार- पता और विचार- पता से प्रभावित बाजार्यों द्वारा चलाये गये विभिन्न मभित- संप्रदाय तथा उनके अन्तर्गत रहित मभित- साहित्य इसके प्रमाण हैं।

मध्ययुगीन मभित- साहित्य को विशेषकर कृष्ण मभित- साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के तत्वों का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करना ही यहाँ हमारा उद्देश्य है। इन तत्वों का प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण- मभित- साहित्य पर भी देखा जा सकता है, जिसका विवेचन बागे के अध्यायों में किया जाया। "प्रबन्धम्" मभित- प्रधान ग्रन्थ है। उसके प्रणय के मूल में भी मभित का प्रारंभ ही था। मध्ययुगीन मभित- साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के मभित- तत्वों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :-

१- सामान्य तत्व

२- विशिष्ट तत्व

सामान्य तत्वों के अन्तर्गत हम उन तत्वों को लेंगे जिन्होंने सामान्य रूप से मध्ययुगीन भारतीय- मभित- साहित्य को प्रभावित किया है। विशिष्ट तत्वों के अन्तर्गत हम मध्ययुगीन कृष्ण मभित- साहित्य को प्रभावित करने वाले तत्वों को विशेष रूप से लेंगे। सामान्य मभित- तत्व तो सगुण मभित साहित्य के अन्तर्गत ही नहीं, बल्कि निर्गुण मभित- साहित्य के अन्तर्गत भी न्यूनाधिक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ये तत्व भारतीय मभित- साहित्य में केवल "प्रबन्धम्" से ही गये हैं, यह बात नहीं है। "प्रबन्धम्" भी स्वयं वेद तथा गीता से प्रभावित है। परन्तु "प्रबन्धम्" का महत्व इस बात में है कि उसने मभित बान्दीजन के विशिष्ट सन्दर्भ में इन तत्वों पर सर्वाधिक जोर दिया और उन्हें मभित के आवश्यक तत्व बताये।

१- केवल मभित- तत्वों के वर्गीकरण के विषय में डा० विश्वनाथ शुक्ल के "मध्य- युगीन कृष्ण-मभित- साहित्य को प्रभावित करनेवाले श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्व" नामक लेख से सहायता ली गयी है।

- अमिनवमारी - बलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी-संस्कृत विभाग की शोध-पत्रिका ५० ई-८५



इन सामान्य तत्वों में परवर्ती भक्ति-साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कुछ तत्वों को प्रमुख रूप से ली :-

- १- भक्ति का सर्वोपरि महत्व
- २- नाम महिमा
- ३- स्तुति
- ४- शरणागति कृपा प्रपत्ति
- ५- गुरु महिमा
- ६- चर्तन
- ७- वैराग्य

### १- भक्ति का सर्वोपरि महत्व-

भारतवर्ष में ब्रतिप्राचीन काल से संसार-दुःख से छुटकर भुक्ति-लाम करने के तीन प्रधान मार्ग प्रचलित रहे हैं :- ज्ञान मार्ग, कर्म-मार्ग, और भक्ति-मार्ग। देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार कभी किसी मार्ग का प्राधान्य रहा है, और कभी किसी का। बालुवार भक्तों के समय तक ज्ञान-मार्ग और योग मार्ग ( कर्म मार्ग ) जन साधारण के लिए असाध्य जान पड़ने लगे थे। बालुवार भक्तों ने भक्ति-मार्ग को इतना आशावादी और सुगम बना दिया कि लोगों ने इसे बड़ी सरलता से अपना लिया, यहाँ तक कि कर्म और ज्ञान मार्गों में भी भक्ति को साध्य रूप में प्रविष्ट कर लिया गया। " कर्म और भक्ति, ज्ञान के साथ साध्य-रूप भक्ति और योग के साथ गुरु की ब्रह्मा-रूप में भक्ति, इस प्रकार अन्य मार्गों में भी भक्ति का समन्वय हुआ। स्वतंत्र रूप से तो भक्ति मार्ग इतना प्रचलित हुआ कि इसकी लहर ने दक्षिण से उठकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत को बाप्ला-वित कर दिया। "

"प्रबन्ध" में भक्ति की महत्ता सर्वत्र धी-धौन की गई है। सभी बालुवारों ने भक्ति को ही भुक्ति-लाम का एक मात्र उपाय बताया है। जो

भक्ति नहीं करता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। पेरियाल्वार ने यहाँ तक कह दिया है कि जो भक्ति नहीं करता, वह अपनी माता के गर्म को कलंक पहुँचाता है<sup>१</sup>। सांसारिक दुःख से छूटकर परमानन्द प्राप्त करने के लिए योग, तप इत्यादि सब व्यर्थ है। केवल भक्ति ही कैकुण्ठ-प्राप्ति करा सकती है। भक्ति ही परण को जीत सकती है। अपने शरीर को नाना कष्ट पहुँचाकर किन्ध्रियों को जलाकर कठिन तपस्या करने की आवश्यकता नहीं। वन में जाकर पैलाग्नि मध्य बैठकर योग में लीन रहने से भी कोई प्रयोजन नहीं है। भक्ति मात्र के उदय होने से सारा बलेश दूर हो जाता है।

बालुवारों के अनुसार भगवान् में अनुरक्ति ही भक्ति है। भगवान् का स्मरण मात्र करने से वह भक्त के हृदय में वास करने लगता है। भक्त सतत भक्ति में ही लीन रहना चाहता है। भक्ति से जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है। बालुवारों के अनुसार भक्ति का कल भक्ति ही है। भक्ति प्राप्त होने के पश्चात् किसी भी बात की आवश्यकता नहीं होती। उसे पूर्णा-नन्द का लाभ होता है। कृष्णल्वार ने यहाँ तक कह दिया है— " " है, भगवान् । मैं स्वर्ग की इच्छा नहीं करता, केवल तुम्हारी भक्ति करने रहने की मेरी कामना है। अतः बालुवारों के अनुसार भक्ति साधन ही नहीं, बल्कि साध्य भी है। स्पष्ट

१- पेरियाल्वार तिरुमोली ४ : ४ : २

२- नानमुल्लन तिरुवन्तादि ७६

३- ऊनवाडा उण्णाडु उयिर कावलिट्टु

उडल्लि पिरियाप्पुल्लैडुम नोन्दु

ताम्माडा वाडा तवम् त्रेय्यैटा

- पेरिय तिरुमोली ३ : २ : १

४- कायोडु नीडु कनिर्कुट्टु, वीयु

कडुकाळ नुन्दु, नेळुकाळम् सेन्दु

वीयोडु निन्दु तवम् त्रेय्यैटा

- पेरियतिरुमोली ३ : २ : २

५- तिरुमालै २

६- देतिए, तिरुवायमोली - ३ : ३ : १- ८

है कि बालुवारी ने भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है। मध्ययुगीन भक्त कवियों ने भी भक्ति को ही सर्वाधिक प्राधान्य प्रदान किया है और ऊपर दिये हुए बालुवारी के विचारों को दुहराया है।

## २- नाम महिमा-

भक्ति के साधन में भगवान् के अनेक नामों में से किसी भी नाम के स्मरण, कीर्तन तथा श्रवण का बालुवार भक्तों ने भारी महत्व बताया है। बालुवार भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि भगवान् के सहाय नामों में से किसी भी एक का सदा मन में स्मरण तथा ध्यान करने से, जिसका वह उसका कीर्तन-गायन करने से और उसका कानों से श्रवण करने से मन, वाणी और कर्म द्वारा होने वाले समस्त पापों का नाश होता है, मन में पवित्र भाव भर जाते हैं और भक्ता की वृद्धि हो जाती है। भक्ता से भगवान् की सेवा में संलग्नता आती है और उससे भगवान् की भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति से सत्व गुण की वृद्धि होती है और तत्त्व का साक्षात्कार होता है, तदनन्तर मोक्ष मिलता है। तिरुमो बालुवहार अपने एक गीत में कहते हैं - " मैं ने उस "नारायण" नाम को पहचान लिया है जो पवित्रता ( जन्मा कूल ) प्रदान करने वाला है। वह धन देने वाला है, भक्तों के कष्टों और दुःखों को दूर करने वाला है, भगवान् का अनुग्रह प्रदान करनेवाला है, शक्ति प्रदान करने वाला है, जन्म देने वाली माता से भी अधिक स्नेह (प्रेमता ) दिखाने वाला है, वह कल्याण प्रदान करने वाला है। " पेरियालुवार का सुकाव

१- " कूलमतस्म चैत्वम् तत्तिट्टम्

वडियार प्पु डयरायिन्वेल्ताम्

निलन्तर्त्तियुम् नीलुविट्टुम्पु वरुलुम्

वरुलोट्टु पेरिनिलमत्तिक्कुम्

वलन्तरुम् मट्टुम् तन्निट्टुम्

वेट्टा तायिक्कुम् वायिन्नेयुम्

नलन्तस्म नील्लै नान कण्टु कौटिन

नारायणावेन्नुम् नामम् "

- पेरिय तिरुमोली १ : १ : ६

है कि बच्चों को भगवान्, सहाय नामों से रक्ष को रक्षता चाहिए । नाम की महिमा अनन्त है। भगवान् का नाम बच्चों को रखने से उन्हें बुराये समय भगवान् का स्मरण भी हो सकता है। इस तरह भगवान् के नामों का उच्चारण सर्वत्र हो सकेगा ।

प्रायः सभी बालुवारों ने नाम की महिमा गायी है । नाम महिमा पर बालुवारों के कुछ विचार नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं । ( विस्तार भय से उद्धरण संक्षेप में ही दिये गये हैं । )

“हमारे पापों और दोषों को “नारायण” नाम विज  
की तरह मार डालता है।”

“ सुन्दर मनश्याम भगवान् का नाम लेने वाला कभी नरक नहीं पहुँच सकता । ”

उद्धार होगा। \*\*

“ जो भगवान् का नाम- स्मरण करता है, वह उसे स्वर्ग तक पहुँचावेवाला है, स्वर्ग उसका पुरस्कार है। ”

“जो ‘‘नवीनारायणा’’ नाम का उच्चारण करता है, उसकी इच्छा पूरी हो सकती है ?”

- १- पेरियाल्वार ने वनों को भगवान् के विभिन्न नाम रखने का उपदेश देते हुए दस  
पद लिखे हैं । पेरियाल्वार तिरुमोली ४:६:१-१०
- २- " नैतान कंटोर नम्मुट्टय विनैवकु  
नारायणावेन्दुम् नामम् " - पेरिय तिरुमोली १:१:१०
- ३- कण्णुक्कु वनिय करुमुक्किल वण्णन् नाम्मे  
नण्णुमि नारायणन् तम वन्ने नरक्कु पुक्काल । "
- पेरियाल्वार तिरुमोली ४:६:७
- ४- नामम फलवोली नारायणावेन्दु  
नाम्मायल तोलुमु नन्नै ।
- मूढाम् तिरुवन्तादि ८
- ५- ज्ञान-ताल नन्दुर्णन्दु नारायणन तन नाम्मात्तु, पुण्डियर-ताल नन्दुर्णन्दु वन्दे ०४४००  
तानत्ताल म्बवन पोन्नादिनाल वानत्तु - । इरटाम तिरुवन्तादि २
- ६- बौद्धाम तिरुवन्तादि , ६५



“ भगवान् का नाम सज्जनों को वादान स्वरूप है। भगवन्नाम को भूलनेवाले को मैं मनुष्य की कोटि में मान नहीं सकता । ”

“ भगवान का नाम- स्मरण करने से जो आनन्द जाता है, उसकी अपेक्षा मुझे इन्द्र लोक पर शासन करने का अधिकार मिल भी जाय, उसे नहीं दूंगा । ”

“ भगवन्नाम की शक्ति से हम यमराज के सिर पर सवार हो सकते हैं । ”

“ भुक्ति के लिए सुख शब्द भगवान् के नाम के अतिरिक्त कुछ नहीं । ”

“ भगवान् के नाम का उच्चारण करने से नरक भी स्वर्ग में परिणत होगा । ”

कहने की आवश्यकता नहीं कि बालवार्त्तों ने भगवन्नाम- नाहा- त्तम्य पर विशेष जोर दिया है। मध्यकालीन भक्ति- साहित्य में भी भगवन्नाम की अनन्त महिमा की प्रतिष्ठा हुई है। निर्गुण मार्ग के संत तथा सगुण मार्ग के भक्त दोनों ने मुक्त कंठ से भगवन्नाम की अमोघ शक्ति का वर्णन किया है। डा० हजारी

१- अन्तुर्वै तविरयानपोय इन्द्रिलोकमातुम्

अन्तुर्वै परितुम वैटेन वरगमानमरुदुने । ” - तिरुमाले २

२- नावलिट्टु उरुि वरु किंदामे नाम तमर वल्लु मीदै,

मृत्तुलैण्डुमितुन्दमुदत्वा । निर्न नामम् कट्टा ।

- तिरुमाले १

३- “ जैविकिन्पम् वावतुम नैरुणाल नामम् ”

- नाममुक्कन तिरुवन्तादि ६६

४- “ नमतुम मुर्त्तुतुम पेना नरफिल निन्द्राकल केट्टका

नरुमे स्वर्गमाहुम नार्त्तुटैय नम्बी ”

- तिरुमाले , १२



प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है - " मध्य युग के भक्तों में भगवान् के नाम का माहात्म्य बहुत अधिक है । मध्य युग की समस्त धर्म-साधना को नाम की साधना कहा जा सकता है । चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों चाहे निर्गुण मार्ग के, नाम जप के बारे में किसी को सन्देह नहीं । इस प्रकार सब सागर में एक मात्र नाम ही नौका रूप है ।

### ३- स्तुति-

भगवत्- स्तवन भक्ति का ही एक प्रधान का माना गया है । जाते होकर भगवान् की असीम शक्ति, भगवान् की भक्त वत्सलता तथा भगवान् के श्रेष्ठ गुणों का बारंबार स्तवन करने से भक्त की परम शान्ति का अनुभव होता है । स्तुति की परंपरा तो वैदिक ऋषियों से मिलती है। संस्कृत में तो उक्त कोटि की स्तोत्र-साहित्य उपलब्ध होता है ही । कीर्तन- भजन भी इस श्रेणी में आते हैं । भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य, लीला, धाम, तथा भगवद् भक्ति के यह का प्रेम और भक्ता के साथ कथन, स्तुति, उक्त स्वर से पाठ तथा गान कीर्तन कहलाता है । भक्ति शास्त्र के ज्ञानार्थी ने इस साधन को भी परमानन्द प्राप्ति का एक उपाय कहा है और इसकी बहुत प्रशंसा की है ।

बालुवारीयों के समस्त पद एक प्रकार से स्तुति-गीत ही हैं । जैके दस्तकों में पूरे का पूरा भगवद्-स्तवन ही है। भगवान् के श्रेष्ठ गुणों और उनकी महिमा का कथन कर भक्त अलौकिक-वानन्द प्राप्त करता है। भक्त भगवान् की महिमा गाना ही अपना परम धर्म समझता है। वास्तव में बात यह है कि बालुवार भक्तों ने अपने अधिकार गीत विभिन्न मन्दिरों में विभूषित भगवान् के वर्ण-वत्तार-रूपों की स्तुति में गाये हैं । अतः उनके अधिकार गीत स्तुति परक हैं । भक्त भगवान् को कितने ही नामों से संबोधित कर, उसकी कितनी ही लीलाओं की प्रशंसा कर स्वयं परम सुख का अनुभव करता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि

१- मध्यकालीन धर्म साधना- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ५

२- वाङ्मय और वल्लभ संप्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त पृ० ५६२

बालवारों के स्तुति-गीतों ने भक्तों पर बड़ा ही प्रभाव डाला था। वैष्णव-मन्दिरों में आज भी उनके स्तुति-गीत गाये जाते हैं।

नम्माळ्वार, तोंडरडिपोडीयाळ्वार, पेरियाळ्वार और कृत्तेश्वराळ्वार के बनेक पद भगवत् स्तुति परक हैं। कृत्तेश्वराळ्वार की संस्कृत रचना "मुहन्दमाला" तो श्रेष्ठ स्तोत्र ग्रन्थ है ही। संस्कृत के स्तोत्र ग्रन्थों में "मुहन्दमाला" का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान् की स्तुति करने में भक्त को कितना आनन्द आता है। मुहन्दमाला से दो श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं :-

“ जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं  
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिर्वरप्रदीपः  
जयतु जयतु मेघ श्यामलः कोमलांगो  
जयतु जयतु कृष्णो मारुताद्यो मुहन्दः ” १

“ वनन्त वैकुण्ठ मुहन्द कृष्ण  
गोविन्द दामोदर माध्वेति  
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्षित कश्चित्  
कहो जनार्ण व्यसनामि मुख्यम् ” २

बालवार भक्तों ने भगवत्-स्तवन की बड़ी आवश्यकता बताया है। भूतत्ताळ्वार का कथन है कि भगवान् की स्तुति करने वाले ही जीते हैं। भगवान् के गुणों की, लीलाओं की स्तुति करना ही तप करने के समान है। ये राजा कृत्तेश्वर भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होकर उनकी स्तुति करना ही सबसे

१- मुहन्दमाला- कृत्तेश्वराळ्वार - संपादक एम० बी० बी० के० रंगारारी (काकोनाडा)  
पृ० १

२- वही पृ० ७

३- बलीयाळ्वार बाल्वरामायो- वलुविन्द्री  
नारणन तन नार्कल नन्हुणन्दु एत्तुम । ”

- इरटाम तिरुवन्तादि २०

४- एत्ति पणिन्दवन पेर ईमूरुम् एपोलुन  
चार्ति यूरत्तल तवम् - ।

- इरटाम तिरुवन्तादि ७७

श्रेष्ठ सुख मानते हैं<sup>१</sup>। पेरियाल्वार का कहना है कि जो जिह्वा भगवत्-स्तवन न करे, उससे क्या प्रयोजन है। नम्पाल्वार ने कहा है कि<sup>२</sup> "स्तुति के योग्य केवल भगवान् ही हैं। मैं मनुष्यों की स्तुति करने वाले मुर्खों में नहीं हूँ। हे कवि ! तुम सर्वेश्वर शक्तिशाली गुण-निधान भगवान् की स्तुति करो।"<sup>३</sup> पौय्ये वाल्वार ने कहा है कि मेरा मुँह भगवान् के अतिरिक्त किसी दूसरे की स्तुति नहीं करेगा।

वाल्वारों के स्तुति-गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संगीत का समावेश है। संगीत का प्रभाव विश्व व्यापी है। मनुष्य ही नहीं, पशु संसार भी संगीत के मुग्धकारी प्रभाव से वंचित नहीं है। वाल्वारों के स्तुतिपरक भक्ति-गीतों को गाते-गाते भक्त बहुधा आनन्दातिरेक से नाच उठते थे। भक्ति के साथ संगीत तथा संगीत के साथ भक्ति, दोनों का एक दूसरे के सहारे बहुत प्रचार हुआ है। डा० दीन दयालु गुप्त जी के शब्दों में "हंसा की सातवीं तथा आठवीं शताब्दियों में, जब दक्षिण भारत में शिव और विष्णु की भक्ति के मार्गों का पुनरुत्थान और प्रचार हुआ, उस समय यह कार्य धार्मिक गीतों ( वाल्वार भक्तों के तमिल-गीत-प्रबन्धम् ) द्वारा अधिक मात्रा में हुआ। भक्ति के प्रचार के साथ इन शताब्दियों में संगीत प्रियता बृद्ध हुई। तमिल भाषा में उस समय के संगीत के बहुत से नमूने अब भी सुरक्षित हैं। उत्तरी भारत में भी दक्षिण का धार्मिक प्रभाव आया और भक्ति आन्दोलन के साथ संगीत का भी मान बढ़ा। तात्पर्य यह है कि वाल्वारों के स्तुति-गीतों ने मध्ययुगीन भक्त-कवियों को बहुत ही प्रभावित किया है। मध्य युग में कीर्तन-मञ्जन की जो परंपरा चल पड़ी, उसका मूल श्रोत वाल्वारों का "प्रबन्धम्" है। मध्य युग के हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों ने भी गीतात्मक

१-"एत्ति इन्पुरुम तौंटर सेवडी एत्ति वाल्वत्तुमेन्ने-मे" - पेरुमाल तिरुमोली २:४

२- पेरियाल्वार तिरुमोली ५:१:१

३- तिरुवायमोली ३:६:१, १-१०

४-"वाय ज्वनेयत्तु वाल्वत्ताडु - बौद्धान् तिरुवन्तादि ११

५- अष्टशाय और वल्म संप्रदाय- डा० दीनदयालु गुप्त पृ० ५६४

हेली को अपनाया और भगवत्-स्तवन में गीत प्रस्तुत किये ।

#### ४-शरणागति या प्रपत्ति-

बादुवारों के लोक पदों पर "शरणागति तत्त्व" पर विशेष जोर दिया गया है। आत्म दोनों पर पलायन प्रकट करना, अपनी बाधयहीनता का अनुभव करना, भगवान् की ही एक मात्र सहारा समझना और उदार की प्रार्थना करते रहना ही प्रपत्ति या शरणागति है। गीता में श्रीकृष्ण का कथन है :- "हे, भारत । सब प्रकार उस परमेश्वर की ही शरण जा । तू उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति को और शाश्वत स्थान को प्राप्त होगा ।" शरणागति में भगवान् का अनुग्रह विशेष अपेक्षित है। यद्यपि भक्ति और प्रपत्ति दोनों में भगवान् के अनुग्रह और प्रेम का प्रकर्ष होता है और दोनों का फल भगवान् ही है, तथापि दोनों में अन्तर यह है कि भक्ति में साधन विशेष का स्वीकार है, प्रपत्ति में साधनानुष्ठान का स्वीकार नहीं है, केवल भगवान् का

१- तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वं पापम्यो मोहादिष्यामि मा ह्वयः ॥ ६६ ॥

- भगवद्गीता - अध्याय १८



स्वीकार है। प्रपत्ति में भगवत्सेवा, भगवान् के नाम जप कीर्तन आदि विषेध नहीं, लेकिन ये कार्य आवश्यक भी नहीं हैं। सामान्य रूप से शरणागति तत्त्व के अन्तर्गत स्व दोषों का प्रकाशन, भगवान् की भक्तवत्सलता पर दृढ़ विश्वास, उद्धार की प्रार्थना, भगवान् से शरण की याचना, आत्म-समर्पण आदि का रूप में आते हैं। आत्म-दोष तथा अपनी वर्तित्वता का

१- भक्ति और प्रपत्ति का अन्तर समझाते हुए श्री २० गोविन्दाचार्य ने अपने ग्रन्थ

“ शिवान्न विरहम वाक प्राविद्ध सेन्दुः ” पृ० २०७-२०८ में लिखा है :-

“ One is by Bhakti or loving Him with all energy of one's own will ; the other by Prapatti or loving him with all the force derived from God Himself when the aspirant has resigned his own will and dispensations of Providence. In the former case (Bhakti) God does not bind Himself to save, whereas in the latter case (Prapatti), He binds Himself to save. Conditions for the former (Bhakti) are untiring devotion and unceasing worship & c., on the part of the creature — the use of self-will ; whereas conditions for the latter (Prapatti) are implicit trust and effacement of self-will and proneness to the complete operation of God's will alone. The former (Bhakti) is a slender stream of love proceeding from puny efforts, a creature is capable of producing in his heart ; and this is necessarily subject to many accidents ; but the latter (Prapatti) is the mighty flood of grace pouring down from God the Creator, nothing withstanding the rush of the torrent. ”

२- “ पांचरात्र ” की सप्तमी संहिता में प्रपत्ति के ३: कीर्तों का इस प्रकार वर्णन

है :-

“ आनुकूल्यस्य संकल्पः प्राप्तिरुत्पत्त्यस्य कर्मम् ।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्यत्वेवर्णं तथा ।

आत्मनिर्दोषकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः । ”



प्रकाशन करते हुए, अधिमान के त्वान, दीनता तथा आत्म निवेदन सहित भगवान् से शरण पाने की बातें पुकार के कितने ही पद बालुवार से भक्तों ने लिखे हैं। तिरुमोली बालुवार ने आत्मदोषों का प्रकाशन कर करुणा कलित शब्दों में भगवान् की शरण की याचना की है। उनके कुछ पदों का सार देखिए :-

“ मैं दुःखी हूँ, चिंतित हूँ, व्याकुल हूँ। सांसारिक मोह-  
जाल में फँकर मैं कितने ही स्वर्ण दिन खो दिये हैं। ——— विजय की कामना कर,  
नखर पदार्थों की इच्छा कर, नारी के मोह-जाल में फँकर, चंचल मन से कितने दिन  
मैं ने नष्ट कर डाले। अब क्या करूँ ? हे भगवान् ! मैं बीर हूँ, कष्टावरण करने  
वाला हूँ, मनवाने मार्ग पर चलनेवाला हूँ, दिशाहीन हूँ, लक्ष्यहीन हूँ। — अब आपकी  
दया की कामना करता हूँ। ——— ( पेरियतिरुमोली , १:१: ३-५ )

“ नारी सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे ही आश्वत सुख सम्पन्न  
कर मैं मुँह बन बैठा। — मैं अब सज्जित हूँ। — आपकी शरण में आया हूँ। ”  
( पेरियतिरुमोली , १:६:१ )

“ हे भगवान् ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे स्वीकार  
करो। ”

“ हे, करुणानिधान ! अब मैं मैं आपके पास आया हूँ।  
इस बर्खिन की रक्षा करो। ”

पेरियालुवार ने जो पदों में आर्त-पुकार की है, हे, हे, भगवान्  
मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करो। ”

तोंडरडीमोडी बालुवार के शब्द तो हृदय की द्रवित करने वाले  
हैं। तड़पते हुए भक्त हृदय की करुण-पुकार इन पदों में सुनाई पड़ती है :-

१- “ वण्णा ! वन्तहन्तेन वडिथेन वाट्कोटुरुवाये ”

- पेरियतिरुमोली १:६:६

२- “ वड्देन वन्तहन्तेन वडिथेन वाट्कोटुरुवाये ”

- पेरियतिरुमोली १:६:६

३- “ वण्णसि ! नी एन्ने काळक्कैट्टुम् ”

- पेरियालुवार तिरुमोली ४:१०:६

“ मेरा अपना कोई घर नहीं, ” अपनी जमीन नहीं  
और पूजनेवाला कोई बन्धु भी नहीं । फिर भी हे करुणामूर्ति ! इस पार्थिव  
जीवन में बाकी चरणों की सुदृढ़ शरण में मैं नहीं ग्रहण की । हे धनस्याम, भगवान् !  
जब तौ मैं मारी अन्दन करता हूँ । कोई है मुझे अवलम्ब देनेवाला ? ”

“ मेरे मन में थोड़ी सी भी अविव्रता नहीं, मुँह से एक भी  
हित वचन नहीं निकलता । क्रोध के कारण मैं द्वेष - बुद्धि का दमन नहीं कर  
पाता हूँ । किन्तु दुबरे पदावादियों पर बुरी दृष्टि डालकर बहुवचन बोल देता  
हूँ । हे तुलसीमाता- धारी ! मेरी गति अब क्या हो सकती है ? कहिए, मुझ  
पर शासन करनेवाले महाशत्रु ! ”

कृष्णरावल्लभ ने भगवान् की शरण को ही एक मात्र सहारा  
माना है । वे कहते हैं :- “ मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूँ । तुम्हारी शरण के

१- “ ऊरिल्लेन काणियिल्ले उखुम्होरुवरिल्ले  
पाखिल निनपादमूलम् पद्रिल्लेन परममूर्ति ।  
कारोलीवण्णने । कण्णने । कदरुप्पिद्रिन  
वारुल्लर ? कल्लेण बम्मा । वरंमानाहत्ताने । ”

- तिरुमावि . २६

२- “ मण्डित और तुष्मेयिल्ले वायिल्लोर इन्तोत्तिल्ले  
चिनचिनाल चेद्रम नोवकी तीविली वनमात्ता  
पुनपुलायमालियाने । पोन्नीप्पुत्तिरुवराणा ।  
सन्धु इति गति येन्तोत्ताय ? रन्नीयाळ्टे कोवे ।

- तिरुमावि - ३०

शिवा और कोई शरण नहीं । ——— इस प्रकार माता के कृद होकर त्यागने पर भी शिवा माता के प्रेम पर ही बाधित है, उस प्रकार, हे, भगवान् मैं बाप ही के अनुग्रह पर बाधित हूँ । ”

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट हुआ होगा कि बालुवारों ने शरणागतित्व पर कितना जोर दिया था । बालुवारों की विचारधारा की पृष्ठभूमि में मननेवाले श्री रामानुजसम्प्रदाय<sup>२</sup> में बने चलकर शरणागति या प्रपत्ति तत्व को लेकर शास्त्रीय स्तर पर मतभेद हुआ । एक पक्ष के लोग भगवान् के अनुग्रह को सहेतुकी मानने लगे और दूसरे पक्ष वाले उसे निर्हेतुकी मानने लगे । प्रथम पक्ष वाले ” वल्लभे ” और द्वितीय पक्षवाले ” तेन्कलै ” कहलाने लगे । ” तेन्कलै ” पक्षवाले अपने सिद्धान्तों के विशेष आधार ” प्रबन्धम् ” को मानते हैं । ” तेन्कलै ” वालों की प्रपत्ति सम्बन्धी मान्यता को बिल्ली और उसके बच्चे के सम्बन्ध से वे और ” वल्लभे ” की मान्यता को बन्दर और उसके बच्चे के सम्बन्ध के उदाहरणों से साधारणतया समझाया जाता है। वास्तव्य की बात है कि श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में भी बालुवारों की वही निर्हेतुकी अनुकम्पावाली मान्यता स्वीकृत हुई है। डा० दीन दयाल गुप्त जी लिखते हैं — ” पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति का उदाहरण बिल्ली के बच्चे का दिया जाता है । बिल्ली का बच्चा अपनी माँ को नहीं फड़वा । बिल्ली ही जहाँ जाती है, बच्चे को मुँह में बूटकाकर ले जाती है, तथा उसकी रक्षा के लिए सदैव उसके पीछे फिरा करती है। उसी प्रकार भगवान् भी बलवत्, दीन, उपासीन

१- ” तरुत्तयाम् तटायित उन शरणत्ताल शरणिल्लै  
विरे कृत्तुम मत्तर्पोल्लि चूल विद्वन्कोट्टम्माने ।  
वरिविनत्ताल उन्निनाय कद्रिटिनुम मद्रवत्तन  
बहुल निन्देयम् कृत्तुवियुवे पोन्निहन्देने । ”

— पैरुमाडु तिरुमोली ५ : १

२- प्रस्तुत प्रबन्ध के ” बालुवारों के प्रति श्री रामानुजाचार्य का दृष्टा<sup>३</sup> शीर्षक वाले परिशिष्ट में ( परिशिष्ट ४ ) इस विषय का विस्तार से विवेचन है।  
देखें ।

प्रपन्न शरणागत की रक्षा के लिए अपने कार्य और धर्मों को भी त्यागकर उनके पीछे फिरा करते हैं।”

सारांश यह है कि बालुवारों के शरणागति-तत्व ने पर-वर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत प्रभावित किया है।

### ५- गुरु महिमा-

बाध्यात्मिक साधन के सभी मार्गों में गुरु की आवश्यकता और उसकी महिमा का गायन हुआ है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों, चाहे निर्गुण-मार्ग के संत हों, चाहे हठयोगी साधक हों, चाहे सूफी प्रेमी सभी ने मुक्तकंठ से बाध्यात्मिक साधना में गुरु की आवश्यकता मानी है। गुरु बाध्यात्मिक जीवन का पथ-प्रदर्शक है। ज्ञान-विमिर में गुरु ज्ञान-दीपक है। गुरु की सहायता के बिना मन की मल दूर नहीं हो सकती और परमात्मा की प्राप्ति कर्तव्य है। गुरु की कृपा बाल्या की परमात्मा से मिलने के रास्ते पर से जानेवाली है। गुरु ईश्वर के सदृश्य वादरणीय है। कुछ भक्तों ने तो गुरु को ईश्वर से भी अधिक पूज्य बताया है। बालुवारों के अनेक पदों में गुरु की महिमा गायी गई है। मधुर कवि बालुवार की एक मात्र रचना “कण्ठानुगविहताहु” का कर्ण्य-विषय ही गुरु-भक्ति है। सद्गुरु की शोभ में मटकने वाले मधुरकवि नम्यालुवार को गुरु-रूप में पाकर अपने जीवन की धन्य समझते हैं। वे गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ मानते हैं और गुरु की सेवा को अपना परम धर्म मानते हैं। उनका मत है कि गुरु भगवद्-स्वरूप है। उसे अपना शरीरादि सर्वस्व निवेदन करते हुए, सर्वदा अनुगमन करते हुए अत्यन्त तुच्छ सेवक के समान दिन-रात गुरु की सेवा में लीन रहना चाहिए। गुरु सेवा से सर्वेश्वर सन्तुष्ट हो जाते हैं। मधुर कवि ने अपने कथन से ही नहीं, बल्कि अपने कर्मों द्वारा भी गुरु-भक्ति की महिमा साबित की है। मधुर कवि गुरु की स्तुति में कहते हैं :-

“गुरु(नम्यालुवार) का नाम लेते ही मेरी जिह्वा लपट



का वात्सल्य या ज्ञानन्द प्राप्त करती है।<sup>१</sup>”

“ वेद के गुरु से गुरु तत्वों को गुरु ने मुक्ति सलता से सम्पन्न किया। श्रेष्ठ गुरु ( नम्माळ्वार ) की दासता स्वीकार कर मैं अपनी को धन्य सम्पन्नता हूँ।<sup>२</sup>” “ गुरु में वास करनेवाले दोनों को गुरु (नम्माळ्वार) ने दूर किया। मैं श्रेष्ठ गुरु की महिमा <sup>दिशा-</sup> दिशा में फैला दूंगा। मैं गुरु की कृपा की याचना करता हूँ।” ( कण्णानुण विरुत्तावु” - ७ )

“ परियाळ्वार ने यहाँ तक कह दिया है कि “ निर्मल तथा सद्गुणों से विमुक्त गुरु की कृपा पाकर उनके निर्देशानुसार भगवान् की स्तुति नहीं करनेवाला अपनी माँ के गर्म को कलंक पहुँचाता है।”

नम्माळ्वार ने भी गुरु की महिमा पर जोर पक लिखे हैं। चाहे गुरु किसी भी निम्न जाति का हो - “ चाँडाल” क्यों न हो - गुरु की महिमा अवर्णनीय है और उसकी सेवा करनी चाहिए।

१- “

नण्णिणै नृरुनूर नम्बीयेन्दुकाल  
अण्णिणकृम वमुदुरुम एन्नाउक्की । ”

- कण्णानुण विरुत्तावु , १

२- “

मिक्क वेदियर वेदुत्तुप्पोरुल  
निर्म्मपाडी एन्नेत्तुल निरुत्तिनान  
तक्कपीर अट्कोपन एन्मिक्कवु वाल  
मुक्कादल वडिम पयैन्दु । ” वही , ६

३-

परियाळ्वार विरुत्तावु - ४:४:२

४- “

कृलम तांगु जात्तिल नात्तिलुम कीत्तितिन्दु एत्तै  
नलन्दानित्तल वण्डाल वण्डालकलत्तात्तिलुम  
वत्तन्दांगु चक्क एत्तण्णल मणिवण्णवु वात्तेन्दु उल  
कत्तन्दार वडियार तम वडियार एम्मडियारुत्तै । ”

- विरुत्तावु ३ : ७ : ६



मधुर-कवि जैसे वयोवृद्ध ब्राह्मण का निम्न जाति के युक्त नम्माळ्वार को गुरु- रूप में पूजन करना उस युग में एक शान्तिकारी घटना कल्प्य रही होगी । स्पष्ट है कि बाल्वार मन्त्रों ने गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने साथ ही साथ मनुष्य की पहचान जाति से नहीं कर मन्त्रित वीर ज्ञान के बाजार पर मानकर जाति- भेदों को मिटाने का सर्व प्रथम प्रयत्न किया है । श्री रामानुजाचार्य के समय में भी बाल्वारों की उदारवृत्ति का प्रभाव समाज पर पड़ा । मन्त्रित के क्षेत्र में गुरु- शिष्य के बीच जाति- भेद को न माननेवाले बाल्वारों के उच्च वाद्यों ने जनता पर बमिष्ट प्रभाव डाला । इस कारण निम्न जातियों का जो सामाजिक उद्धार सम्भव हो सका, वह भारत भूमि में निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व रखता है। मध्ययुगीन मन्त्र कवियों ने भी गुरु- मन्त्रित की आवश्यकता बतायी है वीर जाति- भेद को मिटाने का सन्देश दिया है।

#### ६- सत्संग-

सत्संग मन्त्रित की उत्पत्ति एवं विकास के लिए बहुमत वातावरण उपस्थित करनेवाला अन्तिम साधन माना गया है वीर बहुधा सत्संग वीर साधुसंग को उसके रूप में ग्रहण किया जाता है। मन्त्रित- धर्म में सान्त्व निष्ठा की रखने के लिए साधु समाज में आवश्यक है। ज्ञान, योग वीर तप की तरह मन्त्रित में स्थायी साधना नहीं होती, वह व्यक्तित्व- धर्म ही नहीं है, समाज- धर्म है । सांसारिक विषयों के प्रलोभनों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे समाज में रहा जाए जहाँ मन्त्रित- विरोधी परिस्थितियाँ नहीं हों । साधु- महात्माओं के साथ बैठने से वात्मा को शान्ति मिलती है, उनके उपदेशों से लोक- विषय का हास होता है। उनकी सेवा वीर उत्कृष्टता से भगवान् के ज्ञान का साक्षात्कार होता है। गीता में श्री कृष्ण का कथन है : " जो मन्त्रित जन निरन्तर मुझ में मन

---

१- "..... the social uplift of the lower classes, to which it has led is of great value in the History of India" — "Out lines of Indian Philosophy, Prof. Hirananna, page 413.

लगाकर मुक्ती को प्राणों का वर्णन कर सदा भरी चर्चा करते हैं तथा बाफ में बोध-विनिमय करते हैं, वे नित्य सुखी रहते हैं और निरन्तर मुक्त रहते हैं।<sup>१</sup>”

बालुवार भक्तों ने सत्संग को भगवत्-प्राप्ति का उद्धार मानकर सर्वदा भक्तों के समाज में विराजने का वादित दिया है। कृष्णराजुवार ने अपनी राज-भोग को भी त्यागकर भक्तों की मंडली में जा मिलने की अपनी तीव्र उत्कंठा प्रकट की है।

“वयं सम भगवान् की स्तुति कर, भगवान् की अपने इस वन्तःकरण में धारण कर, भगवान् का गुण गान कर नाचते नाचते एक जाने वाले भक्तों के मंडल में जा मिलने का सम्भाग्य मुझे कब प्राप्त हो ?”

“भगवान् की दिव्य लीलाओं का गानकर वानन्दाशु बहाकर, बहुधारा से मीगनेवाले भगवान् के मन्दिर के प्रांगण में नाचने वाले श्रेष्ठ भक्तों की चरण धूलि की अपनी चेहरों पर लगाऊंगा।”

“निरन्तर वानन्दाशु बहाकर, वात-फुहार कर पुलकित होकर, भगवान् की स्तुति कर नाच उठने वाले भक्तों की कोई पागल कह बैठे तो कहनेवाला ही पूर्णरूपेण पागल है।”

१- “मच्चिता मृगतप्राणा बोध्यन्तः परस्परम् ।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।

- गीता दशम अध्याय, श्लोक ८

२- “तेष्टेरुन्दिरल तेनिनै तेन्नरगने तिरुमादुवाल ।

वाट्टमि वनमालै मारुनै वावलि माल कोल चिन्तैयराय ।

वाट्टमे विस्तन्तैतु कर्मेस्तुम मेय्यदियारुत्तु तम

ष्टैय कष्टिद्वहमेत कुरुणुम कण पक्कावते ।”

- पेरुमाल तिरुमोली २: १

३- “वारु पोत वरुम कण्णनीर कोटु वरुन कोयि तिरुमुद्रु

चेरु चैय तौडर चैवडी चैतुमेरु स चैन्निवकणि वने ।”

- पेरुमाल तिरुमोली २: ३

४- पेरुमाल तिरुमोली २ : ६

भवतों के बीच में ऊँच - नीच - भेद के लिए कोई स्थान नहीं है । वे तो भगवान् के भक्त होने के कारण समान हैं। तोंडखीपीडी बालु-वार ने कहा है :- “ दोष रहित जीवन बिताकर भगवान् के ध्यान में सर्वदा लीन रहने वाले ( मते ही नीच कुल के क्यों न हों ) अगर शुद्ध भगवद् भक्त हैं तो उनकी पूजा करो , उनकी सेवा करो । उनकी संगति करो । क्योंकि वे भगवान् के समान स्तुत्य हैं । —”

साधु- संगति के वादे के साथ साथ बालुवारी ने हरि-विमुक्त लोगों के संग- त्याग का भी उपदेश दिया है। कुलसराखार ने लिखा है :-

“ इस सांसारिक जीव को शाश्वत ( वास्तविक ) मानकर जहाँ में लीन रहने वालों से मैं संघर्ष संगति नहीं करूँगा<sup>१</sup> । ”

“ ( फतली कमर वाली ) सुन्दर स्त्रियों के प्रेम- पाश में फँदे रहनेवालों से संगति नहीं करूँगा । ”

“ मन की मेल को दूर कर, ईर्ष्यादि दुर्गुणों को त्यागकर, पवित्रियों की काबू में रहकर सर्वदा भगवत्- स्तवन में लगे रहनेवाले तथा विशुद्ध भक्तों के दर्शन कब कर सँ ? ”

१- “

इति कुलजन्मैस्तुम सम्पदियार्कताभित  
तोषुमि कोहुमि कोणमि रेन्दु —”

- तिरुमाले , ४२

२- “ भयुयिल बालुक्कैयै भयुयै कोल्लुम्  
वैयन्तन्नीटुम कुलुवदिल्लै यान । ”

- पेरुमाल तिरुमोली ३: १

३- वृत्तिनेरिळियार तिरुै निर्हुम  
बालन्तन्नीटुम कुलुवदिल्लै यान । ”

- वही ३:४

४- पेरुमाल तिरुमोली १: ७

मध्ययुगीन भक्त कवियों ने भी अपने अनेक पदों में सत्संग के महत्व को प्रकट किया है। हिन्दी के अष्टादशी कवियों ने भी सत्संग-अहिंसा भक्तक और भगवान् की स्तुति तथा हरि विमुक्त-रंग- त्याग के भावों को प्रकट करने वाले अनेक पद लिखे हैं।

### ७- वैराग्य-

भक्ति- पथ के पथिक के लिए सांसारिक विषयों को तथा उन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थों को त्यागकर उनके प्रति वैराग्य- भाव रखना परमावश्यक है। पूर्ण ज्ञान या पूर्ण- ज्ञानन्द- अवस्था में तो संसार के राग- ऐश्वर्यों से, अपने आप छुटकारा मिल जाता है। परन्तु साधन- अवस्था में वैराग्य के अभ्यास की आवश्यकता होती है। जब तक मनुष्य का मन सांसारिक विषय वाचनादि में लीन रहता है, तब तक वह ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता। वैराग्यवान् के लिए अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से छटाना अनिवार्य है। जब इन्द्रियाँ बल में नहीं हैं, तो कैसे अभ्यात्मक विद्या प्राप्त हो सकती है ? वास्तव में भक्तों का कहना है कि जो ऐन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है, वही श्रेष्ठ भक्त है, सफल साधक है। क्योंकि ऐन्द्रियाँ ही मनुष्य को सांसारिक बन्धन में सर्वदा डाले रखती हैं। ऐन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना भक्ति की साधना के लिए प्रथम सोपान बताया गया है।

मनुष्य को ईश्वरोन्मुख होने में बाधा डालने वाले अनेक पदार्थ हैं जिन पर विजय प्राप्त करना ही वैराग्य है। जब मनुष्य नखर शरीर से सम्बन्ध रखने वाले गृह, धन आदि को मोहक शालग्राम मान बैठता है। वह अपने घर- बार, स्त्री, पुत्र, पत्नी, धन और बन्धु- बान्धवों में अत्यन्त आसक्त होकर अपने को माय्य- वान् सन्नत समझ लेता है। उनके मरण- मोक्ष की चिन्ता में सर्वदा डूबा रहता है। दुर्वासनाओं को अब भी नहीं छोड़ता। दिन- रात उसी में रत रहता है।— बन्त में जब उसकी भक्ति जीवित हो जाती है और मृत्यु समीप आती है तब जाकर उसकी



बातें सुनती हैं। बुढ़ापा उसके लिए कष्टमय हो जाता है। वह रो पड़ता है। तब वह जाकर भगवान् की शरण में जाता है। बालूवार भक्तों का कथन है कि बुद्धिमान मनुष्य इस नाशवान् सांसारिक सुख-मोग के प्रति पहले से ही वैराग्य-भाव धारण करता है, क्योंकि वह जानता है कि इसी कबने पर ही सर्वव्यापक कल्याण-प्रकाश मिल सकता है।

पादश बालूवारों में कुछ अपने प्रारम्भिक जीवन में सांसारिक विषय-वासना में लीन रहे। परन्तु जब उन्हें मातृम पड़ा कि वे सब पदार्थ नश्वर हैं, तो वे उन सबका त्यागकर वैरागी हो गये। कुल्लुसराबुवार तो राजकीय सुख-मोग तक की तिलांजलि कर घर-बार छोड़कर वैरागी बन गये। तिरुमई बालूवार जो चोरी, लूट, छेड़ती जैसे कुकृत्यों से धनोपार्जन करते थे, तबानक भगवद् प्रेरणा पाकर सब कुछ त्यागकर वैरागी हो गये। बालूवारों की जीवनीयां यह स्पष्ट बता रही हैं कि वे सब सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य-भाव रखते थे और वे दूसरों को भी सांसारिक मोह-जाल में पड़ने से बचने का कानि का आदेश दिया करते थे।

बालूवारों के पदों में वैराग्य के कौन साधनों में निम्नलिखित विषयों का विशेष रूप से निरूपण हुआ है :-

- (क) ऐन्द्रियाँ पर विजय
- (ख) नारी के मोहक रूप की निन्दा
- (ग) कर्म-निन्दा
- (घ) शरीर की नश्वरता का बोध

#### (क) ऐन्द्रियाँ पर विजय-

ऐन्द्रियाँ मनुष्य को गुमराह करनेवाली हैं। ऐन्द्रिक सुख प्राप्त करने की कामना से ही मनुष्य बन्धाय करने को भी तैयार हो जाता है। संसार में होने वाले सभी कर्मों के कारण ऐन्द्रियाँ ही हैं। इन ऐन्द्रियों को सुख पहुँचाने के हेतु नाना पाप कर बैठता है और ईश्वर चिन्तन से विमुक्त हो जाता



है। बालुवारों के अनेक फलों में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने का आदेश मिलता है। इन्द्रिय-दमन की अध्यात्म-पथ के पथिक के लिए अनिवार्य श्रुत के रूप में बताया गया है। सभी बालुवारों ने स्मृत से घोषणा की है कि पैंन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले साधक को भगवान् के दर्शन मिलेंगे<sup>१</sup>। उनका कथन है कि पैंन्द्रियों के द्वार को बन्द करने से ज्ञान का द्वार खुल सकता है। पैंन्द्रियों की तुलना पाँच राजाओं की गयी है, जो मनुष्य को लू के गड्ढे में डालकर पीसते हैं<sup>२</sup>। मनुष्य को

१- "वरियपुलनेन्तटक्की वायमलर कोण्डु वावम्

पुरिय परिशिनाल पुत्तिकल-----

----- स्ट्रान्काण्डु एत्तिडु ।"

- बौद्राम् तिरुवन्तादि , ५०

२- "वरिन्दुऐन्दुम उल्लटक्की वायमलर कोण्डु वावम्

वैरिन्द मनधिराय वैवै- वरिन्दु ववन त्त

पेरोदियैतुम पेहन्दवत्तोर काण्परे

कारौद वण्णन कल्ल ।"

- इष्टाम तिरुवन्तादि , ७ तथा

मून्द्राम तिरुवन्तादि , १२

३- "पुन्पुल वलियैतु वरविकलच्चिने वैवै

नन्पुल वलितिरिन्दु ज्ञान नुंडर कोत्तिवै ---

- तिरुवन्दविहयम, ७६

४- "तीर मरुन्दिन्नी ऐन्दु नोयहम वैविकलिन्दु तिरिवकुमःस्वैर

वैर मरुगुडेवावडेणु वैविल्लुपानो विकिन्दाय ---

- तिरुवाय मोली ७:१:५

इन्द्रिय-स्त्री इन राक्षसों पर विजय प्राप्त करती है, सभी कव्यात्म-का पर  
जिता किसी रोक-टोक के बाधक जा सकता है ।

### (स) नारी के मौलिक रूप की निन्दा-

भारतीय साहित्य में नारी की गणना परम पुणित मातृ-  
शक्ति के रूप में की गई है । परन्तु नारी का मंदिर यौवन रूप मनुष्य को कव्यात्म  
का से आयात ही विमुक्त कर देने वाला है। इस कारण मन्त्रित-साहित्य में उसके  
मौलिक रूप की निन्दा की गई है। मन्त्रित-साहित्य में नारी के मादक रूप की ज्वाला  
से साधक को निरन्तर तन्त्रे रहने का आदेश दिया गया है । तिरुमोलीवाल्वार ने  
पञ्चात्मप के रूप में कहा है :-

“ मुनयनी महिलाओं के रूप-बाल में पड़कर, अपने कर्तव्य  
को भूलकर मैं नरक-दुःख भोगने के पाप किये हैं । ”

“ मधुर मुस्कानवाली रमणियों के सुन्दर स्तनों पर मोहित  
होकर— नव यौवनाओं के संभोग-सुख के पीछे पड़ा रहा । — अब मैं तन्त्रित हूँ । ”

१- “ मानेय कणमल्वार मयधिकल पट्टु मानित्तु  
नाने नानाविध नरकम् पुट्टु पावम् वेळ्लेन ॥ ”

- परिय तिरुमोली , १ : ६ : २

२- “ वाणिला मुरुवल विरुन्दल पेरुन्दोत्त  
मादरार वनमुलेप्पय्यो  
पण्णिनेन ज्वने पिल्लेयन्करुदि  
पेदैयै पिरदि नोयहप्पान  
रणिलेन इरुन्देन रण्णिनेन रण्णि  
वैय्यार कलविप्पि तिरु  
नाण्णिनेन ————— ”

- परिय तिरुमोली १:६:१

### (ग) कर्म-निन्दा-

मनुष्य को ईश्वरोन्मुख होने से विमुख करने वाला एक प्रमुख बाधक धन है। मनुष्य कर्म के लोभ में पड़कर कितना कर्म कर बैठता है। मनुष्य जब तक यह ज्ञान नहीं पाता कि धन नाशवान् है, अस्थायी है, तब तक वह धन के मोह को नहीं छोड़ सकता। धन भगवान् के दर्शन से उसकी बाँधों को बन्द करकेता है। कर्म के प्रति अनाकर्षण वैराग्य की ओर उन्मुख होगा। कृष्णराजवाड़ तथा तिरु-मल्लिकार्जुन ने अपार धन-राशि को त्यागकर भगवद्-भक्ति प्राप्त की। नम्मा-लवार का कथन है कि मनुष्य को यह समझना चाहिये कि राजकीय सुख भी अस्थायी है, धन भिड़ जाने वाला है। नम्मालवार के अनेक पदों में कर्म के मोह को छोड़ने का आदेश है।

### (घ) शरीर की नश्वरता का बोध-

बालुवारी का कथन है कि जार मनुष्य अपनी देह की नश्वरता और संसार की क्लेशता का परिचय प्राप्त करे तो वह अवश्य वैराग्य युक्त जीवन की ओर उन्मुख होगा। तिरुमल्लिकार्जुन बालुवार का प्रश्न है :-

“ यह जानकर भी कि बाण वहीं तो कल उस संसार को छोड़ना ही पड़ेगा, मूर्ख मनुष्य क्यों उस देह के मोह में पड़े रहते हैं ? ” नम्मालवार

१- “ वडिवेर मुडियिराकि वस्वरुत्त ताम तौला  
उडि चेर मुरसंगल मुदियम्ब इरुन्दवर  
पोडिवेर तुल्लाय पोवारुत्त ————— ”

- तिरुवाय मोली ४ : ७ : ३

२- “ इन्दु चादल निन्दु चादल वन्द्री यारुम वैय्यतु  
वोन्द्री निन्दु वालुदलिन्यै कण्डुम नीचर एन्कीली ? ”

- तिरुच्चन्दविरुत्तम , ६६

के अनेक पदों में संसार की अज्ञातता तथा मनुष्य-देह की नश्वरता का बोध कराया गया है और उनमें वैराग्यपूर्ण जीवन बिताने का सन्देश है। तिरुमोळी बालुवार ने अपने अनेक पदों में बुढ़ापे की कष्टपूर्ण दशा का चित्रण कर यह वादेश दिया है कि बुढ़ापे का कष्ट भोगने के पहले ही मनुष्य को वैराग्ययुक्त जीवन बिताकर भवित-कर्म पर बाह्य होना चाहिए।

मध्ययुगीन मन्त्र-कवियों ने भी वैराग्य पर जोर दिया है और उसे अध्यात्म-कर्म के पथिक के लिए अनिवार्य साबित किया है। हिन्दी के अष्टादशी कवियों ने भी वैराग्य धारण करने का वादेश दिया है।

ऊपर जिन तत्त्वों का हमने संक्षेप में विवेचन किया है, वे सामान्य रूप से मध्ययुगीन समस्त भवित-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्व हैं। भवित-बान्दोत्तन के विशिष्ट सन्दर्भ में बालुवार मन्त्रों ने ऊपर विवेचित भवित-तत्त्वों पर य विशेष जोर दिया था। बालुवारों की विचार धारा से प्रभावित होकर फलने वाले श्री रामानुज संप्रदाय वादि भवित-संप्रदायों में ये तत्त्व न्यूनाधिक रूप में स्वीकृत हुए हैं। विभिन्न भवित-संप्रदायों के अन्तर्गत काव्य-रचना करने वाले (१६ वीं शती के) हिन्दी कृष्ण-मन्त्र कवियों ने भी उन तत्त्वों को अपने भवित-काव्यों में स्थान दिया है और उन्हें <sup>भक्ति-</sup>कर्म के आवश्यक साधनों के रूप में स्वीकार किया है।

### 'प्रबन्धम्' के विशिष्ट तत्त्व-

'प्रबन्धम्' जहाँ विद्वद् भवित के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत करता है, वहाँ वह काव्य की कसौटी पर भी उत्तम ग्रन्थ साबित होता है। बालुवार मन्त्रों ने 'प्रबन्धम्' में भवित-तत्त्वों के बीच-बीच में अपने वाराहयदेव

१- " वंदेति संपु वंदुक्कण्डु इरान

वंदेति वदेन्दु वंदुक्क उल्लै । "

= तिरुवायमोली १:२:७

विष्णु के विभिन्न अवतारों की और उनकी अनन्त लीलाओं का भी गायन किया है। 'प्रबन्धम्' ने भक्ति-बान्दोलन के विशिष्ट संदर्भ में भक्तों की मानसिक पिपासा की पूर्ति के लिए शुष्क भक्ति-तत्त्वों के अतिरिक्त अवतारी विष्णु की विभिन्न लीलाओं का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया था। भक्तों ने प्रबन्धम् में वर्णित भगवल्लीलाओं में 'ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द' का भी रसास्वादन किया था। प्रबन्धम् में वर्णित विविध भगवल्लीलाओं तथा उनके काव्योचित चित्रण ने परवर्ती भक्त कवियों को बहुत ही प्रभावित किया है।

प्रबन्धम् में विष्णु के सभी अवतारों का न्यूनाधिक रूप में वर्णन मिल जाता है। बालवाराँ के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में मनुष्यों के उद्धार के निमित्त अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अधर्म फैल जाता है और ब्रह्म बन्धकार पृथ्वी को कवलित करता है, तब कृपासिन्धु भगवान् अपनी कृपा को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। नम्पालवार ने यहाँ तक कह दिया है कि अपने ही अक्षुप्त अग्नित जीवों को अपना दर्शन-सुख प्रदान करने के निमित्त भगवान् अवतार लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बालवाराँ ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देता। फिर भी विष्णु के दो अवतार-रामावतार और कृष्णावतारों में वे उनको विशेष रूप से अफर्षित किया। इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन जितना रमा, उतना रामावतार में नहीं। श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने ऐसा सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है, मानों उन्होंने स्वयं उन लीलाओं का अवलोकन किया हो। उनके कोमल, भावुक और कवि-हृदय ने कृष्ण लीलाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति की भाव-भूमि देखी। अतएव उन्होंने लीलानाटक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का संपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया और उनके भाव-पौरुषाच्छन्द रूप से काव्य-व्योम में उड़ सके, जिससे कि उच्च कोटि के सरस कृष्ण काव्य का निर्माण उनके द्वारा हो सका।

प्रथम अध्याय में हम बता चुके हैं कि कृष्ण से सम्बन्धित अनेक कथाओं की जन्म-भूमि तमिल-प्रदेश है। ईसा की प्रारम्भिक सताव्दियों में जबकि गीता द्वारा प्रचारित भागवत-धर्म का दक्षिण की ओर आगमन हुआ, तब कृष्ण-



चरित में तमिल प्रेरित के बाल-देवता मायोन से सम्बन्धित कौन कथाएँ मिल गयीं । विष्णु के अवतार- रूप में श्री कृष्ण की प्रतिष्ठा हुई और उनकी विविध लीलाओं का जन-मानस में प्रसार हुआ । बालुवारों की कृष्ण-सम्बन्धी कौन कथाएँ प्राचीन पुराणों से मिलीं । साथ ही साथ बालुवारों ने लोक में प्रचलित कौन कथाओं की कृष्ण-चरित में मिला दिया । कल्पा का भी सहारा लेकर उन्होंने उन कथाओं में वर्णित नाना लीलाओं का काव्योचित चित्रण अपने मूलित काव्य में प्रस्तुत किया ।

प्रबन्धम् में कृष्ण-चरित क्रम बद्ध रूप से नहीं दिया गया है । स्मरण रहे कि "प्रबन्धम्", एक व्यक्तित्व की रचना नहीं है। चौथी-पाँचवीं शताब्दी से लेकर बाठवीं-नवीं शताब्दी तक के दीर्घ काल में विभिन्न समयों में अन्त-रित मन्तों के फलों का संकलन है । अतः उसमें कृष्ण चरित को क्रम-बद्ध रूप में प्राप्त करने की बाधा नहीं की जा सकती । यहाँ प्रसंगिक रूप श्रीमद्भागवत पुराण के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं । क्योंकि भागवत पुराण की साध-रणतया मध्ययुगीन कृष्ण-मूलित-साहित्य का आधार ग्रन्थ माना जाता है। भागवत में कृष्ण-चरित क्रम बद्ध रूप में वर्णित है । उसमें मूलित तत्त्वों का शास्त्रीय विवेचन हुआ है। यहाँ कुछ प्रश्न उठ सकते हैं । क्या प्रबन्धम् भागवत से प्रभावित है ? भागवत का रचना-काल क्या है ? क्या भागवत प्रबन्धम् से प्रभावित है ? श्रीमद्-भागवत के रचना-काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । अधिकतर विद्वान् उसे नवीं शताब्दी के बाद की रचना मानते हैं<sup>१</sup> । कौन विद्वान् श्रीमद्भागवत का कई दृष्टियों से परीक्षणकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह अवश्य नवीं शताब्दी या उसके पश्चात् की रचना है और उसकी रचना दक्षिण भारत में हुई थी । डा० हरबंस साह जी चर्मा लिखते हैं :-<sup>२</sup> "यदि श्रीमद्भागवत पुराण की हम नवीं शता-

१- (i) C. V. Vaidya, JBRAS (1925) 144 ff.

(ii) R. G. Bhandarkar, "Vaishnavism, Saivism ....."  
page 49.

(iii) Pargiter, "Ancient Indian Historical Tradition"  
page 80.

(iv) Farquhar, "Outline of Religious Literature of India"  
page 229. ff.

(v) Winternitz, "Indian Literature", vol. I p. 556.

बुद्धी की रचना मानें और उसका दक्षिण- देश में लिखा हुआ स्वीकार करें तो उस समय की धार्मिक परिस्थितियों के ठीक मत में श्रीमद्भागवत का विषय उत-रता है । श्री श्रीराचार्य जी का बत- मत प्राचीन भागवत- धर्म का पोषक था । मन्त्रि- पद्धति में जिन नवीन तत्वों का समावेश बालुवार और बहियार मन्त्रों के संपर्क से बढ़ रहा था, उनको श्रीराचार्य जी ने अपने मत में कोई स्थान नहीं दिया और न ही उन्होंने मन्त्रि को सर्वोपरि माना । श्रीमद्भागवत पुराण में उसके विरोध में ही मन्त्रि की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। श्रीमद्भागवत पुराण में इस बात का उल्लेख है कि कलियुग में नारायण के मन्त्र कहीं- कहीं होंगे, परन्तु द्वाविड़ देश में, जहाँ कि ताम्रपर्णी, कृतमाला, कावेरी और महानदी नदियाँ बहती हैं, विशेष रूप से होंगे । इन नदियों के जल का पान करने वालों के हृदय शुद्ध होंगे, सबसे फटा चलता है कि भागवत- पुराण की रचना के समय ताम्रि देश में कृष्ण मन्त्रि का पर्याप्त प्रचार हो चुका ह था । ”

श्रीमद्भागवत एक ही व्यक्ति की रचना मानूम पड़ती है । इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। उसमें कृष्ण- कथा- क्रम- बद्ध रूप से वर्णित है और मन्त्रि-तत्वों का विवेचन सास्त्रीय स्तर पर हुआ है। भागवतकार ने अपने अपार पण्डित्य का परिचय दिया है। वह संप्रयत्न सजाया गया ग्रन्थ मानूम पड़ता है । परन्तु प्रबन्धम् के एक व्यक्ति की रचना न होने के कारण उसमें कृष्ण- कथा क्रम- बद्ध रूप से नहीं मिलती । फिर भी प्रबन्धम् में भागवत- वर्णित अधिकांश कृष्ण- सीलार्थ मिल जाती हैं । प्रबन्धम् में बिहारे पड़े मन्त्रि- तत्वों और कृष्ण- सीलार्थों को सुव्यवस्थित रूप में जयवा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाय तो प्रबन्धम् और भागवत के वर्ण्य विषय में विशेष अन्तर नहीं दीख पड़ेगा । डा० विनयेन्द्र स्नातक का भी कथन है कि भागवत पुराण में जिस कोटि की प्रसत्तिपरक मन्त्रि का विधान हुआ है उसके समान कोटि की मन्त्रि सातवीं शताब्दी के बालुवार मन्त्रों में प्रचलित थी । भगवान् का गुणानुवाद और सीला- वर्णन ठीक वैसा ही था वैसा

१- श्रीमद्भागवत ११।५। ३८- ४०

२- दूर और उनका साहित्य - डा० हरवंत लाल शर्मा पृ० १४० द्वितीय संस्करण

भागवत पुराण में है<sup>१</sup>। प्रोफेसर हुपर ने भी बाल्जार्नी की भक्ति-साधना को भागवत-पुराण के सम्बन्ध ठहराया है<sup>२</sup>। भागवत के कुछ कंठ को विद्वान् प्रशिक्षित भी मानते हैं। कुछ भी हो, हमें इतना कहना है कि वर्तमान रूप में श्रीमद्भागवत बाल्जार्नी के समय में नहीं था। यहाँ यह कहकर कि भागवत बहुत बाद की रचना है, वैष्णव-जनों के भक्ति-भाव को ठेस पहुँचाना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमें इतना कहना है कि अगर भागवत का वर्तमान रूप उस समय मिला होता तो बाल्ज-वार उससे अवश्य लाभ उठा सकते थे और अवश्य भागवत का अनुकरण कर इस नए रूप से कृष्ण-चरित प्रस्तुत करते। परन्तु ऐसा नहीं प्रतीत होता। उल्टे भागवत में कृष्ण कथा को व्यस्तस्थित रूप में और भक्ति का शास्त्रीय विवेक देखकर ऐसा अनुमान करना पड़ता है कि भागवतकार ने अपने ग्रन्थ को भक्ति के लक्षण ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना चाहा है और उसने किन्हीं अन्य श्रोतों को लक्ष्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया है। उन लक्ष्य ग्रन्थों में प्रबन्धम् भी एक हो सकता है। प्रबन्धम् के भक्ति-प्रधान पक्षों का प्रचार चौथी-पाँचवीं शताब्दी से होना, भागवत में प्रबन्धम् में वर्णित सभी विषयों का प्राप्त होना तथा भागवत की रचना का दक्षिण भारत में होना, हमारे अनुमान को और भी पुष्ट कर देते हैं कि भागवतकार को प्रबन्धम् की परंपरा से थोड़ा परिचय अवश्य था। प्रबन्धम् का बाष्पीपान्त कथ्यत करने से मालूम पड़ता है कि प्रबन्धम् के रचयिताओं को श्रीमद्भागवत से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं थी। प्रबन्धम् में ऐसी बहुत सी चीज़ें मिलती हैं जो भागवत में नहीं हैं। कृष्ण की कुछ सीताओं का भी वर्णन प्रबन्धम् में मिलता है, जो भागवत में नहीं है। भागवत में 'राधा' का उल्लेख भी नहीं है, परन्तु प्रबन्धम् में <sup>"नमिन्ने"</sup> ~~नमिन्ने~~ के नाम से राधा का ही वर्णन है। बाद के साहित्य में राधा-कृष्ण के लीलाओं का जो वर्णन प्राप्त होता है, वह पहले से ही प्रबन्धम् में है। तस्मिन् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पी० श्री० वाचार्य का मत है कि प्रबन्धम् में मिलने वाली परियायवार द्वारा

१- राधावत्सल संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डा० विजयेन्द्र सातक पृ० ३२

२- *Hymns of Alvars*, J. S. M. Hooper, Introduction, page 18.

वर्णित कृष्ण की ओर लीलाएँ भागवत पुराण से भी पूर्व की हैं।

प्रबन्धम् ने भागवत को कितना दिया, या प्रबन्धम् ने भागवत से कितना लिया होगा— इन बातों पर सुदृढ़ रूप से कुछ कहना दुस्तर कार्य है। चूंकि शताब्दियाँ बीत गयीं, अतः अब इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। फिर हमारा उद्देश्य यहाँ यह दिखाना भी नहीं है कि भागवत <sup>से</sup> प्रबन्धम् कितना प्रभावित है बल्कि प्रबन्धम् भागवत से कितना प्रभावित हुआ होगा। यह शोध का कोई दूसरा स्वतन्त्र विषय हो सकता है। हमें यहाँ कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित प्रबन्धम् के उन विशिष्ट तत्वों का सामान्य परिचय देना है, जिन्होंने परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया है। ये विशिष्ट तत्व दक्षिण की समग्र भाषाओं के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में ही नहीं, बल्कि दक्षिण में फलनेवाले विभिन्न भक्ति-संप्रदायों के माध्यम से उत्तरी भारत की भाषाओं के मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य तक में न्यूनाधिक रूप में स्वीकृत हुए हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रबन्धम् में कृष्ण-लीलाएँ वयः रूप से उपलब्ध नहीं होतीं। परन्तु प्रयत्न कर दृष्टि पर प्रायः सभी कृष्ण-लीलाओं का वर्णन यत्र-तत्र मिल जाता है। प्रबन्धम् में यत्र-तत्र वर्णित कृष्ण-लीलाओं की वयः रूप के अनुसार देने का प्रयास यहाँ किया गया है। कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन परियालवार ने बितनी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है, वह अविशेष है। इतने प्राचीन काल में (कठीन शताब्दी) परियालवार ने बाल-देवताओं का ऐसा सजीव चित्र वर्णित किया है जो बाल-मोक्ष का सुदृढ़ परिचय देता है। तमिल में परियालवार का बाल वर्णन एक वादक होड़ गया है, परवर्ती कवियों के लिए। कृष्ण की किशोर लीलाओं और गोपी-प्रेम का भी पर्याप्त विस्तार से वर्णन प्रबन्धम् में मिल जाता है। बालुवारी ने गोपी-प्रेम तथा विरह के वर्णन में तमिल की ओर काव्य-रुदिरों का उपयोग किया है, जिनका अनुकरण परवर्ती कवियों ने किया है। मध्ययुगीन कृष्ण-भक्त-कवियों ने विशेष रूप से बाल-

१- श्री श्री० श्री० बाबाय के “कृष्णावतार” नामक लेख। “तिरुक्कोयिल”

वाल्मुक २ इस्तु ८



कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का ही विस्तार से वर्णन किया है। श्री कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम का भी वर्णन प्रमुख रूप से मध्ययुगीन कृष्ण-मन्त्रि-साहित्य में मिलता है। ऐसे तो, मध्ययुगीन कृष्ण-मन्त्रि-साहित्य को प्रभावित करनेवाले अनेक विशिष्ट तत्त्व प्रबन्धम् में मिल जाते हैं, जिनको सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करना कठिन है। विस्तार-मय से सूक्ष्मता में नहीं जाकर प्रबन्धम् के उन विशिष्ट तत्वों को स्पष्ट रूप से ही निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत देते हैं :-

- १- श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ
- २- श्रीकृष्ण का अलौकिक रूप-माधुर्य
- ३- श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व
- ४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम-भावना
  - १) वात्सल्य भाव और
  - २) माधुर्य-भाव

#### (१) श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ-

(“ प्रबन्धम् ” में कृष्ण-लीलाएँ क्रम-बद्ध रूप में नहीं मिलतीं। किन्तु यहाँ पर्याप्त अध्ययनाय के पश्चात् प्रबन्धम् में छधर उधर मिलने वाली कृष्ण-लीलाओं को एकत्रित कर क्रम-बद्ध रूप से नीचे दे रहे हैं, जो लीलाएँ “ प्रबन्धम् ” में हैं और भागवत में नहीं हैं या कुछ भिन्नता के साथ हैं, उनका उल्लेख क्या स्थान दिया गया है।)

#### कृष्ण-लीला का सूत्रपात— अवतार रहस्य-

वाल्मीकि ऋषियों ने सर्वत्र श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में माना है। वाल्मीकि के अनेक पदों में विष्णु पद्मवान् के उद्गिर-सगर



वैभव का वर्णन मिलता है : “ विष्णु त्रेण नाग पर शयन कर रहे हैं<sup>१</sup>। उनके करों में शंख लोभित हैं<sup>२</sup>। श्री देवी और भूदेवी उनके पास विराजमान हैं<sup>३</sup>। विष्णु वीण - निद्रा में लीन हैं<sup>४</sup>। नारदादि मुनिजन वाय क्वाते हैं<sup>५</sup>। तुलसी माला वर्णित कर देवगण उनकी स्तुति करते हैं। मन्त्र और सिद्ध पुरुष उन्हें प्रकृति करते हैं<sup>६</sup>। यही विष्णु देवों की प्रार्थना पर पृथ्वी में कृष्णावतार लेते हैं। ब्राह्मणों ने ने कृष्णावतार के अनेक कारण बताये हैं :- देवलोक के देव गणों की वेदना को दूर करने के लिए पृथ्वी तथा पृथ्वी में रहने वाले मनुष्यों के उद्धार के लिए पृथ्वी के बोझ को कम करने के लिए भूदेवी के कष्ट को दूर करने के लिए देवगणों की

- १-“ मन्त्रिय नागवर्णमैत —” - पेरियतिरुमळ २  
 २-“ लुहराति शंख —” - पेरिय तिरुमोली २-१०-६  
 ३-“ तिरुमळन्तै मण्डन्तै —” - वही ३-१०-१  
 ४-“ उन्मिय वीगन्तु —” - पेरिय तिरुमळ ८  
 ५-“ तंबुलुवुम नारदनुम —” - पेरुमातु तिरुमोली १-५  
 ६-“ कोन्तलन्द नरन्तुलाय —” - पेरिय तिरुमोली २-१०-२  
 ७-“ मन्त्ररुतुम भगवरुतुम —” - पेरियाल्वार तिरुमोली ४-६-६  
 ८-“ विष्णोतु अमरर वेदनै वीर —” - पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-१६  
 ९-“ मण्णुय्य मण्णुलकित म्मुन्नरुय्य —” - पेरुमातु तिरुमोली १-१०  
 १०-“ पारिरुम पेरुम नास वीर —” - पेरिय तिरुमोली २-१०-८  
 ११-“ तुवरिक्कनिवाय निल्लै तुवर वीर —” - पेरिय तिरुमोली ८-८-६

प्रार्थना पर<sup>१</sup> बन्धु बान्धवों को सताने वाले कंस का वध करने के लिए, देवकी के किये व्रत का फल देने के लिए ( पिता ) वसुदेव के पैंरों पर<sup>२</sup> पड़ी शृङ्खला को तोड़ने अपने हः बन्धों को लो देने वाली माता के गर्भ को सकल बनाने, दरीर-सागर वाली श्री विष्णु का श्रीकृष्ण के रूप में अवतार हुआ ।

### श्रीकृष्ण का प्रारुभाव-

पुरातन नगर उत्तर मथुरा में<sup>६</sup> वसुदेव-पत्नी देवकी के पवित्र गर्भ से हस्त नक्षत्र के दसवें दिन श्री कृष्ण का जन्म हुआ । जन्म के समय ऐसा लगा मानों सहस्र सूर्य एक साथ उदित हुए हों । देवकी-पुत्र का वध करने के हेतु फैलाये गये कंस के क्रूर जाल से बचकर<sup>१०</sup>, उसी दिन पौर बन्धकार में बिपे बिपे कसु देव द्वारा नन्द गोप के यहाँ कृष्ण लाये गये । देवी महिला यशोदा के पुत्र के रूप में<sup>११</sup>, क्लराम के जन्म के रूप में<sup>१२</sup> गोपों के नाक के रूप में<sup>१३</sup>, गोशुल दीफ का

- 
- १- देवरीखक --- " - तिरुवायमोली ६-४-५
  - २- " बाधुवनन नलियुनन बातिप्पल्लु " - वही ३-५-५
  - ३- " एन्न नोन्नु नोद्राल कोलो --- " - पेरियाल्वार तिरुमोली २-२-६
  - ४- " तन्ने कालिल पेरु मिल्लु तालविल " - पेरिय तिरुमोली ७-५-१
  - ५- " ममकल बहवरे कल्लिडे मोद कलन्द --- " पेरियाल्वार तिरुमोली ५-३-१
  - ६- तायककुल्ल विलुक्कम वेयुय --- " तिरुण्णवै ५
  - ७- " मल्ले म्पुडर वड म्पुंरयिल --- " तिरुवाय मोली ६-६-६
  - ८- " कसुदेवर तम्पुडिय चित्तम पिरिया देवकी तन वयिट्टिल - पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-६
  - ९- कतिरायिरमिरवि कलन्देरिल्लोडु --- " वही ४-२-२
  - १०- " कंवन वलै वैव कारिरुल पिंल्लु " नाच्चियार तिरुमोली ३-६
  - ११- " देव नडो योयिक्कु पोन्न पेदे वल्लवियाम " - पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-१
  - १२- " कसुदेवर कील कन्द्राय --- " नाच्चियार तिरुमोली ४१-१
  - १३- " वायकल नाकनाय " - पेरियाल्वार तिरुमोली १-५-११
  - १४- " वायर पाळिक्कु वणि विल्लकाय - वही २-२-५

आविर्भाव हुआ ।

### कृष्ण का जन्मोत्सव-

पेरियाल्वार ने कृष्ण के जन्मोत्सव का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण के जन्म पर गोकुल में बड़ा हर्षोल्लास और कीलाहल हो रहा है। गोप-बन्धु-शिशु के दर्शन के लिए दौड़ रहे हैं, गिर रहे हैं और फिर उठकर दौड़ रहे हैं। बड़े उत्साह के साथ नन्द बाबा के यहाँ लोग जा रहे हैं मानों कोई अद्भुत वस्तु देखने जा रहे हों। कोई कहता है : "तो यह है, हमारा छोटा राजा।" कोई पूछता है "कहाँ हैं, हमारा बाल राजा?" कोई अपने जानन्द को बाणों में नहीं, बल्कि गाने में व्यक्त करता है, तो कोई नाचकर अपना जानन्द प्रकट करता है। अत्यधिक हर्ष में गवाले अपने यहाँ के घी, दही आदि को बीरों को बाँट देते हैं और खाली मटकों पर नाच उठते हैं। इनमें से हर एक अपने को मूल गया है। हर कोई संसार से नाता छोड़कर जानन्द में मस्त दीखता है। सारा गोकुल खेता दीखता है, मानों वह किसी विशिष्ट प्रेम-बाल में फँस गया हो। इस बातों देने की उत्कण्ठा से कोई जाता है तो कोई नन्द बाबा के घर जाकर पूछता है कि भो बाल राजा कहाँ हैं? शिशु को देखकर कोई कहता है कि हमने ऐसे सर्व-सुख लक्षण युक्त शिशु को कहीं नहीं देखा। कोई कहता है कि यह बालक संसार का शासन करेगा। कोई कहता है कि यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसे निराले शिशु और उसकी माँ के दर्शन कर सके। हाँदियों में सुगन्धित जल भर रहा है। हाथ मलकर देह भर हल्दी लेकर शिशु प्रेम से नहलाया है। "

१- पेरियाल्वार तिरुमोली - प्रथम दल

२- बीडुवार विलुवार उक्न्दातिप्पार

नाडुवार नैपिरान सुलानेन्पार

पाडुवारुत्तुम पत्पेर कोट्ट निन्दु

बाडुवारुत्तुम वायिदु वाय्प्पादिये । "

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-१-२

### नामकरण संस्कार-

गौकुलवासियों ने सब फिकर अपने घरों को तोरण इत्यादि से अलंकृत किया। कृष्ण के जन्म के बारहवें दिन वेद में निपुण पंडितों से "१" धन-स्याम । कृष्ण । श्रीधर । "२" आदि नामों से पुकार कर बालक का नामकरण संस्कार कराया गया। लोगों ने कृष्ण नाम से शिशु को प्रेमपूर्वक पुकार कर जटुत का सा आनन्द पाया।

### जन्य होतारं-

#### १- पुतना वध-

दुष्ट का नाश कर के द्वारा भेजी गयी राक्षसी एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर श्रीकृष्ण के प्रति अपने ही पुत्र का सा प्रेम-भाव दिखाने कर बिना भरे अपने स्तन से कृष्ण को दूध देने लगी। स्तन्य पान करने का कहाना कर कृष्ण ने भी दुरुद्देश्य से बायी हुई राक्षसी के अहङ्गपूर्ण भाव को समझकर, उसके वास्तविक रूप से परिचित होकर उसके प्राणों को पी लिया।

१- तिरुनेल्लुत्ताप्पलम - ३

२- पेरियाल्वार तिरुमोली १-१-४

३- तिरुवाय मोली ४-६-८

४- वही २-३-७

५- कण्णिगुल विरुत्तांबु २

६- पेरिय तिरुमोली ३-१०-७

७- वही ३-६-७

८- वही १०-४-७

९- हरण्डाम तिरुवन्तादि ८



२- छकट मीनन कवा छकटाचुर वध-

छकट के रूप में जानेवाले राक्षस का पाद प्रहार मारत वध ।

- तिरुवायमोली २-१-८

३- घुटनों और हाथों के बल रेंगकर विहार करना -

- परियालवार तिरुमोली १-४-१

४- पैर की उंगली को मुँह में लेकर चूमना-

- परियालवार तिरुमोली १-२-१

५- किंकिणी के निनादित होते धूल में खेलना

- परियालवार तिरुमोली १-५-६

६- चाँदी के लँगूर के समान दाँतों का निरुद्ध जाना - और  
बालक का खेलना-

- परियालवार तिरुमोली १-७-२

७- थोड़े बड़े होने पर बिना घुटनों की सहायता के पैरों चलना

- परियालवार तिरुमोली १-७-४

८- झूमते हुए बाकर माता को चुंबन देना

- परियालवार तिरुमोली १-५-२

९- तेल की हाँडियों को जमोन पर लुढ़काना -

- परियालवार तिरुमोली १-४-११

१०- बड़ों की पूँछ को फड़कुर घुमाना-

- परियालवार तिरुमोली २-४-८

११- बड़ों के कानों में चाँदियों को डालकर उन्हें डराना

- परियालवार तिरुमोली ३-४-२

१२- बिना गोदीहन के समय भी बड़ों को खोल देना

- परियालवार तिरुमोली २-४-७



- १२- बिना गोदौहन के समय भी बच्चों को लोल देना-  
- पेरियाल्वार तिरुमोली २-४-७
- १३- बालों को बन्दकर फलन साना और हाँडियों में रखे हुए  
दूध को मर फेट पीना -  
- पेरियाल्वार तिरुमोली २-४-६ तथा २-७-१
- १४- तीतली बीलीबोलना  
- पेरियाल्वार तिरुमोली १-६-४
- १५- चन्द्र सितांना - माँ से चन्द्र को फलकर देने की प्रार्थना  
करना  
- पेरियाल्वार तिरुमोली १-४-२

( यह लीला भागवत में नहीं है। डा० जगदीश गुप्त ने भी स्वीकार किया है कि पेरियाल्वार ने ही इसका वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि यह अलग अपौराणिक लोक प्रवृत्ति परंपरा के कारण कृष्ण की बाल झीडा के साथ समाविष्ट हुआ है । )

- १६- वृत्तिका मन्नाण - पेरियाल्वार तिरुमोली २-३-८
- १७- माता कौदा की मुल में ब्रह्माण्ड दर्शन कराना  
- पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-१८ और  
१-१-६

- १८- कृष्ण द्वारा माता को लीला दिखाना -  
- पेरियाल्वार तिरुमोली २-१-२

( यह भागवत में नहीं है। संभव है कि यह तथित लोक-कथा के आधार पर ही वर्णित है। छोटा बच्चा मुँह की विकृत रूप में कर विक्रि

१- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन - डा० जगदीश गुप्त पृ० ६६

बाबाय फेंकाकर माँ को डराने की चेष्टा करता है। इसे तमिल में "कूपुञ्जिवाट्टल" कहा जाता है। ) अन्य ग्रन्थों में कृष्ण को डराने के लिए हाऊ का वर्णन मिलता है।

- १६- स्तनपान छठ और माता द्वारा प्रेमपूर्वक स्तन पान करने के लिए कुलाना - पेरियालवार तिरुमोली २-२-३
- २०- नहाने के लिए कुलाना - पेरियालवार तिरुमोली २-४-२
- २१- कर्ण-वेदन संस्कार - पेरियालवार तिरुमोली २-३-४
- २२- दृष्टि-दोष परिहार के लिए कृष्ण के हाथों में कंकण बांधा जाना ( तमिल में इसको "काप्पिहृदल" कहा जाता है ) । - पेरियालवार तिरुमोली २-८-५
- २३- उल्टी पड़ी जोखी पर लड़े होकर मातन-चौरी  
- पेरियालवार तिरुमोली १-१०-७
- २४- ऊखल बन्धन - पेरियालवार तिरुमोली १-२-१०  
" " " ७-८
- २५- ऊखल की लीचिटे हुए जाना और दो वृद्धों को गिरा देना-  
- पेरियालवार तिरुमोली ३-३-३

( यह कथा कुछ भिन्नता के साथ अन्यत्र मिलती है। भागवत में कहा गया है कि यक्षाति कृष्ण के महीनत पुत्र नल कृष्ण और मणि ग्रीव को नारद के शाप से यमलार्जुन वृद्ध हो गये थे। कृष्ण ने उनका उद्धार किया। पेरियालवार उन वृद्धों में कुरावेश मानते हैं। )

- २६- गोप-वाल्मीकी के कंकण को चुरा ले जाना और उनसे फल तरीदना - पेरियालवार तिरुमोली २-६-६
- २७- दधि-पाहल और उसके बर्तन को मोटा देना- यह भागवत में नहीं है।

( जब यशोदा मात्स्य-चोरी के अपराध पर कृष्ण को पकड़ने दौड़ी, तो कृष्ण किसी घर के बन्दर छुट गये। उस घर में दधि-पाँख नामक ग्वाला रहता था। कृष्ण ने दधि पाँख से प्रार्थना की कि माता के प्रहार से उन्हें बचाने के लिए कहीं वह उन्हें छिपाये। दधि-पाँख ने कृष्ण की प्रार्थना पर उन्हें फिट्टी के एक बड़े बर्तन के बन्दर रख दिया। जब यशोदा ने भी उस घर के बन्दर बाहर पूछा कि कृष्ण वहाँ जाया कि नहीं, तब दधि-पाँख ने कहा कि कृष्ण वहाँ नहीं जाये। उस पर माता लौट गयीं। माता के लौट जाने की सूचना पाकर कृष्ण ने दधि पाँख से अपने को बर्तन से बाहर करने की प्रार्थना की। दधि-पाँख ने जब उसके लिए एक लत बनायी कि उसकी और कृष्ण को बड़ फँसाने के लिए सहायक सिद्ध होने वाली बर्तन की मोटा देने का वाक्य करने पर ही वह कृष्ण को बर्तन से बाहर करेगा। कृष्ण ने ऐसा ही किया। )

२८-

यशोदा से गोपियों की शिकायतें

- परियात्नार तिरुमोली २-१० से १-१०

२९-

कृष्ण के उत्तराम और अन्य बालकों के साथ बड़ों को डराने के लिए जाना - परियात्नार तिरुमोली १-३-२०, १-८-५  
और ३-२-१

३०-

हाँडियों से मत्स्य लाना और ताली ( फिट्टी के ) बर्तनों को जमीन पर पटक देना और उनकी आवाज़ सुनकर हँसना।  
- परियात्नार तिरुमोली २-६-१

३१-

गोचारण के लिए प्रथम बार वन जाना और माता का विलाप  
- परियात्नार तिरुमोली ३-२-१ और ३-३-२

३२-

वैशी ब्रजाना - परियात्नार तिरुमोली ३-६-१ से १०

३३-

विविध ढूँगार सजाकर वन में विहार

- नाच्चियार तिरुमोली १४-१ व १४-२

३४- वत्सासुर वध - यमुना के तट पर वत्सवारण के समय एक दैत्य बूढ़ों में बूढ़े का रूप धारण कर घुस जाया। कृष्ण ने उसे पूँछ सहित भिखी पर फाँड़कर वन्तरिदा में धुमाकर एक वृक्ष पर दे मारा।

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-६-४

३५- वत्सासुर वध- एक रूप धारण करके बार बार एक दैत्य ने कृष्ण को निगल लिया। किन्तु कृष्ण ने उसे चौंच चीरकर मार डाला। - पेरियाल्वार तिरुमोली २-५-४

३६- धनुःसासुर वध- वैतिरुच्चन्तविरुत्तम - ८०

३७- कालिय नाग के सिर पर नाचना - नाचियार तिरुमोली १२-७, पेरियाल्वार तिरुमोली २-१०-३

३८- कालिय दमन - पेरियाल्वार तिरुमोली ३-६-७ और ३-६-६

३९- प्रताप्यासुर वध

४०- दावान्त पान - पेरियाल्वार तिरुमोली ११-६-७ और तिरुवाय मोली ५-६-५

४१- वन भोजन - नाचियार तिरुमोली १२-६

४२- सीमातिकन को स्वर्ग देना - यह भागवत में नहीं है

( सीमातिकन कृष्ण का मित्र था। वह कृष्ण से उनके चक्र-युध को माँगता था। कृष्ण ने कहा कि उसे उसके हाथ में देने से पर वह उसके सिर को काट देगा। सीमातिकन ने शर्क प्रकट किया। उस पर कृष्ण ने चक्र को उसके हाथ में ड दिया तो चक्र ने सीमातिकन के सिर को काट दिया और वह स्वर्ग पहुँच गया ( कृष्ण के मित्र होने के कारण ) ।)

- पेरियाल्वार तिरुमोली, २-७-८

४३-

सात वृणमों को वल में कर कृष्ण का नप्यिन्ने को  
कन्या वृत्त के रूप में प्राप्त करना-

( तत्कालीन प्रथा के अनुसार सात वृणमों को कृष्ण ने वल  
में किया और नप्यिन्ने को प्राप्त किया । भागवत में एक  
दूसरी कथा है, जिसमें कहा गया है कि वयोध्या के नग्नचित्त  
राजा की पुत्री को कृष्ण ने सात वृणमों को वल में कर प्राप्त  
किया । )

४४-

वैष्णु-वाधुरी - परियालवार तिरुमोली ३-६-८

४५-

वीर हरण- नाच्चियार तिरुमोली ३-९

- परियतिरुमोली १०-७-९

४६-

“कुरन्द” फेड़ के रूप में लड़े कुर का वध -

- भागवत में उस वृद्धा के लिए कुर कल्पना नहीं है ।

( गोपियों के वस्त्रों को लेकर कृष्ण जिस फेड़ पर चढ़े, वह  
एक राक्षस का परिवर्तन-रूप था । कृष्ण ने उस फेड़ को  
गिरा दिया और राक्षस का वध किया । भागवत में उस  
फेड़ में कुरावैश का उत्पन्न नहीं है, जबकि प्रबन्धम् की कथा  
में है । )

- परियालवार तिरुमोली

४७-

गोपियों के साथ कृष्ण के नृत्य ( कृत्स्न कृत्तु )- रासलीला

- तिरुवायमोली ३ : ६ : ३

४८-

इन्द्र यज्ञ भी - परियतिरुमोली २-३-४

- वही ४-२-३

४९-

गोवधन धारण - परियालवार तिरुमोली ३-५-६

तिरुनेल्लुत्ताण्डम १३



- ५०- केशि वध- पेरिय तिरुमोली ३-२-८
- ५१- मथुरा गमन - पेरिय तिरुमोली ६-७-५
- ५२- कृष्ण पर वसुधा - पेरियाल्वार तिरुमोली १-६-४
- ५३- कुवल्यापीड वध- पेरियाल्वार तिरुमोली ४-७-७  
तिरुमालै ४५  
पेरिय तिरुमोली २-२-८
- ५४- चक्रवर्तिन मल्ल निग्रह - पेरियाल्वार तिरुमोली २-२-८  
पेरिय तिरुवन्तादि ४१
- ५५- कंस वध- तिरुप्पावै २५  
पेरिय तिरुमोली ३-१०-३ और ३-१०-६
- ५६- गुरु सान्दीपनि को उनके पुत्रों को लौटा देना-  
- पेरियाल्वार तिरुमोली ४-८-१  
( विनाध्ययन के बाद गुरु- दक्षिणा में गुरु के पुत्र को जो समुद्र में प्रवास क्षेत्र में डूबकर मर गया था, लाने के लिए कृष्ण ने समुद्र-जल में निवास करने वाले शंस रूपधारी पंजन नामक दैत्य का फता लकर उसकी मार डाला । फिर संयमनी पुरी में जाकर यमराज से गुरु-पुत्र को प्राप्त किया और गुरु सान्दीपनि को लौटा दिया । )
- ५७- रुक्मिणी हरण - पेरियाल्वार तिरुमोली ३-६-३  
- तिरुवाय मोली ७-१०-६
- ५८- नरकासुर वध- पेरियाल्वार तिरुमोली ४-३-३
- ५९- नारकापुरी का स्थापन - पेरियाल्वार तिरुमोली ४-६-४
- ६०- पाश्चात्तापहरण - पेरियाल्वार तिरुमोली ३-६-१ और  
" " २-१-६

- ६१- सङ्कट वाणाक्षर वध - पेरियाल्वार तिरुमोली , ४-३-४  
तिरुवायमोली ३-१०-४
- ६२- पीण्डक वध- पेरिय तिरुमोली २-४-७  
तिरुवन्ता विरुत्तम १०७
- ६३- शिशुपाल वध - तिरुवाय मोली ७-५-३ और  
वही ७-५-१०
- ६४- कृष्ण द्वारा दन्तवक्त्र का वध- मुन्द्राम तिरुवन्तादि २१
- ६५- द्रौपदी का कृष्ण की शरण लेना - पेरिय तिरुमोली  
२-३-६
- ६६- कृष्ण के दूत रूप में जाना और दुर्योधन के फूँटे, कपट,  
बासन पर बैठकर अपना विश्व- रूप दर्शन देना -  
- पेरिय तिरुमोली ६-१-८
- ६७- पार्थ सारथी के रूप में जाना -  
- पेरिय तिरुमोली २-३-१
- ६८- कृष्ण के चरणों पर अर्पित पुष्पों को शिवजी का अपने सिर  
पर धारण करना - तिरुवायमोली २-८-६  
( भारत युद्ध के समय अर्जुन को पाशुपत- वस्त्र की आवश्यकता  
पड़ी । चूंकि वह शिवजी का वस्त्र था, अतः शिवजी की  
पूजा करने की आवश्यकता आ पड़ी । उसके लिए तैयार होने  
पर कृष्ण ने अर्जुन से अपने चरणों को दिखाकर वहीं पुष्पों  
को अर्पित करने को कहा । अर्जुन ने ऐसा ही किया । उस  
दिन रात को शिवजी के सिर पर उन पुष्पों के दर्शन अर्जुन  
ने किये और शिवजी वाफर पाशुपत वस्त्र दे गये । )

१- प्रबन्धम् कीटोका - " दिव्य प्रबन्धम् - कथामृतम् - श्री वर्णनाराचार्य स्वामी

कृत पृ० ३८

६६-

गीता उपदेश - तिरुवाय मोली ४-८-६ तथा  
वही ३-५-७

७०-

जुन के घोड़ों को बल मिलाना - परियालवार तिरुमोली  
४-२-७

( जब जुन के रथ के घोड़ों को बहुत प्यास लगी तब उस  
स्थान पर कृष्ण ने बरुणास्त्र का प्रयोग कर बल उत्पन्न  
किया और घोड़ों की प्यास बुकायी ) ।

ऊपर उल्लिखित प्रबन्ध की कृष्ण-लीलाओं के अवलोकन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रबन्ध में मागवत में उपलब्ध अधिकृत कृष्ण-लीलाओं का वर्णन मिल जाता है और कुछ ऐसी ही लीलाएँ भी प्रबन्ध में वर्णित हैं जो मागवत में नहीं हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि बालवाराँ में सर्वत्र मागवत निर-  
पेक्ष दृष्टिकोण पाया जाता है । फिर बाधुनिकतम विद्वानों की मागवत के काल-  
निर्णय की उपलब्धि के अनुसार बालवार मन्त मागवत- काल से पूर्व के ठहरते हैं,  
अतः बालवाराँ का मागवत- समाप्ति होने का प्रश्न ही नहीं उठता । प्रबन्ध  
में वर्णित कृष्ण-लीलाओं को परस्पर पर एक और बात स्पष्ट हो जाती है कि  
बालवाराँ ने बाल-लीलाओं ( गोशुल-लीलाओं ) का ही बड़े विस्तार से और  
बड़ी मार्मिकता से वर्णन प्रस्तुत किया है। उतना मथुरा-लीला या मारका-लीला  
का नहीं । बालवाराँ द्वारा वर्णित ये कृष्ण सम्बन्धी बाल-लीलाएँ निश्चय ही  
मन्तों के हृदय में मागवत- प्रेम की उत्पन्न कर देने वाली हैं। इसमें वास्तव्य की बात  
नहीं, यदि हम वह अनुमान करें कि परवर्ती मन्त कवियों ने क्यातु मध्ययुगीन कृष्ण-  
मन्त- कवियों विशेषकर ब्रह्मापियों ने बालवाराँ द्वारा वर्णित उन बाल-लीलाओं  
से प्रभावित होकर उन्हें अपने मन्त-काव्यों में स्थान दिया हो ।

मागवलीलाओं में बालवाराँ की तन्मयता-

बालवाराँ की बाल-लीलाबद्ध-वर्णन की शैली में एक वैचित्र्य

है। वह यह है कि बालुवारों ने बाल-लीलाओं का वर्णन कथाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं कर, उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया है, मानों वे हमारे सामने प्रत्यक्षा पटित हो रही हों। कहने का तात्पर्य यह है कि बालुवारों ने बाल कृष्ण से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित किया हो, ऐसा प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए परियालवार के बाल-लीला-वर्णन को ले सकते हैं। जहाँ यशोदा या देवकी के कथन होने चाहिए वहाँ कवि ने स्वयं यशोदा या देवकी के स्थान पर अपने को कल्पित कर कहा है। ऐसा लगता है, मानों कवि स्वयं बालक (कृष्ण) की देख-रेख करता हो और बालक की लीलाओं में भाग लेता हो। इस बात को स्पष्ट करने के लिए परियालवार के कुछ पदों का सार नीचे देते हैं।

जहाँ कवि बालक कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत करना चाहता है वहाँ वह कहता है :-

“ देवकी द्वारा देवी महिला- यशोदा को सँपि गये सुन्दर बालक के अपने पैर की उँगली को मुँह में लेकर चुम्बते समय, उसके मुँह को देखने वाली ।  
हे, देवियों ! बाहर देखिए । ”

“ देव-लोक के देव गणों की वेदना को दूर करने के हेतु, पहले बलदेव- पुत्र रूप में अवतरित कृष्ण बालक के सुन्दर नयनों को बाहर देखिए । ”

इस प्रकार अनेक पदों में दूसरों को बुलाकर अपने बालक (कृष्ण)

१- शीतलकण्ठ उल्लसुदन्त देवकि

कौदेवकुलताल वशीदेवकुप्योत्तन्द

पैदेवकुली पिडिगुन्नुवैतण्णुम

पादककफलंगल काणीरे पलवायीर । वन्दु काणीरे । ”

- परियालवार तिरुमोली १-२-१

२- “ विष्णोत्तमस्कल वेदनैवीर मुन

मण्णोल वलुदेवर तम फलनाड वन्दु

तिष्णोत्तुरैयैय वलुकिन्द्राम

कण्णल दूरुन्दवा काणीरे कनवैवीर । वन्दु काणीरे । ”

- परियालवार तिरुमोली १-२-१६



का सौन्दर्य दिखाना चाहता है। यही नहीं कृष्ण को पालने में लिटाकर यशोदा के लोरी गाने के अवसर पर स्वयं कवि कृष्ण लीलाओं का स्मरण कराकर उनकी स्तुति करते हुए उन्हें सुलाने के लिए लोरी गाता है। चन्द्र को बुलाते समय यशोदा के स्थान पर कवि कहता है :-

“ मेरा यह लाल, मेरी कमर पर बैठकर तुम्हीं को बुला रहा है, अपने बड़े बड़े ज्योतिर्मय लोचनों से। यदि तुम उचित करना चाहते हो तो उसको दुःख मत दो। वह चक्रधारी भगवान् है। यह समझ लो। हे चन्द्र। तुम्हें भी ऐसा पुत्र होता तो मातुम होता कि तुम्हारे इस व्यवहार से कितना दुःख होगा। हे पुत्र- हीन बगाने। जल्दी जा जाओ। ”

कवि ने अनेक स्थलों में यह उद्धृत करके कि उसे कृष्ण-लीलाओं का कथा-रूप में वर्णन करना है, यह अनुभव किया है कि वह भी उन लीलाओं में भाग ले रहा है। विशेष रूप से कृष्ण को स्तन्य पान कराने, कृष्ण का झुंकार करने, कृष्ण को खेल खेलते देखने तथा कृष्ण के वन में गोचारण करने जाने के अवसरों में कवि ने स्वयं को यशोदा के स्थान पर कल्पित कर अपने उद्गार सीधे प्रकट किये हैं। इस कारण अनेक स्थलों में ऐसा सजीव वर्णन मिलता है, जिसमें घटनाएँ प्रत्यक्ष होती सी दीखती हैं। यह शैली की विशेषता की वजह ही नहीं, बल्कि कृष्ण-लीलाओं में कवि की तन्मयता, <sup>की ओर भी</sup> सकित <sup>करता</sup> स्थिति है। अनेक परवर्ती कवियों ने भी कृष्ण-लीलाओं में इस प्रकार तन्मय भाव दिखाया है। पुराणों की कथा-शैली को त्याग कर परवर्ती कवियों ने कृष्ण-लीलाओं में तन्मय होकर भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है।

## (२) श्रीकृष्ण की क्लोफिक रूप-माधुरी-

श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गान करने वाले प्रायः

१- “ कनकशैल्यन्त तर्हण्णल मतर विलित्तु  
लोक्कलं भलिरुन्दु उन्मये चुट्टि काट्टुम काण  
तवकतरिदियेत्त चन्दिरा इत्तम वेत्तादे  
मक्कट्ट पेराद मल्लनत्तयेत्त वा कण्हाय । ”

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-४-४



सभी भक्त कवि श्री कृष्ण के कलात्मिक रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए हैं। कृष्ण के रूप-वर्णन में सौन्दर्य की बितनी भी कवि-कल्पनाएँ हो सकती हैं, उन सब का प्रयोग करने की प्रवृत्ति इन कवियों में पायी जाती है। बाल्यार भक्तों ने कृष्ण में कलात्मिक शक्ति के साथ कलात्मिक एवं अपरिशील सौन्दर्य के भी दर्शन किये हैं। अतः बाल्यारों ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहर-रिणी और प्रतिभावाण नवीन वाक्प्राण उपस्थित करनेवाली हवि का भी पल पल पर वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होने की प्रवृत्ति सभी बाल्यारों में पायी जाती है। कुछ में तो वह इतनी आवेगमयी और प्रगाढ़ है कि कृष्ण के किसी चरित, किसी भी लीला का वर्णन बिना उनकी अनन्य हवि के वर्णन के संभव ही नहीं हो सका। बाल्यार रूप-वर्णन करते कभी तो स्वयं ही मुग्ध हो लेते हैं, कभी गोपियों के माध्यम से उन्हें रूपावत चित्रित करते सुलानुभूति प्राप्त करते हैं। बाल्यारों ने प्रसूतया कृष्ण के दो रूपों की हवि का वर्णन प्रस्तुत किया है :-

१- कृष्ण का बाल रूप

२- कृष्ण का किशोर रूप

### कृष्ण के बाल-रूप का सौन्दर्य-

कृष्ण के बाल-रूप के सौन्दर्य पर सर्वाधिक मुग्ध होने वाले बाल्यार पेरियाल्वार हैं। इन्होंने २० पदों में बाल-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का नल-सिख वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पद में प्रत्येक शब्द की शोभा का बड़ा ही सरस वर्णन है :-

“कृष्ण के चरण सिले हुए कमल के समान सुन्दर हैं।”

१- “

पादकमलगतु काणीरे पल्लवाधीर । वन्दे काणीरे ।”

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-२२

“...उन चरणों में शुद्ध कांचन के बीच अंकित मोती, रत्न और हीरे के समान कौलियाँ शोभित हैं।” सर्वत्र कवि के सम्मुख बालकृष्ण का वह मोहन रूप ही जाता है जिसके वर्णन में वह अपने को खो जाता है। “इ सुन्दर सिन्दूर रंग के कोमल मुँह के बीच प्रकाश युक्त चाँदी के कँहूर जैसे दाँत निकले हैं। कमल दल बीच पशु-पान करने वाले काले भ्रमरों की भाँति कृष्ण के मुख पर सुन्दर जल्लावती ब्रीढ़ा कर रही है। बालक के मुख चन्द्र से चन्द्रा की तुलना कर कवि कहता है - “हे, ज्योतिर्मय रण पर विराजमान होकर सर्वत्र प्रकाशमान चन्द्र । तुम चाहें कितनी भी चाँदनी दिलावों और पूर्ण बनो, फिर भी (मेरे) इस बालक के मुख-शौन्दर्य को तुम प्राप्त नहीं कर सकते।” बालक के मुँह से टपकने वाली लार का शौन्दर्य कमल-पत्र पर से

१- “ सुखम मणिसुख वयिरसुख नन्योन्मुख  
तथीप्यतिवृ तलपेन्दार पील शेष  
पशु विरसुख मणिवण्णन पार्श्वल  
वोविट्टिरुन्धवा काणीरे वोण्णुदलीर । वन्दु काणीरे । ”

- पेरियालवार तिरुमोली १-२-२

२- “  
कोलनरुम फलज्वेन्दुवर वायिनिहै  
कोमल वैल्ली मुलुप्पोल पिल पत्तिरुक् । ”  
वही १-५-६

३- “ कैमलप्यविल तेनुण्णुम वण्डे पील  
पेकिन्त वन्दु उन फलवाय मोरुप्प  
”

- पेरियालवार तिरुमोली १-८-२

४- “ सुखम वोत्तिट्टम वृन्दु ज्योति परन्नेगुम  
रवै वैय्यिसुम एन मून मुलम नेरोव्वाय  
”

- वही १-४-२

गिरने वाली श्रुतियुक्त बीस डूँडों के समान हैं। बालक की प्रत्येक चेष्टा में कवि को सौन्दर्यानुभूति होती है। शिशु का स्तन-पान करना, चन्द्रमा डुलाना, ताली बजा कर हँसना, सिर ऊँचा करके खिलाना, छोटे कौमल पैरों पर बस्थिर गति से जाना आदि प्रत्येक क्रिया-कलाप में कवि ने सुदृग्ता से सौन्दर्य का अनुभव किया है और उस सौन्दर्य का अनुभव किया है और उस सौन्दर्य को यथाशक्ति शब्दों में व्यक्त किया है।

### वेषभूषणा-

परियालवार ने बाल कृष्ण की वेश-भूषणा का बड़ा ही मौलिक चित्र वर्णित किया है। कितने ही प्रकार के आभूषणों की कल्पना कर, उन सभी कृष्ण को भूषित बताया है। कितने ही प्रकार के पुष्पों के नाम गिनाकर उन सभी कृष्ण को संश्लिष्ट सज्जित बताया है। कृष्ण अपने सजल बलघर सदृश्य श्याम वर्ण शरीर पर विष्णु की सी काँतिवाला पीताम्बर पहने हुए हैं। लाल कमल जैसे पैरों में पायल, कमल की छिती हुई फुडियों के सदृश्य शोभित उँगलियों में क्यूठियाँ, कमर में स्वर्ण से निर्मित कमर-बन्द और मनादित होनेवाली किंकिणी, हाथों में कंकण, हाथों की उँगलियों में हीरे, मोती से वर्णित स्वर्ण क्यूठियाँ, सुन्दर बाहों में विविध आभूषण, कानों में कुण्डल, माथे पर "बुद्धि" (एक आभूषण विशेष)

१- " फडर फकयमतरवाय नेकिरुप्पनिपहु चिरुसुति पील  
उल्लोण्ड चेव्वायुरि युरि उदिट्ट वील निन्दु

- परियालवार तिरुमोली १-७-७

२- " पिन्नुक्कोलियुम और वेण्टिकलुम वृत्तपरिविहमुमाय  
पिन्मत तुल्लुम वरसिलियुम पीत्तुक्किदाडियेम

- वही १-७-७

वादि विविध बाधूषणों से श्रीकृष्ण वर्तकृत हैं। बालक के चलते समय किंकिणी की “जतार जतार” की ध्वनि निनादित हो रही है। गन्ध के रस से बरे घटों में क्षिद्र करने से रस के बाहर निकलते समय जो “कण कण” की ध्वनि निकलती है, उसी के समान जल में बने हुए से “कण कण” की ध्वनि से कृष्ण हँसते हैं।

### कृष्ण के किशोर-रूप का सौन्दर्य-

गोकुल की गोपियों को मुग्ध करने वाले कृष्ण के मौल्य रूप का वर्णन जलवार नवतों ने जल स्थलों में किया है। विशेष रूप से परिया-लवार ने कृष्ण के किशोर रूप के सौन्दर्य का गोपियों के माध्यम से वास्वादन कराया है। गोचारण कर बलराम तथा अन्य साधियों के साथ लौटनेवाले कृष्ण के क्लेश सौन्दर्य पर गोपियाँ मुग्ध हो जाती हैं :- “नन्द-कृष्ण कल्प लता के मृदुल पुष्प-सम वस्त्र पहने हुए, कमर में सुन्दर रेखी कपड़े की बधि, गले में सुन्दर और सुगन्धित सुमनों की माला धारण किये, मोर जुहू के सिर पर शोभित होते सन्ध्या के समय अन्य बालकों के साथ वन से लौट रहे हैं।”

१- “चैकमलकललित विद्धिदलपौल पिरलित  
बैरत्किङ्कालिकुसुम किंकिणियुम बरसित  
तंफिय पौन्महमुम ताल नन्नादुलैफि  
पूवोहु पौन्मणियुम मोदिरमुम कीरियुम  
मालरैफैयुम तोलुवलेयुम कृलेयुम  
मकरमुम वात्किन्नुम चुट्टियुम बोधितक -” वही १-५-१०

२- “तोडर चंफिलिके जतार बिलारिन्  
तुंगु पौन्मणियोतिप्प ।

- परियालवार तिरुमोली १-७-१

३- “कन्मरुडम तिल्वालीपूरी कणकण विरिजुवन्नु”  
- वही १-७-४

४- “वत्तिनुण ज्जलुन्न वाडे कोण्डु  
वरीयरठिरुवर विरिजुहलु  
मुल्ले नल नरु मलर वैग मलरणिन्दु

पल्लवाया कलाम नल्ले । - वही ३-४-२

माथे पर सिन्दूर तथा प्रकाश युक्त तिलक शोभित हैं। कृष्ण के अन्य साथियों के साथ वन से लौटते समय मेघ-गर्जन का स्वर उठ रहा है। “ कृष्ण के विह्वल जैसे बघरों को और उन पर खेलनेवाली मधुर मुस्कान को देखकर, है सही ! मैं मोहित हूँ । ” गायों के पीछे, शरीर की कांति को सर्वत्र विकीर्ण कर अपने सुन्दर केशों को मधुर-पंखों से अलंकृत कर, सुन्दर कमल जैसे नयनों से देखकर, वेणु की मधुर ध्वनि कर, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए अपने अन्य साथियों के साथ जानेवाले मोहन को देखकर ( मेरी पुत्री ) मुग्ध हो गयी । ” ( माता का वचन ) मुरली बजाते समय कृष्ण के अपार सौन्दर्य के कितने ही सुन्दर चित्र बालुवारों ने अंकित किये हैं। कृष्ण के असीमिक और अपरिचीम सौन्दर्य का वर्णन करते-करते भवत कवि थकते नहीं । कृष्ण के मन मोहन रूप की सौन्दर्यानुभूति में बालुवार सुध-बुध हो बैठते हैं। तिरुम्पाण बालुवार ने अपनी एक मात्र रचना अमलादिपिरान में भगवान् के सौन्दर्य का ‘ नल शिल ’ वर्णन ही प्रस्तुत किया है। पार्वती कवि कृष्ण के रूप-सौन्दर्य सम्बन्धी इन चित्रों से बहुत प्रभावित हुए हैं। मध्ययुगीन कृष्ण-भवत कवियों ने अपने काव्यों में श्रीकृष्ण के असीमिक रूप-माधुर्य के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं।

१- “ सिन्दूरमिलंगवन तिरुनेद्रिमेल  
तिरुप्पिय कोरम्बुम तिरुबकूलमुम ”  
- वही ३-४-६

२- “ चालप्पलनिरेप्पिन्ने तल्लकाविन कीलु  
तन तिरुमैनि निन्द्रीली तिल्लु  
नील नल नरुप्पुली नेविरवावणिन्दु  
पल्लायर कूलाय नल्लु  
कोलवेन्दामरुक्कण मिलिर  
कूल्लुद्रिसे पाडि कुनितु वायरोड,  
वालिस्तु वरुकिन्दु वायप्पिल्ले  
अल्लु कण्डु ल मल्लुयकिन्दुदे ”

- परियाल्वार तिरुमोली , ३-४-७



### (3) श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व-

लीलानाटक श्री कृष्ण के लोक- रंजक रूप का संगीतपूर्ण वर्णन करते हुए भी, बाल कृष्ण के लीला- सागर में गोता लगाते हुए भी बाल- वार सर्वत्र इस बात का ध्यान रखते हैं कि श्री कृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार-स्वरूप हैं। ये प्रत्येक पद में श्री कृष्ण के परमेश्वरत्व की घोषणा करते हैं। बालवारी के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में मनुष्य के उद्धार के लिए अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अधर्म फैल जाता है और अज्ञान अन्धकार पृथ्वी को कवचित करता है, तब कृपा- सिन्धु भगवान् अपनी कृपा की प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन करते हुए भी बीच बीच में वे विष्णु के पूर्व अवतारों और उनकी लीलाओं का भी गायन करते हैं। बालवारी के समय में अवतारों की कथाएं बहुत ही प्रचलित हुई थीं। मागवत धर्म के विस्तार के साथ साथ विष्णु भगवान् के विविध अवतारों की कथाएं - दशवतार की कथाएं जिनमें विष्णु के भक्तवत्सल रूप, कृपा- सिन्धुत्व, सत्य, संकल्पत्व आदि अणिगणित विशिष्ट गुणों के प्रमाण मिलते हैं, व्याकृता प्राप्त कर जन-साधारण के बीच में भक्ति-प्रचार का सरल माध्यम सिद्ध हुईं। बालवारी के युगों में विष्णु के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का संगीतपूर्ण वर्णन है। बालवारी में विष्णु के इन विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देता। सब अवतारों को एक परब्रह्म विष्णु के विविध रूपों में ही देता। फिर भी उनका मन कृष्णावतार में सबसे अधिक रमा।

श्रीकृष्ण की लीला का, चैष्टा का वर्णन करते समय यह कहने की बालवारी नहीं भूलते कि कृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार स्वरूप हैं। कृष्णावतार की लीलाओं का उल्लेख करते समय श्री कृष्ण की जलौकिक शक्ति का परिचय देकर उनके अतिमाय ( *Super human* ) और अद्भुत कार्यों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। सर्वत्र यह स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं कि ये कृष्ण परब्रह्म विष्णु के ही अवतार हैं जिन्होंने इसे पूर्व के अवतार लिये हैं और उस श्रुति की कड़ी के रूप में उन्होंने कृष्णावतार भी लिया। इस प्रकार

कहने में कवि का उद्देश्य श्री कृष्ण के परमेश्वरत्व का स्थापन करना है। एक ही प्रांग में कृष्णावतार के साथ अन्य अवतारों का भी उल्लेख करना कदाचित् यह सिद्ध करने के लिए है कि श्री कृष्ण साधारण व्यक्ति नहीं, परब्रह्म के अवतार हैं। बाल कृष्ण के कतिपय अतिमानुषिक कृत्यों तथा पूतना वध, शकटाक्षुर वध, कासिकदम्न, गोवर्धन धारण आदि का वर्णन करते समय तो कृष्ण का अति मानुष रूप प्रकट होता ही है। अन्य अवसरों पर भी बारुबार अपनी ओर से यह कहने को नहीं भूलते कि कृष्ण विष्णु के अवतारों में से हैं। कृष्ण की विभिन्न बाल-सुलभ वेषावली का वर्णन करते समय भी बारुबार उनकी पूर्ण अतिमानुष लीलाओं का भी चित्र कर बैठते हैं। काव्य-कला की दृष्टि से यद्यपि यह एक दोष है तथापि कवि का उद्देश्य कृष्ण का सम्बन्ध विष्णु के अन्य अवतारों से स्थापित करने का होने से वह क्षम्य है। उदाहरण के लिए देखिए। श्रीकृष्ण की माँग पर यशोदा द्वारा चन्द्र को कुलाते समय भी कवि विष्णु के अन्य अवतारों की ओर संक्षिप्त कर बैठता है :- "हे नीलाम्बर स्थित विशाल चन्द्र ! मेरा पुत्र तुम्हें झुला रहा है। इसका तिरस्कार मत करो, यह समझकर कि यह बौटा बालक है। समझ लो, यह बालक वही है जो एक बार कट-प्र पर सोया था। यदि वह अपनी शक्ति दिखाना चाहे तो अभी उठकर तुम्हारे ऊपर कूदकर, तुम्हें फाड़ सकता है। अतः इसकी उपेक्षा मत करो। — यह समझकर कि यह बालक है, तुम इस बाल-कैसरी का तिरस्कार मत करो। राजा बही से बाहर पड़ो, इसकी चिर यौवन शक्ति के सम्बन्ध में। यह वही महान् "मात" (विष्णु) हैं, जो तुम्हें सीधे ही आ पहुँचने का आदेश दे रहा है। हे, पूर्णचन्द्र ! तुम अपनी इस

१- " बालकनेन्द्र परिपक्वम वैष्णवं पण्डोरुनालं

वासिनिर्ल वसुन्द चिरयकनवन जन

भैरवमान्दु पिठितु कोत्तुम वैकुण्ठ

मातै मनियादे मामति । मक्षिन्दोहिवा"

- परियाल्वार तिरुमोली १-४-७

हुबलता और सविहीनता को कैसे समझेंगे कि तुम मेरे लाल के सेवक होने को भी लायक नहीं हो।” स्पष्ट है कि कवि कृष्ण के परमेश्वरत्व की ओर संकेत करना चाहता है।

### राम - कृष्ण भेद भाव-

कृष्णावतार के साथ रामावतार का भी बालुवारों ने कुछ विस्तार से गायन किया है। ( “ बालुवारों की राम भक्ति ” शीर्षक वाला परिशिष्ट देखें )। यद्यपि कृष्णावतार की अपेक्षा रामावतार का वर्णन विस्तार कम है, तो भी बालुवारों ने रामावतार के जो भी प्रसंग लिये हैं, उन्हें संतोषजनक ढंग से उनके द्वारा वे राम के विष्णु के अवतार होने की बात साबित करते हैं। पेरियाल्वार के एक दशक में रामावतार और कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन साथ ही साथ दो सतियों के संभाषण द्वारा कराया गया है। कृष्ण को संबोधित करते समय भी “ हे , गोकुल सिंह , हे सीता- पति, हे विष्णु ” आदि नामों से संबोधित कर राम- कृष्ण-भेद को स्थापित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बालुवारों ने सर्वत्र कृष्ण के परमेश्वर- स्वरूप की ओर संकेत किया है और विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देखा है। यही प्रवृत्ति मध्ययुगीन जैसे कृष्ण भक्त कवियों में भी देखने को मिलती है। सभी भक्त कवियों ने कृष्ण के परमेश्वर स्वरूप की स्थापना कर राम कृष्णादि अवतारों में भेद भाव दिखाया है। हिन्दी के महान् कृष्ण भक्त कवि सुरदास तथा राम भक्त कवि गोस्वामी

१- “ चिरियेन्दु रन्ध्रिर्ताचिगै जलैल कण्ठाय

चिरुमैयिन वारैयि मावसियिहंज्येन्दु कैल

चिरुमैप्पिर् कोल्लिल नीयुम उन तैवैकुरियै काण

निर्मली । नेह्माल विरैन्दु उन्नैकूळुकिन्दाम । ” वही १-४-८

२- पेरियाल्वार तिरुमोली , ३-६-१ से १०

३- स चिदायर सिंगे । सीतै मणाला । चिरुकुट्ट वैकण्णाले । ”

- पेरियाल्वार तिरुमोली , ३-३-५

तुलसीदास ने भी राम-कृष्ण-कैद-भाव से दोनों अवतारों की स्तुति की है।

#### (४) श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भावना-

‘प्रबन्धम्’ में भगवान् के प्रति प्रेम के विविध रूपों एवं भावनाओं का जितना व्यापक उद्घाटन हुआ है, उसके दर्शन बन्धुदुर्लभ हैं। भगवान् से प्रेम करना ही परा-भक्ति का एक मात्र उद्देश्य है। श्रीकृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम-कृष्ण-भक्ति साहित्य का मेरुदण्ड है। ‘प्रबन्धम्’ में किसी भी अन्य बात पर उल्लास और नहीं है जितना गोपी-भाव की भक्ति पर। बाद के भक्ति-साहित्य में क्रम की गोपिकाओं की प्रेम-भावना की बड़ी प्रतिष्ठा हुई और उसे ही बादर्श-रूप में माना गया। नारद भक्ति-सूत्र में और शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र में चारम बादर्श - रूप में क्रम-गोपियों को ही माना गया है।

प्रेम मानव हृदय का एक प्रबल पक्ष है। जलवारों ने इस प्रेम की बड़ी सुन्दर और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। इस प्रेम की अभिव्यक्ति मुख्यतया चार प्रकार से मानी जाती है :-

- १- दास्य भाव
- २- सख्य भाव
- ३- वात्सल्य भाव
- ४- माधुर्य भाव

‘प्रबन्धम्’ ने वात्सल्य और मधुर भाव पर ही विशेष और दिया है। प्रबन्धम् में प्रीति के इन दोनों भावों की अभिव्यक्ति गोपियों के माध्यम से सर्वोच्च अधिक उदात्त रूप में बहुत ही विस्तृत भाव पटल पर हुई है।

१- यथा ऋगोक्तानाम् ॥

- नारद भक्ति सूत्र , सूत्र २१

कतस्व तदभावाद्दत्तुवीनाम् ।

- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र , सूत्र १४



### वात्सल्य भाव-

वात्सल्य भाव कृष्ण - मणित परम्परा का एक प्रधान तत्व है। बालुवारों के बाल- भाव- चित्रण में वात्सल्य भाव का सुन्दर परि-पाक हुआ है। यशोदा के माध्यम से कवियों ने वात्सल्य रस की स्निग्ध धारा प्रवाहित की है। वात्सल्य भाव की प्रीति अन्य सब प्रकार की प्रीतियों से उत्तम कही जा सकती है। क्योंकि वह निष्काम प्रीति है। सन्तान के मोले- भाते और निष्कण्ट रूप और गुण पर किस माता- पिता का मन रहन ही नहीं रोफता ? अपनी कष्ट और स्वार्थ को भुलकर शिशु की परित्या में किस माता ने अपने स्वार्थ को नहीं भुला दिया ? अपनी सन्तति के विहोह में किस माता- पिता का हृदय नहीं छुटफटाता ? वात्सल्य भाव स्नाही है, क्योंकि स्नेह पात्र के वनीध और कसबत होने के कारण स्नेही अपने स्नेह के बदले में कुछ नहीं चाहता । शिशु की मोठी मोठी और तुलसी बाते सुनने, उसकी झीड़ावों और विविध वेष्टावों का अवलोकन करने में मातृ- हृदय जिस आनन्द, तन्मयता तथा वृप्ति का अनुभव करता है वैसा पितृ- हृदय में नहीं होता ।

मातृ रूप की प्रतीक यशोदा हैं। यशोदा के माध्य की सरा-हना करते करते मन्त्रों ने अनेक बार उनके सुख की कल्पना देवताओं , कृणियों तथा मुनियों की शक्ति के पर बतलाकर बार बार योग, ज्ञान इत्यादि पर सगुण मणित की इस पुण्य अनुभूति की विषय घोषित की । कृष्ण के शैशव, बाल्यकाल और किशोर काल में यशोदा के मातृहृदय का सुन्दर विकास चित्रित है। कृष्ण की बालोचित मोली- माली उक्तियों के प्रति उनकी गद्गद् भावना, उनके नटवरण के प्रति उनकी खोफ आदि मातृ- हृदय के स्वामाविक चित्रण हैं। शिशु-कृष्ण की माँ के रूप से लेकर किशोर-कृष्ण की माँ के रूप तक उनका चित्रण अनुभव है। वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष बालुवारों ने दिखाये हैं।

संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत बाल- सुलभ- झीड़ावों के सुदम चित्रण के लिए परियासवार ने शिशु की दस भिन्न वयः स्थितियों की कल्पना



कर प्रत्येक स्थिति में बालक की स्वाभाविक वेषावर्णों का बड़ा ही सजीव चित्र  
वर्णित किया है। इस विशिष्ट बाल-वर्णन-शैली को तमिल में "पिल्लैतमिल" कहते  
हैं। ( इसका विस्तृत परिचय अन्यत्र दिया गया है।) इस "पिल्लै तमिल" शैली  
के जन्य दादा पेरियाल्वार हैं। इस शैली का उत्कृष्टतम सेकड़ों परवर्ती कवियों ने  
किया है। पेरियाल्वार ने माता यशोदा के स्थान पर अपने को कल्पित कर मातृ-  
हृदय धारण कर वात्सल्य का बड़ा आनन्द लिया है और बड़ी सूक्ष्मता से उसका  
उत्कृष्ट चित्रण किया है। माता यशोदा के मन के हर उद्गार को, उसके प्रत्येक  
उच्छ्वास- निःस्वास को, पेरियाल्वार ने हृदय- द्रावक मार्मिकता के साथ वर्णित  
किया है। शिशु कृष्ण के प्रत्येक कोमल अंग को देखकर माता आनन्द से पुलकित होती  
है और उस सौन्दर्य का पान करने के लिए दूसरों को बुलाती है। कृष्ण जन्य के  
कुछ ही दिन बाद यशोदा सहस्रियों से शिकायत करती है : "पालने में झोठो तो  
ऐसा पद-प्रहार करता है कि उसके टूट जाने का डर होने लगता है। गोद में उठा  
तू तो कमर तोड़ देता है। झाली से लगा तू तो फट फाड़ देता है। हे, सखी !  
मुझ से नहीं होती इस बालक की सार - संभाल ! मैं क्या कहूँ ?" यही माता  
एक अन्य स्थल पर कहती हैं :-

" मेरे लाल के माथे पर आभूषण डोल रहा है। सोने की  
किंकिणी मधुर निनाद कर रही है और गोविन्द छूट में छुटनों के बल रेंगता हुआ  
खेल रहा है। — सुन्दर मुँह से अमृत सम सार टपक रही है और भेरा लाड़ला

१- पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-१ से १०

२- किडक्किल तोटिटल किलिय उदैण्डुम

सुत्तवकोत्तिल मरुक्कियिरुण्डुम

वोडुक्की पुल्लिल उदरणि पावन्दिहम

मिडुक्किल्लामैयाल नान पेत्तिन्दैन मंगाय"

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-१-६

३- " तन मुक्कै चुटिट त्रुंगत्तुंग तवत्तुन्दुपीय ।

पौन मुळ किंकिणीयांपा पुलुदिकैकिन्दान"

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-४-१

बोली बोली से तुम्हें पुकार रहा है<sup>१</sup>” है चन्द्र ! तुम भी रात के सौन्दर्य के जागे फीके पड जाते हो ।”

कान्हा धीरे धीरे चलने लगता है। कान्हा खिल खिलाकर हँसता हुआ बाहर यशोदा से लिपट जाता है और उसे प्यार करता है। उसके मुँह से झुंझु- इस सी सार की धारा बह रही है। वह शिशु-सुम्न माँ के हृदय में अमृत प्रवाहित कर देता है। एक स्थल पर माता की ममता बोल उठती है :- “ कृष्ण-जन्म के बाद घर में छू भी न कहीं सुरक्षित रह पाता, न दूध, न दही, न मक्खन । कान्हा पड़ोस के बच्चों से मगढ़ा करने के बाद चुकी से घर बा जाता है। पड़ोस की स्त्रियाँ रोने वाले बच्चों के साथ यशोदा को घेर लेती हैं और शिकायत करती हैं । उधर यशोदा होहल्ले से परेशान हो रही है और इधर कृष्ण ऊँ उनका म्मा लेता हुआ हँस रहा है। संयोग-वात्सल्य के ऐसे कितने ही चित्र परियातुवार ने प्रस्तुत किये हैं । पहली बार कृष्ण के गौरव बराने के लिए जंगल की ओर जाने पर मातृ-हृदय छटपटाता है । उसे एक दाण के लिए भी पुत्र-वियोग असह्य सा लगता है। परियातुवार ने कभी स्थलों पर वियोग-वात्सल्य का हृदय द्राक्क वर्णन किया है। पुत्र को जन्म देकर तुरन्त उससे वंचित होनेवाली अम्भागिनी देवकी के मातृ-हृदय के उद्गारों को कुल-शेखरातुवार ने काव्य-रूप दे डाला है। शिशु की चैष्टाओं की कल्पना मन ही मन कर देवकी उस सुख से वंचित अपने को कोसती है। वह बच्चे से प्यार करने के लिए प्रतिष्ठा तड़पती है।

वात्सल्य इस से रूषित गोपियों को ब्रजांगना की संज्ञा दी गई है<sup>२</sup>। वात्सल्य-भावना की मुख्य प्रतीक यशोदा ही हैं, पर कुछ अन्य गोपियाँ भी इससे बीच-प्रीत हैं, इन गोपियों में वे ब्रजांगनाएँ हैं जिनमें वात्सल्य प्रधान है। कृष्ण

१-“ करन्द नपांलुप तथिस्म कहेन्दु उरि भेल वैतवेष्णी  
पिरन्नुदुवे मुदलाफ्यैद्वरिक्ता रंपिराने । ”

- वही २-४- ७

२- पेरुमाळ तिरुमोली ७-१ से १०

३- ब्रजांगनासुप्रवाहः -----

तथा ब्रजांगनामां पादुमावेनैवमुंजुः , तासां ईश्वरे पुत्रमावीवते । तस्मात्सोप्रवाह-  
त्वम् । - वाचार्थ वल्लभकृत- श्रीभगवत्पीठिका पृ० १४३ वृ० स्तो० द्वि० भाग सं० १२४

की बात- सीताजी में उनका हृदय पूर्णरूपेण रम जाता है। ब्रजगोपालों का यह वात्सल्य भाव बड़ी महत्ता का बताया गया है। यही भक्ति के स्तर में निष्काम रूप धारण करता है। बालुवारों के वात्सल्य- भाव चित्रणों ने परवर्ती कवियों को बहुत ही प्रभावित किया और वात्सल्य- भक्ति को भी प्राधान्य प्रदान किया।

### मधुर- भाव-

‘प्रबन्धम्’ में भक्त और भगवान् के बीच स्त्री- पुरुष संबंध को घोषित करने वाले सैकड़ों पद हैं। लोक में प्रेम के जितने भी भिन्न भिन्न संबंध हो सकते हैं उन सब को बालुवारों ने लोक से हटाकर ईश्वर के साथ जोड़ा है। यहाँ तक कि ऐन्द्रिय विषयों में क्लेशित लोगों को संसार विषय से छुटाने के लिए बालुवार भक्तों ने ईश्वर को ही उनकी विषय- प्राप्ति का साधन बताया है। नम्मा- ल्वार , तिरुमो बालुवार जादि ने भक्ति में स्त्री- भाव को प्रधानता दी है। लोक पदा में जिसे हम शृंगार रस कहते हैं, भक्ति- पदा में वही मधुर रस कहलाता है। कृष्ण-भक्ति के क्षेत्र में स्त्री- भाव का प्रतिनिधित्व गोपियाँ करती हैं। वे कृष्ण में स्वतन्त्र तल्लीन हैं कि उनकी काम रूपा प्रीति भी निष्काम होती है। अतः संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं में गोपियों का प्रेम एक रूप है। श्री कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम को चित्रित करने वाले अनेक प्रसंग ‘प्रबन्धम्’ में हैं।

भक्ति के क्षेत्र में नायक- नायिका- संबंध को स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठापित करनेवाले बालुवार भक्त ही थे। बालुवारों ने ईश्वर से जितने भी संबंध स्थापित किये हैं, उनमें नायक- नायिका सम्बन्ध अधिक महत्व का है। इस मधुर- भाव को काव्य रूप देने के लिए बालुवारों ने लौकिक प्रेम- काव्य के क्षेत्र में प्रचलित सभी कवियों का सहारा लिया है और उनके माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। बालुवार- पूर्व समित्त के संप- साहित्य के लौकिक प्रेम-काव्यों में नायक-नायिका सम्बन्ध के संयोग- वियोग दोनों पदों की जिन दशाओं का निर्वाह किया गया था, उन सब का बालुवारों ने प्रयोग कर नायक- नायिका- भाव से अर्थात् मधुर भाव से

मैत्र और ईश्वर के सम्बन्ध को पहली बार अभिव्यक्त किया था। नायक-नायिका के वचन के रूप में प्रेम के नाना प्रकार के प्रसंग प्रस्तुत करने की परंपरा तमिल के प्राचीन साहित्य में चली आ रही है। अब तमिल में उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रन्थ "तौत्काप्पियम", वैयाकरणिक विषयों के अतिरिक्त कविता की सामग्री का विवरण भी प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ "अहप्पोरुल" सण्ड में कविता-विषय का परिचय देकर उन प्रसंगों की ओर संकेत करता है जिनका वर्णन खानुभूति की परिष्कृति के लिए आवश्यक है। प्रेमी जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों का एक सूत्र में बांधकर उन्हें नाटक-लक्षणाओं से युक्त एक धारावाहिक उपन्यास का रूप दिया गया है। प्रेम-काव्य में "तौत्काप्पियम" के अनुसार निम्नलिखित प्रसंगों का क्रमानुसार होना आवश्यक है। सबसे पहले किसी सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में नायक-नायिकाओं का मिलन संयोग वश होता है। एक दूसरे के सौन्दर्य गुण आदि से आकर्षित होते हैं। यह आकर्षण प्रेम में परिवर्तित होता है जो प्रतिदिन विकसित होता रहता है। प्रेमी किसी कहाने से प्रेरणा से मिलने के लिए जाता है। प्रेरणा की सखी से सहायता मांगता है, जो दोनों के बार-बार मिलने के लिए अवसर पैदा करती है। प्रेमी-प्रेरिका का गुप्त मिलन होता रहता है और प्रेमी, प्रेयसी से गान्धर्व-विवाह भी कर लेता है। प्रेम की बात बढ़ती जाती है और आसपास के लोग वास्तविक स्थिति का-उन दोनों के सम्बन्ध का, अनुमान कर लेते हैं। समाचार फैल जाता है और किसी के कथन द्वारा गुरुजनों तक पहुँच जाता है और प्रेमी-प्रेरिकाओं का परिणय मनाने की अनुमति माता-पिता से मिल जाती है। परिणय-पूर्व काल "कल्लु" (गान्धर्व वैवाहिक काल) कहलाता है। इस प्रेम पद्धति के अन्तर्गत नायक-नायिका का प्रथम मिलन, दोनों के एक दूसरे से प्रेम-प्रदर्शन, नायक के गुप्त आगमन के कारण मार्ग में संभाव्य विपत्तियों का नायिका द्वारा निवेदन आदि अनेक प्रसंग आते हैं। परिणयोत्तर काल "कपु" (दाम्पत्य काल) कहलाता है। पति-पत्नी का प्रणय, कलह, पति के अपने कार्य के निमित्त विदेश चले जाने से पत्नी की विरह-पैदना,

१- विस्तृत विवरण के लिए देखिए :

कल्लुविल्लु सूर्य ईश्वरार अहप्पोरुल" प्रकाशक - शिव सिद्धान्त तृपतिप्पु कल्लुम मद्रास



विलाप या विरह-सहन के उपयुक्त वचन, दोनों का पुनर्मिलन आदि कई प्रसंग इस 'कथुं' प्रेम-पद्धति के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार के विभिन्न प्रसंगों का विस्तृत वर्णन नायक, नायिका, धार्ष्ट, सहेली, देखने वाले आदि पात्रों के वक्तव्यों के द्वारा इस प्रेम-काव्य-पद्धति में प्रस्तुत किया जाता है। एक और बात उल्लेखनीय है कि प्रेमी - प्रेमिका के प्रेम-सम्बन्ध का समाचार सुनकर भी उनके माता-पिता उनके विवाह के लिए सहमत नहीं होते तो, प्रेमी 'मडल' पर चढ़कर अपनी तीव्र प्रेम की परीक्षा देकर प्रेमिका को प्राप्त करने की घोषणा करता है। प्रेमीन्मत व नायक नगर के किसी चौराहे पर लड़े होकर अपनी प्रेमिका का चित्र दिखाकर यह धमकी देता है कि प्रेमिका के न मिलने पर वह 'मडल' पर चढ़कर आत्म हत्या कर डालेगा। ताड़ की सीखी डालियों से बनी घोड़े पर सवार होने से शरीर में चोट लगती है और उससे मून बह निकलता है। यह प्रेम की परीक्षा है, जिस पर उचीर्ण होने पर प्रेमी को प्रेमिका अवश्य मिल जाती है।

बालुवारों ने प्रेम-काव्य की ऊपर वर्णित पद्धति को पूर्ण-रूपेण अपनाया। संप्र साहित्य के वही नायक-नायिकाओं के कथन, धार्ष्ट, सहेली तथा दर्लक के कथन आदि प्रसंगों को लेकर बालुवारों ने प्रेम-सम्बन्ध का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है। इस पद्धति में प्रेम के दोनों पक्ष-संयोग और वियोग की सभी दशाओं का सर्वांगीण वर्णन हो जाता है। बालुवारों ने पूर्ववर्ती प्रेम सम्बन्धी काव्य रुढ़ियों से लाम उठाकर लौकिक प्रेम के स्थान पर अलौकिक प्रेम अर्थात् मन्त्र और परमात्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट किया। इसी कारण प्रबन्ध में संगृहीत अधिकांश खनार-विशेषकर नम्पालुवार, तिरुमी बालुवार, कृत्तेश्वरालुवार और बांडाल की खनार माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं।

#### बांडाल का स्वतः सिद्ध माधुर्य-भाव

जहाँ दूसरे बालुवारों को भगवान् के प्रति मधुर-भाव को अभिव्यक्त करने के लिए स्वयं को स्त्री रूप में कल्पित करने की आवश्यकता थी, वहाँ बांडाल के विषय में उस कल्पना की भी आवश्यकता न थी। वह स्त्री थी। अतः उनका पुरुष रूप भगवान् से प्रेम सीधा था और स्वाभाविक भी। बांडाल



को स्वप्न से ही "मुरली माधव" ने जाकभित कर लिया था। वह भगवान् को अपनी पत्नी हुई मालाई वर्णित करती थीं और झुहर में यह देखा करती थीं कि क्या वह लीलानाथ को वरने योग्य हैं? बाँडाल का प्रेम धीरे-धीरे बढ़कर पूर्णावस्था को पहुँच जाता है तो उनकी स्थिति कृष्ण-मिलन के लिए भूली गोपी की सी हो जाती है। वह कहती हैं :- "० जैसे ब्राह्मणों के यज्ञ में देवताओं को लक्ष्य करके वर्णित की जाने वाली हवि को कोई जंगली सियार छुपने लगे, वैसे ही, चक्रधर, शंखधर भगवान् को लक्ष्य करके उभरे हुए भरे उरोधों को यदि मानवों के उपभोग्य बनाने की चर्चा चली, तो है मन्मथ । मैं जीवन धारण नहीं करूँगी ।"

बाण्डाल की कविता प्रेम - पीड़िता नारी की विभिन्न भावावस्थाओं का सुन्दर चित्र है। कभी तो प्रियतमसे मिलने की वात्सा करती हैं, कभी प्रियतम की निष्ठुरता पर करुणा-ग्रन्धन करती हैं, प्रिय-वियोग-विच्छेद में अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन करती हैं। मिलन के लिए तड़पती हैं। इस प्रकार के कितने ही भावों से बाँडाल के गीत जीतप्रोत हैं। कोकिल, चतुर बादि चैतन तथा भेष, शंख बादि निर्जीव वस्तुओं तक से प्रिय की बातें कर बैठती हैं और अपना सन्देश प्रियतम तक पहुँचाने का निवेदन उन्हीं करती हैं :- "मस्त हाथी के समान उठने वाली है भेषी । मुक्ता-निधि बरसाने वाले है दानियों, तुम्हीं बताओ । सुन्दर साँवरे की बात क्या रही ? हृदय में कामाग्नि जल रही है और मलय पवन के रूप में बाहर भी अग्नि-धारा बह रही है। इस जाघी रात में मैं इस तरह दोनों ओर से मुत्स रहीं हूँ । मेरी इस दशा पर तनिक तरस ली खाओ ।"

१- "वानिहं वालुम बव्वानवर्णं मर्यम्बर वेत्तुवियित्तं ककुत्तं अवि  
कानिहं तिलिहोर नरि कुन्दु कडप्पुम मोपपुम वेत्तुवदीप  
ऊ निहियाली शंतु उत्तर्कन्दु उन्निहिलुन्द एन तडमुत्तु  
मानिहकेन्दु पेत्तुपडित्तं वालुफिल्लेन कण्डाय मन्मथे ॥"

- नाच्चियार तिरुमोली १-५१

२- मामुत्त निधि चैरियुम मामुक्लिक्कात्तु । वैक्कटु  
चामधिनिर्कोण्ड ताडालन वातियन्ने ।  
कामवीयुत्त कुन्दु कडुवपट्ट , इत्तंयुत्त  
एवोर तेन्दुत्तु ईकिल्लकाय नानिरुपेने । - नाच्चियार तिरुमोली ८-२

हे मेघो । तिरुक्कट पर्वत पर वास करनेवाले शेषशायी भगवान् द्वारा दिया गया वचन कितना विश्वसनीय था । जब वह सत्य से कितना दूर हो गया । वह पुरुष जो लोगों का रक्षा कहलाता है, अज्ञातः "स्त्री-हता" के वध का कारण बना, अगर इस प्रकार का अपवाद संसार में फैल जाय तो कौन उसका वादर करेगा<sup>१</sup> ?

बाण्डाल की दोनों खनाई- "तिरुप्पावै" और "नाच्चियार तिरुमोली" - मधुर-भाव के अष्टितीय क्लाहरण हैं । "तिरुप्पावै" में श्रीकृष्ण की प्राप्त करने के निमित्त गौपियों द्वारा पालित व्रतवर्या ( कार्त्यायिनी व्रत ) का वर्णन है । "तिरुप्पावै" में बाण्डाल स्वयं गौपी बनकर अन्य सत्वियों की कार्त्यायिनी व्रत रखने के लिए बाह्वान करती है। "नाच्चियार तिरुमोली" के छठे दशक में बाण्डाल ने स्वप्न में माध्व के साथ होने वाले अपने विवाह का वर्णन किया है :-

" सति , सुम्नोहर सप्ता देसा  
मधुसूदन को जाते देसा ॥

गव सहस्रत्र वरसव सव जाये ।  
पुर मा तौरण से वति भाये । ।  
वर वर फट धर बहु जन जाये ।  
रथ गव सुन्दरतम बहु लाये ॥ " २

मम प्रिय हरि को जाते देसा ।

सति, सुम्नोहर सप्ता देसा ॥

रत्न मूर्धन व डोल क्वाये ।  
माल फट मन- मोहन गाये ॥  
सज्जित मण्डप में प्रिय जाये ।  
कर में कर ले, नेत्र मिलाये ॥

१- मत्तयाने पौलेन्द मामुक्लिक्कात् । वैकटै ।

पत्तियाळ वात्तवीरुक्कात् । पौर्णमास वात्तियेन् ॥...

जहाँ येनातेन्नुम चोल वैयक-तार मदियारे ।  
वही ॥ ८-६

२- नाच्चियार तिरुमोली ६-१

मम मन- नृप को बाँधे देखा ।

दासी को अपनाते देखा ॥ १

( भावानुवाद )

वाँडाल में वे सब बातें देखने को मिलती हैं, जो गोपियों में हैं । वाँडाल ने श्रीकृष्ण की उपासना गोपी- भाव से ही की थी । इस प्रकार वाँडाल ने मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों के सम्पुल मधुर भाव का एक उच्च वादक होइ रहा था ।

“ प्रबन्धम् ” में गोपी- प्रेम को चित्रित करने वाले अनेक प्रसंग हैं । गोपियों के इस अनेक- रूप प्रेम की काँकी प्रसुत रूप से निम्नलिखित प्रसंगों में मिलती हैं।

१- वेणु माधुरी

२- रास- लीला ( बालुवारों की “ कृष्णकृत ” )

३- राधा ( बालुवारों की “ नयिनी ” ) और कृष्ण की केलि झीझर

४- भ्रमरगीत ( बालुवारों का “ भ्रमर- सन्देश ” )

“ प्रबन्धम् ” के इन प्रसंगों में वर्णित गोपी- प्रेम को पारवर्ती कवियों ने कहीं एक तत्परता और निष्ठा के साथ हृदयंगम एवं वात्स्यात् कर अपनी सकल प्रतिभा और भक्ति- भावना से उसे और भी निराल गंभीर और हृदयकारी बना दिया ।

वेणु- माधुरी और उसका प्रभाव-

गोपियों को कृष्ण की ओर बाकृष्ट करने में श्री कृष्ण की मुरली का बड़ा हाथ है। कृष्ण के मुरली- नाद में एक अद्भुत शक्ति है जो समस्त

१- नाचियार तिरुमोली ६-६

जड़- चेतन जगत् को अपने कण में कर लेती है। "प्रबन्धम्" में वेणु- माधुरी के प्रभाव का बड़ा ही विस्तृत वर्णन है। परवर्ती कृष्ण- मन्वत- कवि इससे बहुत प्रभावित हुए हैं और इसका प्रतीकार्य भी लिया गया है।

मुरली की ध्वनि सभी प्राणियों के मन को हर लेती है। उसका सबसे अधिक प्रभाव गोपियों के हृदय पर पड़ता है। "परियाल्वार तिरुमोली" के तीसरे शतक के डूठे दशक में मुरली माधुर्य और उसके प्रभाव का सुन्दर वर्णन है, जो संक्षेप में नीचे दिया जाता है :-

"कृष्ण ने अपने ई पवित्र बघर में मुरली को रखकर बजाया। कितना वात्सल्य ! उस ध्वनि को सुनते ही कौतूहल से पुरित स्तनवाली गोप कुमा- स्त्रिकाओं के कोमल शरीर पुनःकृत हो गये और वे प्रभाववश सास, ससुर बादि के बन्धनों की भी परवाह न कर बाहर बायीं और सूत्रबद्ध पुष्प- समूह की तरह स्ख- वित हो गयीं।"

"गोविन्द ने अपने चिह्न के बायें भाग को बायें मुख की ओर मुकाकर, दोनों हाथों को मुरली पर रखकर, अपनी प्रभुटियों को एक विलक्षण प्रकार से, हवा भरकर, नीचे के जोड़ को संकुचित कर वेणु को बजाया। उस समय मृगवन्ती, मधुर- सम- सुन्दर गोप- कुमारियों के केश- बन्धन छूट गये। (काम-

१-" नावलम पेडिय दीविनिल वालुम मीमीरुत्तु । इदु वीर वरुंदम केरीर  
तुवलम्पुरियुडैय तिरुमात्त तूय वायिळ कुललोले वलिये  
कोवलर विरुमियर इल्लोर्के कूळलिप्प उडलुविलुन्दु शेनुम  
कावलुम कडन्दु कयिरुमल याकि वन्दु कविलुन्दुनिन्दुनरे ॥ "

- परियाल्वार - तिरुमोली ३-६-१

२-" छवणारे छवोलीहु चाञ्चु  
इरुके कूटप्परुवम नेरिन्देर  
कुडवयिरु पळ्वाय कडै कूड  
गोविन्दन कूळकोहु ऊदिन पीडु  
मडमयिल्लोहु मानपिणै पीले  
मीयास्सु कूतल वविलु ..... निन्दुनरे ।

- वही ३-६-२

वश ) अस्त व्यस्त होने वाले अपने वस्त्रों को अपने करों से संभालकर वे कृष्ण की ओर देखती रहीं । ”

“ गौविन्द ने जब वेणु- गान किया, उस समय उसके नाद- बाल में फँसकर अप्सराएँ भी वृन्दावन की ओर जायीं । वृन्दावन में जाकर भिखे हुए मन, वानन्दायु से पूरित पुष्प- सम- नयन , ढीली बनी लट, पसीने हुए ललाट से युक्त होकर, मग्न होकर वेणु- गान का आस्वादन कर रही थीं । ”

“ कृष्ण के वेणु- नाद को सुनकर तिलोत्तमा, उर्वशी रमा आदि अप्सराएँ भी मोहित हुईं और अपने नृत्य, गान आदि को छोड़कर स्वर्ग और भूलोक के बीच में स्थिर रह गयीं । ”

१- ”

वानितम पडियार वन्दुर्वतीण्डी  
मन मुरुकि मत्तवर्णुण्कल पनिय्य  
तेनल्लु पैरि कून्तलविलुञ्चेन्नि  
वैपञ्चेवि चेत्तु निन्दूनरे । ”

- परियाल्वार तिरुमोली ३-६-३

२- ”

मेर्कियोडु तिलोत्तमै वरम्बै  
उरुप्पयियारवैरु वैल्कि मय्यी  
वानकम पडियिल वाय तिरुप्पिन्द्री  
वाडलपाडलवैमास्तिर तामै । ”

- वही ३-६-४



“ ----- वैष्णु- नाद का प्रभाव इतना था कि वीणा-  
जाने में निपुण तंबुरु नारदादि महर्षियों ने वीणा- वादन को तत्काल त्याग  
दिया । किन्नर नामक देव- जाति के लोग वही किन्नर वाद्य को वागे न बूने की  
सफ़ा कर निवृत्त हो गये । ”

“ कृष्ण की अत्यन्त मृदु उंगलियाँ मुस्ली के छिद्रों पर  
चलने लगीं । ताल कम्प- सम नेत्र बंद हो गये । वंशी-जाने के परिश्रम से मुँह  
फैल हो गया । मोहों के ऊपर फ़ीनि की बूँदें जम गयीं । इस प्रकार की  
वैष्टित सौन्दर्य के साथ गोविन्द द्वारा वंशी-जाने समय पक्षियों का समूह नींद  
त्यागकर जा गया और कृष्ण के सामने इस प्रकार फैल गया, मानों काटे हुए  
वृक्षों का वन ही सामने पड़ा हो । गायों के झुण्ड घेर फैलाकर, शिर झुका-  
कर कानों को बिल्कुल हिलाने भी नहीं देते थे । ( क्योंकि कान के हिलाने से गाना-  
मृत के नष्ट होने का स्वाभाविक भय उन्हें था । ) ”

१- “ -----

नन्तरङ्ग्यं तुंभुरुं वीह  
नारदनुम तम तम वीणी मरन्दु  
किन्नरं मिहुरंस्तुम तम तम  
किन्नरम वीहुरं किलोमिन्द्रनरे ॥ ”

- पेरियाल्वार तिरुमोली ३-६-५

२- “ चिरु विरल्लत तहवीपरिमारैण

कोहञ्जेव्वाय कोप्पलिप्प  
कुरुवेर्यप्पुरुवम कूडलिप्प  
गोविन्दन कुल्ल कोहु ऊदिन वीह  
परैयिन गणकल कूहु तुरन्दु  
वन्दु वृन्दु पङ्काहु विदुप्प  
कसैयिन गणकल कात परप्पिट्टु  
कविलिक्करी वैवियाट्ट किल्लावे । ”

- वही ३-६- ८

“ मुरली के सुमधुर नाद को सुनेवाले पूरा गण जो समीपवर्ती वनों में बर रहे थे, तत्काण घास चरने को भी भूल गये। चबाने के लिए मुँह में पकड़े से रखी घास के धीरे धीरे नीचे गिर जाने का भी वे ध्यान नहीं करते थे। अमृत मय संगीत-जाल में फँसकर बेबुध हो गये। इधर उधर लक्ष्मण भी न हिलकर गतिहीन हो सींचे हुए चित्र की भाँति निस्तब्ध भाव से खड़े रहे। ”

### रास-लीला ( बालवारी की "कुरवैकूट्टु" )

यद्यपि "प्रबन्धम्" में कहीं भी "रास" शब्द का प्रयोग नहीं है, तथापि रास-लीला का पैसा वर्णन परवर्ती साहित्य में मिलता है, ठीक उसी का वर्णन "कुरवैकूट्टु" प्रसंग के अन्तर्गत "प्रबन्धम्" में मिल जाता है। तमिल प्रदेश में कई कथारें प्रचलित थीं जिनमें कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ किये गये अनेक प्रकार के नृत्यों के उल्लेख हैं। इन नृत्यों में "कुरवैकूट्टु" का विशिष्ट स्थान प्राचीन तमिल ग्रन्थों में बताया गया है। बालवारी-पूर्व संघोषर काल की रचना "चित्तम्पधि-कारम्" में इस "कुरवैकूट्टु" का उल्लेख है जिसको बालवारी में "प्रबन्धम्" में अपनाया है। श्री दीक्षितार "कुरवै कूट्टु" का परिचय देते हुए लिखते हैं :-

"This Kuravai Kuttu, we proceed to identify with Rasa krída which is described in Bhagavata (X ch. 33). According to a description in the Silappadikaram, the celebrated Tamil classic of 2nd century A.D., seven or nine cowherdesses engage in it each joining her hands to those of another. This dance is said to have been originally danced by Krishna with cowherdesses." (2)

१-“ मरुण्डु मान गणकस मेळी मरन्दु  
मेळन्द पुल्लुम कळेवाय वलि चोर  
हरण्डु पाहुम तुलगाण्डु पेयरा  
सुण्डु चित्तिरुल पौलिनिन्दुनवे । ”

② "Krishna in early Tamil literature," article by Sri. V.R.R. Dikshitar in "Indian Culture", Vol. IV, (37-38) pages 267-70.

स्त्री 'कुरुवैकुण्ठ' का वर्णन 'प्रबन्धम्' में मिलता है जो रास-लीला से साम्य रखता है। 'प्रबन्धम्' में मिलनेवाला रास-लीला-वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है :- " सुन्दर सुगन्धित वनमाला श्री कृष्ण के गले पर शोभित है। मञ्जर-पत्र से युक्त मुकुट को शिर पर धारण कर, सुन्दर मृदु वस्त्र को कमर पर बाँधकर, कानों पर सुमनों के गुच्छे रखकर शौरभ युक्त कुसुमों से शोभित कूँतलवाली गोप-कुमारिकाओं के बीच मुरली बजाते हुए, उन्हें मोहित कर, उनके कर्णों को अपने कर्णों में लेकर नृत्य करते करते आनन्दित होते थे। शब्द मृदु और वसुत का सा आनन्द देते हुए श्रीकृष्ण ने नवयौवना कुमारिकाओं के साथ खेलते खेलते प्रेम-प्रवाह बहाया था।

बालवारीयों के कुरुवैकुण्ठ-वर्णन ने परवर्ती संस्कृत साहित्य में रास-लीला की संज्ञा प्राप्त की होगी।

राधा- ( बालवारीयों की "नप्पिन्नी" )

कृष्ण की प्रेम्िकाओं में तमिल ग्रन्थों में "नप्पिन्नी" का

१- पेरुमाळ तिरुमोली ६-६

२- तिरुवायमोली ४-२-२

३- तिरुनेल्लुत्ताण्डकम, १६

४- तिरुवायमोली ८-८-४

५- पेरिय तिरुमोली ३-८-८

६- डा० विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं :- " इसके अतिरिक्त 'कुरुवैकुण्ठ' नामक तमिल नृत्य विशेष का भी इसी लीला प्रसंग में उल्लेख है। श्रीकृष्ण इस नृत्य में स्वयं भाग लेते थे। यह नृत्य श्रीकृष्ण की रासलीला का समकक्ष प्रतीत होता है। कतः पाँचवीं छठी शताब्दी में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दक्षिण के बालवारीय वैष्णवों में रासलीला और राधाकृष्ण युगल के लिये विनोद का कोई न कोई रूप विद्यमान था जो परवर्तीकाल में और व्यक्त और स्पष्ट होता गया। "

- राधावलुलभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० १८१- १८२

विशिष्ट स्थान बताया गया है। "प्रबन्धम्" में ही नहीं, बल्कि उसके पूर्व के "चिंता-मणि" , "चित्तप्यधिकारम्" , "मणिमैत्रेय" , आदि ग्रन्थों में कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका "नप्पिन्नी" का उल्लेख है। आलुवारों ने भी "नप्पिन्नी" का वर्णन कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका - गोपी के रूप में सर्वत्र किया है। कृष्ण-नप्पिन्नी की कैलि-श्रीद्वारों को सूचित करने वाले अनेक प्रसंगों का वर्णन प्रबन्धम् में है। तमिल कथाओं के अनुसार वह लक्ष्मी का अवतार है। कृष्ण ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार सात वृषभों को बल में कर कन्याशुल्क के रूप में "नप्पिन्नी" को प्राप्त किया था। नप्पिन्नी के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन अनेक स्थलों में किया गया है। "सुन्दर कुन्तलवाली मधुर जैसी कोमल देहवाली नप्पिन्नी" का उल्लेख पेरियाल्वार ने किया है। बांडाल भी "तिरुप्पावै" के पदों में जहाँ वे अपने को गोपी मानकर अन्य गोपियों को जगाने का वर्णन करती हैं वहाँ श्रीकृष्ण की प्रमुख प्रेमिका नप्पिन्नी का भी उल्लेख करती हैं :-

"जाघी जी" नप्पिन्नी "देवी ।

लक्ष्मी रूपे कुम्भकुवे ।

विन्समाचरपुटपुल्लोमे ।

सूक्ष्म टिटटे कुटिल कवे ।

दपण-दर्शन, चामर-वीजन

तुम प्रियतम को दे करके ॥

----- ॥ " १

यही "नप्पिन्नी" पार्वती संस्कृत साहित्य में तथा उसके माध्यम से मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य में "राधा" नाम धारण

१- तिरुप्पावै - २०, श्री कस्तूरी रंगाचार्य का अनुवाद



करती है। श्री दीप्तिनार ने लिखा है :- "We venture to conjecture that Nappimai is the Tamil name of Radha." ②

### भ्रमरगीत-

"प्रबन्धम्" में कृष्ण-वियोग में तड़पने वाली नायिका द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजने के बने प्रसंग हैं। जब नायिका नायक के जागमन की प्रतीक्षा कर रक्ख जाती है, तब वह कोकिल, भ्रमर आदि चेतन प्राणियों से शूल, भेष आदि निर्जीव वस्तुओं से अपनी स्थिति का परिचय देकर निर्दयी स्वामी के पास सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। इनमें भ्रमर द्वारा सन्देश भेजने के प्रसंगों का उपयोग "तिरुमोली आलवार और नम्मालवार ने किया है।" इन प्रसंगों में प्रेम-पीडित नायिका (गोपिया) निर्दयी नायक (श्रीकृष्ण) के पास सन्देश भेजती है। इस सन्देश में नायिका की दुर्दशा का हृदय-द्रावक वर्णन है, नायक की निर्दयता, कष्ट-पूर्ण व्यवहार आदि का भी उपात्तन भरे शब्दों में वर्णन है। इसी प्रसंग का विस्तार कर पद्यती कवियों ने "भ्रमरगीत" काव्य रचा होगा।

१- "----- इनमें कृष्ण के साथ उनकी एक प्रसूत गोपी का भी वर्णन है। इस गोपी का नाम "नप्पिन्नी" है। कल्पना की जा सकती है कि यह राधा ही है।" - डा० शशि अग्रवाल - हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य पर पुराणों का प्रभाव, पृ० १६२

२- V. R. R. Dikshitar, "Indian Culture", vol. IV (37-38) pages 267-70.

- ३- (१) परिय तिरुमोली ३-६-१ से १०  
 (२) परिय तिरुमोली ८-४-१ से १०  
 (३) तिरुविरुत्तम, ५४



3RACKBOND  
DE IN SWEDEN

\*\*\*\*\*

द्वितीय खण्ड

\*\*\*\*\*

चतुर्थ अध्याय

\*\*\*\*\*

\*\* भक्ति- तुलनात्मक अध्ययन \*\*

\*\*\*\*\*

3RACKBOND  
DE IN SWEDEN

## बाल्यार भक्त और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि

### भक्ति - तुलनात्मक अध्ययन

#### भक्ति की व्याख्या और महिमा-

साधना और उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्ति-पथ की शैष्ट्यता और महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिन्ता-धारा का सबसे ऊँचा स्वर रहा है। "भक्ति" का मूल व्युत्पत्त्य है भगवान् का "सेवा प्रकार"। किन्तु भक्ति की परिभाषा उस कार्य तक सीमित नहीं रही। भगवान्, भक्त और उनके सम्बन्धों की विभिन्न व्याख्याओं के आधार पर भक्ति के कार्य में संकोच या विस्तार होता रहा।

भक्ति की सबसे अधिक प्रबलित और सरल परिभाषा भक्त राज शांडिल्य की है, जिनके अनुसार "ईश्वर में परा अनुरक्ति ही भक्ति है"। शांडिल्य ने वात्सरति के अविरौधी विषय में अनुराग को भी भक्ति कहा है। अवि-हिन्न रूप से मुद वात्म स्वल्प में रत रहना ही वात्म रति है। इस प्रकार जहाँ शांडिल्य की प्रथम परिभाषा ईश्वर के सगुण रूप के उपासकों की दृष्टि से है, वहाँ दूसरी में निर्गुण अव्यक्त की उपासना करनेवालों के दृष्टिकोण का भी समावेश है।

"नारद-भक्ति-सूत्र" में बताया गया है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। नारद जी ने आगे लिखा है कि "भक्ति वपुत स्वल्पा है,

१- यह "भज्" सेवायाम् धातु से भाव में "क्तिन्" प्रत्यय लगाकर बना है।

२- "सा परानुरक्तिरीश्वरे" - शांडिल्य भक्ति सूत्र २

३- "वात्सरत्यविरोधेति शांडिल्यः" - नारद भक्ति सूत्र, संख्या १८

४- प्रेम दर्शन, १८ में सूत्र की व्याख्या पृ० २४

५- प्रेम दर्शन पृ० २४

६- "सा त्वत्किम् परमप्रेमरूपा" - नारद भक्ति-सूत्र २

जिसको पाकर मनुष्य विद्व और वृष्ट हो जाता है, जिसे पाकर मनुष्य किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करता । न वह शोक करता है, न वह भेज करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उस वस्तु से उत्साहित होता है। वह आत्मानन्द के साक्षात्कार से सांसारिक विषयों से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है। नारद जी के मत से कौरा प्रेम भक्ति नहीं है। माहात्म्य ज्ञान अपेक्षित है। कौरा प्रेम नार-प्रेम सा है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

“ मनुष्यों के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान् कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे । ऐसी भक्ति से ज्ञानन्द स्वरूप भगवान् की प्राप्ति करके भक्त कृतकृत्य हो जाता है। ” भागवतकार के अनुसार उस वृत्ति को भक्ति कहते हैं जिससे सांसारिक विषयों का ज्ञान देनेवाली इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्ति निष्काम रूप से भगवान् में लग जाय ।

श्री निम्बार्कचार्य का मत है कि रूपादि विषयक वर्णात् भगवान् के रूप , गुण आदि के विषय में समग्र चित्त को व्याप्त करने वाली मनोवृत्ति ही उत्कृष्ट भक्ति है।

श्री बल्लभाचार्य ने भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है-

१- अमृत स्वल्पा च (३) यत्तद्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति , अमृतो भवति, वृष्टो भवति (४) नारद- भक्ति- सूत्र

२- यत्प्राप्य न किंचिद्विहति न शोचति , न हेष्टि न रमति नोत्साही भवति (५) ----- तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यक्तादः (२२) तद्विहीर्न जारा- णाम्नि । (२३) - नारद भक्ति सूत्र

३- स वै कुंसां परोधर्मा यतो भक्तिरधोदायि ।

वर्हेतुव्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रीदति ॥ भागवत १-२-६

४- भागवत स्कन्ध ३ अध्याय २५ श्लोक ३२- ३३

५- “ इन्द्रिय- वृत्ति वदनवच्छिन्नस्वाभाविक- भगवत्स्वरूप गुणादि विषयक- यावदात्मवृत्ति मनोवृत्तिः ”

- भागवत संप्रदाय , ले० श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ३४८ से उद्धृत

भगवान् में माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ़ और सत्त स्नेह ही भक्ति है। भुक्ति का इससे अधिक सरल कोई दूसरा उपाय नहीं है।

नारद पांचरात्र के अनुसार प्रेम परिलुप्त मन का भगवान् के प्रति स्वार्थ रहित होकर सदा प्रवाहित होते रहना ही भक्ति है। "भक्ति रसायन" में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गयी है - "मन की उस वृत्ति को भक्ति कहते हैं जो बाध्यात्मिक साधना से द्रवीभूत होकर भगवान् की ओर प्रवाहित होती है।"

श्री हनुमान् गौस्वामी ने अपने ग्रन्थ - "हरि भक्ति रसायन" में भक्ति की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने भक्ति का यह लक्षण किया है - "श्रीकृष्ण का अनुसृत रूप में अनुशीलन, जिसमें अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा न हो और ज्ञान, कर्म आदि का उस पर आवरण न हो तो भक्ति कहलाती है।"

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है- "अदा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ अदा भावन के सामीप्य-लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई स्पर्शों के साक्षात्कार की वासना ही तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव सम्पन्न हो जाता है।" वास्तव में भक्ति प्रेम का ही स्वरूप है। प्रेम में जिस प्रकार निष्ठा होती है, उसी प्रकार भक्ति में भी होती है।

१- "माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः

स्नेही भक्तिरति प्रीतस्तया भुक्तिर्नवान्यथा ।

- सत्त्वार्थदीप निबन्ध, ज्ञान सागर पर्वट, श्लोक ४६ पृ० १२७

२- मनीषतिरविच्छिन्ना हरी प्रेमपरिप्लुता ।

अभिसंधिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवर्त्मनी ॥ - नारद पांचरात्र

३- हृतस्थ भगवदमात् धारावाहिकतांगता ।

सर्वैस्ते मनसो वृत्तिः भक्तिरित्याभिधीयते ॥ - भक्ति रसायन १-३

४- "अन्यामिलाणिता शून्यं ज्ञानरूपमनावृत्तम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुचमा ।

- हरिभक्ति रसायन चिन्हु, पूर्व विभाग, लहरी श्लोक ११

५- चिन्तामणि भाग १ - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४० संस्करण १९४५

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति की व्याख्या विद्वानों ने अपने अपने ढंग से की है। सारांशतः यह कहा जा सकता कि ईश्वर के प्रति भक्त का परम प्रेम ( अथवा सम्बन्ध ) ही भक्ति है जो अवैतुकी है और जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए सरल, परन्तु राजमार्ग है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति की व्याख्या में बाचार्यों ने विशेष रूप से सेवा, प्रेम और अनुरक्ति को ध्यान में रखा है ।

बालुवार भक्तों ने और बालोच्य कालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों ने भक्त-जीवन की रम्य कान्तियां प्रस्तुत की हैं । बालुवारों का नित्य जीवन का दाण दाण तन्मयाभित का सजीव उदाहरण था "प्रबन्धम्" लता दिव्य प्रमाण है। अतएव बालुवार सज्जित भक्त भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन के पक्ष में नहीं पड़े । जाने जानेवाले भक्तों के लिए जो, मार्ग उन्होंने उन्मुक्त किया उसी पर चलकर परवर्ती बाचार्यों ने जीवन की कृतकृत्यता समझी । अतः "प्रबन्धम्" को भक्ति का सधु ग्रन्थ ही मानना चाहिए । भक्ति के सदाण, विवेचन वादि का कार्य परवर्ती बाचार्यों का था । फिर भी बालुवारों के साहित्य तथा बालोच्य-कालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों के साहित्य में भक्ति के विविध रूप के दर्शन होते ही हैं । भक्ति का शास्त्रीय विवेचन न करने पर भी बालुवारों ने तथा बालोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों ने भक्ति की महिमा का गायन अवश्य किया है। बालुवारों ने योग, तपस्या आदि को व्यर्थ सिद्ध कर भक्ति को ही सरल तथा निश्चित रूप से फल देने वाली कहा है। सर्वांगिक दुःख से छूटकर परमानन्द व प्राप्त करने के लिए योग, तप इत्यादि सब व्यर्थ है, केवल भक्ति ही कैकुष्ठ-प्राप्ति करा सकती है। भक्ति से जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है। कलियुग के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए एक मात्र साधन भक्ति है। भक्ति-फल पर बाह्य व्ययित कभी नरक नहीं पहुँच सकता । भक्ति के बिना जीवित व्ययित अपनी माँ के

१- मेरिय तिरुमोली ३:२:२

२- नान्मुल्ल तिरुवन्तादि ७६

३- तिरुवाय मोली ५-२-१०

४- तिरुमालि २

५- वरुण्डा तिरुवन्तादि २९



गर्म को कलंकित करनेवाला है। बालुवारी के अनुसार वह जीव, जीव नहीं है जिसने हरि की भक्ति नहीं की। वह जीव अपराधी है, पृथ्वी के लिए भार-स्वल्प है तथा वह जीवित ही नरक भोगी है। नम्माळ्वार ने कहा है कि भगवान् भक्तों के लिए सुलभ हैं, दूसरों के लिए दुर्लभ हैं।

बालोव्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी सुक्त कंड से भक्ति की महिमा घोषित की है। सुरदास जी ने कहा है कि भक्ति के बिना भगवान् दुर्लभ हैं। नन्ददास भक्ति की महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते हैं - " हे भगवान्, तुम्हारी पीयूषमयी भक्ति के बिना कोई सिद्ध भी सुक्त नहीं पा सकता। ज्ञानी, योगी तथा कर्ममार्गी लोगों को परम पद पाना बहुत कठिन है। अष्टांग विधि के अनुसार कर्म करते हैं। किन्तु अन्त में तुम्हारी शरण में जाकर

१- चेरियाल्वार <sup>तिरुमोळी</sup> ४ : ४ : २

२- " पडुंयडियवुरुक्कैलियन पिरुलुवकरिय ।

विक्कन मलरमल्ल विरुन्मुम नम वरुमपेरुलुल्लिकल

मलुरु कडै वेण्णै कलविनिल उरविडै याप्पुण्डु

रविरम उरल्लोडु इण्णोन्दिरुन्नु रंगिय रल्लिवै ।

- तिरुवायमोली १-३-१

३- रे मन समुक्ति सोचि- विचारि ।

भक्ति बिनु भगवत दुर्लभ कहत निगम पुकारि ।

००

००

००

सूर जी गोविन्द भजन बिनु चले दोऊ करझारि ।

- सूर सागर, प्रथम स्कंध, पद संख्या ३०६ ना० प्र० स० काशी

और तुम्हारी भक्ति पाकर ही मुक्ति-साम प्राप्त करते हैं। " श्री हित हरिवंश मनुष्य शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं- " मानुष की तन पार्श्व भर्जा रघुनाथ की। " श्री हरिराम व्यास ने भक्ति को ही भवसागर से पार जाने का एक मात्र उपाय कहा है तथा उन्होंने भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी मार्गों को असत्य माना है- " भव तारिणि को एक उपाय। " — साधी भक्ति और सब फूँटी। "

१- जब विधि कहत ग्यान है जोई , भक्ति बिना सोउ सिद्ध न होई ।

तुम्हरी भक्ति जमी सस सरवर, मोक्षादिक जाके कस निर्कर ।

तिहि तजि न केवल बोध को, करत कलेस चित सोध को ।

००

००

००

हो प्रभु बहुतक भोगी, तजि तजि भोग भये मल बोगी ।

हुद बष्टांग जोग अनुसार , ग्यान हेतु बहुते तप करे ।

बति भ्रम जानि कहाँ तें फिर, तुम कहूँ कर्म समर्पन करे ।

तिनकर हुद भयो मन कर्म , तब सीनी प्रभु तुम्हरे कर्म ।

काया भवन करि पार्श्व भक्ति, जामे संग फिस्त सब मुक्ति ।

ता करि वात्म तत्व को पार्श्व , बैठे सहज परम गति पाइ ।

— दशम स्कन्ध , अध्याय १४ , नन्ददास-शुक्ल पृ० २६१

२. श्री हित स्फुट बाणी जी, पृष्ठ १.

३- व्यास बाणी पृ० ६६

४- वही पृ० ६७

### सगुण- निर्गुण ब्रह्म और भक्ति-

भक्ति जिस उपास्य देव के प्रति होती है, उस वाराध्य ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं - निर्गुण या परब्रह्म और सगुण या अपर ब्रह्म । सगुण सविशेष, साकार और सौपाधि है, निर्गुण गुण, विशेषण, वाकार और उपाधि से परे है। निर्गुण ब्रह्म वह है जिसे किसी विशेषण, चिह्न या लक्षण से लक्षित किया नहीं जा सकता । सगुण ब्रह्म वह है जिसको किसी गुण, चिह्न या विशेषण द्वारा पहचाना जा सकता है, और जिसका स्वरूप हृदयमय किया जा सकता है। वास्तव में ब्रह्म निराकार भी है और साकार भी । बालुवार भक्तों ने यद्यपि ब्रह्म के दोनों रूप सगुण और निर्गुण माने हैं, तथापि उन्होंने सगुण ब्रह्म की महत्ता स्थापित की है । पीयूषाक्षर का कथन है-<sup>१</sup> " भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है, जिस नाम को चाहते हैं, वही उसका नाम है। भक्त जिस ढंग से भी उपासना करें, उसी ढंग से विष्णु भगवान् उनका उपास्य बन जाता है।<sup>२</sup> " बालुवार वर्न्तयामी निर्गुण ब्रह्म का भी वर्णन करते हैं और साथ ही साथ उस रूप सगुण ब्रह्म का भी । किन्तु उन्होंने सगुण ईश्वर की उपासना को ही विशेष महत्त्व दिया है। बालुवारों के अधिकांश गीत विभिन्न मन्दिरों में विभूषित भगवान् के अवतार स्वरूपों की स्तुति में रचे गये हैं । उनके वाराध्य सगुण ब्रह्म हैं जिनके विशिष्ट गुणों, रूपों और शक्तियों का संगोपांग वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है। नम्पालवार ने सगुण, साकार ब्रह्म को ही सर्व सुख सिद्ध किया है।<sup>३</sup> अधिकांश बालुवारों ने सगुण ईश्वर की उपासना का भाव ही अपने पदों में प्रकट किया है। उनके पदों में उन्होंने अपना यह निश्चित मत

१- " तमरुफन्द एवुरुवम वव्युरुवम ताने  
तमस्कन्दतु एप्पेर म्पुप्पेर- तमरुफन्दु  
एव्वण्णम चिंचितु म्मेयादिरुप्पेर  
वव्वण्णमालियानाम । "

- मुदल तिरुवन्तादि , ४४

२- तिरुवाय मोली ३ : ६ : १- १०

तथा अनुमति प्रकट की है कि सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सुगम और सीधे फल देने वाली है। पेरियाल्वार की विभिन्न चैष्टाई करने वाले धनश्याम भगवान् के बाल- रूप ही अधिक प्रिय हैं। बाण्डाल लीलनायक कृष्ण के मनमोहन रूप पर मुग्ध हैं। स्पष्ट है कि बालुवार सगुण ब्रह्म के उपासक हैं।

बालोच्चकालीन हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों ने भी सगुण भक्ति पर ज़ोर दिया है और कहीं कहीं निर्गुण भक्ति पर व्यंग्य कहा है। सूरदास और नन्ददास के भंवर- गीतों का गोपी- उदब- संवाद स्त्री सगुण- निर्गुण स्व भक्ति ज्ञान के विवाद को प्रकट करता है। इन कवियों ने सगुण ईश्वर की भक्ति की अधिक प्रभावमयी सिद्ध क किया है। सूरसागर के आरम्भ में “अविगत गति कहू कहत न आवै” वाले पद में सूरदास ने निर्गुणोपासना में होनेवाली कठिनाई का उल्लेख किया है। वे कहते हैं - “निर्गुण ईश्वर की गति न तो कहने में आती है और न उस अव्यक्त पर भरे मन की भावमयी वृत्ति ही ठहरती है। इसलिए सब प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उसकी लीला के पद गाता हूँ।” परमानन्ददास ने भी एक पद में सगुण भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए, निर्गुण उपासना के योग- साधना का काशी में प्रचार करने को कहा है और कहा है - “मस्म लगाकर उदासी बेल धारण करने वाले संन्यासी लोग काशी में हैं। हम तो यहाँ ब्रज में सुन्दर श्याम के उपासक हैं।”

१- अविगत गति कहू कहत न आवै ।

ज्यों गुँगे पीठे फल को हस अंतरगत हीं भावै ।

परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।

मन- बानी कौं जग- कोचर, सो जानै जो पावै ।

रूप- रेल- गुन- जाति- जगति- किनु निरालंब कित धावै ।

सब बिधि जगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन- पद गावै ॥”

- सूर सागर, प्रथम स्कन्ध पं० सं० २ ना० प्र० समा, काशी

२- धनि धनि वृन्दावन के वासी ।

नित प्रति चरन कमल अनुरागी, श्यामा श्याम उपासी ।

या हस को जो मरम न जानै जाय कसो सो कासी ।.....

- परमानन्द सागर ( सं० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ) पं० सं० ८३६



नन्ददास ने भी निर्गुण ईश्वर की दुर्लभता तथा उसकी छोड़कर सगुण ईश्वर की भक्ति को अपनाए का भाव प्रकट किया है।

मीरा के प्रभु तो गिरधर नागर हैं। मीरा ने भगवान् के सगुण रूप को ही स्वीकार किया है। वे कहती हैं :-

तू नागर नन्दकुमार, तो सौ लाग्यो नेहरा ।

मुरली तेरी मन हर्यो, बिसर्यो ग्रह व्योहारा ॥ २

१- जब बिधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहि समान दुषट नहिं जान ।

००

००

००

जहि रूप न रस न क्रिया, तिहि लालन अवलंबि लिया ।

सहजहि सून्य समाधि लगाई, तेत हैं तामें तुम्हो पार ॥

पे यह सगुण सख तुम्हारी, हमो मन सोयो जात हमारी ॥

ये कहुत अवतार जु तेत, विस्वहि प्रतिपालन के हेत ॥

नाम रूप गुन कर्म अनन्त, गनत गनत कोऊ लहे न अंत ।

००

००

००

सही तब भगतिहिं कसरे, तुम्हरी कृपा मनावी करे ।

कब मोपे नन्दनन्दन डरिहैं, मधु कटाव्ह चित रस मरिहैं ॥

- नन्ददास ग्रन्थावली सं० १४ पृ० २६६ दशम स्कंध भाषा,

ना० प्र० समा, काशी

२- मीरा की फावली - श्री परशुराम चतुर्वेदी, फ० सं० १०५



बीर-

मेरी मन बसिगी गिरधर लास ली ।  
 मोर मुहुट पीताम्बर, गल वैजन्ती माल ।  
 गऊवन के संग डोलत, हो जसुमति की लास ।  
 कालिन्दी के तीर हो, कान्हा गऊवाँ चरास ।

००

००

मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिधि चित लास ।  
 तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कहूँ न सोहास ॥ १

रसज्ञान ने निर्गुण ईश्वर जीर भक्ति के विषय में कोई कथन नहीं किया । परन्तु उन्होंने जितना भी काव्य लिखा है उससे उनकी भक्ति दृग्गुण ही कही जा सकती है। रसज्ञान के निम्नलिखित सर्वे से स्पष्ट है कि उनके दृष्ट की गोपी-वत्सल कृष्ण हैं :-

“गार्वे गुनी गनिका गन्धर्व जीर सासु सैस सबे गुन गार्वे ।  
 नाम जनन्त गनन्त गनेस ली, ब्रजा त्रिलोचन पार न पार्वे ॥  
 जोगी जती तफसी बरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लावत ।  
 ताहि बहीर की झोहरियाँ झड़िया भर काहूँ पै नाच नचावत ॥ २

भक्ति के प्रकार -

भक्ति की जाचार्यों ने प्रसूतया दो भागों में विभाजित किया है - गौणी भक्ति और परा भक्ति । यह विभाजन भक्ति के साधन और साध्य पदा पर आधारित है। मन की स्वाध्याय से भगवान् का भवण, कीर्तन, भजनादि भक्ति का साधन पदा है। साधन भक्ति में बाह्य साधनों द्वारा साध्य-भक्ति दृष्ट की और उन्मुख

१- मीरा की फदावली - सं० परशुराम चतुर्वेदी फ० सं०

२- रसज्ञान का जमर काव्य - दुर्गा चंकर फि० पृ० ५२

होता है। भगवान् में परानुरक्ति या सिद्ध दशा की भक्ति उसका साध्य पद है ।  
 मौणी भक्ति अर्थात् साधन भक्ति के भी दो भेद हैं- वैधी और रागानुगा<sup>१</sup> । वैधी  
 भक्ति शास्त्रोक्त विधि-विधानों द्वारा की जाती है। वैधी भक्ति को कुछ लोग  
 मर्यादा भक्ति भी कहते हैं । इसके जैक अंग हैं । जैसे साधु-सत्संग, कृष्ण हेतु  
 मीमांसा त्याग, कीर्तन आदि । जिस भाव से भगवान् के प्रेम में अपूर्व रस का  
 आनन्द होता है और जिस प्रेम-भाव से भक्त के हृदय में परम शान्ति और आनन्द  
 उत्पन्न होता है, उसे "रागानुगा भक्ति" कहते हैं । श्री कृष्णस्वामी ने रागानुगा  
 भक्ति के भी दो भेद किये हैं- काम रूपा और सम्बन्ध रूपा<sup>२</sup> । वैधी भक्ति और  
 रागानुगा भक्ति दोनों साधन-पदा की हैं ।

साधन रूपा भक्ति के पांच अंग माने गये हैं -

- १- उपासक
- २- उपास्य
- ३- पूजा द्रव्य
- ४- पूजन-विधि,
- ५- मंत्र-जप ।

तन्त्र - ग्रन्थों में मंत्र - जप को विशेष महत्व दिया गया है और इसके पांच  
 तत्त्व माने गये हैं :-

- १- गुरु - तत्त्व
- २- मन्त्र-तत्त्व
- ३- मनस्तत्त्व
- ४- देवतत्त्व तथा
- ५- ध्यान तत्त्व ।

१- " वैधी रागानुगा वेति सा विधा साधनाविधा । "

- हरिमयित रसावृत- सिन्धु - पूर्व विभाग - २ श्लोक ३

२- " सा काम रूपा सम्बन्ध रूपा वेति भवेद्विधा "

- वही , श्लोक ६३

इन तंत्र-ग्रन्थों में भक्ति का मंत्र योग का एक जग माना है।

जब सब कामनाओं से रहित होकर भक्त की भगवान् में परा-  
नुरक्ति हो जाती है तब वह पराभक्ति कहलाती है। इसमें भक्त पूर्ण शान्ति की अव-  
स्था को पहुँचता है और उसे किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रहती। परा भक्ति  
साध्य स्वर्णा है। इसमें साध्य सत्य की प्राप्ति के अतिरिक्त किसी भी साधन की  
आवश्यकता नहीं रहती। परा भक्ति ६ प्रकार की मानी गई है :-

- १- सिद्धा - हर वक्ता में भगवान् का स्मरण करते रहना
- २- प्रेम लक्षणा - भगवान् के प्रेम में मग्न, उनके संयोग में  
प्रसन्न और वियोग में विकल होना।
- ३- निष्कामा - भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी सुख या  
मोक्ष की चाह न करना।
- ४- दुर्लभा - सारे संसार को ईश्वरमय देखना
- ५- अनन्या - अन्य आश्रय त्यागकर एक भगवान् का आश्रय हो  
लेना
- ६- निर्गुणा - अस्तित्व विश्व में एक मात्र भगवान् को सब  
कृष्ट समझकर किसी भी भावना से भगवान् में लगना। २

परा भक्ति के ये जो ६ भेद हैं, वास्तव में ये भक्ति-भाव के  
६ पहलू हैं जो एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं।

श्रीमद्भागवत में साधक के स्वभावानुसार भक्ति चार प्रकार  
की बताई गई है- सात्त्विकी, राजसी, तामसी तथा निर्गुणा। तामसी भक्ति  
निम्न कोटि की है। वह क्रोध से चिंता, कर्म और मत्सरता को लेकर भेद-दृष्टि से  
की जाती है। राजसी भक्ति लौकिक विजय, यश और ऐश्वर्य की कामना से भेद-

१- प्रेम भक्ति योग - श्री देवदास जी महाराज पृ० ३०

२- वही पृ० ४४-४५

३- श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय २६, श्लोक ७-१४

४- श्रीमद्भागवत ३-२६-८

दृष्टिपूर्वक केवल प्रतिमादि के पूजन के रूप में की जाती है<sup>१</sup>। जो मन्त्र पापों के नाश के लिए अपने पाप-पुण्य सब भावदार्पित कर देता है और आनन्द भाव से ईश्वर में आसक्ति रखता है, वह सात्त्विक भक्त है। वैधी भक्ति-निर्गुणा भक्ति को <sup>सुखा</sup> सुखा-भार भक्ति कहा गया है। इसमें किसी वस्तु की कामना नहीं रहती। यह निष्काम भक्ति है। यही जन्य भक्ति है।

श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में साधना-यत्ना की ध्यान में रखकर भक्ति के नौ भेद माने गये हैं, जो 'नवधा भक्ति' तथा 'नवविधा य भक्ति' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये 'नवधा भक्ति' इस प्रकार हैं - भवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, कर्त्तव्य, वन्दन, दास्य, सत्य और आत्म निवेदन<sup>२</sup>। प्रथम तीन भवण, कीर्तन और स्मरण श्रद्धा और विश्वास की वृद्धि के सहायक हैं। पाद-सेवन, कर्त्तव्य, वन्दन रूप सम्बन्धी साधन हैं तथा दास्य, सत्य और आत्म निवेदन भाव सम्बन्धी साधन हैं। भक्तों ने पीछे कहे तीन भावों के अतिरिक्त वात्सल्यादि अन्य भाव भी भगवान् के साथ लगाये हैं। दास्य, सत्य और आत्म निवेदन रागात्मिका भक्ति से सम्बन्ध रखते हैं और भवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, कर्त्तव्य और वन्दन वैधी भक्ति के अंग हैं। अंतिम आत्म-निवेदन इस नवधा भक्ति की चरम परिणति है। आत्म निवेदन ॐ नमो भगवते वासुदेवाय में साधन और साध्य एक हो जाते हैं। वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति में होता है और रागात्मिका भक्ति आत्म निवेदन में पूर्णता को प्राप्त करती है। यही आत्म निवेदन आत्म समर्पण में परिवर्तित होता है, जिसमें शरणागति का भाव सर्वोपरि रहता है।

१- श्रीमद्भागवत ३-२६-६

२- वही ३-२६-१०

३- भवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

कर्त्तव्यं वन्दनं दास्यं सत्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पूजार्पिता विष्णो भक्तिश्चैव नववर्णा ।

क्रियते भगवत्यद्वा तन्मन्ये धीतमुदमम् ॥

- श्रीमद्भागवत , सप्तम स्कंध , अध्याय ५ श्लोक २३, २४

ऊपर हमने भक्ति के भेद- प्रभेदों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की है। इस प्रकार भक्ति का लक्षणादि शास्त्रीय विवेचन आचार्यों का कार्य था। ऊपर कहा जा चुका है कि बालवार भक्तों ने इस प्रकार भक्ति का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। कहीं भी उन्होंने भक्ति के भेद- प्रभेदों को गिनाने की आवश्यकता नहीं समझी है। यह भी कहा जा चुका है कि प्रबन्धम् भक्ति का लक्ष्य ग्रंथ है, लक्षणा- ग्रन्थ नहीं। परवर्ती आचार्यों द्वारा किये गये भक्ति के विविध भेदों, उभेदों के उदाहरण प्रबन्धम् में मिल जाते हैं। बालोच्चकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों में कुछ ने भक्ति के प्रकारों की चर्चा की है सुरदास ने भक्ति के चार प्रकारों का उल्लेख किया है -

१- सात्विकी

२- रासी

३- तामसी और

४- सुधा सार

सुरदास ने भागवत प्रतिपादित नवधा भक्ति के अतिरिक्त एक प्रेम लक्षणा भक्ति का भी उल्लेख बल्लभ मत के अनुसार किया है। उन्होंने दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति का उल्लेख इस प्रकार किया है :-

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अर्चन, बन्दन, दास ।

सत्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास ॥ १ ॥ २

परमानन्ददास ने भी इन भक्तियों का उल्लेख किया है :-

१- माता भक्ति चारि प्रकार, सत सत तम गुण सुधासार ।

भक्ति सात्विकी चाहति मुक्ति, सौगुणी धन कुटुम्ब अनुरक्ति ।

तमोगुनी चाहि या माई मम पैरी बयो ही मर जाइ ।

सुधा भक्ति मोदा को चाहि, मुक्तिहू की नहि अवगाह ॥

- सुरदासर, तृतीय स्कन्ध, ना० प्र० सभा

२- सुर चारावली, सुरदासर वे० प्र० पृ० ५ तथा पृ० ६६



ताते नवधा भक्ति मली ।

जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेह न जनत बली ।

श्रवण परीक्षा तरे राजरिणि कीर्तन करि हुकदेव ।

सुमिरन करि प्रह्लाद निर्मय मयो कमला करो पदसेव ।

प्रभु वरचन, सुकल सुत वन्दन दासभाव हनुमंत ।

सदा भाव अर्जुन बस कीन्हें श्री हरि श्री मगवत ।

बलि आत्म समर्पण करि हरि राखे अपने पास ।

वक्ति प्रेम मयो गोपिन को बलि परमानन्ददास ॥ १

श्री सेवक जी ने स्पष्ट कहा है कि श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति के उपरान्त दसवीं प्रेम सदाणा भक्ति उपलब्ध होती है, और श्री हितहरिवंश ने भी यही कहा किया था ।

श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे ।

जोरी कर्म सकाम सकल तजि सब भजे ।

साधन विधि प्रयास ते सकल विहावहीं ।

श्रवण कथन सुमिरण सेवन चितलावहीं ॥

अर्चन वन्दन बहू हार्तन, सत्य और आत्मसमर्पण

ये नव सदाणा भक्ति बढाई, तब नि प्रेम सदाण पडि ॥

- श्री हित सुधा सागर ( श्री सेवक बाणी जी ) पृ० २६१

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि आलवार<sup>१</sup> भक्तों ने भक्ति के भेद नहीं गिनाये हैं, तथापि उनकी रचनाओं में भक्ति के विविध रूपों के दर्शन मिलते हैं । जिसे नवधा भक्ति की संज्ञा मिली है, उस भक्ति के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में "प्रबन्धम्" में मिल जाते हैं। आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त

१- परमानन्ददास फल-संग्रह पद सं० ३१४

कवियों की रचनाओं में भी नवधा भक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

### नवधा-भक्ति

#### श्रवण-

भगवान् के नाम, स्मृति, महत्ता, गुण तथा उनकी लीलाओं का अज्ञापूर्वक सुनना या सुनाना श्रवण भक्ति है । श्रवण भक्ति की चरम अवस्था वह है जब बिना भगवान् के गुण और चरित्र के सुने भक्त केवल रह जाता है । बालवारी की संपूर्ण वाणी भगवान् के नाम और लीला सुनने और सुनाने से सम्बन्ध रखती है। लीलाओं का वर्णन कर उनकी समाप्ति में उन्होंने बहुधा, उनके सुनने और सुनाने का माहात्म्य बताया है। देखिए :-

- (१) विष्णु चित ( पेरियाल्वार ) के इन लीला-गीतों का श्रवण करने वाले कैकुठ-वास प्राप्त करेंगे ।
- (२) कुलसेत्तुर के इन तमिल-गीतों का श्रवण करने वालों के कष्ट दूर होंगे ।
- (३) परमात्मन् ( तिरुमोली बालवारी ) के इन गीतों का गायन करने वाले भक्तों के पाप मिट जायेंगे ।

१- श्रवणं नाम चरित गुणदीनां श्रुति भवति ।

- श्रीहरि भक्ति स्तामृत सिन्धु, पूर्व विभाग लहरी २, श्लोक ३२

२- वल्लाल्लिर्मल्लं चरन्धुरन्त, विल्लाल्लुने विट्टुचिन्न विरिच ।

चोत्तान्ता अप्पुन्नि पाडल ज्वे पत्तुम वल्लार पोय कैकुन्तम मन्निरुप्परे ।

- पेरियाल्वार तिरुमोली २-१-१०

३- कौंगर कोन कुलसेत्तुर सोन्न चोल , श्रु वल्लकुरु स्वमोन्दिर्त्तये ॥

- परमात्म तिरुमोली ४ : ६

४- कलियार पत्तुव वल्लान कलियोलीमाले , निलियार पाडल पाड पावम् निल्लायै ।

- पेरिय तिरुमोली ६-६-१०

(४)

गोविन्द की लीलाओं का वर्णन करने वाले इन गीतों का गायन कर प्रसन्न होने वाले भक्तों को भगवान् की शरण प्राप्त होगी ।

अन्य भी बालवाराँ ने भवण भक्ति की महिमा गाई है । नम्पालवार का कहना है कि भैर कान सर्वदा भगवान् की लीला के गान स्वी कलों का ही सेवन करेंगे । पोयी बालवार ने कहा है कि भगवान् के पावन नामों का भवण करने वाले नरक नहीं पहुँचेंगे । तौंडरडिपोडी बालवार कहते हैं - " अत्यन्त सुन्दर शरीर विह्वल जैसे मुँह, कमल-दल-सीवन वाले घनश्याम भगवान् के " वक्ष्युत " देवों के अधिपति " गोकुल नाथ " आदि नामों के सुनने से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी तुलना में इन्द्र लोक पर शासन करने से प्राप्त होने वाले सुख को भी मैं नहीं चाहता । "

सूरदास, नन्ददास तथा अन्य बालोच्चकालीन हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने भी कृष्ण की अनेक लीलाओं का चिन्तन किया है और उन लीलाओं की समाप्ति में बहुधा उनके सुनने और सुनाने का माहात्म्य कहा है। भवण भक्ति का प्रभाव सूर के शब्दों में सुनिए :-

१- " जो यह लीला सुने सुनावे, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावे ।

१- पेरियालवार तिरुमोली २-६-११

२- " चैक्किलालार निन कीर्ति वकनियेन्नुम कविकले - " तिरुवाय मोली ३-८-६

३- मुवल तिरुवन्तादि ८७

४- पञ्चमामलेपील मेनि पवलवाय कमलचैरण

वञ्जुता । अमररेरे । वायरतम कोलुन्दे । इन्नुम

इञ्जुवै तविर यान पोय इन्द्रलोकम् बालुम

वञ्जुवै पेरिनुम वैटेन अरुमानगरुत्तानि ।

- तिरुमाले , २

५- सूर सागर, नवम स्कंध , ना० प्र० समा , काशी

(२) "जो यह स्तुति सुने सुनावे, सूर सो ज्ञान-मन्त्र को पावे ।"<sup>१</sup>

(३) "सूर कह्यो श्री सुख उच्चार, कहे सुने सो तर भवपार ।"<sup>२</sup>

"रासर्पवाध्यायी" की समाप्ति में भवण मन्त्र की महिमा का वर्णन करते हुए नन्ददास लिखते हैं :-

"जो यह लीला गावे चित्त वै सुने सुनावे ।

प्रेम मन्त्र सो पावे बरु सक्के जिय भावे ॥

भवण कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि ।

ग्यान सार हरि ध्यान सार भुक्तिभार गुणी गुनि ।।"<sup>३</sup>

परमानन्ददास कहते हैं :-

"ब्रह्मन कथा स्यामसुन्दर की राम कृष्ण खना नहिं फूरति ।

मानुस जनम कहाँ पावैगे ध्यान धरे स्याम चतुर मति ॥

जो यह लोफ परम सुख राक्त बरु परलोक करत प्रतिपाल ।

"परमानन्ददास" की ठाकुर बति गंभीर दीननाथ दयाल ॥ ४

मीराबाई के काव्य में भी भवणा मन्त्र की महिमा अनेक स्थलों पर बतायी गयी है :

"राम नाम रख पीजै मनुजा, राम नाम रख पीजै ।

रज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चर्चा सुन लीजै ॥ ५

भक्त अपने प्रिय भगवान् का नाम केवल भक्तों से ही सुनने की इच्छा रखते हैं, बल्कि पदियों की बोलियों में भी उसी का गुण गान सुनते हैं । बांढाल कहती है - "फिंके में फड़े रुक भी सदा 'गोविन्द', 'गोविन्द' कह

१- सूर सागर , दशम स्कंध , ना० प्र० सभा

२- वही , दशम स्कंध , ना० प्र० सभा

३- नन्ददास ग्रन्थावली , रास पंचाध्यायी पृ० २४ ना० प्र० सभा

४- परमानन्दसागर ( सं० डा० गौ० ना० शुक्ल ) पद संख्या ८२६ पृ० २६९

५- मीरा की पदावली , सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १६६



कर चित्लाता है। अगर मैं उसको कुछ खाने को नहीं दूँ, तो वह बेचारा बीर भी ज़ोर से "गोविन्द, गोविन्द" कहकर भगवान् को पुकारता है। इस प्रकार सूर की एक गोपी भी पपीहे के साथ प्रेम दिखाती हुई कहती है :

" बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारी ।

बाहर नाऊँ लै बीलत भयो विरहज्वर कारी ।

००

००

००

बाहि लागै सोई पै जानै प्रेम बाण बनियारी ,

सुरदास प्रभु स्वाति हूँ लगि सज्यो सिंधु करि सारी । " २

### कीर्तन-

भगवान् के नाम, गुण , माहात्म्य, लीला आदि का वर्णन, गान तथा उच्च स्वर से पाठ कीर्तन कहलाता है। कीर्तन की महिमा सभी भक्तों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है। आखबारों के समस्त पद स्तुतिपरक कीर्तन ही हैं। वैष्णव मन्दिरों में गाने के निमित्त ही वे स्ने गये। इन कीर्तनों को गाँई गाकर भक्त आत्म विभोर हो जाते थे।

गुण गान भगवान् का ही हो सकता है। उसी में आनन्द है, लौकिक पुरुषों के गुण- गान में नहीं। नम्माळ्वार ने लौकिक पुरुषों का गुण

१- " कूटितिरुन्दु किलि रप्पीडुम

गोन्दा । गोविन्दा । स्मृत्तैवकुम

ऊट्टवकोटाडु वैरुप्पनाकिल

उत्तलन्दानेन्दानेन्दु उयवकुमुम "

- नाच्चियार तिरुमोली १२ : ६

२- सूर सागर, दशम स्कन्ध , ना० प्र० सभा

३- नाम लीलागुणादीनामुक्त्वं भाँगा तु कीर्तनम् ।

- श्री हरि भक्ति स्यामृत सिन्धु, पूर्व विभाग २ सहरो श्लोक २६



गान करने वाले कवियों को चैतावनी दी है— हे कवि । तुम नश्वर मनुष्यों का गुण गान प्रसन्न कर भी मत करो । उस अनन्त आनन्द दाता भगवान् का गुण गान करो । ”  
 पेरियाल्वार कहते हैं - “ भगवत्- स्तवन नहीं करने वाले मनुष्य जो जल पीते हैं, जो वस्त्र पहनते हैं, उन वस्तुओं का दुर्भाग्य है । — भगवान् का गुण गान ( कीर्तन ) करने वाले भक्तों के चरणों के स्पर्श से ही यह प्रभु की धन्य है । ” पेरियाल्वार बारें कहते हैं कि पैरी जिह्वा भगवान् की स्तुति के अतिरिक्त कुछ नहीं करेगी । भूवताल-वार के अनुसार भगवान् के गुणों की सीताओं की स्तुति करना ही तप करने के समान है । चैर राजा कुलैसर भगवान् के नाम- संकीर्तन में सक्त लगे भक्तों की सेवा करने में ही श्रेष्ठ सुख मानते हैं ।

१- “ वल्लल पुळुन्दु तुम वाळ्मस्तवकुम पुलवीरकाल ।  
 कोल्ला कुरैविलन वैळ्ळिट्टल्लाम तरुम कोदिल ल  
 वल्लल मणिवण्णन तन्नेवकवि चोल्लवमिन्नी । ”

- तिरुवाय मोली ३-६-५

२- पेरियाल्वार तिरुमोली ४:४: १

३- “ नाथन नरसिगनै नविन्दैवुवा कल्लविकय  
 पाद तुति पडुदल्ल इळ्ळुकम पौळ्कि यम चैरुतै । ”

- पेरियाल्वार तिरुमोली ४ : ४ : ६

४- “ नावकु उन्नैयल्लाल वरियादु  
 नानदंभुनेन लन वचमन्दु

----- “ वही , ५ : १ : १

५- “ स्त्री पणित्तवन परै ईमुरु एप्पोलुदुम

चार्ति युरैल तवम् । ” इरुप्ताम तिरुवन्तादि , ७७

६- नावुयैला नारणवेन्दु जेतु मेळुलुम्ब तौलुदु

स्त्री इन्पुरुम तौडर चैवडी स्त्री वालुमेन नैवमे ।

तिरुमोली  
 - पेरुमाल २ : ४

जालवारों के स्तुति- गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संगीत का समावेश है। संगीत का प्रभाव विश्वव्यापी है। जालवारों के स्तुति पर एक मन्त्रित गीतों को गाते गाते मन्त्र बहुधा जानन्दातिरिक्त से नाच उठते थे। विभिन्न राग- रागिनियों में गाने योग्य जालवारों के कीर्तनों ने जनता पर ब्रह्मिष्ठ प्रभाव डाला है।

सूर आदि अष्टज्ञाप - भक्तों का संपूर्ण काव्य भी भक्ति के कीर्तन साधन और उसका बड़ा अंश प्रेम भक्ति के "पद" रूप में ही लिखा गया है।

अष्टज्ञाप - भक्त पद रचयिता ही नहीं थे, बल्कि उच्च कोटि के गायक भी थे। अतः उनकी कीर्तन - भक्ति का नमूना उनका संपूर्ण काव्य ही है। कीर्तन की महिमा और उसके प्रभाव का वर्णन सूरदास, इस प्रकार करते हैं :- "गोपाल के गुण गान से जो आनन्द मिलता है, उसके आगे जप, तप तथा तीर्थाटन क्या चीज है ? हरि-कीर्तन से पुत्र-प्राप्त्य मित्रता और तीन लोक का सुख तुम्हें प्रतीत होगा ।" परमानन्ददास के मत में भगवान् कृष्ण की कथा का श्रवण, गुणों का कीर्तन आदि भक्ति के साधन फलदायक हैं। मीराबाई ने कहा है - "भगवान् के नाम लेने और गुणगान करने के उपरान्त कठोर तपस्वी भी हँसते हैं।"

१- जो बूढ़ होत गुपालहिं नाथ ।

सो नहीं होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये ।  
 दिये सेत नहीं चारि पदारथ चरण कमल बित लाये ।  
 तीन लोक तृणा सम करि सेतत नन्दनन्दन ऊर जाये ।  
 वही बट वृन्दावन यमुना तजि केहुँठ को जाये ।  
 सुरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव जल जाये ।

- सूरसागर सं० सूर समिति पद सं० ३४९

२- मंगल पाथी नाम उच्चार ।

मंगल वदन कम्पल कर्ममंगल मंगल जन की लदा संभार ॥  
 दैस्त मंगल पूजन मंगल गावत मंगल चरित उदार ।  
 मंगल चरन कम्पल सुनि मंगल कीरति जगत निवास ।  
 वन्दित मंगल ध्यान धरत सुनि मंगल मति परमानन्ददास ।

- परमानंद सागर ( सं० डा० गो० ना० सु० ) पृष्ठ सं० ५८७

से पाप कट जाये और जन्म सफल होगा । ”

### स्मरण-

भगवान् के नाम, उनके गुण, माहात्म्य, उनकी सर्व व्या-  
पकता, लीला आदि का सदा ध्यान रखना तथा उन्हीं के स्मरण में लीन रहना  
स्मरण मन्त्रित है । इस मन्त्रित के साधन में भगवान् के नाम का जप विशेष महत्व  
रखता है। साधक की चित्तवृत्ति इस ध्यान में इतनी रम जानी चाहिए कि चले  
फिरते, लगे - पीते इष्टदेव ही का स्मरण बराबर जाना चाहिए । स्मरण-  
मन्त्रित का उदाहरण नाम्नालवार से सुनिए । वे कहते हैं :- जो जल में पीता हूँ,  
जो मांस खाता हूँ, जो पान खाता हूँ, सभी वस्तुएँ कृष्णमयी दीखती हैं, सभी में  
भगवान् का स्मरण जाता है। स्मरण-मन्त्रित की महिमा प्रायः सभी भक्तों ने कही  
है । परियालवार कहते हैं कि जो भगवान् का नाम स्मरण नहीं करते वे बड़े पापी  
हैं । जिस व्यक्ति का मन भगवान् का स्मरण नहीं करता, वह व्यक्ति इस पृथ्वी  
के लिए मार-स्वरूप है। पौर्णी आलवार का कथन है कि प्रातःकाल से लेकर वैष्ण

१- मेरो मन रामहि राम स्टेरे ।

राम नाम जप लोके प्राणी, कोटिक पाप कटेरे । ”

- नीरा की फावली - सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० २००

२- ” ध्यानं रूपुण्णोडासवादेः सुष्ठु चिन्तनम् । ”

- हरि मन्त्रित स्थापृत चिन्तु, पूर्व विभाग, लहरी २ श्लोक ३३

३- उण्णुम चीरु परुण्णुम नीर तिन्नुम वेद्रिलेसुमेल्लाम

कण्णन रम्पेरुमानेन्ने कण्कल नीर मत्की

मण्णिणुल जवन भीर वलम मिवकवन्नुर विनवी

तिण्णम स्व इल्लमान प्पुमुर तिरुवकील्लेरे ।

- तिरुवाय मोली ६-७-१

४- नेमि चेर तट्टेनाइने निनेप्पिलावल्लि मैनुंदे ,

मुमि- पारुक्कु ण्णुम चोद्रिने वाक्की पुल्लै तिणिमिने ।

- परियालवार तिरुमोली ४ :४: ५

भवत जिसका स्मरण करते हैं, जिसका वप करते हैं, वह भगवान् का ही नाम है ।  
 पेयालवार कहते हैं कि भगवान् का स्मरण मन में एक बार करने मात्र से भगवान् मन  
 में वास कर बैठते हैं। कृपा- सिन्धु भगवान् का नाम स्मरण नहीं करने वाले व्यक्तियों  
 को मनुष्यों की कोटि में मानने को तैयार नहीं हैं। उनके अनुसार वे मनुष्य निम्नकोटि  
 के प्राणी हैं । तौंडरडिपोही बालवार की मान्यता है कि भगवान् के नाम का स्मरण  
 करने वाला नरक नहीं पहुँच सकता ।

बालोच्चकालीन हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों ने भी स्मरण-  
 भक्ति का पर्याप्त महत्व माना है। हरि- स्मरण- भक्ति के विषय में सुरदास जी  
 का कहना है- " सब की हरि भगवान् का स्मरण करना चाहिए । हरि स्मरण है  
 सब सुख प्राप्त होते हैं । भुति और स्मृति सब का मत है कि भगवान् के चरणों में  
 चित लगावों । हरि स्मरण के बिना मुक्ति नहीं है। दिन- रात उसी का स्मरण  
 करो । मेरे विचार में सौ बातों की बात यह है कि हरि का स्मरण करो । "

१- " काले स्तुन्दु उत्कम्पनवुम कद्रुणान्दु  
 मेलैलैमरैयोर वेदपनवुम- वैलैवकण ।  
 वीरातियानडिये वीत्तुवदुम वीपनवुम  
 पिराली कोण्टान पेयर । " - मुदल तिरुवन्तादि ६६

२- " मैजाल निनैप्परियैलुम निलैपेट्टु एन ।  
 मैजमे । पेवाय निनैवृकाल मैजु  
 पिरादु निर्कुम पेरुमानै एन कोलो ?  
 वीरादु निर्पेट्टु उणैवु । " - मुन्द्राम तिरुवन्तादि ८१

३- " चिरन्ताहुँ एलुणायाम वैकण्णाल नामम  
 मरुन्तारे मानिडमायेयम ॥ " - इरुटाम तिरुवन्तादि ४४

४- तिरुमाले , १२

५- " हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, हरि हरि सुमिरत सब सुख कोई ।  
 हरि समान द्वितीय नहीं कोई , हरि चरणनि राखी चित गोई ॥  
 भुति स्मृति सब देखो जोई , हरि सुमिरत होई सो होई ।  
 हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई , बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई ।  
 - सूर सागर द्वितीय स्कंध , पद सं० ४६२३ ना० प्र० समा



परमानन्ददास ने अपनी स्मरण-सक्ति का परिचय देते हुए कहा है कि मैं सदैव यशोदा नन्दन का ही चिंतन करता हूँ<sup>१</sup>। परमानन्ददास जी का एक और प्रसिद्ध पद है जिसमें कवि ने कहा है :- “ है हरि , मुझे तुम्हारी लीला की याद आती है। तुम्हारी मोहिनी मूर्ति मेरे मन के भीतर ही भीतर, अनेक चित्र उपस्थित कर रही है। तुम्हों स्तब्धों जिसको तुम एक बार अपना संयोग दे देते हो, वह तुम्हारी एक अवलोकन और मृदु मुस्कान को कैसे भूल सकता ? तुम्हारी याद कभी आगद आलिंगन का सुख देती है तो कभी तुम्हारे-मधुर स्वर में मिल कर गाने लगती है । जब तुम छिप जाते हो तो याद में मेरी बेतना “ कहाँ हो, कहाँ हो ” कहकर छछर उछर दौड़ने लगती है। कभी मेरी अन्तरात्मा नेत्र मूँद कर तुम्हें सर्वस्व अर्पण करती हुई बनमाला पहनाती है। उसी प्रकार मैं श्याम के ध्यान में विरह की बड़ियों को बिता रही हूँ<sup>२</sup> । ”

१- जहिं जहिं चरन कमल माघो तहीं तहीं मन मोर ।

००                      ००                      ००

००० चिंतन करौं जसोदा नन्दन मुदित साँफ अरु मोर ।

००                      ००                      ००

परमानन्ददास की जीवनि गोपिनि पट फफफोर ॥

- परमानन्द सागर ( सं० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ) पद सं० ८४६

२- हरि तेरी लीला को सुधि आवति ।

कमल नैन मन मोहनी मुरति मन मन चित्र बनावति ।

एक बार जाय मिलत मयाफरि सो कैसे बिसरावति ।

मृदु मुस्कानि के अवलोकनि बली मनोहर भावति

कबहुँ निवह तिमर आलिंगनि कलहुँ फि स्वर भावति ।

कब हूँ संगम<sup>३</sup> बवासि<sup>४</sup> - “ बवासि<sup>५</sup> करि संगहीन उठि धावति ।

कब हूँ मन मुँदि अन्तराति बनमाला पहिरावति ।

परमानन्द मृदु श्याम ध्यान करि ऐसे विरह गंवावति ॥

- परमानन्द सागर ( डा० गो० ना० शुक्ल ) पद सं० ५६३

कहा जाता है कि इस स्मरणासक्ति वाले पद को सुनकर बाबाय्य बल्लभ अपना देहा-नुसंधान तो बंटे थे । - लेखक



### पाद-सेवन-

जो लोफ-सेवा एक स्वाभाविक सेवा अपने स्वामी की करता है, और अदापूर्वक स्वामी के चरणों में अपने मन को लगाता है, भगवान् के प्रति भक्त की ठीक उसी प्रकार की सेवा पाद-सेवा है। लोफ में सेवा का जो व्यवहार अपने स्वामी के प्रति होता है, वंसा कार्य भगवान् के लिए भक्त को करना चाहिये। इस सेवा के लिए भगवान् का बाह्य जगत् मानस प्रत्यक्ष स्वरूप होना आवश्यक है। पाद-सेवन की आरम्भिक अवस्था मूर्तिपूजा, गुरुपूजा तथा वैष्णव पूजा में होती है। इन सेवा के अभ्यास के बाद जब भक्त को दास्य प्रेम में स्फूर्ति वा जाती है तब वह मानसिक जगत् में भगवान् के कर्मात्मक चरणों की सेवा करता है। इस प्रकार बाह्य तथा मानसिक, दोनों प्रकार के पाद-सेवन से लोफाश्रय का भाव हूट जाता है और भक्त में भगवान् के प्रति दीनता और वर्जितता का भाव जागृत होता जाता है।<sup>१</sup> " लोफ के प्रति वह उदासीन होकर नितान्त निर्भर हो जाता है।

वाल्मीकि भक्तों ने विभिन्न वैष्णव मन्दिरों में विराजमान भगवान् के कर्मा-विग्रहों की पाद-सेवा की थी। गुरु-स्तुति में लिखे गये मधुर कवि वाल्मीकि के 'कण्ठानुलचिरुतांबु' के पद गुरु-पाद-सेवा-भक्ति के उदाहरण हैं। इसी प्रकार कृष्णराजवाल्मीकि जैसे भक्तों ने भगवद् भक्तों के प्रति भी सेवा और

१- अष्टाश्रय और वल्लभ संप्रदाय पृ० ५७

२- पेरुमाल तिरुमोली १ : ३ और

" नास्ता धर्म न कसुनिबये मेव कामोपयोगे  
यद्ममर्थं भवतु भगवान् पूर्वकर्मानुत्तरं  
स्तत्प्राप्त्यै मम बहुमत जन्म जन्मान्तरं पि  
त्वत्पादाभ्योरुह सुगता निश्चला भवितरस्तु ।

- मुकुन्दमाला, श्लोक ५

" नित्यं त्वच्चरणारविन्दकुल ध्यानमृता स्वादिनां  
वस्माकम् सखीरुहादा सततं संपवर्ता जीवितम् । "

- वही श्लोक २०

ब्रह्मा का माय प्रकट किया है और उनकी साक्षात् भगवान् का स्वरूप कहा है ।  
इन भक्तों ने मानसिक पाद-सेवा-साधन में कृष्ण के चरणों को हृदय मन्दिर  
में स्थापित कर उनकी प्रेम और ब्रह्मा से पूजा की है। पीछी बालवार कहते हैं :-  
“ हे भगवान् । अगर मैं किसी की चाह करूँगा तो वह बाप के चरणों की  
सेवा ही है । --- मैं बापके चरणों को अपने चिर पर धारण करूँगा । ( उसमें  
मुझे गौरव है ) --- ” ।

नम्माळ्वार कहते हैं - “ भगवान् के श्री चरणों की स्तुति  
न करने वालों को जन्म-मरण, रोग-दुःख आदि का कष्ट भोगना पड़ता है । ”  
नम्माळ्वार ने एक दूसरे पद में कहा है - “ हे भगवान् । बापके चरणों के बिना  
मुझे और कोई शरण नहीं दीखती । भौं प्राण भी बाप ही के हैं । ” भुक्त-  
त्वार अपने मन को संबोधित कर के कहते हैं :- “ हे मन । तू भी पैरट वासी के  
चरण कमलों पर जाकर लग जा । ” --- “ पुरुषोत्तम के चरण ही तेरा एक

१- “ नाडितुम निन्नडिये नाहुवेन नाततोस्म  
पाडितुम निन्कुले पाहुवेन - ब्रूडितुम  
पोन्नालिरन्दिनान पोन्नडिये ब्रूडैर्कु  
एन्नाकिर एन्ने एन्नु ? ”

- मुदल तिरुवन्तादि ८८

२- पिरप्पिरप्पु मुप्पु पिणि तुरन्दु पिन्नुम  
करुक्कुवुम इन्नुडैयामेतुम - परप्पेल्लाम  
एवमे इन्नुल्लाल एण्णुवने ? मण्णलन्दान  
पादमे थैयप्पुल । ” - पेरियतिरुवन्तादि ८०

३- “ वारेन्नु निन्पादमे चरणाक्कत्तोत्तिन्दाय उनक्कोर  
मारु नानोन्डिलेन सदावियुम उन्दे । ”

- तिरुवायमोली ५ : ७ : १०

४- “ ----- पीटु इल्लम । पीटु  
मणिवैक्कवन मररिक्कै वेत्त  
वणिवैक्कवन पेराइन्दु । ”

- श्रष्टाम तिरुवन्तादि ७२

मात्र सहारा है। सर्वदा तू उसी का स्मरण कर, सेवा कर<sup>१</sup>।” तिरुमी  
वात्वार कहते हैं -” है भगवान्। अपनी गीतों की माला आपकी चरणों पर  
वर्षित कर, सर्वदा आप ही का स्मरण कर, मैं आपकी शरण में आया हूँ ---।”<sup>२</sup>

बालीयकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भी पाद-  
सेवा का महत्व बताया है। सुरदास जी ने कई पदों में दास्य भाव से भगवान् के  
पाद-सेवा होने का उपदेश दिया है। जिन चरणों की बाद-सेवा सुरदास जी अपनी  
मन-मन्दिर में करते थे उनके विषय में कहते हैं :-

” भजि मन नन्द नन्दन चरन ।  
परम पैरज बति मनोहर सकल सुख के करन ।  
सकल ईकर ध्यान ध्यावत निगम करन वरन ।  
शेष शारद कृष्णि सुनारद रत चित्त चरन ।  
फर परान प्रताप दुल्लभ रमा लोहित करन ।  
परसि गंगा भई पावन तिहुँपुर पर घटन ।

००

००

००

सुर भज चरणारविदनि, भिँटै न जनम मरन ॥ ३

परमानन्ददास पाद-सेवा की महत्ता बताते हुए कहते हैं :-

” मदन गोपाल की सेवा मुझसे है भी अधिक मोठी है। भक्ति के रसिक उस सेवा

१-” उरुंकण्ठाय नन्दैवि । उत्तम नपादिम

उरुंकण्ठाय वीण कमलन्तन्नाल - उरुंकण्ठाय ।”

वही ७७ ( ३२७८।म तिरुवन्तादि )

२-” पाविनास्ति चोत्पलर भर्तुण्डु उन

पादमे परवी नान्पणिन्दु ल

नाविनाल वन्दु उन तिरुवडियैन्वेन”

- पेरिय तिरुमोली १-६-८

३- सुर सागर , प्रथम स्कन्ध पद सं० ३०८ ना० प्र० समा

के रस को जानते हैं। उन्होंने मगवान् की चरण-सेवा के सम्मुख सब धर्मों को बहा दिया और वे श्रवण, कथन, स्मरण तथा ईश्वर गुण गान का साधन करते हैं। — इन रसिक भक्तों के दृष्टान्त से प्रेरित होकर परमानन्ददास ने भी मगवान् के चरणों में तथा उनकी लीला में प्रेम बढ़ाया है।<sup>१</sup>

मीराबाई का निम्नलिखित प्रसिद्ध पद पाद-सेवा की ओर संकेत करता है :-

मन रे परस हरि के चरन ।  
 सुमग शीतल कंवल कीमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।  
 जिण चरण प्रस्ताद करै, इन्द्र पदवी धरण ।  
 जिण चरण धूल ढल कीने, रासि बप्पी सरण ।  
 जिण चरण झूठ भट्ठी नलसितां सिरी धरण ।  
 जिण चरण प्रभु परस लीने, तरो गौतम धरण ।  
 जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गौफलीला करण ।  
 जिण चरण गौबरधन धार्यो, इन्द्र पद की गर्व हरण ।  
 दासि मीरा लाल गिरधर, जगम तारण सरण ।<sup>२</sup>

१-“ सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हूँ मैं मोठी ।  
 जाने रसिक उपासिका हूँ मुझ निज दीठी ।  
 चरण कमल रज मन बसी सब धर्म बहार ।  
 श्रवण, कथन, चिन्तन बढ़्यो पावन गुन गार ।  
 वेद पुरान निरुपि के रस लियो निबोई ।  
 गान करत लानन्द भयो डार्यो सब डोह ।  
 परमानन्द विचारि के परमात्म साध्यो ।  
 राम कृष्ण पद प्रेम बाढ्यो लीला रस बाढ्यो । ”

- परमानन्दसागर, पद संख्या ८५३

२- मीरा की पदावली, पद संख्या ९

ज्वन-

ब्रह्मा तथा बादर के साथ भगवान् के स्वरूप की पूजा ज्वन-  
मयित कहलाती है। ज्वनवतार रूप में भगवान् मन्दिर की मूर्ति में, सद्गुरु और  
भवत जनों में विराजते हैं। इन तीनों रूपों को भगवान् का स्वरूप समझकर भवत  
अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु उन्हें अर्पित करता है। भवत अपने प्रेम को प्रदर्शित करने के  
लिए जो भी कार्य करता है, उसमें त्याग का भाव प्रधान रूप से निहित है। मानसिक  
ज्वनना में भगवान् का ध्यान और आत्म समर्पण पर्याप्त हैं। उसमें बाह्य उपचारों  
की आवश्यकता नहीं है। परन्तु स्मृत रूप की पूजा में जैके उपचारों की आवश्यकता  
है। ज्वनन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि के समर्पण द्वारा ज्वन-मयित  
की जाती है। इस प्रकार की ज्वन-मयित के उत्तम आलवारों की रचनाओं में  
मिलते हैं। नम्माळ्वार कहते हैं :- “ हे भवतों ! केवल पुष्प फल, जल, धूप  
आदि अर्पित कर भगवान् की पूजा करना भी पर्याप्त है। नम्माळ्वार का यह कथन  
गीता वाक्य :-

“ फलं पुष्पं फलं तौर्य यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रकटात्मानः । ” २

हे प्रभावित दीस पड़ता है। एक दूसरे पद में नम्माळ्वार का उल्लेख है- “ सुन्दर सुमन  
जल, धूप, दीप समेत भगवान् की ज्वनना करनी चाहिए । ” हृदय को प्रवित कर

१- पश्चिमदिशं श्वनेभ्यादि विश्वदुर्मेवतुरुवीर

पश्चिमैथिन्द्रो नन्वीर ह्य पुश्चिदुम फुं पूं । ”

- तिरुवाय्मोली , १-६-२

२- गीता, अध्याय ६, श्लोक २६

३- तौल्लु मामलर नीर जुडर धूम कोण्डु

रल्लुमेन्नुम क्लुप्पैयादल्लि

जलुदिल तोल पुल्ल पाम्पणोप्पल्लिवाय ।

तल्लुमारु वरियेन उनदाक्कले । ”

- तिरुवाय्मोली ६-३-६



जल, चन्दन, धूप, दीप आदि अर्पित कर पूजा करने पर भक्त की प्रार्थना पूरी होती है।<sup>१</sup> " भूतबालवार का कहना है - " चन्दन, आभूषण, वस्त्र, सौरभ युक्त सफेद फूल आदि अर्पित करने के साथ ही पूजा कर भगवान् के चरणों की वन्दना करनी चाहिए।<sup>२</sup> " पोयसी बालवार अर्चन- भक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप प्रकाश करते हैं :- " वैकट संत में वेद- पारायण में निपुण ब्राह्मण लोग धूप, दीप, पुष्प जल आदि अर्पित कर दिशा- दिशा में भगवान् की पूजा करते रहते हैं।<sup>३</sup> "

बालोच्य काल के कतिपय हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अर्चन- भक्ति का महत्व दितलाया है। सुरदास जी ने सुरदागर के नवम स्कन्ध में अंबरीष की कथा में अर्चन- भक्ति का उल्लेख किया है। परमानन्ददास गोपी- रूप में अपने इष्टदेव की शक्ति ( कलेऊ ) वर्णन करने के लिए उनका आह्वान करते हैं और कहते हैं :- " हे मोहन, मैं तुम्हारी शक्ति लेकर आ रहा हूँ। तुम्हें

१- तिरुवाय मोली १-५-२

२- " वरैच्चन्दनकुलम्बुम वान कल्लुम पट्टुम  
विर्प्पोलिन्द वेण्पत्तिर्ल्लुम- तिरैत्तुवकोण्डु  
वादिक्कण निन्द्र अत्तिनडियिणैथि  
वोदिप्पणिवदुरुम । "

- इरुण्टाय तिरुवन्तादि ७६

३- " वरैयुरुणुणैत्तुवी वास्वार्कल नालुम  
कुं विन्नवट्टुम पुम्पुनलुम एन्दि दिशै दिशैयि  
वेदियक्कल वेन्दिर्ल्लुम वैकटमै । वेण्णम  
ऊदियाय नालुक्कन्दूर । "

- मुदल तिरुवन्तादि ३७

कुछाते २ हार गईं । तुम कहाँ हो ? मैं राह भूल गई थी, बड़ी कठिनाई से तुम्हें लोब पाई और छूटे छूटे यहाँ तक जा पाई हूँ । उसी समय तुम्हारी बंशी का मधुर नाद मेरे कानों में फड़ा । देखो, मेरे कानों में फसीना जा गया है, और मेरा कँवल भीग गया है।” इस गीपी वन्दना में परमानन्ददास का ही हृदय मानसिक जगत् में वन्द्योपित रूप से अपने इष्ट देव की अर्चन भक्ति मेंट कर रहा है ।

नन्ददास ने भी “दशम स्कन्ध भाषा” में जहाँ वरुण से कृष्ण की पूजा कराई है, और “रूप फँवरी” में रूपमंजरी के हृदय-मन्दिर के आराध्य देव कृष्ण की हनुमति द्वारा पूजा करने का उल्लेख किया है, वहाँ उन्होंने अर्चन भक्ति का रूप दर्शाया है।

### वन्दन :

भगवान् के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना , नतमस्तक होकर विनय करना तथा उनकी प्रणाम करना वन्दन-भक्ति है। बहुधा अर्चन वन्दन साथ साथ हुआ करते हैं। लौकिक व्यवहार में कहीं के प्रति जो विनय और आदर सूचक प्रणाम करते हैं , वही सम्मान और विनय भक्त भगवान् के प्रति प्रदर्शित करते हैं। कीर्तन करते समय जब भक्तों के हृदय में प्रेम-रस प्रवाहित होता है, सब वे नाच उठते हैं । बाज़ारों की जीवितियों से यह जाना जा सकता है कि वे भगवान् का नाम - संकीर्तन तथा वन्दन कर उन्मत्त की तरह कभी रो पड़ते, कभी हँसते, कभी गति और कभी नाचते थे । उनकी विचित्र प्रेम वला की देखकर लोग उन्हें पागल तक समझ लेते थे । कुतूहलराज्ज्वार ने उसी भगवद्

१- तुम्हें टेर टेर मैं हारी ।

कहाँ जो है वहाँ मैं मोहन तेही न हाक तुम्हारी ।

भूल परी आवत मास मैं बर्यो हूँ मैं न फड़ी पायी ।

भूतत भूतत यहाँ लों जाई तब तुम केनु ज्ञायी ॥

देखो मेरे कानों में फसीना उर की कँवल भीनी ।

“परमानन्द प्रभु” प्रीति जान के धाय बालिंगन दीनी ॥

- परमानन्द सागर ( सं० डा० गी० ना० शु० ) पृष्ठ सं० ६४०

प्रेमोन्मत्त दशा की कामना की है<sup>१</sup>। परियालवार कहते हैं -<sup>२</sup> "दिन-रात भगवान् का ध्यान कर, नत मस्त होकर हाथ जोड़कर भगवान् की वन्दना करते रहने वाले अनेक भक्त जिस नगर में रहते हैं, वहाँ के लोगों ने बड़ा भाग्य प्राप्त किया है। राजा कुलशेखर की कामना यही है -<sup>३</sup> "श्री रंग के मन्दिर में स्थापित भगवान् की स्तुति तब तक करूँगा, जब तक जिह्वा दुस्त न जाय। मैं उस दिन की कामना करता हूँ जब कि मैं हाथ जोड़कर, पुण्य वर्णित कर भगवान् की वन्दना में लीन हो जाऊँ।"<sup>४</sup>

परियालवार अपने मन की संबोधित कर कहते हैं -<sup>५</sup> "हे मन ! तुसिहावतार कर अपनी भक्तवत्सलता को दिखानेवाले विष्णु भगवान् के चरणों की

१- पेरुमाळ तिरुमोली २ : २

२- "कुरुन्दमोन्ट्रिावितानोहुम चेन्दु कूडियादि विलाञ्चेयु  
विरुन्दु नाममरयोर इराप्पळ्ळ एणि वाळ तिरुक्कोट्टियूर  
करन्तळ मुळिल वण्णनैवळै वकण कोण्डु कै तोलुम पळ्ळु  
इरुन्दवूरिलिरुक्कुम मानिडर स्वर्गत्त चेळ्ळार कोली।"<sup>६</sup>

- पेरियालवार तिरुमोली ४-४-७

३- "

पयित्तगिरुवर्णयित्त पल्लिकोत्तुम  
कोविनै नावुर वलुपी एन त्त वैळ्ळ  
कोयम्पलर तूळ एन्दु कोली कूप्पुम नाळे ?"<sup>७</sup>

- पेरुमाळ तिरुमोली १ : ४

वन्दना कर । उनकी स्तुति कर । ” पौकी वालवार का कथन है कि भगवान् के सहस्र नामों का स्मरण कर, हाथ जोड़कर वन्दन करने वाले भक्त कभी नरक नहीं पहुँचते, उन्हें कोई कष्ट नहीं सतायेगा, वे कृपार्थ पर जा नहीं सकते । ”

वालीव्य कालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी वन्दन भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। सुर के काव्य का एक अंश उनकी वन्दन-भक्ति के भाव को प्रकट करता है। विनय, प्रार्थना तथा स्तुति के भावों को प्रकट करने वाले उनके पद वन्दन भक्ति के उदाहरण हैं । सुर ने निम्नलिखित पद में भगवान् की कृपा की याचना कर उनके चरणों की वन्दना की है :-

चरण- कमल बंदी हरि- राइ ।

जाकी कृपा फूँ गिरि लीं लीं कीं सब कृष्ण दसाइ ।

बहिरी सुने, गूँग पुनि जोले, रूँ चलै सिर झन घराइ ।

सुरदास स्वामी कहनामय, बार बार बन्दों तिहिँ पाइ ॥ ” ३

१- ” फुण्डिलकुम वंतिप्पोल्लु वरियाय  
जसुन्द हरणियल ताकम चुकिन्देगुम  
चित्तिप्पिलुन्द तिरुमाल तिरुवडिये  
वंदितु स्नैवमे । वाल्लु । ” - ४

- मृन्मूत्रम तिरुवन्तादि ६५

२- ” विनैयाल ज्जरफ्फार वेन्नरफिल बेरार  
तिनैयुम तीक्कतिक्कण वेत्तार- निनैवर्क  
करियानेज्जेयाने वायिरम पेर कैण  
करियानेक्के तोलुक्काल । ” -

- मुदल तिरुवन्तादि ६५

३- सुरसागर, प्रथम स्कन्ध पद सं० १ ना० प्र० सभा

नन्ददास ने भी अपने कई ग्रन्थों की कृष्ण की वन्दना और स्तुति के साथ प्रारम्भ किया है। इस मंजरी, मान मंजरी, कैफ़ार्थ मंजरी, रूप-मंजरी, सिद्धान्त पैवाज्यायी, दशम स्कंध पाणा जादि ग्रन्थों के प्रारम्भ में कवि ने कृष्ण की वन्दना की है।

परमानन्ददास कहते हैं -“ मैं जगदीश के उन चरणक कमलों की वन्दना करता हूँ, जो गायों के पीछे दौड़ते थे। जिन फूल से मरे पदों को गो-पियों ने हृदय से लगा रखा है और शम्भु स्व चतुरानन ने हृदय-कमल में स्थिर कर रखा है। जो फल-कमल रमा के हृदय के मृणाल हैं जो तीन लोक-पावन कर्तों हैं, उन चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ। ”

मीराबाई ने भी अपने कैफ़ पदों में गिरधर की वन्दना की है :-

“ हनारी प्रणाम बकि बिहारी को ।  
मारे मुहुट माये तिलक बिरामे कूँडल कल्लाकारी को ।  
अधर मधुर धर बंसी बजावै, रीफ रिकारै राधा प्यारी को ।  
यह इवि दैल मान मई मीरा मोहन गिरिवर धारी को । ” २

### दास्य, सत्य और आत्म निवेदन-

नवधा भक्ति के अंतिम तीन अंग- दास्य, सत्य और आत्म निवेदन- भावों से सम्बन्ध रखते हैं। अतः इन भक्तियों का वर्णन आगे भक्ति के

१- चरन कमल बन्दों जगदीश के ये गोधन संग धार ।

ये फल कमल धूरि लफटाने कर गहि गोपिन उर लार ॥

ये फल कमल संभु चतुरानन हृदय कमल कतर रार ।

ये फल कमल रमा उर मृणाल वेद भागवत मुनि भार ॥

ये फल कमल लोकत्रय पावन, बलि राजा के पीठ धार ।

जो फल कमल दास परमानन्द गावत प्रेम पीयूष मर ॥

- परमानन्द सागर ( सं० डा० गो० ना० शुक्ल) फल सं० १

२- मीरा की पदावली, फल सं० २



विविध भाव<sup>१</sup> के अन्तर्गत दिया गया है ।

### प्रेम - रूपा- भक्ति

बाल्लवार भक्तों के अनुसार भगवान् सभी भावों से भवनीय हैं । नम्माळ्वार और पौय्यी बाल्लवार का मत है कि भक्त अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार किसी भी प्रकार से भगवान् की भजना कर सकते हैं। पौय्यी बाल्लवार कहते हैं कि भक्त भगवान् के जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है। भक्त जिस ढंग से भी उपासना करें, उसी ढंग से विष्णु भगवान् उनका उपास्य बन जाता है<sup>२</sup> । फिर भी बाल्लवारों ने भक्ति में मुख्य स्थान प्रेम को दिया है। बाल्लवारों के लिए प्रेम भक्ति का पर्यायवाची है। भूतबाल्लवार कहते हैं - “ प्रेम के दिव्य में अभिलाषा का घी डालकर, स्निग्ध हृदय की बाती लगाकर, स्नेह-द्रवित वात्मा के साथ मैं नारायण के सम्पुल ज्ञान-दीप जलाया<sup>३</sup> । ” बाल्लवारों के द्वारा प्रवर्णित प्रति-पादित भक्ति प्रेम रूपा भक्ति है। इस लोक में प्रेम-सम्बन्ध के जितने भी रूप हो सकते हैं, उतने ही भावों को प्रकट करने वाले भक्ति के प्रकार हो सकते हैं । बाल्लवारों ने भगवान् के साथ सब प्रकार के प्रेम सम्बन्ध स्थापित किये हैं। भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम को प्रकट करने वाले बाल्लवारों के कितने ही पद हैं । भक्ति को प्रेम-सम्बन्ध में परिवर्तित कर बाल्लवार भक्तों ने मध्ययुगीन भक्त कवियों के लिए एक वादार्थ छोड़ रखा था ।

१- तिरुवायमोली १ : १ : ५

२- मुदल तिरुवन्तादि ४४

३- “ वन्धे तल्लिया बावमे नेयुयक

वन्पुरुकु चित्ति व्हु निरिया - वन्पुरुकि

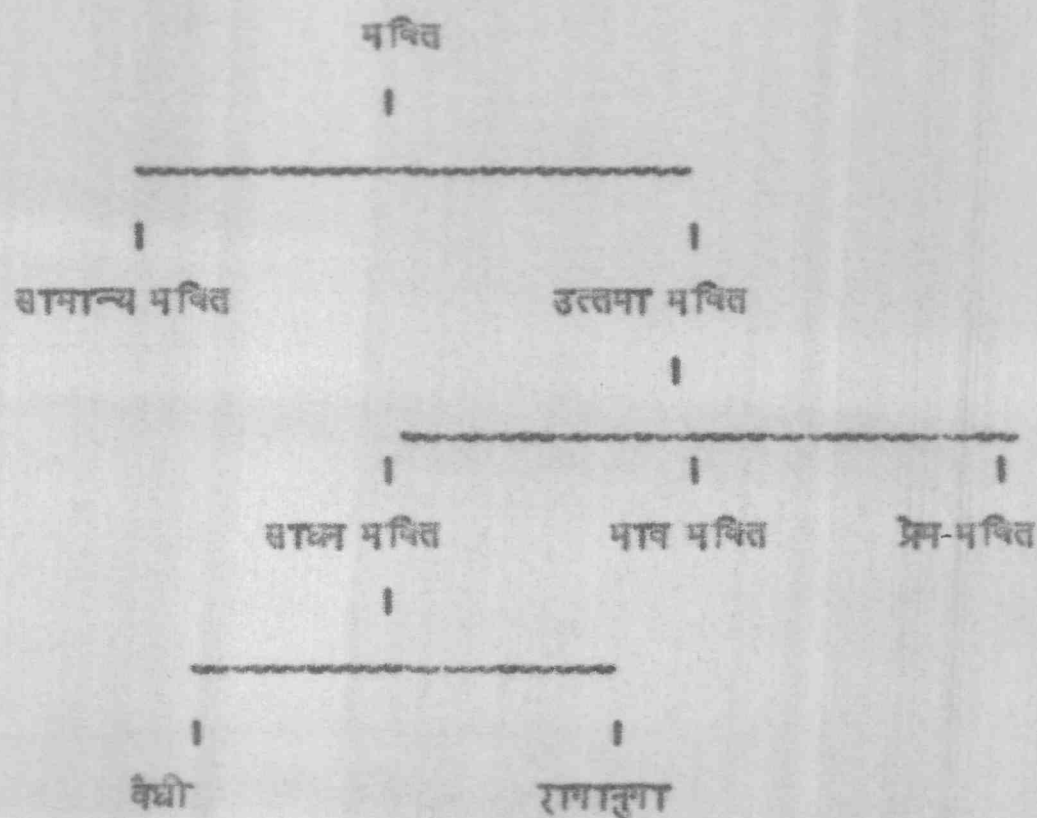
ज्ञानव्हुवर विल्ले द्विनेन, नारणार्हु

ज्ञान तमित पुरिन्द नान । ”

- इरुप्ताम तिरुवन्तादि १

मध्य युग में भक्ति का विशद विवेचन करने वाली श्री रूप  
गोस्वामी ने प्रेम-रूपा भक्ति को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया है। उनके दोनों ग्रन्थ  
“उज्ज्वल नीलमणि” तथा “भक्ति रसामृत सिन्धु” भक्ति के उत्कृष्ट लक्षण  
ग्रन्थ हैं।

श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति का विभाजन निम्न प्रकार से  
किया है और प्रेम-भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है।



भक्ति मात्र सामान्य भक्ति है। उत्तमा भक्ति उत्कृष्ट भक्ति  
है। उत्तमा भक्ति के दो गुण हैं :-

१- वन्द्याभिलाषितातून्यं ज्ञानकर्मवानवृतम् ।

ज्ञानसूत्रेण कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

- भक्तिरसामृतसिन्धु , पूर्व विभाग १ श्लोक १

- १- बलेश दूर करने की शक्ति । मयित के द्वारा समस्त बलेश दूर किये जा सकते हैं जो पाप जनित हैं, ज्यवा जविषा जनित हैं।
- २- शुभ एवं कल्याण करने की शक्ति । इसके द्वारा सद्गुणों की और सुख की उत्पत्ति होती है ।
- ३- मोटा के प्रति उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति ।
- ४- प्राप्ति में कठिनाई क्वांतु ध्येय की प्राप्ति में दुर्लभता ।
- ५- सान्द्रानन्द की विशेषात्मता के प्रति तन्मयता ।
- ६- श्री कृष्ण को वाकर्णित कर वश में रखने की शक्ति

उत्तमा मयित का प्रथम सोपान साधन-मयित है । साधन-मयित में मयित बाह्य साधनों द्वारा इष्टदेव की ओर उन्मुख होता है। ( इन साधनों की चर्चा पीछे हो चुकी है । ) साधना-मयित के द्वारा भाव रूपा मयित की प्राप्ति होती है। उसका लक्षण इस प्रकार किया गया है । परमेश्वर की इलादिनी, संधिनी और संवित नामक जो तीन शक्तियाँ हैं, उनमें से प्रथम का जीवों में प्रेम रूप में प्रकट होने वाला अंश शुद्ध तत्त्व कहलाता है। वही भाव है। उससे हृदय में असंख्य कमिलाणावों का उदय होने लगता है। भाव से कमिलाणावों की किरणें सूर्य से सूर्य की किरणों के समान ही फूटती हैं जो समस्त वृत्तियों को अपने रंग में रंग लेती हैं ।

भाव मयित का जब परिष्कार होता है, तब वह उस रूप प्रेमा-मयित में परिणत होती है। भाव जब परिष्कृत हो जाता है, "सान्द्रात्मा" हो जाता है, तब भाव प्रेम में बदल जाता है, और चित्त सम हो जाता है और चित्त में "अनन्य ममता" उत्पन्न हो जाती है। यह प्रेम मयित या तो वैधी भाव या रागा-नुगा भाव दोनों से ही उत्पन्न हो जाती है। परन्तु यह इष्टदेव के "प्रसाद" से ही उत्पन्न हो जाती है। इष्टदेव का यह प्रसाद ज्यवा कृपा "केवल" हो सकता है ज्यवा

१- शुद्ध सत्त्व विशेषात्माप्रेम सूर्यांशु साम्य माह ।

रुचिभिश्चित्तमाशुष्यहृदसो भाव उच्यते ।

वही पूर्व विभाग सहरी ३ श्लोक २

माहात्म्य ज्ञान से हो सकता है। प्रेम भक्ति का उदय इस प्रकार होता है- सर्वप्रथम श्रद्धा, इसके बाद- ज्ञा, इसके मजन क्रिया, इसके जन्य- निवृत्ति, इसके निष्ठा, इसके रुचि, इसके वासवित, इसके भाव और उसके प्रेम का उदय होता है।

ऊपर कही गयी भक्ति की कोटियों में प्रेम- भक्ति का सर्वोच्च स्थान है। 'नारद- भक्ति-सूत्र' में प्रेम भक्ति का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, ब्रह्म हो जाता है, वर हो जाता है और भगवान् के अतिरिक्त उसे किसी भी बात की चिन्ता नहीं रहती। यह प्रेम-भक्ति परा भक्ति भी कहलाती है और इसी को भुमानन्द कहते हैं। इसमें भक्त की निवृत्ति और कर्माति का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से भगवान् की ओर प्रवाहित होता रहता है और उसकी समस्त क्रियाएं ईश्वरीन्मुख ही होती हैं।

'नारद- भक्ति- सूत्र' में प्रेम- रूपा- भक्ति के सम्बन्ध में ग्यारह वासवित्यों का उल्लेख किया गया है जिसके कारण वह एक हीकर भी ग्यारह प्रकार की होती है।

- १- गुण माहात्म्यासक्ति
- २- रूपासक्ति
- ३- पुत्रासक्ति
- ४- स्मरणासक्ति
- दास्या सक्ति
- ६- सत्या सक्ति
- ७- कान्ता सक्ति
- ८- वात्सल्यासक्ति
- ९- वात्मनिवेदनासक्ति
- १०- तन्मयासक्ति
- ११- परम विरहासक्ति

१- हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि - डा० रत्नकुमारी पृ० २७६

२- नारद-भक्ति-सूत्र, सूत्र ४

प्रेम-भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचते हुए मन्त्रों में ये सभी वासवित्या स्वयं ही जा जाती हैं। जैसा कि ब्रज की गोपियों में। प्रेम-भक्ति में सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही गोपियों का उदाहरण शांडिल्य, नारद आदि भक्ति आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। परन्तु सभी अन्य मन्त्रों में कोई न कोई वासवित विक्रान्त रहती है। चूंकि भक्ति का श्रोत प्रवृत्ति है, इसलिए प्रवृत्ति की प्रसादता भक्ति मार्ग का उत्कर्ष विधायक गुण है। और वासवित से भी प्रवृत्ति प्रसाद करती है। अतः भगवान्<sup>में</sup> जितनी वासवित होगी, उतनी ही भक्ति श्रेष्ठ होगी। दास्य भाव से मधुर भाव की प्रसादता है। भक्ति के सभी सदाणों में वासवित का समावेश है। जो वासवित निवृत्ति मार्ग में दोष है, वही भक्ति मार्ग का गुण है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भक्ति में उन्नत विविध वासवितियों में से सच्चा उदय वाकस्मिक और कालिक होता है। जब तक कि भगवदनुग्रह न हो, अपनी अपनी चित्तवृत्ति, शक्ति एवं रुचि के अनुसार एक या स्याधिक वासवितियाँ परमात्मा के प्रति प्रेम का कारण होती हैं। ये वासवितियाँ एक ही प्रेम-बीज से प्रसूत भिन्न भिन्न वल्लरियाँ हैं। सच्चा समान महत्व सम्पन्न चाहिए।

हमने ऊपर प्रेम-रूपा-भक्ति का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। आख़बार मन्त्रों और बालीच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-मन्त्र-कवियों में प्रेम-रूपा-भक्ति की प्रधानता थी। प्रेम-रूपा-भक्ति के जो विविध रूप ऊपर दर्शाये गये हैं, वे सब दोनों क्षेत्रों के मन्त्रों की भक्ति में देखने को मिल जाते हैं। प्रेम-रूपा भक्ति की जो ग्यारह वासवितियाँ "नारद-भक्ति-सूत्र" में बतायी गयी हैं, उनको व्यक्त करने वाले जेके पद आख़बारों के और बालीच्यकालीन हिन्दी कृष्ण मन्त्र कवियों के मिलते हैं। हम प्रत्येक वासवित के कुछ उदाहरण दोनों क्षेत्रों के मन्त्र-कवियों के काव्यों में से नीचे देते हैं।

१- शांडिल्य भक्ति सूत्र १४

२- नारद भक्ति सूत्र २१



## १- गुण माहात्म्या सवित-

ईश्वर के गुण और उनकी महता का ज्ञान और उनके प्रति रागात्मकता प्रेमा-मवित में "गुण माहात्म्यासवित" कहलाती है। यह प्रेमा-मवित का प्रथम सोपान है। इस भावको बालवारी ने तथा बालीव्याकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने विनय, भगवान् की भक्तवत्सलता, बाल-भाव, वंशार-लीला, आदि प्रसंगों में व्यक्त किया है। बाँडाल, "तिरुप्पावि" में भगवान् के गुणों पर मोहित होकर कहती है :- " हे , तीनों लोकों को मानेवाले । तुम्हारे चरणों की स्तुति करती हूँ । लंका-नाशक सत्य की स्थापना करने वाले । तुम्हारी शक्ति की स्तुति करती हूँ । हे, कष्ट श्रुत के भजनकारी । तुम्हारे शुभ-यज्ञ की जय हो । ऋद्धे ( के रूप में वाये राजास ) को पत्थर-सम फेंकनेवाले । तुम्हारे पद कमलों की वन्दना करती हूँ । गिरि को धरकर झ्र बनाने वाले । तुम्हारे आश्रित गुणों की कीर्ति गाती हूँ । हे विजयशाली । तैंतीस देव गणों के भय को हरनेवाले जो कृपामूर्ति<sup>१</sup> । सर्व शक्तिमान् । शत्रु-ताप करने वाले । विमल शुद्ध रूप धरकर भक्त-पाप हरने वाले । तिरुप्पाण बालवार भगवान् के गुणों की महिमा गाते हैं - " भगवान् पवित्रता के वाकर हैं, आदि प्रभु हैं, महान् हैं । गुरु दास को स्वीकार करने वाले विमल हैं। नीति के गिरिवर हैं। दया सिन्धु हैं । "

१- " वन्दु इवुल्लम वलन्दाय । बडि पौट्री  
वेन्दुशु तेन्विल्लै वेदाय । तिरल पौट्री  
पोन्दुच्चकटम उदैषाय । पुल्लुपौट्री  
कन्दु कुणित्तारैरिन्दाय । कल्लु पौट्री  
कन्दु कुडैया सुल्लाय । गुणम पौट्री । " - तिरुप्पावि , २४

२- गुप्पुल्लवार ववर्लु मुन्नेन्दु  
कप्पम तविरुम कलिये । तुयिल्लाय  
वेप्पुल्लेयाय । तिरुल्लेयाय । वेदार्लु  
वेप्पम कोहुक्कुम विमला । तुयिल्लाय । वही २०

३- कमलनादिपिरान , १

हिन्दी कृष्ण मन्त कवियों के अनेक पदों में गुणमाहात्म्या-  
सहित व्यक्त हुई है। सुरदास जी का निम्न पद देखिए :-

हमती दुहुँ माँति फल पायो ।  
जौ गोपाल मिलैं तौ नीकी, नतरु जगन जस हायो ।  
कहाँ हम या गोकुल की गोपी, बरनहीन घटि जाति ।  
कहाँ वै श्री कमला के बल्लभ, मिलि बैठी छक पाँति । ।  
निगम ज्ञान मुनि ध्यान जाँचर, ते मर घौण निवासी ।  
ता ऊपर अब ही देखि छौं , मुबित कौन की दासी ॥  
जोग क्या ऊँछो पालाँगौं , मति कहाँ बारबार ।  
सूर स्याम तजि जान मजै जौ, ताकी जननी द्वार ॥ १

मीरा बाई के निम्न पद में ताराध्य के माहात्म्य की  
स्पष्ट अभिव्यक्ति है :-

मम रे परस हरि के चरन ।  
सुमग शीतल बँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।  
बिण चरण प्रस्ताव परसे , इन्द्र फवरी धरण ।  
बिण चरण धुन बटल कीने , राति अपनी सरण ।  
बिण चरण ब्रह्मि भट्यो, नल सिला चिरी धरण ।

००

००

००

बिणः चरण गोबरधन धार्यो, इन्द्र पद की गर्व हरण ।  
दासि मीरा बाल गिरधर, जग तारण तरण ॥ २

स्पष्ट-  
स्पष्ट-

गुण माहात्म्य का ज्ञान मन्त के हृदय में जास्था जाता

१- सुरदास , दशम स्कन्ध पद सं० ४४३४ ना० प्र० सभा

२- मीरा की फावली पद सं० १

है । जब वह वास्था रूप- सौन्दर्य के दर्शन से कुराग में परिणत होती है, तब वह रूपासक्ति कहलाती है। बालवारों की खनाबों में रूपासक्ति का बहुत ही प्रबल रूप व्यक्त हुआ है। तिरुमी और तौडरडिपोडी बालवार जैसे भक्तों की जीवनियों से प्रकट है कि उनके भक्तिमार्ग पर जाने से पहले उनकी लोक- वृत्ति रूप- सौन्दर्योपासिनी थी, जो लोक से मुक्त कर कालान्तर में आराध्य के रूप में जुड़ गयी । नन्ददास, लखान बादि हिन्दी कवियों की जीवनियों से भी यह प्रकट है। बाँडाल और मोरा में यह वासक्ति अपनी पूर्णता के साथ व्याप्त है। प्रिय के सुन्दर बदन, उनके कमल-दल<sup>१</sup> लीचन और उनकी बाँकी चितवन ने बाँडाल और मोरा को मोहित कर लिया है । परियालवार की एक गोपी अपनी सखी से कहती है : “ है सखी ! पावन माथे पर सिन्दूर का तिलक शोभित है। अति मनोहर केशपाश से अलंकृत कृष्ण गगन तक पहुँचने वाली मधुर मुरली ध्वनि को निकालते हुए जा रहा है । उसके रूप ने मुझे मोह लिया है। अनुपम सौन्दर्य वाला यह कृष्ण भरे अत्यधिक प्रेम और अपनी प्रेम भाव को ठीक समझते हुए भी, यदि वह मार्ग में जायेगा, तो मैं अपनी मेन्द को उसके धारा चोरी से जाने का अपराध उस पर लगाकर ( बहाने से ही ) उसे रोक लूँगी और उसके मोती के समान सुन्दर एवं मन्दहास युक्त अघरों को देखूँगी । ” गोपी बन्धक कहती है : “ कृष्ण के सौन्दर्य की समानता कौन कर सकता है ? मैं ने ऐसी सौन्दर्य- रूप राशि कहीं भी नहीं देखी । भरे हाथ के कंकण भी नीचे गिर रहे हैं। भरे वस्त्र भी अस्त

१- सिन्दूरमिल्लापन तिरुमेद्रिमेल

तिरुत्तिय कोरन्नुम तिरुक्कुल्लुम

वन्तमोन्ड्रुलाद वायप्पिल्लै

वरिन्दरिन्दु इप्पीथि पौदमाक्किल

पन्दु कोण्डानेन्दु वल्लुवैवु

फलवाय मुरुवल्लुम काण्ण्योम तोली । ” - परियालवार तिरुमोली ३-४-६

२- एन्नुम खनयोप्पारै नंगाय ।

कण्टरिमिडी । वन्दुकाण्णाय

वीन्दुम निल्लावतै क्तन्नु

कुण्डि कुक्किन्दिल मुलैयुम सन कशमित्तै । वही ३-४-२

ज्यस्त हो रहे हैं। ( कामवश ) मेरे स्तन भी मेरे कल में नहीं हैं । ” बाँटाल कहती है- ” श्री रंगम् के मेरे प्रियतम सुन्दर केशवाले हैं, सुन्दर मुँह वाले हैं, सुन्दर नयन वाले हैं, सुन्दर वदन वाले हैं । ( मेरा मन उनके रूप पर इतना वासवत है कि ) मेरे हाथ के कंकण स्वयं गिर रहे हैं । ”

हिन्दी- कृष्ण- भक्त कवि परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में वाराण्य के मोहन रूप पर वासवित प्रकट हुए हैं :-

प्रिय मुख देखत हो पै रहिये ।

मैननि की सुख कहत न आवै जा करन सब सहिये ॥

सुनहु गोपाल लाल पाँह लागी मली पीव ते बहिये ।

हो वासवत भई पा रूप बड़े भाग ते लहिये ॥

तुम बहु नायक बसुर चिरोमनि मेरी बाँह बृद्ध गहिये ।

” परमानन्द स्वामी ” पद मोहन तुम ही निरबहिये ॥ ” २

सूरदास ने निम्नलिखित पद में हरि के रूप- सौन्दर्य का चित्र खींचा है :

( बलि हों ) कैसे कहाँ हरि के रूप सहि ।

बपे तन में भेद बहुत बिधि, रसना जानै न मैन दसहि ॥

जिन देखत ने बाहिँ कवन बिनु, जिनहिँ कवन दरसन न तिसहि ।

१- रल्लुडैय बम्पनेमीर । एन्नरंगतिन्नमुदर

कुल्लकर, वायलकर कण्णलकर कोप्पुल्लित

ल्लुक्कलप्पुल्लकर एम्मानार एन्नुडैय

कल्लवत्तैयामुम कल्लवत्तैय्याविकनरे ।

- नाच्चियार तिरुमोली ११-२

२- परमानन्द सागर ( सं० डा० गौ० ना० मुक्ता ) पृ० सं० १२२ पद सं० ३५६

बिनु बानो ये उर्मणि प्रेम जल, सुमिरि-सुमिरि वा रूप जसहिं ॥  
 बार-बार पछितात यह कहि, कहा करीं जो बिध न बसहिं ।  
 सूर सकल जानि की यह गति, क्यों समझावैं रूप पसुहिं ॥ १

मीरा तो मदन मोहन के रूप पर मुग्ध हो चुकी है।  
 गिरधर नागर ने के रूप ने उन्हें मोल लिया है- मीरा कहती है :-

निष्ट कंकट हव लटके ।  
 म्हारे जेजा निष्ट कंकट हव लटके ।  
 देख्यां रूप मदनमोहन री, पियत पियूस न मटके ।  
 बारिज पवां जल पंतवारी, जेज रूप रस लटके ।  
 टेढ़्यां कट टेढे करि मुखी, टेढ़्यां पास तर लटके ।  
 मीरा प्रभु रे रूप सुभाणी, गिरधर नागर नटके । २

### ३- पूजासक्ति-

कृष्ण की पूजा में अनुराग पूजासक्ति रूपा प्रेमा भक्ति है । वाल्मीकि भक्तों ने तथा वाल्मीक्य काशीन हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों ने इस भाव की भक्ति स्तुतियों में की है। कर्म, वन्दन आदि में तीन हीना भी पूजा सक्ति है। नवधा भक्ति के विवेचन में पीछे इसका उल्लेख हो चुका है।

### ४- स्मरणासक्ति-

निरन्तर प्रभु के ध्यान में ही तीन रहना स्मरणासक्ति रूपा प्रेमा भक्ति है। प्रिय के वियोग पर सर्वदा उसी का स्मरण कर, अन्य सब कुछ

१- सुखागर , दशम स्कन्ध पद सं० ४१५२ ना० प्र० सभा

२- मीरा की कदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १० पृ० १०३



मूलकर विकल होने की अवस्था है। इस वासवित को व्यक्त करनेवाले अनेक पद दोनों शीघ्रों के कवियों के काव्यों में मिलते हैं। इस वासवित का वर्णन विस्तार से जाने "माधुर्य भाव" के अन्तर्गत किया गया है।

#### ५- दास्यवासवित-

भगवान् के माहात्म्य की स्वीकृति का अनिवार्य परिणाम मन्वित के शीघ्र में दास्य भाव की जागृति है। यही दास्य मन्वित है। इसमें जालन्ध की महता के साथ आश्रय अपनी लज्जा का अनुभव भी करता है। कवियों के विनय पदों में यह भाव व्यक्त हुआ है। जाने "दास्य भाव" के अन्तर्गत इसका विवेचन होगा।

#### ६- सत्यवासवित-

सत्य भाव से की जाने वाली मन्वित सत्या सन्वित रूपा प्रेमा मन्वित है। "सत्य भाव" के अन्तर्गत जाने इस मन्वित का परिचय दिया गया है।

#### ७- कान्तासन्वित-

स्त्री-पुरुष में प्रेम भाव की वैसी व्यापकता और तीव्रता है, उन्ही भाव से भगवान् की मन्वित करना "कान्तासन्वित" कहलाती है। गौपी-कृष्ण-संयोग तथा रास-लीला के पदों में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है। "मधुर भाव" के अन्तर्गत जाने हम इसका विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

#### ८- वात्सल्यासन्वित-

यह वात्सल्य प्रेम भाव की मन्वित है। कृष्ण की बाल-लीला तथा यशोदा-विरह में यह भाव व्यक्त हुआ है। वात्सल्य भाव के अन्तर्गत

इस आसक्ति का विस्तृत परिचय दिया गया है।

#### ६- निवेदनासक्ति-

बालवार भक्तों के अनेक पद आत्मनिवेदन के रूप में ही बने हैं। दोनों पौत्रों के कवियों के विनय और विरह दोनों प्रकार के पदों में इस आसक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

#### १०- तन्मयासक्ति-

प्रेम की प्रादुर्भावस्था में प्रेमी भक्त की समस्त चेतना प्रियतम में केन्द्रित हो जाती है। जब तक प्रेमी अपने प्रेमास्पर्द में अपने को इतना लीन न कर दे कि उठते- बैठते, खाते- पीते, सोते- जागते वह उसी के ध्यान में मग्न रहे, तब तक उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। यह तन्मयासक्ति प्रेमासक्ति की जान है। गोपियों की तन्मय अवस्था को प्रकट करने वाले बालवारों के तथा आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के पदों में तन्मयासक्ति व्यक्त हुई है। "मधुर भाव" के अन्तर्गत जागे इसका विवेचन किया गया है।

#### ११- परम विरहासक्ति-

भगवान् से बिछड़ने की परम दुःखपूर्ण अनुभूति और उसे पुनर्मिलन की उत्कट अभिलाषा "परमविरहासक्ति" है। यह प्रेम-भक्ति मधुर-भाव तथा वात्सल्य भाव के वियोग पदा में व्यक्त हुई है। कवियों के विरह-भाव के पदों में प्रिय के वियोग में तड़प कर मितन के लिए तरसने वाली आत्मा के दर्शन होते हैं।

### भक्ति- रस और भक्ति के विविध भाव-

भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में रसों की संख्या नौ मानी है। परन्तु उन्होंने भक्ति को कोई स्वतन्त्र रस नहीं माना। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने भी भक्ति को कोई रस न मानकर केवल भाव ही माना है<sup>१</sup>। पंडितराज जगन्नाथ भी भक्ति को भाव मात्र मानने की रुढ़ि को तोड़ नहीं सके। भक्ति रस का पूर्ण विवेचन करने और भाव को रस रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय बाबाय्य हफोस्वामी जी को है, जिन्होंने अपने भक्ति- विषयक ग्रन्थ<sup>२</sup> "भक्तिरसाभूतसिन्धु"<sup>३</sup> में इस रस का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

भक्ति रस की निष्पत्ति किस तरह होती है और कहाँ होती है, <sup>यह</sup> विचारणीय है। श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति रस को दो प्रकार का माना है -

- ( १ ) मुख्य भक्ति रस
- ( २ ) गौण भक्ति-रस ।

मुख्य भक्ति- रस के वर्तमान शान्त , प्रीति, प्रेम, वत्सल और मधुर बताये गये हैं, और गौण भक्ति- रस के उन्होंने सात भेद - हास्य, वदुत्त, वीर, करुण, रौद्र, मयानक तथा वीभत्स - किये हैं। भक्ति रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में श्री रूपगोस्वामी ने कहा है -<sup>४</sup> " विभाव, अनुभाव आदि की परिपुष्टि से भक्ति परम रस रूपा हो जाती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों से मक्तों के हृदय में स्वाधत्व को प्राप्त कराई गई जो कृष्ण रति- रूप स्थायी भाव है, वह भक्ति में परिणत होता है। जिनके हृदय में पूर्व जन्म की कृपा इस जन्म की सद्भक्ति की वासना या संस्कार हैं, उन्हीं के हृदय में भक्ति- रस का वास्वाद होता है, जिनके पाप- दौण्य भक्ति से दूर हो गये हैं, जिनका चित्त अशान्त और उज्ज्वल है, जो मानवत में रत हैं,

१- हरिभक्तिरसाभूतसिन्धु , दक्षिण विभाग, लहरी ५ श्लोक ६५-६८

२- रस पृ० ३०८- ३०९

जो रसिकों के सत्संग में रंजित हैं, जो जीवनीभूत गोविन्द के चरणों की भक्ति को ही अपनी सुख-प्रीति मानते हैं और जो प्रेम के अन्तर्गत् कृत्यों को करने वाले भक्त हैं, उनके हृदय में जो आनन्दरूपा रति स्थिर होती है, वही दोनों प्रकार के ( पूर्ण और अल्प जन्म के ) संस्कारों से उज्ज्वल की, रति-रस-रूपता को प्राप्त होती है। यही रति अनुभूत कृष्णादि विभावोदि के संसर्ग से उन्नत भक्तों के हृदय में प्रोढानन्द और चमत्कार की पराकाष्ठा को प्राप्त होती है।<sup>१</sup>

इस भक्ति रस की निष्पत्ति सहृदय तथा पूर्ण संस्कार युक्त भक्त के हृदय में होती है। श्री कृष्णस्वामी की तरह काव्य प्रकाशकार अभिनवगुप्त तथा मम्मट ने भी रस की निष्पत्ति वासना और पूर्ण संस्कारों से युक्त हृदय में मानी है। लेकिन काव्य रस और भक्ति-रस में थोड़ा बहुत अन्तर है। भक्ति-रस के अंग इस प्रकार हैं :-

१- विभाव - विभावों के द्वारा ही कृष्ण रति-स्थायी भाव "रत्यास्वाद" का हेतु होता है। ये विभाव दो प्रकार के हैं। एक वासम्बन और दूसरा उदीपन।

वासम्बन- कृष्ण रति के वासम्बन विभाव "विजय" रूप से कृष्ण और बाधार रूप से कृष्ण-भक्त हैं। कृष्ण चाहें "स्वयं रूप" में हों अथवा अन्य रूप में, जैसे गीत बालक, वासम्बन है। कृष्ण भक्त चाहें साधक ही-चाहे सिद्ध दोनों ही प्रकार से वासम्बन हैं।

उदीपन- कृष्ण रूप के उदीपन विभाव उनके गुण, चेष्टा, प्रसाधन और कुछ अन्य वस्तुएं हैं।

२- अनुभाव - कृष्ण रति स्थायी भाव के अनुभाव नृत्य, विह्वलित, गीत, तनुमोचन, हँकार, घुम्मा, स्वास भुजन, लोकानुपेक्षित आलस्य, 

---

१- हरिमयितस्मापृतसिन्धु, दक्षिण विभाग, तहरी १ श्लोक ५-११

पृ० १२०-१२१

२- भक्तिस्मापृतसिन्धु, दक्षिण विभाग, तहरी १ श्लोक ५-६

बहुतवास, घृणा और विस्का है ।

### ३- सात्विक भाव-

ये सात्विक वास्तव में भाव नहीं हैं। ये तो भावों के बाह्य लक्षण मात्र हैं । प्राचीन काव्य शास्त्र में दिये गये बाँठ सात्विक भाव श्री कृष्ण गौस्वामी ने भी दिये हैं । वे स्तम्भ, रोमान, स्वर मंग, वैष्णु, वैष्णव्य, क्लृ और प्रलय हैं। कृष्ण गौस्वामी इन्हें स्निग्ध, दिग्ध और रुद्ध तीन विभागों में विभाजित करते हैं ।

### ४- व्यभिचारी भाव-

इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं। ये संख्या में तीस हैं । इनके नाम ये हैं :- निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, शम, मद, गर्व, शंका, आविग, उत्साह, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, बालस्य, ब्रीडा, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, घृति, हर्ष, बौत्सुक्य, वमर्ष, क्लृया आदि । ये संचारी भाव कभी तो कृष्ण रस से स्वतन्त्र होते हैं और कभी परतन्त्र ।

### ५- स्थायी भाव-

स्थायी भाव के नौ भेद हैं : रति, हास, शोक, शीघ्र, उत्साह, मय, जुगुप्सा, विस्मय, और निर्वेद । वैष्णव भक्ति रस का मुख्य स्थायी भाव श्री कृष्ण विषयक रति है।

मम्मट आदि अर्थकारिकों ने जहाँ भक्ति को भाव की कोटि में ही रखा, वहाँ वैष्णव लोग उसे रस ही मानते हैं।

१- म० र० क० सि० द० २ । - १२

२-    "       "       "       ३ । १- २

३-    "       "       "       ४ । ३

४- " पिवत भागवतसमालयम् । " भागवत भक्ति प्रधान ग्रन्थ है। उसमें भक्ति रस रूप में ही प्रतिपादित हुई है।



### भक्ति के विविध भाव-

कहा जा चुका है कि लोक में मानव प्रेम के जितने रूप हैं, उन सभी प्रीति-सम्बन्धों को भक्तों ने भगवान् के साथ जोड़ा है और उसी के अनुसार भक्ति के भावों का नामकरण भी कर दिया है। इन भावों में दास्य भाव, सस्य भाव, वात्सल्य भाव और मधुर भाव विशेष उल्लेखनीय हैं। भक्ति के इन चार भावों के अतिरिक्त पाँचवाँ भाव शान्त्य भक्ति का भी है। इन भावों की रस की संज्ञा भी दी जाती है।

### दास्य भाव की भक्ति -

दास्य भक्ति के अन्तर्गत उन सभी भावों की व्याख्या होती है जिन्हें एक स्वामी भक्त सेवक, आज्ञापालक पुत्र और शिष्य अपनी प्रभु, माता पिता, और गुरु के प्रति विभिन्न परिस्थितियों में प्रकट किया करते हैं। अपनी इष्टदेव की अपना दयालु प्रभु, पिता, गुरु समझकर भक्त उनके सामने अपनी वज्ञानता, दीनता, अपनी दुर्गुण, दोष आदि का वर्णन करने में, अपनी रक्षा और उद्धार के लिए नाना प्रकार से याचना करने में विशेष आनन्द पाते हैं। भक्त भगवान् की सर्व सामर्थ्य की ध्यान में रहकर उन पर अपनी अनन्याभ्यक्ता प्रकट कर नाना प्रकार से उनकी कीर्ति का गान करते हुए उनकी कृपा दृष्टि पाने के लिए सदा कातर रहते हैं। भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कर अपनी उद्धार की प्रार्थना करते हैं। उनकी शरण में रहते हुए उन्हीं में विलीन हो जाने के शुभ अवसर की प्रतीक्षा में सदा रहते हैं।

आलवार भक्तों में तथा आलोच्यकासीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में कृष्ण दास्य भाव से भक्ति की है। उनके पदों में दास्य भक्ति के अनेक आत्मदोष प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण तथा भगवान् की सामर्थ्य की अनुभूति आदि के भाव व्यंजित हैं। तिरुम्पी आलवार अपनी ही भगवान् का दास कहने में अत्यन्त आनन्द पाते हैं। वे कहते हैं - "हे मन् । तुम धन्य हो । च मुँह लोगों के कथन की ओर ध्यान न देकर तुमने गोपाल कृष्ण की दासता स्वीकार

कर ली है। पहले निम्न पशुप्यों की संगति में रहकर भगवान् से विमुख रहने वाले  
 मन । बाप तुमने उस भगवान् की दासता स्वीकार कर ली है जिसकी स्तुति ब्रह्म,  
 शिव, इन्द्र आदि देव गण तथा अनगिनत भक्त नित्य करते रहते हैं।<sup>१</sup> " तिरु-  
 मल्लिसे बालवार कहते हैं - " हे भगवान् । तुम मेरे लिए प्रेम मूर्ति हो । अमृत  
 हो । मेरे लिए सब कुछ हो । मुक्त आ दास के लिए सर्वदानन्द हो । हे केशव ।  
 मैं तुम्हारा आज्ञाकारी दास हूँ । मुक्त पर तुम कृपा करते रहो । बाप और कल  
 ही नहीं, सर्वदा तुम्हारा अनुग्रह ही मेरा सर्वस्व है। मैं मली माँति सम्पन्न गया हूँ  
 कि तुम्हारे सिवा और कोई सहारा नहीं<sup>२</sup> । "

१- चैयन वणियन चियिन पेरियेन्कुम चितर पेक्कैटिरुन्द  
 दे एन नैवमेन्पाय । एवकु वीन्दुम वीत्तादे

बायर नाय्ककु इन्दु वडिमै तोल्लि पुण्डाये ।

- पेरिय तिरुमोली २- १- ८

पाडि पलरुम पणिन्देवी काण्डिलर

बाहु तामरैयुम ईनुम , वमरुर्कुनुम निन्देयुम वैकटु

वाह्लुवुन्कु इन्दु वडिमै तोल्लि पुण्डाये ।

- वही २- १- ६

२- " वन्पावाय वारमुदमावाय वडियेत्तुक्कु  
 इन्पावाय सल्लानुम नीयावाय पौन्पावै  
 केत्वा । किल्लोत्तियेन केत्तवे । केडिन्दी  
 बालवाक्कु वडियेन नानाल । "

- नान्मुल्लतिरुवन्तादि , ५६

" इन्दाक नालियाक इनिच्चिरिदुम  
 निन्दाक निन्नरुत्त सन्पातदे- नन्दाक  
 नान उन्ने वन्दि स्तेन कण्टाय- नारणने ।  
 नी येन्ने यन्दीयिरे । " - नान्मुल्ल तिरुवन्तादि ७

नम्राखवार कहते हैं - " हम तो भगवान् के दास हैं, चिरकाल से । पीढ़ियों से उनके दास रहते जाये हैं। उस परम पिता की दोष रक्षित सेवा करने में कल्याण है। " एक अन्य स्थल पर वे कहते हैं - " हे भगवान् । तुम मेरे पिता हो, माता हो । मेरे सब कुछ तुम्हीं हो । "

आत्मदोष प्रकट कर तोंडरडिपौडी आखवार दैन्य भाव से भगवान् की शरण की याचना करते हैं । तड़पते हुए भक्त हृदय की करुणा-सुधार इन पर्वों में हमें सुनाई पड़ती है। वे कहते हैं - " मेरा अपना कोई घर नहीं । अपनी कोई जमीन नहीं और पूरने वाला कोई बन्धु भी नहीं । फिर भी हे करुणा-मूर्ति । इस पार्थिव जीवन में आप<sup>के</sup> चरणों की शरण मैं ने ग्रहण नहीं की । हे धन-श्याम भगवान् । अब तो भारी क्रन्दन करता हूँ । कोई है मुझे आत्म्य देने वाला ?

१- वीतिविलि कालमेत्ताम उडनाय मन्नि

वसुविला वडिमै चैकुसैण्डुम नाम

वेली कुरुलरुची तिरुवैकटु

रखिल कोल ज्योति एन्तै तन्नी तलैवके । "

- तिरुवायमोली २-२-१

२- " भूटा ताय नी पिरपिल तन्नी नी । "

- पेरियतिरुवन्तादि ५

३- " ऊरिल्लेन काणियिल्लै उरु म्दौरुवरिल्लै

पारुल्लिन्पाव मूलम पद्वि लेन परम मूर्ति ।

कारौलीवण्णने । कण्णने । क्कुरुकिन्देन ।

वारुत्तर ? क्लैकण वम्पा । वरंगमानारुत्ताने ।

- तिरुमासि २६

— मेरी मन में थोड़ी सी अविवशता नहीं, मुँह से एक भी शिष्ट वचन नहीं निकलता । शोध के कारण मैं जेण बुद्धि का दमन कर नहीं पाता हूँ । किन्तु दूसरों पर बुरी दृष्टि डालकर कटुवचन बोल देता हूँ । हे तुलसी मालाधारी । मेरी अब क्या दशा होगी ? कहिए, मुझ पर शासन करने वाले महाशय । ”

— हे भगवान् । तुम्हारे दर्शन को प्राप्त करने के मार्ग से विमुख रहने वाले लोगों की संज्ञा मैं मैं रहा । मैं मूर्ख हूँ । मूर्खों में भी निम्न कोटि का हूँ । अब बाफकी शरण मैं आया हूँ । — सुन्दर स्त्रियों के प्रेम-पाश में, रूप-बाल में बन्द रहकर झूठे संसार में अपने सारे समय को मैं गंवा दिया । मैं झूठा हूँ । नीच हूँ । अब बाफकी शरण मैं आया हूँ ।

तिरुम्पी बालवार दास्य भाव से भगवान् की कृपा की याचना करते हुए कहते हैं — “ मैं दुखी हूँ, चिंतित हूँ, व्याकुल हूँ । चाँचाऱि

१- मनचित्त वीर वृष्मयित्त वायितोरिन्चोत्तिल्लै  
चिनचिनाल वेदम नोक्की तीविलीवन्वाला  
पुनवुलाय मालयाने । पोन्नी वृत्ति तिरुवरंगा ।  
स्वकृरनिक्कदि येन्चोत्ताय ? एन्नेयात्तुळै कोवे ।

— वही ३०

कार्तिस्तनेय मेनिक्कण्णने । उन्नेक्काण्णुम  
मार्गमोन्दुरिमाट्टा मनिवरिल तुरिनाय  
मुल्लेन वन्दु निन्देन मुल्लेन मुल्लेने ।

— तिरुमाले . ३२

२- मेय्येत्ताय पोक्किट्टु विरिक्कुलारिल प्पट्टु  
पोय्येत्ताय पोदिन्दु कोण्ट पोल्कनेन वन्दु निन्दे  
एय्ये । अरंगे । उन्नरुत्तेन्नुमाशे तन्नाल  
पोय्येन वन्दु निन्देन पोय्येन पोय्येने ।

— वही ३३

मोह-जाल में फँकर मैं कितने ही स्वर्ण दिन खो च दिये हैं। विजय की कामना कर, नखर फँकारों की इच्छा कर, नारी के मोह-जाल में फँकर, जबल मन है कितने दिन मैं ने नष्ट कर डाले ।— अब क्या कहें ? हे भगवान् । मैं चोर हूँ, कपटाचरण करने वाला हूँ, मन माने मार्ग पर चलनेवाला हूँ, दिशाहीन हूँ, लक्ष्यहीन हूँ । अब आपकी दया की कामना करता हूँ ।<sup>१</sup> “ हे करुणानिधान । अन्त में मैं आपसे पास बाँधा हूँ । इस अर्चन की रक्षा करो ।<sup>२</sup> “ कुलसैराजवार ने भगवान् की शरण की ही एक मात्र सहारा माना है। वे कहते हैं —<sup>३</sup> “ मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूँ । हे भगवान् । तुम्हारी शरण के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं । जिस प्रकार माता के दूध लेकर त्यागने पर भी शिशु माता के प्रेम पर आश्रित है, उसी प्रकार मैं भी आप ही के अनुग्रह पर आश्रित हूँ ।<sup>३</sup> “

१- “ येम मे वैडी नीविने पेरुवकी

तेरिविमारु रुवमे मरुपि

ऊम्मार कष्ट कनवितुम फलदाय

वौलिनन्दन कलिन्द वन्नाट्रुल ”

- पेरिय तिरुमोली १-२-३

“ वेन्द्िये वैडी वीलपीरु किरैरि

वैर्णार कलविये करुदि

निन्दुवा निल्ला मैचिनेयुडमैन

एन वैलैन ?

- वही १-२-४

“ कलवैनानेन पडिरु वैरुतिरु येम

कष्टवातिरितन्नेनेलुम

मल्लियेनानेन वैल्कदियमन्देन

चिवकेनपिरुवरुल प्पेन । वही १-२-५

२- प्पेन वौन्दुमिलेन पावमे वैरु पावियानेन

व्पेन वन्देन्देन वडियेन वाट्कोष्टरुलाय । वही १-२-६

३- पेरुमाल तिरुमोली ५ : १



बाण्डास ने भी एक स्थान पर स्वयं को "गौविन्द" की दासी कहा है।

दास्य भक्ति से जोत प्रीत सुरदास के जैसे पद मिलते हैं। दास्य भाव को प्रकट करते हुए सुर कहते हैं :- "नन्दनन्दन की शरण में जाकर मेरा मृत्यु-मय छूट गया, मैं अन्य भक्ति के चिह्नों को भेंट कर कृष्ण भक्ति के चिह्न धारण कर लिये हैं। मस्तक पर तिलक कान में तुलसी फल और कण्ठ में वनमाला आदि चिह्नों को देकर मुझे लोग श्याम का दास कहते हैं। यह सुनकर मेरा मन प्रसन्न होता है। सबसे बड़ा सुख तो मुझे यह है कि मैं दासवृत्ति से भगवान् की फूँठन प्रसाद रूप में पाता हूँ।" अपने दोषों को प्रकट कर सुर ईश्वर से शरण की याचना करते हुए कहते हैं :-

"जब मैं नाच्यों बहुत नृपाल,  
काम क्रोध को पहिर चोलना, कंठ विषय की माला।  
महानीह के नुपुर बाजत निंदा शब्द रसाल।  
मरम मरूयो मन मयो परवाक्य चलत कुसंगत बाल।  
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल।  
माया को कटि फँटा बान्धयो लोभ तिलक दियो माल।  
कोटिक कला काहि देखराई, जस थल सुधि नहीं काल।  
सुरदास की सबे अवस्था दूरि करौ नन्दताल ॥" ३

परमानन्ददास दास्य भाव से विनय करते हैं - "हे, कृपावन्त स्वामी। आप मुझे भी अपने चरण-कमलों का मधुप बना लीजिए। मेरी आप से यही प्रार्थना है।"

अपने चरण कमल को मधुकर हमहूँ काहे न करहु बू।  
कृपावन्त भगवत गुनार्थ इहि विनती चित धरहु बू।

१- नाचियार तिरुमोली १ : ६

२- सुर सागर प्रथम स्कन्ध पद सं० १७१ ना० प्र० समा० काशी

३- .. ५, १५३ ..

शीतल वातपत्र की छाया कर लंछन सुककारी बू ।

पद्म प्रवाल नैन बनियारे कृपा कटाक्ष मुरारी बू ।

‘परमानन्ददास’ रस लोभी माग्य बिना क्यों पावे बू ।

जाफो द्रवत रमापति स्वामी सो तुम्हरे दिग जावे बू । १

मीराबाई कहती हैं :-

हरि म्हारा जीवण प्राण बधार ।

बीर वासिरी जा म्हारा धे विण, तीनु लोक मेकार ।

धे विण म्हाणै जग णा सुहावा, निरत्या सब संसार ।

मीरा रे प्रभु दासी रावली, लीज्यो मेक निणहार । २

सूरदास मदनमोहन इस प्रकार विनय करते हैं :-

मेरी गति तुम हो केक तोन पाऊँ । ३

परम - कमल - नख - मनि पर विषै - २३ रे म्हाँके ।...

पाइन जो पेन्नी प्रभु ते न अनन जाऊँ ॥

सत्य भाव की मणित-

लौकिक व्यवहार में जो मित्रता का वादर्थ उपस्थित किया जाता है, उसी वादर्थ भाव की सत्य मणित में भक्त भगवान् के प्रति रहता है। मित्रता के उच्च वादर्थ के अनुसार मित्रों में परस्पर किसी प्रकार के स्वार्थ की अपेक्षा नहीं रहती। अतएव सत्य भाव द्वारा निस्वार्थ मणित की पुष्टि पूर्ण रूप से होती है। जिस प्रकार वात्सल्य मणित के अन्तर्गत भक्त भगवान् के साथ पूरी स्वतन्त्रता से व्यवहार करता है, उसी प्रकार सत्य भाव की मणित में भक्त भगवान् के सम्मुख अपने हृदय की बातों को व्यक्त करने में किसी भी प्रकार रंकीच, भय कम्पा डोटे-बड़े का अनुभव नहीं करता। क्योंकि दोनों के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होता है, उसमें समानता के भाव की पूर्ण प्रतिष्ठा है। यदि सत्य भाव की मणित का महत्व है। ‘नारद-मणित-सूत्र’ में प्रेमासक्ति के ग्यारह भेदों में सत्या-

१- परमानन्द बागर ( सं० डा० गो० ना० शुक्ल ) पद सं० ८७२ पृ० ३०६

२- मीरा की पदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० ४ नवां संस्करण

३- ब्रज माधुरी चार पृ० १०५

सहित भी एक है, जिसका उत्तेज हम पीछे कर चुके हैं ।

कृष्ण के जालीकित विभिन्न खेल तथा गोचारण समय के कृष्ण गोप और ग्वालों के परस्पर व्यवहार और उनके प्रीति-भोज आदि प्रसंगों में सत्य प्रेम के चित्र मयत कवियों ने वर्णित किये हैं। जालवार मयतों के काव्यों में सत्य मयित भाव की अभिव्यक्ति करनेवाले प्रसंग बहुत कम हैं। किन्तु जालीक्य कालीन हिन्दी कृष्ण-मयत कवियों के काव्यों में सत्य मयित के प्रसंग प्रचुर मात्रा में हैं ।

कृष्ण ससार्जों की अपनी मधुर लीलाओं में भी अपने साथ रहते हैं । माखन चोरी में वे अपने ससार्जों से सहायता लेते हैं। गोचारण प्रसंग में सत्य प्रेम प्रगाढ़ रूप में प्रकट होता है। सत्य प्रेम के वशीभूत होकर कृष्ण अपने ससार्जों के साथ ही गारं चराते हैं और उनके सुख के लिए जामोद-प्रमोद भी खेल खेलते हैं। उनके साथ गाते हैं और नाचते हैं। ससार्जों के साथ बैठकर भोजन भी कर लेते हैं<sup>१</sup> । इन प्रसंगों में कवियों ने सत्य मयित की ओर संकेत किया है।

गोप बालकों के साथ वन से लौटने के प्रसंग का वर्णन करते हुए परियालवार कहते हैं :- “ मुरली की मधुर ध्वनि सर्वत्र व्याप्त होकर सुनने वाले को मोहित कर लेती है। विविध वार्धों को ब्याते हुए जाने वाले गोप बालकों की बड़ी गोष्ठी के साथ कृष्ण भी जा रहा है। कृष्ण के मित्र गोप बालक छोटी तलवार, धनुष, लीलादंड एवं उपरीय को उसके अपेक्षित समय में देने के लिए हाथ में तैयार रखकर उसके पीछे पीछे जा रहे हैं। स्वयं कृष्ण तो अपने एक हाथ से अपने प्राण-समान मित्र किसी बालक के हाथ का अवलम्बन करते हुए और दूसरे हाथ में गायों को बुलाने के साधन रँत को धारण कर ब्रज लौट रहा है। मोर-पंख

१- परियालवार तिरुमोली २ : ६

२- नाच्चियार तिरुमोली १२ : ६

३- तलेकलुम तोकलुम तदुम्पी लुम

तण्णुमै लकम मलितालपीली

कुलकलुम गीतमुयाकी लुम

गोविन्दन वरुकिन्दू कूट्टम कण्टु

- परियालवार तिरुमोली ३-४-१

से शोभित केश पात से सुनत कृष्ण अपने गोप सखाजों की गोष्ठी में जागे ठहरकर  
नाना प्रकार से गान व नृत्य करते हुए जा रहा है।<sup>१</sup>”

हिन्दी के जष्टकाव्य कवियों ने सत्य मयित के सुन्दर  
उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। सूर की सत्य मयित के उदाहरण कृष्ण की बाल-सीता  
वीर गोचारण-सीता के वतिरिखत “सुदामा दरिद्र भवन” नामक प्रसंग में मिलते  
हैं। इस प्रसंग में सूर ने भगवान् की सबसे बड़ा मित्र कहा है और सत्य मयित की  
महत्ता का उल्लेख किया है। सुदामा मित्र भाव से कृष्ण के पास जाये। उस समय  
कृष्ण ने सुदामा के साथ एक वैष्ट मित्र का सा व्यवहार किया :-

दूरि से देखे बलबीर ,  
अपने बाल सखा सुदामा, मलिन वसन बरु हीन शरीर ।  
पाँडे हुते प्रथम परम रुचि रुचिमनी चमर डोलावत तीर ।  
उठि कृताइ बनमने सीने मिलत नैन मरि बाए नीर । २

तथा-

स्त्री प्रीति की बलि जाऊँ ।  
सिंहासन तजि चले मिलन की सुनत सुदामा नाऊँ । ३

१-“ पल्लिनुष्णद्वाक उल्लास चाद्री  
पर्णवक्त्रुन्दोपस तलेनहुवे  
मुल्लै नल नरुप्तर वैम मलरणिन्दु  
पल्लायर कृत्ताम नहुवे

- वही ३-४-२

“ चुरिकैयुम तेरिविल्लम वेप्पु कोलुम  
मैलाडियुम तोळनमार कोण्डोट  
वीरु कैयात्त वीरुवन त्त त्तोत्तियुनिद्  
वानिरैयिनम मीत्तवकुरित्त वंगम

- वही ३-४-३

२- सूर सागर, दशम स्कन्ध , पद सं० ४८४६ पु० १६८६ ना० प्र० सप्ता

गोधारण प्रांग में सूर की सत्य भक्ति का बीर भी  
प्रादु रूप प्राप्त हुआ है। सत्य प्रेम के वशीभूत होकर सूर के कृष्ण भगवान् सदा  
भवतों साथ गाय बराते हैं। उनके सुख के लिए आनन्द-प्रमोद भी खेल खेले हैं :-

बरावत वृन्दावन हरि गाई ।

सदा लिए संग सबल श्री दामा डोलत हैं सुखपाई ।

झीडा करत जहाँ तहाँ सब मिलि आनन्द बढाई- बढाई ।

कगरि गई गझ्या वन वीथिनि देखी बति लुलाई ।

कौऊ गर ग्वाल गाइ वन घेरन कौऊ कगर बहुर लिलाई ।

बापुहि रहे जैसे वन में कई हलधर रहे बाई ।

वशीवट शीतल जमुना तट बतिहिं परम सुखाई ।

सूर श्याम तन बैठि विचारत रहा कहां विरमाई । " १

नन्ददास के कुछ पद भी कृष्ण की गोधारण तथा  
हाफ-सीला के हैं। परन्तु उनमें उतना प्रादु रूप नहीं है जितना सूर में है। नन्ददास  
के सुदामा चरित के अन्तिम कन्दों में सत्य भक्ति की महत्ता पर कहा गया है-  
" जो सुदामा की तरह सत्य भाव से भगवान् की भोगा उन्को सब सुख प्राप्त  
होगा । "

" ऐसे जो कौऊ हरि को भजे, हरि उदारता से सुख सेवे । " २

परमानन्ददास की रचनाओं में सत्य भक्ति का भाव-  
पूर्ण वर्णन हुआ है। सत्य भक्ति का स्वात्वादन करते हुए गोप रूप से परमानन्द  
गोधारण बीर हाफ के पदों में अपने सदा कृष्ण से कहते हैं :-

बाब दधि भीठी मदन गोपाल ।

भावत मोहि तिहारौ झूठौ चंचल नयन विखल ।

१- सूर सागर , दशम स्कन्ध का संख्या १११८ पृ० ४३४ ना० प्र० समा

२- नन्ददास ग्रन्थावली , सुदामा चरित पृ० २१५ ना० प्र० समा



जाने पात बनाये दीना दिये सबन को बंट ।  
 जिन नहीं पायो सुनी रे मेया मेरी ह्येरी बाट ॥  
 बहुत दिनन हम बी कुमुदवन कृष्ण तिहारे साथ ।  
 सोही स्वाद हम कबहुं न चाल्यो सुन गोकुल के नाथ ॥  
 बाजुन हंसत हंसावत ग्वालन मानुस लीला रूप ।  
 'परमानन्द प्रभु' हम सब जानत तुम त्रिभुवन के मूष ॥ १

### वात्सल्य-भाव की भक्ति-

वात्सल्य भाव की भक्ति अन्य सब प्रकार<sup>की</sup> भक्तियों से  
 उत्तम ही जा सकती है। क्योंकि वात्सल्य भाव भक्ति का शुद्ध भाव है। इसमें निष्काम  
 प्रेम का भाव सर्वाधिक रहता है। इस प्रकार की प्रीति की भक्ति के अभ्यास से साधन  
 की आरम्भिक अवस्था में लौकिक वासनाएँ सभी शीघ्र ही छूट जाती हैं। वात्सल्य  
 प्रेम में स्नेह-पात्र के अवोध और अज्ञान होने के कारण स्नेही को उससे बदले में  
 कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह जाती। वात्सल्य भाव की शुचिता, सुखमयता  
 तथा प्रसन्नता का अनुभव फिर-हृदय की ओपता मात्र-हृदय ही अधिक करता है।  
 यही कारण है कि वात्सल्य भाव की भक्ति करनेवाले भक्तों ने अपने को यशोदा  
 की स्थिति में अधिक रखा है।

बालुवार भक्तों में परियालवार ने वात्सल्य भाव के बहुत  
 ही सुन्दर चित्र वर्णित किये हैं। जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य-जीवन का  
 चित्रण परियालवार ने किया है, उतने विस्तृत रूप में तमिल के किसी दूसरे कवि ने  
 नहीं किया है। शैशव से लेकर कोमार्य-अवस्था तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने  
 चित्र मौजूद हैं। परियालवार<sup>ने</sup> केवल बाहरी रूपों और भेषाबों का ही विस्तृत और  
 सूक्ष्म वर्णन नहीं किया है, बल्कि बालकों की अन्तः प्रकृति में पूरा प्रवेश किया है  
 और बाल-भावों की सुन्दर स्वाभाविक अभिव्यक्ति की है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

जी ने महाकवि सुरदास के विषय में जो लिखा है, वह परियात्वार के विषय में भी सत्य है। विवेदी जी ने लिखा है - " यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो 'माता' शब्द की इतना महिमाशाली स्मरण करे है। --- यशोदा के कहाने सुरदास ने मातृ-हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि वात्सल्य होता है। माता संसार का ऐसा मवित्र रहस्य है जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सुरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेम स्थापित हृदय की छान में समर्पण हुए हैं, वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विमल हृदय की छान में भी समर्पण हुए हैं।" यों कहा जा सकता है कि सुरदास हिन्दी के परियात्वार हैं और परियात्वार तमिल के सुरदास हैं।

परियात्वार ने अपनी लघु रचना "तिरुप्पल्लान्हु" में भगवान् की शिशु रूप में कल्पित कर उन्हें वात्सल्य भाव से कई सहस्रों वर्षों जीवित रहने का वाशीवाँद दिया है :- " जय हो। प्रभो। जय हो। तुम्हारी भुजाओं ने चाणूर और मुष्टिक नामक मत्स्यों को पकड़ा है। इन्द्र नील मणि सदृश्य कांति युक्त दिव्य मालमय शरीर धारी। तुम्हारा माल हो। जेक शत सहस्र कोटि वर्षों तक तुम्हारे चरण-कमलों की शोभा बनी रहे। तुम, चिरायु हो। "

माता यशोदा के हृदय के प्रत्येक उद्गार को, उसके प्रत्येक उच्छ्वास निःस्वास की परियात्वार ने बड़ी मार्फिता के साथ दर्शाया है। कृष्ण-जन्म के कुछ दिनों के बाद यशोदा अपनी सहेलियों से कहती है - " बाले में झोड़ा, ऐसा फट प्रहार करता है कि उसके टूटने का भय होने लगता है। गोद में उठा लूँ तो

१- सुर साहित्य, डा० लक्ष्मी प्रसाद विवेदी, पृ० १२६-१२७

२- " पल्लान्हु पल्लान्हु पल्लायिरण्हु

फल कोटि नूरायिरम

मल्लान्हु तिप्पल मणि वण्णा।. उन

वेव्वही वेव्वितिरुकाप्पु। "

- तिरुप्पल्लान्हु, १

कमर तोड़ देता है । हाथी से लगा लूं तो पेट फाड़ देता है । है सति । मुझसे नहीं होती इस शिशु की सार-संभाल । मैं क्या करूँ ?”

शिशु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य पर माता मुग्ध हो जाती है और अपनी सहेलियों से वाकर देखने को कहती है - “ शिशु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य को देखो । शिशु के अपने पैरों की उंगली को मुँह में लेकर चुम्बते समय उसके कोमल चरणारविन्दों की सुन्दरता को वाकर देखो । है सति । ” माता चन्द्रमा की संलक्षित कर कहती है - “ मेरे लाल के माथे पर वाम्भुजण डोल रहा है । सोने की किंकिणी सुमधुर निनाद कर रही है । मेरा लाल गोविन्द जमीन पर धूल में घुटने के बल रेंगता हुआ खेल रहा है । — मेरा नन्नहा, जो मेरे लिए वसू के समान अमूल्य है, मुझे खुला रहा है, अपने नन्हे कोमल करों से तुम्हारी ओर लक्षित कर । अगर तुम इस घनश्याम के साथ खेलना चाहोगे तो मेरी के पीछे हिपी मत । — है चन्द्र । ज्योतिर्मय रथ पर विराजमान होकर सर्वत्र प्रकाशमान होने पर भी तुम मेरे लाल के मुख की वामा के सामने कभी फट जाते हो । ” मेरा लाल

१- किडकिड तोटिट किडिय उदधिहुम

खुल्लकोल्लिल पहंगेयिरुधिहुम

बोहुवकी पुल्लिल उदरणे पारन्दिहुम

मिहुकिस्तमियाल नान मेतिन्दैन नंगाय । - परियात्तवार तिरुमोली १-१-६

२- कोदेवकुललाल वलीदेवकुप्पीचन्द

पेदेवकुलकी पिडितु चुवेतुण्णुम

पादवकमललाल काणीरे फलवायीर । वन्दु काणीरि । - वही, १-२-१

३- तनमुल्लु चुटिट तुकुलु तवलन्दु पोय

पोनमुल्लकिंकिणीयारु पुलुदिकेकिन्दान । - वही १-४-१

स विरुक्कुट्टन सवकोरन्नुपु रंपिरान

तनविरुक्कुलाल काटिटकेकिन्दान

वैनवण्णनोहु वाडलाड उरुदिये

मंचिल मर्यादे मामती । मकिन्दोडीवा । - वही १-४-२

४- चट्टम वीलीवट्टम वुल्लु चोतिपरन्नेगुम

एतन वैरियुम सन मकन मुल्लम नेरौवाय ।

- परियात्तवार तिरुमोली १-४-३

मेरी कमर पर बैठकर तुम्हें चुला रहा है। ओ दुःख मत दो। हे पुत्रहीन बाने,  
जल्दी जा जाओ।<sup>१</sup> " मेरे लाल के सुन्दर मुल से बहुत समय लार टपक रही है।  
मेरा लाडला तोतली बोली से तुम्हें फुहार रहा है। मेरे सर्वप्रिय दुलारे के यों  
चुलाने पर भी तुम नहीं जाओगे तो तुम्हें मैं बहरा समझूंगी।<sup>२</sup> "

माताक को लोरी गाकर शिशु के चुलाने में किता  
वानन्द है। कान्हा धीरे धीरे पैरों पर चलने लगा। कान्हा बैठी है। कान्हा  
लिललितकर हँसता हुआ बाहर उस से लिपट जाता है और उसे प्यार करता है।  
उसी मूर्ख से बहू-स की लार की धारा प्रवाहित है। वह शिशु-चुम्बन माँ के  
हृदय में बहुत प्रवाहित कर देता है। बच्चे को स्तन्य-पान कराने के लिए माता

१- वीरकसे भितिरुन्दु उन्नये चुरिट काट्टुम काण  
लकतरिदियेन चन्दिरा। चतम वेय्यादे  
मकटपेराद मलनल्लेयेन वा कण्टाय।

वही १-४-४

२- कलकियायि वसुधूरल तैलिवुरा  
मल्लमुद्राप ल्लवोत्ताल उन्नैवूतुकिन्दान  
कूलन विरीदस कूवकूव नी पौदियेन  
कुंयिवावाकादे निन वेवोफुर माय्ती।

वही १-४-५

३- कन्नहुंम तिरन्दालोपूरी कण कण विरिवुवन्दु  
मुन्वन्दु निन्दु मुलम तरुम स मुक्कि वण्णन तिरुमार्वन  
तन्नैप्पेदुं तन वाक्कुदम तन्दु रन्नैल्लिपिक्किन्दान

वही १-४-४

बुझाती है - " मेरे लाल ! कमल- फल पर मोती- सम पड़ी बीच- दुन्दों की तरह तुम्हारे मुल- कमल पर फलीने की डूँ हैं । फिर भी तुम धूल में तेल रहे हो । जल्दी दूध पीने जा जाओ । दाँड़ते हुए जाओ जिससे कि तुम्हारी किंकिणी निना- दित हो उठे । गाते हुए , झूमते हुए, नाचते हुए जाओ । लौट मत जाओ । दूध तो पी लो । "

काल सुलभ चैष्टाओं का तो पेरियाल्वार ने सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया है। कान्हा पड़ोस के कच्ची से मगड़ा करने के बाद चुकी से घर जा जाता है । पड़ोसिने अपने रौने वाले कच्ची को साथ लेकर यशोदा की घर लेती हैं और शिकायत करती हैं । कान्हा हँस रहा है। कान्हा पड़ोस के घरों से मक्खन चुराकर ही नहीं खाता , बल्कि खाने के बाद सारी पड़ों की पत्थर<sup>पर</sup> दे मारता है और उनके टूटकर बिखरने की आवाज पर मुँह होकर तालियाँ बजाता हुआ नाच

१- अकम्पम्योक्कचित्त वणि कोल मुण्य चिन्तिनापील  
वैकम्पल मुल्लम विवर्पडीमि वेरुतु इप्पुदुट्टे  
अम्पेत्तान पुत्तियाक अलैय वैटान वम्प । विम्प  
अम्पेत्तु अमुदत्ति वमरर कोवे । मुलै युणायि ।

- वही २- २- ६

और

२- वोडवोड किंकिणीकल वोत्तिकुमोलेप्पाणियाले  
पाडिप्पाडी वरु चिन्द्रायै पर्मानाप्पेन्दु इरुन्नेन  
वाडियाडी यैन्तिट्टु वदनुवैद् कूट्टाडी  
वोडोयोडी पोय विडादे । उवमा । नी मुलैयुणायि ।

- वही २- २- १०



उठता है। पड़ोसिमें यशोदा से इसकी शिकायतें करती हैं<sup>१</sup>।

पहली बार जब कान्हा गौर चराने के लिए वन की ओर जाता है, तब यशोदा का क्लेश और शार्काल को ठीक समय बालक के लौटने तक उसकी चिन्ता और चबराहट का वर्णन हृदय-द्रावक है। पुत्र-विप्लव एक दौण के लिए भी माता को क्लेश है। यशोदा अपने को कोसती हुई कहती है - “कनकवर्ण बाहे भेर दुलारे को मैं बड़े सधेरे ही स्नान कराकर वन में दिया। गायों को चराने के लिए वन में चलते समय उसके कोमल चरणों को कष्ट पहुँचा। उसको यहाँ रखकर उसकी नाना चेष्टाओं को देखते ही रहने के बदले पाप्मिनी मैं उसको वन में दिया। हाय<sup>२</sup>।----- उसके यहाँ रहने पर भले ही सुन्दर केशवाली गोफिकार बाहर उसकी धूर्त चेष्टाओं की शिकायत मुँह से करें, मैं उसकी परवाह नहीं करती। नयन-प्रिय पुत्र को मैं ने मयानक वन में कहीं को चराने में दिया। पाप्मिनी हूँ मैं। हाय।” जब कान्हा वन से लौटता है, तो माता के वानन्द की सीमा नहीं रहती और वह गर्व के साथ कहती है कि इस पुत्र को प्राप्त मैं धन्य हूँ<sup>३</sup>।

१- परिवात्वार तिरुमोली २- ६- १

२- कनकवर्णन बावर कोसवकोलुन्दिन  
मनमाट्टी मैकल तोरुम तिरियामे  
कनककान्द कलललिकल नोवकन्दिन पि  
एन वेयप्पिल्लैय्योविकनेन एत्ते पावमे ।

- परिवात्वार तिरुमोली ३-२-१

३- वण्णकुरुकुल मादर वन्दु कल्लुदिह  
पण्णप्पल्लैय्यु हप्पाही लुम तिरियामे  
कण्णुविकनियाने कानदरिहैकान्दिनपि  
एण्णकुरियाने पोविकनेन एत्ते पावमे ।

- वही ३-२-४

४- परिवात्वार तिरुमोली , ३- ३- १

ठ माता यशोदा के मातृ-हृदय का चित्र तो जैसा कि कवियों ने वर्णित किया है। परन्तु उस अमाग्निनी देवकी की ओर जिस की विधि की विद्व-यना से पुत्र को जन्म देते ही, पुत्र से बिछड़ना पड़ा, कवियों का ध्यान कम गया है। उस (काव्य-क्षेत्र में) उपेक्षिता नारी का मन पुत्र-वियोग में किन किन बातों का स्मरण कर तड़पता होगा, इसका बड़ा ही हृदय-द्रावक वर्णन कुल्लुसरात्तार ने प्रस्तुत किया है। देवकी विलाप करती है :- “ हे दिव्य पुत्र ! तुम्हें पावने में छिट्कार लोरी गाते गाते सुलाने का माग्य मुझे नहीं मिला। मैं अमाग्निनी हूँ। जीवन लो हर सुन्दर नयन, बाधुषण से अलंकृत कोमल कांति युक्त शरीर वाते बालक का आर्त्तन करने का माग्य मुझे नहीं मिला। — तुम्हारे कोमल करों से दिख-लाकर” बाधा “ कलकर फुकारते हुए सुने का माग्य नन्द को मिला। भौं वति-देव ( वसुदेव ) को नहीं मिला। तुम्हारी बाल-बेष्टाओं को देखकर मुतकित होने का सौभाग्य यशोदा को मिला, मुझे नहीं। मैं अमाग्निनी हूँ। — ( इत्यादि )”

१- स्तवीर कुल्लेन मन तातेलो

एन्देन्दु उन्ने एवायिडे निरय

तालोतिथिहम तिरुविनेयिल्ला

तावरिल क्कैयायि ताये । - पेरुमाळ तिरुमोली ७ : १

२-

कडक्कियार वैचिरु विरल्लेनुम

कैयौड, वर्णन्दु वानियिर्किन्द

किहवकै कण्डिटपेट्रिलेन वन्तो ।

केशवा ! केहुलेन केहुलेने । - वही ७ : २

उन्नीयावनेन्दुरेप्प निक्किल

विरल्लिनुम क्कैक्कण्णिनुम काट्ट

नन्दन पेन्नन नल्लिनेयिल्ला

नैक्कलोन वसुदेवन पेट्रिलेने । - वही ७ : ३

तिरुविलेन ओन्नुम पेट्रिलेन एल्लाम

देवर्गै यशोदे पेद्राले । -

— वही ७ : ५

वालीज्जकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में सुरदास और परमानन्ददास ने विशेष रूप से बाल-लीला के पद बहुत गाये हैं। सुरदास में कृष्ण की बाल-लीला तथा कृष्ण-वियोग में यशोदा-विरह के संपूर्ण पद सुर की वात्सल्य भावित के प्रमाण हैं। सुर का मातृ-हृदय बाल रस की अभिलाषा कर कह उठता है :-

भरी नान्हरिखैं गोपाल बेगि बहो किन होई ,  
 हहि मुख मधुरे बयन हंसि कबहुं जननि कहौगे मोहि ।  
 यह लातसा अधिक दिन दिन प्रति कबहुं हँस करे ,  
 मो देखत कबहुं हंसि माधव फूटै धरनि धरे ।  
 हलधर संग फिरै, जब बागिन बरणा शब्द सुन पाऊँ ,  
 क्षिण क्षिण दगुक्षित जान पय कारन हौं हठि निकट हुलाऊँ ।  
 बागम निगम नेति करि गायो शिव उनमान न पायो ,  
 सुरदास बालक रस लीला मन अभिलाषा बढ़ायो । १

कृष्ण का बाल सौन्दर्य भी जानता है। यशोदा ही नहीं, बल्कि ब्रज सभी माताएँ उस सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। सुर कहते हैं कि उस अपार सुन्दरता सिन्धु की केवल एक बूंद ग्रहण करने की शक्ति ही उनकी वैर्षिचन अनुमति में है।

ललन हौं या इबि ऊपर बारी ,  
 बाल गोपाल लगी इन नैननि रोग बलाह तुम्हारी ।  
 लट लटकनि मोहन मसि किंहुका तिलक भाल सुलकारी ।  
 मनहुं कमल बलि शक्क फँसति उठत मधुप इबि मारी ।  
 लोचन ललित कपोलनि काजर इबि उपमत्त अधिकारी ।  
 सुख में मुख बी इबि बाढ़ति हँसत दै दै किलकारी ।  
 जल्पवसन कलकल करि बोलसि विधि नहि परत विचारी ।

निष्कृति जोति वधरनि के बीच हूँ मानो विधु में बीबु उबारो ।

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि कहतारो,

सूर सिन्धु की रूंद मई मिलि मति गति दृष्टि हमारी ॥ १

सूर के वियोग-वात्सल्य-वर्णनों में वात्सल्य भक्ति  
प्रादु रूप में प्राप्त हुई है। कृष्ण के लक्ष्मी के साथ मथुरा चले जाने पर पुनः वियोग  
में यहीदा बटफटाने लगीं । उनकी स्थिति का वर्णन सूर के शब्दों में सुनिद-

जसोदा बार-बार यों माने ।

हे कोई ब्रज में छिपू हमारी, चलत गुपालहिं राखै ।

कहा काज मेरे जगन मान को, नृप मधुपुरी बुलायौ ।

सुफलक-सुत मेरे प्राण हरन को, काल रूप हूँ जायौ ।

बहु यह गोधन हरी कंस सब, मोहि बँदि ले पैली ।

इतनीई सुख कमल-नयन मेरी बँलियनि जागै लेली ।

बासर बदन बिलोक्त जीवौ, निशि निज ऊँकन लाऊँ ।

तिहिं बिहुरत जाँ बियाँ, कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ ।

कमल नयन गुन टेरत-टेरत, वधर बदन कुम्हिलानी ।

सूर कहाँ लगि प्राटि, जनाऊँ, दुखित नंद बु की रानी ॥ २

बाल-कृष्ण की हवि पर मुग्ध परमानन्ददास कहते हैं :-

बाल विनोद गोपाल के दैतत मोहि भावै ।

प्रेम पुलकि जानन्द परी जसुमति गुन भावै ।

बलि सभेत धन साँवरौ वर्गिन में धावै ।

बदन ब्रूमि गीद लियौ सुन जानि खिलावै ॥

सिख विरंचि मुनि देवता जाकौ पार न पावै ।

सो परमानन्द म्वाल को हँसि भली मनावै ॥ ३

१- सूर सागर, दशम स्कन्ध, पद सं० ७०६ पृ० २६२ ना० प्र० समा

२- .. .. ३५६१ पृ० १२७३ ना० प्र० समा

३- परमानन्द सागर ( सं० डा० गो० ना० शुक्ल ) पद सं० ८०

सूर के सपान ही वात्सल्य के विरह की अनुभूति परमानन्द दास को होती है। वे कहते हैं :-

गोपाल बिन कैसे रहिबौ ।

धूसर की उठाइ गोद से लाल कौन सौ कहिबौ ॥

जो मधुपुरी दिवस लागत है सोच सूत तन सहिबौ ।

“ परमानन्द स्वामी ” कौं तबिकें सरन कौन की गहिबौ ॥ ” १

### मधुर भाव की मयित-

लोक में प्रीति के विभिन्न सम्बन्धों में स्त्री-पुरुष के प्रेम में विशेष आकर्षण है। स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति को काव्य-शास्त्र में “ शृंगार रस ” की संज्ञा दी गई है और उसका स्थाई भाव “ रति ” माना गया है। लोकानुभूत स्त्री-पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध की व्यापकता को देखकर मयतों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध की अनुभूतियों को लौकिक शृंगार की भांति और अन्योन्यितियों में प्रकट किया है। लोक-पदा में जो शृंगार रस है, वह मयित-शास्त्र में “ मधुर रस ” कहलाता है। भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी आदि शृंगार के जितने भी बीज हैं, वे मधुर रस के भी बीज माने गये हैं। अन्तर इतना है कि “ मधुर रस ” के अन्तर्गत आलम्बन लोक नायक न होकर ईश्वर का कोई अवतार होता है। एक और अन्तर यह है कि शृंगार रस तथा शृंगार रसानास ये दोनों मधुर रस के अन्तर्गत हैं। श्री कृष्णस्वामी ने “ मयितरसाभूतसिन्धु ” में विस्तार से इस मधुर रस की व्याख्या की है। शृंगार रस के दोनों पदार्थों ( संयोग और वियोग ) की अवस्थाएँ भी मधुर रस के अन्तर्गत स्वीकृत हुई हैं। सारांश यह है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर “ शृंगार रस ” और “ मधुर रस ” में विशेष अन्तर नहीं रह जाता । दोनों प्रकार के रसों के परिपाक के लिए जिस चित्तवृत्ति की आवश्यकता है, वह एक



ही है। मनुष्य की मनोवृत्ति स्वभाव से ही अन्य प्राणियों की तरह इन्द्रिय-सुख की ओर बाधुष्ट रहती है। मन्तों ने स्त्री मनोवृत्ति को इन्द्रिय सुख से हटाकर ईश्वर की ओर उन्मुख किया है माना है कि लौकिक वस्तु या व्यक्ति के संसर्ग से जो सुख इन्द्रियों को मिल सकता है, उसका मूल-स्रोत ईश्वर में ही विद्यमान है। इसी कारण भक्ति-साधना में मधुर भाव को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

भारत मनीषियों का मत है कि भक्त में परमात्मा के प्रति उतना तीव्र प्रेम होना चाहिए जितना स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति। स्त्री-भाव के प्रेम में ही वात्सल्य और वात्स्य विस्मृति की कक्षा पूर्ण रूप में जाती है। पाश्चात्य विद्वानों का भी यही मत है। श्री गैराल्ड वॉन लिखते हैं :-

"In the male mind there is predominance of reason, concern with action, the practical with doing; direction is centrifugal, looking to external achievement. In the female mind there is predominance of intuition, receptivity, concern for being rather than doing; direction is centripetal, the well-doing of the object of love rather than well-doing of other external things." १

यही कारण है कि भक्ति में स्त्री-भाव की बड़ी प्रतिष्ठा हुई है। बाबुआर मन्तों तथा वात्सल्यसाधन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में स्त्री-भाव से होने वाली भक्ति का अधिक परिचय मिलता है। भक्त कवियों ने अपने को स्त्री-रूप में कल्पित कर परमात्मा-पुरुष के प्रति तीव्र प्रेम प्रकट किया है। इन कवियों के लिखे लोकान्तर फलों में इस स्त्री-भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

---

१- "St. Thomas Aquinas.", Gerald Vann, p. 5. H.  
(London, 1940)

कृष्ण-मयित-काव्य में कृष्ण से माधुर्य भाव का प्रेम करने वाली दो प्रकार की गोपियाँ वर्णित हैं। एक तो वे कुमारिकाएँ थीं जिन्होंने वारम्भ से ही कृष्ण पर मुग्ध होकर उन्हें अपना पति माना था और उनमें से कुछ का उनसे वरण भी हो गया था। दूसरी वे थीं जो विवाहिता थीं और जिन्होंने पर पुरुष कृष्ण से प्रेम किया था। गोपियों को बाल्यार भक्तों ने तथा विशेषकर पुष्टिमार्गीय अष्टहाय-कवियों ने बहुधा स्वकीया ही चित्रित किया है। यद्यपि कुछ गोपियों का कृष्ण से विवाह नहीं हुआ था, तो भी वे लोक-लाव, कृत-कानि होकर कृष्ण से प्रेम करती थीं। और अपने मनोरंज्य, स्वाराज्य में अपने को कृष्ण-कान्ता ही मानती थीं। जहाँ गोपियों के मान और सन्धिकता के भाव कवियों ने प्रकट किये हैं, वहाँ भी उन्होंने गोपियों को स्वकीया ही रखा है। बाल्यारों की राधा "नय्यन्ति" तथा हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की राधिका भी कृष्ण की विवाहिता पत्नी के रूप में ही चित्रित है।

बाँहाल तो स्वयं को कृष्ण की पत्नी के रूप में मानती थीं। वे कहती हैं - "यौवनव सुणमा से पुरित मेरा यह शरीर उस कंधारी पुरुषोत्तम के लिये ही वर्णित है। उस पुरुषोत्तम पतिवै को लक्ष्य करके उभरे हुए मेरे उरोधों को यदि दूसरे के उपभोग्य बनाने की (दूसरे के साथ विवाह होने की) बात चली तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।" बाँहाल ने स्वप्न में "माधव" के साथ होने वाले अपने विवाह का भी बड़ा ही सरस वर्णन किया है - "कुंदभियों का नाद उठ रहा था। उँल ध्वनि सुनाई दे रही थी। उस समय जगन्माता मुखतावलियों से अलंकृत मंडप में पुरुषोत्तम ने बाँकर मुँह बनाया।" हिन्दी कवयित्री मीरा के लोके पद स्वकीया - प्रेम को प्रकट करते हैं। मीरा स्पष्ट रूप से कहती हैं :-

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरी न कोई ।

बाँके सिर मोर मुहुट, मेरी पति सोई ॥ ३

१- नाञ्चियार तिरुमोली १ : ५

२- वही ६ : ६

३- मीरा की कदावली पद सं० १८

बीर -

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।

गिरिधर म्हाारी सान्नों प्रीतम देखत रूप सुभाऊँ ॥

००

००

००

मेरी उनकी प्रीति पुरानी उण बिन फल न रहाऊँ ।

००

००

००

मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ ॥ १

एक स्थान पर स्वकीया भाव से दूर की गोपी उल्लेख है

कहती है -

हम बलि गोकुल नाथ बराध्याँ ।

मन, क्रम, जब हरि सौँ धरि पतित, प्रेम जोग तप साध्याँ ॥

मातु पिता हित, प्रीति, निगम फल तबि दुल सुख भ्रम नाह्याँ ।

मानापमान परम परितोषी, सुस्थल धिधि मन राह्याँ ॥ २

प्रेम में पूर्वराम की अवस्था नायक के गुण-ध्वज तथा स्वप्न चित्र या साक्षात् रूप-दर्शन से होती है। जब नायिका के हृदय में रति उत्पन्न होती है, तब उसे प्रिय मिलन की लालसा होती है। इस अवस्था में विरह की दशाईं भी नायिका के मन में उपस्थित होती हैं। कभी प्रिय की रूप-माधुरी उसे सुभाती है। कभी प्रिय की स्मृति, कभी लोक-लाज की चिन्ता उसे सताती है। कभी साहस, उन्माद और विस्तृत आदि भाव मन को फल डालते हैं। इन दशाओं को चित्रित करनेवाले जैसे पद बालुवारों के तथा आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण मन्त्र कवियों के मिलते हैं।

किसोर-कृष्णा के रूप-लावण्य ने जन की गोप-कुमारियों को मुग्ध कर डाला है। परियालवार की गोपी कहती है - " है सति ।

१- मीरा की पदावली पद सं० ३०

२- दूर सागर, दशम स्कन्ध पद सं० ४१४८ ना० प्र० समा

मुखी से मधुर ध्वनि निकालते हुए जाते मनश्याम के जलुल सौन्दर्य पर मैं इतनी मुग्ध मुग्ध हो गयी हूँ कि जनजाने ही मेरे हाथ के कंकण स्वयं गिर रहे हैं। मेरे वस्त्र भी अस्त व्यस्त हो रहे हैं और मेरे स्तन भी मेरे कण में नहीं हैं।”

कृष्ण के रूप-माधुर्य पर मुग्ध गोपी की दशा का वर्णन उसकी <sup>माता</sup> करती है - “कमल दल लोचन, सुन्दर वदन, कृष्ण की गली में मुखी बताते हुए गाते- नाचते जाते देखकर उसके सौन्दर्य पर मेरी पुत्री इतनी मोहित हो गयी कि उसका शरीर अब जीण हो रहा है।”

कृष्णराजवार की एक गोपी कहती है- “सुन्दर सुरभित सुमनों से लदा वर्तकृत केशवाली कई सुन्दरियों से युक्त इस गांव में जब मैं तुम्हारी बालिन की लालसा प्रकट की थी तो तुमने यमुना तट पर मिलने को कहा था। तुम्हारी बात पर विश्वास कर जब इस ठंठक में यमुना-तट पर मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे, मनश्याम ! तुमने फूट ही कहा था ?”

सूर की गोपी कहती है-

जावति ही यमुना भरि पानी ।

स्याम बदन काहु को डोटा, निरति बदन धर- गैल मुलानी ॥

मैं उन तन मन मोतल चितयौ, तबहीं से उन हाथ बिकानी ।

१- परियालवार तिरुमोली ३-४-४

२- -----

कोल चैतामरेकण मिलिरु

कुल्लुदियिवादी कुनिडु वायरीडु

वालिडु वरकिन्दु वायप्पिल्लै

कल्लु कण्टु लन कल्लयकिन्दुते ॥ - परियालवार तिरुमोली ३-४-७

३- रमलर प्रुल्लुतायार मादर लैप्पलरुवक इप्पूरिल उन लन

मारु तल्लुववर्कु वाशैयिन्ने वरिन्दरिन्दे उन लन पोय्ये केट्टु

कूप्पैपोल पनिकुदलैल्ली कूचि नहुंगिय यमुने यादिल

वार्मणहुन्डिल पुलर निन्देन, वाडुदेवा । उन वल्लु पार्ले ।

- परुमाल तिरुमोली ६ : १



उर धक्की, टक टकी लागी, तन व्याकुल मुन पुरति न बानी ॥  
 कह्यौ मोहन मोहिनि तू को है, मोहि नाही तीनों पहिचानी ।  
 बुरदास प्रभु मोहन देखत, जनु बारिघ बल- बूंद हिरानी ॥ १

बौर -

सुन्दर बोलत जावत नैन ।

ना जानौ तिहि समय सती रो, सब तन ब्रवन कि नैन ॥

रोम- रोम में सब्द सुरति की, नल सित लीं चल ऐन ।

हो मान बानी बचलता, सुनी न समुझी सैन ॥

तब तकि जकि हूँ चित्र सी, फल न लगत वित नैन ।

सुनहु सुर यह सार्वी कि संभ्रम, सुन किछीं दिठ रैन ॥ २

रुंगार रति की उत्कट पूर्वराम- अवस्था में प्रेमी लोक-  
 साज बौर कुल-मर्यादा का भी उल्लंघन कर देते हैं। पहले कहा जा चुका है कि तिरु-  
 म्मी बालवार तथा नम्माळ्वार ने लौकिक प्रेम काव्य की सभी रुढ़ियों के सहारे कौ-  
 न्क प्रेम की पद्धति चलाई थी। जब नायक को नायिका की प्राप्ति करने में बाधा  
 वा पड़ती है, तो वह "मळ" पर चढ़कर अपनी तीव्र प्रेम की परीक्षा देकर नायिका  
 की प्राप्ति करना चाहता है। यह तमिल लौकिक प्रेम-काव्य की एक रुढ़ि है। इसके  
 अनुसार केवल पुरुष ही "मळ" पर चढ़ सकता है। इस अवस्था में वह लोक-साज,  
 कुल मर्यादा का ही अतिक्रमण करता है। भवत कवियों ने इस स्थिति का वर्णन  
 नायिका के विषय में भी कर दिया है। नायिका लोक-साज, कुल-मर्यादा की परवाह  
 न कर अपने प्रेम को प्रकट करने के लिए "मळ" पर चढ़ने को तैयार हो जाती है।  
 तिरुम्मी बालवार की दो रचनाएँ चिरिय तिरुमळ बौर पेरिय तिरुमळ  
 नायिका की इस स्थिति का वर्णन प्रस्तुत करती हैं।

ब्रज की गोफिाजों ने भी प्रेम की उत्कट अवस्था में पूर्ण

१- सुर सागर, वल्लभ स्कन्ध, पृष्ठ सं० २०३० ना० प्र० समा

२- " " " " २४२२ " "

३- "मळ" का परिचय पीछे दिया जा चुका है।



हम से लोक लाज का त्याग कर दिया । हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी  
 " गोपी प्रेम " द्वारा अपनी प्रेम लक्षणा यथित का परिचय देते हुए लोक-लाज का  
 जोर कुल मर्यादा की उपेक्षा का पाप प्रकट किया है। इस वाक्य को <sup>प्रकट</sup> करने वाला  
 सूर का निम्न पद दृष्टव्य है :-

मारी रो गोविन्द सौ प्रीति करत तबही काहे न टटकी रो,  
 यह तो तब बात फैलि गई गई बीच बट की रो ।  
 घर घर नित छँ घेर बानी घट घट की ,  
 मैं तो यह सब सही लोक लाज फटकी ।  
 मद कै हस्ती समान फिरति प्रेम लटकी,  
 खेलत मैं चुफि जाति होति कला नटकी ।  
 जब रसु मिसि गाँठ परी खना हरि हट की,  
 छोरे ते नहीं छुटति कल बर फटकी ।  
 भेटे क्योंहुँ न मिति आप परी टटकी,  
 सूरदास प्रभु की इति हिरदै भरे बटकी । १

मधुर प्रेम की उत्कट अवस्था में मीरा भी सूर वादि  
 की गोपियों की तरह कुल मर्यादा का त्याग कर देती हैं। मीरा के कृष्णभक्तियों  
 के " कुलनाशी " तक कहने में भी वे विचलित नहीं होतीं । मीरा की ऐसी बदनामी  
 भी प्रेम की तीव्रता में मीठी लगती है -

" राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी ।

कोई बिन्दो कोई बिन्दो, मैं चहुँगी बात बपूठी । " २

### मधुर प्रेम का संयोग- सुल-

प्रेम की पूर्वरंग- अवस्था में जब प्रेम परिपक्वता और दृढ़ता

१- सूर वागर , दशम स्कन्ध , वै० प्र० पृ० २५६

२- मीरा की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी , पद सं० ३३ नवाँ संस्करण

को प्राप्त करता है, तब प्रेमियों का मिलन होता है। यह संयोगावस्था वास्तविक मिलन में कच्चा मानसिक जगत् के काल्पनिक मिलन में प्रकट हो सकती है। गोपी - कृष्ण - मिलन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के मन और कर्मी व्यक्तित्व के गोपी-भाव में आरोप द्वारा भक्त कवियों ने इष्टदेव के सान्निध्य तथा संयोग की अनुभूति पाने का अभ्यास किया है। प्रेम के जो उत्कर्षक भाव होते हैं, जो संचारी रूप से मुख्य भाव के सहायक होते हैं तथा कुछ वस्तुएं और व्यापार भी जो उद्दीप्त विभाव रूप में प्रेम की वृद्धि करते हैं, उन सबका समावेश दोनों चोत्रों के भक्त कवियों ने (बाल-वार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि) कर्मी काव्यों में किया है।

बाण्डाल संयोग सुख की इच्छा से प्रेरित होकर संत की संबोधित कर कहती है - "साक्षात्कार में प्रवृत्ति हुई। है, ससे संत। बुरा बतावो तो। भव वर्ण 'माधव' के वधर रस का स्वाद है कैसा? काफूर या कमल का सुगन्ध सुनत कच्चा मधुर मिठास मरा? बतावो तो है धमल। माधव के प्रवाल सम वधर का रस है कैसा?"

संयोगावस्था में मानकर बैठेवाली गोपी कहती है -

"सुन्दर केतवाली एक कुमारिका पर कटाका कर, दूसरी एक को मिलन का वादा देकर, तुम अन्य किसी के प्रेम पाश में संयोग सुख प्राप्त करते हो। तुम्हें जो वस्त्र मुझे दिया था, वह फूटा है। कैसी है तुम्हारी माया?" बिजली-सम फटती

१- करुणूरम नारुपी ? कमलपूनारुपी ?

तिरुप्पवल वेव्वाय तान तिरुहन्कुमी ?

मरुप्पीविड माधवन तन वाङ्गुवै नादुमुन

विरुप्पुक्कैट्किन्दुव चोत्ताली वेप्पलि ।

- नाञ्जियार तिरुमोली ७ : १

२- करुमर्मुन्तलोरुपी तन्ने कळेकाण्डु जगै वोरुपी तन पाल ।

मरुवि मन वेपु म्पूोरुण्डिवकु उरैपु वोरु पौदैवकु पौड कुरिपु

पुलिङ्गल की वोरुपी तन्ने पुण्णंदी अवतुनकुम मेय्यनल्ले

मरु तिरुवाय । उनवलीयुळे वलकिन्दुताल उन तन मायि ताने ।

- पेरुमाळ तिरुमोली ६ : ३

कमरवाली सुन्दरी को साथ लेकर गली में तुम चले, छिप छिप के । उल्टे घूँघट डाल कर चलने की भी मैं ने देखा । उस समय संयोगानन्द के लिए किसी दूसरी की बाँलों से कुलाति भी मैं देखा । बर्यो उसे ढोड़कर मेरे पास जाये हो ? वहीं चलो । ”  
 तुमने मुझसे शृंग में जाने को कहा था । जब मैं जायी तो किसी दूसरी के प्रेम-पास मैं तुम्हें देखा । मुझे देखकर तुम कुछ नुनगुनाने लगे । तुम्हारा हीला-हवाला मैं समझती हूँ । जाने जब तुम मेरे पास जाओगे, तब मैं इसका बदला लूँगी । ”

बीर- हरण के प्रसंग में भी कृष्ण के चांचल्यपूर्ण सीला कोलुक बीर गोपियों के प्रेम पूर्ण उपालम्भ वादि के द्वारा गोपियों के माधुर्य भाव की व्यञ्जना की गई है।

बालीव्यक्तालीन हिन्दी कृष्ण-मन्त-कवियों ने प्रेम के संयोग-पदा का वर्णन बालवारी की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है। नीचे उद्धृत पद मधुर भक्ति के संयोग-सुख को प्रकट करने वाले सुरदास जी के पद हैं :-

राधा सकुन श्याम मुख हैरति,

चन्द्रावली देख के जावति प्रिय ही को प्रिय फेरति ।

जाहु-जाहु मुख तैं कहि भाणत , कर ते कर नहि छूटत ।

उतहि सली जावत सकुनानी स्तहि श्याम मुख छूटत ।

१- मिन्नीष नुण्णिहियालैककोण्टु वींकिरुस वाय तन वी थियूडे  
 पोन्नीष वालैवकु कूडलिट्टु पोकिन्द पोडु नान कण्टु निन्देन  
 कण्णुद्वलै नी कण्णलिट्टु कै त्रिलिक्किन्दुम कण्टेन  
 इन्नवकु काले विट्टु ईशु वन्नाय इन्नम वी नड नम्मी ।

- वही ६ : ६

२- एन्ने वरुक्कैन कूरिणिट्टु इनमलमुलैयि पन्नर नित्तु  
 मन्नि कलैप्पुणारप्पुक्कु म्पेन्नैक्कण्टु उत्तरा वैकिलुन्नाय  
 पोन्निर वाहैय कैयि तांकी पोय्यव्वक्काट्टी नी पोदियेसुम  
 इन्नम एन कैय्कटु ईगोह नात वरुदियेसु एन चिन्नम तीर्वन नाने ।

- वही ६ : ८

३- नाञ्जियार तिरुमोली ३ : १- १०

सुख दुख हरण कहू नहीं जानति श्याम महासु माती,  
सूर उतहि चन्द्रावति कू टक़ उनहीं के रंग राती । १

रुपय-

श्याम हंसि बोलै प्रभुता डारि,  
 बारम्बार विनय कर जोरत कोटि पट गोद फारि ।  
 तुम सम्पन्न मैं विमुक्त तुम्हारी मैं अपराध तुम साध,  
 धन्य धन्य कहि कहि सुनिनि को जाय करत अनुराध ।  
 मोक्षो मज्जो एक चित ह्वै कै निदरि लोक कुल कानि,  
 सुरपति नेह तोरि तिनका सौ मोही निज करि जानि ।  
 जाके हाथ पेर फल लख्यो ~~पुष्प~~ लख्यो सो फल लख्यो कृपारि,  
 सुर कृपा पूरण सौ बोलै गिरि गोवर्धन धारि ॥ २

मीरा बाई ने अपने प्रियतम मल्लन के लिये चित्र रचित किये हैं। वे कहती हैं :-

सहेलियां साजन घरि बाया हो ।  
बहुत दिना की बीवती निरहणि पिय पाया हो ॥

वीर -

महारा बील गिया घर बाबा जी ।  
तन की ताप भित्री सुख पाया हिलमिल मील गाया जी ॥ ३

नन्ददास ने भी गोपी-कृष्ण के संयोग का वर्णन कुछ पदों में किया है :-

जाज भैर धाय जाइ री नागर नंद किलौर ।  
धन्य दिवस धन रात री सबनी धन्य माग सितपौर ।

- १- सुरसागर, दशम स्कन्ध पद सं० २७७६ ना० प्र० समा  
२- वही पद सं० १६५१  
३- मीराबाई की फावली, पद सं० ११६

फाँस गावों चोकर पुरावों बदनवार सजावहु पौर,  
नन्ददास प्रभु संग स बकर जागत करहु पौर ॥ १

### मधुर भक्ति का वियोग- पदा

प्रेम की परीक्षा वियोग में होती है। प्रेम की संयोगावस्था के सुख का महत्व विरह की वेदना ही कराती है। प्रेम की तीव्रता, प्रिय के प्रति विशेष आकर्षण, उसके जवाब में सदैव उसका ध्यान, बीर पित्त-तालसा की पुष्टि इस विरह भाव की भिन्न भिन्न अवस्थाओं की अनुभूति से होती है। लेकिन प्रेम से कहीं अधिक बढ़ी बढ़ी व्याकृतता की मधुर भावना पतित पावनी गंगा की तरह मत्त की हृदय-भूमि में, उसके भावों को उसके कर्मों को पवित्र करती है। "नारद-भक्ति-सूत्र" में भी भक्ति की ग्यारह आधित्यों में "परम विरहासक्ति" अधिक महत्व की बतायी गयी है।

बालवार मत्तों के काव्य में प्रेम के संयोग- पदा की अपेक्षा वियोग- पदा का वर्णन बहुत अधिक है। वाल्मीकि कालीन हिन्दी कृष्ण-मत्त कवियों में सूरदास आदि ने प्रेम की वियोगावस्था का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। दोनों श्रोत्रों के कवियों ने विरह की तीव्रता प्रदर्शित करने के लिए काव्य-शास्त्र में कही हुई वियोग की सभी अवस्थाओं के जैसे अभिलाषा चिन्ता, स्मृति, प्रीति, उन्नाद, व्याधि, बहुता आदि तथा विरह वेदन से प्रताडित शारीरिक तथा मानसिक व्यापारों के जैसे मलिनता, पाण्डुता, कृशता, बरुचि, दीनता, तन्मयता आदि की ही हृदयावली वर्णन किये हैं। विस्तार-मय से केवल कुछ ही उदाहरण नीचे देते हैं।

बाँहाल वियोग में कोकिल से कहती हैं- "मेरे शरीर की हड्डियाँ पिघल रही हैं। माँसे के समान ये लंबे लंबे नयन कभी बन्द नहीं होते।

१- नन्ददास ग्रन्थावली, फावली, पद सं० १२

२- अष्टहाप बीर वत्सल सम्प्रदाय, डा० दीन दयालु गुप्त पृ० ६४०



निशि- दिन होते जलधारा कहती है। दुल-सागर में डूबकर बिना गोविन्द नामक नाव के मैं कष्ट भोगती हूँ। हे कोकिल ! तू कदाचित् इस व्याधि से परिचित है जिसका जन्म प्रिय-जन- विच्छेद में होता है। कांचन- सम कांति युक्त शरीर वाले मेरे प्रिय-तम को यहाँ जाने का निर्मंत्रण दे दे।<sup>१</sup>”

नम्माळ्वार तथा तिरुमोई जाल्वार ने मातृ-जनन द्वारा विरह में नायिका की दशा का वर्णन कराया है :

“ मेरी पुत्री का मन द्रवित हो गया है। उसकी बाँहें भर जाती हैं और वह दीर्घ निःश्वास लेती रहती है। खाना- पीना तो वह बिल्कुल भूल गयी है। नौद का त्याग तो वह पहले ही कर चुकी है। वह सर्वदा प्रियतम के नाम को ही स्मृत करती रहती है। वह अपनी सहेलियों से कहती है कि मुझे अपने प्रियतम के पास से जावो। हाय री, मात्स्यहीनता ! ऐसी पुत्री मेरी है जो मेरे वाक्य में सीमित नहीं रह सकती और इस कारण लोक में मुझ पर कर्कशता लग गया है।<sup>२</sup>”

“ वियोग - दुःख में वह अपनी सहेलियों तक से मुँहफरा कर बातें नहीं करती। अपने स्तनों पर चन्दन नहीं लगाती। नयनों पर कज्जल नहीं लगाती। अपने कुँतल को फूलों से कर्तव्य नहीं करती। --- सदा प्रियतम का ही नाम स्मृत करती रहती है।<sup>३</sup>”

नम्माळ्वार की नायिका कहती है :-<sup>४</sup>” हे मन्द मारुत !

१- स्तुपुरु कि जनेल नेलुक्कल श्मे पोरुन्दा फल नालुम

तुन्पक्कल पक्क वेकुन्दनेन्फोर तोणी पेराडु उलत्किन्द्रेन

वन्कुंयार पिस्तिरु नो यदु नीयुम वरिक्किडि।

पोन्पुरे मेनिक्करुलक्कोडिकुं पुण्णिणयें वरक्कुवाय । - नाञ्जियार तिरुमोली १:४

२- वादिलुम उन पेरन्दी म्मीवाल

उरुकुम निन्तिरु तुरु निन्नन्तु

कादन्ये पेरिडु कैयर कुंयाल

कयल नेलुक्कण तुयिल मरन्ताल ।<sup>५</sup> - पेरिय तिरुमोली २:७ :१

३- तुलम्पडु मुरुवल तोलियुं वरुलाल

तुणं मुलं चान्दु कोप्पु वणियाल

कुलम्पडु कुवल वक्कण्णिने स्तुवाल

कोल नल्मलर कुलुं वणियाल । - वही २ : ७ : २

अब मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा । मेरे हृदय को तो प्रियतम ले  
 ला । अब तुम काहे को बताते हो ? शीतल होकर भी बताते क्यों हो ?<sup>१</sup>”  
 (वियोग में ) एक एक दाण एक एक झु के समान लाता है। हृदय वियोग में टुकड़ा  
 टुकड़ा हो जाता है। मेरा शरीर क्षीण होता जाता है। वास्तव्य है कि मैं प्रिय  
 वियोग में कैसी जीवित हूँ।<sup>२</sup>”

नायिका समुद्र को देखकर कहती है : “ हे समुद्र । दिन-  
 रात तुम गलते रहते हो मानों हृदय को द्रवित कर वेदना तरंगों को सहाराकर रौते  
 रहते हो ? क्या तुम्हें भी मेरी दशा हो गयी है ? तुम किस के वियोग में इस तरह  
 रौते हो ? ” वियोगिनी नायिका कहती है - “ सारा जगत् दीर्घ निद्रा में मग्न  
 है। सर्वत्र सन्नाटा का साम्राज्य है। विहाल सागर की तरह बन्धकार मेरे चारों ओर

१- तनि नैवम मुन्तर पुल्लै क्वन्दु तण्णन्तुलाळु  
 इति नैवम ङु क्वन्दु यामित्तम नी नहुवे  
 मुनिर्वच पेक्कवी मुले कुवणान मुडि च्छु लुलाळु  
 पनिर्वचमारुत्तमे । सम्पदाविपनिभिषयले ?

- तिरुविरुत्तम , ४

२- “ पनिप्पियत्वाक उडैय तण वाडि क्वकत्तम इव्वूर  
 पनिप्पियत्त वेल्लाम तविन्दुं एरिवीयुम ----- । ”

- वही , ५

३- काञ्चुक्कैयखोडु एल्ले । एराप्पत्त  
 नी मुक्कण तुक्किलाय नैहुरुकि एतियाल  
 ती मुक्कैन्तिले ऊदित्तान ताल नयन्द  
 या मुक्क उट्टायो ? वातो कने कडले ।

- तिरुवाक्कीती २ : १ : ३

कैला हुआ है। इस नीरव खनी में मैं ही केवल जाग रही हूँ। अगर मेरा प्रियतम न जाये तो कौन मुझे सर्तवना दे सकेगा ?”

बालीष्कालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में सुरदास ने मधुर-मयित के वियोग-पदा का पर्याप्त वर्णन किया है। विरह की महत्ता बत-लाते हुए सुर कहते हैं :-

ऊधौ विरहौ प्रेसु करे ।

ज्यों बिनु फुट फट गहत न रंग करें, रंग न रंगे परे ।

ज्यों घर दहें बीज कँहुर गिरि, तौ सत करनि करे ।

ज्यों घट जल दहत तन बपनो, पुनि पय बनी परे ॥

ज्यों रन सुर सहे सर सन्मुख, तौ रवि खुई बरे ।

सुर नृपाल प्रेम-पय बलि करि, वयौ दुल सुतनि डरे ॥ २

विरहावस्था गोपियों की भाव-दशा को सुर का निम्न लिखित पद स्पष्ट करता है :-

निशि दिन बरणात नैन हमारे ।

सदा रहति बरणा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे ॥

दृग बँजन न रहत निशि बाहर, कर कपोल मये कारे ।

कँनुकि-फट सुतत नहिँ कन्हूँ, उर बिज बहत फारे ॥

बाँसु-सलिल सबै मइ काया, फल न जात रिह टारे ।

सुरदास प्रसु की परेखो, गोक्षुल काहँ बिहारे ॥ ३

१- ऊरेल्लाम तुँवी उल्लेखलाम नल्लिहलाम

नीरेल्लाम वेरी वीर नीलिखाम नीष्टलाल

पारेल्लाम उष्ट नम्पाम्पणायान वारानाल

वार ? एल्ले । वल्लिनयस जाविकाप्पार डनि ।

- तिरुवायमोली ५-४-१

२- सुरदासर, दशम स्कन्ध पद सं० ४६०४, ना० प्र० समा० काशी

३- .. .. ३८५४ .. ..

विरहोन्माद में उठती नाना प्रकार की भावनाओं से रूझित होकर कभी कभी एक ही वस्तु भिन्न भिन्न रूप में दिखाई देती है। उठते हुए बावड़ विरहिणियों के लिए कैसे मीषण दीप्त फूले हैं :-

देखियतु चाहं दिशि तैं धन धौरे ।

मानौं कछ मदन के हथियनि, बलकरि बन्धन तोरे ॥

स्याम लुभग तन चुवत गंठमन, बरजत धौरे धौरे ।

रुक्म न पवन महावत हूँ पे, मुरल न लूँस मोरे ॥

मनौं निकसि ब्य-पंथित-पंत, उर अवधि सरोवर कोरे ।

बिनु बेला बस निकसि नयन जल, कुन कंचुकि बन्द मोरे ॥

तब सिहिं समय जानि देरावति, प्रज पति सों कर मोरे ।

सब सुनि सूर कान्ह-केहरि बिनु, गस्त गात जेहें मोरे ॥ १

परमानन्ददास ने विरह के विषय में कहा :-

विरह बनिनाहिन प्रीति को लोच,

बिनु लाने कैसे जायत है इन नैननि को रोज ।

स्याम मनोहर बिहारे सखीरी बैरी भयो मनोज ,

परमानन्द निहारे बै नर, ते हैं राजा भोज ।

परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में गोपियों के विरहो-

द्वगार फ़ाट हुर हैं-

मारग माधो को बोंवै,

वह कुहारि न देख्यो कोऊ जो नैनन दुख सोवै ।

बाल विनोद किसे नंदनन्दन सुमिरि सुमिरि गुन रोवै,

बाधर पति गृह काज न भावै निरु मरि नोद न सोवै ।

बन्तारमति की बिया पानखी सौ तन तन बध्नि कियोवै ।

परमानन्ददास गोविन्द बिन कंचुवन जलनु उझोवै । २

१- सुखागर, दशम स्कन्ध पद सं० ३६२९ ना० प्र० समा

२- बृहत्काप और बल्म संप्रदाय पृ० ६४३ से उद्धृत

मीरा का समस्त काव्य एक प्रकार से विरह-काव्य है। मीरा के विरह में बान्धविक वेदना का समावेश अधिक है।

प्रभु जी से कहा गया, नेहरी लाय ।  
 होइया म्हां विस्वास संगीसी, प्रेम ही बाती जलाय ।  
 विरह समर्प में होइ गया हो, नेह ही नाव जलाय ।  
 मीरा रे प्रभु कबरे मिलीने से बिण रह्यां ण जाय ॥ १

० ० ०

और

हमैया बिन नींद न आवै ।  
 नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की बाँध बूलावै ।  
 बिन की पिया जीत मन्दिर बंधियारी, दीफर दाय न आवै ।  
 पिया बिन मेरी सेव कतनी, जागत रेण बिहावै । २

० ० ०

पीया बिण रह्यां ण जायां ।  
 लण मण जीवण प्रीतम वार्यां ।  
 निर दिन जीवां बाट हव रूप लुभावां ।  
 मीरा रे प्रभु बाचा थारी दासी कंठ जावां । ३

शान्ता-मणित

“हरिमन्त्रितस्वामृतसिन्धु” में श्री कृष्णोत्तामी ने कहा

१- मीरा की पदावली, सं० पद्मुराम चतुर्वेदी, पद सं० ६४ नवां संस्करण

२-	००	००	७४	००
३-	००	००	७९	००



है कि जहाँ सुख-दुःख न हो, जेठ और मत्सरता नहीं हो, समस्त प्राणियों में सम-भाव हो, वहाँ शान्त स रहता है।

संसार की अनित्यता, वासनाओं का त्याग, और ईश्वर भक्ति कच्चा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गई चित की स्थिर अवस्था से जिस परमानन्द की भक्त कच्चा ज्ञानी पाता है, वही शान्त भाव है, और काव्य में व्यक्त होकर काव्य-शास्त्र के अनुसार शान्त स है। सत्संग उपदेश भक्ति कच्चा

ज्ञान-सम्बन्धी शास्त्रों का विचार स स के उदीप्त विभाव है। चित शान्ति की बढ़ाने वाले पवित्र विचार और भाव जैसे निर्पेदाता, निरर्हकारिता आदि संचारी हैं और रोमांच, क्रम्यादि हर्ष-वोक्त चित्नु अनुभाव हैं<sup>२</sup>।

बालवार भक्तों के तथा बालौज्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में सुरदास आदि के कदों में जहाँ वैराग्य, वात्म प्रबोध, विनय, वात्म निवेदन आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है, वहाँ शान्त स की धारा प्रवाहमान है। प्रथम तीन बालवार-पौसी बालवार, भूतबालवार, पेयालवार की भक्ति प्रमुखतया शान्ता-भक्ति है। शान्ता भक्ति के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं। पेयालवार कहते हैं :-

“ रे मन ! भगवान् के नामों का उच्चारण करो,  
तुम्हारा उदार अवश्य होगा । ”<sup>३</sup>

तौंडरडिपोडिबालवार कहते हैं- “ भो मन मैं थोड़ी सी पवित्रता नहीं है। मुँह से कटुवचन ही निकलता है। क्रोध के कारण मैं जेठ-का दमन नहीं कर पाता । --- मुझ पर शासन करने वाले महाप्रभु ! मेरा उदार हो सकता है ? ”

१- नास्ति यत्र सुखं दुःखं न जेठो न च मत्सरः ।

समः सर्वेषु भूतेषु च शान्तः प्रथितो सः ॥

- भक्तिसामुद्रसिन्धु, पश्चिम विभाग १ तहरीर पृ० ३२५

२- लष्टज्ञाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ६५०

३- मून्द्राम तिरुवन्तादि ८

४- तिरुमालि , ३०

तिरुमी बालवार कहते हैं - " मैं जान समझ गया कि बीबी - बच्चे और बन्धु मेरी सहायता नहीं कर सकते । हे भगवान् । तुम्हारे अनुग्रह स्वी तलवार से सांसारिक बन्धनों को मैं ने काट दिया । ऐन्द्रियों से लटकर मैं ने विजय प्राप्त की । अब मैं अपने को बाफ़ी देना मैं वर्णित कर दिया हूँ । "

" सुन्दरियों की मंडली में रहकर सुत भोगनिवाले तथा बड़े बड़े राज्यों पर शासन करने वाले सभी मर गये । लौटकर नहीं आये । अब मैं क्यों वैवाहिक जीवन-सुखों की कामना करूँ करूँ ? " अब मैं बाफ़ी पास बाधा हूँ । "

तिरुमी बालवार उपदेश देते हैं - " १, मन । याद रखो । बुढ़ापा बाधा । सुन्दर कृतज्ञवादी ललनाई मिलकर तुम पर हँसिगी । तुम्हें साक्षि देखकर वे तुम्हारा परिहास करेंगी । " शरीर क्षीण हो जाया और मुँह से शब्द कठिनाई से निकल पायेंगे । पीठ झुक हो जायगी और तुम्हें लाठी के सहारे जाना पड़ेगा । तब तुम पर सुन्दरियाँ दाना मारेंगी । — स्त्री दशा के जाने के पहले ही, अभी से भगवान् का स्मरण <sup>कर</sup> भक्त बन जाओ । १, मन । समझ लो । "

१- पिरिन्देन भद्रमन्त्र पण्डितेन्द्रियर पिन्दुवाधु  
वरिन्देन नी पण्डित बरुसेन्नुम बोलवाधुवि  
ररिन्देन ऐम्मुलन्त्र व्दर तीर ररिन्दु वन्तु  
वरिन्देन निन्नल्लिके तिरु विण्णकर मेयने । - पेरिय तिरुमोली ६-२४

२- पाण्डीन वण्टेरियुम कृतरार्कल पल्लाण्डिवेय  
वाण्डार वैयेल्लाम वरवाकि मुन्नाण्डवरे  
माण्डारेन्दु वन्तार वन्तो । मैं वात्सर्क तन्ने  
वेण्टेन निन्नडैन्नेन तिरुविण्णकर मेयने । - वही ६-२५

३- कौण्डुल्लार कूडियिरुन्दु चिरिणु नीर  
लैन ? इरुमि रम्पाल वन्तदेन्द्रिल्लादमुन  
लिल्लिरिक्काल वैत्तुडरायन वेत्तुडे  
नैल्ल नैय्यर नाम तोलुडुम स्तुनैवमै । - पेरिय तिरुमोली ६-४-२

४- कनि वेन्तिंल्लुमम नल्वायर कादनैविट्टिट्ट  
कुनियेन्तुं लम कोल्लि तलन्तुं स्तैयादमुन । - वही ६-४-६

बालीयुगकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों में अन्य भक्तों की अपेक्षा सुरदास और परमानन्ददास ने शान्ता भक्ति के भाव को व्यक्त करने वाले पद अधिक संख्या में लिखे हैं ।

सुरदास कहते हैं :-

नमो नमो है कृपानिधान ।

चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारी, मिटि गयी तम-ब्रजान ।

मोह-निशा को लेस रह्यो नहीं, भयो बिक, बिहान ।

वातम-रूप सकल घट दरख्यो, उदय कियो रवि-जान ।

मैं-मेरी अब रही न भरी, छुर्यो देख-बहिमान ।

भावे परी बाबुही यह तन, भावे रही ब्रजमान ।

भरी जिय अब यह लासला, लीला श्री भगवान् ।

सवन करौं निसि-बासर हित सी, सुर तुम्हारी वान । १

और-

सकल तपि, भवि मन बरन मुरारि ।

स्तुति, सुमिति, मुनि जन सब पाणत, मैं हूँ कहत पुकारि ।

जैसे सुखी धीर देखियत, तैसे यह संसार ।

जान बिसे पूर्व बिनक मात्र मैं, उबरत नैन-किवार ।

बारबार कहत मैं तोसों, जनम-जुवा बनि हारि ।

पाई मई सु मई सुर जन, कबहुँ समुझि संभारि । २

परमानन्ददास के निम्न लिखित पद में शान्ता-भक्ति का भाव व्यक्त हुआ है-

हैं नर का पुरान सुनि कीना ।

जनपायसी भगति नहीं उपजी, भूले दान न दीना ॥

१-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, पद सं० ३७६ पृ० १२५ ना० प्र० सभा

२- .. .. ३७४ १२४ ..

काम न क्षिर्या क्रोध न क्षिर्या, लोभ न क्षिर्या देवा ।  
 मोह मलिनता मने नहिं क्षिती, किन्तु मई सब देवा ॥  
 बाट पारि पर प्रीति चिरानो, फेट मरे अपराधी ।  
 जेहि पर लोक जाय अफरीरति सोइ अविद्या साधी ॥  
 हिंसा तो मने नहिं क्षिती, जीव दया नहिं पाही ।  
 परमानन्द साधु संगति मिलि कथा फुलि न चाही ॥ १

### मथित में शरणागति तत्व-

तृतीय अध्याय में हम मध्यस्थीन मथित-साहित्य की प्रभावित करने वाले "प्रबन्धम्" के सामान्य तत्वों के अन्तर्गत शरणागति तत्व का उल्लेख कर चुके हैं। अनन्य साध्य भगवत्प्राप्ति में विश्वासपूर्वक भगवान् की ही एक मात्र उपाय सम्पन्नकर प्रार्थना करते रहने वाले साधनहीन व्यक्ति की प्रार्थना में निहित नित्यात्मिका बुद्धि ही प्रपत्ति या शरणागति का स्वरूप है। बालवारी के तथा बालोच्चारासीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के अनेक कदों में इस शरणागति तत्व की अभिव्यक्ति हुई है। इस मथित में भगवत्प्राप्ति के लिए भक्त साधन पर नहीं, बल्कि भगवान् के अनुग्रह पर निर्भर रहता है। भूतबालवार कहते हैं - "मुझ्य एक फीत को लीव सकता है। परन्तु भगवान् के अनुग्रह के बिना वह फीत मर नहीं सकती क्योंकि भगवान् के अनुग्रह लीव वर्णा-जल के बिना वह फीत मर नहीं सकती। (इसी तरह भगवान् के अनुग्रह पर ही मनुष्य के प्रयत्न सफल होते हैं।" )

तिरुमल्लि बालवार का कथन है - "हे भगवान् ! समस्त विश्व में तुम्हीं हो। सब तुम्हारे अनुग्रह पर ही निर्भर है। कृपा-सिन्धु भगवान् तुम हो। तुम्हीं भक्तों के हृदय में मथित के बीज बोते हो।"

१- परमानन्दसागर ( सं० डा० गो० ना० तुलत ) पृष्ठ सं० ६०६

२- शरणागति तिरुवन्तादि १६

३- नान्मुक्कन तिरुवन्तादि २० और २३



विस्तार मय से शरणागति तत्व को व्यक्त करनेवाले बाल्वारों के केवल एक-दो पद ही नीचे देते हैं। चौहन्दीपौडियाल्वार कहते हैं—“ मेरा अपना कोई घर नहीं, कुमीन नहीं, पुणेवाला बन्धु नहीं। फिर भी है, कहणा-मूर्ति। इस पार्थिव जीवन में बापों चरणों की सुदृढ़ शरण में ने ग्रहण नहीं की। अब मैं निरुपाय हूँ। मारी क्रन्दन करता हूँ। मुनिबाप अपनी शरण में लीजिए<sup>१</sup>।” कुल्लिबराल्वार ने भगवान् की शरण को ही एक मात्र सहारा कहा है—“ हे भगवान्। मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूँ। तुम्हारी शरण के सिवा और कोई शरण मुझे नहीं है। जिस तरह माता के हृद होकर त्यागने पर भी शिशु माता के प्रेम पर ही आश्रित है, उस तरह मैं भी बाप ही के अनुग्रह पर आश्रित हूँ<sup>२</sup>।”

भगवान् से शरण पाने के लिए प्रार्थना करते हुए सुरदास कहते हैं—  
“ हे प्रभु। मैं बाप की शरण में आया हूँ। मैं साधनहीन अपनी बाप कर्मों के मार से मयभीत हूँ। अब बापों मार पर आकर सदा हूँ। अब मुझे आपकी शरण का ही परोपकार है। शरण आपी की लज्जा रहिए<sup>३</sup>।”

एक दूसरे पद में सुर कहते हैं—“ हे प्रभु। मेरे गुण अङ्गुणों की और ध्यानन दीजिए। मैं ने योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत आदि कोई शुभ कर्म नहीं किया। बापों मजन का भी मुझे बल नहीं है। परन्तु बाप दयानिधि हैं, कृपा -

१- तिरुमाल - २१

२- मेरुमाल तिरुमोली ५ : १

३- सरन बार की प्रभु, लाल धरिए।

सध्यों नहीं धर्म सुचि, सील, तप, व्रत कबू, कहा मुख है तुम्हें किं करिए।

कबू चाहौं कहीं, सकुचि मन मैं रहौं, बापों कर्म ललि बाध आवे।

यह निज सार, आधार मेरी यह, पतित-पावन बिरद वेद गावे।

जन्म तैं एक टक लागि आसा रही, विषय-विष लाल नहीं वृषि मानी।

जो दिया हरद करि सकल संतनि तनि, तासु तैं मूढ़-मति प्रीति ठानी।

पाप-मारु जिते, सबे कीन्हें तिते, कयौं नहीं कोउ जई सुरति मेरी।

सुर अङ्गुन मर्या, बाह मरि पर्या, लै गोपाल अब सरन तेरी ॥

- सुर सागर, प्रथम स्कन्ध पद ११० ना० प्र० समा



चिन्तु हैं । मुझे बाप अपनी शरण में हैं । ”

परमानन्ददास शरणान्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं - “ जो भगवान् की शरण में गये , उनको भगवान् ने कीर्ति कर दिया । उनके सभी विघ्नों को भगवान् ने <sup>दूर</sup> किया और उन्हें अमय कर दिया । भगवान् अपनी शरण में जाये हुए भक्तों की रक्षा करके रहते हैं । ”

१- प्रभु मेरे गुन अवगुन न विचारों ।

कीजै साज सरन बार की, रवि-सुत-नाथ निवारों ।

जोग- यज्ञ- वप-तन नहीं कीन्हों, वेद विभक्त नहीं माख्यों ।

बति सख- सुख स्वान छूठनि ज्यों, कत नहीं चित राख्यों ।

जिहिं जिहिं जोगि फिर्यो संकट- का निहिं जिहिं यह कमायों ।

काम- क्रोध- मद- लोभ- अहित हूँ विषय परम विषय साख्यों ।

जो गिरिपति मसि धीरि उदधि में, है सुरतरु विधि हाथ ।

मम कृत दोष जिसे कृपा मरि, तऊ नहीं मिति नाथ ।

तुमहिं समान और नहीं दुजों काहि भयों हों दीन ।

कामी, कुटिल, कुबील, कुदसन, अपराधी, मतिहीन ।

तुम तौ बलिह, कर्त, दयानिधि, बबिनासी, सुह-राशि ।

मजन- प्रताप नाहिं मैं जान्यों, पर्यो मोह की कंसि ।

तुम सरवज, सब विधि समरण, कसन- सरन मुरारि ।

मोह- समुद्र सूर कुदत, सीजै मुजा फारि ।

- सूर सागर, प्रथम स्कन्ध, पद १११ ना० प्र० समा

२- जाको तुम कीर्ति करि दियो,

सिन्धु कीटि विषय सब टारे अमय प्रतापु दियो ।

बहु साधना दई प्रसाद, सबहि निरंक जियो ।

निकी लीन मय है नरहरि बापुन राति लियो ।

०

०

०

मृत मये हरि सबे जिवार, दृष्टिहि वपुत पियो ।

परमानन्द भगत के कस, सो उपमा कौन बियो ।

- अष्टाव्यस और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६७४ से उद्धृत

### भगवान् के सामीप्य की कामना-

भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होकर किसी भी रूप में भगवान् के सामीप्य की प्राप्ति करने के भाव कुछ बालवार भक्तों ने तथा हिन्दी के कुछ कृष्ण-भक्त कवियों ने व्यक्त किये हैं। कुलदेवराज्वार, जाले जन्म में ही रही, भगवान् की सामीप्य-प्राप्ति की कामना कर प्रार्थना करते हैं :-

“ मुझे पुनः मांस-संपुष्ट नस्वर नर जीवन धारण करने की कामना नहीं है। मैं अपने को धन्य समझूंगा, यदि उस वैकुण्ठ में जिसमें कि शेषशायी भगवान् का निवास है, जाले जन्म में एक कुला करने का सौभाग्य प्राप्त हो।”

“ मुझे चाह नहीं कि कभीम अनुपम सुत संपति जवा बप्पर रमणियों के विलासतास्यों से पूर्ण मादक स्वर्गीय वानन्द प्राप्त करूं। मुझे चाह नहीं कि निवान्त चिरायु व बहुलम, राज-योग प्राप्त करूं। मैं अपने को धन्य समझूंगा अगर उस वैकुण्ठ की जिसमें मधु खोजवत माध्व कुलुम मगरियों से पूर्ण नन्दन वनोपम उपान हैं, निर्मल निर्करणी में एक मीन होने का परम सौभाग्य प्राप्त हो।”

“ दगिर बागर की धल तरंगों को परिप्लव करते प्रोल्लसित भगवान् शेषशायी के पावन पद-कमलों के दर्शनार्थ गीत-रस-लहरी में निमज्जित प्रमद-समूह

१- कुनेरु चैल्लु उडन्पिरवि यान वेंटेन

वानेरुवेन्दान बहिमैरिमल्लाल

कुनेरु चर्ममिटवान तन वैकुण्ठु

कोनेरि वालुम कुरुकाय पिरप्पेने ।

- पेरुमाल तिरुमोली ४ : १

२- वानाद चैल्लु वरम्बैयारुद तंजुल

वालातुम चैल्लमुम मण्णारुम यान वेंटेन

तेनार पुंओले चिरुवैकुण्ठचुनेयिल

मीनाय पिरुक्कुम विधिसुंयेमावेने ।

- वही ४ : २

के फंकार मूर्धित कैट गिरि की वाटिका में एक-थक कुलुम बन जाऊँ<sup>१</sup> । ”

“ महापापियों को भी अपनी शरण में लेने वाले कृपा-सिन्धु भगवान् । हे अनामन्त श्रेष्ठ महान् । कैटवासी । मैं तुम्हारे मन्दिर का वह शोपान बन जाऊँ जिस पर चढ़कर अप्सराई देव और भक्तगण तुम्हारे दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश करते हैं<sup>२</sup> । ”

“ संसार मर का शासक होने पर भी, अपना उर्वशी जैसी अप्सर-रमणियों को प्राप्त करने पर भी मुझे सन्तोष न होगा । मुझे केवल चाह है बात की है कि जलते जन्म में कैटवासी भगवान् की सेवा में प्रस्तुत कुछ भी ही जाऊँ<sup>३</sup> । ”

१- औणापवर्णैतयुल्लु तण्पाफंडलु  
कण्ठुयितुम मायीन कल्लिनेकल काण्णफण्डु  
पण्णकरुण वण्डिर्णल पण्पाहुम कैटु  
वेण्णमाइ निर्हुम तिरुवुडैमावेने ।

- वही ४ : ४

२- वेडियाय वल्लिनेकल तीवर्कुम तिरुमाले  
नेडियोने । कैटवा । निन्कीयित्तिल वावल  
वडियारुम वानवरुम वरम्पेरुमकिडन्तिर्यकुम  
पडियाय किडन्तु उन्पलवाय काण्णेने ।

- पेरुमाळ तिरुमोली ४ : ६

३- उवुरुत्ताण्डु वोरु कुडैवकील उरुप्पसि तन  
वपीरैयल्लुल पेद्राहुम वादरिये  
वैप्पलवायान तिरुवैकटमेन्नुम  
रम्पेरुमान पोन्वैल मेल सेनुमावेने ।

- वही ४ : १०

कुलौखराखार के फाँों में निहित वही भाव स्वप्नान के निम्न  
फाँों में दृष्टव्य है: देखिए, कितनी समानता है :-

“ मानुष हौं तौ वही ” स्वप्नानि”

सहौं ब्रज गोशुल गाँव के ग्वारन ।

जो फल हौं तौ कहा का मेरो

चरौं नित नंद की धनु फँकारन ॥

पाहन हौं तौ वही गिरि को,

जो धर्यो कर इन पुरन्दर धारन ।

जो ला हौं तौ कोरौं करौं

मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥ १

“ जो खना खना बिल्लै

तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।

जो कर नीकी करौं करनी,

जु पे कूल कुटीर देहु बुहारन ॥

सिद्धि सपुद्धि सबै ” स्वप्नानि”

सहौं ब्रज रेणुका की संवारन ।

लास निवास मिलि जु पे तौ,

वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥ २

“ या लुट्टी बरु कामरिया पर,

राज सिद्धपुर को तजि डारौं ।

बाठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुल,

नंद की गाय चराय बिहारौं ॥

“ स्वप्नानि” कवीं इन वांछिन सौं,

ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।

१- स्वप्नान का वमर काव्य , पृ० ४५ ( सं० दुर्गाशंकर मिश्र )

२- वही

पृ० ४५

कोटि कहुँ कलघोष के धाम,  
करीब की कृपन ऊपर वारी ॥ १ ॥

### जनन्याग्रय और भगवान् की भक्तवत्सलता-

केवल अपनी एक दृष्टि का ही वाक्य ग्रहण करना जनन्याग्रय कहलाता है। भक्तों का विश्वास है कि स्कान्त प्रेम के बिना प्रेम की उत्कट स्फूर्ति नहीं होती। जनन्याग्रय भाव को व्यक्त करनेवाले पद वाक्यांशों में तथा हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने लिखे हैं। चौदहवीं शताब्दी का कथन है-<sup>१</sup> "है मतिहीन मनुष्य लोग। गोविन्द के बलिस्थित कोई अन्य देवता भी है क्या ? किसी संकट-ग्रस्त समय के सिवाय अन्य समयों में तुम लोग एक ही जनन्याग्रय को पहचान नहीं पाते। सम्झ लीजिए, कोई उनसे महान् नहीं है। उनके बलिस्थित अन्य देवता वास्तविक नहीं है। जिस भगवान् <sup>२</sup> ने संकट-ग्रस्त अवसर पर गायों का संरक्षण किया था, उस गोपालक पुरुषोत्तम भरे ऋतु के चरणों की ही वन्दना कीजिए।"

सूरदास जनन्याग्रयता प्रकट करते हुए कहते हैं :-

तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत ।

लातधि लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि सोलत ॥

जब लगि सरवत दीजे उनकी, तबहीं लगि यह प्रीति ।

फल मांगत फिरि जात फुर ह्वै, यह देवक की रीति ॥

स्कनि को जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैह न डूठे ।

तब पहिचानि सबनि कोइ कठि, नर-चित्त लीं सब फूठे ॥

१- सखान का वर काव्य पृ० ४५ ( ले० श्री दुर्गाचर मित्र )

२- मधुगौर देवमुण्डो ? मतिबुद्धा मानिकंकास ।

उद्दीपनद्वी नीकिल जोरुवनैन्दुणरमाट्टीर

कर्मलोन्दूरियीर वनत्तात देवमिल्लै

कदिनम मेळ रन्तै कस्तुतिर्ण पणिमिनी नीरे ॥

- तिरुमाले, ६



कंचन- मनि तबि कंचहिं सैतत, या माया के हीन्है ।  
 चारि फदारथ हूँ की दाता, सु तौ विसर्जन कीन्है ॥  
 तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, बलिख लोक के नाथ ।  
 'सुरदास' हम डूढ़ करि फरे, जब यह चरन सहायक ॥ १

परमानन्ददास कहते हैं :-

बहुते देवी बहुते देवा कौन कौन को मली मगाऊँ ।  
 हौँ अधीन स्यामकुन्दर की वनम करम पावन जगु गाऊँ ॥  
 लोक लोक प्रति सब कौज ठाकुर बनी मगतन के सुखायक ।  
 मोहि वह जघर घोर मुरली गौपी बल्लभ गौपुत नाथ ॥  
 देव जगुर मानव मुनि ग्यानी हरि को दिवी सब कौज पावै ।  
 हौँ बलिहारी 'दास परमानन्द' करुना सागर काहे न भावै । २

जब भक्त जनन्य भाव से भगवान् को भजता है, तब वह निश्चित होकर उन पर निर्भर भी हो जाता है। भक्त को यह डूढ़ विश्वास ही जाता है कि भगवान् पर निर्भर होने से वे उसे कीर्तन कर लेते हैं। फिर उसका कोई कुछ किया नहीं सकता। भक्त को भगवान् की भक्तवत्सलता का बड़ा सहारा है। भक्त उनकी दया और कृपा पर मरोड़ा रहता है। इन भावों को व्यक्त करने वाले बने पद बालवारी के तथा बालीचक्रातीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के मिल जाते हैं।

कुलेश्वरालवार ने लिखा है कि भक्त को किस प्रकार भगवान् पर निर्भर निर्भर रहना चाहिए जिससे कि वह भक्तवत्सल भगवान् की दया का पात्र हो सकता है। कुलेश्वरालवार का कहना है :-

“वत्यधिक शोध से शिशु को जन्म देने वाली माता के त्यागने पर भी मङ्गल का ही स्मरण कर रोने वाले बच्चे के समान” (माता के प्रेम पर जाग्रित

१- सुर विनय फावली सं० प्रभु दयाल मीतल पद सं० ४६ पृ० २५

२- परमानन्द सागर ( सं० डा० गो० ना० तुलस ) पद सं० ८७७

३- वरिचिनवाल इन्द्रताय ऋद्रिडिनुम मद्रुत तन ।

वरुलनिर्नन्ते बहुम कुलवियुवे पौन्द्रिरुन्ते ।”

- मेरुमात तिहमोली ५ : १

बन्ने के समान )

“ अपने पति के द्वारा बहुत सताने पर भी, उसका त्याग नहीं कर उसी की सेवा में तत्पर रहने वाली उच्चकुलोत्पन्ना पत्नी के समान । ”

“ राजा के द्वारा बहुत अन्याय और कष्ट भोगने पर भी उस पर निर्भर रहनेवाली प्रजा के समान ”

“ बायुधों से चौर फाड़कर कष्ट देने पर भी अपनी ही मलाई के लिए करने वाले वैद्य के प्रति स्नेह रहने वाले रोगी के समान ”

यह विचार पारचात्य कवि श्री टी० स्व० इलियट की एक कविता में भी देखने को मिलता है । देखिए, कितनी समानता है, प्रसंग वश ही इलियट की कविता की उन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं :-

*"The wounded surgeon plies the steel,  
That questions the distempered part  
Beneath the bleeding hands we feel  
The sharp Compassion of the healer's art  
Resolving the enigma of the fever chart."*  
— East Coker, "Four Quartets", by  
T. S. Eliot, page 20.

१- “ कष्टारिक्त्वमे कादल तान वैरतिदिनुम  
कोष्टानेयत्तात वरियावृत्तम् पोल । ”

- वही ५ : २

२- “ तान नोयकातु खुयरम वैरतिदिनुम ताखेन्तन  
कोल नोयिक्वातुम वृडि पोन्दिरुन्ते । ”

- पेरुनाल तिरुमोली ५ : ३

३- वालात वरुचुचुदिनुम मरुचुवन पाल  
मालाद कादल नोयालन पोल मायवात ”

- वही ५ : ४

“ सर्वत्र समुद्र ही समुद्र को पाकर, किनारे को देख न सकने के कारण निराश होकर बार बार बहाव के लीं पर ही लीटने वाले ( जुहाव के ) पत्ती के समान”<sup>१</sup>”

“ अत्यधिक प्रकाश और गरमी लगाने पर भी केवल सूरज की किरणों पर ही लितेवाले कमल के समान”<sup>२</sup>”

“ मैं केवल , हे भगवान् ! बाकी दया पर निर्भर हूँ । मेरा मन अन्यत्र सुख नहीं पायेगा । ”

कृतेश्वर ने बितनी उपमाओं से हमें और भगवान् के सम्बन्ध को ऊपर व्यक्त किया, उनके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों में केवल सूरदास जी के एक पद में उपर्युक्त प्रकार के विचार व्यक्त हुए हैं। सूरदास कहते हैं :-

“ भरी मन वनत कहां सुख पावै ।

जैतैं उड़ि जहाज को पंखी, फिरि जहाज पर आवै ॥

कमल-नैन को झांढि महातप, और देव को ध्वावै ।

परम मंग को झांढि पियाजो, दुरमति रूप लावै ॥

जिहिं मधुकर जेकु-रस बाख्यो, क्यों करीत-फल मावै ।

“सूरदास” प्रभु काम धेनु तजि, कैरी कौन दुहावै ॥ ”<sup>३</sup>

१- “ लुम्पणीय करे काणादु रेखिळल वाष्मीष्टेयुम

वंगपिन कूम्येरुम माप्परखे पोन्देने । ”

- पेरुमाल तिरुमोली ५ : ५

२- चैतस्ति वन्दु वल्लेच्चैशतिदिनुम वैकमलम

वन्तारम्वेर वैकदिरोक्त्तात वलरावात

वेन्तुयखीट्टाविदिनुम विद्वक्कौट्टम्मा । उन

वन्तमित्त चीक्त्तात वैकृतैय मोट्टेने ।

- वही ५ : ६

३- सूर विनय फावली - सं० प्रमुदयाल मीतल पद सं० ५६ पृ० २७

### मन्त्र की सार्वभौमता-

बालवार मन्त्रों की यह मान्यता थी कि मन्त्रों में जाति, विधा, रूप, कृत, धन और क्रियादि का भेद नहीं होना चाहिए। और मन्त्र के दोष में ऊँच-नीच का विचार त्यागना चाहिए। बालवार मन्त्रों में अपनी इस विचार-धारा को व्यवहारिक जगत् में भी प्रकट किया है। बारह बालवारों कुछ निम्न जाति के थे, कुछ बहुत ही गरीब थे। उस प्राचीनकाल में अगर मधुर कवि जैसे ब्राह्मण मन्त्र नम्माबालवार जैसे निम्न जाति के व्यक्ति को गुरु रूप में स्वीकार कर सकता था, तो इसी और उच्च जात के क्या हो सकता है ?

तौडरपौडी बालवार कहते हैं-“ विशुद्ध मन्त्र-मार्ग पर चलने वाले निर्मल मन्त्र लोग चाहे निम्न जाति के क्यों न हों, अगर वे भगवान् के मन्त्र ( दास ) हैं तो उनकी सेवा कार्य कीजिए, उन्हें दीजिए और उनके लीजिए। वे लोग भगवान् के सदृश्य पूजनीय हैं।” चारों वेदों में प्रवीण होकर, मनुष्यों के नेता बनकर फिरने वाले ब्राह्मण लोग भी, अगर मन्त्रों की ( निम्न जाति के ) व्यवहेलना करें, तो वे उसी दास ( मन्त्रों की व्यवहेलना करते समय ) नीच से नीच जाति के हो जाते हैं।<sup>१</sup>

बालोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-मन्त्र कवियों ने भी मन्त्रों में ऊँच नीच के विचार को त्यागने को कहा है। सूरदास भी कहते हैं :-

१- मनुजिता वीरुत्तादृष्ट चतुष्पेदिमार्गित ।

इतिश्रुतवक्त्रैरुम रम्भडियाविलासित

वीरुमिरीर कोटुमिनी कोष्मिन् स्नु निन्नीरुम वीरु

वलिपड बरु लिनाइपौल मदित्तिरुवरंगवने ।

- तिरुमाले , ४२

२- वमरुवैरुमाहम वेदमौर नान्दुम वीदि

तमर्कलित वल्लवराय जातियन्त जाल्लैलुम

नुमर्कलै पलिप्पेल नीडिप्पील्लुदलविल वानि

वर्कल नाम पुत्तियर पौलुम वरुगमानाहस्तानि ।

- वही ४३

“ कह्यो तुम श्री भागवत विचार ।

जाति पाति कोउ पूजत नहीं श्रीपति के दरबार ॥ ” १

“ बैठत सबे समा हरि पू की, कौन बढी की होट ?

सुरदास पास के परस मिटति लोहि की लोट । ” २

मन्तवर हरिराम व्यास के अनुसार मन्त्रि और जाति में बर है ।

“ व्यास जाति तबि मन्त्रि कर, कहत भागवत टेरि ।

जातिहिं मन्त्रहिं ना बने, ज्यों केरा दिन बेरि ॥ ” ३

श्री हित हरिवंश मन्त्रि के लोत्र में विप्र-सूद्र का भेद नहीं पावते ।

वे कहते हैं -

“ जहाँ श्री हरिवंश प्रेम उन्माद ।

कुल भिन कहीं कौन लो जास ।

सब प्रेम एत सवि पास ।

रुं लो समुक्त नहीं ।

विप्र सूद्र न कौन कुल कास ।

सुनहु रसिक हरिवंश विलास । ४

### गुरु महिमा, सत्संग और वैराग्य-

वाल्मीकी मन्त्रों ने मन्त्रि-साधना में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान माना है। उन्होंने गुरु को ईश्वर समान बताया है। सत्संग और वैराग्य की आवश्यकता पर भी उन्होंने जोर दिया है। ( तृतीय अध्याय में मध्यस्थीन मन्त्रि-साहित्य को प्रभावित करने वाले "प्रबन्धम्" के सामान्य तत्वों का विवेचन करते समय वाल्मीकी के विचारों की तुलना वाल्मीकीन हिन्दी कृष्ण-मन्त्र कवियों के तत्त्वमन्त्री

१- सूर सागर प्रथम स्कन्ध पद सं० २३१ ना० प्र० समा

२- वही पद सं० २३२

३- व्यासवाणी पृ० १८६

४- श्री हित बौरासी शैव वाणी पृ० ५२



विचारों से करें । )

### गुरु महिमा-

मधुर कवि गुरु की स्तुति करते हुए कहते हैं-<sup>१</sup> "गुरु ( नम्बालवार ) का नाम लेते ही मेरी जिह्वा अमृत का आस्वादन सा आनन्द प्राप्त करती है ।— वेद के गूढ़ से गूढ़ तत्वों को गुरु ने ही मुझे सरलता से समझाया । श्रेष्ठ गुरु की दासता स्वीकार कर मैं अपने को धन्य समझता हूँ । गुरु में वास करनेवाले समस्त दोषों को गुरु ने ही दूर किया । मैं श्रेष्ठ गुरु की महिमा दिता- दिता मैं फैला दूँगा । मैं गुरु की कृपा की याचना करता हूँ । "<sup>२</sup>

बालीय्यालीन हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों ने भी गुरु की महिमा स्वीकार की है । सुखास जी कहते हैं -

गुरु बिनु स्त्री कौन करे ?

माला- तिलक फोहर बाना, ते सिर झ्र धरे ।

भक्तागर मैं झूठ राखे, दीफ हाथ धरे ।

सूर स्याम गुरु स्त्री समरथ, दिन मैं ते उधरे ॥ २

बौर -

हरि गुरु एक रूप नृप जाति । यामैं कहु सन्देह न जानि ।

गुरु प्रसन्न, हरि परसन होइ । गुरु के दुक्ति दुक्ति हरि जोइ ।<sup>३</sup>

हितहरिवंश मनुष्य के कल्याण के लिए गुरु- चरणों का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक समझते हैं :-

जय श्री हितहरिवंश विचारि के मनुज देह गुरु चरण गहि । ४

१- कण्ठानुल विरुतापु १, ६, ७

२- सुखागर , अष्ट स्कन्ध , पद सं० ४१७ ना० प्र० समा०

३- .. .. ४१६ .. द्वितीय संस्करण

४- श्री हित स्फुट वाणी जी पृ० ६

सत्संग-

सत्संग की कामना कर राजा कुलसेसर ने कहा है -<sup>१</sup> " वसुम- सम भगवान् की स्तुति कर भगवान् की वन्दनःकरण में धारण कर , भगवान् का गुण गान कर नाचते नाचते एक जाने वाले भक्तों के मंडल में जा मिलने का सौभाग्य मुझ कब प्राप्त होगा ?<sup>२</sup> " भगवान् की दिव्य लीलाओं का गान कर आनन्दालु बहाकर, ज़ुधारा से मीगने वाले भगवान् के मन्दिर के प्रांगण में नाचने वाले श्रेष्ठ साधुओं की चरण छुति की मैं अपने चेहरों पर लगाऊँगा ।<sup>३</sup> "

बालीव्यक्तालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी सत्संग की आवश्यकता बताई है। सुरदास जी ने एक पद में साधु- संगति की मुक्ति का चोत्र कहा है -

सुवा बलि ता कन की रस पीये ।

जा कन राम- नाम बभित- रस, ब्रजन- पात्र भरि लीये ।

कन बारानसि मुबित- दोत्र है, बलि तोकीं दितराऊं ।

सुरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊं ॥ ३

हितहरिवंश जी ने भी सत्संग की महिमा स्वीकार की है-

तनहिं रास सत्संग में मनिं प्रेम रस भेव ।

सुख चाहत हरिवंश हित कृष्ण कल्पतरु सेव । ४

हरिराम व्यास सत्संग की महत्व देते हुए कहते हैं :-

करो भैया साधुनि हो सों संग ।

पति गति जाय कसाधु संग ते काम करत चित भंग ।

हरि ते हरिदासनि की सेवा परम भवित को ली ॥ ५

१- पेरुमाल तिरुमोली २ : १

२- वही २ : ३

३- सुरसागर, प्रथम स्कन्ध पद सं० ३४० ना० प्र० समा

४- श्री हित स्फुटवाणी जी पृ० ३३

५- ७० व्यासवाणी पृ० ६४

बीर-

साधु सखीरुह को सौ फूल ।

बिनकी संगति भवित देति, हरि हरत सकल भ्रममूल । १

वैराग्य-

भवित पद के पथिक के लिए सांसारिक विषयों को तथा उन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों को त्यागकर उनके प्रति वैराग्य भाव रखना परमावश्यक है। बालवारी ने वैराग्य की आवश्यकता पर बहुत कहा है। वे सभी स्वयं वैराग्यपूर्ण जीवन बिताते थे। ( इसका विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में ही चुका है ) ।

हिन्दी-कृष्ण- भक्त-कवियों ने भी भवित- पद में वैराग्यपूर्ण जीवन बिताने की आवश्यकता प्राट की है। गुर ने अनेक पदों में सांसारिक सम्बन्धों की निस्कारता प्रदर्शित की है-

हरि हौं महापति अभिमानी

परमात्मा सौं बिरत, विषय रत, भाव-भगति नहिं नैकहु जानी ।<sup>२</sup>

निसि- दिन दुखित मनोरथ करि करि, पावतहूँ तुष्ठा न दुखानी ।

हितहरिवंश ने सांसारिक विषय वृत्त का प्रफेन होड़ने का आग्रह किया है-

“ सकहि तौ सब परपंच तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि । ”<sup>३</sup>

स्वामी हरिदास ने माया मद, गुन मद तथा यौवन मद सभी को मिथ्या कहा है और संसार की नश्वरता का परिचय दिया है -

जौतौं जीव तौतौ हरि भवि रे मन बीर बात सब बादि ।

१- व्यासवाणी पृ० ६५

२- गुरुसागर , प्रथम स्कन्ध पद सं० १४६ ना० प्र० सभा तृतीय संस्करण

३- श्री हित स्फुटवाणी बी , पृ० ६

दिवस चारि के हलामला में तू कहा लेझी लादि ।

माया मद, गुन मद, जीवन मद मूल्यो नगर विदादि ।

कहि "श्री हरिदास" लोभ चरफट मयी काहे की लगे फिरादि । " १

१- निम्बार्क माधुरी पृ० २०४

पंचम अध्याय  
=====

“ दार्शनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण ”  
=====

तुलनात्मक अध्ययन  
=====



## दार्शनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण

### तुलनात्मक अध्ययन

भारत कल्यात्म और दर्शन का देश है। यहाँ विशाल से वेदान्त ज्ञाना ब्रह्म ज्ञान की एक जगह धारा प्रवाहित होती आ रही है, जिसमें अवगाहन कर विभिन्न युगिन भारतीय ऋषि-मुनियों, धर्मात्माओं और दार्शनिक विद्वानों ने ज्ञानन्द और शान्ति का अनुभव किया है। इस देश में जहाँ दार्शनिक जाचार्य हुए हैं, जिन्होंने दार्शनिक तत्वों का शास्त्रीय निरूपण प्रस्तुत कर जलजल संप्रदायों का संगठन किया है। प्रायः सभी जाचार्यों ने "प्रस्थान ब्रह्म" पर भाष्य प्रस्तुत करके अपने अपने मन्त्रित-संप्रदायों को प्रामाणिकता से मुद्रित किया। ईश्वर, जगत्, जीव, माया आदि के विषय में अपने-अपने सम्मत विचारों को व्यक्त कर, अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए विविध ग्रन्थों को रचकर संप्रदाय का संगठन करना ही जाचार्यों का लक्ष्य रहा। मन्त्र के लिए दार्शनिक होना अनिवार्य नहीं है। मन्त्र के समाधिमय दाणों में निवृत्त मन्त्रित-भावों में ईश्वर, जगत् सम्बन्धी विचारों का आभास आयास ही मिल जाता है। किन्तु मन्त्रों का मुक्तकाल शास्त्रीय धरातल पर सिद्धान्तों के विवेचन की ओर नहीं होता। यही मन्त्र और एक दार्शनिक जाचार्य में सामान्य अन्तर है।

वाल्मीकि सत्वतः दार्शनिक नहीं थे। वे तो संत, मन्त्र और रहस्य-सिद्ध कवि थे। उनका लक्ष्य दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना नहीं था। भगवान् की मन्त्रित में विभोर उनके हृदय की तन्त्री से जो राम स्वतः मन्त्रित हुए, उनका संकलन ही "प्रबन्धम्" है। "प्रबन्धम्" में ब्रह्म, जीव, जगत् आदि के विषय में सिद्धान्तपरक विवेचन नहीं है। परन्तु यत्र-तत्र आनुष्णिक चर्चा है। वाल्मीकि का काव्य भाव और मन्त्रित प्रधान है। उनके जहाँ पदों में ईश्वर का निरूपण है। उन्हीं छोटे से उल्लेखों से वाल्मीकि के विचारों की दार्शनिक भिन्नता का परिचय मिल जाता है। यह स्मरण रखना आवश्यक-

एक है कि बाल्वारों का काल निश्चित रूप से बाचार्य-चतुष्टय के काल से पुरातन पूर्व का है। अतः यह स्वभाविक ही है कि बाल्वारों की मूल्य प्रधान विचार-धारा ने परवर्ती बाचार्यों को न्यूनाधिक रूप में प्रभावित किया हो। परवर्ती बाचार्यों की मूल्य संबन्धित दार्शनिक विचार धार का मूल-स्रोत बाल्वार-साहित्य में देखा जा सकता है। चूंकि श्री रामानुजाचार्य का काल बाल्वारों के सीधे बाद में पड़ता है, अतः उनके विशिष्टाद्वैतादी दर्शन पर तो बाल्वारों का सीधा प्रभाव है ही। परवर्ती मूल्य-सिद्धान्तों पर उनका उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना कि विशिष्टाद्वैतादी दर्शन पर। वैसे तो विशिष्टाद्वैतादी दर्शन की नींव श्री नाथमुनि के समय में ही पड़ चुकी थी। श्री नाथ मुनि ने ही प्रथम बार 'प्रबन्धम्' का संवादन कर, उसकी विचार-धारा का कुछ शास्त्रीय विवेक प्रस्तुत किया था। नाथमुनि के पश्चात् जानेवाले बाचार्यों ने उस विचार धारा को सुव्यवस्थित रूप प्रदान कर उसे एक दार्शनिक भूमि पर साफर लड़ा कर दिया, जिसके फलस्वरूप विशिष्टाद्वैतादी दर्शन का स्वरूप स्थिर हुआ। यहाँ हमारा उद्देश्य यह स्पष्ट करना मात्र है

१- "The Alvars provided the soil out of which Ramanuja's teaching naturally sprang and in which later it could bear fruit. He is not really (as has been <sup>erroneously</sup> asserted) the 'morning star' of the Bhakti movement; that is a name far more fitly given to Alvars; but in him bhakti shines in the full splendour of a great philosophical exposition." — J. S. M. Hooper, "The Hymns of Alvars", page 7-8.

२- "उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् त्विः ।

सहस्यं तर्गं च तमाचार्यं प्रवदति ॥" कथा

बाचार्यान्पुरुषोवेद ।"

उपयुक्त परिभाषा के कारण बाल्वार भक्त यद्यपि बाचार्यों की कोटि में नहीं आते, तो भी उन्हें भक्त्याचार्य मानने में कोई हानि नहीं है। मूल्य-सिद्धान्त के स्वरूप को सुस्पष्ट करने में उनका बड़ा भारी हाथ रहा है। उनसे परवर्ती संतों, भक्तों और बाचार्यों की मूल्य-ज्ञान हुआ। अतः बाल्वारों की भक्त्याचार्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। "भक्त्यासाधोहि निर्दिष्टो भक्तिश्चाचार्य-संज्ञात्" - सुदामाचरितम् - ८८

कि सभी दार्शनिक संप्रदायों का आविर्भाव बालवारी के पश्चात् ही हुआ है और बालवार ने किसी विशिष्ट संप्रदाय की विचार-धारा की चहारदीवारी में बन्द रहकर कविता नहीं की थी।

बालोप्यकासीन हिन्दी-कृष्ण-मधित-काव्य विभिन्न मधित-संप्रदायों की दृष्टि में पल्लवित हुआ है। संप्रदाय और उसके अनुयायी कवियों में वर्गांगि-भाव रहता है, सर्वथा जेद नहीं। अतः संप्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं में और कवियों द्वारा व्यक्त सिद्धान्तों में समानता के साथ कहीं कहीं असमानता भी देखने को मिलती है। बालोप्यकासीन हिन्दी कृष्ण-मधित-काव्य विभिन्न संप्रदायों के सिद्धान्तों से अनुप्राणित अवश्य रहा, किन्तु सर्वत्र सर्वथा अनुयायी नहीं। यह वाच्य और कवि के व्यक्तित्व की भिन्नता का स्वाभाविक परिणाम है। जैसे कवि ऐसे हैं जिन्होंने मान्यताओं के आग्रह को दृढ़ता के साथ ग्रहण किया है। कुछ कवि ऐसे भी हैं जो सिद्धान्त पदा के प्रति उदासीन रहे हैं और अंततः स्वतन्त्र भी। यही कारण है कि विभिन्न संप्रदायों की दृष्टि में पलने पर भी कवियों की विचार धाराओं में बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

ब्रह्म

### बालवारी के ब्रह्म-सम्बन्धी-विचार

यों तो बाल बालवार भक्तों ने ही ब्रह्म के स्वरूप, गुण आदि के विषय में कुछ न कुछ अवश्य कहा है, फिर भी नम्माबालार और तिरु-मल्लि बालवार ने जितने विस्तार से ब्रह्म के विषय में कहा है, उतने विस्तार से अन्य बालवारी ने नहीं। सामान्यतः सभी बालवार भक्तों ने अपने इष्टदेव कृष्ण की परब्रह्म विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। वे ही पुरुषोत्तम हैं। वे ही सब विश्व के कारण हैं। वे आदि अन्तिम, अनुप और सर्वान्त्यामी हैं। वे अंत और अन्त रूप में अंत्य रूप धारण करते हैं। ब्रह्म होकर भी भक्तों का उद्धार करने

१- वल्लभ संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, गौडीय संप्रदाय आदि

के विभिन्न देह धारण करते हैं। अतः बालवारीं द्वारा वे अवतारी और अवतार दोनों ही रूपों में ग्रहण किये गये हैं। जीव रूप में तथा जगत् में जो कुछ है, वह उन्हीं का कर्म है। वे ही अवतार ब्रह्म रूप हैं। बालवार भक्तों ने ब्रह्म के इस रूप और सौन्दर्यमय रूप का भी वर्णन किया है। उन्होंने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूप माने हैं।

बालवार भक्तों के दृष्टिसे ब्रह्म सर्वसम्पत्तिमान् हैं, अविनाशक हैं। सब देवताओं से श्रेष्ठ वे ही हैं। नन्मालवार कहते हैं—“भौ भगवान् ही सर्व-लोक रक्षा हैं, वे ही सर्व श्रेष्ठ हैं, उनकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। उनके अतिरिक्त और कोई देव ही नहीं हैं। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सबों के पालक वे ही हैं।” वही परमज्योति है, जगत् के कर्ता है, गोविन्द हैं, उनके गुणों का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।” वे ही महान् से महान् हैं। वे ही पूर्ण ब्रह्म हैं। वे श्रेष्ठ गुणों के वाहर हैं, अच्छाई के समार हैं। वे उन्हीं की स्तुति करते हैं। वे ही सर्वज्ञानी हैं। वे ही सभी चित् - अचित् प्राणियों के आधार हैं। वे देवों

१- नलिमिति बहैक्युम नान्मुक्तवत्तुम, तत्तिरोतिरिक्कियार तत्तन्नुमु मुत्ता ।

यावकैयुक्तमुम यावरुम अक्कपड, निलमनीर तीकात्त चुडरिरु किह्मुम्बुम ।

मत्तर चुडर पिह्मुम चिरिट्टुडन मय्क बोर्न पोरुत्त पुरप्पाडिन्नी मुत्तुवट्टुम ।

अक्कपडवकरन्दु ओरात्तिज्जेन्दं एम

पेरुमामायोयत्ताडु

बोरुमादेवम् मूडैय्मोयामे ? “ - तिरुवाचिरिया, इन्द ७

२- तिरुवायमोली ३-१-३

३- यावैयुम क्कुरुम तानाय क्कस्वर सनयन्तोरुम

तोयविल्ल पुत्तैन्नुवट्टुम सोलप्पटान उणर्विन मूर्ति

वाक्किवैरु यिरित्तुत्तात्त वानुमोर पट्टित्तद

पावनेक्किन्नैन्नुत्तिल क्कन्नैयुम कूडत्तामे । - तिरुमायमोली ३-४-२०

४- "The idea of Brahman as adhara of cit-acit is the life-blood of Visistadvaita" - P. N. Srinivasachari  
"The Philosophy of Visistadvaita", page 121.

मण्णुम नीरुम ररियुम नत्त वाक्कुम ।

विण्णुमाय विरियुम रंपिरानेये । वही १-१०७२



के अधिपति हैं । तीनों लोकों की सृष्टि, पालन, और संसार वे ही करते हैं।

तिरुमल्लि बाल्यार का कथन है-<sup>१</sup> " पात्रत रु है । वे ही प्राणियों का रु मात्र संहार हैं। उनकी <sup>मिही</sup> <sup>मिही</sup> वे भी वर्णित नहीं हो सकती । चिन्तन, तप सभी का लक्ष्य उही में लीन होना है। भगवान् वादि पुरुष के भी वादि पुरुष हैं । अन्त में केवल वे ही रहेंगे ।

१- " पौहु पुरुषुम पंडितिक्कुम

पौरुन्नु पुरुषुवन रम्पुवन

----- वादियल्लाल

यावर म्मु स वर तुणैये ? "

- तिरुवयामोली ८-४-२

२- तेरुंकाळ देवन जोरुवनेयेन्दुरैप्पर

बारुमरियार वन पेरुमे - जोरुम

पौरुम मुळिक्कुम रुनेये सवम वेस्तार्कुम

वरुस मुळिवदाळियान पाल ।

- नानमुक्कन तिरुवन्तादि, २

३- वादियान नानवर्कुम वंडमाय वप्पुस्तु

वादियान वानवर्कुम वादियान वादिनी

वादियान वान वाणार वन्त कालम नी उरैली

वादियान कालम निन्ने यावर काणवल्ले ।

- तिरुच्चन्तविरुवम , ८



तिरुमोली बालवार ब्रह्म के विषय में कहते हैं - " भगवान्  
 देवों के सार हैं<sup>१</sup>। वही सबके बादि हैं<sup>२</sup>। और वही अन्त हैं। वे ही सर्वलोक  
 रक्षा हैं<sup>३</sup>। परियालवार के इष्टदेव केशव पुरुषोत्तम भगवान् हैं। परम ज्योति  
 हैं<sup>४</sup>। वे महान् हैं, देवों के अधिपति हैं। संपूर्ण लोकों के रक्षा हैं<sup>५</sup>। एगिर सागर  
 में स्नान करने वाले परम मूर्ति हैं। जगत् की सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा की सृष्टि की,  
 संहार करने के हेतु यम की सृष्टि की। वे ही कारण हैं, अविनाशी हैं, परम

१- " पन्नुनालमरैप्पल पौरुलाकिय

परमनिठम ----- " पेरिय तिरुमोली ३-१२२

२- " नीर्तियाकिय वेदमामुनियालर तोद्दाम उरैत्तु ।

मद्वक्कु बादियायिरुन्ताय ----- । वही ३-५-६

३- " चन्तमाय चमयमाकी चमयैभूतमाकी ।

अन्तमाय बादियाकी अरुमरैयैयुम जानाय । "

- वही ४-६-६

४- " केशवा । पुरुषोत्तमा । किल्लोतियाय । "

- पेरियालवार तिरुमोली , ४-४-२०

५- देवकल नायकने । सम्माने ।

स्वलिसेन्नुडेयिन्नमुने ।

स्तुत्तुमुडैयाय । अरन्नप्पा । "

- वही ४-२०-७

६- " पेरविनछो पकिळलु

पल्लिकोत्किन्द परम मूर्ति । "

उय्य उत्तु पडैक्क वैडी

उन्तियिल तोद्दिनाय नान्मुल्लै

वैयमनिवैरै पोयैन्दुण्णी

कालैयुम उल्लै पडैताय । "

- वही ४-२०-५

पुरुष हैं<sup>१</sup>।

बाण्डाल कहती हैं -<sup>२</sup> " चारों वेदों में वही वर्णित हैं ।  
वही देवों के बघीस हैं<sup>३</sup> । वे सब वस्तुओं से परे हैं । उन्हें पूर्ण रूप से समझने की  
शक्ति किसी में नहीं है । वही वेदों के सार- तत्व हैं, एक मात्र सत्य तत्व हैं ।  
कुलदेवताखवार का कथन है-<sup>४</sup> " देव, ऋषि और दिशाओं के सृष्टि-कर्ता वे ही  
हैं । सबों की स्तुति के पात्र वे ही हैं । वेच महान् हैं । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र उन्हीं  
की स्तुति करते हैं । वेदों द्वारा उन्हीं की महिमा गायी जाती है<sup>५</sup> ।

बालवार मन्त्रों के अनुसार ब्रह्म निर्गुण भी है, और सगुण भी

१- " उत्तियमाय । वासि मुनैन्ती  
संय माकरी कोल विह्वाने ।  
कारणा । कडलैकडैन्ताने ।  
रैपिरान । ————— । "

- वही ४-१०-६

२- नाञ्जिवार तिरुमोली ४-१०

३- " रप्पीरुदुमुम निन्दु बार्हुम रक्तातु नान्वरेयि ।  
वौपीरुत्ताय निन्दार सन मेरप्पीरुत्तुम कौटारे । "

- वही , ११- ६

४- " देवैर्युम ऋरैर्युम दिशैर्युम पंडैवने ।

यावरुम वन्तु बडि वणै वरैनागस्तुइन्दुवने । "

- पैरुमाळ तिरुमोली , ८ : १०

५- " पिरैयेरु चडैयानुम पिरमनुम इन्दिरनुम

मुंरैयाय पैरुवेल्की कुरै मुडिप्पान मरैयानान । "

- वही ४ : ८

क्षी को भगवान् का विरुद्ध धर्मावयव कहा है । नम्मात्वार कहते हैं -<sup>१</sup> " भो  
इष्टदेव सर्वत्र व्याप्त हैं , वन्तयामी हैं । नरक, स्वर्गों के अधिपति हैं । मित्रता-  
शत्रुता से परे हैं । अमृत सम हैं । भो रक्षा हैं । वे अपने सगुण रूप में तिरुविण्ण-  
कर ( स्थान विशेष ) में विराजमान हैं<sup>१</sup> । सुख- दुःख , कलह- सन्तोष सबसे परे  
अव्यक्त भगवान् अपने सगुण रूप में तिरुविण्णकर में विराजमान हैं<sup>२</sup> । पुण्य- पाप,  
मिलन- वियोग आदि के प्रभाव से परे सत्य तत्व भगवान् अपने सगुण रूप में तिरु-  
विण्णकर में विराजते हैं<sup>३</sup> ।

परियात्वार कहते हैं -<sup>४</sup> " भिन्की स्तुति करने में वेद भी  
नहीं करते , वही यज्ञोपा द्वारा ऊक्त से ( अपने सगुण रूप में ) अधि जाते हैं<sup>४</sup> ।

१- " नत्तुखुम चैत्तुम नरकुम सुक्कमुमाय ।  
चैत्तुक्कुमुम नत्तुम विट्तुम अनुदमुमाय  
पत्तुक्कुमुम परन्त पेरुमान सन्नेयात्त्वाने  
चैत्तुम मत्तुक्कुडि तिरुविण्णकरुप्पेने । "

- तिरुवायमोली ६ : ३ : १

२- कण्ड इन्पम तन्पम कलवक्कुलुम तैत्तुमाय  
तण्डमुम तण्णमुम तल्लुम नित्तुमाय  
कण्टुकोळ्ळरिय पेरुमान सन्नेयात्त्वानूर  
तेण्णिरैप्पुनक्त चूल तिरुविण्णकर नन्नगरे । "

- तिरुवायमोली , ६-३-२

३- वही ६-३-३

४- " वारायुम वेदम अय्युं रत्तद अण्णैयित्त  
ऐरार वणै कयिद्रात्त कट्टुप्पट सप्पेरुमान "

= " भगवान् वल्लभ भवतः " ( श्री० श्री० श्री० वाचायै कृत )

पृ० १५ से उद्धृत

नम्मात्वार "परियतिरुवन्तादि" के एक पद में इस प्रकार भगवान् से प्रश्न करते हैं :- "बाकात, भूमि सक्को वने में धारण करने वाले है भगवान् । उतने वडे होकर भी भैरे कर्ण-मार्ग से भैरे वन्दर बाफे प्रवेश कर लिया है । अब बतावो, मैं बड़ा हूँ कि तुम ?"

पौय्यो वात्वार का कथन है कि भगवान् वन्तयानी है । जो उसका स्मरण करता है, वह उसके मन में वास करता है<sup>२</sup> । पेयात्वार कहते हैं कि भगवान् के रूप, रंग को कोई नहीं जानता है<sup>३</sup> । ( क्योंकि ब्रह्म रूप, रंग से परे निर्गुण है । ) पौय्यो वात्वार का कहना है - "भवत तिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है । भवत तिस ढंग से उपासना करें, उसी ढंग से ब्रह्म उसका उपास्य बन जाता है ।"<sup>४</sup>

१- परियतिरुवन्तादि , ७५

२- "उत्तन्कष्टाय नन्नेवि । उत्तमेन्दुम  
उत्तन्कष्टाय - उत्तुवारुत्तु उत्तन्कष्टाय ।"  
- मुदल तिरुवन्तादि , ६६

३- "विरम वैलितु वैलु पचितु करितेन्दु  
वैरुवम यामरियोम ————— ।"  
- मून्द्राम तिरुवन्तादि , ५६

४- "ववसर ताम नाम वरिन्तावारेदी  
व्वरिवेम्पेरुमानेन्दु - व्वरमिने  
वार्थियुम वैलुम वीलुवर उत्तन्कन्त  
मुर्तियुरुवे मुदल ।"  
- मुदल तिरुवन्तादि , १४

पेरियाल्वार कहते हैं - " वह ईश्वर है । पूरुषी, वाक्परा, वाठों दिशावों, वेद, वेदार्थ सर्वत्र वृत्तनिहित है । पर वास्तव्य है कि उसका निवास मेरे हृदय में है । " नम्माल्वार तो सारे जगत् को कृष्णाय देखते हैं । वे कहते हैं- " जो जल हम पीते हैं, जो मात हम साते हैं, जो पान हम साते हैं, सब में भगवान् की वापा फलकती है । "

### ब्रह्म का वानन्द ( रस ) रूप-

वाल्वार भक्तों ने ब्रह्म को वानन्द रूप या रस रूप माना है<sup>३</sup> । पेरियाल्वार अपने इष्टदेव को " सुन्दर मूर्ति " कहकर पुकारते हैं<sup>४</sup> । तिरुमोली वाल्वार कहते हैं कि भगवान् वानन्द रूप हैं, शब्द के समान मधुर रस रूप हैं<sup>५</sup> । तिरुप्पावाळ वाल्वार कहते हैं - " मेरे बिना सब नक्तों ने वमृत-तुल्य रस-रूप भगवान् के दर्शन किये हैं, वे किसी दूसरी वस्तु को नहीं देखी । "

१- " इरैयाय निलनाकीं एण्णित्तैयुम वानाय  
मरैयाय मरैप्पोरुवाय वानाय —  
उल्लपिनुल्ले उल्ल । " - मुन्द्राम तिरुवन्तादि , ३६

२- " उण्णुम चोरु परुवु नीर तिन्नुम वैदित्तैयुमल्लाम  
कण्णन एप्पेरुमानेन्द्रेन्द्रे कण्णल नीर मली  
मण्णिनुल्ल वन चोर वलम मिक्कलवनूर विनवी  
तिण्णम ल स्तमान पुव्वर तिरुक्कोट्टे ॥ " - तिरुवायमोली ६:७:१

३- " Visistadvaita is the only philosophy of religion that recognises the eternal value of beauty and recognises Brahman as the beautiful and blissful. " — "The Philosophy of Visistadvaita", — P. N. Srinivasachari page, 219.

४- " वण्णम वलकिय नम्पी " - पेरियाल्वार तिरुमोली- २-४-६

५- " पाविने पञ्चैने पेम्पोन्ने — । " तिरुकुरुपाण्डकम - ६

६- " वण्डर कोन वणिवारिन एन्नमुदिने  
कण्ट कण्णल म्पून्दिने काणावे । " - वमलनादिपिरान , १०



### अवतार-

बालवाराँ के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में लोकोद्धार के लिए अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अधर्म फैल जाता है और ज्ञान अन्धकार पृथ्वी को कवचित करता है, तब कृपा- सिन्धु मगवान् अपनी करुणा को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। बालवार भवर्तों ने अपने इष्टदेव कृष्ण को परब्रह्म विष्णु के अवतार के रूप में ही सर्वत्र माना है। कृष्णावतार के कारण बताते हुए बालवार कहते हैं -<sup>१</sup> " देवलोक के देव गणों की वेदना को दूर करने के लिए, पृथ्वी तथा पृथ्वी में रहने वाले मनुष्यों के उद्धार के लिए, पृथ्वी के बौक को कम करने के लिए, भूदेवी के कष्ट को दूर करने के लिए, देवगणों की प्रार्थना पर बन्धु बान्धवों को सताने वाले कंस का वध करने के लिए -<sup>२</sup> दारि- सागर वाली श्री विष्णु का श्री कृष्ण के रूप में अवतार हुआ।

बालवार<sup>३</sup> भवर्तों के मन्त्रित- साहित्य का बाधोपान्त अध्ययन करने से यह जाना जा सकता है कि उन्होंने उपासना और ध्यान के लिए ब्रह्म के पाँच रूप माने हैं<sup>४</sup>

### परब्रह्म रूप-

बालवाराँ ने ब्रह्म का विवेचन निम्न प्रकार से किया है :-

" ब्रह्म अमर है, वादि पुरुष है<sup>५</sup>, तीन देवों ( त्रिमूर्ति ) में श्रेष्ठ है<sup>६</sup>। मुनिजन वादि उन्हीं की स्तुति करते हैं<sup>७</sup>। वे पवित्र हैं, परम मेधावी

१- परियालवार तिरुमोली ४-६-६

२- परुमात्त तिरुमोली १-१०

३- परिय तिरुमोली २-१०-८

४- वही ८-८-६

५- तिरुवायमोली ६-४-५

६- वही ३-५-५

७- अम्मादिपिरान , १

८- मुवत्ति मुदत्तनाय मुत्तन<sup>८</sup> - तिरुनेल्लुवाण्डकम् , ६

९- विद्मयि सुनिवरात्त विल्लुक्क कोटिल्लनियाय<sup>९</sup> - परिय तिरुमोली २:३:२

हैं, परमात्मा हैं<sup>१</sup>। श्रेष्ठ गुणों से युक्त महान् से महान् हैं। स्तुति के पात्र केवल वही हैं।

### व्यूह रूप-

बाल्यार ब्रह्म के व्यूह- रूप की बीर इस प्रकार संकेत करते हैं -<sup>२</sup> " मुनिश्रेष्ठ ज्ञानी परमात्मा ने तीन बनकर पवित्र रूप धारण किये, जिसकी स्तुति वेद करते हैं<sup>३</sup>। प्रथम बार ब्रह्म के पवित्र रूप तीन बताते हैं<sup>४</sup>।

### वन्तार्यामी रूप-

निम्नलिखित उद्धरण ब्रह्म के वन्तार्यामी - रूप को स्पष्ट करने वाले हैं :-

- " शरीर में प्राण के समान मिलकर वास करने वाले भगवान्<sup>५</sup>। "
- " जो उनका स्मरण करते हैं, उनके हृदय में भगवान् वास करता है। "
- " अपने रूप की ही भरी रूप में धारण करने वाले भरी पिता<sup>६</sup> "
- " हृदय में वास करने वाले ब्रह्म "

१- " पवित्रे परमेश्वर्यै — परमात्माने । "

- तिरुप्पत्ताप्पट्ट , १२

२- " पाराट्टित्तुम पाराट्टैयाहो — " "

- तिरुच्चन्तविरुत्तम - २६

३- " मनिवनमुत्ति कूराकि वेदम विरिहुरै पुन्नित्त " - पेरियतिरुमोली २-२-८

४- " मुदलाम तिरु उरुवम मून्नेन्वार " - पेरिय तिरुवन्तादि , ७२

५- " उडलमिळै उयिरै कलन्नेळुम परन्नुलान " - तिरुवायमोली १:१:७

६- " विन्तै तन्निल मुन्ति निन्दीर " - पेरिय तिरुमोली ४-६-६

७- " तन्नुरुवै एन्नुरुविल निन्दु एन्तै " - तिरुनेल्लुवाप्पळम - १

विभव रूप-

यह भगवान् के विभिन्न अवतारों से सम्बन्ध रखता है।  
बालवाराणों ने विष्णु भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया। ( इसका  
उल्लेख पहले किया जा चुका है। )

वर्णितार- रूप-

इस रूप में ब्रह्म मूर्तियों में वास करता है। बालवारा भगवत्  
ने विभिन्न मन्दिरों में स्थित भगवद् विग्रहों को ब्रह्म के वर्णितार- रूप में ही  
देखा था<sup>१</sup>। तिरुमयी बालवार कहते हैं- " वही भगवान् जिसकी स्तुति वेद और  
सुर लोग करते हैं<sup>२</sup>, वही भगवान् जिसने कच्छप मत्स्यावतार धारण किए, बट्ट  
पुकर ( स्थान विशेष ) के मन्दिर में वास करता है<sup>३</sup>। वाराहवतार लेने वाले,  
तीनों लोकों को माफ़ी वाले, महाकाली का उद्धार करने वाले, चारों वेद से स्तुति  
प्राप्त करने वाले भगवान् चौरामविष्णुकर ( स्थान विशेष ) में विराजते हैं। "

१- "The Visistadvaitin equates the Brahman and the  
antarjami of the Upanishads with Varudeva,  
of Pancharatra, the Bhagavan of the Puranas,  
the Avatar of the Itihasas, and the area  
of the Alvars." - The Philosophy of Visistadvaita,  
Prof. P. N. Srinivasachari, page 162.

२- वेदपुराण सम्योर वर्णक्रम

वन्तु कुरुकुवाय निमिर्दु मावली वेदविधि मण्णलन्त

वन्तणर पील वरार कोल ? एन बट्टपुकरे रन्दारे ॥ " परियतिरुमोही १०००

३- बोरु कुरुवाय इरु निलम मूवही मण वेण्टी

२:८:२

उत्तनेलुम वरदियालोडुवकी बोनदुम

नम्पालवार कहते हैं कि वेदों से वर्णित ब्रह्म तिरुमातिरुचोले के मन्दिर में विराजमान हैं। बालवार भक्तों के इन कथनों से उनके द्वारा ब्रह्म के कर्वावतार स्वरूप को मानने की बात स्पष्ट होती है।

### ब्रह्म का विराट् रूप-

ब्रह्म के शब्द के धात्वर्थ में ही उसके बृहत् और विराट् होने का अर्थ निहित है। ब्रह्म के इस विराट् रूप का वर्णन ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, अनेक उपनिषदों और गीतादि ग्रन्थों में मिलता है। कृष्ण को ब्रह्म स्वीकार करने वाले बालवार भक्तों ने भी कृष्ण के विराट् रूप का वर्णन किया है। पेरियालवार ने यशोदा के द्वारा कृष्ण के मुँह में संपूर्ण लोकों के दर्शन करने का उल्लेख किया है। मृत्तिका मन्त्राण तथा बभ्रुहार्द लेने के समय भी कवि ने समस्त सृष्टि को उनके मुँह के अन्तर्गत प्रदर्शित किया है जो ब्रह्म के विराट् रूप का ही प्रतिपादन करता है। पौंकी बालवार वाच्य बक्ति होकर कहते हैं - "पृथ्वी, पर्वत समुद्र, मारुत, वायु, आकाश सबको निगलने वाले, हे असीम भगवान्। क्या उस दिन वाक्का मुँह इतना बड़ा था।" पौंकी बालवार अन्यत्र कहते हैं - "जो भगवान् पृथ्वी, वायु, अग्नि

१- वेद मुन विरिचान विरुम्पिय कोयिल

मातुरु मयिल वेर मातिरुचोले । " - तिरुवाय्मोली २-१०-२०

२- कैयुम कालुम निर्मिर्तु कटार नीरै

पेय वाट्टी फुंचिरु मयलाल

रेय नावलियालुवु अर्गाटिट

वैयैलुम अटाल पिल्लैवायुले । " - पेरियालवार तिरुमोली १-२-६

३- मण्णुम मलैयुम मरिक्कलुम मारुतमुम

विण्णुम विर्तुक्कियु मेय्येन्पर - रण्णाल

अलकलु कष्ट चीरालियालुवु वन्दु अव

वुलकलुम उण्टो ? उन वाय । "

- मुदल तिरुवन्तादि , १०

आदि विराट् रूप वाले हैं, वही गजेन्द्र के कष्ट को दूर करने की दृष्टि से हैं।<sup>१</sup>”

### अन्त्र उपाधियाँ-

बालवार भक्तों ने ब्रह्म की कौकानिक उपाधियों का मुक्त हृदय से वर्णन किया है जिनमें तात्त्विक दृष्टि के अतिरिक्त भावात्मकता का भी पर्याप्त योग है। तिरुप्पावाय बालवार ब्रह्म के विषय में कहते हैं - “ ब्रह्म कमल है , आदि पुरुष है , भक्तों के रक्षाक है , विमल है , देवों के अधिपति है , निर्मल है , नीतिज्ञ है<sup>२</sup> । ” तिरुम्मी बालवार कहते हैं - “ भगवान् पवित्र हैं , महात्मा हैं , पुण्य मूर्ति हैं , देवाधिपति हैं , कहे रहने वाले हैं ,

१- “ इरेयुम निलनुम इरुविमुन्नुम कादुम  
 इरेयुननुम चैत्तीयुमावान - पिरैमरुप्पिन  
 पैरुण माल यानै फु - तुयम कावलि  
 चैरुण माल कण्टाय तेली ॥ ”

- मुदल तिरुवन्तादि २६

२- “ कमलादिपिरान अडियार्कु रन्नीयाट्टफुल  
 विमलन विण्णवर कौन विरयार पौल्लि चैटवन  
 निमलन निन्मलन नीतियानवन नील पतिलैरुगम्मान तिरु  
 कमल पादम वन्दु स कण्णिनुल्लनवोविकन्दुते । ”

- कमलनादिपिरान , पद १



भक्तों के लिए मधुर है, मेरे स्वामी हैं<sup>१</sup>। "" तिरुमल्लि वासवार कहते हैं - ""  
 हे भगवान् । बाप में सम्भूत गया हूँ । समस्त दृष्टि के कारण तुम हो । जो कुछ  
 ज्ञान में प्राप्त किया है, तुम उसका सार हो । जाने जो कुछ मैं सीखूँगा, वह भी  
 तुम्हीं हो । अच्छे कर्म करने वाले तुम नारायण हो<sup>२</sup>। "" नम्मासवार कहते हैं - ""  
 ज्ञानी लोग सब हरि की स्तुति करते हैं, व योंकि वे जानते हैं कि भगवान् ही समस्त  
 रोगों को दूर करनेवाली बीजधि हैं<sup>३</sup>। "" नम्मासवार भगवान् को बड़े दानी, भक्त  
 वत्सल भी कहते हैं<sup>४</sup>।

१- मुनिवन मूर्तियाकि मूवराकि वेदम विरिहुरै  
 मुनितन मूर्तवण्णन वण्णल पुण्णियन विण्णवर कोन  
 तनियन वेय तानोरुवनाकिलुम तन्नडियाहुं  
 इनियन एन्ते एम्येरुमान एव्वुल किडन्ताने । ""

- पेरिय तिरुमोली , २-२८

२- इनियरिन्तेन ईर्त्तुम नान्मुत्तुम देवम्  
 इनियरिन्तेन एम्येरुमान । उन्ने- इतियरिन्तेन  
 कारणन नी कट्टे नी कप्पे नी नर्किरिवे  
 नारणन नी नन्किरिन्तेन वान । ""

- नान्मुत्तन तिरुवन्तादि ६६

३- वरिन्तनर एल्लाम वरिये वण्णकी  
 वरिन्तनर नीळुल वरुक्कुम मरुन्ते । ""

- ज्ञान सिलरम् ( श्री पी० श्री० वाचायें कृत- पृ० ४ से उद्धृत)

४- "" वल्लुत्ते । मल्लुदना । एन मरुवप्पलेये उने निन्नु  
 एल्लल तन्त एन्ताय । उन्ने एडनम विडुनेन ? । ""

- तिरुवायमोली २-६४

## बालीयकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों

### के ब्रह्म सम्बन्धी विचार

कविवर सुरदास जी के इष्टदेव पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण हैं। उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूप हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण समस्त विश्व के कारण हैं। वे वादि, जनादि, अनुपम और सर्वान्तर्धामी हैं। वे ही केश और कला-रूप में कर्तव्य रूप धारण करते हैं। जीव रूप में जगत् रूप में और संपूर्ण देवता रूप में जो कृष्ण भी इस जगत् में हैं, वह सब उन्हीं का केश है। वे ही बटार-ब्रह्म रूप हैं और वे ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। ये संपूर्ण रूप उन्हीं से केश रूप बनकर प्रकृत हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म सत्त्व हैं। ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों बताकर सुर ने ब्रह्म के विरुद्ध धर्मत्व के भाव को स्वीकार किया है। सगुण रूप में वे सुख-रूप से नित्य रास-विहार करते हैं। उनका सौन्दर्य अमित है। उनके केश रूप हैं। सुर ने ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष वादि की अतृप्तता स्वीकार करते हुए कृष्ण और परब्रह्म का स्वीकरण किया है। सुर के अनुसार वात्सराम ब्रह्म ने ही अपनी इच्छा से अपनी केश रूप सृष्टि का प्रसार किया। सुर कहते हैं :-

१- " पुरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोफ बितायो ।

(क) अविगत, वादि वर्तत अनुपम जलत पुरुष अविनाशी । (सूक्त)

(ख) वादि सनातन परब्रह्म प्रसु पट-पट केशवायो ।

ओ तुम्हारे अवतारे वादि के, सुरदास के स्वामी के । " (सूक्त १०।८६ पृ० २६०)

(ग) वादि सनातन, हरि अविनाशी । सदा निरन्तर पट पट बायो ।

पुरन ब्रह्म, पुरान बतानें । चतुरानन शिव केश न जानें ॥ " (सूक्तान्तर १०।३ पृ० २)

(घ) " पुरन ब्रह्म सनातन जेई, मैं मूल्यो संसार । " (सूक्तान्तर १०।६७ पृ० ५६५)

२- " उदा रू रू रू कलंकित वादि जनादि अनुप ।

कोटिकल्प बीतत नहीं जानत बिहरत सुख-स्वरूप ।

सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल ।

प्रकृति पुरुष श्री पति नारायण सब हैं केश गुपाल । "

- सुर सारावली, वे० प्र० पृ० ३८ अष्टहाप और वल्म संप्रदाय पृ० ४०७

से उद्धृत

अविगत, बादि अनन्त अनूपन अस्य पुरुष अविनाशी ।  
 पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निव लोक विनासी ॥  
 जहाँ वृन्दावन बादि बजिर जहाँ कृष्ण- लला विस्तार ।  
 तहाँ विहरत प्रिय- प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥  
 जहाँ गोवर्धन पर्वत पनिमय, सधन कंदरा सार ।  
 गोपिन मंजु मय विराजत निसि दिन करत विहार ॥  
 तैलत- तैलत पित में बाईं दृष्टि करन विस्तार ।  
 अपने बाप करि प्रकट कियो है हरि पुरुष अवतार ॥ १

जिस ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूप हैं, वही स्व  
 जगत् में अवतार भी धारण करता है। निर्गुण ब्रह्म ध्यान की वस्तु है, परन्तु  
 उपासना की नहीं<sup>१</sup>। वह जान से जाना जा सकता है। पर उससे प्रेम किया नहीं  
 जा सकता। बिना प्रेम के मन्त्र को सन्तौन नहीं। अतः निर्गुण ब्रह्म मन्त्रों के लिए  
 सगुण बनकर जाता है। वेद- उपनिषद् जिसे निर्गुण बताते हैं वही सगुण होकर  
 नन्द की दाँवरी में बँधा<sup>२</sup> है। कृष्ण पूर्णवितार हैं, जब जब दानव प्राट हुर हैं,

१- सूर सारावली, १

२- अविगत- गति कष्ट महत न आवै ।

ज्यों गूँघरी पीठे फल की रस अन्तरगत ही भावै ॥

मन- बानी कौं जग- जगोचर, सो जानै जो पावै ।

रूप- रस- गुण- जाति- बुद्धि- किन्तु निरालंब कित धावै ॥

सब विधि जगम विचारहि ताते सूर सगुन- फल भावै ॥

- सूर सागर १।२ पृ० १

३- वेद उपनिषद् जातु कौं निर्गुनहि बतावै ।

(क) सोई सगुन हूँ नन्द की दाँवरी बँधावै ।<sup>३</sup>

- सूर सागर १।४ पृ० २

(ख) <sup>४</sup> हंसत गोपाल नन्द के जानै नंद सरूप न जान्यो ।

निर्गुण ब्रह्म सगुण लोलाघर सोई सुत करि मान्यो ॥

- सूर सागर १०, २६३ पृ० ३४६

तब तब कृष्ण ने कतार धरकर कुरों का संहार किया । यद्यपि वे परम हँस, वक्ष्युत, अविगत, अविनाशी परमानन्द हैं, तो भी शरीर धारण करके मू का मार करते हैं ।

सुरदास ने परब्रह्म कृष्ण के विराट् रूप का वर्णन किया है और विराट् भारती की भी योजना की है :-

१- नैननि निरलि श्याम स्वरूप ।

रह्यो घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप कृप ।

चरण सप्त पताल जाके सीह है बाकाश ।

सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकाश । २

२- हरि मू की भारती बनी ।

मही सराव सप्त सागर धृत जाती रैल धनी ।

रवि सील ज्योति जगत परिपूरया हरत तिमिर रानी ।

उदित फूल उदगन नम अन्तर कवन घटा धनी । ३

परब्रह्म युक्ति से कौचर और समस्त विरुद्ध धर्मों के नाशक हैं । ये बण्डु से भी सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् हैं । ये सर्व व्यापक, काल

१- जब जब हरि पाया ते दानव प्रकट भये हैं जाय ।

(क) जब तब धरि कतार कृष्ण ने कीन्हीं कुर संहार । "

- सूर सारावली सू० सा० वे० प्र० पृ० २

(ख) तुम वक्ष्युत अविगत अविनाशी । परमानन्द सदा सुख राखी ।

तुम अनुधारि हूयो भुव मार, नमो नमो तुम्हें बारंबार ।। "

- सूर सागर , १०।४२६७ पृ० १७०६

२- सूर सागर ( ना० प्र० समा ) पद सं० ३७० पृ० १२३

३- सूर सागर

..

३७१

..

तथा घूटस्य होते हुए भी चले , बन्दर होते हुए भी बाहर, निकट होते हुए भी दूर, फल प्रदाता होते हुए भी एक एक और सर्व समर्थ हैं । मयत कवि सुर की यह धारणा, उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होती है -

वतार, व्यक्त, निराकार, वविगत है जोई ।

बादि वन्त नहिं बाहि, बादि वन्तहिं प्रभु सोई ॥ १

जोर,

कोटि ब्रह्माण्ड करत झि भीतर, हरत बिलम्ब न लावे ।

ताकी लिये नन्द की रानी, नाना रूप खिलावे ॥ २

परमानन्ददास के अनुसार श्री कृष्ण ही सादात् परब्रह्म परमात्मा हैं, कृष्ण ही एक से अनेक रूप धारण करते हैं और उन्हीं को वेद नेति-नेति कहते हैं । परब्रह्म गुण रहित और सगुण दोनों हैं । निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है।

परमानन्ददास ईश्वर के रूप-रूप के उपासक थे । वे कहते हैं - " कृष्ण एक रूप हैं क्योंकि उनका संपूर्ण विग्रह एक-निर्मित है । उनका धाम भी एक रूप है । उसी एक-रूप का उपासक परमानन्ददास हैं, जिसके हृदय

१- सुर सागर पद सं० १७६३ पृ० ६६३

२- " ७४४ पृ० ३०३

३- मोहन नन्दराय कुमार ।

प्रकट ब्रह्म निर्गुण नायक मयत हित अवतार ॥

००

००

००

\* दास परमानन्द\* प्रभु हरि निगम बोलत नेत ॥

- परमानन्द सागर ( सं० डा० गी० ना० शुक्ल ) पद सं० ५७



मैं उस कृष्ण के प्रति प्रेम का प्रवाह बह रहा हूँ। परमानन्द दास कहते हैं -  
 कृष्ण सुख के सागर हैं और सन्तों के सर्वस्व हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देव  
 उनका मनन करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ही सबके स्वामी हैं, वे ही  
 इस जगत् में लीला अवतार रूप में आते हैं।<sup>१</sup> परमानन्ददास आगे यह भी कहते  
 हैं -<sup>२</sup> वे मुख्य तीन देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश कृष्ण के ही गुणावतार हैं,  
 और ये कौन प्रकार के घर देने में समर्थ हैं। परन्तु मेरे तो उपास्य देव राधिका  
 वत्सल श्री कृष्ण ही हैं।<sup>३</sup>

#### १- रसिक शिरोमणि नन्दन ।

रसमय रूप अनूप विराजित गोपबधू उरु सीतल चंदन ।  
 नैननि में रस चितवनि में रस बातनि में रस छात मनुज फल ।  
 गावनि में रस मिलनि में रस केतु मधुर रस फाट पावन जल ।  
 बिहि रस मग फिरत मुनि मधुरर सो रस संचित ब्रज ब्रन्दावन ।  
 त्याग धाम रस रसिक उपासित प्रेम प्रवाह सु परमानन्द मन ।

- परमानन्द सागर, पद सं० ४५६

#### २- संतन कौ सरबहु सुख सागर नागर नंद कुमार ।

परम कृपाल जसोदा नंदन जीवन प्राण बाधार ॥  
 ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि देवता बाकी करत किवार ।  
 पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह लीला अवतार ॥  
 सरग नरक को जब डर नाहीं बिधि निषेध नहीं बाध ।

- परमानन्द सागर पद सं० २२

#### ३- मोहि मावै देवाधिदेवा ।

सुन्दर त्याग कलम बल लोचन गोपलनाथ रूप हैं मेवा ।  
 जो जानिये सकल बरदायक गुन विचित्र कोबिर सेवा ।  
 तीन मुख्य देवता ब्रह्मा विष्णु बरु महादेवा ।  
 संत सब सारंग गदा धर रूप चतुर्भुज जानन्दकन्दा ।  
 गोपीनाथ राधिका वत्सल ताहि उपासत परमानन्दा (

- परमानन्द सागर पद सं० ८७६

नन्ददास के इष्टदेव श्री कृष्ण परब्रह्म हैं, परमात्मा और स्वामी हैं<sup>१</sup>। यह ब्रह्मण्य ज्ञान- विज्ञान के प्रकाशक सच्चिदानन्द नन्दन हैं। कृष्ण प्रकट पुरुषोत्तम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी ब्रह्म पुरुष हैं। इनकी शोभा अपार है, ये अविगत हैं, आदि अन्त से हीन हैं<sup>२</sup>। कृष्ण अद्भुत रूप वाले हैं, परमात्मा हैं, सर्वान्तर्यामी हैं<sup>३</sup>। वे प्राणियों के रक्षक, पालक और उनके कर्मों को देखने वाले हैं। वे अवतार लेकर मृ का मार हरण करते हैं<sup>४</sup>।

१- कृष्ण अनादृत परम ब्रह्म, परमात्म स्वामी ।

नन्ददास, सिद्धान्त- पैवाध्यायी पृ० १८६

२- जैसे हैं कृष्ण ब्रह्मण्ड रूप, विदरूप उदार ।

नन्ददास - सिद्धान्त- पैवाध्यायी पृ० १६९

(क) परम धाम ब्रह्मण्य, ग्यान विज्ञान प्रकाशी ।

नन्ददास- सिद्धान्त- पैवाध्यायी पृ० १८४

(ख) सधन सच्चिदानन्द नन्द नन्दन ईश्वर जस ।

नन्ददास, सिद्धान्त- पैवाध्यायी पृ० १८४

३- मोहन अद्भुत रूप-----

परमात्मा परब्रह्म, सब के अन्तर्यामी ।

नारायण भगवान, धर्म करि सबके स्वामी ।

नन्ददास, रास पैवाध्यायी अ० ९ पृ० १५६

४- षट् मुन ब्रह्म अवतार धरन नारायण जोह ।

सबकी वाञ्छाय कधि- मृत नन्द नन्दन सोई ।

- नन्ददास, सिद्धान्त पैवाध्यायी - पृ० १८३

नन्ददास के अनुसार ईश्वर कमन्या है—<sup>१</sup> "कब कहिर  
जगदीश ।<sup>२</sup> " और वह अनन्त रूप होते हुए एक है — "हरि अनन्त बहू एक ।"  
यह जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण है -

जो प्रभु ज्योति जगतमय, कारण करण केव ।

विधत हरण सब दुख करन, नमो नमो तिहि देव ॥ ३

मीराबाई ने कृष्ण को "बविनासी" की संज्ञा दी है ।

मीरा ने एक स्थल पर लिखा है कि भगवान् जी कृष्ण और हृदय हैं, चाहे सूर्य  
चन्द्र, पूर्वी, जल, वाफात का नाश हो जाय, परन्तु कृष्ण स्थिर ही रहें ।  
मीरा अन्यत्र कहती हैं -

प्रभु तुम पूरण ब्रह्म हो, पूरण फल दीजै हो ।

मीरा व्याकृत विरहनी, अपनी करि लीजै हो ॥<sup>४</sup> ५

स्वामी हरिव्यास जी अपने इष्टदेव को ही परमात्मा,  
परब्रह्म मानते हैं :-

परमात्मन परब्रह्म करि विस्तारन जगजाल ।

जनपासन जय जय सदा रास बिहारीताल ॥<sup>५</sup> ६

हरिव्यास जी ने ब्रह्म को स्व-रूप और नित्य माना है -

१- नन्ददास ग्रन्थावली ( ना० प्र० समा ) अन्तर्गत मीरा

२- वही ( ना० प्र० समा, काशी )

३- वही पृ० ४६

४- मेरा पिया मेरे हिय अत है, ना कहूँ जाती जाती ।

बंदा जाया सुरज जाया, जाया धरणि बाकासी ।

फन पाणो दोनु ही जायो , अल रहे बविनासी ॥

- मीरा की पदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ८ प्र० संस्करण

५- मीरा की पदावली फल सं० १२६ सं० परशुराम चतुर्वेदी

६- निम्बार्क माधुरी पृ० ६३

नित्य विहरत जहाँ नित्य कैसीर दोउ  
नित्य सखरिन संग नित्य नखरि ।  
नित्य रस रास उत्सास वानन्द उर  
नित्य प्रतिकास परमास कंग कंग । १

सखान के कृष्ण भी विष्णु के अवतार, ब्रजा और शिव  
से श्रेष्ठ तथा पूर्ण ब्रज हैं । उन्होंने अपने काव्य में अनेक स्थानों पर श्री कृष्ण  
की परब्रज के रूप में चित्रित किया है। उनके द्वारा अन्य श्री कृष्ण सर्वोपरि हैं ।  
कई स्थानों पर उन्होंने "लँकर से सुर जाहि मयें " जादि कहा है । एक स्थान  
पर वे कृष्ण का ब्रजत्व दिताते हुए कहते हैं :-

गारि गुनी गनिका गन्धर्व और छारु सेस सर्व गुन गावत ।  
नाम जंत गनंत गनेस ज्यों ब्रजा त्रिलोचन पार न पावत ।  
जीगी जती तपसी बह छिद निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।  
ताहि जहीर की कोहरियाँ झड़िया मरि झाड़ पे नाव नचावत । २  
नरोत्तम दास ने श्रीकृष्ण को परम दयालु और बन्तर्दामी  
ब्रज के रूप में चित्रित किया है-

बन्तर्दामी बाप हरि, जानि मखित भी पीर ।  
धोवत है ठाढी कियो, नदी गोमती तीर ॥ ३  
और ये वही ब्रज हैं जिनके चरण से समस्त जगत् का संताप नष्ट होता है-  
जिनके चरणन को सतित, हरत जगत संताप ।  
पाय सुखामा विप्र के, धोवत हैं हरि बाप ॥ ४

१- निम्बार्क माधुरी पृ० ६०

२- सखान का अमर काव्य - ले० दुर्गा लँकर मित पृ० ५२

३- सुखामा चरित, नरोत्तमदास वे० प्र० दोहा सं० १२

४- वही दोहा सं० २३

### निष्कर्ष-

बालवार्त्तों के और बालौज्ज्वालीन हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों के ब्रह्म सम्बन्धी विचारों के अनुशीलन तथा परीक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों दौत्रों के कवियों के विचारों में बहुत दूर तक साम्य है। बालवार्त्तों की अपेक्षा हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों के काव्य में दार्शनिक विवेचन की मात्रा अधिक है। क्योंकि बालवार्त्तों के परचातु ही दार्शनिक विवेचन की पद्धति प्रकट हुई। बालवार्त्तों के और हिन्दी के अष्टहापी-कवियों के ब्रह्म-सम्बन्धी विचारों की मोटे तौर पर देखने से यह अन्तर देखा जा सकता है कि जहाँ बालवार्त्तों के अनु-चार श्री कृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं, वहाँ हिन्दी के अष्टहापी कवियों ने श्री कृष्ण की साक्षात् परब्रह्म माना है और विष्णु को उन्हीं का वंश माना है।

### जीव-

#### बालवार्त्तों के जीव विषयक विचार-

बालवार मन्तों ने जितने विस्तार से ईश्वर के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं, उतने विस्तार से उन्होंने जीव के विषय में विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। फिर भी उनके कुछ पदों से ईश्वर और जीव के सम्बन्ध जीव-स्वरूप और जीव की शक्ति-सामर्थ्य आदि के विषय में कुछ परिचय अवश्य मिल जाता है। बालवार मन्तों ने जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध वंश और वंशी, शेष-शेषी, शरीर-शरीरी के रूप में माना है। बालवार्त्तों के ये जीव-ब्रह्म सम्बन्धी विचार विशिष्टाद्वैतवादी दर्शन में मिलते हैं। श्री पी० एन० श्री निवाहाचार्य अपने

१- "स्ती चतुर्वक्त्राः पुंसः कृष्णस्तु मगवान् स्वयम्

इन्द्रारि व्याकुलं लोभं पृथयन्ति कुं कुं ।"

-भागवत १।३।२



प्रसिद्ध ग्रन्थ "दि फ़िदासफ़ी बाक विशिष्टाद्वैत" में लिखते हैं - "The truth of Brahman as the Saririn of all beings is clearly intuted by the Alvars."

नम्माल्वार के अनुसार जीव सब भगवान् से उत्पन्न किये गये हैं। वही उनके स्वामी हैं। सभी जीव भगवान् की अपनी संपत्ति हैं। ये जीव भगवान् पर आधारित हैं। वही इन जीवों में वास करता है।

तिरुमल्लिसेई बाल्वार ने जीव और ब्रह्म के बीच कंत और कंतो का सम्बन्ध बताते हुए कहा है- "समुद्र में तरंग उठती हैं और वे उसी में समा जाती हैं। तरंगों का समुद्र से अलग अस्तित्व नहीं है। उसी तरह जीव भी भगवान् से जन्म लेते हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। उनका अलग

१- The Philosophy of Visistadvaita, Prof. P. N. Srinivasachari, Page 246.

२- विहमिन् मुद्रुम वीहु वेणु उम्पुयिर  
वीहुदेवानिडे वीहु वेणुमि । "

- तिरुवाय मोली १-२-१

" नीर नुपतेन्दिर्वै वेर मुद्रु माणु इर  
वेर्मि उयिर्दु वदन नेर निरयिल्ले । "

- तिरुवाय तिरुमोली १-२-२

३- " विण मीतिरुप्पाय । मल्लेन निप्पाय कल्लेप्पाय ।  
मण मीतुत्तवाय । इवर्देवम मीन्तुत्तवाय ।  
रण मीतियन्द पुरवण्टवाय । सतावीठ  
उत्त मीताढी उरुक्काट्टाते वीलिप्पायो ? "

- वही ६-६-६

४- तामुद्रोहि तरंगः स्वचनमुद्रो न तरंगः ।

- वाचार्य ईकर कृतषट्पदी

वस्तित्व नहीं है। जीव भगवान् के ज्ञा- रूप हैं<sup>१</sup>।

नम्माळ्वार ने सभी वस्तुओं में भगवान् के निहित रहने का भाव वही एक फल में प्रकट किया है-<sup>२</sup> "जो जल हम पीते हैं, जो भात हम खाते हैं, जो पान हम खाते हैं, सबमें उसी का समावेश है। धारा जगत् कृष्ण-मय है।"<sup>३</sup>

ज्ञा रूप जीव वस्तु में ज्ञा- रूप ब्रह्म में लीन हो जाता है, सब तत्व को स्पष्ट करते हुए योयी बाल्वार कहते हैं :-

"जिस तरह सरिता सागर की ओर प्रवाहित है, सुप्त सूर्य की किरणों की प्रतीक्षा में है, उसी तरह जीव भी भगवान् में लीन होने के लिए उन्मुख है।"<sup>४</sup> तिरुयी बाल्वार का कहना है कि जिस प्रकार गरम जिये

१- तन्नुल्ले तिरैवुमु तर्गवेण्डळ्ळु  
तन्नुल्ले तिरैवुन्नु वळ्ळुकिन्द तन्मैपोल  
निन्नुल्ले पिरन्तिरन्नु निर्प्पुम तिरिप्पुम  
निन्नुल्लेयळ्ळुकिन्द नीर्म निन कण निन्द्रते ।<sup>५</sup>

- तिरुच्चन्तविरुत्तम, १०

२- "उण्णुम चोरु परुक्कीर तिन्नुम वेदिलैयुमैल्लाम  
कण्णन-<sup>६</sup> ॥"

- तिरुवायमोली ६-७-१

३- "पेरुम करुळले वारु जीण्णु  
उयुम कतिरुने नोप्पुम- उयिरुम  
तलुमैये नोप्पुम जीण तामरियाल केत्वन  
वीरुवनेये नोप्पुम उणार्पु । -"<sup>७</sup>

- मुदल तिरुवन्तादि ६७

हर लोहे पर पानी की बुँदें डालने से, वे स्वयं बाकृष्ट होकर लोहे में विलीन हो जाती हैं, ( और फिर उनका क्या अस्तित्व नहीं रहता ) उसी प्रकार मैं (जीव) भगवान् में लीन हो जाना चाहता हूँ ।

परब्रह्म का ज्ञान- हम जीव इस संसार की माया में फँकर अपने सत्य स्वरूप को विस्मृत कर जाता है। वह जीव अपनी आत्मा में स्थित, किन्तु प्रच्छन्न आनन्दार्ति और ईश्वरीय ऐश्वर्यादि गुणों को भूल जाता है । घट घट में व्याप्त ईश्वर के अन्तर्यामी स्वरूप से वह अनभिज्ञ रहता है । वह यह भी नहीं जानता कि मैं परब्रह्म का ज्ञान हूँ । अविद्या के कारण वह यह ज्ञान नहीं पाता कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए<sup>१</sup> । यदि किसी प्रकार से, ज्ञान के मन्त्र से अथवा भगवान् की कृपा से यह माया-अवनिष्ठा टूट जाती है तो जीव उ फिर अपने आनन्द स्वरूप में आ जाता है।

### हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों के जीव सम्बन्धी विचार-

बाल्यार भक्तों के और बालोव्यालीन हिन्दी कृष्णार्ति -

भक्त-कवियों के जीव सम्बन्धी विचारों में बहुत समानता है। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि भी बाल्यारों की तरह जीव और ईश्वर के बीच ज्ञान-वन्धी सम्बन्ध को मानते हैं । कविवर सुरदास जी का मत है कि ब्रह्म ही अपने चित्त ज्ञान से अनेक जीव रूप में स्थित है। जीव और ईश्वर की वर्तितता का माय सूर ने कई स्थानों पर व्यक्त

१- "हरिम्पनन्दुष्ट नीर पीत रम्पेहमानुष्टु सन तन  
वरुम्पेहमनुष्टु बहिमै पूष्टु उष्टु पीनेन ॥"

- तिरुवृहन्ताण्डकम्, ५

२- "स्वयन्द्रे नल्ल स्वयन्द्रे तीय  
स्वयन्द्रीवि वल्लिनेलुग - स्वयेल्लाम  
रन्नाल वडैप्पु नीक्कोणातु हरैयने  
रन्नाल चैयर्पाळु सन ?"

- पेरिय तिरुवन्तादि ३

किया है। सूर ने जीव को मगवान् की चेतन-शक्ति का ही स्वरूप माना है। एक ही मगवान् की ही चेतन-ज्योति घट-घट में व्याप्त है। सूर कहते हैं कि समस्त तत्व, प्रकृति, पुरुष देवता तथा संपूर्ण जीव गोपाल कृष्ण के अंत हैं<sup>१</sup> स्पष्ट है कि सूर ने ईश्वर और जीव के अंतो-अंत सम्बन्ध का समर्थन किया है।

श्रीकृष्ण का अंत रूप जीव इस संसार की माया में पड़कर अपनी सत्य स्वरूप को भूल जाता है। वह प्रेम और अविवेकता अपनी ईश्वरीय अंत-रूप सत्य रूप को विस्मृत कर इन्द्रिय धर्म आदि को अपनी आत्मा का धर्म समझने लगता है। यही प्रेम उसके दुःख और राग-द्वेष का कारण है। सूरदास कहते हैं-<sup>२</sup> "जीव का दुःख सुख तो तनु के संग होता है। जानी जीव अपने को बलिप्त मानता है। जीव कर्म-बन्धन में पड़कर अनेक शरीर धारण करता है। अजानी उन देहों को देखकर मुलावे में पड़ जाता है। परन्तु जानी शरीर के भेदों को नहीं मानता, सब जीवों को एक ही मानता है। आत्मा तो अजन्मा और अविनाशी है, उसके लिए सब्से बड़ी फांसी अर्हता, ममता ही है।"<sup>३</sup>

१- "सहस रूप बहुरूप पुनि एक रूप पुनि दौय ।"

- सूर सारावली, सूर सानर पृ० ३४ ( पं० प्र० )

२- "सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब बिधि काल ।

प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंत गुपाल ।"

- सूर सारावली, सू० सा० पं० प्र० पृ० ३८

३- जिय करि कर्म, जन्म बहु पावै । फिरत फिरत बहुते प्रम जावै ।

वरुं कजई न कर्म परिहरे । जातैं याकौं फिरिबौ टरे ।

तन स्थूल वरुं दूबर होई । परमात्म कौं ये नहिं दोइ ।

तनु मिथ्या, इन- भंगुर जानी । चेतन जीव, सदा धिर मानी ॥

जिय कौं सुख-दुख तन संग होइ । बौं बिचरै तन के संग सोई ।

देह भिमानी जीवहिं जानै । जानी तन बलिप्त करि मानै ॥

००

००

००

००

जीव कर्म करि बहु तन पावै । अजानी तिहिं देखि मुलावै ।

जानी सदा एक ही जानै । तन के भेद भेद नहिं मानै ।

आत्म अजन्म सदा अविनाशी । ताकौं देह-मोह बहु फांसी ॥

- सूर सानर ५१४ पद सं० ४११ पृ० १५३ - १५४

सूर कहते हैं—“ ईश्वर के जल रूप जीव का स्वरूप पवि-  
मौक्तिक शरीर नहीं है। ईश्वर के समान ही यह जीव नित्य है और जन्म मरण के  
बन्धन में नहीं पड़ता है। जीव चेतन है, वह प्रत्येक घट में है। घट उत्पन्न होते हैं  
और फिर नष्ट हो जाते हैं। किन्तु चेतन जीव नित्य रहता है, जिस प्रकार प्रत्येक  
घट में सूर्य का प्रकाश रहता है, परन्तु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नहीं  
होता, वह नित्य ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न जल रूप जो है, वही सब घटों  
में एक रूप से स्थित है। जो वात्मा इन्द्रियों को चेतन करती है, वह ईश्वर का ही  
रूप है।<sup>१</sup>

नन्ददास ने जीव को ब्रह्म के जल रूप में मानकर एक पद ~~क~~  
में कहा है —“ व्यक्त अव्यक्त जो अनुपम विश्व है, उसमें के सब भूतों के तुम विस्तार  
हो। तुम सब के परमेश्वर और स्वामी हो। समस्त विश्व तुम्हारे हाथ है। तुमसे  
हम सब उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं।  
मैं तुम्हारा दास हूँ। मेरा जन्म तुम से है<sup>२</sup>। ”

१- (क) चेतन घट- घट है या माड। ज्यों घट- घट रवि प्रातः सदाह।

घट उफै, बहुरी नहि जाड। रवि नित रहै लखीं माड ॥

- सूर सागर, पद सं० ३६४ पृ० १३४

(ख) अभिद जल रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।

मिथ्या तन की मोह विस्तार। जाहु रही मायै गृह- बार।

करत इन्द्रनि चेतन जोड। मम स्वरूप जानी तुम सोड।

- सूर सागर, पद सं० ३६४ पृ० १३२

२- (क) व्यक्त अव्यक्त तु विश्व अनुपम, वेद ब्रह्म प्रभु तुम्हारी रूप।

तुम सब भूतनि की विस्तार, देह प्राण इन्द्री बहंकार ॥

- नन्ददास, दशम स्कन्ध, पृ० २४९

(ख) तुम परमेश्वर सबके नाथ, विश्व समस्त तिहारे हाथ।

तुम तैं हम सब उपजत सैं, अग्नि तैं बिस्फुलिंग मन जैं ॥

- नन्ददास, दशम स्कन्ध पृ० २०८

(ग) अब कहत कि हौं तुम्हारी बेरी, तुमते प्राट जनम यह बेरी ॥

- नन्ददास, दशम स्कन्ध, पृ० २६३



परमानन्ददास भी ईश्वर-जीव की अतितता और उनका  
 केशी- केश सम्बन्ध मानते हैं। वे कहते हैं -“ लोगों ने अपने केशी गोपाल की  
 स्मृति भुला दी और उन्होंने संसार को ही सत्य मान लिया है। जो योगी हैं  
 वे योगान्यास करें, ज्ञानी ज्ञान करें, कर्ममार्गी कर्म में लगे, किन्तु हमारा व्रत तो  
 अपने गोपाल का गुणगान करने का है।”<sup>१</sup> इससे ईश्वर- जीव की अतितता और उनके  
 केशी- केश सम्बन्ध का भाव प्रकट होता है।

एक स्थान पर मीराबाई ने भी जीव और ईश्वर की अतितता  
 स्वीकार कर कहा है-

“ तुम बिब हम बिब अंतर बाहीं जैसे धुरज धामा । ”<sup>२</sup>

मीरा ने आत्म समर्पण और आत्म विस्मृति के द्वारा अपने  
 इष्ट की सहानुभूति को आत्मन्त्रित करते हुए उस अज्ञात तक पहुँचने का प्रयत्न किया  
 है। मीरा के केश पदों में जीव की परमात्मा से मिलने की तीव्र आकांक्षा प्रकट  
 होती है :-

प्रभु जी ये कहाँ गया नेहडा लगाय ।

००                      ००                      ००

मीरा रे प्रभु कबरे मिलोमे ये बिण रह्या ण जाय । ”<sup>३</sup>

१- माई हँ अपने गुपालहिं गाऊँ ।

सुन्दर त्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊँ ॥

जे ग्यानी ते ग्यान बिचारी जे जोगी ते जोग ।

करमठ होई ते करम बिचारी जे भोगी ते भोग ।

००                      ००                      ००

अपनी केश की मुक्ति राजी है मांगि लियौ संसार ।

परमानंद गोकुल मथुरा में बन्यौ न यहँ बिचार ॥

- परमानन्द सागर , पद सं० ६०५ पृ० ३१८

२- मीराबाई की पदावली पद सं० ११४ सं० परशुराम चतुर्वेदी, नवाँ संस्करण

३- मीराबाई की पदावली पद सं० ६४

जगत्-

बालवार्त्तों के जगत् विषयक विचार-

बालवार्त्त मन्त्रों ने अपनी रचनाओं में इस बात को स्पष्ट सङ्गों में व्यक्त किया है कि यह जगत्, जीव तथा संपूर्ण देवगण परब्रह्म के ही वंश हैं। उनके अनेक पदों में परब्रह्म के वंश- रूप जगत् की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से कहा गया है। नम्पालवार्त्त कहते हैं-<sup>१</sup> "समस्त देवता, समस्त जीव, संपूर्ण जगत्, वायु, वाष्पवादि को अपनी वंश रूप में रखने वाले ब्रह्म से बढ़कर और कौन सा देव हो सकता है ?" अन्य नम्पालवार्त्त कहते हैं :-<sup>२</sup> "हे, भगवान् समस्त जगत्, वायु वादि को वंश रूप में रखने वाले महान् से महान् तुमने कैसे भरे वन्तःकरण में बास कर लिया।"

१- " यावक्युक्तमुप यावरुम कप्पट  
निलम नीर ती काल चुडरिरु विवुम्बुम  
मलर चुडर पिरुवुम विरितुडन पय्य  
वोरु पोरुल पुरप्पडिन्दी मुलवतुम  
कप्पट करन्तु वोरालिल वेन्तं एम  
पेरुमानियत्ताडु वोरु मादेव्वम  
मृदुहयवोयामे ?"

- तिरुवाचिरियम पद ७

२- " मुवियुम वरु विवुम्बुम निन्नल वीयौ  
वेवियिवलि मुन्नु रन्नुत्ताय- वविन्दी  
यान पेरिय नी पेरिय रन्फनेयाररिवार ?"

- पेरिय तिरुवन्तादि , ७५

कई स्थानों पर बालवार पर्वतों ने ईश्वर को ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण कहा है। नम्पालवार कहते हैं—“सबसे पहले (जति प्राचीन काल में) कोई जगत् नहीं था, न कहीं जीव था। केवल ब्रह्म ही था। ब्रह्म को अपनी सीमा के विस्तार की इच्छा हुई। तब उसने ब्रह्मा की उत्पत्ति की। (विष्णु ब्रह्म के नामि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ।) ब्रह्मा ने अन्य देवी, तीनों लोक (जगत्) आदि की सृष्टि की।” तिरुमल्लिषै बालवार ने भी यही कहा है कि ब्रह्म ने सृष्टि-विकास की इच्छा से ब्रह्मा की उत्पत्ति की, जिसने ब्रह्म के आदेश पर समस्त जगत्, देव आदि की सृष्टि की। ब्रह्म और जगत् की वैतता को स्पष्ट करते हुए तिरुमल्लिषै बालवार ने कहा है—  
 “तुम्हीं जगत् हो, जगत् तुम्हीं में है। तुम्हीं देवी के अधिपति हो, तुम्हीं वायु, अग्नि, दिशा आदि हो।”

१-“यावकैकुलमुम यावरुमिल्ला

मेत्वरुम पेरुम्पाल कालु इरुम्पोस्ट

केल्लाम वरुम्पेरु तनि विरु वोरुता

नाकी देव नान्मुल्लु कोटु मुलै

इन्दु मुक्कणीचनोडु तेवुपलनुतली

मुवलकम विलैव उन्ती

मायकडवुल मामुदलडिये।” - तिरुवाचिरियम् ४

२-“नान्मुल्ले नारायणन् पंडवान- नान्मुल्लुम

तान मुलमाय चैरैतान पंडवान - ---”

- नान्मुल्ले तिरुवन्तादि, १

३-“नीये उल्लेत्ताम निन्नरुले निर्पेनुम

नीये तवदेवदेवनुम - नीये

एरिचुडरुम पाल वरैयुम एण दिशैयुम वण्डु

वरुचुडरुमाय इवै।”

- वही, २०

नम्मात्वार कहते हैं - " ब्रह्म ही इस जगत् का सृजन, इसका पालन और संभार करते हैं। " योंही बालवार का कहना है कि ब्रह्म जगत् की रक्षा इस प्रकार करता है, मानों कोई वस्तु पेटी के अन्दर सुरक्षित हो। नम्मात्वार ने एक पद में जगत् और ब्रह्म की अद्वैतता को बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि भगवान् ने अपने अन्दर ही इस विशाल जगत् की सृष्टि की, जिस कारण उस परमज्योति की आभा समस्त जगत् में व्याप्त है। एक अन्य स्थल पर नम्मात्वार कहते हैं - " हे, भगवान् ! तुम्हीं इस जगत् का आधार हो, तुम्हीं जगत् हो, जगत् के प्राण तुम्हीं हो। "

१- " पौष्टुमुल्लुम पंडित तिव तिवकुम

पौरुन्तु मूरुवन रम्परुवन । "

- तिरुवायमोली ८-४-२

२- " पुनमेय मुमियन्ने - तनमाक

पेरुल्लुत्तोडुवकुम पेरारमावन्नार

वोरुल्लुत्तु उल्लु । "

- मुन्द्राम तिरुवन्तादि, ४३

३- " परंज्योति नी परमाय निन्निलुन्तु पि मदीर

परंज्योतिथिन्नेयि पडियोवि निरुकिन्द

परंज्योति निन्तुले पडरुल्लुम पंडित रम

परंज्योति । गोविन्दा ! पण्पुल्लुमोटेने । "

- तिरुवायमोली , ३-२-३

४- " उल्लिल तिरुयुम करुमक तियाय उल्लुवाय

उल्लुले वोरुविहमानाय । ----- "

- तिरुवायमोली ४-६-७

जगत् सम्बन्धी बातुबारों के विचारों से यह विदित होता है कि उन्होंने जगत् को सत्य और नित्य माना है।<sup>१</sup> चूंकि जगत् सत्य और नित्य ब्रह्म का वंश है, अतः वह भी सत्य और नित्य है।<sup>२</sup>

बातुबार मन्त्रों ने जहाँ इस जीवन को अनित्य तथा माया से युक्त कहा है, वहाँ उनका अभिप्रायः जगत् से नहीं संसार से है। बातुबार मन्त्रों ने जगत् और संसार का शास्त्रीयद्वय से कोई भेद नहीं किया है, जैसे कि सुर वादि हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों ने जगत् और संसार का भेद स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। परन्तु उनके विचारों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जगत् और संसार का भेद अवश्य माना है। जहाँ वे जगत् को ब्रह्म का वंश मानते हैं, वहाँ उनका अभिप्राय नित्य और सत्य जगत् ही है और जहाँ वे अनित्य माया-प्रभावित जगत् का वर्णन करते हैं, वहाँ उनका तात्पर्य संसार से ही है। संसार की अस्थिरता और नश्वरता का कवियों ने वर्णन किया है। अज्ञान के कारण माया के वश होकर संसार को जीव नित्य मानता है और उसे ही आनन्द निकेत मान लेता है। वह भ्रम में पड़ा रहता है। नन्हालवार कहते हैं—“हाय ! मैं क्या करूँ इस संसार की ‘गति’ के विषय में। जगत् के सृष्टा एक मात्र भावान् के होते हुए भी, उसका स्मरण न करके लोग अपने कल्प ज्ञान ( अज्ञान ) से हत्या, बत्याचार आदि कुर कृत्य कर सर्वदा सुख-दुःख की चिन्ता लिये माया के वश में होकर भ्रम में पड़े रहते हैं।”

१- "The Philosophy of Satagopa", R. Ramanujachari,  
— Annamalai University Journal, 1933, page 20.

२- स्मरण रहे कि बातुबारों जगत् को सत्य और नित्य माना है, जबकि श्री शंकराचार्य ने जगत् को मिथ्या कहा है। (जगन्मिथ्या) शंकर के मायावाद का खंडन करने वाले परवर्ती सभी आचार्यों ने बातुबारों के उपर्युक्त विचार का ही समर्थन किया है।

३- “ओ जी । उत्तमिनित्यत्वे । इन्दोलिहवक

मर्णनीराट्टी फंडिडन्तु उण्डुमिन्नु

ततन्तु तेन्तु उत्तलिक्कुम मुदपैरुफंटवुत

निर्ण फुंप्पतानरी देवम पेणुतल वनातु ..।”

पलमा मानन्कुल्ल मानन्कुली ....  
- तिरुवाचिरिय, ६



कृतोत्तरात्वार करते हैं - " इस मिथ्यापूर्ण सांसारिक जीवन को शाश्वत और सत्य मानकर इस संसार में तीन रहने वाले लोगों से मैं संगति नहीं करूँगा । " तौंडरडिपीडी वात्सवार का कथन है - " सत्य को मूल कर ( मायावश ) नारी के मोह-जाल में पड़कर मिथ्यापूर्ण इस संसार को सत्य मानकर मैं समय गँवा दिया । मेरे स्वामी ! अब केवल वह बापे वनग्रह की जाला रखकर जाके पास जाया है । मैं फूँटा हूँ । मैं फूँटा हूँ । " तिरु-मल्लि वात्सवार ने कहा है - " यह संसार अनित्य है। यहाँ कोई वास्तविक सुख नहीं है। मायावश <sup>जीव</sup> इस सांसारिक सुख को स्थायी सुख समझ बैठता है। यह जानकर भी कि ज्ञान नहीं तो कल इस संसार को अवश्य छोड़ना ही पड़ेगा, मूल मनुष्य वहाँ इस देह के मोह में फँदे रहते हैं ? " तिरुमी वात्सवार ने इस संसार के माया-मोह से अपने को बचाने का वादेश दिया है।

१- " मेय्यल वात्सकैये मेय्यलकोत्तुम इव  
वैयन्तन्नोदुम कूहवतिल्लै यान । "

- पेरुमाल तिरुमोली ३ : १

२- मेय्यल्लाम पोक्किट्टु विरिक्कुल्लारिलपट्टु  
पोय्यल्लाम पोत्तिन्दु कोण्ट पोत्तुक्केन वन्दु निन्दे  
रेय्ये । बरंगे । उन्नरुत्तुमेन्नुमारे तन्नाल  
पोय्यमेन वन्दु निन्देन पोय्यमेन पोय्यमेन । "

- तिरुमाले , ३३

३- इन्दु चादल निन्दु चादल वन्दियारुम वैय्यु  
वौन्दी निन्दु वात्तल्लिन्म कप्पुम नीवर ल कोलो ?  
वन्दु पारुत्तान पादपोदियौन्दी वानिन् मे  
वैन्दु वैन्दु देवराय इरुविकलाय वण्णमे ? "

- तिरुच्चन्तविरुत्तम ६६

वालीच्यकासीन हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों में सूर वादि<sup>१</sup> ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह जगत्, जीव, संपूर्ण देव वादि सोपाल के वंश हैं। सूर के अनुसार इस जगत् का सर्वत्र, इसका पालन और संहार ईश्वर ही करते हैं। वे कहते हैं कि यह जगत् उनसे इस प्रकार निकला है और इस प्रकार उन्हीं में समा जायगा जैसे पानी का बुलबुला पानी से ही बनता है और पानी में विलीन हो जाता है।<sup>२</sup> “  
इस प्रकार अनेक पदों में सूरदास जी ने ब्रह्म के वंश रूप जगत् की सत्यता का प्रतिपादन किया है। कई स्थानों पर उन्होंने ईश्वर को इस जगत् का निमित्त तथा उपादन कारण बताया है।<sup>३</sup>

सूर ने जगत् और संसार में भेद दिखाया है। जहाँ वे जगत् को सत्य और नित्य मानते हैं, वहाँ सब वे संसार को मिथ्या मानते हैं। सूर ने कहा है :-

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।

मिथ्या है यह देह कही बयौं हरि विहराया ।

तुम जाने किन जीव सब उत्पति प्रलय समाहिं ।

हरण मोहि प्रभु राखिये चरण कमल की झाँहिं । “ ४

१- सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काज,

प्रकृति पुरुष भी पति नारायण, सब हैं वंश गुपाल ।

- सूरसागर, सूर सारावली वै० प्र० पृ० ३८

२- प्रभु तुव मरुं समुक्ति नहिं परी ।

जग सिखत पातत संसारत, पुनि बयौं बहुरि करी ॥

ज्यों पानी में होत बुलबुला, पुनि ता माहिं समाइ ।

त्यौंही सब जग प्राटत तुम तैं पुनि तुम माहिं बिलाइ ॥

- सूरसागर ( ना० प्र० सभा ) पद सं० ४६२० पृ० १७१३

३- धर्म पुत्र तू देखि विचार, कारन करन हार करतार ।

- सूर सागर प्रथम स्कन्ध वै० प्र० पृ० २१

४- सूरसागर , दशम स्कन्ध वै० प्र० पृ० १५८

फूँटा संसार मन और माया की करतूत है। एक पद में सुरदास जी कहते हैं - " हे माधव । मेरा मन सब प्रकार से पीन है। यह ज्ञानी मन बविषा-बन्धकार में पड़कर लोक प्रकार के विषय कृत्य करता है। उसके ये मायिक कृत्य ऊपर से बड़े रमणीय सेंवर के फूल के समान सुन्दर और रंगीले जाते होते हैं, परन्तु वस्तुतः ~~बन्धु~~ हैं वे सारहीन और दुःखायी । यह मन दुःख-रूप में गिरता है । इसकी " करतूत " का कहां तक बखान कई । हे प्रभु । तब ही इसका उद्धार कर सकते हैं । "

नन्ददास ने भी ब्रह्म और जगत् की वैतता को मानते हुए ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण बताया है। वे कहते हैं - " जो ब्रह्म ज्योतिर्मय और जगन्मय है, वही बीज रूप से जगत् का उपादान कारण है और वही उसका करने वाला निमित्त है। " दशम स्कन्ध भाषणा " में नन्ददास कहते हैं - " इस जगत् का आधार ब्रह्म की सत्ता तत्त्वा सत् रूप है, जब यह जगत्

१- माघौ ब्रू, मन सबही विधि पीन ।

बति उनम, निरक्ष, मैल, चिन्ता- रहित, असोच ।

महामूढ़ ब्रजान तिमिर मई, मान होत सुल मानि ।

तेही के वृण लौं नित भरमत, भवत न सारंगपानि ।

०

०

०

ज्यों कपि सीत- हरन- शित गुंजा सिमिट होत लौलीन ।

त्यौं सठ वृथा तजन नहिं कबहुं, रहत विणय- बाघीन ।

सैपर फूल सुरंग बति निरक्त, मुदित होत ला- भुप ।

परत बौंच तूल उधरत मुल, परत दुःख के रूप ।

०

०

०

और कहां लौं कहौं एक मुल, या मन के कृत काज ।

सुर पतित तुम पतित- उधारन , गहौ निरद की लाज ॥

- सुरदासर, ना० प्र० सभा , पद सं० १०२ पृ० ३३

ब्रह्म की माया में लीन हो जाया उस समय केवल एक ब्रह्म ही रह जाया।<sup>१</sup>

नन्ददास ने जगत् और संसार में भेद माना है। संसार मिथ्या है और अनित्य है। उन्होंने "सिद्धान्त पञ्चाध्यायी" में संसार को कहाने वाली धारा तथा प्राण धौटने वाला कन्दो<sup>२</sup> कहा है।

बालवार्त्तों के उपरान्त जगत् और संसार में स्पष्ट विभेद वत्सम-संप्रदाय के कवियों ने ही दिया है। अन्य संप्रदाय के कवियों में यह भेद स्पष्ट नहीं मिलता। साधारणतः भ्रम की भाँति सभी ने जगत् और संसार को पर्यायवाची माना है और उसकी नश्वरता, क्षारता और मिथ्यातत्व का वर्णन किया है। राधावल्लभीय-संप्रदाय के कवि हरि राम कयास ने लिखा है :-

एक फरे सब जग हूट्यो ।

माया रचित प्रपञ्च कूटुम्ब की मोह बाल सब हूट्यो ।<sup>३</sup>

स्वामी हरिदास लिखते हैं :-

हरि की ऐसी ही सब डेल ।

मृग वृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहुँ किजौरो न डेल ।

धनमद जोबनमद राजमद ज्यों पंखिन में डेल ।

कह हरिदास यह बिय जानी तीरथ को राँ डेल ।<sup>४</sup>

१- नन्ददास ग्रन्थावली, "दशम स्कन्ध भाषा" ना० प्र० समा

२- कृ गे जात संसार धार बिय फन्दे फन्दन,

परम तरुन करुना करि प्रकटे श्रीनन्दननन्दन ।

- सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, नन्ददास, कुवल, पृ० १५६

३- व्यास वाणी, उत्तरार्द्ध पृ० ५३१

४- निम्बार्क माधुरी पृ० २०४

### माया-

#### वास्तवार्थों के माया-विषयक विचार-

वास्तवार्थ मन्त्रों ने दो प्रकार की माया की चर्चा की है। एक भगवान् की शक्ति स्वरूपा माया है। भगवान् की यही माया सृष्टि (जगत्) का कारण है। एक दूसरी माया है, जिसके अधीन जीव हैं। भगवान् उस माया के अधीन नहीं हैं, जो माया मनुष्य को अपनी वश में कर लेती है। उस माया से जीव संसार में बँधता है। यह भगवान् की माया से भिन्न है। वास्तवार्थ मन्त्रों ने माया के इन दोनों पक्षों के जलग जलग नाम नहीं दिये हैं। परन्तु परवर्ती वाचार्थों ने ( वल्गुम जैसे ) इन्हीं को विषयक माया और अविषय माया की संज्ञा दी है। वास्तवार्थ मन्त्रों ने कुछ पदों में विशेष रूप से सृष्टि विकास के प्रसंगों में भगवान् की शक्ति रूपा माया का उल्लेख किया है। अधिकृत वास्तवार्थों ने भगवान् को अनेक स्थानों पर "मायन्," क्वात् "माया मय" कहकर मन्त्रित-भाव से पुकारा है।

नम्मास्तवार्थ कहते हैं - " जब कोई जगत् नहीं था, कोई जीव नहीं था, केवल ब्रह्म ही था, तब ब्रह्म ने अपनी शक्ति स्वरूपा माया से प्रेरित होकर सृष्टि विकास के हेतु पहले ब्रह्मा की उत्पत्ति की, जिसने समस्त जगत् और जीव की सृष्टि ब्रह्म के आदेश पर की। वही "माया युक्त" वादि देव ही भो स्वामी है। "

१- " यावकैयुक्तमुम यावरुमिल्ला

मेत्वरुम पेरुम्पात्तु कालत्तु वरुम्पोरुद्

केल्लाम वरुम पेत्त तनि विटु वोरुत्ता

नाकी देव्व नान्मुक्तोत्तुमुत्तै

इन्दु मुक्कणीचनोहु देवुपत्तुत्तली

मूत्तकम विस्सि उन्ती

मायककळुत्त मायुत्तळिये । "

- तिरुवाचिरियम , ४



तिरुमल्लि बाल्वार कहते हैं- हे भगवान् ! तुम जादि देव के रूप में, ज्योति रूप में, उसके तम्य रूप में वेद रूप में, वाकाश के साथ पूर्वी के रूप में, गोपालक के रूप में, न जाने कितने रूपों में तुम दृष्टिगोचर होते हो । यह कैसी है, तुम्हारी माया ? — गोपालक के रूप में, गोपियों के प्रेमी के रूप में, देव और मनुष्य के रूप में तुम जाये हो । हे माया सुमत ! तुमने सर्वत्र अपनी माया को ही दर्शाया है<sup>१</sup> । तिरुमल्लि बाल्वार बन्धन कहते हैं -<sup>२</sup> हे भगवान् तुम पूर्वी में हो, वाकाश में हो, हमारी चिन्तन-शक्ति की फाड़ में नहीं जाते हो । तुम्हारी यह कैसी माया है ?<sup>३</sup>

१-<sup>१</sup> वादियादि नी औरण्मादियात्तल

ज्योतियाद ज्योति नी वतुण्मयित विरुक्किनाय

वेदमाफी वेळ्वियाफी विण्णानोहु मण्णुमाय

वादियाफी वाक्काय मायम एन्न मायम ?<sup>१</sup>

- तिरुच्चन्तविरुत्तम , ३४

२-<sup>२</sup> वाक्काफी वायर्मीविय तौल विरुम्पिनाय

वाया । निन्नेयावर वल्लर ? वीवरुओहु इम्परमाय

माया । मायमायि कोल ? वतन्दी नी वकृत्तुम

माया मायमाक्किनाय उन मायमुद्दम मायम ।<sup>२</sup>

- तिरुच्चन्त विरुत्तम , ४९

३-<sup>३</sup> मण्णुत्ताय कोल ? विण्णुत्ताय कोल ? मण्णुत्तैमयी निन्दु

एण्णुमेण्णक्कण्डाय कोल । एन्न मायम ?<sup>३</sup>

- तिरुच्चन्तविरुत्तम , ४५

नम्माळ्वार कहते हैं-“ हे तीनों लोकों को मापने वाले भगवान् । तुम्हारी विचित्र माया शक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न मैं तुम्हीं से अपने पाप-दोषों को दूर कर शरण में लेने की प्रार्थना करता हूँ । ” सुख-दुःखपूर्ण संसार, बलैकपूर्ण नरक, आनन्दपूर्ण स्वर्ग, नाना जीव आदि विविध दृष्टि रचकर खेल ही तुम दिखाते हो । तुम्हारी माया विचित्र है । ”

बाल्वार भक्तों ने जिस दूसरी माया की चर्चा की है, वह जीव को भ्रम में डालने वाली है। यही माया जीव को लौकिक विषयों में फँसा कर उसको ज्ञान में डालती है। व्यामीह द्वारा जीव शोक, मोह, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि भावों की संसृति में भ्रमता है। इसी माया को श्री बल्लभाचार्य जी ने बविषा माया कहा है और उसको अनेक नाम दिये हैं, जैसे ज्ञान, ज्ञेयास, भ्रम, स्वप्न आदि । बाल्वार भक्तों ने इस बविषा कपिणी माया का बहुत विमर्श किया है। यही माया जीव को अनेक नाव नचाती है और उस जीव से भ्रमपूर्ण संसार की दृष्टि कराकर अनेक दुःख-बाल में उसे बंधी रखती है । नम्माळ्वार कहते हैं -“ ज्ञान के कारण मैं समझ बैठा था कि सब कुछ मैं हूँ, सब कुछ मेरा ही है । मैं अपने वास्तविक स्वरूप को भी भूल गया था । ” जड़ता ममतात्मक संसार

१-“ वन्मावैकल्यन्तरम्भामना । निन  
पन्मायाय पत्तिपरविक्लि पडिक्किन्दु यान  
तोन्मावल विनेवोडकैल मुदलरिन्दु  
निन्माताल वेन्नु निर्णु सुवान्दु कोलो ? ”

- तिरुवायमोली १, २-२

२-“ तुन्पुमुन इन्पुमा किय वैडविनेयाय उतर्कलुमाय  
इन्पुमि वैन्मरुकी इनिय नत्वान स्वर्कलुमाय  
मन पल्लुयिरुलुमाय पल पल मायमयवकुलाल  
इन्पुहम इव्विलैयाट्टे अडियाने पेद् एतुम वल्लिलिने । ”

- तिरुवायमोली , ३-१०-७

३-“ याने एन्ने वरियकिलाते  
याने स तनते एन्दिहन्नेन । ”

- तिरुवायमोली २-६-६

की सृष्टि करनेवाली माया का वर्णन जैसा कि नम्माळ्वार ने किया है, अन्य बाल्वार भक्तों ने भी किया है। इस माया को उन्होंने सत्य को भुलाने वाली, मिस्रिया में मोह उत्पन्न करने वाली बताया है। इस माया के अनेक रूप हैं, जैसे मन की मूढ़ता, तृष्णा, ममता मोह, जहँकार, काम-क्रोध, लोभ तथा अनेक मानसिक विकार। इस माया के विभिन्न कृत्यों का बाल्वारों ने वर्णन किया है और कहा है कि जनन्य भक्ति जैसा भगवदनुग्रह से ही इस माया से जीव छुट सकता है। वैराग्यपूर्ण जीवन से भी इस माया के फन्दे से कोई बच सकता है।

नम्माळ्वार कहते हैं - " क्या कहूँ, माया जन्य इस संसार के विषय में। समस्त जगत् की सृष्टि कर उसका पालन करने वाले सर्वशक्तिमान् भगवान् का स्मरण नहीं कर, जीव अपने अल्पज्ञान ( अज्ञान ) के कारण हत्या, बत्याचार आदि कृत्य कर, सुख-दुःख की चिन्ता लिये माया के कल होकर माया में ही भटकते फिरते हैं। "

१- " जी जी । उल्लसितियत्वे । ———

देवम पेणुल्ल त्नात्तु  
पुल्लरिवाणै पोरुन्त्तकाट्टी  
कोत्तन मुदला अल्लनमुय्युम  
अय्यैयै इन्पुन्क्की  
तोत्त मामायप्पिरविकुल नीका  
पल्मानायकुत्तुमानत्तिन्तै । "

- तिरुवाचिरियम, ६

तिरुमी वात्तवार का कथन है-<sup>१</sup> माता-पिता ,  
पत्नी सन्तान आदि के मोह-पाश में पड़कर मैं ने कष्ट भोगा है। पुनर्जनियों  
के मोह-पाश में पड़कर मैं ने संसार में ही नरक पहुँचाने योग्य नाना पाप-कर्म  
किये हैं<sup>२</sup>। मायाजन्य इस संसार में मैं लक्ष्मीन भटकता रहा। सज्जनों से कोई  
हितवचन बोल नहीं सका। अज्ञान में पड़े मैंने बालक के रूप में कई निन्दनीय कार्य  
किये हैं<sup>३</sup>। अब मेरे लिये कोई सहारा नहीं है। पाप ही पाप करके मैं महापापी  
बन गया। हे मायामय माध्व ! तुम्ही मुझे अपनी शरण में ले लो।<sup>४</sup> तिरुमी  
वात्तवार जागे उपदेश देते हैं - <sup>५</sup> " संसार के प्रति पाश ( जो नाश पहुँचाने वाला  
मोह है ) छोड़कर भगवान् की मूर्ति में लीन हो जाओ । "

१- " ताय तन्तैयन्दुम तारमे किं मन्केन्दुम  
नोये प्पटोत्तिन्तेन ----- । "

- पेरिय तिरुमोली , १-६-१

२- " मानिय कम्मव्वार मयव्विल प्पट्टु मानिल्लु  
नाने नानविध नरक्कम्, पुळुम पावम् वैश्तेने ।। "

- वही १-६-२

३- " प्पेल्ल वीन्दुमिलेन पावमे वैश्तु पावियानेन  
प्पेल्लोन्दुरियेन पाय्के । संल माध्वने । "

४- " वन्देन वन्देन्तेन वडिये वाट्कोण्टरुत्ताये ।

- वही १-६-६

५- " नाशमान पाशम् विट्टु नलेरि नोक्कुल्लिल  
वात्तम्पल्कु तुत्तायान बदरी वणक्कुल्लुमे । "

- वही १-३-८

नम्माळ्वार कहते हैं-“ विचित्र है इस मायाजन्य संसार की हासत । बुरे लोग सुख भोगते हैं और अच्छे लोग दुःख भोगते हैं और यह संसार उन्हीं की नाना कष्ट पहुँचाता है। ” वायोद- प्रयोद को, धन को, स्त्री-सुख को, जीवन को नाशवान् देकर भी यह सार्सारिक जीव मोहवश कुछ समझ नहीं पाता । ” इस प्रकार जन्य जालवार मन्त्रों ने भी वविषा रूपिणी माया का जो जीव को प्रमत्तपूर्ण संसार की दृष्टि कराकर बनेक दुःख-वास में बधि रहती है, बहुत चित्रण किया है।

बालीय्यालीन हिन्दी कृष्ण-मन्त्र कवियों ने माया के विषय जो विचार प्रकट किये हैं, वे जालवारों के विचारों से बहुत मिलते-जुलते हैं। सुरदास, नन्ददास आदि ब्रह्मवादी कवियों ने बाचायें बल्लभ के अनुसार माया के दो भेद, - विषा और वविषा-माने हैं । विषा माया ब्रह्म की वस्तुतिनी सर्व शक्ति है । उसके द्वारा ब्रह्म समस्त जगत् का निर्माण करता है। वविषा माया जीव को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के द्वारा बन्धीभूत कर उसे पद-भ्रष्ट करने वाली है । सुरदास और नन्ददास ने माया के दोनों रूपों का चित्रण किया है। विषा माया के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सुर कहते हैं :-

बहुरि जब हरि की इच्छा होय ।

देखै माया के दिशि जाय ।

माया सब तबही उपाय ।

ब्रह्मा सो पुनि दृष्टि उपाय ।

१-“ वण्णातार मुरुवलिप्प नल्लुद्दार कौन्तेक

रण्णराधुय विल्लुक्कुम ज्जियेन्न उलकिर्ये ?

- तिरुवायमोली ४-६-१

२-“ कोण्टाट्टुम कूलम् पुनैवुम तमरुद्दार विलुनितियुम

वण्डार पुल्लुत्तालुम पनैयोलिय मात्तल

कण्टादेन उलकिर्ये कडल वण्णा । ”

- तिरुवायमोली, ४-६-३



नन्ददास विद्या का वर्णन इस प्रकार करते हैं :-

सौ माया बिनके अधीन रहत मृगी जस ।

विश्व प्रभाव प्रतिपाल प्रत्यकारक वायुस कस ।

अविद्या माया का वर्णन हिन्दी भक्त-कवियों ने विस्तार से किया है। यही माया जीव को भ्रम जाल में बंधी रखती है। उसका बाह्य स्वरूप वाकर्णिक है। परन्तु आन्तरिक रूप असत्य है। उसकी सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह जीव को अपने पास में जकड़ लेती है, जिससे छूटना अत्यन्त कठिन हो जाता है। केवल भगवान् की कृपा से ही उसका प्रभाव छूट सकता है। सुर ने इस माया का वर्णन निम्न-लिखित पद में सुन्दर ढंग से किया है :-

बिनती सुनो दीन की चित दे, कैसें तुम गुन गावै ?

माया नटी लहूटि कर लीन्है कोटिक नाच नवावै ।

दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वांग बनावै ।

तुम सौ कष्ट करावति प्रभु प्र, भरी बुधि भ्रमावै ।

मन बखिलाज-तरंगनि करि करि, मिथ्या निश जगावै ।

सोवत सपने में ज्यों संपति, त्यों दिताइ बौरावै ।

महा मोहिनी मोहि बातमा, अपमानहिं लगावै ।

ज्यों दूती पर-बधू मोरि कै, सै पर-पुरुष दितावै ।

भरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ?

सुरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुःख भिरावै ।<sup>१</sup>

सुर ने इस माया को त्रिगुणात्मिका कहा है-

माया को त्रिगुणात्मक जानौ । सत-रज-तम ताके गुन मानौ ।

तिन प्रथमहिं महतत्व उपायौ । तातैं बहंकार प्रगटायौ ।

बहंकार कियौ तिन प्रकार । सत सैं मन सुर सात रुचार ।

रजगुन सैं इन्द्रिय विस्तारी । तमगुन सैं तन्मात्रा चारी ।

तिनहीं फँसतत्व उपमायाँ । इन सबको एक ढँढ बनायाँ ।

० ० ० ०

यह ढँढा चेतन नहीं होइ । करहु कृपा सो चेतन होइ ।

तामैं सचित जाफो धरी । चञ्चूवादि हन्दीय विस्तरी ।

चाँदह लोक मये ता माहिं । ----- ज्ञुयादि । " १

वल्गुम संप्रदाय के कवियों के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के कवियों ने भी माया के विषय में ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं । निम्बार्क-संप्रदाय के हरिव्यास जी कहते हैं - " माया त्रिगुण प्रपञ्च फन की बाँध व बाँधे तास<sup>२</sup> । " राधावल्लभ संप्रदाय के कवि श्री हरिराम व्यास ने लिखा है -

१- " माया रचित प्रपञ्च कूटुम्बी मोह जात सब छूट्यो ।

२- " जीवत मरै न माया छूटे काल कर्म मुँह छूटे ।

पुत्र कलत्र सजन सुल देता फितर मृत सब छूटे ।

कबहुँ रूँ राजा कबहुँ है विर्जे विकार न छूटे ।

साधु न सुँ गुन नहि सुँ हरि जस रस नहि छूटे ।

व्यास जास घर घाले जग को दुःख सागर नहि फूटे । " ३

स्वामी हरिदास जी का माया के विषय में कहना है-

" तुमरी माया बाजी फसारी विचित्र मोहै मुनि मुनि करै मुँह कोढ़ । " <sup>४</sup>

१- सुरसागर ना० प्रण समा पद सं० ३६४ पृ० १३४

२- निम्बार्क माधुरीय पृ० ६५

३- श्री व्यास वाणी पृ० ५३१

४- निम्बार्क माधुरी पृ० २०२

मोदा-

बालवार्त्तों के विचार-

संसार - दुःख से छूटकर बानन्द-प्राप्ति की मुक्ति-व्यवस्था लगभग सभी दर्शनों की मान्य है, यद्यपि भिन्न भिन्न मतों में इस बानन्द-मोक्ष की स्थितियाँ और लोक भिन्न भिन्न बताये गये हैं। बालवार्त्तों के अनुसार मक्ति का फल ही मुक्ति है। बालवार्त्त मन्त्रों ने कहीं भी मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया है, जैसा कि पश्चिमी मक्ति-साहित्य में मिलता है। मक्ति-ग्रन्थों में साधारणतया चार प्रकार की मुक्ति का निर्देश मिलता है। वे हैं - शालोभ्य, शमीप्य, सारूप्य और सायुज्य<sup>२</sup>। इन मुक्तियों का सैद्धान्तिक रूप 'प्रबन्धम्' में देखने की नहीं मिलता। किन्तु इन चारों मुक्तियों की अनुभूति बालवार्त्त मन्त्रों ने पूर्ण रूप से की है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मोदा का सुख दो प्रकार से हो सकता है- देह रहते ज्यों-ज्यों जीवन्मुक्त अवस्था का सुख और देह त्यागने के पश्चात् ईश्वर कृपा के बल पर प्राप्त मोदा अवस्था के सुख। 'प्रबन्धम्' में इन दोनों प्रकार के मोदा का वर्णन हुआ है। जीवन मुक्त अवस्था का सुख, देह-त्याग के बाद के मोदा-सुख की अपेक्षा अधिक उच्च माना गया है। बालवार्त्त मन्त्रों ने अपनी अनेक पदों में जो मानसिक प्रवृत्ति-

१- वाञ्छन्तु कोण्टु वादिप्येहमाने बन्धिनाल

वाञ्छन्त मनसु इहचवत्सर्गल-

वैद्वन्ताम काण्णार विरेन्तु । " - नानमुत्तम विरुवन्तादि , ७६

२- शालोभ्यस्तर्हि शमीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।

दोषमार्गं न गृह्णन्ति बिना मत्सर्वं जनाः ॥ " श्रीमद्भागवत ३-२६-१२  
 शालोभ्य- भगवान् के नित्य धाम में निवास, शमीप्य- भगवान् की नित्य समीपता,  
 सारूप्य = भगवान् का सा रूप तथा सायुज्य- भगवान् के विग्रह में समा जाना ।

धन, संसार की अनित्यता और माया मोह की निन्दा से सम्बन्धित हैं, जीवन-मुक्ति- अवस्था प्राप्त करने के उपायों को बताया है। इस अवस्था के अर्जुन जानन्द के सामने उन्होंने जीवन मुक्ति- अवस्था के बाद के मोक्ष- सुख की ओर ध्यान कर दी है।

नम्याखवार कहते हैं-“ हे, भगवान् । मेरी एक मात्र प्रार्थना है। जो मोक्ष तुम अपने भक्तों को देना चाहते हो, क्या वह तुम्हारे स्मरण मात्र से मुझे मिलने वाले जानन्द से अधिक सुखपूर्ण है ? ” ( मैं मोक्ष नहीं चाहता , केवल आपका स्मरण करते रहने में ही मुझे अर्जुन सुख प्राप्त है। ) श्रेष्ठ भक्त, भक्ति से जो जानन्द प्राप्त होता है, उसकी तुलना मैं मोक्ष के सुख को तुच्छ समझते हैं । नम्याखवार का कहना है-“ सर्व जगत् की सृष्टि कर, उसकी रक्षा सतत् करते रहने वाले मेरे पिता भगवान् हैं, जिनके चरण कमलों को अपने सिर पर धारण करने की इच्छा से प्रेरित मेरा मन उनका स्मरण कर प्रेम में डूबित होकर दिव्यानन्द प्राप्त करता है। ——— अल्प कर्मों को प्राप्त करने की इच्छा से दूसरे लोग भले ही मारे मारे फिरे, भले ही दूसरे लोग मोक्ष-पद प्राप्त करने की इच्छा रखें, परन्तु श्रेष्ठ भक्त उन चीजों की कामना नहीं करते। वे तो केवल भक्ति में ही परमानन्द प्राप्त करते हैं । ”

१- “ वीन्द्रपु नैकप्यात । यानुरेप्यु उन्नडियार्क  
 स वैश्वनेन्दे हरति नी- निन्मुक्तित  
 वैकुण्ठ तम चिन्तयिषुम मद्दिनितो ? नी अर्क  
 वैकुण्ठ मेन्दरुत्तमान । ” - धेरिय तिरुवन्तादि, ५३

२- “ उल्लु पंडुण्ड रन्तै वरैकल  
 वृळ् प्पुन्तामरै वृहवर्कु क्कावुवा  
 रुयिरु रुफियुक्क नेरिकान  
 लन्पितिनपीनतेरु वमुद  
 वैल्लवानाम चिरप्पु विट्टु वीरु पीरुट्टु  
 क्कैवोर क्कै तिरुवौडुमरुविय  
 व्कै मायाप्पेरु विस्तुलकम  
 मुन्दिनोडु नल्वोडु पेरिमुम  
 कोलवतेण्णुमो तैल्लियोर कुरिये ? ” - तिरुवाचिरियम, २

तौंडरहीपीडी बालवार कहते हैं-“ सुन्दर शरीर युक्त  
पनश्याम भगवान् का गुण-गान करते रहने में मुझे जो सुख उपलब्ध होता है,  
उत्के बदले अगर इन्द्र-लोक पर शासन करने का सुख ( मोदा का सुख ) दिया  
जाय, तो भी मैं उसे नहीं चाहूंगा । ” तिरुमल्लि बालवार कहते हैं- “ भगवान्  
ये सब मिलने की इच्छा के अतिरिक्त मुझे किसी दूसरे मोदा- सुख की कामना नहीं । ”

नम्पालवार के अनुसार मोदा कोई स्थान है, परन्तु अनुभूति  
मात्र है। वे कहते हैं - “ ज्ञान - प्राप्ति के पश्चात् तन्निद्रियों को बल में कर, संसार  
के स्वल्प को सम्मरते हुए, सुख- दुःख की चिन्ता को भूले साक्षात्क मोद को त्यागने  
पर मोदा का सा आनन्द प्राप्त होगा । ” — “ वही मोदा है । मोदा

१- “ वञ्चुता । अमररेरे । जायर तम कोतुन्ते । इन्नुम  
इञ्चुवे तविर यान पीय इन्द्र लोकम बालुम  
वञ्चुवे पेरितुम वेष्टेन ————— । ”

- तिरुमल्लि, २

२- “ वीडवान पीक्केवती वीद्रिहन्तपीतिलुम  
वूहम वाशियल्लतोन्दु कोलुवेनी ? कुरिप्पिले । ”

- तिरुञ्चन्तविरुत्तम, १७

३- “ नन्दाय ज्ञानम् कहन्तु पीय नल्लिन्द्रियेत्तापीरुं  
वीन्दाय किन्तवहम पेरुम्पाल उलप्पिल्लत्ते उणन्तुणन्तुं  
वेन्दुकिन्प तुन्फत्त वेदुक्कैन्तु पय्यदात्त  
वन्दे वप्पीत्ते वीहु वल्ले वीहु वीडामे । ”

- तिरुवायमोली, ८८८६



कहाँ है ? — सुस कहाँ है ?” उस तरह की चिन्ता को त्यागकर हर तरह के मोह को छोड़कर भगवान् का स्मरण करते रहने में भी मोटा का सा सुत है।

साधुज्य मुक्ति की कामना कर बितरुमी वालवार करते हैं कि जिस प्रकार गरम किये हुए लोहे पर पानी की बुँद डालने से वे स्वयं बाकुल<sup>१</sup> होकर लोहे में विलीन हो जाती हैं और फिर उनका जलग्ग अस्तित्व नहीं रहता, उसी प्रकार मैं भी भगवान् में लीन होना चाहता हूँ।” पोकी वालवार करते हैं — “जिस तरह सरिता सागर की ओर प्रवाहमान है, सुप्त सूर्य की किरणों की प्रतीक्षा करता है, उसी तरह मेरा मन केवल भगवान् में ही लीन रहेगा।”

वालवार भक्तों ने अपने कुछ पदों में विरहावधित में ली मुक्त-स्वप्ना नाविका का कृष्ण के साथ स्वीकरण दिखाया है और विरहिणी

१- “ वसुवे वीहु वीहु पेदिन्पिन्तान्धम वसु तेरी  
 स्तुवे तानुम पेदिन्दि वासु मिलिकलकिर्किल  
 वसुवे वीहु वीहु पेदिन्पिन्तानुम वसु तेरासु  
 स्तुवे वीहु ? स्तु इन्म ? सन्दु एस्तार एस्तारे । ”

- तिरुवायमोली ८८-७

२- “ इरुम्पनन्दुष्ट नीर पीत रम्पेरुमानुक्कु स ल  
 वरु म्पेरलन्नु पुक्किट्टु वडिम पुण्डु उरन्तु पीनेन  
 वरुम्पुक्क वण्णनारै मरुवि स मन्नु वैतु  
 करुम्पिन इनिय चारु पीत परुकिनेर्कु इनियवारे । ”

- तिरुकुरुन्ताण्डकम्, ५

३- “ पेयरुम करुक्कले नोक्कुम वारु- वीण्णु  
 उयरुम कदिरवने नोक्कुम- वीण्णामरयाल केल्नव्  
 वीरुवनेये नोक्कुम उणार्त्तु । ”

- मुदल तिरुवन्तादि, ६७

नायिका से कहलाया है कि विरह-सुख और परमार्थ-मोक्ष में कोई अन्तर नहीं है। उसी विरह में ब्रह्मानन्द से अधिक ज्ञानन्द मिलता है। बाण्डास के अनेक पदों में इस प्रकार का भाव व्यंजित है।

सामीप्य मुचित की कामना करते हुए कुलशेखराख्यार करते हैं - "मुक्त पुनः पात-संपुष्ट नखर नर जीवन धारण करने की कामना नहीं है। मैं अपने को धन्य समझूंगा। यदि उस वैकुण्ठ ६ पर्वत में जिसमें कि शेषशायी भगवान् का निवास है, जहाँ जन्म में एक बगुला बने का सौभाग्य प्राप्त हो<sup>१</sup>।" दक्षिण रागर की धमल तरंगों को परिपुष्ट करके प्रोत्सहित भगवान् शेषशायी के पावन पद कमलों के दर्शनार्थ गीत-स-सहरी में निमज्जित मगर-समूह के मङ्गल गूँजित वैकुण्ठ गिरि की वाटिका में एक मङ्गल कुसुम बन जाऊँ<sup>२</sup>।"

कुलशेखराख्यार भगवान् के दर्शन में ही परमानन्द प्राप्त करना चाहते हैं। वे कहते हैं - "त्रीरङ्ग में वास करने वाले भगवान् के दर्शन कर कब मेरे

१- "ऊनेरु चैत्तु उडिप्पिरी यान वैप्पेन

ऊनेरु चंचकम्पितान तन वैक्कटु

कोनेरी वालुम कुरुकाडिप्पिरप्पेने ।"

- पेरुमाल तिरुमोली , ४ : ९

२- "वीण्ण्णल वैल्लुत्तु तण्णार्ण्डलु

कण्ठुयिलुम मायोन कल्लिण्णल काण्ण्णु

पण्णरुम वटिर्नल पण्णारुम वैक्कटु

वैण्ण्णमाय निर्कुम तिरुवुडैयाप्पेने ।"

- पेरुमाल तिरुमोली ४ : ४

नैत्र बानन्दानुभव से वृत्त होंगे ?<sup>१</sup> " " कब श्रीरंगम् के भगवान् के दर्शन कर  
बानन्द- नृत्य कर अपने को भूत उन्मत्त हो जाऊँ ?<sup>२</sup> " " वह दिन कब आया,  
जब कि मैं श्रीरंगम के मन्दिर के प्रांगण में भगवान् की स्तुति कर बानन्द में मग्न  
रहने वाले भक्त- मंडल में मिलकर स्वयं श्रीम बानन्द प्राप्त कर सकूँ ?<sup>३</sup> " "

बालवार भक्तों ने सर्वत्र मोक्ष- प्राप्ति के लिए भगवान् के  
कुग्रह की आवश्यकता बताया है ।

बालोप्यकाशीन हिन्दी- कृष्ण- भक्त कवियों ने चार प्रकार  
की मुक्ति ( सामीप्य, सातोष्य, साहृष्य और सायुष्य ) का निर्देश किया है।  
सुरदास कहते हैं :-

" " सेवत सगुण स्याम सुन्दर को मुक्ति तहीं हम चारों ।<sup>४</sup> " "  
हरिराम व्यास कहते हैं -

" " लोक वेद कर्म धर्म हाडि मुक्ति चारि ।<sup>५</sup> " "

१- " " तिरुवर्गतरवर्णयित पल्लिकोल्लुम  
मालोनेक्कण्डु इन्पक्कलवी येवती  
वत्तिनयेन एन्दु कोलो वाहुम नाते ? " "

- पेरुमाल तिरुमोली , १ : ८

२- " " तिरुवर्गतरवर्णयित पल्लिकोल्लुम  
पीरातियम्मनिक्कण्डु तुल्लि  
भूतलपित एन्दु कोलो पुरल्लुम नाते ? " "

- पेरुमाल तिरुमोली १ : ६

३- " " वणियर्गन तिरु मुट्टु वडियार तल्ल  
इन्पमिडु पेरुक्कल्लु कण्डु यानुम  
इन्नु उडन एन्दु कोलो इरुक्कुम नाते ? " "

- वही , १ : १०

४- पुर सागर , वे० प्र० ५४४

५- व्यास वाणी पृ० २६६

बाल्यार भक्तों की तरह कुछ हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने भी जीवन-मुक्ति-अवस्था के बाद के मोक्ष-सुख की उपेक्षा कर दी है। एक पद में सूर जीवन-मुक्त-सुख के बागे वैकुण्ठ के सुख को हीन बताते हुए कहते हैं-  
 “जो सुख गोपाल के गुण गान में है वह जप तप धर्म आदि के करने में नहीं ।  
 ब्रह्म निवास के सामने वैकुण्ठ का सुख भी त्याज्य है। हरि के सुमिरन से संसार-  
 दुःख छूटता है, और जीवन-मुक्त का परमानन्द मिलता है।”

श्री हरिराम व्यास ने मोक्ष की मक्ति के समस्त उपेक्षा की है :-

तकै क्त गर्व मो रसिक व्यास से न डरे  
 लोक वेद कर्म धर्म झोडि मुक्ति चारि ।<sup>२</sup>

नन्ददास ने जीवन-मुक्ति के सुख का वर्णन किया है। संसार की माया के दुःख से छूटकर प्रेम भक्ति की संयोग और वियोग अवस्थाओं की आनन्दावस्था में भक्त ईश्वर के सतत ध्यान में जिस सान्निध्य का अनुभव करता है, वह स्वर्ग (मोक्ष) - सुख से भी श्रेष्ठ है। यह नन्ददास जी की रास पंचाव्यासी की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है :-

पुनि रसक धीर ध्यान पीय परिरम्भ दियो जब ।  
 कोटि सग सुख भोग, झिंक मंगल भुगते तब ।<sup>३</sup>

१- जो सुख होत गुपालहिं गारै ।

सो सुख होत न जप-तप कीन्है, कोटिक तीरथ न्हारै ।

दिहैं तेत नहिं चारि फदारथ, चल - कमल चित लारै ।

तीनि लोक पुन-सम करि लेखत, नंद-नंदन उर बारै ।

बंसीबट, बृन्दावन, जमुना तबि बैकुंठ न जावै ।

सूरदास हरि को सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल जावै ।

- सूरसागर, ना० प्र० समा पद सं० ३४६ पृ० ११६

२- व्यासवाणी पृ० २४६

३- नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाव्यासी, अ० १ ना० प्र० समा

परमानन्द का मन मोटा की कामना नहीं करता । किन्तु वह श्री कृष्ण के पद-पंजनों में ही रहकर आनन्द पाता है। वे गोपी-स्व से कहते हैं - "भगवान् संन्यासियों को मुक्ति दे दें, लोक-कामना करने वालों को काम-राशि दे दें, मर्यादा - धर्म के रक्षकों को धर्म-मार्ग का सुख दे दें । परन्तु मेरा मन सदा कृष्ण के पद-पंजनों में ही रहता है। यदि कोई कहता है कि योगाभ्यास से ज्योतिर्ब्रह्म की स्यात्मक मुक्ति मिलती है तो मुझे ऐसी मुक्ति नहीं चाहिये मैं तो एक श्याम-रंग में रंगी हुई हूँ । उस एक से मिलकर मैं सबका अपवाद सह लूँगा।"

विरहावधित में ही चारों प्रकार की मुक्ति का आनन्द सुर की गोपियाँ लेती हैं। सुर का निम्न पद दृष्टव्य है :-

ऊधौ सुधें मैहू निहारी ।

हम अबलनि कौ सितवन बार, सुन्यौ सयान तिहारी ॥

निरखुन कहाँ कहा कहियत है, तुम निरखुन बलि भारी ।

सेवत दुखम स्याम सुन्दर कौं, मुक्ति लही हम चारी ॥

हम सालोचन, सरूप, सायुज्यौ, रहित समीप सदाई ।

सौ तजि कहत वार की वार, तुम बलि बड़े जदाई ॥

हम मूरख तुम बड़े चतुर हौं, बहुत कहा अब कहिये ।

वे ही काज फिरत भटकत कत, अब मारग निज गहिये ॥

तुम अज्ञान कतहि उपदेसत, ज्ञान रूप हमहीं ।

निसि दिन ध्यान सुर प्रभु कौ बलि, देखत जित तितहीं ॥ २

१-

मुक्ति देह संन्यासिन कौ हरि कामिनि देह काम की राख ।

धरमिन देह धरम कौ मारग मो मन रहे पद-जंजुल पास ॥

जो कौज कहे जोति सब यामें अपनेहु बियाँ न तिहारी जोय ।

"परमानन्द" स्याम रंग राती सबे सहीं मिति एक वंग लोग ॥

- परमानन्दसागर, सं० डा० गौ० ना० शुक्ल पद सं० २११

२- सुखागर - ना० प्र० समा पद सं० ४५१८ पृ० १५६२



मीराबाई का भी इस संसार में ही उनके गिरिधर गोपाल से साक्षात्कार हो जाता है और आनन्द ही आनन्द का अनुभव होता है-

म्हारो जौलगिया घर बाज्यो जी ।

तणारी ताप म्दियां सुख पास्यां, हिलमिल मंगल गाज्यो जी ।

घणारी धुण धुण मोर म्गण मयां, म्हारे बांगण बाज्यो जी ।

वँदा देल कमोदण फुलां, हरल मयां म्हारे बाज्यो जी ।

हम हम म्हारो सीतल सजणी, मोहन बांगण बाज्यो जी ।

सब भगतारां काख साधां, म्हारा परण निभाज्यो जी ।

मीरा बिरहण गिरधर नागर, मिल दुख वँदा बाज्यो जी । १

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने सायुज्य और साकृष्य सुखित की अपेक्षा सलोक्य और सामीप्य सुखित की कामना विशेष रूप से प्रकट की है। सूरदास ने अपने पदों में एक चिरन्तन आनन्दमय लोक में चलने की कामना प्रकट की है। सूर की निम्नलिखित पंक्तियों को देखिए -

(१) कहीं रो बलि बरन सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग ।

जहाँ प्रेम निरा होती नहिं कबहुँ, सोई सायर सुख जोग ॥ २

(२) बलि बलि तिहि सरोवर जाहि ।

तिहि सरोवर कसल, कमला, रवि, बिना बिसाँहि ॥ ३

(३) सुवा बलि तावन को रस पीजै ।

जा दिन राम नाम अग्रित- रस, ब्रवन- पात्र भरि लीजै ॥ ४

रसज्ञान के किसी भी रूप में कृष्ण के संपर्क में रहने की कामना

१- मीरा की पदावली - सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० ११६ नवां संस्करण

२- सूर सागर ना० प्र० समा पद सं० ३३७

३- वही .. ३३८

४- .. ३४०

की है। यह एक प्रकार से सामीप्य सुविधा ही है। कृष्ण के संपर्क से जो वानन्द जाता है, वही उनके लिए मोक्ष का सुत्र है-

मानुष हौं तौ वही "सखानि"

जहाँ ब्रज गोवृत्त गाँव के ग्यारन ।

जो पशु हौं तौ कहा बस भरो,

चरौं नित नंद की धनु मँहारन ॥

पाहन हौं तौ वही गिरि को,

जो धर्यौ कर ब्रज पुरन्दर धारन ॥

जो लग हौं तौ कौरौं करौं,

मिलि कालिंदी कूल कंदव की डारन ॥ " १

#### रहस्यात्मक दृष्टिकोण-

"व्यक्त" जगत् के सम्बन्ध में सोचने से "व्यक्ति" उसके कारण रूप "व्यक्त" पर स्वभावतः जा पहुँचा । अपनी दिव्य कल्पना शक्ति को केवल अपनी चतुर्दिक् केन्द्रित न कर उसने उस वज्रात और अनन्त शक्ति की कल्पना को स्थिर करके उससे शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की । अपनी अपूर्ण जीवन में पूर्णता लाने के लिए उसने अपने को ही उस ब्रह्म का अंश समझा । दार्ष्टिक सर्व नाश्वर फलार्थी में उसने अविनाशी और शाश्वत सत्ता की खोज की । उस सत्ता के साथ उसने भिन्न २ प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये । मानवीय सम्बन्धों में सबसे मधुर और तीव्र संबंध "दाम्पत्य भाव" का होता है। इसलिए उसने उस परमात्मा को पुरुष या स्त्री और अपनी "आत्मा" को स्त्री या पुरुष मानकर मिलन- विरह सम्बन्धी प्रेमी-

द्वारों से पूर्णता पाने का प्रयत्न किया। उस जाध्यात्मिक सत्ता का स्वान्त विरल पाणों में जामास पाकर उसके विरह में मानव-मन लड़प उठा और ब्रह्म और वात्मा के तादात्म्य की अवस्था को जब वाणी मिली, तब वह भावात्मक या साधनात्मक "रहस्यावाद" कहलाया।

मानवीय सम्बन्धों को लेकर ब्रह्म की परम सत्ता का बोध तथा साक्षात्कार के भावात्मक पक्ष का नाम ही "रहस्यावाद" है। वस्तुतः रहस्यावाद की अनुभूति की अभिव्यक्ति वाचातीत है। उसका विषय गूँगे के गुड़ की तरह वाणी से परे है। वह एक जलौकिक अनुभव है और अनुभूति का विषय है। फिर भी कुछ विद्वानों ने रहस्यावाद की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। स्कॉटलैंड के अंडरहिल के अनुसार "रहस्यावाद भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यावादी वह व्यक्ति है जिसने किसी न किसी सीमा तक इस एकता को प्राप्त कर लिया है, अथवा जो उसमें विश्वास करता है और जिसने इस एकता-सिद्धि को ही अपना चरम लक्ष्य बना लिया है।" १

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार "रहस्यावाद वात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और जलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निराल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर भी नहीं रह जाता।" २ डा० श्यामसुन्दर दास लिखते हैं - "जगत् और अव्यक्त सत्ता के प्रति जिसमें भाव प्रकट किये जाते हैं, वही कविता रहस्यावाद की कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में व्यक्त जगत् में परीक्षा की अनुभूति की अभिव्यक्ति रहस्यावाद है। कला के क्षेत्र में यह एक शैली विशिष्ट है, जिसमें इस विविध चराचर के मूल में विद्यमान कारण मूल रहस्यमयी चेतन-सत्ता पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके प्रति अनुराग जनित वात्म समर्पण की भावना का अभिव्यक्ति किया जाता है।" ३ श्री गंगाप्रसाद पांडेय

१- Practical Mysticism, p. 3.

२- कबीर का रहस्यावाद - डा० रामकुमार वर्मा पृ० ६

३- हिन्दी साहित्य और विभिन्नवाद पृ० १५७ से उद्धृत

के अनुसार" मनुष्य जब से अपनी मानवीय विवशता में अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी एक कल्पित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना करने लगा तभी से रहस्यवाद का बीजारोपण हुआ ।— रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके मावावेश में प्राणी अपने असीम और पार्थिव अस्तित्व से उस असीम एवं अपार्थिव महा-अस्तित्व के साथ एकात्म्य का अनुभव करने लगता है।<sup>१०</sup>

उपर्युक्त मतों से परमात्मा के प्रति जीवात्मा के आत्म-निवेदन, मिलन के प्रयत्न और मिलन की ध्वनि ही निकलती है। इस प्रकार रहस्यवाद के विषय आत्मा, परमात्मा और जगत् हैं। उसका दृष्टिकोण सांसारिक दृष्टि से उदासीनतापूर्ण वाक्यात्मक है। दार्शनिक दौत्र में आत्मा परमात्मा की एकता का सिद्धान्ततः प्रतिपादन किया जाता है। जब उसी की साहित्य में अभिव्यक्ति होती है तो वह अस्पष्ट और रहस्यमय होने के कारण रहस्यवाद कहलाती है।

रहस्यवाद की सत्ता दर्शन और काव्य दोनों में ही रहती है। परन्तु "रहस्यवाद" शब्द केवल काव्य में ~~एकलक्षण~~ ही प्रयुक्त होता है। क्योंकि दर्शन का रहस्यवाद बुद्धि-प्रधान होता है और काव्य का भाव-प्रधान। काव्य में ज्ञान और भाव दोनों का समन्वय होते हुए भी भाव की प्रधानता रहती है।

१- देखिए - "शायवाद और रहस्यवाद" - रंगा प्रसाद पाण्डेय  
विशेष विवरण-

"रहस्य" शब्द अत्यन्त प्राचीन है। परन्तु आज हिन्दी में जिस रहस्य-भावना और रहस्यवाद की चर्चा होती है, वह अर्थ की दृष्टि से अंग्रेजी में "मिस्टसिज्म" का पर्याय है। "Mystic" शब्द ग्रीक "Mus" धातु से बना है, जिसका अर्थ है "बध्ना और बाँधें बन्द करना"। बाद में यह जीवन और मृत्यु की गहराई के चरम सत्यों की समझने वालों के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और अर्थ-विकास पाकर "रहस्यवाद" परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिलन के परम प्रयत्न के अर्थ से विभूषित होगया। हिन्दी में इसी अर्थ को लेकर व्याख्यान दिये जा रहे हैं।



दर्शन में माव के लिए कोई स्थान नहीं रहता । इसलिए दर्शनादि को शास्त्र कहा जाता है। ज्ञान प्रधान रहस्याद के मूल में सार्थारिक अनित्यता की उपासीनता, नाया की हलना से भय तथा ज्ञान चिन्तना जादि प्रमुख तत्व होते हैं। भावना का रहस्याद अपने प्राणों में तीन मुख्य तत्व लेकर चलता है- मानव- प्रेम, वाच्य का माव और वात्मा की परमात्मा से विरहानुभूति । तुलसी और कबीर के रहस्याद में इसी मानव प्रेम से अभिनिवृत्त रहस्य की भावना है।

### बालवार भवतों के काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण-

बालवार भवतों के ऐसे लोक पद हैं, जो रहस्यानुभूतिपाक हैं। नमालवार, तिरुमी बालवार और बाण्डाल के ऐसे पदों में जिनमें रहस्यानुभूति झलकती है, जीवात्मा- परमात्मा के विरह- मिलन की ओर उक्ति है । इन कवियों ने नायिका ( जीवात्मा ) के माध्यम से नायक ( परमात्मा ) के सौन्दर्य, नायिका की नायक से मिलने की तीव्र उत्कंठा, विरह की वेदना और अन्त में प्रिय- मिलन से सुख- प्राप्ति जादि का वर्णन किया है। इसी कारण से विद्वान् इन पदों को उच्च कोटि की रहस्यानुभूति से जोतप्रोत मानते हैं। हम पहले कह चुके हैं कि बालवार भवतों ने तमिल की प्राचीन लौकिक प्रेम- पद्धति का प्रयोग कर अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। इस प्रेम- पद्धति में और सुफी प्रेम-पद्धति में बहुत कुछ साम्य है। अन्तर यह है कि बालवार भारतीय परंपरा के अनुसार परमात्मा को पुरुष ( नायक ) और जीवात्मा को स्त्री ( नायिका ) मानकर चले हैं। उस प्रेम- पद की कठिनाइयों और विरह की वेदनाओं और मिलन- सुख जादि का वैसा ही हृदय द्रावक वर्णन बालवार काव्य में मिलता है, वैसा कि सुफी काव्य में मिलता है। प्रेम की परीक्षा "महत"



पर चढ़ने की दशा में होती है। "मदल" पर चढ़ने की दशा में होती है। "मदल" प्रेम की अग्नि परीक्षा है, जिसमें उषीर्ण होने पर प्रिया को प्रियमिल्ल सकता है। अपनी रचना "तिरुविरुचम" में नायिका की विरह-दशाओं का वर्णन मात्र करना नम्माळ्वार का उद्देश्य नहीं। वह साक्षात्कार वास्य भी रहता है। नम्माळ्वार को उच्च कोटि के रहस्यवादी कवि माने गये हैं। कवि की साक्षात्कार होती रही उच्च कोटि की है कि कविता और दर्शन की धाराएँ, उसमें समानान्तर होकर बहती हैं, कोई विरोध नहीं पड़ता। जैसे अंतः सलिता सरस्वती गंगा और हनुमान के बीच हो, ऐसा ही नम्माळ्वार और तिरुमो बाल्वार की कविता सरिता के उमय-उपकुलों के बीच उनका साक्षात्कार वर्ण है। काव्य के क्षेत्र में स्त्री का दूसरा नाम "रहस्यवाद" है।

सन्तों ने साधना द्वारा साध्य प्राप्ति के लिए अनुभूति की कितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है, उसी ही अवस्थाएँ रहस्यवाद की हो सकती हैं :-

### १- परमात्मा के प्रति आश्चर्य, कृतज्ञता और जिज्ञासा की भावना-

मानव विस्तृत प्रकृति की गोद में पैदा है। सृष्टि के बादि काल से ही प्रकृति उसकी चिर सहचरी रही है। प्रकृति में ही उसने सबसे पहले व्यक्त चित्त के दर्शन किये। प्रकृति के उपादानों में ही मानव ने अद्भुत चित्त के दर्शन किये। अतः कवि-हृदय में सर्वप्रथम कृतज्ञता, आश्चर्य, विस्मय और जिज्ञासा की भावनाएँ अंकुरित हुईं। प्रकृति का प्रत्येक तत्व एक महाशक्ति से सम्बन्धित दिखाई दिया। बाल्वार मन्त्रों के कुछ पदों में यही भाव व्यक्तित हुए हैं :-

१- "Some of his (Nammalvar's) poems, couched in the language of human love, reveal beautiful depths of mystical passion and longing for which there are few parallels in any Indian vernacular." A Metaphysique of Mysticism.  
A. Govindacharya, page 422.

“ युग बीतते जाते हैं । हम केवल निवेदन करते रहते हैं ।  
हे परमात्मन् । तूने मधुर मन्दहास लिए चिर काल से विराजमान हो । हम निस्स-  
हाय तुम्हो फुलते रहते हैं । अब तक तुम्हारे नाम और स्वरूप रहस्यमय ही बने  
रहे हैं। ”

— - पौकी बालवार

“ मैं सर्वदा उसकी अपेक्षा सोज में रत हूँ। तब वह मुझे नहीं  
मिल पाता । पर वह भी निवेदन के बिना भी मुझे अपना लेता है और भी हृदय-  
कृत्य में विहार करता है। फिर भी हाय । मैं उसको देख नहीं पाता । ” २

— - पेयालवार

“ वह अज्ञात परमात्मा पुरुषोत्तम युग्म-युगों से चिर-यौवन  
में ही दीखता है। काल का कराल प्रभाव भी अपने चिह्नों को उसे पर वंशित नहीं  
कर सकता । उनकी और आनन्द की एक अशुष्क धारा प्रवाहमान है जो हृदयों में  
अवर्णनीय है। वर्तमान, भूत, भविष्य के भेद से दूर चिरन्तन और चित्काल से वह  
अपनी सीतारें करता जा रहा है। उस अज्ञात विशाल पारावार में मैं हलुहियाँ  
लायीं<sup>३</sup> । ”

— तिरुमो बालवार

“ क्या बाप राब मुहुट पर शोभित शोभायमान कांतियुक्त  
मौली- सम हैं ? क्या, बाप अगाध रत्नाकर की गहराई में फँदे हुए अमूल्य रत्न हैं ?

१- “ उणवार यार उन पेहमे ? उलितोरुलि

उणवारार उन्नुरुवन्तन्नि ? उणवारार ?

विण्णकत्ताय । मण्णकत्ताय । कैटत्ताय । नात्वेद

पण्णकत्ताय । नी किडन्त पाल । ”

— मुदल तिरुवन्तादि, ६८

२- मून्दाय तिरुवन्तादि पद सं०

३- पेरिय तिरुमोली , पद सं०

क्या , वाप वह कमर दीफ़ है, जो गुाँ से बन्धकार को चीरकर जलता रहता है ? क्या वाप वह वादिम प्रकाश है, जिसने इस पृथ्वी की सृष्टि के उष्णकाल को बासीकित किया था ? क्या , वाप जीवन- धारा के उद्गम- स्थान है, जिससे सृष्टि की धारा निरन्तर बहती रहती है ? वाप क्या है ? ”

- - नन्मालवार

२- अखिल विश्व में परम सत्ता की क्रांती तथा व्यापकता -

साधक में कुतूहल, विस्मय और जिज्ञासा की भावना के अनुसार परम सत्ता के अस्तित्व का विश्वास दृढ़ हो जाता है। उसके बाद अनुभूति अधिकाधिक तीव्र होती जाती है। फलतः उसे विश्व की प्रत्येक वस्तु में, प्रकृति के कण- कण में परम सत्ता की अनुभूति होती है। अन्त में इस परम सत्ता की व्यापकता इतनी बढ़ जाती है कि समस्त सृष्टि परम सत्ता के रंग में रंजित और प्रकाश से प्रकाशित दिखाई देती है। बालवारों के कुछ पदों में ये भाव दृष्टव्य हैं :-

“ विशाल व्योम गूँज उठा, झिली कड़की । वज्रपात का मथानक नाद हुआ । वह था, वर्णा- काल । मैं गगन की ओर देखता रहा । उसकी अनुपम आभा की रौशनी देख फड़ी और वह व्योम- बीधी में मेघ- मणि- रत्न पर चढ़कर बाया । ”

- - भूतबालवार

“ सरसोज्ज्वला सौदामिनी रूपी विजय- फताफा कहराती हुई घोर निनादित वज्र रूपी विजय- दुर्दुभी क्वाती हुई गगन- मंडल- बीच भ्रमण

१- “ बाढिमाणिक्कमेन्को ? चक्किोल पौन्नुमेन्को ?  
बादि नल्लयिरेन्को ? तविविल चोर विलक्कमेन्को ?  
बादिर्य्योति एन्को ? बादियप्पुहनेन्को ?  
वातुमित्त कालेन्तै ज्जुत्तन जमलनेये । ”

- तिरुवायमोली ३-४-४

२- इरण्टाम तिरुवन्तादि, पद सं०

करने वाली नीरव- राशि भी मानस- फल पर आप ही के स्मृति-चित्र अंकित करती है।<sup>१</sup>”

— — — पेयालवार

“ सुषमा परी उणा की नीरव- बेला में चिड़ियों की मधुर चुरीली तान में प्रभु के दिव्यांगमन का सन्देश में पाती हूँ । मैं आशा युक्त नयनों से देखती हूँ। पर जानती नहीं कि प्रियतम कब आयेंगे । ”<sup>२</sup>

— — — बाण्डाल

“ भीरे प्रिय का स्वर तो सब पदार्थों में गूँज उठता है और उनकी आवाज प्रत्येक लहर में और फन में घुनाई पड़ती है। सर्वत्र उसकी आभा व्याप्त है। समस्त विश्व के समान विशाल, उस प्रभु को मैं रेत के कण- कण में देखता हूँ , अधीम सागर के समान व्यापक उस प्रभु को सागर की प्रत्येक बूंद में देखता हूँ। ”<sup>३</sup>

— — — नम्पालवार

३- दर्शन- साक्षात् और सम्बन्धों की स्थापना-

जब साधक की सृष्टि के कण- कण में उसी परमसत्ता की अनुभूति होने लगती है, तो उसे उस परम सत्ता का साक्षात्कार करने की साक्षात् होती है। साधक की साध्य अत्यन्त निकट ही प्रतीत होता है। इस निकटता से अनेक प्रकार के सम्बन्धों की सृष्टि होने लगती है। इन सम्बन्धों में नायक- नायिका

१- “ रत्निल कोण्टु मिन कोडियेहु वैकत  
तोडिल कोण्टु तान मुलकी तोन्दुम रत्निल कोण्ट  
नीरमेप्पमेन्न नेहुमाल निरममोल  
कार वानम काट्टुम कलन्नु । ” मृन्दाप तिरुवन्तादि , ८६

२- “ काले पैन्तिरुन्नु करिय कुरुवि कणकल  
मालि वरु चोली मरुस पाहुतल पेरुमै कोलो ?  
चोलेमलैपेरुमान तुवरपतियेपेरुमान  
वालिमिलैपेरुमान वन वार्त्तियुरिकन्दूते । ” नाच्चियार तिरुमोली ६:८

३- तिरुविरुत्तुम, पद सं० ३७



( पुरुष- स्त्री ) सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ माना गया है। पुरुष और नारी के सम्बन्ध द्वारा वियोग और मिलन के जितने भी विचारों की अभिव्यक्ति होती है, वे सच्ची अनुभूति हैं। विरहानुभूति की व्यंजना बालवारों के अनेक पदों में हुई है -

“ कोयल । मेरे शरीर की समस्त हड्डियाँ द्रवित हो रही हैं । निशि- दिन मेरे प्यासे नयन जागते हो रहते हैं। ( नींद को पास भी कटकने नहीं देते । ) प्रभु के दर्शन- अनुग्रह से वंचित मैं व्यथा- सरिता में बह रही हूँ । प्रेम मेरे हृदय की विरह- वेदना को तो तू भलीभाँति जानती है। तू कृपया मेरे प्रभु के पास जाकर मेरी उस दीन दशा का समाचार दे वा । ”

— बाण्डाल

“ ( मेरे मन स्त्री ) उस प्रेम- वियोग विदग्ध विरहिणी की क्या दशा हो गयी है। वह पागल सी उधर उधर फिरती है। अपने प्रियतम के आगमन का आनन्दपूर्ण सन्देश सुनकर वह हर्षान्वित हो रही है। राफा-खनी में वह कैसी ही अपने करों की ( उस असीम वाकाश ) स्वर्ग की ओर बढ़ाकर चित्लाती है- मैं देखती तो नहीं हूँ कि प्रभु अपने स्वर्ग के द्वार पर खड़े मुझे पुकार रहे हैं । ”

— तिरुमोली बालवार

१- “ इन्पुरु-कि इन्वेल मेहुर्म्फल

इम्प्योरुन्ता पल नातुम

तुन्पकळल पुनकुम्कुन्तनेन्पु वीर

तोणी पेरानु उल्लिन्द्रेन

वन्मुडिवारि पिरिवुरु नो

यतु नीयुम जरि कुयिनि ।

पीन्पुरैमिनिक्कल वकोडियुडि

पुण्णियनै वरक्कवाय । ” नाञ्जियार तिरुमोली, ५-४

२- पेरिय तिरुमोली पद सं० ७-३-५



“ प्रभो , उस विरहिणी को आप अपने दर्शन से वंचित रखते हैं, क्यों ? ( माता का वचन ) मेरी सुन्दर, नवयौवना पुत्री के विह्वलाधरों से मधुर मुस्कान और हँसी अब विदा ले चुकी है। अपनी सखियों तक के लिए वह उदास और वेदनामय दीस फड़ती है। वियोग- व्यथा से विदग्ध होकर वह कभी कोमल <sup>न</sup> लव पर चन्दन नहीं लगाती और अपने मोन- नयनों में लवण लगाती है। उसके केश जो सौन्दर्ययुक्त नव कृष्णों से समालंकित होते थे अब शोभा शून्य दीस रहे हैं । वह आपके नाम को ही रटती है, आपके विलाप में तड़पती है। — प्रभो, आप उस विरहिणी को अपने दर्शन से वंचित रखते हैं, क्यों ? ”

— — तिरुकी बालवार

“ मेरी प्रिय जनया जो आम के नवल किसलय के समान स्वर्ण कान्ति युक्त थी, अब विरह व्यथा में पीसी पड़ गयी है। दलीला होकर इतनी पतली हो गयी है कि उसके हाथ के कंकण भी स्वयं नीचे गिर जाते हैं। अब मुक्ता लचित चारु चन्द्रहार तथा सुगन्धित चन्दन भी उसके विरहानल में तप्त वदन पर ढें जापात कर देते हैं । अमृत तुल्य शीतल किरणों को भेजनेवाला चन्द्र भी मानों मेरी पुत्री के लिए धूमनेवाली बाग की ज्वाला ही बरसा रहा हो । दूर के समुद्र- गर्जन की तरह उसका हृदय भी वियोग- विलाप में बान्दीलित है। प्रभो, आप उस विरहिणी को

२- “ कुलम्पु मुहवत तोलियुं बरुलाव  
तुणं मुलै चान्तु कोण्टु वणियाव  
कुलम्पु कुवलेकण्णल स्तुदाव  
कोल नल्मत्तर कुलुं वणियाव  
मलम्पु मुन्नीर्वियम मुन्नलन्त  
मालिन्नुम मालिन मौलियाव  
स्तम्पुडोयित्तुम्पु एन निन्नित्तिरुन्ताम ?  
उव्वेन्तै एन्तै पिराने । ”

- पेरिय तिरुमोली २-७-२

अपने दर्शन से वंचित रहते हैं, क्यों ?”

— — तिरुमोली बातवार

“ सारा जगत् दीर्घ निद्रा में मग्न है। सर्वत्र सन्नाटा का साम्राज्य हाथा है। विशाल सागर की तरह बन्धकार मेरे चारों ओर फैला हुआ है। इस नीरव स्थानी में मैं ही स्फूर्तिता में जाग रही हूँ। अगर मेरा प्रियतम नहीं बाधे तो कौन मुझे सात्वता दे सकेगा ?”

— — नम्मात्वार

४- मिलन-

वन्त में साध्य और साध्य का महा मिलन ही वहम् और परम की स्फाकारिता है। आत्मा और परमात्मा के एक रूप होने पर परमानन्द की प्राप्ति स्वाभाविक ही है। तंकी प्रतीक्षा के बाद जब वन्त में प्रियतम से प्रिया

१- “ चान्तमुम पूण्णुम वन्दनकुलम्मुम

तहमुल्लेक्कु अणियितुम तल्लाम

पोन्त वेण्णिकल कदिर तुहमेलियुम

पोरुक्कल पुलम्पितुम पुलम्पुम

मान्तातिर मेनि वण्णमुम वीन्नाम

वैल्लकुम ईर निल्ला एन तन

एन्तिवैयितुक्कु एन निन्नैन्तिरुन्ताय ?

व्ळैन्तै एन्तै पिराने । ”

— पेरिय तिरुमोली २-७-३

२- “ ऊरेल्लाम तुंजी उत्तैल्लाम नल्लिरुत्ताय

नीरेल्लाम वैरी और नीत्तिराय नीण्डताल

पारेल्लाम उण्ट नम पाम्पणायान वारानात

वार ? एल्ले ? वल्लिन्नैय वाविकाप्पार इनिये । ”

— तिरुवायमोली ५-४-२

का मिलन हो जाता है, तब उसके आनन्द का भी पारावार नहीं। इस मिलन पर सुगौरी की वेदना दूर हो जाती है-

“ सुगौरी से मैं अपने मित्रता की बात जोड़ती हूँ उसकी प्रतीक्षा मैं अविराम रखी रही। एक दिन कानक एक आनन्द भरी हँस पर आया और खट खटाने लगा। कौनो विलक्षण आनन्दपूर्ण दृष्टि थी, उसकी। मुझे पुलकित कर देने वाला जाहू मरा था उसके कटाक्ष में। आनन्द और मय से वेष्टित मैं मंत्र-मुग्ध हो गई। यह पढ़ने की शक्ति मुझमें नहीं थी कि आप कौन हैं। परन्तु भी कौतूहल को शान्त करने वाला, मुझे वर्णन कर देने वाला फिर काल से प्रत्याशित वह उधर उनके मुँह से निकला - मैं हूँ तुम्हारा प्रिय ब्रह्म प्रतीक्षा में तुम विवश हो गयी थीं। ”

इस प्रकार हम देखते हैं कि आनन्द मन्त्रों के अंक कद लाटा-णिक अर्थ से युक्त हैं। उनमें उच्च कोटि की रहस्य-भावना या रहस्यानुभूति निहित है। अतः आनन्द मन्त्र सकल रहस्यादी कवि भी ठहरते हैं।

### आलोच्यकालीन

#### हिन्दी-कृष्ण-अधित-काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण-

महाकवि सुरदास के कुछ पदों में उनके रहस्यात्मक दृष्टिकोण

१- “ इनि एप्पावम वन्तिस्तुम ? चोल्लीर

रमन्तु इन्मये वरुण फेदमयाल- बहुम

तुनियेकीतुं इन्मये तरु किन्दु और

तौद्वीन्नेरियै वयम तौलप्पहुम

मुनियै वानवराल वणफप्पहुम

मुत्तिने फर ताम नु किन्दु और

कनियै कादल वेत्तु इन्नुल्म कोण्ट

कल्वने इन्दु कप्पुकोण्टेने । ”

- परिय तिरुमोली ७-३-८

का परिचय मिलता है। रहस्याद भक्त की आत्मा की सभी ऊँची उड़ान है जब वह परमात्मा की ओर बहस होता हुआ उसके अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। यों तो भगवान् की सारी सीला ही रहस्यात्मक है। जीव की अन्त ( ब्रह्म ) का अनुभव अवश्य की बात अवश्य है। जिस भगवत्कृपा या भगवदनुग्रह से यह अवस्था संभव हो जाता है, वह स्वयं कम रहस्य की वस्तु नहीं है। अतः अपने अनेक पदों में सूर ने भगवान् की सीला और उनकी अनुकम्पा के प्रति आश्चर्य प्रकट किया है। वर्तमान प्रसंग में हमारा तात्पर्य उन पदों से ही है जिनमें रहस्यादी अनुभूति की मूलक मिलती हो, जहाँ भगवत् वियोग से कातर भक्त की आत्मा एक अलौकिक रहस्य लोक की सृष्टि करती हो। जहाँ निर्गुण संतों का रहस्याद मूर्त चित्रों की उपासा करता है, जहाँ सूर के रहस्यात्मक पदों में मूर्त चित्र स्पष्ट रूप से आते हैं। इस प्रकार के रहस्याद को कुछ विद्वानों ने "सगुण रहस्याद" की संज्ञा दी है। जहाँ नाम, रूप और गुणों का सहारा मात्र लेकर रूप-गुण का अतिक्रमण करने की चेष्टा होती है। संतों के रहस्याद में तो एक दम उनका तिरस्कार होता है।

सूरदास जी ने जहाँ वन्योचित-पद्धति का प्रयोग किया उसमें उनके रहस्यात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। रूप के आश्रय से नकारात्मक चित्रों की स्पष्ट करने की चेष्टा की है। निम्नलिखित प्रसिद्ध पद में सूर ने एक जादवी रहस्यात्मक की कल्पना की है :-

चकई री । चलि बरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग ।

जई भ्रम-निशा होति नहिं कबहुँ, सोइ सायर सुख जोग ।

जहाँ सनक-सिख हंस, मीन मुनि, नल रवि प्रभा प्रकाश ।

प्रफुलित कपल, निमिष नहिं ससि-हर, गुंजत निगम सुवास ।

जिहिं सर सुमग मुचित-मुक्ताकल, सुकृत-अमृत-रस पीज ।

सो सर बाँडि कबुधि बिहंगम, इहाँ रहि कीज ॥ २

१- रहस्याद - डा० रामरत्न भटनगर पृ० १२५

२- सूरदास, ना० प्र० सभा, पद सं० ३३७ पृ० १११



उपर्युक्त पद में व्योमित के वाक्य से अपने मन को "कहें"  
 और "विहंगम" नाम से पुकारा गया है।

निर्गुण रहस्यादी कवि ब्रह्म को रहस्यमय देखते हैं। सूर जैसे  
 सगुण रहस्यादी कवियों के लिए कृष्ण जैसे ही रहस्यमय दीख पड़ते हैं। सूर का  
 निम्नलिखित पद दृष्टव्य है :-

वकिंत- गति कहु कहत न आवै ।

ज्यों भूँ में फीट कल की रस जतरगत हीं भावै ।

परम स्वाद सबही सु निरन्तर वमिल तोण उपजावै ।

मन- बानी कीं ज्ञान जगोवर, सो जानै जो पावै ।

रस- रस- गुन- जाति- जुगति- किनु निरासब किंत धावै ॥ १

सूर ने कृष्ण की बानन्द सीताओं में रहस्यात्मक संकेत दिये  
 हैं। काली कमरी का रहस्य कृष्ण स्वयं दान- सीता में बताते हैं -

यह कमरी कमरी करि जानति ।

जाके जितनी बुद्धि हृदय में, सो तितनी अनुमानति ॥

या कमरी के रस रोम पर, वारी चीर फटवर ।

सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक बहम्वर ॥

कमरी के बल असुर संहारे, कमरिहि हैं सब भोग ।

जाति- पाति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग ॥ २

यह कमरी कृष्ण की योग- माया है जिसे हम अपनी बुद्धि से  
 विभिन्न रूपों में समझते हैं ।

श्रीकृष्ण और राधा के मिलन-वृत्त और संयोग के वर्णन में  
 सूर ने इस प्रकार के वाक्यात्मक संकेत किये हैं। राधा- कृष्ण के प्रेम की वही पूर्णता  
 साधक का लक्ष्य है, जब मिलने पर भी मिलने का विश्वास नहीं होता, जब प्रेमी प्रेमिका  
 कुछ न कुछ अपूर्णता का अनुभव करते रहते हैं।

१- सूरसागर ना० प्र० समा पद सं० २ पृ० १

२- " " २१३३ पृ० ७५

३- " " २७४९ पृ० ६७४



इस प्रकार हम देख सकेंगे कि राधा-कृष्ण के प्रेम की कथा पूर्णतः रहस्यादी भित्ति पर खड़ी है। सौन्दर्य, प्रेम, मिलन और विरह सभी पक्षों में इस प्रेम में कलात्मिकता है और यही कलात्मिकता उसे रहस्यादी रूप प्रदान करती है। दूर ने राधा-कृष्ण की लोक कथा में अन्य प्रकार से भी कलात्मिकता भरने का प्रयत्न किया है। श्री बल्लभाचार्य जी के अनुसार लीला ही मोक्ष है। यद्यपि इस लीला का रंग-स्थल संसार है, तथापि संसार और सांसारिकता से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। श्री बल्लभाचार्य तथा पुष्टिमार्गीय भक्तों ने ब्रज को संसार से अलग माना है और उसे गोलोक की प्रतिष्ठाया कथवा गोलोक ही समझा।

### गोपी-

एक पद में दूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण गोपी और ग्वाल में अन्तर नहीं है-

“गोपी-ग्वाल, कान्ह बुड नाही ये कहूं नेक न न्यारे।”

एक अन्य स्थान पर स्पष्ट होता है कि गोपियाँ ब्रज-वातावरण नहीं हैं, बरन् भुक्ति हैं। सुबोधिनी टीका में श्री बल्लभाचार्य जी ने गोपियों को भुक्ति माना है। एक दूसरे स्थान पर आचार्य जी ने गोपियों की लक्ष्मी का ही बहुरूप बताया है। गोपियों को ब्रज की शक्ति भी सम्पन्न जा सकता है जो लीला के लिए बहुरूप ही गई हैं। भगवान् और उनकी शक्ति में कोई भेद नहीं है। अतः कृष्ण और गोपियाँ अभिन्न हैं, वे ब्रज के ही अंग हैं। कृष्णलीला का अन्योनित रूप लेने वाले विद्वान् यह भी कहते हैं कि गोपी वात्मा है और कृष्ण परमात्मा। वात्मा भगवान् का अंग होने के कारण अपने अंगी से मिलने का प्रयत्न करती है और वात्मा-अप गोपियों का, कृष्ण में कृष्ण-मिलन ही वात्मा का भगवान् से मिलन है।

राधा भगवान् की शक्ति है, प्रकृति या माया का प्रतीक है।

मन्त्रित- काव्य में वर्णित होने के कारण राधा<sup>मा</sup> द्वारा प्रतीकार्य भी निकाला जा सकता है। राधा अनुग्रह प्राप्त मन्त्र का प्रतीक है जो वाचपति की वनेक दशाओं को प्राप्त होता हुआ परम विराहसन्त ही जाता है। उस समय वह इन्द्रियों के विषयों से ऊपर उठ जाता है और उसका अस्तित्व केवल "विरह की पीर" रह जाता है। सुरदास जी ने जिसको राधा के प्रतीक से स्पष्ट किया है, उसी भाव के स्पष्टीकरण के लिए जायसी ने नागमती की कल्पना की थी और कबीर जैसे संतों ने स्वयं को "राम की बहुरिया" कहकर विरह की चरमावस्था प्राप्त करने की चेष्टा की थी। मन्त्र का लक्ष्य भी राधा की तरह विराहवर्धित की उसी उच्च दशा को प्राप्त करना है। एक अन्य पद में सुर राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष कहते हैं। सुर यह भी कहते हैं कि दोनों राधा और कृष्ण एक हैं। उनमें कुछ भी अन्तर नहीं, वे अभिन्न हैं -

अहि की बापहु फिरायी ।

प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायी ।

जल धल जहाँ रहौं तुम बिनु नहीं वेद उपनिषद् गायी ।

१- तन जोष- एक हम दोउ, सुत- कारन उपजायो ॥

ब्रज- रूप बितिया नहीं कोऊ, तन मन तिया बनायो ।

सुर स्वाम- मुल पैलि कलप हंसि, आनंद- पुन बढायो । " १

### मुरली-

सुर की सबसे अधिक रहस्यात्मक उचितियाँ मुरली के सम्बन्ध में हैं। मुरली कृष्ण की अन्यतम शक्ति है, जो स्वयं उन्हें प्रेरित करती है। वर्तन संबंधी

सिद्धान्तों में मुरली को भगवान् की माया कहा गया है। यहाँ माया से तात्पर्य भगवान् की शक्ति से है। इस शक्ति के दो पद माने जाते हैं। एक पक्ष प्रेय की उत्पत्ति करता है और दूसरा प्रेय की। इन्हीं को विद्या और अविद्या कहा गया है। इन्द्रियों और संसार तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओं का ज्ञान अविद्या है। ब्रह्म का ज्ञान विद्या है। जो माया अविद्या को उत्पन्न करती है, वह भगवान् का अग्रह होने पर विद्या को उत्पन्न करती है और भक्त को ईश्वर से मिलाने का साधन बनती है। दर्शन में इसी माया को "योग माया" कहा गया है। मुरली की इसी शक्ति प्राकृत विशेषता का वर्णन सूर के अनेक पदों में मिलता है :-

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी । सुनि सिध-समाधि टरी ।

सुनि धके देव विमान । सुर-वधु चित्र-समान ॥

ग्रह नखत तजत न रास । बाइन बीच धुनि-पास ।

चल थाके, जबल टरे । सुनि जानन्द-उमंग भरे ।

चर-ज्वर-गति विपरीति । सुनि धेनु कल्पित गीति ।

फरना न फरत पणान । गंधा मोहे गान ।

सुनि लग पुन मौन धरे । फल पुन की सुधि बिसे ।

सुनि धेनु धुनि अकि रहति । पुन दंतहू नहिं गहति ।

बहरा न पीवै होर । पीवै न मन में धोर ॥

----- इत्यादि १

जगर हम मुरली की दार्शनिक व्याख्या करना चाहें तो कह सकते हैं कि मुरली के रूप के द्वारा सूर ने शब्द-ब्रह्म की पहला स्पष्ट की है।

रास-लोला-

रास-कुष्ण-लोला का प्रधान रंग है। यह भगवान् की क्रीड़ा

है। दार्शनिक पक्ष में वह सृष्टि के आविर्भाव और तिरोभाव को सूचित करता है। उस विद्वानन्द सत्ता के लिए सृष्टि और प्रलय का कोई अर्थ नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में बुलबुल उठते हैं और लीप ही जाया करते हैं, उसी प्रकार उस सत्ता से जड़ और चेतन का जन्म और विकास होता है। अन्त में सब दृष्ट अगत् उसी में लुप्त हो जाता है। वास्तव में यह सब लीला मात्र है। रास-लीला में कृष्ण पाश्र्व हैं और गोपियाँ और राधा उन्हीं से विकसित जीवात्मा के रूप हैं। लीला मात्र के लिए उनका जन्म होता है। तत्पश्चात् वे उसी में लय हो जाते हैं। यह रास सारी सृष्टि में व्याप्त है और दिव्यकालात्मक वैशिष्ट्य है। ब्रह्म से जीव उत्पन्न होता है और अन्त में उसी में लय हो जाता है। साधारण मनुष्य इस भेद को समझ नहीं पाता। अतः भगवान् गोपियों की उत्पत्ति करके रूप के रूप में अपनी लीला भवत के सामने रखते हैं। जो इस लीला के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, वह उसमें रमता है और वह भगवान् से अभिन्न रहता है। लीला द्वारा वह भगवान् को प्राप्त करता है।

रास की यह लीला जलौकिक है। इसका सुख अनिर्वचनीय है। जो एक बार भगवान् की लीला में भाग लेते हैं, वही इसको समझ पाते हैं। भगवान् के मिलन का सुख इन्द्रियेतर है। उसका अनुभव भगवत्कृपा के बिना नहीं हो सकता। इसलिए भवत रास की रंगस्थली वृन्दावन, यमुनातट, तमाल-कुंज और उन गोप-गोपिकाओं को धन्य कहते हुए नहीं शकता। जो इस रास में भाग लेते हैं और जिन्हें भगवान् का अनुग्रह प्राप्त हुआ है, उनका लक्ष्य यह है कि वे उन गोपियों से तादात्म्य स्थापित कर लें और रास में भाग लें। अतः कृष्ण-भवत-कवि रास, लीला आदि में मानसिक भाग लेकर भगवत्-मिलन के आनन्द की प्राप्ति करता है। भगवान् की लीला की नित्यता और उसकी जलौकिकता को योनिगत करते हुए दूर दूर में लिखा है-

नित्य धाम वृन्दावन स्याम । नित्य रूप राधा ब्रजधाम ॥

नित्य रास जल नित्य विहार । नित्य मान संहिताभिसार ॥



ब्रह्म- रूप येई करतार । कल हल त्रिभुवन येई चार ।

नित्य कृष्ण- सुख नित्य हिंदोर । नित्यहिं त्रिविध- समीर फकीर ।

सदा ब्रह्म रहत जई वास । सदा हर्ष, जई नहीं उदास ॥ १

सुरदास ने जिस वृन्दावन की कल्पना की है, वह पार्थिव होते हुए भी अपार्थिव है। क्योंकि लीला का रंगस्थल लौकिक नहीं हो सकता । उसी वृन्दावन में कृष्ण की लीला सदैव चलती रहती है। स्पष्ट है कि कृष्ण- भक्तों का रास वास्तव में ईश्वर- स्वीकृति का रूप है। रास के इस बाध्यात्मिक रहस्य से सुर अवश्य परिचित थे । उन्होंने लिखा है -

रास- रस- रीति नहीं बरनि जावै ।

कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहाँ, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम मुलावै ॥

जो कहौं, कौन मानै, जो निगम-जगम-कृपा बिनु नहीं या रसहिं पावै ।

भाव सौं भजै, बिनु भाव मैं ये नहीं भावहीं पाहिं ध्यानहिं बसावै ॥

यौं निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है दस- दंपति भजन सार गाऊँ ।

यौं मार्गों बार- बार प्रभु सुर के, नैन दीउ रहीं, नर- देह पाऊँ ॥ २

रास की बाध्यात्मिकता से नन्ददास भी परिचित थे । रास- पंचाध्यायी के अन्त में नन्ददास ने लिखा है-

नित्य रास रमनीय, नित्य गौपी जनवल्लभ ।

नित्य निगम यौं कहत, नित्य नवतन वति दुलभ ।

यह अद्भुत रसरास कहत कहु कहि नहिं जावै ।

सेस सहस मुख गावै , कजई ब्रह्म न पावै ।

भवत- कवयित्री मीराबाई के जेक पदों में हमें रहस्यवाद की फलक मिलती है। मीरा जहाँ एक ओर 'निर्गुण' की वर्णा करती दिताई देती है, वहाँ दूसरी ओर 'वृत्तिमान सौन्दर्य' की 'गिरधरलास' (सगुण ब्रह्म)



के प्रेम में डूबी सामने जाती हैं। इस प्रकार मीरों में सगुण और निर्गुण रहस्यवाद की समस्या का भी निराकरण हो जाता है। कभी वे कहती हैं :-

रमैया किन नींद न आवै ।

नींद न आवै बिरह सतावे प्रेम की जांच हुआवै ।

किन पिया ज्योत मंदिर बंधियारी, दीफ़ दाय न आवै ।

पिया किन मेरी सेज कहुनी, जागत रेण बिहावै ।

० ० ०

मीरा के प्रभु कबरे, मन मोहन मोहि मावै । १

मीरा "गिरधरलाल" को प्रिय के रूप में मानकर उनके तादात्म्य स्थापित कर सदा जानन्द-विभोर होना चाहती हैं -

" पिया जब घर जाज्यो मेरे , तुम मोरे हूँ तोरे ।

मैं जन तेरा पथ निहाई, मारग चितवत तोरे ।

जबध कदीती कजहुं न जाये , दुतियन रूँ मेह जोरे ।

मीरा कहे प्रभु कबरे मिलौगे, दरसन किन दिन दोरे । २

और-

" म्हारे जाज्यो जी रामां, धारे जावत वास्यां सामां ।

तुम मिछलियां मैं बोहो सुत पाऊं, सरैं मनोरथ कामा ।

तुम बिब हम बिब अंतर नाहीं, जैसे घूरज घामा ।

मीरां के मन कबर न माने , चाहे सुन्दर स्यामां । ३

मीरा यही सातसा रखती हैं कि कभी न कभी अवश्य ही उस "पिय के फलंग" पर "पौंद" कर "हरिल" में पूर्णतः रंग जायेंगी-

म्हां गिरधर बागां नाच्यारी ।

ॐ णाच णाच म्हां रसिक रिफावां, प्रीत पुरातन जांच्यारी ।

स्याम प्रीत रो बांधि घूघर्या मोहण म्हारो सांच्यारी ।

१- मीरा की कदावली ( सं० परशुराम चतुर्वेदी ) पृष्ठ सं० ७४ नवंबर संस्करण

२- मीरा की कदावली " " " १९४

३- " " " " १७

लोक लज कुलरा मरज्यादा जगमां जोकणा राख्यारी ।

प्रोतम फल जब णा बिसरावां, मीरा हरि रंग राख्यारी । १

“पिय” की प्रतीक्षा में वे प्रति क्षण लड़ी हैं। संपूर्ण संसार सुप्तावस्था में है। पर उनकी विरहिणी आत्मा किसी की याद की टीस में बांधुओं की माला पिरोती रहती है। रात के एक-एक पल तारे गिन गिन कर कटते हैं :-

विरहिन बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पौर्व ।

एक विरहित हम ऐसी देखी कसुवन की माला पौर्व ॥

तारा गिण गिण रैण बिहानी सुख की यही कब जावै ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलै बिहू न जावै ॥ २

मीरा की सारी प्रकृति हरि के संयोग-वियोग में रमी दीख पड़ती है-

मतवारो बाबर बाहर रे, हरि को सेवो कबहुं न लाये रे ।

दाबर मोर पपझ्या बोलै, कोयल सबद सुणाये रे ।

(एक) कारी लंघियारी किजली चमकै, विरहणि बति डरपाये रे ।

(एक) गावै बावै पवन मधुरिया, मेहा बति फड़ लाये रे ।

(एक) कारी नाग बिह बति जारी, मीरा मन हरि भाये रे । ३

दीर्घ कालीन प्रतीक्षा के बान अवन्त में “पिय” से मिलन होता है और सुख की सीमा नहीं रहती-

म्हारो जालेगिया घर जाज्यो जी ।

तणरी ताप फिट्यां सुख पास्यो, हिलमिल काल जाज्यो जी ।

घणरी धुण सुण मोर माण मयां, म्हारे जगिण जाज्यो जी ।

चन्दा देख कमोदण फूलो, हरल मयां म्हारे जाज्यो जी ।

रम रम म्हारो सीतल सजणी, मोहन जगिण जाज्यो जी ।

सब मगतारा कारज साधां, म्हारा परण निभाज्यो जी ॥ ४

१- मीरा की पदावली - सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १७

२- मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां - डा० सावित्री सिन्हा पृ० १३६ से उद्धृत

३- मीरा की पदावली - सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० ८९ नवां संस्करण

४- वही पद सं० ११६

कवयित्री मोरारि के ऊपर उद्धृत पदों में रहस्यात्मक दृष्टि  
 कोण स्पष्ट रूप से हमें देखने को मिलता है। "गिरधर" को पति मानकर उनसे मिलने  
 के लिए तड़पती रहती हैं। यह जीवात्मा के परमात्मा से मिलन की और स्पष्ट संकेत  
 है।

शब्द वधाय  
.....

काव्य- कला -- १  
.....

भाव- पदा  
.....

## बाल्यार भवत और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भवत-कवि

काव्य-कला

भाव-पदा

— तुलनात्मक अध्ययन —

भाव-पदा का सामान्य विवेचन-

काव्य की कितनी ही परिभाणाएँ दी गयी हैं ! काव्य के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न विद्वानों ने किया है और अपने अपने ढंग से उसका विवेचन भी किया है। काव्य-कला के विषय में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय परम्परा में काव्य को पार-चात्य ढंग से विभाजित नहीं किया गया है। यहाँ के आचार्यों ने काव्य की परिभाणा, प्रयोग, गुण-दोष तथा विविध अंगों पर पर्याप्त मात्रा में विचार किया है। यहाँ रस और अलंकारों को विशेष महत्व दिया गया है और मूल-वृत्ति काव्य की आत्मा की ओर रही है। मानव ने "शब्दार्थ सहित काव्यम्", मम्मट ने "तद्दोषां शब्दार्थ", विश्वनाथ ने "वाक्य रसात्मक काव्यम्" तथा पंडितराज जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" माना है। इन परिभाणाओं में बाह्य अन्तर होते हुए भी वास्तविक अन्तर नहीं है, क्योंकि प्रायः सभी आचार्यों ने रस को ही काव्य की आत्मा अंगीकार किया है और अलंकार को उसका सहायक तथा गुणों को उत्कर्ष हेतु माना है।

काव्य का मुख्य आधार भाव है। रस भाव की अभिव्यक्ति माणा द्वारा होती है। इन्हीं दो तत्वों के आधार पर विद्वानों ने काव्य के दो पदा माने हैं :- अन्तर्ग और बहिर्ग। इसी को भाव पदा और कला-पदा अथवा अनुभूति पदा और रूप पदा भी कहते हैं। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का पार-



स्परिक सम्बन्ध ब्रम्भित है, उसी प्रकार भाव और कला परस्पर सम्बन्धित हैं। एक के अभाव में दूसरे की स्थिति असम्भव है। जिस प्रकार जीवन शरीर और आत्मा के स्तुतु पर निर्भर है, उसी प्रकार काव्य का जीवन भी भाव और कला के पारस्परिक यौग पर आधारीत है।

भावः पद का प्रधान अंग है। भाव और रस में अन्योन्यात्रय- भाव सम्बन्ध है। काव्य का लक्ष्य ही रस परिपाक होता है। रस- परिपाक में भाव महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों के अन्योन्यात्रय सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए भरत मुनि ने लिखा है- "न भाव हीनोस्ति रसो न भावो रसवर्जितः" रस की निष्पत्ति भावों के विविध स्वरूपों के सम्मिश्रण से होती है। "विभावानु- भाव व्यभिचारी संयोगात् रस निष्पत्तिः" भरत मुनि के इस सूत्र में विभाव अनुभाव व्यभिचारी- भाव आदि शब्द भाव के ही विविध रूपान्तर हैं। इन्हीं के उचित सम्मिश्रण से काव्य में हृदय सम्वादी गुण का विकास होता है। एक के हृदय का दूसरे के हृदय के अनुकूल होना ही हृदय सम्वाद कहलाता है। आलोचकों ने हृदय- सम्वाद और साधारणीकरण को पर्यायवाची माना है। साधारणीकरण रसानुभूति की पराकाष्ठा है। इसी स्थल पर आकर कवि की भाव- धाराएँ सर्वसाधारण की भावनाएँ हो जाती हैं। कवि की भावनाओं का यथार्थ रूप में अनुभव होने पर रसानुभूति होती है।

काव्यानन्द आनन्द का सहोदर कहलाता है। उस काव्य से क्या प्रयोजन है, जो आनन्द का उद्देश न करे, रस- वर्णन द्वारा हृदय के हृदय को आनन्द से आत्मावित न कर दे ? आनन्द या रस हृदय पद अथवा भाव-पद की अनन्य निधि है। जिस काव्य में यह निधि वर्तमान है, वही श्रेष्ठ काव्य है।

भावानुभूति और रसानुभूति में बहुत कम तात्त्विक भेद है। भावानुभूति की स्थिति कलाकार में मानी जाती है और रसानुभूति पाठक या श्रोता की होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि कलाकार रसानुभूति से और पाठक काव्यानुभूति से वंचित रहते हैं। दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न रूप हैं। कवि में

विधाक कल्पना की अपेक्षा रहती है और पाठक में ग्राहक की। सौन्दर्यानुभूति भावों की जन्म देती है। भाव के उदय होने पर कलाकार अपने काव्य की सृष्टि करते हैं। पाठक या श्रोता काव्य रूप में परिणत इन्हीं भावों की रसानुभूति करते हैं। इस प्रकार सौन्दर्य-भावना काव्यानुभूति की जननी सिद्ध हुई और काव्यानुभूति रसानुभूति की।

काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त सामान्य विवेचन के पश्चात् बाल-वार भवतों के तथा बालीय कालीन हिन्दी कृष्ण-भवत-कवियों के काव्य के विषय में हमें यह कहना है कि मन्त्रित-भाव से प्रेरित होकर काव्य के क्षेत्र में प्रवृत्त होने वाली इन कवियों के काव्य में विविध भावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। जब भाव तन्मयता के कारण सान्द्र एवं सघन रूप धारण करता है और मानव हृदय देर तक आस्वादन करता हुआ उसमें रमण करने लगता है तब रस की सृष्टि होती है। बालीय काव्य में विविध रसों की सुन्दर व्यञ्जना हुई हैं। जागामी पृष्ठों में बालवार तथा बालीय हिन्दी कृष्ण-भवत-कवियों के काव्य के भाव-पदा का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

### भाव-चित्रण और रसानुभूति

#### वात्सल्य-

वात्सल्य मानव की मूल मनोवृत्तियों में एक है। वात्सल्य में वत्सलता का भाव है। वत्सलता सामान्य रूप से संतति-प्रेम की ओर रूढ़ करती है, परन्तु वास्तव में हृदय की जितनी सान्द्रता इस भाव में अभिव्यक्त होती है, उतनी दूसरे किसी भाव में नहीं। यह भाव कृष्ण-भवतों का सर्वस्व है, उनकी अपनी मौलिकता है। वात्सल्य-भाव में जिस विषय की ओर रूढ़ि है, वह भी अपने में लक्ष्मण है। यों तो माता तथा पिता का अपनी संतति से प्रेम स्वाभाविक है।

परन्तु वह सामान्योन्मुख प्रेम वात्सल्य की भाँसा को भी स्पर्श नहीं करता । वात्सल्य में जहाँ एक ओर विनयितर विरचित का भाव है, दूसरी ओर इसमें पूर्ण तन्मयता और समर्पण का भाव है। यही इस भाव का वैशिष्ट्य है।

बालवार मन्तों के तथा बालोच्च हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में वात्सल्य - भाव का उष्णकोटि का चित्रण हुआ है। इन कवियों ने बाल-बेष्टा, बाल-स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा वात्सल्य को रस-कोटि तक पहुँचा दिया है। बाल स्वभाव की वीर्य जो क्रिया ज्यवा बेष्टार और बाल्य काल की जो उर्मि मरी निश्चल तथा मोती झीझर होती हैं, उन सक्ता विश्व तथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण इन कवियों के काव्य में हुआ है।

वात्सल्य का सजीव, सरस और वाक्पङ्क्ति वर्णन करने में हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों में महात्मा सुरदास का स्थान सबसे ऊँचा है। बाल-वर्णन की सजीवता, मार्मिकता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से जो स्थान हिन्दी में सुर को प्राप्त है, वह तमिल में पेरियाल्वार को मिला है। तमिल में पेरियाल्वार ही ऐसे प्रथम कवि हैं, जिन्होंने अत्यधिक विशाल ऋतु पर कृष्ण की बाल-लीलाओं के सुन्दर चित्र वर्णित किये हैं। पेरियाल्वार ( सातवीं शती ) ने बाल सुलभ बेष्टाओं और अन्तर्दशाओं का वैसा सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्रण अपने काव्य में प्रस्तुत किया है, वैसा वाज तक तमिल में कोई कवि प्रस्तुत नहीं कर सका । अपने बाराध्य के बाल रूप का वर्णन करने की जो पद्धति तमिल में " पिल्लै-तमिल " के नाम से प्रसिद्ध है, उसके जन्मदाता पेरियाल्वार ही हैं। पेरियाल्वार ने अपने बाराध्य लीला-नायक कृष्ण की बाल बेष्टाओं का वय-विकासानुसार जो सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया, उसकी सजीवता और मार्मिकता को देखकर परवर्ती कवियों ने उस विशिष्ट पद्धति को वादश रूप में अपनाया और उस शैली को " पिल्लै-तमिल " के नाम से अभिहित किया ।

बालवारों तथा बालोच्च हिन्दी कवियों द्वारा वर्णित बाल-स्वभाव चित्रों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करने के पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि तमिल के पेरियाल्वार ने " पिल्लै-तमिल " की पद्धति में बाल-बेष्टाओं का

वय- विकासानुसार जो मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, उसका संक्षेप में परिचय दिया जाय। सभी पेरियाल्वार के वास्तविक महत्व को जाना जा सकता है। पेरियाल्वार ने देवी- दान से बाण्डरु को शिशु रूप में प्राप्त किया था और उसका पालन- पोषण किया था, शिशु की बात- बेटावों का अत्यन्त निकट से अवलोकन करने के कारण ही पेरियाल्वार का बात- वर्णन सजीव और मार्मिक बन सका है। यही कारण है कि उनके वात्सल्य में कहीं भी कृत्रिमता दिखाई नहीं देती। पेरियाल्वार<sup>ने</sup> अपने वाराध्य तीस्ता- नायक कृष्ण के जन्मकाल की दस वय- सण्डों में विभाजित कर प्रत्येक में होने वाली विशिष्ट बात सुलभ- बेटा का चित्रण किया है, जो बात- मनोविज्ञान की कसौटी पर भी सरा उतरता है।

“पिल्लै- तमिल” में वर्णित दस वय- सण्ड इस प्रकार हैं - “काप्पु, वैकीर, ताल, चप्पाणी, मुलम, वाराने, अम्बुलि, चिरु परी, चिट्टिल चिदैल और चिरु तेरोट्टल।” “काप्पु” का अर्थ है “रक्षा”। यह शिशु के दो मास की अवस्था को सूचित करता है। माता कभी अपने बालक के सवले रूप पर न्याहावर होती है तो कभी दृष्टि खाने के भय से विश्वम्भर से उसकी रक्षा की प्रार्थना करती है। “वैकीर परुवम्” अर्थात् वय- सण्ड शिशु की वह अवस्था<sup>जब</sup> वह (वैकीर पीधे के समान) सिर को ऊपर उठाकर खिलता है। यह शिशु की वह बेटा है, जबकि उसकी अवस्था पांच महीने के लगभग होती है। “ताल” वह वय- सण्ड है जब माता शिशु को पालने में लिटाकर लोरी गाकर उसे सुलाती है। शिशु लोरी की मीठी तान के वशीभूत हो सो जाता है। “चप्पाणी” अवस्था में शिशु अपने दो हाथों को मिलाकर ताली बजाता है और शर्णित होता है। “मुलम” शिशु की वह अवस्था है, जबकि वह दूसरों की प्रार्थना पर चुम्बन के लिए अपने मुँह को बागे खड़ा है। दूसरे लोग शिशु- बेहरे पर चुम्बन कर सुकृति होते हैं। “वाराने” वह वय- सण्ड है, जब माता

---

१- "Kappu" - section of Pillai Tamil describing the stage of childhood in which deities beginning with Vishnu are invoked to protect the child in about 2nd month of its birth, one of ten paruvams. - Tamil Lexicon.

- पिता शिशु को अपने पास बुलाते हैं और शिशु घुटनों के बल पर रेंगता हुआ उनके पास जाता है। यह लगभग एक वर्ष की आयु है। "बम्बुलि" में शिशु के चन्द-सितोना माँकर हठ करने का वर्णन होता है। बालक रेंगता हुआ बाग़िन में पहुँचता है और बाकाश पर स्थित चन्द्र को देखकर, उसे फँस कर उसके साथ खेलना चाहता है। चिरु-पर" बालक की उस अवस्था को सूचित करता है जब बालक आवाज पैदा करने वाली चीजों पर हाथ मारकर ध्वनि पैदा करता है और अस्पष्ट रूप से कुछ कहता है। "चिद्रित चिदैवत" में दूसरे बालकों या बालिकाओं द्वारा रेत पर या जमीन पर रेखाएँ खींचकर बनाये गये छोटे घरों को बालक के तोड़कर उन्हें चिद्राने का वर्णन होता है। "चिरुतेरौटल" - अवस्था में बालक में लड़े होने की शक्ति का जाती है। वह धीरे धीरे चलने लगता है। इस अवस्था में बालक छोटे रथ ( लकड़ी से बना सितोना ) को रस्सी से बाँधकर उसे खींचता हुआ गली में चलने लगता है। पेरिया-त्वार ने इस प्रकार वय-विकासानुसार शिशु की विभिन्न चैष्टाओं का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है, जो मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रतीत होता है। इन बाल-चैष्टाओं के अतिरिक्त पेरियात्वार ने कृष्ण की पाँगण्ड , किशोर-अवस्थाओं की, न जाने कितनी ही सीलाओं का वर्णन किया है। तमिल के बालवार भक्तों में केवल पेरियात्वार ने ही इतने विस्तार से कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन किया है। कुलसेहरात्वार, वा-प्टाल तथा अन्य बालवारों के फलों में बाल-प्रांगों की और उक्त मात्र है।

हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों ने यद्यपि पेरियात्वार की तरह बाल-चैष्टाओं के वर्णन के लिए किसी एक विशिष्ट प्रणाली को नहीं अपनाया तो भी सूरदास, परमानन्ददास आदि के काव्य में वे सब शैल्य के चित्रण मिल जाते हैं जो पेरियात्वार के काव्य में हैं। कहीं कहीं तो सूर पेरियात्वार से भी जाने के बड़े हैं। तमिल के पेरियात्वार और हिन्दी के सूरदास अपने अपने क्षेत्र में बाल-पाव के अमर खितीरे हैं। उनके समकाल का कवि अभी तक नहीं हुआ है। वास्तव्य की वजह धारा इन दोनों कवियों के काव्य में प्रवह मान है।

बच्चों की अत्यन्त साधारण चैष्टाएँ भी माता पिता के प्रमोद का कारण बन जाती हैं। यशोदा रानी जब अपने नन्हें से बालक की शिशु



सुलभ क्रीड़ाएं देखती हैं, तब उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहता । सूरदास जी के शब्दों में :-

बलत देखि जसुमति सुख पावै ।

हुसुफि- हुसुफि फा धरती रंगत, जननी देखि दिसावै ।

देहरि सौं बलि जात, बहुरि फिरि फिरि इतहीं कौं आवै ।

० ० ०

ताकौं तिर नंद की रानी , नाना खेल सिखावै ।

तब जसुमति कर टेकि स्याम कौं, क्रम- क्रम करि उतरावै ।

सूरदास ऋषु देखि- देखि, सुर- नर- मुनि- बुद्धि मुलावै ॥ १

बालक कृष्ण मणिमय बांगन में अपने प्रतिबिंब को पकड़ने की कोशिश में हैं। कभी वे अपनी झाँह को पकड़ना चाहते हैं और कभी फिलक फिलकर अपनी वस्तुस्थितियों का सौन्दर्य दिखाते हैं। यशोदा सुत की क्रीड़ाओं को देखकर फूली नहीं समाती । बार- बार नन्द को इस सुख में शामिल होने के लिए बुलाती हैं । पेरियालवार तो ( यशोदा के स्थान पर ) बालक की अनुपम इवि को देखने के लिए गौकुल के समस्त नर- नारी को बुलाते हैं और बाल- सौन्दर्य का नख-शिल वर्णन करते हैं। उत्साहपूर्ण शब्दों में वे कहते हैं - " बाकर देखिए ! शिशु कितने मोलैपन के साथ अपने पैर की उँगलियों को मुँह में लेकर चाटता है ? इसके पाद- कमल का सौन्दर्य देखिए, है सुन्दर सल्लाह । इसके पैर की उँगलियाँ इस प्रकार शोभित हैं,

१- सूरदासर, ना० प्र० सभा पद सं० ७४४ पृ० ३०३

२- फिलकत कान्ह घुट्टरुबनि आवत ।

मणिमय कनक नंद हैं बांगन बिंब फरिबिं आवत ।

कबहुँ निरखि बापु झाँह कौं कर सौं फरन चाहत ।

फिलकि हंसत राजत हैं वस्तुस्थितियों, पुनि- पुनि तिरिहि अवगाहत ।

० ० ०

बाल दत्ता सुख निरखि जसोदा, पुनि- पुनि नंद बुलावति ।

- सूरदासर, सभा , पद सं० ७४५ पृ० ३६६

मानों मौती और रत्न एक सूत्र में संचित हैं। घुटनों के कल पर जांगन में रंगने वाली बच्चे का सौन्दर्य देखिए। कोमल नन्हें नन्हें करों की अनुपम हवि देखिए। सुन्दर विकसित सा मुल-कमल की बाहर देखिए। नन्हें के प्रकाश युक्त नयनों की देखिए। फनी छोटी मूकटियों की देखिए। छोटे काले बालों का सौन्दर्य देखिए।

भवत प्रवर परियासवार ने कृष्ण को पालने में सुलाने के प्रसंग पर कई पद रचे हैं, जिनमें माता यशोदा के मातृ-हृदय का भाव सौन्दर्यपूर्ण प्रभा के साथ प्रकट हुआ है। परियासवार की यशोदा प्रिय सुत को पालने में लिटाकर उन्हीं सुलाने के लिए लोरी गाती हैं - "मौती तथा रत्न संचित सुन्दर पालने की प्रज्ञा ने तुम्हारे लिए मेजा है। हे सुत। 'तासिलो' (सो जाना) इन्द्र ने भी तुम्हारे लिए किंकिणी मेजी है। हे भरे राधा। देवताओं ने तुम्हारे लिए सुन्दर सुन्दर फूल

१- "फैदूकुलवी पिठितुवुवतुण्णुम

पावकमंजुल काणीरे फलवायीर। वन्तु काणीरे।"

- परियासवार तिरुमोली १-२-१

२- "मुमुम मणियुम वयिरमुम नन्पान्नुम

तविप्पत्तितु तले पेळ्त्तार पील खूम

फुविरुम मणिवण्णन पावकं

वीविट्टिरुन्त्ता काणीरे वीण्णुदलीर। वन्तु काणीरे।"

- वही १-२-२

"फलन्ताम्पालोज्ज पयत्त तवत्तान

मुलन्ताल इरुन्त्ता काणीरे। मुक्कि मुलैयीर। वन्तु काणीरे।

- वही १-२-४

"कण्कल इरुन्त्ता काणीरे कनवैलीर। वन्तु काणीरे।

- वही १-२-१६

"पुरुवम इरुन्त्ता काणीरे, पूण मुलैयीर। वन्तु काणीरे"

- वही १-२-१७

चुनकर भेजे हैं। तुम रोजी मत । रो जाओ । भूदेवी तुम्हारे लिए जैन और सिन्दूर लेकर जायी है। हे नारायण । ताले लो — रो जाओ । ”

सूर का फा और भी सुन्दर है :-

“ जसोदा हरि पालनं भुलावै ।

हलरावै, हुलरावै, मलहावै जोई- सोई कहू गावै ।

भेरे लाल कौं जाड निदरियां काहे न जानि सुवावै ।

तू कहीं नहिं वेगहिं जावै, तोकौं कान्ह बुलावै ।

कबहुं फलक हरि मूढ लेत हैं, कबहुं जघर फरकावै ।

सोवत जानि मीन ह्वै कै रहि, करि- करि सैन बतावै ।

इहिं अन्तर कुलार उठै हरि, जसुमति मधुरै गावै ।

जो सुख सूर जमर- मुनि दुरात्म, सो नन्द भामिनि पावै । ” १

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

१- “ माणिक्यकम कटिह वयिरम झूकटिह

जाणि पौन्नाल वैस्त वण्णच्चिरु तीट्ठिल

पेणि पिरमम विहु तन्तान

मणिक्यकुरलने । ताले लो । वेयमलन्ताने तालेलो ”

“ इन्दिरन तानुम रत्तिलुङ्गे किणिणी

तन्तु उवनाय निन्दान, तालेलो । तामह्वकण्णने तालेलो । ”

“ चय्य तट्ठकण्णुक्क जैनमुम सिन्दूरमुम

वेय्य कलम्पाकि कोण्डु उवनाय निन्दान

रेया । जल्ल जल्ल । ताले लो । जगज्जीयाने । ताले लो ”

- परियालवार तिरुमोली १-३-१, ३ और ६

२- सूर सागर ( ना० प्र० समा ) फा सं० ६६१ पृ० २७६

इन पंक्तियों में वैसा स्वाभाविक तथा मनमोहक चित्र सूर ने उपस्थित किया है।

परियालवार की यशोदा अपनी सहेलियों से शिकायत करती हैं - " पालने में छोड़ो, तो ऐसा पद-प्रहार करता है कि उसके टूटने का डर होने लगता है। गोद में उठा लूँ तो कमर तोड़ देता है। छाती से लगा लूँ तो पेट फाड़ देता है। मुक्ति से नहीं होती इस की चार-संभाल, सही में क्या कहें ? " इस शिकायत में भी माता की ममता बोल रही है।

चन्द - सिराने का वर्णन दोनों भावनाओं के कवियों ने किया है। सूर के बाल-कृष्ण कहते हैं -

" भैया, मैं तो चंद सिराना तेहँ ।

जहाँ लोटि धरनि पर जवहीं, तेरी गोद न रहँ ।

सूर भी कौ पय पान न करिहँ, बेनी सिर न गुहँ ।

हूँकँ पूत नंद बाबा की, तेरी सुत न कहँ । " २

0

0

0

" भैया रो मैं चंद लहँगी ।

कहा करौं जलपुट भीतर की, बाहर ब्याँकि गहँगी ।

कह तौ फलमलात फकफोरत, कैसे के सु लहँगी ।

कह तौ निपट निपटहीं देखत, बरज्यौ हँ न रहँगी । " ३

१- " किटविकल तोटिटल किलिय उदैपिहुम

सुतवकीलिल मरुँकियिरुपिहुम

बोहुवकीपुल्लिल उदरु पावन्तिहुम

भिहुविकलुलामेयाल नान मेलिनैत नकाय । "

- परियालवार तिरुमोली १-१-६

२- सुखागर ( ना० प्र० समा० ) पद सं० ८११ पृ० ३२७

३- वही पद सं० ८१२ पृ० ३२७

परियालवार की यशोदा पुत्र की पांश पर चन्द्र को संशोधित कर कहती हैं-“ हे विशाल चन्द्र । मेरा “ चिरुकुटन ” ( झीकड़ा ) जो मेरे लिए अमृत के समान अमूल्य है, जो मेरा सौभाग्य है, वही नन्हे कोमल करों से तुम्हारी ओर लपकात कर तुम्हें बुला रहा है । यदि तुम उस श्यामवर्ण वाले के साथ खेलना चाहते हो तो मेरी के पीछे छिप जाओ मत । पर उड़ते-कूदते जा जाओ । ”

( परियालवार ने “ चिरुकुटन ” शब्द के प्रयोग द्वारा मातृ वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित की है ) माता का हृदय बच्चे को किंचित भी कष्ट होते नहीं देख सकता। यशोदा चन्द्र से कहती हैं-“ हे चन्द्र, जल्दी जा जाओ । देर मत करो जिससे उस विचित्र नन्हे के चारु कर तुम्हें बुलाते बुलाते धक न जायें । ” चन्द्र का सौन्दर्य भी माता के लिए अपने पुत्र के सौन्दर्य के सम्मुख कुछ भी नहीं है। यशोदा चन्द्र की खिलती उठाती कहती हैं-“ ज्योतिर्मय रथ पर विराजमान होकर सर्वत्र प्रकाशमान चन्द्र। क्या तुम्हारा सौन्दर्य मेरे सुत के मुख की कान्ति की बराबरी कर सकता है। देखो । मेरे लाल के सुन्दर मुख से अमृत सम लार टपक रही है और मेरा लाड़ला तौतली बीली से तुम्हें बुला रहा है। मेरे सर्व प्रिय के यों बुलाने पर भी तुम नहीं जाओगे तो मैं तुम्हें बहरा ही समझूंगी । ” फिर वह चन्द्र से प्रार्थना करती हैं-“ मेरे लाल

१- “ स चिरुकुटन एककोर इन्नुमु रंपिरान  
तन चिरु कैलाल काटिट काटिट यैविकन्दान  
कैलन वण्णनौडु बाडलाड उरुदिये  
मैजिल मरैयादे मामति । मकित्तोडी वा । ”

- परियालवार तिरुमोली १-४-२

२- “ खनै वैन्नुम स मलन मुक्क मरौव्वाय  
विवकन वैकटवाणन उन्ने विलिविकन्द  
कैलम नौवामे वण्णुली । कडितोडी वा ”

- वही , १-४-३

३- “ कलकियवायिल अमुदवूरल तेलिवुरा  
मल्लिमुद्रात ईलवौल्लाल उन्ने कूनुकिन्दान  
कलुकन शिरीवरन कूवकूव नी पौदिये  
पुल्ल यिलवाकाते निनवैविकुकर मामती । ” परियालवार तिरुमोली १-४-४



को नौद जा रही है। वह जमाई ले रहा है। यदि वह अब सो नहीं पायेगा तो उसका अभी पिया हुआ दूध नहीं पीगा और पेट को बिगाड़ देगा। इसलिए तुम उसकी मांग पर जल्दी जा जावो। “ अब चन्द्र पर माता के शब्दों का असर पड़ता नहीं दीखता, तब वह उसे बेतावनी दे जाती है - “ मेरे सुत का तिरस्कार मत करो कि यह झोटा बालक है। समझ लो, यह वह बालक है जो एक बार बट- पत्र पर छोड़ा था। यदि वह अपनी शक्ति दिखाना चाहे तो अभी उठकर तुम्हारे ऊपर कूदकर, तुम्हें फाड़ सकता है। वतः इस लीर जल्दी जा जावो। “

माता अपनी बालक के सचले रूप पर अभी नवीजावर होती है, तो अभी दृष्टि लगने के भय से “ राई- नौन ” उतारती है। अभी विश्वम्भर से रक्षा की प्रार्थना करती है। परमानन्ददास का निम्नलिखित पद देखिए-

“ यह तन वारि डारों कस्त नयन पर सविधिया मोहि मावे रे,  
चरन कस्त की रेनु जखौदा है है सिरहिं चढ़ावे रे।  
है उड़ी मुख निरखन लागी, रहि रहि लौन उतारै रे,  
कौन निरासी दृष्टि लगाई है है अवर फरै रे।  
तू मेरी बालक हो। नन्दनन्दन तोहि विसम्भर राखे रे,  
“ परमानन्द ” स्वामी चिर जीवहु बार बार यों मावे रे। “ ३

१- “ कण तुयि कौलकक रुदि कौटुकी कौलकिन्दान  
उष्ट मुँहप्यारफष्टा उरुकाविहित  
विष्टमित मन्मिय मामती । विरैन्तीडो वा ”

- वही , १-४-४

२- “ बालकनेन्दु परिफम चरुत पण्टीरुनाल  
वातिनिल वलन्तं चिरुचकनवन स्वन  
मैलप्याइन्तु पिहिलुवकौलुम कौलुमैल  
मासे मतियाते मामती । मकिलन्तीडो वा ”

- वही १-४-७

३- अष्टहाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ७०२ से उद्धृत

पेरियाल्वार की यशोदा भी कृष्ण को "दृष्टि-दोष" से बचावे के लिए उसके हाथ में कंकण ( मंत्र फुंकर कर कंकण पहनाने का रिवाज ) पहनाने के लिए, अपने पास बुलाती हैं - " है लाला ! ऐसी गोधूलि भेला मैं चौराहे पर मत जाओ । लोगों की नजर लग जायगी । मेरे पास जाओ । " दृष्टि-दोष - परिवार के लिए यह कंकण फन लो । "

कृष्ण का उलट जाना, घुटनों चलना, देहली पार करना, यशोदा द्वारा चलना सीखना, डगमगाकर चलना, फिर दौड़ने लगना, दूध के दांत निकलना, तोतली बोलती बोलना आदि उनके बच-विकास के साथ घटित होने वाली अनेकानेक बातों को तमिल में पेरियाल्वार ने तथा हिन्दी में प्रमुख रूप से सूरदास और परमानन्ददास ने अत्यन्त स्वाभाविक और भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। इस प्रकार इन कवियों के बाल-जीवन के चित्रण में सर्वांगीणता और संपूर्णता का पाई है। पेरियाल्वार द्वारा वर्णित बाल-कृष्ण के कुछ चित्र देखिए।

कान्हा के एक दांत फूटा है और वह मधुर हँसी हँस रहा है। यशोदा उस हँसि को देखकर कहती है- " लालिम आकाश में उगने वाले सौज के चांद की नौक की भाँति हँसने वाले लाल-लाल नन्हें मुँह के अन्दर से सुन्दर दाँत अँकुर फूट रहा है। " बालक जब घुटनों चलता है, तब किंकिणी की ध्वनि निकलती है । माता कच्चे को अपनी पीठ से लगाती है और स्पर्श मात्र से पुलकित हो उठती है। कान्हा धीरे धीरे चलने लगा । यशोदा बैठी है। कान्हा खिल खिलकर हँसता

१- पेरियाल्वार तिरुमोली २-८-२

२- " केवकरिहै नुमिकोपित तोन्दुम चिरुपिरे मुलैप्पोल

नवक चेन्नुवर वाडिचिण्ण मीति नलिर वेण्पल मुलैयित्तक "

- पेरियाल्वार तिरुमोली १-७-२

२- " किंकिणी कटिट किरि कटिट कैयिनित

कंकणमिट्टु क्लृषित तोटर चुटिट

तन कण्णसि चतिराट नडन्नु वन्नु

एन कण्णन एन्ने पुरम पुत्तुवान "

- वही १-६-२

हुवा जाकर उनसे लिपट जाता है और उनसे प्यार करता है। उसके मुँह से हँस-रस सी लार की धारा प्रवहमान है। वह शिशु-चुम्बन माँ के हृदय में वसूत-प्रवाहित कर करता है। बच्चे के विकास के प्रति माँ के हृदय में अदम्य उत्साह रहती है। उसकी समस्त क्रियाएँ और भावनाएँ उसी में केन्द्रित हो जाती हैं। माँ का प्रत्येक वाणी बालक के साथ कटता है।

बालक दूध पिये बिना ही रात को सो गया। माता यह प्रतीक्षा करती रहती है कि वह स्वयं जागेगा। परन्तु बालक थकावट के कारण जागा नहीं। माँ का हृदय यह मान नहीं सकता कि बच्चा मुँहा सोये। परिवार-वार की यकौदा बहुत चिन्तित होती हैं। सबेरा होते ही वह कृष्ण को जगाती हैं। यह लंका करके कि दूध पिये बिना ही अन्य बालकों के साथ खेलने चला न जाय, वह कृष्ण से कहती हैं-<sup>१</sup>“ लाला, तू मुँहा खेलने मत जा। दूध पीकर जाना।<sup>२</sup>” खेल कर कृष्ण धूल धूलरित होकर लौटता है। उसके चेहरे पर फलीने की नन्हीं लूँ मानों मोती के समान शोभित हैं।<sup>३</sup>

कृष्ण द्वारा दूसरों को “हाऊ” का भय दिताने का परिवार-वार ने कहा ही सरस चित्रण किया है। कृष्ण जल्दी से जल्दी लोल लोल कर बन्द करता है। हाथ की उँगलियों को एक विचित्र प्रकार से रक्कर, कुछ विचित्र ध्वनियाँ पैदा कर दूसरों को “भय” दिलाता है। यकौदा बच्चे की इस चेष्टा को देखकर फूली नहीं समाती।<sup>४</sup>”

१-“ कन्नकुट्टम तिरन्तालीपूरी कण कण चिरु वन्तु ।

मुन वन्तु निन्दु मुलम तरुम एन मुकिल वण्णन तिरुमार्वन ।

- परिवार-वार तिरुमोली १-७-४

२-“ कलणैयाय । जायरे । अम्ममुण्ण तुयिल्लाय

वु मुण्णादु एरुकि पोय इन्दु मुच्चि कोप्टताली । ”

- वही २-२-२

३-“ कम्मलप्पोदकपिल जणिकोल मुलम चिन्तिनार पोल

कम्मल मुलम वियर्प्य -----

कम्मल्लाम फुदियाल अल्लिय वेष्टा अम्मा । विम्म

कम्मल्लमुदात्तिल कम्मर कोवे । मुल्लियुणाय । ” वही २-२-६

४- परिवार-वार तिरुमोली २-२ -२ से १०

धूल धूसरित कृष्ण का सूर ने बहुत ही सुन्दर चित्र वंशित

“सोमित कर नवनीत लिह ।

बच्चे को दूध न पीता हुआ देखकर समयवस्त्रों के प्रति उसके

कबरी की पय पियूह लाल, जाहों तेरी बनि बह ।

यह सुनि के हरि पीवन लागे, ज्यों ज्यों लड़े । १

“ लोचन दोऊ भरि- भरि माता कनइवन देखत जिय मुखी । ”

१- सुरागर ( ना० प्र० सभा ) पद सं० ७६२ पृ० ३१६

.. 1945 .. 322

पक्वान् दिव्याङ्गी । (यहां पेरियाळ्वार महोदय द्वारा कन्नो आते)

कर लो । तुम्हें मोठे मोठे फल खिलाऊंगी, मोठे फलानों की एक लम्बी सूची दे देते हैं।) तुम्हारे कानों में सुन्दर गहने पहनाऊंगी । देती । तुम्हारे जैसे सभी बालक कनकदान कर गहने पहने हुए हैं। तुम भी पहन लो । ”

बालक कृष्ण ज्यों ज्यों बड़ा होता है, उसकी लीलाएं भी व्याप्त होती जाती हैं। कृष्ण के जन्म के बाद यशोदा के घर में न घी कहीं सुरक्षित रह पाता, न दूध, न दही, न मक्खन । ” कृष्ण फटोस के बच्चों से फगड़ा कर चुपके से चला जाता है। फटोसिनें अपने रोने वाले बच्चों को साथ लेकर यशोदा की घेर लेती हैं और शिकायत करती हैं। उधर यशोदा उस ही-हल्ले से परेशान हो रही है और उधर महाशय इसका मजा लेते हुए हँस रहे हैं।

शाम को गार्स घर लौटती हैं और दूध दुहने के लिए बड़े सौल दिये जाते हैं। पर कृष्ण नहीं मानता । वह चिउंटियाँ फकड़ फकड़ कर बड़ो के कानों

१- ” वैय्यो कादिल तिरि इवुवन  
नी वैटियोल्लाम तरुवन । ”

- पेरियाळ्वार तिरुमोली २-३-३

” इणो नन्दलकिय इल्लडिप्पु इठाल  
इनिय फलाप्पलम तन्तु ----- ”

- वही २-३-४

” पैरुम पेरिय अप्पम तरुवन  
पिराने । तिरि इड वोटिटत --

- वही २-३-५

” वैरियिल पिल्लैल्लेत्ताम कादु  
पेरुविक तिरियल्लुम काप्पी --- ”

- वही २-३-१०

२- ” करन्त नपांलुम तयिरुम कडैन्तु उरि मैल वैत वैण्णोय  
पिरन्तलुवे मुवलाफ पेरिरियै रंपिराने । ”



में हात देता है और वे घबराकर भाग जाते हैं। तो यशोदा कहती हैं -<sup>१</sup> " तब तुम मखन मिल चुका है<sup>२</sup> " कृष्ण दूसरे बच्चों की बाखी में दूध फोंककर दौड़ पड़ता है। वह फोस के घरों से मखन चुराकर ही नहीं लाता, बल्कि लाने के बाद लाली घड़ों को पत्थर पर दे मारता है और उनके टूटकर बिसरने की बाबाज पर लुह होकर तालियां बजाता हुआ नाच उठता है। गौपियां इन बातों की शिका-यत यशोदा से जाकर करती हैं।

सूरदास और परमानन्ददास ने भी कृष्ण की हरकतों का बड़ा ही रस पूर्ण वर्णन किया है। सूरदास के वे पद जिनमें कृष्ण यशोदा से शिका-यत करते चित्रित हैं साहित्य में बेजोड़ हैं। उस प्रकार के चित्र पेरियालवार के पदों में भी देखने को नहीं मिलते। वैसे तो सूर का कृष्ण यशोदा से कई प्रकार की शिका-यत करता है। माता के कथन के अनुसार दूध पीने पर भी जब बाल बहुत दिन तक नहीं बढ़े, तब कृष्ण माता से झटकर कहता है-

" मैया कबहिं बढ़ेगी मोटी ?

किती बार मोहिं दूध पियत मई, यह कबहुं है छोटी ।

तू जो कहति बल की बेनी, ज्यों ह्वै लीची- मोटी ।

काढ़त- गुहत- न्हावत जैह जागिन सी मुई लोटी ।

कांची दूध पियति पचि- पचि, दैति न माखन- रौटी ।

सूरज चिरजीवौ दौड मैया, हरि-ललधर की जोटी ॥<sup>३</sup>

१- " कन्दकलोटज्वेवियल कट्टेरुम्पु पिडिपिडुटाल

तेन्दुवकेहुमाकिल वेण्णोय तिरट्टी विलुक्काकाण्ण । "

- पेरियालवार तिरुमोली २-४-२

२- कण्णल भणल कोहु लुवी कालिनाल पावन्तनेयन्दु

एण्णरुम पिल्लैकल वन्नु ज्वराल मुरैय्कुकिन्दार ॥ वही २-८-४

३- वेण्णोय विलुकी वेरुक्कल वेपिडे इट्टु वतनोवे केट्टुम

कण्णपिरान कट्टु कल्वितने कायकिल्लोम उनमर्ने कावाय । " वही ३-६-१

४- सूरसागर ( सभा ) पद सं० ७६३ पृ० ३२०

जब कृष्ण गोप-बालकों के साथ खेलता रहता है तब बलराम उसे बिदाता है। इस पर कृष्ण यशोदा से इस प्रकार शिकायत करता है :-

मेया मोहिं दाऊ बहुत सिफावी ।  
 मोसैं कहत मोल को लीन्हो, तू जसुमति कब जायो ?  
 कहा करीं इहि रिस के मारीं खेलन हौं नहिं जात ।  
 पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरी तात ।  
 गौरे नंद, जसोदा गौरी, तू कत स्यामल गात ।  
 चुटकी दे- दे ग्वाल नवावत, हंसत सब मुसकात ।  
 तू मोही कीं मारन सीसी, दाऊहिं कबहुं न लीफि । १

कृष्ण की इन शिकायतों में कितना मोलापन है। कृष्ण द्वारा चोरी करने का वर्णन दोनों भाषाओं के कवियों ने विस्तार से किया है। परियालवार के कुछ पदों का सार मात्र यहाँ देते हैं। कृष्ण के उत्पातों की गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती हैं - " मैं ने मटकी में मक्खन भर रखा था । सुबह होते ही तुम्हारे सुत ने बाहर सब कुछ ला लिया । यही नहीं खाली मटकी को पत्थर पर मारकर उसके टूटकर किलरने की जाबाबु पर तालियाँ बजाता है। — (दूसरी गोपी कहती है) — बाबू पूजन के लिए लड्डू, मोठे, चावल, तीर आदि के नैवेद्य मैं रखा था । तुम्हारे पुत्र ने बाहर सब कुछ ला लिया । यही नहीं और भी पांगला है। — (तीसरी गोपी कहती है) — मैं मोठे फलान बनाकर घर में

१- सुरसागर ( सभा ) पद सं० ८३३ पृ० ३३३-३४

२- परियालवार तिरुमौली २-६-१

३- " वैन्मैलरिसि चिरु परुप्पु वैळ्ळ अन्कारम नरु नैवपालाल  
 पन्निरप्पु तिरुवोणम अट्टेन पप्पुम इप्पिल्लै परिचैरिवन  
 इन्नमुक्कप्प नानेन्दु चोत्ती एल्लाम विरुक्किट्टु पोन्नु निन्दान । "

- परियालवार तिरुमौली २-६-७

रखकर थोड़ी देर के लिए बाहर गयी। तुम्हारे सुत ने मेरे घर के बालक की तरह चुपके से अन्दर घुसकर सब कुछ सा लिया। ( चौथी गौपी कहती है )— तुम्हारा साइला मेरे घर के अन्दर बैठी मेरी बच्ची के हाथ से कंकण चुरा ले गया है और उसे बेचकर जामुन फल खरीदता है।<sup>२</sup>

कविवर परमानन्ददास ने यशोदा से गौपियों की शिकायतों का वर्णन किया है। पेरियाल्वार के पद से परमानन्ददास के निम्नलिखित पद का भाव— अथ सान्ध्य वेसिर—

जसोपा बंचल तेरो पुत ।

वार्नयो ब्रज कीधिन डोलत करे अटपटे सुर ॥

दह्यो दूध ले घृत वागे करि जहँ तहँ धर्यो दुराय ।

अधियारे घर कोउ न जाने तहँ पहले ही जाय ।

भोरस के सब भाजन फोरै मासन हायो चुराय ।

सरिकन के कर कान मरोस्त तहँ से चले रुबाय ॥

बांट देत बनचर कांतुक करत विनोद बिचार ।

“ परमानन्द प्रभु ” गौपी बल्लभ भावे मदन सुरार ॥ ” ३

दुसरों के सामने मातृ- हृदय अपने बच्चे का अपराध स्वीकार नहीं कर सकता । सुर के निम्न लिखित पद देखिए—

“ मेरी गोपाल तनक सौ, कहा करि जान दधि की चोरी ।

हाथ नचावत जावति ग्वारिनि, जीम करे किन थोड़ी ॥

१- कन्नलिलट्ट वषोह चीडे कारेल्लिरुष्टे कलपिट्ट

एन्नकमेन्नु नानवैत्तु पोन्तेन, ज्वन पुनकु अवदे पेरुचि पोन्तान”

— पेरियाल्वार तिरुमोली २-६-६

२- इल्लम पुळुन्नु एन मल्ले कूवी कैयिल वलैये कलदिकोण्डु

ककोरुचिवकु अव्वले कोळु नल्ल नार्वपलकल कोण्डु

नानल्लेनेन्नु चिरिविकन्ड्राने —————

— वही २-६-२०

३- परमानन्दसागर - सं० डा० गौ० ना० शुक्ल पद सं० १३४ पृ० ४५

कब सोईं चदि माखन लायां, कब दधि-मटुकी कौरी ।  
कंगुरी करि कहूँ नहिं चाखत घर ही भरी कपौरी । १

0

0

0

कहन लगी अब बदि - बदि बात ।  
ढोटा भरी तुमहिं बंधायो तनहिं माखन सात ।  
अब मोहिं माखन देति मंगार , भैंर घर कहूँ नाहिं ॥ २

परियालवार की यशोदा गोपियों की शिकायतों पर अपने पुत्र को समझाती हैं - " हे कृष्ण ! इस गोकुल में हजारों लड़के हैं । वे जो हर-कतें करें, वे कभी सामने नहीं आतीं । ये गोपियाँ उन सबके अपराधों को भी तुम्हारे ऊपर साधना ही जानती हैं। अतः तुम इनसे सावधान रहो । "

वात्सल्य के संयोग-पदा के साथ वियोग पदा के भी सुन्दर चित्र हमारे कृष्ण-मस्त-कवियों ने खींचे हैं। माता यशोदा के लिए एक दायण का पुत्र-वियोग भी व्यक्त हो जाता है। यशोदा पहली बार कृष्ण को वन में गायें चराने के लिए भेजती हैं। कृष्ण के चले जाने पर, यशोदा के विलाप करने और सार्यकाल को ठीक समय कृष्ण के न लौटने पर यशोदा की चिन्ता और घबराहट का हृदय-द्रावक वर्णन परियालवार ने प्रस्तुत किया है :-

" अपने प्रिय सुत को यहाँ खेतों में देखने के बदले मैंने बड़े सवेर ही स्नान कराकर वन भेज दिया । वन में उसके मृदुल चरण बहुत ही दुल्लो । उसको मैं कितना कष्ट दिया । मैं पापिनी हूँ। ----- मले ही गोपियाँ

१- सुरसागर ( समा ) पद सं० ६११

२- वही पद ६७३

३- " पल्लवितर हवूरिल पिल्लकल तीमिकल वैल्वार

एल्लाम उन्नेलन्दी पोकातु एम्पिरान । ली वाराय ॥ परियालवार तिरुमोली

४- " कनवण्णने जायकोलक्कोलुन्तिन ।

२-८-५

मनमाट्टी मनैकल तोरुम चिरियामे ॥

- परियालवार तिरुमोली ३-२-१

जाकर कृष्ण की हस्तों की शिकायत करें, मुझे कभी अपने सुत को गार्थे चराने मयानक वन में नहीं भेजना चाहिए था। मैं कैसी निर्दयता दिखायी है। सुत को मैं ने इतरी और जूते तक नहीं दिये। वह वन में कितना कष्ट भोगेगा ?” इस तरह की कितनी ही भाव-तरंगें, पातु-हृदय में उठती हैं। पुत्र के वियोग में सारा वातावरण माता को सुना सुना दीखता है।

बाल्मिकी भवनों के काव्य में वियोग-वात्सल्य को प्रदर्शित करने वाला और एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। नन्द और यशोदा की वात्सल्यमयी भाव-वृत्ति का निरूपण तो बालकृष्ण के उपासक भक्त कवियों द्वारा प्रायः किया गया है। किन्तु वसुदेव और देवकी के हृदय की भावनाओं का मर्मस्पर्शी आलेखन तमिल-कृष्ण-काव्य की एक विशेषता कहा जा सकता है। हिन्दी के कवियों की तरह नन्द यशोदा के हृदय की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित रखकर बाल्मिकी ने वसुदेव और देवकी के मनोभावों की उपेक्षा नहीं की है। हिन्दी में सूरदास जी तक ने कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से देवकी के हृदय के सख्त मातृत्व को अभिभूत करके उसके प्रति एक प्रकार का उपेक्षा-भाव ही दिखाया है। तमिल के कुलशेखराल्वार ने प्रसन्न रूप से देवकी की मर्म-व्यथा को पहचाना है और उसे पर्याप्त भावावेग के साथ अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। देवकी का सबसे बड़ा दुःख यह है कि पुत्र तो उसने जाया, पर उत्सव और बधाई यशोदा के द्वार पर होगी। माता होकर भी उसे मातृत्व के अधिकारों और सुतों से वंचित रहना पड़ा है। देवकी की मर्म-व्यथा को कुलशेखराल्वार के शब्दों में अभिव्यक्ति मिली है -

“ मैं बड़ी अभागिनी हूँ। अपने पुत्र को पालने में लिटाकर

१-“ वण्णवकुरुकुल मादर वन्तु अलर वृद्धि

पण्णप्यल वेवु इप्पडियेकुम तिरियामि” वही ३-२-४

“ कुडैयुम वेरुप्पुम कोडाते वाप्पोदरने नान

उडैयुम कडियन ऊन्दुवैर्परुलुडे

कडिय वैकानिडे कालडी नोववकन्दिन पि

कोडियेन सन तिलिये पोयिकनेन रत्ते पाव मै।”

- वही ३-२-६



लोरी गाकर तुलाने का माग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ<sup>१</sup> । — सुन्दर शिशु को अपने हाथों में लेकर हाती से लगाकर जानन्दित होने का माग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ<sup>२</sup> । — यशोदा के यह पूछने पर कि तुम्हारा 'बाबा' कहाँ है, मेरा सुत अपनी कक्षमल उंगलियों से नन्द की ओर लक्षित करेगा । उस समय नन्द को जो जानन्द प्राप्त होगा, उससे मेरे पतिदेव भी वंचित रहें<sup>३</sup> । — बालक की विविध चेष्टाओं को देखकर जानन्द प्राप्त करने से मैं वंचित रह गयी । मैं बड़ी जमागिनी हूँ । — हे कृष्ण ! तुम्हारी तीतली बोली को सुनकर जानन्द से तुम्हारे चेहरे पर तुम्हें वंचित करने का माग्य यशोदा को ही प्राप्त है । — जब बालक धूलि

१- "एतवार कृतसेन मम तालो रन्देन्दु उन्ने स वायिहै निरय  
तालोतिविहुम तिरुविनेयित्ता तायरिल कडैयायिन तायै"

- परमाल तिरुमोली ७-१

२- "अहयिकयार वैचिरु विरलनेतुम वीयोहु वर्णन्तु वानेयिर्किडन्त  
किडवके कण्टिडपेदितेन वन्तो । केशवा । केहुवैने केहुवैने ।"

- वही ७-२

३- "उन्तैयावनेन्दुरप्प निन वैकैल विरलितुम कडैकण्णानुम काट्ट  
नन्वन पेन्नन नत्विनेयित्ता नकलकीन वसुदेवन पेदितन"

- वही ७-३

४- "इसमै इन्पै इन्दु स तन कण्णाल परुक्कुवैकु अवल तायै निनेन्त  
अलविल पिल्लैयिन्पैयिलन्त पाविनेनतावी नित्तादै"

"मरुवुम निन तिरु नेदियिल चुट्टिमवन्नाडी मणिवायिहै मुवम  
तरुतलुम — तिरुवितेन वीन्दुम ई पेदितेन एत्ताम देव नैक यशोदै  
पेदाले ।"

- वही ७-४ और ५

धूसरित शरीर से दौड़ता हुआ बाहर पीछे से लग जाया, तो उसके स्पर्श मात्र से कितना आनन्द प्राप्त होगा। हाय ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। — हे कृष्ण ! तुम्हारे खाने के पश्चात् रहने वाली अमृत-सम घूठन को खाने का माग्य मुझे प्राप्त नहीं है। — तुम्हारे सौन्दर्य, तुम्हारी चैष्टाओं को देखकर पुलकित होने का माग्य मुझे प्राप्त नहीं। मैं बड़ी अभागिनी हूँ।”

कुलशेखरालवार के “देवकी-विलाप” के पदों में भावातिरेक का अधिक स्वाभाविक चित्रण उपलब्ध होता है। पुत्र-वियोग में देवकी की मानसिक दशा का चित्रण करने में कुलशेखरालवार ने असीम भावुकता एवं कुशलता का परिचय दिया है।

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा और नन्द की मनोदशा को चित्रित करने वाले अनेक सुन्दर पद हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों ने गाये हैं। बाल्लवार भक्तों के उपलब्ध पदों में ऐसे पद कम हैं या नहीं के बराबर हैं जो कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा और नन्द की भाव-स्थिति का वर्णन करते हैं। (हो सकता है कि ऐसे पद भी उन्होंने गाये हों और वे नष्ट हो गये हों।) परन्तु हिन्दी के कृष्ण-भक्त-कवियों में विशेष कर सूर ने कृष्ण से बिछड़ने पर यशोदा और नन्द के हृदय के भावों को तरंगित करने में अतुलनीय सफलता प्राप्त की है।

अरू मथुरा से कृष्ण और बलराम को लेने जाये हैं। यशोदा, पुत्रों के मथुरा-गमन की बात सुनते ही व्याकुल हो गई। जब अनुभव करती है कि कृष्ण अरू के साथ चले ही जायेंगे, तो हताश होकर कहने लगती है—

यशोदा बार-बार यों भाजें ।

हे कोउ ब्रज में हितु हमारी, बलत गोपालहि राखे ।

१- “तण्णन्तामरं कण्णमे । कण्णा । तवत्तुत्तुत्तु तलन्तीर नडयाल मण्णल चैपोहीयाही वन्तु सन तन मार्विल मन्नि प्यदित्तन अन्तो । वण्णचैचिरु के विरत्तनत्तुम वारिवाय कोष्ट बडिचिलिन मिच्चिल उण्णप्यदित्तन जो । कोहु विनेयेन एत्तं चैय्य पेद्दुत्तु एम्माये ।”

कहा करे मेरे हृगन फान को मृप मधुपुरी बुलायो ।

सुफल सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वे जायो ॥

वरु र गोधन हरी कंस सब मोहि, बन्दि लै मेली ।

इतने ही सुख कमल नेन मेरी बलिखन जागे तेली ॥ " १

जब कृष्ण मथुरा जाने के लिए रात्र पर जाग्रह हो गये,  
तब यशोदा जो विलाप करती हैं, वह अतीव मर्मस्पर्शी है।

मोहन नेकु बदन लन हरी ।

राखी मोहि नात जननी को मदन गुपाल लाल मुल फेरी ।

पीछे चढ़ी विमान मनोहर, बहुरी यहुपति, होत बन्धरी ।

बिहुरत मेंट देहु ठाढ़े ह्वे, निरखी घौण जनम को तेरी ॥ " २

जब नन्द मथुरा से लौट जाये, तब उनके साथ कृष्ण और  
कलराम को न देखकर यशोदा वैसे ही मूर्छित होकर गिर पड़ी, जैसे तुलार के पड़ने  
से सरोवर का कमल कुम्हला जाता है। यशोदा नन्द पर भी बिगड़ी और यह दशरथ  
का उदाहरण देकर उन्हें धिक्कारने लगीं । नन्द भी यह सुनकर व्याकुल हो गये और  
मूर्छित होकर गिर पड़े । सूर ने बात- स्नेह में माता- पिता दोनों को ही विभोर  
कर दिया है। कभी नन्द यशोदा से कहते हैं :- " तब पारिवीर्य करति रिसनि  
जागे कहि जो आवत जब लै माहि मरति " । कभी यशोदा नन्द से कहती हैं :-

" सूर नन्द फिर जाहु मधुपुरी सुत करि कोटि जतन ॥

जोर

१- सूरसागर ( सभा ) पद सं० ३५६१ पृ० १२७३

२- .. .. ३६०८ पृ० १२७८

३- वेदना के आधिक्य के कारण यशोदा इस बात को भूल जाती हैं कि स्वयं नंद  
भी विवश हैं और उनकी भी वैसे ही दशा है। वह उन्हें जो भर बुरा- मला कहती  
हैं :-

जसुदा कान्ह- कान्ह कै बूझ ।

फूटि न गई तुम्हारी चारों, कैसे माग बूझ । — जादि

- सूरसागर पद सं० ३७५२

नन्द ब्रज लीजै ठोंकि ब्याह ।

देहु बिदा, मिलि जाहिँ मधुपुरी जई गोकुल के राइ । १

यशोदा को पुत्र- वियोग इतना बखर रहा है कि वह ब्रज छोड़कर मथुरा में देवकी और बसुदेव की दासी बनकर रहने को तैयार है। प्रेम में आत्म-विस्मृति की भावना गहरी हो जाती है और मिलन की उत्सुकता का उग्रक समस्त भावों को तिरोभूत कर देता है :-

हाँ तो माई मथुरा ही पे बैहीं ।

दासी हूँ बसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहीं ।

मोहि देखि कै लोग हँसिगें, बरु किन कान्ह हँसि ।

सूर कसोस जाइ देखीं, जनि न्हातहु बार लसि । २

अन्तिम शब्दों में मातृ-हृदय का समूचा वात्सल्य मानों एक बारगी उनह पड़ा है, पुत्र कहीं भी हो, सकुशल रहे, यही माता की कामना है।

पुत्र के प्रिय साथ पदार्थों को देखते ही उसकी याद आ जाना स्वाभाविक ही है। माता को यह भी विश्वास नहीं होता कि उसके बिना अन्य कोई उसके पुत्र के खाने पीने आदि की समुचित व्यवस्था कर सकता। यह अविश्वास वात्सल्य जनित ही है।

अवपि मन समुद्रावत लोग ।

सूत होत नवनीत देखि भेर मोहन के मुख जोग ॥

प्रातःकाल उठि माखन-रोटी, को बिनु पाणि देखि ।

को भेर वा कान्ह कुँवर कोँ छिनु- छिनु अकम लैहै । ३

मथुरा को जाता हुआ कोई पथिक मिल जाता है, तो यशोदा उससे कहती है कि कृष्ण बड़ा संकोची है, देवकी से मार्गने में लज्जा का

१- सूरसागर पद सं० ३७८६ पृ० १३४१

२- .. .. ३७८८ पृ० १३४१

३- सूरसागर ( समा ) पद सं० ३७९१ पृ० १३४२

अनुभव उसे होगा । अब: देवकी के पास मेरा सन्देश पहुँचा दो :-

संदेशों देवकी सँ कहीरों ।

हाँ तो धाय तिहारे सुत की मया करति ही रहियों ॥

जदपि देव तुम जानति उनकी, तऊ मोहिँ कहि जावै ।

प्रात होत भै लाल लहँतैं, मासुन रौटी भावै ॥

जोड़ जोड़ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते । १

सूर के उपर्युक्त पद में माता यशोदा की लालसा के साथ

उनका वैश्य भी प्रकट हुआ है।

### गुणार-

कृष्ण और गोपियों के प्रेम का विकास प्रकृति के सुन्दर वातावरण में होता है। बाल्यावस्था में साथ साथ खेलते वाले सरल प्रकृति वाले सखा और सखी किशोरावस्था के आकर्षण, कौतूहल, जिज्ञासा आदि भावों से गुजरते हुए यौवन काल के प्रिय और प्रिया बन जाते हैं। उनके प्रणय को निष्पत्ति में साहचर्य और सौन्दर्य-प्रियता दोनों का योग है। मासुन-चौर कृष्ण गोपियों के चित्तचोर बन जाते हैं। कृष्ण और गोपियों की प्रेम-लीलाओं का वर्णन पर्याप्त विस्तार के साथ हमारे बालीच्य कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रेम के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग के न जाने कितने ही आकर्षक और सजीव चित्र इनके काव्य में देखने को मिलते हैं। प्रेम की संयोगावस्था के अनेक प्रसंगों की सृष्टि कर कृष्ण-मन्त-कवियों ने प्रेम के स्वाभाविक विकास को दर्शाया है और विभिन्न मनोवशाओं का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है।



बालवार भवती के काव्य के वर्ण-विषय के सम्बन्ध में अन्य हम यह बता चुके हैं कि उनके काव्य में कृष्ण-कथा क्रम-बद्ध रूप से उपलब्ध नहीं है, जैसे कि सूर जादि हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों के काव्य में। जिस प्रकार हिन्दी में सूर जादि के काव्य में मान-लीला, दान-लीला, पनपट-लीला, रास-लीला जैसे प्रसंगों को लेकर, प्रत्येक प्रसंग का अत्यधिक विस्तार से वर्णन किया गया है, उस प्रकार बालवार भवती ने उन प्रसंगों को विस्तार से नहीं लिया। परन्तु उन्होंने गोपियों के कथन द्वारा तथा कृष्ण और गोपियों की प्रेम-पीड़ित अवस्थाओं के चित्रण द्वारा उन सब भाव-स्थितियों का अंकन किया है। एक बात और दृष्टव्य है कि राधा और कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का जितना शृंगारिक वर्णन विस्तार से राधा वल्लभीय तथा हरिदासी संप्रदायों के कवियों के काव्य में मिलता है, वैसा बालवार-काव्य में नहीं। राधा को प्राधान्य परवर्ती कृष्ण-साहित्य में ही अत्यधिक मिलता गया। बालवारों ने कृष्ण और नप्पिन (राधा का तमिल नाम) की कुछ प्रेम-लीलाओं की ओर संकेत मात्र किया है। बालवार-काव्य में प्रेम की वियोगावस्था का ही अधिक विस्तार है। फिर भी शृंगार के संयोग पदा के भी कुछ अच्छे चित्र मिल जाते हैं।

कृष्ण का सौन्दर्य जैसे ही क्रम में सर्वजनीन चर्चा का विषय था, फिर उनकी कौमार्य अन्य चपलता और वेणु-वादन-निपुणता ने मिलकर गोपियों पर डीना ही कर दिया। कृष्ण के सौन्दर्य का प्रभाव बड़ा ही व्यापक था। कृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का कितना गहरा प्रभाव गोपियों पर पड़ा, उसका अनुमान परियालवार की एक नौपी के शब्दों से हो सकता है- "मुरली बजाते हुए गोपों के पीछे बन से लौटने वाले श्याम के मोहक रूप ने मुझ पर क्या जादू कर डाला ? है, सति । मैं ऐसा कोई युक्त नहीं देता जो सौन्दर्य में श्याम की बराबरी कर सके। स्वयं मैं नहीं जानती कि मोहन के रूप-लावण्य ने मुझ पर क्या जादू डाला है, हाथ से मेरे अंकन गिर रहे हैं। मेरे वस्त्र अस्त व्यस्त हो रहे हैं

वैकुण्ठ

और भी स्तन भी भी वश में नहीं हैं।”

श्याम के शरीर के प्रत्येक अंग से इवि फूटी पड़ती है।  
गोपियाँ उनके सौन्दर्य पर अपना सर्वस्व बारन को तैयार हैं :-

तरुनी निरसि हरि- प्रति अंग ।

कोउ निरसि नल- इन्दु मूली, कोउ चरन- जुग -रंग ।

कोउ निरसि नूपुर रही धकि कोउ निरसि जुग जानु ।

कोउ निरसि जुगर्जध- सोभा करति मन- अनुमानु ।

कोउ निरसि कटि पीत कङ्कनी भेलता रुचिकारि ।

कोउ निरसि हृदनाभि की इवि डार्यौ तन मन वारि । २

परियालवार की एक गोपी कहती है-“ कृष्ण के कमल-दल-  
लोचन , चारु कपोलों पर डोलते चंचल कुंडल, बरुण बघरों पर घिरती हुई माधुर्य-  
वाहिनी मुरलिका नीलि मेघ- सा वदन वर्ण, कमल- कोमल- चरण, सब कुछ इतने  
मादक हैं कि इनके सौन्दर्य की मादकता से मैं मग हो गयी हूँ।”

१- कुन्देह्लु वानिरे कात पिरान कोवलनाय कुल्लुदियुदि  
कन्दुकल मेष्टु तन तौलरोहु कलन्तु वरुवाने तेरु विल कण्टु  
रन्दुम ज्वनैयौप्पारे नकाय कण्टरियेन्दी । वन्तु काणाय  
वोन्दुम निल्ला वलै कलन्तु तुक्किलेन्दल मुलियुम सन वसमल्लवै ।

- परियालवार तिरुमोली ३-४-४

२- सूरसागर ( समा ) पद सं० १२५२ पृ० ४८५

३- “ तन तिरुमेनि निन्दोली तिल्ल  
नील नल नरुहुनि नेचिरुवालणित्तु  
कोल वेन्तामारे कण मिलिर  
कुल्लुदि ज्यौपाडी कुन्निपु वायरोहु  
वालितु वरुकिन्दु वायप्पिल्लै  
वल्लु कण्टु सन मल्ल वयकिन्दुते”

- परियालवार तिरुमोली , ३-४-७

सूर की गोपियाँ भी कृष्ण की सौन्दर्य-सुरा के सुमार

में मग हैं :-

तरुनी स्याम रस मत वारि ।

प्रथम जीवन- रस चढायी, अतिहि मई सुमारी ॥

दूध नहिं दधि नहीं, माखन नहीं, रीतों पाट ।

महा- रस बंध- का पुरन , कहाँ घर कहँ बाट ॥

मातु- पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति, को नारि ।

सूर प्रभु के प्रेम- पुरन कृष्ण रही ब्रजनारि ॥ १

कृष्ण के सौन्दर्य का बढ़ा ही सुन्दर वर्णन श्री गदाधर पट्ट

ने प्रस्तुत किया :-

मौहन- बदन की सोभा ।

जाहि देखत उठति सखि वानन्द की गोभा ॥

नैन धीर अधीर कहू- कहू असित सित रात ।

प्रिया- वानन चन्द्रिका- मधुपान-रस- पात ॥

बसिका कलहंसिका मुक्कमल-रस- राची ।

पवन परसत अलक अलिकूल कलह- सी माची ॥

ललित लोल कपील, कुण्डल मधुर करकार ।

जुगल सिसु सौवामिनी जनु नचत नट- चटवार ॥

बिमल जलक सुढार मुक्ता नासिका दीनों ।

ऊँच वासन पर अचुर- गुरु उदाँ- सी कीनों ॥

मौह सोहनिका कहीं अरु माल कुम्कुम बिन्दु ।

स्यामबादर- रस परि मनु अवहिं ऊँग्यो ण्डु ॥

लग्यो मन ललचाइ तारैं टरत नहिं टार्यो ।

अमित बहुमत माधुरी पर गदाधर बाध्यो ॥ २

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० २२४२ पृ० ८२३

२- ब्रजमाधुरी सार सं० वियोगी हरि पृ० ७८ स्कादश संस्करण

मीराबाई की गोपी- रूप में अपने प्रियतम "गिरधर नागर" की मोहन मूरत का वर्णन इस प्रकार करती हैं -

निपट कंकट हव अटके ।

म्हारे पीणा निपट कंकट हव अटके ।

देख्या रूप मदन मोहन रो, प्रियत प्रियत न मटके ।

बारिज भवई बल्ल भववारी, पीण रूप हव अटके ।

टेढ्या कट टेढे करि मुरली, टेढ्या पाग सर लटके ।

मीरा प्रभु रे रूप तु माणी, गिरधर नागर नटके ॥ १

श्याम के सौन्दर्य और सहवास ने गोपियों के हृदय को मुग्ध कर दिया । गोपियों का मन अब घर में नहीं लगता, किसी काम-काज में उनकी रुचि नहीं रहती । सोते-जागते उनका मन कृष्ण में ही लगा रहता है। हरि हस ने उन्हें इतना मत्वाला बना दिया है कि श्याम के बिना और कुछ बच्चा नहीं लगता । जैसे ही कृष्ण की मुरली की मधुर - मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है, वैसे ही गोप- बालाएं सुध बुध ली बैठती हैं, साज- सृंगार तक भूल जाती हैं, कण्ठ और गले उलटे पहन लेती हैं। उनकी बेबसी देखते ही बनती है -

करत सृंगार जुवती मुलाही ।

की- सुधि नहीं, उलटे कसन धारही, एक एकहि कछु सुरति नाही ।

नेन कैन अधर बाँधी हरण सौं, सवन ताटक उलटे संवारी ॥

पूर- प्रभा- मुख ललित केतु- धुनि, बन चुनत, चलीं बहाल कवल न धारी ॥ २

हिन्दी के अष्टशायी कवियों ने कृष्ण की मोहिनी मुरली पर ऐकहों पद बनाए हैं जिनमें गोपियों के सृंगारिक भावों के रंगीन चित्र अंकित

१- मीराबाई की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १० पृ० १०३

२- ब्रह्मसंगर ( समा ) पद सं० १६१६ पृ० ६०६

हैं। तमिल में पेरियालवार के कुछ पद मुरली- प्रभाव के भी मिलते हैं। मुरली- नाद सुनते ही दौड़ पड़नेवाली गौपियों का वर्णन सुनिये :-<sup>१</sup> " मुरली का मधुर नाद सुनाई पड़ता है। गौप- बालावों के स्तन कौतूहल वश उभर बाये हैं। वस्त्र अस्त व्यस्त हो रहे हैं। वे किसी भी प्रकार की लोक- मर्यादा या लज्जा की परवाह न कर कृष्ण मिलन के लिए दौड़ पड़ती हैं। उनके केश स्वयं पाश के बन्धन से मुक्त होकर ढोल रहे हैं। अस्त- व्यस्त होने वाले अपने वस्त्रों को हाथ में लिए वे दौड़ती हैं। बड़ी उत्सुकता से मुरली- नाद की दिशा में वे दौड़ पड़ती हैं। "<sup>२</sup>

केवल गौपियाँ ही कृष्ण की रूप- माधुरी पर विमोहित नहीं हैं, बल्कि कृष्ण भी गौपियों के लावण्य पर मुग्ध हैं। गौपियों में एक अपूर्व रूपा राधा नाम की गौपी भी थी। कृष्ण ने खेलते खेलते जहाँ उस पर अपना जादू डाला, वहाँ राधा की मौहिनी इवि ने कृष्ण के अपने बाकण्ण- पाश में बाँध कर दिया। उस " गौर वर्ण ", मेन- विशाल, माल दिये रौरी "<sup>३</sup> राधा का नल- शिख- वर्णन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों, अपने कई पदों में वर्णित किया है। ( बालवारी के पदों में राधा के मोहक- मायक रूप का अधिक वर्णन नहीं मिलता। ) श्री सित हरिश्च के निम्नलिखित पद में रूप की रानी राधा का शृंगार प्रसाधन सहित वर्णन देखिए-

आवति श्री वृणभानु तुलारी ।

रूपराशि अति चतुर शिरोमणि का का सुकुमारी ॥

१- " कोवलर चिरमियर इल्लकैन्नि कूत्तुलिप्प उडलुलविलन्तु ल्कुम कावलुम कडन्तु कयिरु मालैयाकि वन्तु कविलन्तु निन्दनरे । "

= पेरियालवार तिरुमोली ३-६-२

और

" मळमयिल कलौहु मान पिणै पौले

मैयारुत्त मलर कून्तल अविल

उडे नेक्किल और कैयाल तुक्किल पाट्टि

वोत्कीयोडरिक्कणोड निन्दनरे । "

- वही, ३-६-२



प्रथम उवटि, मज्जन करि, सज्जित नील वसन तन सारी ।  
 गुंचित कस्तक तिलक कृत सुन्दर, सेंदुर मांग सवारी ॥  
 मृगज समान नैन कवन जुत रुचिर रेल अनुसारी ।  
 जटिल लवंग ललित नासापर, वसनावली कृतकारी ॥  
 श्रीफल उख, कंठमी कंचु भी कसि ऊपर हार इवि न्यारी ।  
 कृश कटि, उदर गंभीर नामि फुट, जपन नितम्बनि मारी ॥  
 फनी मुनाल भुवन भुजित मुख श्याम कंस पर डारी ।  
 हित हरिषंश जुगल करनी गज विहरत वन पिय प्यारी । १

श्याम नागर हैं, ती राधा नागरी । दो शरीर रहते हुए  
 भी दोनों एक प्राण हैं। दोनों के परस्पर आकर्षण का वर्णन सुर के एक पद में  
 देखिए :

चितै रही राधा हरि को मुख ।  
 मृकुटी विकट, विसाल नैन ललित, मनहिं मयीं रति पति दुख ॥  
 उतहिं श्याम झटक प्यारी- इवि, कंग- कंग अवलोकत ।  
 रोमि रहि इत हरि, उत राधा, बरस- परस दोउ नीकत ॥  
 सल्लिनि कह्यो वृण मानु- सुता सौं, देखे कुंवर कन्हारि ।  
 सुर श्याम येई हैं, ब्रज में जिनकी होति कहाई ॥ २

इस आकर्षण के पश्चात् संयोग पद के जितने भी क्रीड़ा-  
 विधान हो सकते हैं, हिन्दी-कृष्ण-मधत कवियों ने सभी लाकर सूत्र कर दिये  
 हैं। फण्ट-प्रस्ताव, कुंज-विहार, यमुना स्नान, जल-केलि समय, पीठ मदन,  
 गौदीहन के समय राधा के मुख पर कृष्ण का दूध की छीटि फैकना, भरे बागन में उ  
 सकित द्वारा वार्तालाप करना, घर के पीछे ललित और वन में मिलना, छिंदोले पर  
 झूलना, रास-नृत्य आदि न जाने, संयोग के जितने ही प्रसंग हिन्दी-कृष्ण मधत  
 कवियों ने बूढ़-बूढ़कर रचे हैं। इन प्रसंगों के चित्रण में हिन्दी-कवियों ने अद्भुत कुशलता

१- श्री हित चौरासी पद सं० ४५

२- सुर सागर ( समा ) पद सं० २३८३ पृ० ८६६

दिलार्ह है। ( विस्तार-भय से हम इन सब प्रसंगों का वर्णन नहीं करते । ) देखिए गुरुजनो के बीच बैठी हुई राधा का कृष्ण से संकेत द्वारा वार्तालाप करने का वर्णन सुर ने कितने जद्मुक्त ढंग से किया है :-

स्याम अनामक बाइ गये री ।

मैं बैठी गुरुजन बिच सजनी, देखतहीं भरे नैन नर री ॥

तब एक बुद्धि करी मैं देखी, बैठी सौं कर परस कियो री ।

बापु हंस उत पाण क मसकि हरि, कैंहामी जानि लियो री ॥

सै कर कपल अधर परसायी, देखि हरणि पुनि हृदय धर्यो री ।

चल हार दौड नैन लागर, मैं अपने मुज कैं मर्यो री ॥ १

राधा और कृष्ण के स्वच्छन्द विहार का एक दृश्य देखिए :-

नवल किसोर नवल नागरिया ।

अपनी मुजा स्याम- मुज ऊपर, स्याम- मुजा अपने उर धरिया ॥

झीड़ा करत तमास- तरुन- तर स्यामा अमंगि रस भरिया ।

यो लफटाइ रहे उर- उर ज्यों, मरुत मनि कंचन मैं भरिया ॥

उपमा काहि देख, को लाक , मन्मथ कोटि वारने करिया । २

संयोग- शृंगार का एक नग्न चित्र देखिए :-

हरणि प्रिय प्रेम तिय कैं लीन्ही ।

प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि मुजनि भरि सुरति रति प्ररि,

बति निबल कीन्ही ।

अपने कर नलनि अलक कुरवारहीं, कबहुं बाधि बतिहिं लगत लोभा ।

कबहुं मुख मोरि चुबन देत हरण हूँ, अधर भरि दसन वह उनहिं सोना ।

बहुरि उपज्यो काम, राधिका पति स्याम, फान रस- ताम नहिं तनु सम्भारी

सुर प्रभु- नवल- नवला, नवल कुंज गृह , जेत नहिं लहत दौड रति विहारै ॥ ३

१- सुरसागर ( सभा ) पद सं० २४६७ पृ० ६०३

२- वही पद सं० १३०६, पृ० ५०२

३- वही पद सं० २६०६ पृ० ६३४

इस प्रकार के मग्न चित्र हिन्दी कृष्ण-काव्य में कई स्थानों पर मिलते हैं, जिनमें कहीं प्रथम समागम का वर्णन है, कहीं विपरीत रति का, कहीं सुरति-वन्त का और कहीं शृंगार सज्जा का । हिन्दी कृष्ण-कवियों ने संयोग की अनेक प्रकार की परिस्थितियों का चित्रण किया है। ( जो वात्सवार-काव्य में उपलब्ध नहीं होता । )

मान बध्ना रहने की अवस्था प्रेम का एक स्वाभाविक ढंग है। संयोग के बाद जो प्रेम का रूप होता है, उसमें नायिका को रूप-गर्विता के रूप में दिखाया जाता है। मान की अवस्था में नायिकाओं का ही रहना भारतीय-प्रेम परंपरा में दिखाया गया है। इस प्रेम-परंपरा के अनुसार भक्त-कवियों ने भी गोपी-कृष्ण-प्रेम में जब मान-भाव का चित्रण किया है, तब गोपियों को ही मानिनी रूप दिया है। तमिल के कुलशेखरात्सवार के कुछ पदों में गोपियों के मान-भाव का सुन्दर चित्रण हुआ है। एक गोपी कृष्ण से कहती है-

“ जब मैं बालिगन की इच्छा फूट की थी, तो तुमने मुझे यमुना तट पर जाने को कहा । तुम्हारी बात पर विश्वास कर मैं भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर उरीर की छेदनेवाली ठंडक में सारी रात यमुना-तट पर लड़ी थी । पर तुम नहीं आये----- बिजली सम कमर वाली एक लतना को लेकर बन्देरे में हिप हिप कर तुम्हो जाते हुए मैं देखा । अब उसको छोड़कर यहाँ क्यों आये हो ? वहाँ जाओ ।-----” १

१-“ माधुं तत्सुवतर्हं बाधयिन्मै वरिन्तारिन्तै उन तन पौर्ण्य केट्ट  
कूर मल्लपोल पनिकूदलेव्दी कूसि नहुंफिय यमुने जादिस  
वार मणकुन्दिस् पुसर निन्देन, वासुदेवा । उन वरसु पार्थ ।—  
मिन्नीय नुण्णिण्डेयात्तवकोप्पु वीकिरुत्त वाय एन तन वीतिवूडे  
पोन्नीयवाडे कुन्कुड विट्टु पोकिन्दुपोडु नान कप्पु निन्देन  
कण्णुव्वले नी कण्णात्तिट्टु कैविलिक्किन्दुत्तुम कप्पेनिन्देन  
एन्नुक्कु वल्लेविट्टु कू वन्ताय ? इन्नम वी तड नम्बो । नीयि ।”

- पेरुनाल तिरुमोली ६ : १ और ५

संविता- माव कुलेश्वरालवार के एक फर में देखिए । एक गौपी कृष्ण से कहती है- "तुमने मुझे कुंज में जाने को कहा था । जब मैं वहाँ जायी , तो मैंने देखा कि तुम किसी दूसरी के प्रेम-पाश में जाबद थे । मुझे देखकर तुम धर धराने लगे । — जब तुम अगली बार मेरे पास जाओगे, तब मैं तुम्हारी "बेवफाई" का उचित बदला लूँगी ।"

हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों ने भी मान अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है। संविता-गौपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति हिन्दी कवियों ने पर्याप्त सुन्दरता से की है।

एक गौपी शाम से ही श्याम के लिए अतिशय प्रतीक्षागुल है और बारी रात वैसी विह्वलता से भिता देती है। उसकी विकलता स्वभाविक है, क्योंकि कृष्ण उसे स्वयं वचन दे गये हैं। जब कृष्ण सवेरे रति बिहून लिये पधारते हैं तो वह और कुछ नहीं कर दर्पण पर देख लेने को कहती है। जब कृष्ण संकोच के मारे उधर नहीं देखते तो वह गौपी सुन्दर शब्दों में व्यंग्य करती है-

क्यों मोहन दर्पन नहीं देखत ।

क्यों धरनी फा- नखनि करौवत, क्यों हम तन नहीं पेणत ॥

क्यों ठाढे बैठत क्यों नाहीं, कहत परी हम बूक ।

पीताम्बर नहि कहुया बैठिये, रहे कहाँ ह्वै मूक ॥

उधरि गयीं डर तैं उपरौना०, नल-इत , बिनु गुन माल ।

दूर देखि लटपटी पाग पर, जावक की इमि लाल ॥ २

तथा-

एसी कहीं रंगिले लाल ।

जावक सैं कैं पाग रंगारंग, रंगिनिनी मिली कोउ बाल ।

१- "एन्ने वरुफ वैनवकुरिपिट्टु इन मलर मुल्लेयिन पन्तर नील्ल  
मन्नि अवले पुणारप्पुक्कु म्पेन्ने कण्टु उत्तरा मेकिलन्ताय  
पोन्निस्वार्दियै कैयिल तांकी पोय्यव्वम काट्टी नी पोदियलुम  
इन्नम एन कैयलु वैकोरु नाल वरुदियेन एन चिन्नम तीर्वन नाने"

- वही ६ : ८

२- सूत्रागर ( सभा ) पद सं० ३१०२ पृ० १०८२

बंदन रंग कपीलनि दीन्हो बहन अधर भर स्याम रसात ।  
 माला कहाँ मिली बिनु गुन की, उर- हत देखि मई बेहाल ॥  
 सूर स्याम हवि सवि बिराजी, यह देखि मोकराँ बजात ॥ १

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम की संयोगवस्था के विविध प्रसंगों में विविध मनोदशाओं और भाव स्थितियों की अभिव्यक्ति अत्यन्त कुशलता से की है। आलवार-साहित्य में प्रेम की संयोगवस्था के प्रसंगों का विस्तार बहुत कम है। पर जो भी कुछ चित्र मिलते हैं, वे संयोग की परिस्थितियों में पात्रों की मनोदशाओं को चित्रित करने में सफल हुए हैं।

#### विप्रस्थ-

संयोग की अपेक्षा वियोग- शृंगार की साहित्यिकों ने अधिक उच्च स्थान दिया है। क्योंकि जहाँ संयोग में प्रिय- सान्निध्य से प्राप्त सुख हृदय की, जैसे सात्विक वृत्तियों को तिरोहित किये रहता है, वहाँ वियोग उन्हें उद्बुद्ध कर भावों के प्रसार के लिए समस्त विश्व का क्षेत्र खोल देता है। संयोग में प्रेमी- कुल स्कान्त चाहते हैं, उन्हें अन्य की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं रहती, पर वियोग में उनकी वात्मा का प्रसार हो जाता है और वे प्राणिमात्र के साथ ही नहीं, जड़ पदार्थों के साथ भी तादात्म्य स्थापित करते हैं। वियोगी व्यक्ति अपनी स्थिति को भुलकर उस सामान्य भाव- भूमि पर आ जाता है, जहाँ से उसकी दृष्टि प्रत्येक छोटी- मोटी वस्तु की सत्ता पर पड़ती है। उसके हृदय की अनुभूति रचन का साधन न मिलने के कारण फनीभूत और तीव्र होती चली जाती है। समस्त संसार में उसे उसका प्रिय ही दीस पड़ता है, इसी कारण से सहृदय कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक प्रसन्न किया है।

आलवार भक्तों के काव्य में प्रेम के वियोग- पक्ष का ही

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० ३१०३ पृ० १०८२

२- सूर और उनका साहित्य - डा० हरबंस लाल शर्मा पृ० ३३६



अत्यधिक विस्तार है। आलोच्य हिन्दी-कृष्ण-काव्य में भी संयोग शृंगार के समान ही वियोग का व्यापक वर्णन मिलता है।

कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा व्यतीत हो गई ।

ब्रज में सब कुछ पहले की ही चीज़ें हैं, फिर भी वह गोपियों के लिए पहले का ब्रज नहीं लगता । जब ब्रजपति ही नहीं, तो ब्रज बालाओं का ब्रज भी सूना है। उन श्वे-  
वचारियों के वीरान ही नहीं बनते । सूर का एक पद देखिए-

विचारत ही लागे दिन जान ।

तुम ब धिनु नंद-सुखन रहिं गोपुल, निशि भव कल्प समान ॥

मुरली सवद, कल घुनि की गुंजनि, सुनियत नाही कान ।

चलन न रथ गहि रही स्याम को, अब लागी पखितान ॥

हे कौड जाह कहै माघी सौं, धीरज घरहिं न मान ।

सूरदास प्रभु तुम्हारे परस धिनु, फुरत नहीं वीरान ॥ १

गोपियाँ अपना सर्वस्व कृष्ण पर वार बैठी थीं । उनके

वियोग में उनका तन, मन, जीवन सब विषाद की फुँकार के समान है। कालिदास

के "प्रियेणु सौमहृदयकला हि चाहता" के अनुसार रमणी का सौन्दर्य और

शृंगार प्रिय को लुभाने के लिए होता है। जब प्रिय ही नहीं, तो शृंगार ही कैसा ?

तिरुमो आल्लवार के एक पद का भाव है-"विरहिणी नायिका वियोग-व्या

म में अपनी सही तक के लिए मृदु मुस्कान नहीं करती । अपने सुन्दर स्तनों पर चन्दन

नहीं लगाती । अपने मीन-नयनों पर बंजन नहीं लगाती अपने कुन्तल को सोरम-सुकत-

सुमनों से अब नहीं सजाती । कुछ भी शृंगार नहीं करती । कुछ हास-विज्ञास नहीं

करती । अपने प्रिय तोते तक को साना नहीं सिताती । ”

ठीक यही भाव सुरदास के निम्न पद में व्यक्त है :

मुल तमोर नैननि नहिं कंन, तिलक सलाट न दीन ।

कृचिल वस्त्र, कलैं अति स्सी, दिलियत है तन हीन ॥

प्रेम- वृणा तीनों जन जानै विरही, चातक, मोन ।

सुरदास बीतति तु हृदय में, जिन जिय परका कीन ॥ २

मानव- हृदय के भावों का प्रकृति के साथ सभी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है। प्रकृति मनुष्य के सुख दुःख में हँसती और रोती है। कौकिल को सर्वदा “कृकृह” करते हुए देखकर विरहिणी बाँझास समझती है कि वह भी किसी के वियोग में है। नम्माळवार की विरहिणी ज्ञानन्त सागर- लहरों को देखकर यह समझती है कि वे भी किसी के वियोग में तड़प रही हैं। चम्पावत के चिल्लाने में उसके प्रिय- वियोग की वेदना ही नायिका को सुनाई पड़ती है। इसी प्रकार सुर की वियोगिनी गोपियों को यमुना नदी भी कृष्ण के

१- तुलम्पहु मुरुवल तोलियुं बरुलाल

तुणै मुलै बान्दु कोप्पु अणियाल

कृलम्पहु कुवै कण्णिनै स्सुलाल

कोल वल मलर कुल्लै अणियाल” - पेरिय तिरुमोली २-७-२

और- ” पन्तोहु कल्लमरुवाल पैकिलियुम

पाळट्टाल पावै पेणाल” - वही ५-५-६

२- सुरदासर ( सभा ) पद सं० ३८८५ पृ० १३७०

३- ” वन्डैयारैप्पिरु नोयु नोयुम वरिदि कृथि ।

पोन्पुर् मेनिकरुलकोडियुंप्पुण्ण्ये वरुक्काय”

- नाञ्चियार तिरुमोली ५ :४

४- पुलम्पुम कनकुरल पौलवायन्दिलुम पूकलि पाळन्नु

अलम्पुम कन कुरल चूलतिरैयालियुम अंफवै मिम

अलम्पुल्लु नलम्पाहु मिडु कुट्टमाफ वैयम

चिलम्पुमपडो वैव्वे ? तिरुमाल इडिरु विनैयै”

- तिरुविरुत्तम , ८७

वियोग-ज्वर से काली पड़ी हुई दील पड़ती है :

देखियति कलिंदी बति कारी ।

वहाँ पथिक कहियौ उन हरि सौँ, मई बिरह बुर जारी ॥

गिरि- प्रजंक तैं गिरति घरनि धँसि, तरंग तरफ तन भारी ।

तट बारु उपचार बुर, जल- पुर प्रसैद फारी ॥

मिसि दिन कहैं पिय बुरटति है, मई मानौं अनुहारी ।

सूरदास प्रभु जो जमुना गति, सो गति मई हमारी ॥ १

संयोग की अवस्था में जिन प्राकृतिक परिस्थितियों में नायिका ने सुख छूटा था, अब प्रिय के वियोग में वे उसकी विरह-वेदना की उल्लेख बन रही हैं। दिन- रात, कृतुएं, मौसम, पपीहा, शीतल समीरण, कुँब और चाँदनी, ये सब उसकी दुःखदायी प्रतीत होते हैं। तिरुमोली वात्सवार की विरहिणी नायिका के लिए<sup>१</sup> सुगन्धित चन्दन भी अब अग्नि के समान जलाने वाला हो गया है। शीतल चाँदनी भी नायिका पर बाण बरसाती है। सुन्दर गहने भी उसके शरीर की बाधात कर देते हैं। मन्द मारुत भी बाण की ज्वाला से भी भयानक मालूम पड़ता है।<sup>२</sup>

परमानन्ददास की गौपी को भी वही अनुभव हो रहा है :

माई री चंद लग्यौ दुख देन ।

कहाँ बी देख, कहाँ मन मोहन कहाँ सुख की रैन ॥

१- सूर सागर ( समा ) पद सं० ३८०६

२- " चान्दमुम पुष्पुम चन्दन कुलम्पुम

तटमुल्लिङ्गु अग्निधियुम तल्लाम

पोन्त वैणक्तिन्न कदिर चुडमैतियुम

तेन्टलुम तीरिक्कोडियताम " - पेरिय तिरुमोली २७-३ व ४

तथा- " तेन्टल वन्तु ती वीसुम ल्न वेळैन् ?

किन्न वेकदिर चीरुम ल्न वेळैन् ?

ईर वाडै तान ईरुम एन्नैये "

- वही ११-१-१ व २

तारे गिनत गहं हो सब निरु मैक न लागे नैन ।

“परमानन्द प्रभु” पिय बिहारे ते फल न परत वित-वैन ॥ १

सुर की गौपी कहती :

सरद सभे हू स्याम न बाए ।

को जाने काहे हैं सबनी , किहि बैरिनि विरमार ॥” २

या बिनु हीत कहा हूयां सुनी ।

ते किन फ्राट कियो प्राची दिशि, विरहिनि को दुल हूनी ॥

चितै चंद तन सुरति स्याम की, कित भई ब्रजवाल ॥ ३

वियोग में नायिका को एक एक टाण एक एक डुग के समान लगता है। सारी दुनिया सौ रही है, परन्तु विरहिणी को नींद कहाँ ? नन्मालवार की विरहिणी नायिका कहती है- “सारा जगत् निद्रा में पग्न है। चारों ओर बन्धकार ही बन्धकार है। केवल मैं ही जाग रही हूँ। क्या, समुद्र का सारा जल रात की लम्बी रेखा बनता जा रहा है ? एक एक टाण एक एक डुग बन रहों है। क्या भोर नहीं होगा ?” विरहिणी मीरा की भी यही दशा है :-

सह्यां, तुम विनि नींद न आवै ही ।

फलक मोहि जुग है बीरै, हिनि हिनि विरह जरावै ही ।

निशि दिन पय निहारै किरौ, फलक ना फल भर लागी ।

१- परमानन्दसागर, सं० डा० गो० ना० सुबल फा सं० ५३७ पु० १८३

२- सुर सागर ( समा ) फा सं० ३६६१

३- वही फा सं० ३६७३

४- “ऊरेल्लाम तुमी उल्लैल्लाम नल्लिरुवाय

नीरेल्लाम तेरी ओर नीसिरवाय नीष्टताल

वार ? इल्लै । वल्लिनैयै वावि काप्पार इनिये -” तिरुवाय मोली ५-४-१

तथा-” फल फल वृल्लिक्कायिहम वन्दि ओर नात्तै”

- तिरुविरुत्तम १६

पीव पीव म्हाँ र्हाँ रेण दिन लोक ताप कुल त्यागी ॥

विरह भवंगम हस्या कलजा माँ लहर हलाहल जागी ।

मीरा व्याकुल बति ककुलाणी स्याम उरंगा लागी ॥ १

वियोग में नायिका की इच्छा होती है कि उसकी वेदना का अनुभव सारी प्रकृति करे । मधुवन यदि हरा है तो उसे सहानुभूति के लिए जन-वकाश हृदय वाला समझकर विरहिणी उसे धिक्कारती है। सुर की गोपियाँ कहती हैं :-

मधुवन तुम क्यों रहत हो ?

विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ॥

मोहन बेनु बजावत तुम तर, साला टेकि लरे ।

मोहे धावर बरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे ॥

वह खिनि तू मन न धरत है, फिर फिर पुहुप धरे ।

सुरदास प्रभु विरह पवानल, मल सिल लीं न जरे ॥ २

सुर की गोपियों की भाँति बाँडाल भी कहती हैं :-

“ हे कार्फेटल पुष्प ( पुष्प विशेष ) । तुम खिल खिल कर मुँह क्यों सताते हो ? हे, मुल्ले सखी । ( पुष्प विशेष ) तुम क्यों मुँह देल-देल कर मेरा परिहास क्यों कर रही हो ? गायन में रत कोकिल । मोठी तान में गा-गाकर मेरी वेदना को क्यों जगाती हो ? ”

१- मीरा की पदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी फद सं० ६१ पृ० १२६ नवाँ संस्करण

२- सुर बागर ( समा ) फद सं० ३८२ पृ० १३५३

३- “ कार्फेटल पुष्पकाल । कार्फेटल वण्णन सन मेल उम्मे

पोर्कोलम चैस्तु पौरविहुववन संह्रदान

“ मुल्ले पिराट्टी । नी उन मुरुवल कोप्पु रम्मे  
वत्तल विलेवियेस बलि नैकाय । ”

“ पाहुम कुयिल काल । वंतु रन्न पाडल ? ”

- नाच्चियार तिरुमोली १० : १, ४ व ५



विरहिणी नायिका भय, भ्रमर, कोकिल, हंस, सभी से प्रियतम के पास उसके सन्देश को ले जाने की प्रार्थना करती है। नम्माळवार की विरहिणी नायिका हंसों से प्रार्थना करती है कि वह उसके प्रियतम के पास जाकर उसकी विरह-वेदना का वर्णन कर आवे। बांढाल भय से प्रियतम के पास सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। सुर की गोपी कोकिल से प्रार्थना करती है कि वह किसी भी प्रकार उसके प्रियतम को ब्रज में लावे।

“ कोकिल हरि को बोल सुनाउ ।

मधुवन तैं उपहारि स्याम कौं, उहिं ब्रज कौं ले जाउ ॥ ” ३

बाळवार मवतों के तथा बालीयकालीन हिन्दी कृष्ण-मवत-कवियों के विरह-वर्णन की पूर्णता देखकर ही बनती है। विरह की जितनी वन्त-दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंग से उन दशाओं का साहित्य में सामान्य रूप से वर्णन हो सकता है, वे सब उनके काव्य के भीतर मौजूद हैं। विरह के वर्णन में बाळवार हिन्दी के सुर बादि के समकक्ष हैं।

बाचार्यों ने वियोग के अन्तर्गत स्यादस अवस्थाओं का वर्णन किया है- (१) अमिलाणा, (२) चिन्ता, (३) स्मरण, (४) गुण कथन, (५) उद्वेग (६) प्रताप (७) उन्माद (८) व्याधि (९) जड़ता (१०) झूठा बौर (११) मरण। यहाँ बाळवारों के तथा बालीय हिन्दी कृष्ण मवत कवियों में सुर, परमानन्द तथा मीरा के काव्यों में से विरह की उन ग्यारह अवस्थाओं के उदाहरण दिये जाते हैं :-

१- “ वन्म वेत्तीरुम वण्डानम वेत्तीरुम तोलुतिरन्तेन

एन्नेचिनारे कण्टाल एन्ने चोल्सी कवरिडि नीर

एन्म वेत्तीरो ? इल्लो त्तु वेन्दु जंमिन्ने । ” तिरुविरुत्तम, ३०

२- “ मिन्नाकलेलुकिन्दु मेक्काल । वैक्कटु

तन्नाकथिरुमी तंकिव वीर मावर्कु

एन्नालपिर्त्तर्कि विरुप्पि नात्तोरुम

पोन्नाकमुत्तुर्कु एन पुरिक्कुडैम वेप्पुमिने ” - नाच्चियार तिरुमोली ८:३

३- सुरसागर ( समा ) पद सं० ३६५ पृ० १३६२

### १- वमिलाणा-

विरह में वमिलाणा सभी अवशिष्ट दशावर्गों की जननी है।  
प्रिय- दर्शन की वमिलाणा ही विरहिणी की सबसे बड़ी मनीकापना है। बाण्डाल के ३ एक पद का भाव इस प्रकार है :

“ पद मेरा मेरा यौवन ही माध्य के लिए वर्णित है। मैं  
उन्हीं की सेवा करना चाहती हूँ। मैं तो उनकी दासी हूँ। ---- भले ही मेरे स्वामी  
मुझे स्वीकार न करना चाहते हों, मेरी कामना इतनी है कि वे मेरे सामने जाकर  
कह दें कि मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे केवल उनके दर्शन- सुख की वमि-  
लाणा है। ”

### सूरदास-

“ ऐसे समय जो हरि पू जावहिं ।  
निरखि निरखि वह रूप मनोहर, मैं बहुत सुख पावहिं ॥  
कबहुँक संग तु हिति खेलहिं, कबहुँक कुंज मुलावहिं ॥  
बिहारे प्राण रहत नहिं छट मैं, सो पुनि जानि जियावहिं ।  
जबै चलत जानि सूरज- प्रभु , सब पहिलैं उठि धावहिं ॥ ” २

### मीरा-

जगमां जीवणा धोडा, कुणो लयां मवमार ।  
माता पिता जग जन्म दियां रो, करम दियां करतार ।  
सायां लखां जीवण जावां, काई कया उपकार ।

१- “ वैष्णवसुहृदय तिरुमाविल वैनीनुम वीरु वान्दु  
मेळमै चोल्लीमुळम नौपकी विळे तान तरुमेत मिळ नन्दे ”

- नाच्चियार तिरुमोली

२- सूर सागर ( समा ) पद सं० ४००५ पृ० १४०५

साधो संगत हरिगुण नास्या और जा म्हारी सार ।  
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मैं बल उज्जुया पार ॥ १

### २- चिन्ता-

सदैव प्रिय-मिलन की सात्सत्ता और उसी का चिन्तन चिन्ता है। यह अभिलाषा का उत्कट रूप है। नायिका यह चिन्ता करती है कि अगर प्रियतम नहीं जाये तो उसकी क्या दशा होगी ।

नम्रालवार की विरहिणी नायिका कहती है-“ सारा जगत् निद्रा में मग्न है। सर्वत्र बन्धकार ही बन्धकार है। मैं अकेली जाग रही हूँ। रात बढ़ती जा रही है। अगर मेरे प्रियतम नहीं जायें तो मुझे कौन सात्वना दे सकेगा ? मेरी क्या दशा होगी ? ”

### सुरदास-

ऊधौ बहिर्या बति अनुरागी ।  
एक टक मा बहेखि जौवति बरु रौवति, भूलेहुं फल न लागी ।  
बिनु पावस करि राखी, देखत ही बिदमान ॥  
जब धौं कहा कियो चाहत ही, झाँड़ी निरगुन जान । ३

### परमानन्ददास :

रैनि पपीहा बोल्यो रो माई,  
नींद गई चिन्ता चित बाढी सुरति स्याम की जाई ।  
सावन मास देखि बरणा रिहू हौं उठि बागिन घाई ।  
गरजत गगन दामिनी दम्कत तामे जीउ उड़ाई ।

१- मीरा की पदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १९७ नवौं संस्करण

२- तिहुवायसीली ५-४-१

३- ~~तिहुवायसीली ५-४-१~~ स्वरसागर (सभा) पद सं. ४१ ई ५. पृ. १४६२.

विरहिन विकल दास परमानन्द धरनि परी मुस्कान है । १

### ३- स्मरण-

वभिलाषा और चिन्ता से जागे बड़ी हुई विरह की दशा स्मरण की है। इसमें प्रत्येक समय प्रिय की याद सताती रहती है।

तिरुभैरव वात्सवार की विरहिणी "देवत प्रियतम के नाम को ही रटती रहती है। सर्वदा वार्ता के सामने नाचने वाले प्रियतम के रूप का स्मरण कर उसका हृदय फिखल जाता है। उसके मीन नयन कभी बन्द नहीं होते। वह कहती रहती है कि प्रियतम के नयन कमल-दल जैसे हैं, हाथ भी विकसित पद्म हैं। बदन नील मेघ जैसा है।"

### सूखास :

मेरे मन इतनी सूख रही ।

वे बतियाँ हतियाँ लिति राखीं, ये नन्दलाल कहीं । ३

### परमानन्ददास-

हरि तेरी लीला की सुधि जावे ।

कमल नैन मन मोहन मुरति के मन मन चित्र बनावे ॥

१- वष्टाशप और वल्गुम संप्रदाय पृ० ७२४ से उद्धृत

२- "बोतिलुम उन पैरन्दी पद्मोदाल

उरुहुम निन तिरुवुरु निनन्तु" - पेरिय तिरुमोली २-७-५

तथा- "वणि केतु तामरियन्न कण्णुम

वैयुम पय्यम मेनि वानतु

वणि केतु मामुक्किलुम वोप्पर

वच्चो वीरुवरलकिय्या ।" वही ६-२-७

३- सूखागर ( सभा ) पद सं० ४०१३ ७७००४०० पृ० १४०७

कबहुँ निविड तिमिर बालिन कबहुँ फिर ज्यों गावे ।  
 कबहुँ संभ्रम<sup>१</sup> बवासि बवासि<sup>२</sup> कहि संग हिलिमिली उठि धावे ॥  
 कबहुँ नैन मूँदि उर अन्तर मनि पासा पहिरावे ।  
 मृदु मुसुकाणि बँक अवलोकनि बाल हवीली भावे ॥  
 एक बार बाहि मिलहि कृपा करि सो कैयँ विहरावे ।  
 'परमानन्द प्रभु' स्याम ध्यान करि सो विरह गवावे ॥ १

#### ४- गुण- कथन :

प्रिय की याद में वियोगिनी उसके गुणों को, अपने साथ में  
 बिथे गये प्रेम व्यवहार तथा अपने बानोद को दूसरे से प्रकट करती है।

तिरुमोली आलवार की नायिका अपनी सती से अपने प्रियतम  
 के गुणों की प्रशंसा कर कहती है-<sup>१</sup> " जो प्रियतम मेरे हृदय को अपने साथ ले गये हैं,  
 वे मेरे नाथ हैं, सुन्दर- वदन- धनश्याम हैं। वे देवों के देव हैं। सारे जगत् से पूजित  
 हैं। मुक्ति अन्त सुख देने वाले प्रिय हैं। ---"<sup>२</sup>

#### सुरदास-

एक घोंस कुंजनि मैं माई ।  
 नाना कृष्ण लेइ अपने कर, दिय मोहिँ सो सुरति न जाई ॥  
 इतने मैं धन गरबि वृष्टि करी, तनु मीज्याँ मो भई जुठाई ।  
 कंफत दैति उदाइ पीत, ले कहनामय कंठ लगाई ॥

१- परमानन्द सागर सं० डा० गौ० ना० स्वतः फा सं० ५६४ पृ० १६९

२-<sup>१</sup> "प्रातःसुहृम उपट्टमित्त नाथनेन्दुम--

नाडी सन्तुल्लम कोष्ट नाथनेन्दुम ---

तेडी सन्धुम काण माट्टा वेत्तनेन्दुम---

कण्णनेन्दुम वानवरक्त कादलितु मत्तकल

तुल्लम सण्णनेन्दुम इन्धनेन्दुम-----

----- पार्थन सल्लि पाह्वाले ।<sup>२</sup>

- परिय तिरुमोली ४-८-६ से ६



कई वह प्रीति रीति मोहन की, कई कष्टमय<sup>००</sup> जब धीं स्त निहुराई ।  
जब कलवीर सूर- प्रभु सति री, मधुवन बसि सब रति बिसराई ॥ १

मीरा-

हैं बिण म्हारे कौण तबर से, गीवर धन गिरधारी ।  
मीर मुट पीताम्बर डोभा, कुँडल री जब न्यारी ।  
भरी सम्रा मा हुफ्त सुतारी, राख्या लाल मुरारी ।  
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, चरण कंस बलिहारी । २

५- उम्र :

प्रिय- वियोग में उम्र की वह दशा है जब संयोग- समय की सभी सुखदायिनी वस्तुएँ प्रेमी की दुःखदायिनी प्रतीत होती हैं।

तिरुमौ बालवार-

तिरुमौ बालवार की विरहिणी को<sup>१</sup> सुगन्धित चन्दन भी जब जलाने वाला हो गया है। शीतल चाँदनी भी आग बरसाती है। सुन्दर गहने भी उसके शरीर को बाधात कर देते हैं। मन्द मारुत भी आग की ज्वाला के समान भया-  
नक बन गया है<sup>३</sup> ।

सूरदास-

कहाँ लीं मानों बसी ब्रू ।  
बिनु गोपाल सखी ये इतियाँ हूँ न गई है टूक ॥  
हृदय भरत है दावानल ज्यों कठिन विरह की ब्रू ॥ ४

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० ४००२ पृ० १४०४

२- मीरा की फदावली सं० परशुराम बलुर्वेदी पद सं० १३१ पृ० १४०

३- परिय तिरुमौली २ : ७ : ३

४- सूरसागर ( समा ) पद सं० ३४३८ पृ० १३५६

परमानन्ददास-

रस की लीरे रीत मई ।

प्रातः समय जब नाहिन सुनीयत, घर घर चलत रहै ।

ससि की किरन तरनि सम लागत, जागत निरा मई ।

उद्भट भूप फर केतन की जाग्या होत मई ॥

वृन्दावन की भूमि मांमती, ग्वासिन्ह झाँडि दई ।

“परमानन्द स्वामी” के बिहारे, बिधि कहूँ और ठई ॥ १

६- प्रलाप-

प्रलाप की दशा में विरही जन विवश होकर अपने मन की व्याख्याओं को कहते हैं, प्रलाप करते हैं।

जाण्डाल भैयाँ से कहती हैं-“नीलाम्बर में विवरण करने वाली कालि भैयाँ । मुरली-माधव मुँह झोड़कर गया है। बाँसुरी की धारा में स्तनों को सावित करती रहती है। क्या, मुँह बज्जल को इस प्रकार सताना उस माधव को गौरव प्रदान करने वाला कार्य है ? मैं कामाग्नि में तप्त हो गयी । अब शीतल समीरण भी मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है। प्रियतम माधव के वचन का क्या हुआ ? अगर यह कर्तक प्रियतम पर पड़े कि उसने एक स्त्री-लता को सताकर उसका वध किया है, तो उस लड़िना को मैं कैसे सहन कर सकूँगी ?”

१- परमानन्द सागर - सं० डा० गौ० ना० सुबल पद सं० ५३३ पृ० १८१

२-“विष्णिल मिलापु विरिजापील पैकाल ।

तेण्णोर पाय वैकटु स तिरुमालुम पोन्ताने ?

कण्णोक्कल मुल्लिकुवट्टिल तुलिचोरच्चोर्विने

पेण्णिमियीडालिकुम इतु तमक्कु और पेरुमैयि” - नाच्चियार तिरुमोली ८:१

तथा-“कामचीमुल पुहुन्नु कडुवप्पट्टु इलेक्कुंगुल

रमलोर् तेन्दुलुक्कु ईकिलक्काय नानिरुप्पिने” - वही ८ : २

“कदियेन्नुम तानावान कुरुदावु और पेण्कोडिये

वदे चैस्तानेन्नुम चोल वैक्कवार मत्तियारे” वही ८ : ६

सुरदास-

सति बिलि करी कहुँ उपाउ ।

नार मारन चढ़्यो विरहिनि, निदरि पार्थी दाउ ।

हुतासन- धूम जात उन्नत, चढ्यो हरि- दिस काउ ॥ १

परमानन्ददास-

बयौ ब्रज देसन नहिँ बावत ।

नव विनोद नई ह्यधानी नीतन नारि मनावत ॥

सुनियत कथा पुरातन इनकी कहलौ हैं गावत ।

महुँकर न्याय सकल गुन चंचल रस है रति बिसरावत ।

को पतियाय स्यामवन तन को जो पर मनहिँ चुरावत ।

“परमानन्द” प्रीति फल बन्कु हरि जस राग निभावत ॥ २

७- उन्माद-

विरह व्याध के अतिरिक्त से हुई विवेकहीन अवस्था उन्माद कहलाती है।

नाम्नालवार की विरहिणी नायिका की उन्मादावस्था देखिए - “प्रकाशयुक्त चन्द्र को दिखाकर, नायिका उसे प्रियतम कहकर पुकारती है। ऊँचे पर्वत को देखकर प्रियतम सम्झ लेती है। रिमरिम रिमरिम बर्णा होती है, तब नायिका कहती है कि प्रियतम जा रहा है।---- कहीं भी मीठी ध्वनि सुनकर कहती है कि श्याम मुरली बजा रहा है। काले बादलों को देखकर कहती है कि प्रियतम उड़ रहे हैं।”

१- सुरदासर ( समा ) पद सं० २७०३ पृ० ६६२

२- परमानन्ददासर सं० डा० गौ० ना० शुक्ल पद सं० ८६२ पृ० ३०३

३- “ओन्दिब तिलैकट्टी वीलि मणिवण्णने । एन्नुम

निन्दु कुन्दहिने नौविक नेहुवाले । बावेन्दु श्रुतुम

नन्दु पेय्युम मँकाणिल नारणन वन्तानेन्दु बालुम

रन्दिन मेय्यत्तल वेवतार एन्नुडेय कोम्पलेये ।”

- तिरुवाय मीली ४-४-४ , ६, ७ व ६

सूरदास-

ससि करि धनु है चंदहिं मारि ।

तब तो पै कह्यो न सिरिहैं, जब जति जुग भैं तनु जारि ॥

उठि हरिबाह जाइ मंदिर चढ़ि, ससि सनमुख दरपन बिस्तारि ।

स्त्री भाँति बुलाइ मुहूर मैं, जति कल लंड लंड करि डारि ॥ १

जड़ता-

विरहाधिन्य के शरीर के विभिन्न अवयवों का जड़ हो जाना जड़ता कहलाता है।

बाण्डाल-

“ विरह में मेरी हड्डियाँ पिघल गयी हैं। तीर-सम नख अब वन्द नहीं होते । ( इस दुःख-सागर में मैं माधम स्त्री नाव के बिना विचलित हूँ। — मोती-सम मुस्कान दर्शाने वाले मेरे बघर और उभरे हुए मेरे स्तन अब शोभाहीन हो गये हैं। ”

तिरुमोली बालवार

“ तिरुमोली बालवार की विरहिणी नायिका का शरीर वियोग में पीला हो गया है। वह इतनी कृश हो गयी है कि उसके हाथ से कंकण स्वयं गिर पड़ते हैं। ”

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० ३६७१

२- “ एन्पुरु कि एन्विल नेलुक्कलु एन पोरुन्ता पत्तालुम  
तुन्मकळल पुक्कु वैकुन्तैन्कोर तोणी पेरानु उल्ल किन्दैन ”  
मुत्तन्न वेण्णुरुवल वैय्य वायुम मुलैयुम अल्लोळिन्तैन । ”

- नाच्चियार तिरुमोली ५ : ४ व ६

३- “ मान्तलिर मेनि वण्णामुम पोन्नाम  
वलेकलुम ईर निल्ला सन तन  
एन्तिलैयितुक्कु सन निन्निन्तिरुन्ताय ? ”

- पेरिय तिरुमोली २-७-३

सूखाघ-

देखी मैं लोचन चुवत ज्वेत ।

मनहु कपल ससि ब्रास ईस की, मुखता गवि- गनि देत ॥

कहुँ कंकन कहुँ गिरी मुद्रिका, कहुँ टाड़ कहुँ नेत ।

वैतति नहीं चित्र की पुतरी, समुक्ताई सँवैत ॥ १

६- व्याधि-

शारीरिक वक्त्र को व्याधि कहते हैं। विरह के कारण विरही का पीला होना और कृश हो जाना व्याधि है।

वाष्पहास-

“ हे भवो । तुम जाकर मेरे प्रियतम से बताओ कि मेरे शरीर की वक्त्र मच्छरों द्वारा लाये जाने के बाद शेष रह जाने वाले विलाम- फल ( एक फल विशेष जो सूखकर संकुचित हो जाता है ) के समान हो गयी है। मेरी नइले- व्याधि का भी परिचय दे देना । ”

तिरुमोली वासुवार-

तिरुमोली वासुवार की विरहिणी नायिका भ्रमर से कहती है - “ हे , भ्रमर । तुम जाकर मेरे प्रियतम से मेरी पल्ले- व्याधि का परिचय दे जाओ । ”

१- सूखागर ( समा ) पद सं० ४७३३ पृ० १६३१

२- चर्लकोण्टु किलन्तुत्त तण मुक्कि काल । ---

उल्लुण्टु किलन्ति पोल उल पेलियप्पुन्तु एन्नि

नल्लकोण्टु नारण्णु एन नड्ले नोय वेप्पुमिने”

- नाच्चियार तिरुमोली, ८ : ६

३- “ वणिमलर मेल मधु नुकरुम वरुकाल चिरुवण्टे ।

पणियरिक्कि , नी वेन्नु एन पय्ले नोय उरियाये”

- पेरिय तिरुमोली ३-६-२



सूरदास-

चितवत ही मधुवन दिन जात ।

नैननि नींद परत नहिं सजनी, सुनि सुनि बातनि मन जकुलात ॥

जब ये भवन देखियत सुने, धाड़ धाड़ हफ्कौं-प्रब सात ।

जनुदिन नैन तपत दरसन कौं, हरद समान देखियत गात ।

सूरदास स्वामी के बिहारे, ऐसी भई हमारी घात ॥ १

१०- मूर्छा-

वियोग में मूर्छित होकर गिर पड़ता मूर्छावस्था है।

नम्माळ्वार-

नम्माळ्वार की विरहिणी नायिका<sup>१</sup> वियोग-व्यथा में विलाप करती हुई रुदन करती है। फिर मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ती है।<sup>२</sup>

सूरदास-

सोचति अति पड़ताति राधिका, मूर्छित धरनि ढही ।

सूरदास ऋषि के बिहारे ते विधा न जात सही । ३

११- मरण-

हमारे कवियों ने विरह की ग्यारहवीं दशा मरण का काव्य-परंपरा के अनुसार केवल उल्लेख मात्र किया, उस अवस्था का चित्रण क्वा वर्णन नहीं किया ।

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० ३८६६ पृ० १३६६

२- " अलुम तोलुम आवियतवेप्पुकिर्म-----

एलुन्नु मैल नोयकी इमप्पिललिरुवकुम

एने नोयकुनेन एन्नुम-----

- तिरुवाक्कमीली ७-२-८

३- प्रमणीत सार - सं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ६४

बाण्डास-

“ हे मेरी । मेरे प्रियतम से तुम कह बाजी कि प्रतीक्षा  
करते करते मैं मर भी जाऊंगी । ”

सूरदास-

“ प्रान हमारे पात होत है, तुम्हरे भाई हांसी ।  
या जीवन तैं मरन मलौ है, कखत है हैं कासी ॥  
पूरब प्रीति संभारि हमारी, तुमकों कहन पठायौ ।  
हम तौ जरि बरि मस्म मई तुम, जानि मसान जगायौ ॥  
के हरि हमकों जानि मिलावहु, के है बलिये साथे ।  
सूर स्याम भिनु प्रान तबति है, दोऊ तुम्हारे साथे ॥ २

उपर्युक्त स्कादस अवस्थाओं के अतिरिक्त दोनों भाण्डासों  
के हमारे आलोच्य कवियों ने विरह की लीर में अनेक दशाओं का वर्णन किया  
है। ( विस्तार-भय से उन्हें यहाँ नहीं देते )

भ्रमरगीत-

हिन्दी के सूर आदि कृष्ण-मन्त-कवियों ने “ भ्रमर-गीत ”  
नाम से एक विशिष्ट “ विरह काव्य ” की रचना की है। “ भ्रमर-गीत ” शीर्षक  
वाले इस काव्य में वे पद संगृहीत हैं जिनमें गोपियाँ भृंग को सत्य करके अपने मन की  
विरह-वेदना व्यक्त करती हैं। इस प्रकार की भ्रमर-गीत परंपरा तमिल में नहीं है।  
आलवार-साहित्य में विरहिणी नायिका ( गोपी ) के भ्रमर द्वारा नायक के पास

१- बोलिवण्णम वलै चिन्तै उरवकलौहु ज्वैयल्लाम  
रतिमैयाल वट्टु रन्ने ईडलियप्पोन्नवाल ---  
बलियै मेयकाल । आवि कायिरुप्पे । ”

- नाच्चियार तिरुमोली = :३

२- सूरसागर ( समा ) पद सं० ४२२५ पृ० १४७२

की बाबाजू पर लुठ होकर तालियाँ बजाता हुआ नाच उठता है। उस प्रसंग का वर्णन करने वाले पेरियाल्वार के पद में हास्य का फुट है। जब बालक कृष्ण अपनी आँतों को बार-बार लोल-लोलकर बन्द करते हैं और अपने हाथों की उंगलियों को एक विचित्र प्रकार से, रत्नकर विविध प्रकार की बाबाजू पैदाकर वहाँ को "हाज" का भय दिखाते हैं,<sup>१</sup> तब हास्य का अच्छा परिपाक होता है।

चीर-हरण-लीला को चित्रित करने वाले बाँडाल के एक पद में गौपियों की सादियों को लेकर पेड़ पर चढ़ने वाले कृष्ण की चेष्टाओं की तुलना बन्दर की चेष्टा से की गई है। गौपियाँ भी पेड़ पर विराजमान कृष्ण से कहती हैं— हे बन्दरों के राजा ! हम तुम्हारे "शासन" को मानती हैं, कृपया हमारी सादियों को नीचे फेंक दो।<sup>२</sup>

सुरदास जी के अनेक पदों में हास्य का फुट है। एक ग्वातिन ने कृष्ण को दही की चोरी करते हुए रैन मीके पर फाड़ लिया। मुद्दा पूरा था, कृष्ण इन्कार नहीं कर सकते, क्योंकि उनका हाथ दधि-माखन में था। अब क्या किया जाय ? उन्होंने फर्मान ही बात बनाई -

मैं जान्यो यह मेरी घर है, तो धोते में जायों।

देखत हो गौरस में चींटी, काढन कीं करि नायों।<sup>३</sup>

उनकी बात पर विश्वास ही या न हो, पर चतुरता-पूर्ण उत्तर सुनने वाले के अधरों पर हास्य धिक् ही उठेगा। एक और उदाहरण लीजिए—

स्थान पर ये सत्ता सबे मिलि, भैंरें मुल लफटायों।

देखि तुही सेकि पर माखन, ऊँच धरि लटकायों।

१- पेरियाल्वार तिरुमोली २-८-९

२- वही २-१८९ से १०

३- " परमक विलिपु स्तुम नोयकी पत्तर कृडेन्ताहुम चुनेयि  
वरमक निल्ला कण्णनीर कल जलमरु किन्दुवापाराय—  
कृस्करसु वावतु वरिन्तोम कुरुन्तिळै कूर पणियाय "

- तिरु नाच्चियार तिरुमोली ३:४

४- सूरसागर ( समा ) पद सं० ८६७ पृ० ३५४

हों जु कहत नान्हें कर अपने में कैसं करि पायों ।

मुख दधि पौंहि, बुद्धि रुक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायों ।

हारि सांदि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कण्ठ लगायों ॥ १

इस पद में हास्य रस की कौटि तक पहुँच जाता है। मुख से बिफटा हुआ दही पौंहना, पीठ पीछे दोनैर की छिपाना, तथा छोटे हाथों की तुहाई देना उद्दीपन विभाव की सामग्री है। स्याम माव हास्य है जो पद में वर्णित संपूर्ण परिस्थिति के सामने आते ही स्मित उठता है।

### करुणा-

पेरियाल्वार बुढ़ापे का वर्णन कर यह उपदेश देते हैं कि कर्ष प्रसार के कष्टों को दूर देने वाले बुढ़ापे के जाने के पहले ही मनुष्य को भगवान् की शरण में जाना चाहिए। बुढ़ापे में होने वाले जिन कष्टों का वर्णन वाल्वार करते हैं, उसमें करुणा रस का संचार है। " बुढ़ापा आता है। शक्ति क्षीण हो जाती है। साँस ऊपर की ओर जाती है। शरीर पर मक्खियाँ रह- रहकर वेदना दे रही हैं। पैर काँपते हैं। मुँह में लिया गया भोजन भी पेट में नहीं जाकर बाहर निकल जाता है। बालों से पानी निकल जाता है। कूँठे पास जाकर धँसते रहते हैं। ( ऐसी दशा में भी ) रिश्तेदार जाकर छिपाकर रहे हुए धन का पता पूछ- पूछकर लेते हैं। - अब जाकर वह भगवान् को पुकारता है। " इस वर्णन में शोक और

१- सूरसागर ( समा ) पद सं० ६५२ पृ० ३७९

२- चोयिनाल वैरिन्तेरिय पुण मैल च्चेलेरिक्कुलम्पितिरुन्नु र्कुम  
वैयिनाल वरिप्पुप्पु मय्येकी एल्लैवाय वेन्दु वैवैतल मुन्नम-----  
मैलेलुन्त तौर वायुक्किलन्नु मैल मिट्टिने उल्लै वाक्की  
कालुक्कियुम विदिर विदितु एरी कण्णुरक्कमावदन मुन्नम-----  
चोविनाल पोरुल वेतुप्पाप्पिल चोल्नु चोल्लेन चुट्टु मिहन्नु  
वार्विन वालुम वाइ तिरवादे अन्त कालमल्लेवदन मुन्नम -----

- पेरियाल्वार तिरुमोली ४-५-२ से ५

सन्देश भेजने के प्रसंग का तो वर्णन है। पर वह भी बहुत संक्षेप में है। उसमें उदव के ब्रज में जाने का उल्लेख नहीं है और गोपियों के उपासम्भ का भी विस्तार से विवरण नहीं दिया है। अतः वह हिन्दी के "भ्रमर-गीत" की कौटि का <sup>नहीं</sup> है। "भ्रमर-गीत" काव्य हिन्दी कृष्ण-काव्य की एक बड़ी विशेषता कहा जा सकता है। भ्रमर-गीत प्रसंग की सर्वप्रथम विकसित एवं विस्तृत रूप से साहित्य में लाने का श्रेय सूरदास जी को है।

वैसे तो सूरदास जी ने तीन-भ्रमर-गीत लिखे हैं। नन्ददास का भी एक "भ्रमर-गीत" है जो सूर के "भ्रमर-गीत" के अनुकरण पर निर्मित है। इन दोनों के बाद तो "भ्रमर-गीत" काव्य की एक लम्बी परंपरा हिन्दी में चल पड़ी। सूरदास जी के तीन-भ्रमर-गीतों में से एक ही अधिक विस्तृत रूप में है और उसी का भ्रमर-गीत काव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। सूर के इस भ्रमर-गीत के अन्तर्गत सूर की प्रतिभा और कवित्व-कला के विकास के लिए पर्याप्त स्थान है। उदव के ब्रज में जाने पर गोपियाँ उपासम्भ पर शब्दों में अपनी विरह व्यथा को उदव से कहती हैं, एक मीरे को संबोधित कर। पर लक्ष्य तो उदव को सुनाने का ही है। विप्रलम्भ-शृंगार के अन्तर्गत निर्मित इस भ्रमर-गीत में गोपियों का उचित-वैचित्र्य, व्यंग और वाग्विदग्ध दर्शनीय है। इस भ्रमर-गीत के प्रणयन में सूर के दो उद्देश्य हैं- ज्ञान से मचित को श्रेष्ठतर सिद्ध करना और सगुण भगवान् की उपासना की महत्ता दिखलाना।

सूर की गोपियाँ उदव के निर्गुण ब्रज के उपदेश को सुनकर दुःखी होती हैं और अपनी कोई वास्था नहीं दिखलाती। क्योंकि वे तो अनन्य भाव से सगुण कृष्ण की उपासिका हैं। तभी तो वे कहती हैं :-

तो हम मानैक बात तिहारी ।

अपनी ब्रह्म दिखावाँ ऊँची मुहुट फिताम्बर धारी ॥

उनके लिए तो निर्गुण ब्रज की उपासना अर्चन और व्यर्थ है। ऐसे लोक गोपियों के कथन सूर के भ्रमर-गीत में भरे पड़े हैं जहाँ वे निर्गुण के प्रति अपनी अत्यन्तता प्रकट करती हैं। जैसे-



दुःख स्थाई भाव है।

नायिका के विरह-वर्णन में भी करुण मनोभाव के कई सुन्दर चित्र हैं। बाण्डास कहती हैं-“ वियोग में हड्डियाँ पिघल गयी हैं। शरीर क्षीण हो गया है। दुःख - सागर में माधव कभी नाव के बिना में डूब रही हूँ। ज्वरों की वह मधुर मुस्कान भी लोपित हो गयी है। शीतल हवा और चाँदनी भी अब सताती हैं।” यह करुण चित्र विप्रलम्भ-रुंगार के अन्तर्गत आता है।

हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों के अनेक पदों में करुण रस की व्यञ्जना हुई है। सूर के दावानल-वर्णन में करुण रस का चित्र अंकित किया हुआ है।

“ अब हैं राति तेहु गोपाल ।

दसहुँ विसा दुसह दवागिनि, उपजी है इहिँ काल ॥

फटकत बाँस, काँस दुस चटकत, लटकत ताल तमाल ।

उचटत बति कीार, फुटत फर, फफटत लफट कराल ॥

धूम धूमि बाढ़ी घर बैर, चमकत बिबि-बिबि ज्वाल ।

हरिन बराह, मोर चात्क, फि, जरत जीव बेहाल ॥ २

नरोत्तम दास के निम्नलिखित पद में सुदामा की दयनीय दशा का वर्णन है। इस पद में यद्यपि करुण रस का पूर्ण परिपाक नहीं होता, तो भी करुण-भाव का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है :

सोस फा न भगा तन मैं, प्रभु । जाने को बाहि बसि केहि ग्रामा ।

धौती फटी सो लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहीं सामा ।

दार सरी दिज दुर्वल रु, रह्यो चकि सो बसुधा बभिरामा ।

पूजत दीन दयाल को धाम, बतावत आपनी नाम सुदामा ॥ ३

वीर रस-

कृष्ण काव्य में वीर रस के भी कुछ प्रसंग हैं। जहाँ कृष्ण

१- नाञ्जियार तिरुमोली ५:४, ६ व १०

२- सूरसागर ( समा ) पद सं० १२३३ पृ० ४७

३- सुदामा चरित - सं० ललिताप्रसाद चतुर्धन , १५

१- सूरदास या निर्गुन सिन्धुहि कौन सके बगगाहि । ”

२-० कौन काज या निर्गुनि सौ विखीवहु कान्ह हमारे । ”

३- ” निर्गुन कौन देख को बासी । ”

सूर का ” भ्रमरगीत ” प्रसंग विशेष की विशेषता के साथ- साथ अपनी निजी अन्य विशेषताएं भी रखता है, जिनके कारण वह हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखता है। बालीय कवियों में सूर और नन्ददास के भ्रमर- गीत काव्यों में कृष्ण- वियोग से व्यथित गोपियों के नाना भावों, मनोवृत्तियों, प्रेम- विह्वलता, विरह वादि के अनेक सुन्दर और अमूर्त चित्र मिलते हैं। विरह की स्फादल दशाओं के ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक भाव- स्थितियों के भी सजीव चित्रण मिलते हैं। सूर के ” भ्रमर- गीत ” से दो- तीन उदाहरण यहाँ पर्याप्त हैं।

१- मधुकर ये नैना पे हारे ।

निरसि निरसि मग कमल नैन के प्रेम फान मर भारे ॥

ता दिन हैं नींदों पुनि नासी, चौकि परत बधिकारे ।

सुफ तुरी जागत पुनि वैई, कसत जु हृदय हमारे ॥ १

२- निसि दिन बरणात नैन हमारे ।

सदा रहति वरणा रितु हम पर, जब हैं स्याम सिधारे ॥

दृग अजन न रहत निसि बासर, कर कपोल मर कारे ।

कंचुकि- फट सुखत नहिं कबहुँ, उर बिब बहत फारे ॥

बाँसू- सलिल सबै मड काया, फल न जात रिस टारे ।

सूरदास प्रभु यहँ परेखी, गोकुल काहँ क्सारे ॥ २

३- बिनु गोपाल बैरनि मई कृँ ।

तब मैं सता लगति तन सीतल, अब मई विजय ज्वाल की पुँ ।

कृथा बहति जमुना, सा सीतल, कृथा , कमल- फूलनि बलि- गुँ ।

१- सूरदासर (सभा ) पद सं० ४१६७ पृ० १४६३

२- .. ३८५४ पृ० १३६१

फन, पान, फनसार, सजीवन, दधि-सुत फिरनि मानु मई मुनि ।

यह ऊँची कहियाँ माघी सों, मदन मारि कीन्हों हम लूँ ॥

सूरदास- प्रभु तुम्हारे दास कौं, मा- जोषत बँहियाँ मई हूँ ॥ १

विरह वर्णन की व्यापकता के अतिरिक्त सूर के 'भर-गीत' में गोपियों की सरलता और कान्यता के साथ-साथ उनकी वाक्-पटुता, उचित-वैचित्र्य और वाग्वेदग्य भी काव्य की दृष्टि से अति उत्तम हैं।

### कान्य रस-

बालवार भवतों के तथा बालीक्य कालीन हिन्दी कृष्ण-

भवत कवियों के काव्य में मुख्य रूप से वात्सल्य रस और मृगार रस का ही परिपाक हुआ है, जिनकी चर्चा विस्तार से हमने पिछले पृष्ठों में की है। परन्तु इन भवत-कवियों की श्रान्त कवि-दृष्टि से कान्य रस भी जोफत नहीं रह सके। उनकी रचनाओं में उद्यत दोनों रसों के बीचों-बीच प्रेम के अनुकूल हास्य, करुणा, अद्भुत वादि रसों का भी परिपाक हुआ है। नीचे हम इनमें से प्रत्येक रस के कुछ उदाहरण देते हैं।

### हास्य-

बालवारी में विशेष रूप से भरियालवार तथा हिन्दी कृष्ण-

भवत-कवियों में सूरदास जी की शैली से उनकी विनोद प्रियता टफती है। बाल-लीला-वर्णन में कृष्ण की बेचटार तथा उनकी बाल्यपूर्ण उचितियाँ हास्य का संचार करती हैं। वात्सल्य-वर्णन के अनेक उदाहरण जिनमें हास्य का फुट है, हम पीछे दे चुके हैं। ऐसे स्थानों पर हास्य रस की कोटि तक प्रायः नहीं पहुँचा है। हास्य के एक दो उदाहरण यहाँ देते हैं।

बाल कृष्ण पड़ोस के घरों से मक्खन चुराकर ही नहीं लाता, बल्कि लाने के बाद लाली घड़ों को फत्थर पर दे पास्ता है और उनके टूटकर बितरने

को राजाघरों और महलों के साथ लड़ते हुए चित्रित किया गया है, वहाँ वीर रस का संचार हुआ है। बाल्यार- साहित्यमें वीर- रस- प्रधान प्रसंग बहुत कम हैं। फिर भी स्वाध स्थलों में कृष्ण की वीरता का वर्णन सुनते समय वीर रस की व्यंजना होती है।

गौवर्धन- गिरि- धारण- प्रसंग के पेरियालवार के एक पद में कृष्ण की अपार वीरता का वर्णन है-<sup>१</sup> " बड़े बड़े बादल पत्थर बरसाने लगे मानों रण- क्षेत्र में शरों की बर्षा हो रही हो । कृष्ण ने गौवर्धन- गिरि को ढाल की तरह उठाया और उस गौवर्धन- गिरि- स्त्री ढाल से पत्थर बर्षा स्त्री शरों को रोका । "<sup>२</sup>

हिन्दी कृष्ण- भक्त- कवियों में सूर और परमानन्ददास के कुछ पदों में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। सूर का निम्नांकित पद देखिए-  
बाबु जो हरिहिं न सब गहाऊँ ।

तो साजों गंगा जननी कीं, सातनु- सुत न कहाऊँ ।

स्यन्दन सपिड महारथि सँढौं, कबि ध्वज सहित गिराऊँ ।

पाँख- दल- सम्पुल हूँ धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ ।

जती न करौं सपथ तो हरि की, इत्रिय- गतिहिं न पाऊँ ।

सूरदास रन- भूमि विजय- बिनु, जियत न पीठि दिहाऊँ ॥<sup>३</sup>

( इस पद में भीष्म नायक ( बाण्य ), कृष्ण प्रतिनायक ( बालवन ) कृष्ण की शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा उद्घोषन और उसकी स्मृति

१- " चलमापुक्ति पद कणायीकस्तु

चरमारी स्तुम पौलिन्तु प्रवर्द्धित

नलिवानुरूपकैटकम कोप्पन्न पौल

नारायणन मुन मुक्त कात फौ "<sup>१</sup>

- पेरियालवार तिरुमोली ३-५-८

२- सूरदासर ( समा ) पद सं० २७० पृ० ८७

संचारी तथा स्पन्दन और महारथों को सज्जित करने, लून की नदी बहाने आदि की प्रतिज्ञा अनुभाव हैं। )

परमानन्ददास का निम्न पद देखिए-

नन्द । गोवर्धन पूजा काज ।

जाते गोप गुवाल कोफिका सुखी सबन को राज ॥

बाकों रुचि- रुचि बलिहि बनावत कहा सऊ सौ काज ।

गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ॥

भरी कह्यौ मान अब लीजै मर मर सकटन साज ।

परमानन्द बान के वर्षत वृथा करत कित बाज ॥ १

रौद्र रस-

रौद्र रस के चित्र आलवार- साहित्य में बहुत दृढ़ने पर भी नहीं मिलते । हिन्दी कृष्ण-काव्य में रौद्र रस के भी चित्र मिलते हैं। ब्रजवासियों द्वारा कृष्ण के कहने पर, इन्द्र की पूजा त्याग कर गोवर्धन पर्वत का पूजन होने पर इन्द्र का कोप रौद्र- रस की कोटि तक पहुँच गया है।

प्रथमहिं देउं गिरिहिं बहाइ ।

ब्रज- पातनि करौ चुसुट, देऊं घरनि मिलाइ ॥

भरी इन महिमा न जानी , फ्राट देउं दिताइ ।

बरसि जस ब्रज धौइ डारौं लोग देउं बहाइ ॥

सात- सेहत रहे नीकै, करी उपाधि बनाइ ।

बरस दिन मोहिं देत पूजा, दई सोउ भिटाइ ॥

सि सखि सुरराज लोन्हे प्रलय भय बुलाइ ।

धूर सुरपति कस्त पुनि- पुनि, परौ ब्रज पर धाइ ॥ २

१- परमानन्द सागर सं० डा० गी० ना० शुक्ल पद सं० २७७ पृ० ६३

२- ब्रजसागर ( समा ) पद सं० १४७० पृ० ५५६-५७



( उस पद में शोध स्थाई भाव है, इन्द्र वाजय, ब्रजवासी बालम्बन, पूजा को भिटा देना उदीपन विभाव, फल को धूल में भित्ताना, फलों को बुलाकर ब्रह्म में बहाने के लिए वादेश देना अनुभाव और लौई हुई पूजा की स्मृति संवारी भाव है। )

परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में भी रोंद्र- रस की व्यंजना हुई है।

काहे की मारग में बध हैदत ।

नंदराज की मातो हाथी बावत जहुर लपेटत ॥

कहत ग्वाल सब सता नंद के गल गरजत मुज ठीकत ।

कंस कंस को परिचित करि है कौन मरीसे रोकत ॥

नाहिन सुनी पूतना मारी तुनावत बध कैसेी ।

“ परमानंद दास ” को ठाकुर ये गोपाल पेरसी ॥ १

### जद्मुत रस-

जद्मुत रस के प्रसंग बालवार तथा हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों के बख्खर पर काव्य में कई स्थानों पर हैं। बाल- लीला के अन्तर्गत कृष्ण के माटी-खाने का वर्णन है। एक गोपी ने बाहर यशोदा से शिकायत कर दी कि तैरे लहूँ ने मिट्टी खार है। यशोदा ने कृष्ण को मुस लौलकर मिट्टी दिताने के लिए कहा । कवि पेरियालवार को अवसर मिल गया और उन्होंने कृष्ण मुखव्यादान में सम्राज ब्रजपंड को दितकर जद्मुत रस की सृष्टि कर दी । पेरियालवार लिखते हैं- यशोदा ने सुत के मुँह को लौलकर देता कि कृष्ण के मुँह के अन्दर सात लोफ दीस रहे हैं। समस्त ब्रजपंड दीस रहा है। “ यशोदा कृष्ण

१- परमानन्द रागर सं० ७० गो० ना० सुवल पद सं० ५०२ पृ० १७०

२- “ रेय नावल्लिवालुवृ वल्लान्तिट

वेय मेलुम कण्टाल पिल्लेवायुले । ”

- पेरियालवार तिहमोली १-२-६

के मुख में अलिप्त प्रताप को देखकर विस्मय-विमुग्ध हो गईं। दूर भी लिखते हैं :-

अलिप्त प्रताप सण्ड की महिमा दिखरायी मुख माहीं ।

चिन्तु, सुमेरु, नदी, वन, पर्वत चकृत भई मन माहीं ॥ १

मुरली के विस्मयावह प्रभाव के चित्रण में भी पेरियालवार और सुरदास ने बहुमुक्त रस का समावेश किया है। पेरियालवार लिखते हैं -<sup>१</sup> "इयाम मुरली काने लो । मुरली की मधुर-ध्वनि सुनकर देवलोक की मेनका ऊबती तिलो-समा बादि बधराई भी लज्जित होकर अपने नृत्य-गीत छोड़ देव लोक के द्वार पर खड़ी मुरली-नाद सुन रही थीं। --- पक्षी गण अपने घोंसले छोड़कर इयाम के चारों ओर जाकर घेरने लगे । पशु-गण भी जमीन पर लेटे लेटे मुरली नाद को सुनने में रत थे । हिरण के समूह भी घास चरना भूलकर चित्र लिखित से हो गये । वृक्षा पुष्प-वर्णा करने लगे । फूलों से मधु की धारा बह उठी । पेड़ों की डालें नीचे की ओर मुक गयीं मानों वृष्ण की ओर देखकर प्रणाम कर रही हों।<sup>२</sup>"

दूर के नीचे लिखे पद में भी मुरली-ध्वनि को सुनते ही वात्सव्यमन्त्र घटनाओं के घटित होने का उल्लेख किया गया है :-

मुरली सुनत अवत चले ।

थी चर, जल भरत पावन, विकल वृक्ष फले ॥

पय ब्रवत गौधनि थन तै, प्रेम पुलकित गात ॥

भुरे हुम अकुरित पल्लव , विटप बचल पात ॥

सुनत सा- मृग मीन साध्यों, चित्र की अनुहारि ।

धरनि उमगि न मति उर में जती जोग विहारि ॥

१- सुरदास (समा) पद सं० ८७३ पृ० ३४७

२- "मेनकैयोहु तिलोधि वरमे उरुप्पसियारवर वैलुकि मयकी वानरुम पड़िथि वाय तिरप्पिन्दि वाडल पाडल्ले मारिनर तामे"

"परिपेयिन कर्णल कूहु तुरन्तु वन्तु कूतन्तु फुकाहु किडप्प कर्पेयिन कर्णल काल परप्पिट्टु कविलन्तिरकी वेवियाट्ट किल्लावे ॥

- पेरियालवार तिरुमोली ३-६-४, ८, ९ व १०

ग्वाल गृह- गृह सबे सोवत, उहें सख सुमाह ।

सुर- प्रभु रस रास के हित, सुख रेनि बढाह ॥ १

परमानन्द बास के निम्नलिखित पद में अद्भुत रस का

समावेश है :

कैसी माहें बरख उफै भारी ।

फाँत लियो उठाय केँ ले सात बस को बारी ।

सात पाँच निसि झटक ही याने बाम पानि पर धार्यो

बति सुकुमार कृवर नंद कैसे बोझ सहार्यो ।

बरसे मेघ महा- प्रलय के तिनते घौण उबार्यो ॥

गोधन ग्वाल गोप सब राति सुरपति गरब प्रहार्यो । २

#### मयानक रस-

बालवार- साहित्य में मयानक रस प्रधान बहुत कम प्राणि हैं। तिरुप्पी बालवार ने "सिंहवैल कुन्दु" नामक मयानक वन- प्रदेश का वर्णन करते हुए लिखा है- "बाँसों के टवकराने से पैदा होनेवाली बाग सारे आकाश को रक्षित कर देती है, मानों आकाश ही बल रहा हो। सिंह, हाथी आदि जंगली जानवर मयभीत होकर मरकर जायाजु करते हुए छ्हर उधर भागते हैं।" तिरुप्पी बालवार के

१- सुरसागर ( समा ) पद सं० १६८६ पृ० सं० ६२

२- परमानन्द सागर सं० डा० गौ० ना० कुबल पद सं० २६८ पृ० ८४

३- " काञ्चवाके नेदु वीलिप्प कल्लदर वैरुलै पोय

तेल्ल तीयाल विण्णक्किवकुम सिंहवैल कुन्दुमे "

" नेरिन्त वैयि मुल्लुल निन्दु नीलनेरिवाय उल्लै

तिरिन्त वानेञ्जुवहु पावकुम सिंहवैल कुन्दुमे "

- पेरिय तिरुमोली १-७-६ व ८

इस वर्णन में मयानक रस की व्यंजना हुई है।

सुरदास जी के कुछ पदों में मयानक रस के उदाहरण मिल जाते हैं। भवों की घनघोर वर्णा से ब्रजवासी मयभीत हो उठे। उस समय का वर्णन करते हुए सुर लिखते हैं :-

भय-दल- प्रबल ब्रज लोग देखें ।

चकित जहँ- तहँ मर , निरखि बाधर नर, ग्वाल गोपाल डरि गगन भैं ॥

ऐसे बाधर सजल, करत बलि महाबल, चलत घहरात करि बंधाला ।

चकित व मर नंद, सब महर चकित मर, चकित नर- नारि हरि करत स्थाला ॥

पटा घन घोर घहरात, अररात, दररात, धररात ब्रज लोग डरपे ।

तड़ित- जाघात तररात, उतपात, चुनि, नारि- नर सकृचि तन प्राण बँपि ॥

कहा बाहत होन, मई कबहुँ जो न , कबहुँ जांगन मीन बिकल डोलै ॥ १

( इस पद में ब्रजवासियों के हृदयों में भयंकर वर्णा के कारण उत्पन्न हुवा मय स्थाई भाव है। बन्धकार फैलना, किसी कड़कना वादि उद्दीप्त विभाव के वन्तर्गत हैं। ब्रजवासियों का व्याकुल होना, शंकाकुल होना वादि अनुभाव हैं और उधर- उधर दृष्टि- विक्षेप, बया होने वाला है वादि उचितियों से चिन्ता वादि का प्रकट करना संचारी भाव हैं। )

बीभत्स रस-

हिन्दी के कृष्ण- भक्ति- काव्य में बीभत्स - प्रधान पद बहुत कम हैं। आलवारी के काव्य में स्काध उदाहरण बीभत्स रस के भी मिल जाते हैं। तिरुमी आलवार बुद्धि का वर्णन करते हुए लिखते हैं - " बुद्धिपा वा गया है। शरीर कुब्ज हो गया है। वह एक एक पैर को धीमे से जागे रखता हुआ जाता है। हाथ कांपते हैं। पीठ पर हड्डियाँ दीख रही हैं। जॉन् बिल्कुल धँस गयी हैं, मानों सड़कों में पड़ी हों । शरीर में जीके की मांति हड्डियों का जात मात्र रह

रह गया। शरीर शक्तिहीन हो गया है। बर्तों से पानी निकलता है। मुँह से कफ निकल रहा है। वह बार बार खाँसता है। शरीर में कुन्धी-फौड़े हैं बिन पर मखियाँ रह-रहकर उता रही हैं।" (कवि का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के बुढ़ापे जाने के पहले ही मनुष्य को भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

बीमत्स रस का स्थाई भाव घृणा है। घिनौने दृश्य जैसे बालम्बन हैं। उसमें कृमि, मखियाँ, दुर्गन्ध आदि उदीपन हैं। मोह, अपस्मार, व्याधि आदि संचारी हैं। धूँना, मुँह सिकोड़ना, मुँह फेरना आदि अनुभाव हैं।

#### शान्त रस-

शान्त रस का स्थाई भाव निर्वेद है। संसार से ग्लानि एवं विरचित की भावना इस रस के मूल में है। संसार की निवारता, अपने पापों की गणना और क्रिये पर पश्चात्ताप आदि अनुभाव तथा हर्ष आत्म-ग्लानि आदि संचारी भाव हैं। बालवारी के तथा हिन्दी कृष्ण-मन्त-कवियों के विनय के पदों में शान्त रस की प्रधानता है।

तिरुमल्लि बालवार के एक पद का भाव इस प्रकार है :-

" हे, मेरे मन ! भगवान् की वन्दना और स्तुति करो । यह जान लो कि मनुष्य जीवन बिल्कुल मिट जाने वाला है। अविरल रूप से बीतते रहते दिन सड़ग की तरह वायु की अवधि काटते रहते हैं और व्याधि, जरा और मरण में जीवन की परि-

१- " सुदृष्टु कोल तुण्यया मुन्नडि नोवकी वलन्तु  
 इदु काल पील तल्ली मेल् इरुन्तु वैदु वैयामुन "  
 मुदु पदि कैलवाल मुन्नोरु कावुन्दी  
 विदिर विदितुं कण तुलन्नु मेक्किले कोप्पु इरुमि "  
 उरिक्कल पील मेन्नरम्पेल्नु ऊन तलन्नु उल्लैल्की  
 पीले चोर कण्णुल्की पिले मूनु इरुमि  
 तालक्कल नोववम्पिल मुदिट तल्लि नव्वामुन "

- पेरिय तिरुमोली १-३-१ से ४



णति होती है। वह भी जान ले कि दान की ज़रूरत दाता पर निर्भर है।  
प्रार्थना करो कि भगवान् के चरण कमल तुम्हें उत्कृष्ट भोग-सुख को प्रदान करें  
जिससे पुनर्जन्म संभव न हो।”

तौंडरदिपौडी बालवार के दो पदों का भाव इस प्रकार  
है :- “ हे करुणामूर्ति । मेरा अपना गाँव नहीं, अपना घर नहीं और पूछने  
वाला कोई बन्धु नहीं। इस पार्थिव जीवन में मैं बाकी चरणों की सुदृढ़ शरण  
तक नहीं ग्रहण की। — अब तो भारी क्रन्दन करता हूँ। मुझे अवलम्ब दीजिए।  
मेरे मन में थोड़ी भी शुद्धता नहीं। मुँह से एक भी हित वचन नहीं निकलता। क्रोध  
से डेण-बुद्धि का दमन नहीं कर पाता। हे, कृपा सिन्धु। अब मैं बाकी शरण  
में आया हूँ। मेरा उद्धार कीजिए। ”

सूरदास जी की निम्नलिखित पंक्तियों में शान्त रस की  
व्यवना हुई है :

१- बालु कलाकी नालुकल बैल नौर्यै कृन्दि मुप्यैली  
माहुनालादलाल वर्णकी बालु एन नैवमे ।  
बालताकूम नर्म्य थेन्दु नन्दुर्णन्तन्दिद्युम  
मीलुमिलाय भोगम् नल्क वैष्टुम माल पादमे”

- तिरुच्चन्तविरुचम , ११२

२- ऊरिल्लेन काणियिल्लै उलु म्पूस्विरिल्लै  
पारिल निन्पाय मूलम पदिल्लेन परम्पुर्ति ।  
कारौलि वण्णने । कण्णने । कदरुकिन्देन”

“ मनचिल और तूळै इल्लै वायिओर इन्सोल्लै  
विनविनाल वैदम नौयकी तीविलिविलिवन वाला  
एनक्कु इनिक्कदि एन्सोल्लाय ? एन्नयालुडै कोवे । ”

- तिरुमालि , २६ और ३०

धीरे जीवन भरी लत मारी ।

कियौं न संत-समागम कहूँ, लियौं न नाम तुम्हारी ।

बलि उनक मोह-माया-बन्ध नहीं कहूँ बात विचारी ॥

करत उपास न पूजत काहूँ, गनड न साटी - सारी ।

छंदी-स्वाद-विकस निशि-बाहर, बाप वसुनपी हारी ।

जल बौंछि में चहुँ दिशि पैरयो, पाउं कृत्कारी मारी ।

बांधी मोट फहारि त्रिविध गुन, नहीं कहूँ बीच उतारी ।

दत्थौं घूर विचारि सीस मरी, अब तुम सरन फुकारी । १

० ० ०

हे मन गौविन्द के ह्वे रहिए ।

हरि संसार अपार धिरत ह्वे, जम की ब्रास न सहिये ।

दुल, सुल, कीरति, माग वसै जाइ पर सो गहिये ।

सूरदास भगवत-पजन करि अंत बार कहूँ लहिये । २

वर्णन-वैचित्र्य

प्रकृति - वर्णन-

प्रकृति वादि काल से ही मानव की सत्त्वरी रही है। जन्म से मरण तक फैले हुए जीवन के विस्तृत क्षेत्र में प्रकृति उसके साथ रहकर भाव-विकास और आनन्द-प्रसार में योग देती रही है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण करने वाले कवि ही अमर काव्य की रचना कर सके हैं। काव्य का मूल उद्देश्य तो शेष सृष्टि के साथ मानव हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना है। अतः

१-सूरदासर (समा) पृष्ठ सं० १५२ पृष्ठ ५०

२- " " ६२ पृष्ठ २१

काव्य में प्रकृति - चित्रण की अनिवार्यता सर्वविध है। वास्तव में जबतक और वास्तव्य काहीन हिन्दी कृष्ण- पद्य कवि भी उपर्युक्त नियम के अपवाद नहीं थे। उनके काव्य के अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण ~~की~~ व्यापक और विविध रूप में हुआ है। वास्तव में जबतक के विषय में यह कहा जा सकता है कि जगह-जगह जाकर भवित-प्रचार करने के हेतु उन्होंने प्रकृति के उन्मुख वातावरण में विचरण किया था। स्वयं प्रकृति प्रेमी होने के कारण उनके भवित-काव्य में भी प्रकृति - चित्रण का समावेश स्वतः ही गया है। वास्तव्यकाहीन हिन्दी कृष्ण- पद्य कवियों ने भी ब्रज के रमणीय प्राकृतिक वाता-वरण में रहने के कारण उसके प्रत्येक को का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। अतः प्रकृति के विविध रूपों का मध्य चित्रण उनके काव्य में उपलब्ध है।

#### प्रकृति-चित्रण के विविध रूप-

जिस प्रकार जीवन के प्रति प्रत्येक मनुष्य <sup>का</sup> दृष्टिकोण अपनी मस्तिष्क के विकास, बुद्धि की प्रसरता, अनुभव, ज्ञान और संस्कारों के प्रभाव के अनुसार भिन्न होता है, उसी प्रकार प्रत्येक कवि की प्रकृति विषयक चेतना भी उसकी अपनी ही होती है। वह प्रकृति का भिन्न भिन्न रूपों में अवलोकन करता है और स्वतन्त्र रूप से उसका चित्रण करता है। कभी वास्तव्य के रूप में, कभी उद्दीप्त के रूप में वह प्रकृति का चित्रण करता है। उद्दीप्त के अन्तर्गत प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओं के सम्बन्ध की इतनी गहरी रूपता प्राप्त होती है कि उसको संकुचित सांख्यिक परिमाणों में बाधना कठिन है। कभी कवियों ने भाव को वाधार मानकर प्रकृति को उसी के अनुरूप चित्रित किया है और कभी प्रकृति को वाधार मानकर भाव-जगत् में उसकी प्रतिक्रिया का संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कभी मानवीयता अथवा मानव-सम्बन्धों का आरोप उस पर किया गया है, और कभी उपमानों के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य के कल्पित उपादानों को ग्रहण किया गया है। कल्पना का प्रयोग तो सर्वत्र देखने को मिलता ही है।

सामान्यतः काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति के ६ भिन्न रूपों के दर्शन मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं :-

- १- बालम्बन
- २- उदीफन
- ३- वर्तकार
- ४- मानवीकरण
- ५- नीति और उपदेश का माध्यम
- ६- परम तत्त्व के दर्शन

बालवार मयतों के तथा बालौव्य हिन्दी कृष्ण- मयतों के काव्य में प्रकृति के इन विविध रूपों का पर्याप्त चित्रण हुआ है। उनके काव्य में प्रकृति का उदीफन रूप ही बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

#### बालम्बन- रूप-

बालम्बन- रूप में प्रकृति कवि के लिए साधन न होकर साध्य बन जाती है। कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्म तत्वों के प्रति जाकणित होता है। उसका मन प्रकृति- दर्शन में रम जाता है, वह वात्स्य विभोर हो उठता है और अपनी तत्त्वोन्नता में हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त होता है।

प्रकृति का बालम्बन- रूप में वर्णन बालवार- काव्य में तथा हिन्दी कृष्ण- काव्य में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। प्रातःकाल का स्वाभाविक वर्णन तौंडरहिपौडी बालवार के काव्य में देखिए :-

“ सूर्य फलित- शिखर पर पहुँचा है। घोर बन्धकार दूर हुआ ।  
मधुर प्रातःकाल में मधु- पुरित पुष्प- समूह पर भ्रमर मड़राने लगे हैं। हाथी कुण्ड  
में अपने विशाल कानों को हिलाते हिलाते जा रहे हैं मानो समुद्र में उठने वाली

ऊँची ऊँची लहरें हों । क्षुब्धित सता-कुंजों से होकर मन्द मारुत बह रहा है।  
सूरज की सुन्दर किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, जिससे नदार्त्रों का हिम हिम प्रकाश  
पूर्णतः विलीन हो गया । सुपारी के फेड़ की कलियों का गुच्छा फूटकर कुल  
रहा है। उनके सौंरभ से मारुत सुगन्धित हो रहा है। पक्षी-समूह का कलरव  
सुनाई दे रहा है। सुन्दर कम्पन तिल उठे हैं। वन की ओर गायों की बराने से जाने  
वाले ग्वाल-वाल्कों का मुरली नाद भी सुनाई दे रहा है। मधुर गीत ध्वनि आकाश  
में गूँज उठती है। अब सबेरा हो रहा है। जगिर, हे श्री रंगपति । ”

१- “ कदिखन गुण दिशै शिखरम् वन्तर्णन्तान

कने यिरुलकन्दतु कालियम्पासुताय

मधु विरिन्तोसुकिन माम्भरेस्ताम

वानववस्तार कल वन्तु वन्तीष्टी—

हरुंफलिद्दीट्टमुम पिडियौहु मुखुम

वर्दित्तिल वरै कळ पौन्दत्तु लूम—

कोरुकोडी मुलैयि नौतु म्भरणवी

कून्तु गुण दिशै मारुतम व्तुवी—

चुडरोलि परन्तन वृल दिशैयस्ताम

तुन्निय तारुं मिन्वोली चुरुंकी —

पायिरुलकन्दतु, धम्पात्किमुकिन

मडलिडैकीरि वण्पासिकल नार—

— वायर्कल वेळुत्तोरैयुम विडैमणि

करुम इट्टिय वरै दिशै परन्तन

वरंगम्पा । पत्ति स्तुन्तरुलायि । ”

- तिरु पत्ति स्तुत्ति १ से ४ तक



कविवर दूर के निम्नलिखित पद में प्रातःकाल का स्वभाविक वर्णन देखिए :-

बौले तमसुर, चारयीं जान की गजर मायूयी,  
 पौन भयी सीतल, तमि तैं तमता गई ।  
 प्राची बरुनानी मानु किरनि उज्यारी नम झाई,  
 उहुन चन्द्रमा मलीनता लई ।  
 मुहै कमल, बज्ज बंधन बिड़ोइयी ग्वात,  
 चरै चलीं गाढ, धि पैंती कर कीं दई ।  
 सुरदास राधिका सरस बानी बोलि कहै,  
 जागीं प्रान प्यारे बू सवारी की सँभ भई । १

चिरईं सुखसुधानी, बंद की ज्योति परानी,  
 रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवान की ।  
 तारिका दुरानी, तम घटयीं, तमसुर बौले ।  
 ब्रजन भक्त बरी सलित के तान की ।  
 भृंग मिले मास्या, बिहारी जोरी कोक मिले,  
 उत्तरी फल जब काम के कमान की ।  
 लखत जाद गृह, बहुरि उवत मानु,  
 उठौं प्राननाथ कहा जान मनि जानकी । २

तिरुपुर्वी बालम्बार के पदों में बालम्बन- रूप में प्रकृति का सुन्दर और व्यापक चित्रण हुआ है। कंत- निर्मरणी की फेन- राति कवि की दृष्टि में हवा में उड़ती धूल ध्वजा के रूप में दीख पड़ती है। कवि ने प्रकृति का

१- सुरदासर ( समा ) पद सं० २६५६ पृ० ६४८

२- वही २६५७ पृ० ६४६

३- " विलकलितुरिचि मेऽ निन्दु विबुप्पित

वेणुकिंकीडि के विरिन्दु

वलन्तरु मणि नीर कियि करि मेऽ । " - परियतिरुमोली १-४-३

सूक्ष्म निरीक्षण किया है और उसका मन प्राकृतिक सौन्दर्य पूर्णतः रम गया है। चावल के खेत में भरी पानी में जब खेत तैरते हैं, तब चावल के पौधे पन के हल्के फौफौ से खिलते हैं, मानों वे खेतों के लिए चापर हों।

प्रकृति के उग्र रूप का भी चित्रण कहीं कहीं मिल जाता है। दावानल का चित्रण सुरदास ने इस प्रकार किया है :

महरात महरात दवा ( नल ) बायीं ।

धेरि चहुँ वीर , करि वीर वीर बन , धरनि बाकास चहुँ पास बायीं ।

बरत बन- बाँस , धरहरत कृष काँस , जरि, उड़त है माँस , बति प्रबल बायीं ।

कपटि कपटत सपट , फुल- फल चट चटकि , फटत , लटलटकि हुम हुमबायीं ।

बति बगिनि-महर , ममार धुंधार करि, उचटि वीर मफार बायीं ।

बरत बन पास महरात बररात तरु महा, धरनी गिरायीं ॥ २

गौघुलि की सुरम्य पैदा में चारु चन्द्र नम- फल पर बाबु हो गया है। बालक कृष्ण चन्द्र को लेने के लिए लठ करता है। प्रिय पुत्र को सन्तुष्ट करने के लिए माता, की ममता, भरी शब्दों में चन्द्र से कहती है-“ है नीलाम्बर स्थित त्रयोमय चन्द्र । मेरा यह ताल मेरी कमर पर बैठकर, अपने बड़े बड़े ज्योतिर्मय लोचनों से तुम्हें देखकर झुला रहा है। यदि तुम इस छोटे श्याम के साथ खेलना चाहते हो तो मेरी के पीछे मत खिपी । देर मत करो । तुम्हारी ओर लपित करने वाले मेरे नन्हे के चारु कर एक नहीं जायें। जल्दी वा जावो । ”

१- वनमामलरविन्दवमलियिल फेड्योहुम वनि वमर

वेन्नेल्लार कवरिक्कुले वीचु तण तिरुवयिन्ती पुरमि । ”

- पेरिय तिरुमोली ३-१-७

२- सुरदासर ( समा ) फल सं० १२१४ पृ० ४७२

३- “ वन वण्णनोहु बाळलाड उरुदिये

मंचिल मर्यादे मामती । मकिरुन्तोडी वा-

“ कवकत्तकैय तटवण्णास मलर विलितु

वीवकैले मेसिरुन्तु उन्नीये चुट्टि काट्टुम काण ”

- पेरियालवार तिरुमोली १ : २ व ४

घूर के हठी कृष्ण भी कहते हैं -

मेया रो मैं बंध लहौंगी ।

कहा करौं जल फुट भीतर की, बाहर क्योंकि गहौंगी ।

यह तो फलमत्तात फकफोरत, कैसे के जु लहौंगी ।

वह तो निपट निपट हीं देखत, बरज्यों हीं न रहौंगी । १

### उदीपन रूप-

वस्तुतः वाल्मीक्य कवियों के प्रकृति-वर्णन का महत्व उदीपन रूप में ही सर्वाधिक है। इन कवियों ने उदीपन-रूप में प्रकृति में बहुमुत प्राण-प्रतिष्ठा की है। चतुर सखी की भाँति प्रकृति राधा और कृष्ण के मिलन के लिए उनके प्रेम भाव का उदीपन करने के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करती है। शरद ऋतु चाँदनी वृन्दावन के भी हृन् में झिटक रास का निमन्त्रण देती है। घूर का निम्नलिखित पद देखिए-

शरद चाँदनी रानी सोई, वृन्दावन भी हृन् ।

प्रफुल्लित सुमन बिबि - रंग, बई-तई कूजत कोकिल-पुन ॥

जमुना पुलिन स्थान फन सुन्दर, बहुमुत रास उपायी । २

०                      ०                      ०

बाबु निसि सोमित शरद सुहाई ।

सीतल फंद सुगंध फन बई, रोम-रोम सुखदाई ।

जमुना पुलिन पुनीत परम रुचि, रुचि पीछी ब्नाई ॥ ३

तिरुम्मी बालुवार की नायिका को भी प्रकृति प्रिय-मिलन के लिए प्रेरित करती है। वे लिखती हैं - "शाम बायी । इस मनोहर बेल में सुगन्धित सुमनों के परिमल को चुराकर बानेवाला सीतल फन जब नायिका के स्तनों का

१- घूरसागर ( समा ) पद सं० ८१२ पृ० ३२७

२- वही पद १७६६ पृ० ६७५

३- वही पद १७५६ पृ० ६५२

स्पर्श करता है, तब नायिका के मन में प्रिय-मिलन के लिए गुदगुदी फैल जाती है।<sup>१</sup>

राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन के समय प्रकृति अपनी कामी-दीपन कर्तव्य को उचित रूप में पूरा करती है और देखती ही देखती गगन ध्वस्त उठता है, काली घटार हो गई, पवन माफ़ीरे सैने लगा, चफ़ता चफ़ने लगी, वायव्य श्याम वर्ण हो गया, दोनों रोमांचित हो गये। उनके साथ प्रकृति भी रस-प्रियास कर रही है-

नयीं नेह, नयीं गैह, नयीं रस, नवल कुंवरी वृष मातु- किलोरी ।

नयीं फिताम्बर, नईं चुनरी, नईं नईं झूदनि भीजति गोरी ॥

नये कृष्ण, अति पुन नये द्रुम, द्रुम जसुन- जल पवन किलोरी ।

सुरदास प्रभु नव रस मिला नवल राधिका जोवन- गोरी ॥ ३

श्री रस हरिश्चर ने भी परंपरानुसार यमुना-तट और करीब कृष्णों का ( उद्दीपन रूप में ) वर्णन किया है :

बाज बन नीकी रास बजायी ।

पुलिन पवित्र सुभा यमुनातट मोहत पशु बजायी ॥

कल- कंकन, किकिन, त्रपुर धुनि, धुनि का पुन ससु पायी ।

जुबतिन मंडल मय श्यामवन सारंग- राग बजायी ॥ ४

विप्रसन्न हृत्कार में तो हमारे कवियों के उद्दीपन रूप में किये गये प्रकृति-वर्णन झूठे, सूक्ष्म और सरस हैं। वियोग की दस काम कलाओं के अतिरिक्त उन्होंने कितनी कलाओं का वर्णन किया है, जो साहित्य में अपूर्व है।

१-“ वन्तिकावतन जमुदुरु फलुकिदिले जुड कतनोदुम

मन्द पारुतम बन मुले तटवन्तु वलि चैववतीसियाति । ”

- परिय तिरुमोली ८-५-२

२- सुर सागर ( समा ) पृष्ठ सं० १३०२ पृ० ५००

३- वही १३०३ ५०१

४- कविता कोमुदी

वियोग में मनुष्य को जब अतीत के सुख दिनों की स्मृति  
 होता है, तो पुराने हाया- चित्र उसके नेत्रों के सम्मुख प्रकट होने लगते हैं। तिरु-  
 म्मी वात्सवार की नायिका के लिए सुन्दर विकसित "कुवले" (पुष्प विशेष )  
 अत्यन्त का ज्वानक स्मरण करा देते हैं। सुरम्य पुलि, झिटकती चांदनी, विकसित  
 बरविन्द तथा सारा वातावरण नायिका के सम्मुख हाया- चित्र उपस्थित करते हैं।<sup>२</sup>

स्मृति, पूर्वानुभूत सुखों की कल्पना के चित्रपट पर लाकर  
 उनकी तुलना में वर्तमान की हीनावस्था को और भी गहरे रंग में रंग देती है और  
 विरहाधिक्य में तो वे सब प्राकृतिक वस्तुएं विपरीत प्रभाव प्रकट करने वाली प्रतीत  
 होती हैं। राधा कहती है :-

फूल बिन नहिं जाऊं सखी री, हरि बिन कैसे बीनों फूल ।

सुन री, सखी, मोहिं राम दुहाई, फूल लगत तिरसूल ।

वे जो देखियत राते राते फूल फूली डार ।

हरि बिनु फूल फार से लागत छरि फरि परत ऊार ।

कैसे के फणट जाऊं सखी री । डोलैं सरिता तीर ।

भरि भरि बसुना उमड़ि चली है इन नैन के तीर ॥ ३

उपवन, फणट और बसुना- तट जो कभी उनके बामौद-  
 प्रमौद के स्थल थे, वे सब उनकी अब वियोगावस्था में पीड़ित करते हैं।

तिरुम्मी वात्सवार की नायिका को वियोग में "शीतल चन्दन  
 भी अग्नि के समान लगता है। चांदनी भी नायिका को जलाती है। सुन्दर गहने भी  
 शरीर को जवात कर देते हैं। शीतल समीरण भी अग्नि से भी भयंकर मातूम होता  
 है।" कविवर नन्ददास की गोपियों को भी कृष्ण- वियोग में चन्दन, चन्द्र आदि

१- परियतिरुमोली ३-४-२३

२- वही ३-४-५ व ७

३- प्रवर गीत १६३

४- चान्दमुम पुण्णुम चन्दनवकुलम्पुम

तटमुल्लवकु वणिगियुम तललाम

पोन्त वेण्टिकल कदिर चुडमेलियम-

तेन्दुलुम तीयिकोडिताम - । " - परिय तिरुमोली २-७-२ व ४



अग्नि वर्णन करने वाले प्रतीत होते हैं :-

ज्यों चन्दन, चन्द्रमा, तपन हैं सीतल करहीं ।

पिय- विरही जो लोग, तिनहिं सगि जाग वितरहीं ॥ १

वियोग में नायिका की इच्छा होती है कि उसकी वेदना का अनुभव समस्त भू- मण्डल को हो, उपवन सूख जायें, संसार उजड़ जायें और जड़ व र्ख वेतन सब फलार्थ उस की मर्ति वेदना से पूर्ण हो जायें। मधुवन को हरा मरा देखकर घूर की गौपी ईर्ष्या से मुँफला उठती है-

मधुवन तुम क्यों रहत हीरे ।

विरह वियोग क्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न बरे ॥ २

इसी प्रकार पावस में मोर उसे शत्रु के समान प्रतीत होते हैं :-

हमारे मार्ग मोखा बैर पारे ।

घन गरलें बरलें नहिं मानत त्यों त्यों रहत लारे ॥ ३

बाण्डाल कहती है-“ है कार्कोटल पुष्प ( पुष्प विशेष ) तुम छिल छिल कर मुझे क्यों सताते हो ? हे, मुल्लै सखी । (पुष्प विशेष ) तुम क्यों मुझे देखकर परिहास कर रही हो ? गायन में रत कीकिल । तुम गा- गाकर मुझे वेदना क्यों देती हो ? हे, मोर तुम नाचकर मेरा अपमान क्यों करते हो ? ”

१- रास पंचाध्यायी , तृतीय अध्याय २१

२- सुरसागर ( समा ) पद सं० ३८२

३- वही पद सं० ३६४७

४-“ कार्कोटल पुष्पकाल । कार्कोटल वर्णन एन मेल उम्मे पाकोसिम वेस्तु पौरविहववन स्मृद्धान ? ”

“ मुल्लै पिराट्टी । नी उन मुरुवल कोण्टु एम्मे वल्लल विलेवियल वलिर्नकाय । ———

पाहुम कृथिल काल । ईतु एन्न पाडल ? —

कण मामयिल काल । कण्ण पिरान तिरुवकोलम पीन्दु वणि माहम पयिन्द्राहु किन्द्रीकु वडिवीलुकिन्द्रेन ”

- नाञ्जियार तिरुमोली १० : १,४,५,६

नम्पालवार की विरहिणी नायिका को हंसों को जोड़ों में देखकर ईर्ष्या होती है और वह उन्हें कोसती है। किन्तु प्रकृति को समझती देखकर विरहिणी का हृदय सहानुभूति से भर उठता है। कोकिल को सर्वदा "कूहू कूहू" करते हुए देखकर बाण्डाल समझती है कि वह भी किसी के वियोग में है। नम्पालवार की विरहिणी अशान्त सागर तरंगों को देखकर समझती है कि वे भी किसी के वियोग में तड़प रही हैं। सुर को गोपी कहती है—

बहुत दिन जियो पपीहा प्यारे ।

बासर रेनि नाँव से जोसत मयो विरह जुर कारी । ३

कृष्ण के वियोग में विरहिणी गोपियों की दृष्टि में कालिन्दी की भी क्या दशा हो जाती है, देखिए—

देखियति कालिन्दी बति कारी ।

वहाँ पथिक कहियो उन हरि सों, मई विरह जुर जारी ।

गिरि— प्रक हैं गिरति धरनि धंसि, तरंग तरफ तन भारी ॥ ४

विरह के अनवरत दुःख से दुखी होकर विरहिणी प्रकृति से अपना स्कात्म्य स्थापित करती है। चेतन अचेतन का भेद भूलकर प्रकृति को अपनी सखी समझ लेती है और अपना दुःख निवेदन करती है। प्रकृति विरहिणी की अन्तरंगिनी बन जाती है, वह कभी कोयल से, कभी प्रेमर से अपना सन्देश कहती है। बाण्डाल कोयल से प्रार्थना करती है कि वह प्रियतम के वागमन की सूचना दे<sup>५</sup>। वह भेषों से प्रियतम के पास जाकर यह पूछने को कहती है कि एक विरहिणी अबला

१- नाञ्चियार तिरुमोली ३३ : ४

२- तिरुविरुत्तम,

३- सुर सागर ( सभा ) पद सं० ३६५५

४- वही पद सं० ३८०६

५- " उन्मोहो तोलम कोलुवन कुयिले

उलकलन्तान बरवूनाय "

- नाञ्चियार तिरुमोली ५ : ५

को इस प्रकार सताना कहाँ का न्याय है। नम्पालवार की विरहिणी नायिका इसी से प्रार्थना करती है कि वे प्रियतम के पास जाकर नायिका की दयनीय दशा का वर्णन करें।

सूर की गौपी भी कौकिल से प्रार्थना करती है कि वह किसी प्रकार उसके प्रियतम को ब्रज में ले आवे।

कौकिल हरि काँ बोल सुनाउ ।

मधुवन तैं उपहारि स्याम कोँ, उहिँ ब्रज कोँ ले जाउ ॥ ३

### वर्तकार-रूप-

वर्तकार-रूप में प्रकृति का वर्णन हमारे कवियों ने विस्तार से किया है। उन्होंने अपने आराध्य के सौन्दर्य के वर्णन के लिए प्रायः सभी परंपरागत उपमानों को अपनाया है। उपमा और उत्प्रेक्षा की इनके काव्य में भरमार है।

कृष्ण के सौन्दर्य-वर्णन में कर्णों के उपमान बहुत कुछ परंपरा युक्त हैं। तिरुमोई आलवार अपने इष्टदेव का वर्णन इस प्रकार करते हैं - “कंचन-

१- विण्णिणल मेलाप्पु विरुधीपील मेरुवाल ।

तेण्णोरपाय वैकटु स तिरुमालुम पोन्ताने ?

कण्णोर कल मुलैकुवट्टिल तुलि चोरच्चोर्पिने

पेण्णोरमयीडल्लिक्कुन इतु तपक्कु और पेरुमये”

- नाच्चियार तिरुमोली ५:५

२- “अन्नम चेल्वीरुम वण्डानम चेल्वीरुम तोलुतिरन्नेन

एन्नेचिनारै कण्टाल एन्ने चोत्ती कवरिदै नीर

अन्नम चेल्वीरौ कण्डलुवर्कळुवड ? इतुवीतक्केन्दु वीमिक्कले ।”

- तिरुविरुत्तम, ३०

३- सुरसागर ( समा ) पद सं० ३६५ पृ० १३६२

सम देह की कांति मरकत मणि की कांति है। सुन्दर तुलसी माला गले की सीमा बढा रही है। रश्मि फल उनके मुँह का रंग है। नयन विकसित कमल जैसे हैं। वदन का रंग नीलाम्बर में मँडरानेवाले काले मेघों का है। "तिरुमोली" बालवार ने अन्यत्र सौन्दर्य - वर्णन में एक ही उपमान से काम लिया है। वे लिखते हैं- कृष्ण के फल कमल जैसे हैं- मुख भी कमल, नेत्र भी कमल और चरण भी कमल जैसे हैं।<sup>१</sup>

कविवर सूर ने भी कवि-समय-सिद्ध उपमानों द्वारा रूप-सादृश्य दिलाते हुए समान गुणों का आरोप किया है और अपनी वाग्विदग्ध्य द्वारा उपमानों की उचित सिद्ध कर दिया है।

ऊर्ध्वो अब हम समुक्ति मई ।

नंदनवन के ली-ली-प्रति, उपमा न्याय दर्ह ॥

कुंतल कुटिल मँवर मामिनि वर, मालति भुरै लई ।

तबत न गहरु कियो तन कपटो, जाते निरस भई ॥

बानन इंदु विमुख संपुट तजि, करणे तैं न नई ।

निर्मोही नव नेह कुमुदिनी, अंतहु हेम हई ॥ ३

कृष्ण के मनोहर रूप का कहीं कहीं सूर ने ऐसा रूप बाँधा है कि पूरा दृश्य ही सम्मुख आ जाता है :-

देसो माई सुन्दरता की सागर ।

तनु अति स्याम अगाध वंदु-निधि, कटि पट पीत तरंग ।

चित्तवत चलत अधिक रुचि उपवति, मँवर परति सब ली ॥

नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजंग ॥

मुक्ता-माल मिली मानो है सुरसरि ली संग ॥ ४

१- पौन्निवर मेनि मरकतचिन पौंकिर्लवोति अकलतु-

तामरैवकण्ठल हरुन्तवार, वैपलम खर वायिन वण्णम

अणिक्केलु तामरैयन्न कण्णुम कैयुम फेयम मेनि वानतु

अणि केतु मामुक्किलेयुम ओप्पर अन्वी ओरुवरलकियता"

- पैरिय तिरुमोली ६:२: १, ४ व ७

२- " के वण्णम तामरै वाय कमलम पौलुम

कण्णिनैयुम वरविन्दम अलियुम अन्ते" - तिरुनेल्लुत्ताष्टकम्, २१

३- सुरसागर ( समा ) पद सं० ४५३६ पृ० १५६७

४- वही पद सं० १२४६ पृ० ४८३

श्री हित हरिवंश ने अपनी उपास्य की प्रेमिका राधा के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए उपमा और उत्प्रेक्षा का जो प्रयोग किया है, उसकी झट्टा देखिए-

ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट-मनि स्यामा बाबु बनी ।  
नख-सिख लीं कां-कां माधुरी मोहि स्याम बनी ॥  
यों रावत कवरी नृपित कव कनकव बनी ॥  
चिहुर चंद्रकनि बीच बरध विधु मानों ब्रजत फनी ॥  
सोभन रस सिर ब्रजत फारी पिय सीमंत ठनी ॥  
भ्रुकुटि काम कोवड , नैन सर, कज्जल रस बनी ।  
भाल तिलक, ताटक गंड पर नासा बलब बनी ॥  
दसन कुन्द, सर साधार-पल्लव पीतम-मन-समनी ॥ १

तिरुमोली बालवार नायिका के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं-<sup>१</sup> "विजली नैसी फतली कमर वाली नायिका के सामने स्वयं चन्द्र को लज्जित होना पड़ा है।"<sup>२</sup> प्रतीपार्श्वकार द्वारा कवि ने नायिका के मुख की प्रफुल्लता और दीप्ति को चन्द्र से भी श्रेष्ठतर बताया है। कवि नन्द दास ने भी लिखा है-

मुख बरविंदन बागे जल बरविन्द लीं जल ।

मौर मये भवनन के दीफ , मंद परत जल ॥ ३

व्यतिरेक के प्रयोग द्वारा उदाहरण देकर कवि ने उपमेय की उत्कृष्टता व्यक्त की है।

तिरुमोली बालवार ने कृष्ण के सौन्दर्य की तुलना चित्र में लिखित विकसित कपल से की है। साधारण कपल तो मुरझा जाता है। चित्र

१- ब्रजमाधुरी चार पृ० ७१ ( सं० वियोगी हरि ) स्कापल संस्करण

२- "तुडिहैयार मुखकमल चोति तन्नाल

तिरुल मुख पनि पल्लवुम बलवार" - पेरिय तिरुमोली ३-४-६

३- रास पैवाय्यायो पैवम वय्याय ५१

४- "सुतिय तामरैयन्न कण्णुम

एन्तैल्लिक्कमुम तोलुम कण्णुड वायुम" - पेरिय तिरुमोली २-८-७



में वंशित कमल का सौन्दर्य वैसा बना रहता है। इस प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य में उत्कर्ष प्रकट किया है। सुर ने लिखा है-

देखि री हरि के बंचल नैन ।

संजन - मीन- मृग- चपलाई, नहिं पटतर झ सेन ॥

राजिव- दल ईदीवर सतदल, कमल कृषेय जाति ।

निशि मुद्रित प्रातर्हि ये विकसित, ये विकसित दि राति ॥ १

व्यतिरेक द्वारा वप्रस्तुत कमल में रात्रि में संकुचित हो जाने का अगुण दिखाकर प्रस्तुत नेत्रों में उत्कर्ष प्रकट किया है।

विरह की दशा में नायिका की व्यग्रता बहुत बढ़ जाती है। वह प्रियतम के मितन के लिए व्याकुल हो जाती है। उसके नेत्रों में बाँसू मरे हैं। वे छक्कनाते हैं। इस दृश्य का वर्णन नम्मात्वार इस प्रकार करते हैं- " बाँसू से मरे नेत्र मानों सरोवर के कम पानी में तड़पने वाले कमल ( मीन विलीन )

मीन हों । " सुर की गीर्णियाँ विरह की दशा में अपनी <sup>विरहात्मा से सुख-होकर उपमानों को</sup> कौ अनुपसृत ठहरा देती हैं।

उपमा नैननि एक रही ।

कविजन कहत कहत सब बाए, सुधि करि नाहिं कही ॥

कहे चकोर विष्ट - मुल किनु जीवत, प्रमर नहीं उड़ि जात ।

०

०

०

ऊँची बध्नि व्याध हूँ बाए, मृग सम क्यों न पलात ॥

संजन मन- रैन न होहिं ये, कबहुं नहीं कसुलात ।

सूरदास मीनता कहु एक जल मरि कबहुं न हाँडत ॥ ३

ये नेत्रों के उपमान चकोर, प्रमर , मृग और संजन की अनुपसृत ठहराती हैं।

१- सूरसागर ( सभा ) पद सं० २४३१ पृ० ८८०

२- चैतनीर्घटसुवकयल मिलिन्तालोप्य वैयटिकण

असुनीर तुल्य अमरकिन्दने -----। तिरुविरुपम २

३- सूरसागर ( सभा ) पद सं० ४१६० पृ० १४६१

क्योंकि उनके भेज प्रस्तुत उपमानों के व्यापार में कसमर्त हैं।

### मानवीकरण-

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है। प्रकृति को मानव का सा वाह्य बाकार और रूप देने की परंपरा तो प्राचीन काल से ही चली जा रही है। इसके बाधार पर काव्यकारों ने प्रकृति में मानव-क्रिया और मानव व्यापार का भी अनुभव किया है और उसमें सुन्दरी नायिका के से हाव-भावों का अवलोकन कर अपना प्रकृति के प्रति उत्साह प्रदर्शित किया है। कवि का प्रकृति-प्रेम प्रकृति-सुन्दरी के क्रिया-कलाप तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि वह उसको अनुराग, शोक और विषाद आदि के भावों से पूर्ण देखता है।

जादवार भक्तों में नन्मालवार की कुछ कविताओं में प्रकृति के मानवीकृत रूप के चित्र मिलते हैं। प्रियतम के वियोग में पड़ी नायिका के लिए शोक सुनी सुनी माहूम पड़ती है। सूरज का अस्त हो गया और चन्द्र का उदय हो रहा है। कवि की कल्पना देखिए - "पश्चिम दिशा कपिणी विधवा स्त्री सूरज कपी अपनी पति को लेकर, चन्द्र कपी अपनी नन्हीं पुत्र को अपनी कमर पर रखकर विलाप कर रही है।" इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है। एक और उदाहरण लीजिए। दूबते हुए सूरज को देखकर कवि कह उठता है - "दीर्घकाल तक विस्तृत साम्राज्य फैलाकर सत्त शसन करने के पश्चात् सूरज-राजा भी विलीन हुआ।

१- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, डा० किरण कुमारी गुप्ता पृ० ६५

२- "पात वाडिपिरिप्पिल्ले ओणकल्लवकोण्डु फलितन्त

मेल पाल दिशेय्येण पुत्तान्धुरमालि--- । - तिरुविरुत्तम , ३५

३- चीरसाप्पु तन वैकोल चिलनाल वैलिर्न ओणकल्लिन्त ,

पाररजोषु पोन्नुतु नायिर, । वही , ८०

कविवर नन्ददास के काव्य में प्रकृति के मानवीकरण के अच्छे चित्र मिलते हैं। गौपियों और कृष्ण के विहार के बानन्दातिरेक से प्रकृति रूपिणी स्त्री का हृदय अब भी धड़कता है।

निरखि परस्पर हवि सौं, विहरति प्रेम-मदन-भरि ।

प्रकृति-बाम की छाती, कहीं धरकति धरि-धरि ॥ १

इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है।

वियोगावस्था में तो वादि कवि से लेकर प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है और प्रकृति में संविदना प्राप्त की है। किन्तु नन्ददास ने प्रकृति में मानवीकरण का आरोप केवल मानव के कष्ट में ही नहीं किया, बल्कि मानव के बानन्द में भी पूर्ण सार्मजस्य रखती हुई व्यक्त किया है। कृष्ण और गौपियों की रास-झीड़ा को देखकर प्रकृति को अत्यधिक हर्ष हुआ, हर्षातिरेक के कारण प्रकृति-रानि का हृदय अब भी धड़कता रहता है। यह तो प्राकृतिक सत्य है कि हर्ष और विषाद दोनों की अतिशयता में हृदय की गति तीव्र हो जाती है, इसका अनुभव नन्ददास ने प्रकृति में भी किया है।

#### उपदेश और नीति का माध्यम-

मनुष्य ने प्रकृति के कार्य-कलाप को बनेक रूपों में वादर्थ मानकर ज्ञान और सत्त्वना प्राप्त की है। वह प्रकृति में उपदेश और नीति काब खलोकन करता है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व उपदेश देता हुआ सा प्रतीत होता है। प्रकृति उसके लिए एक गंभीर गुरु की भाँति वादर्थ बन जाती है। हमारे कुछ कवियों ने भी प्रकृति को नीति और उपदेश का माध्यम बनाया है। कुलशेखरालवार

१- रास पंचाध्यायी, पंचम अध्याय ६१

२- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण- डा० किरण कुमारी गुप्ता पृ० १८०

का कहना है - "बहुल कमल के पास बहुत बड़े दीपक को जलाने पर भी वह सिल नहीं सकता। केवल अंबर स्थित अंशुमाली की किरणों से ही सिल सकता है। उसी प्रकार भक्त को भी केवल भगवान् के अनुग्रह पर निर्भर रहना चाहिए, किसी ~~दूरे~~ दूरे के नहीं।" बन्धु वे उपदेश देते हैं कि "जिस तरह जहाज का पानी फिर फिर जहाज पर ही जाता है, उसी तरह भक्त को भी भगवान् का ही भरोसा रखना चाहिए। जिस तरह जहाज का तैरा ही पानी का एक मात्र सहारा है, उसी तरह भगवान् ही निस्सहाय भक्त का एक मात्र आश्रय है।" तौंड-रडिपोडियालवार कहते हैं - "जब छोटे छोटे बन्दर और गिलहरी तक भगवान् की सेवा में रत थे, तब भक्त भगवत्सेवा ~~करके~~ में तल्लीन क्यों न हो?"

कविवर सुरदास जी ने कहीं कहीं प्रकृति के व्यापार में उपदेश का भी आभास दिया है। संसार के मनुष्यों के मोह - बात को अमात्मक बताते हुए कहते हैं कि संसार की प्रीति इस प्रकार भ्रम-पूर्ण है जिस प्रकार सेंगर का फूल। तौंड को सेंगर के पुष्प में फल का भ्रम होता है। लेकिन चलने पर केवल हाई ही प्राप्त होती है।

"यह जग प्रीति सुवा सेंगर ज्यों चाहत ही उडि जात।" ३

१- वेन्तलति वन्तु कल्लेज्वेहतिहिनुम वैकमलम

अन्तरम वेर वैकदिरोकल्लाल अलरावाल

वेन्तुयार वीट्टाविहिनुम विट्टवक्कोट्टम्मा । उन

अन्तमिल चोक्लाल अम कूलेयमाट्टेने "

- पेरुमाल तिरुमौली ५ : ६

२- "सू पोय उल्लेन ? उन्निणैयडिये वडैयल्लाल

सूम् पोय करैक्काणात्तु एरिक्कल वाय मीक्कैयुम

वैक्किन कूम्पेरुम माप्पेरु पोन्देने "

- वही ५ : ५

३- सुर पव रत्न विनय , ५३

वपने तनु के प्रति भी दया- भाव दिखाना चाहिये। उसके लिए घूर मलय- वृद्धा का उदाहरण देते हैं। जिस तरह मलय- वृद्धा अपनी काटने वाले को भी लोभ प्रदान करता है, उसी तरह मनुष्य को भी अपनी स्वाभाविक सहानुभूति का त्याग नहीं करना चाहिये।

अदपि मलय- वृद्धा बहु काटत कर कुठार फरै ।

तऊ सुभाय सुगन्ध सुखीतल रिपु तन ताप हरै ॥ १

कवि रहीम प्रकृति के उदाहरण द्वारा यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य को मर्यादा का पालन करना चाहिये, अपनी संपत्ति का दान देना चाहिये। यही भाव रहीम के निम्न लिखित दोहों में व्यक्त हुआ है -

तेहि प्रमान बलिबो मलों जो सब दिन ठहराइ ।

उमड़ि चले जल पार ते, जो रहीम बड़ जाइ ॥

रहिमन बति मत कीजिए, नहि रहिये निज कानि ।

अतिसय फुलै सख्खनी, डार- पात के हानि ॥

धनि रहीम जल पीक कई, तहु जिय पियत जवाइ ।

उदधि कड़ाई कौन है, जगत पियासी जाइ ॥ २

### प्रकृति में परम तत्त्व के दर्शन-

जिस कवि का दृष्टिकोण रहस्यात्मक होता है, वह प्रकृति में परम तत्त्व के दर्शन करता है। उसके लिए प्रकृति विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। वह समस्त प्रकृति में एक ही चैतन तत्त्व को व्याप्त देखता है, उस परम तत्त्व को एक चैतन- शक्ति मानता है और प्रकृति को उसके लिंग ।

भूतवासवार एक स्थान पर कहते हैं -<sup>१</sup> विशाल व्योम गुंज उठा । कल का मयानक गर्जन हुआ । वह था वर्णा- काल । मैं गगन की ओर देखता रहा । उसकी अनुपम आभा की रेखाई दीस फड़ी और वह व्योम- वीथी में भव-

१- घूर पंचरत्न - विनय ७७

२- रहिमन विनोद, नीति गुच्छ, दोहे ६०, ६१



मणि- रथ पर चढ़कर जाया । “ पेयात्वार लिखते हैं - “ सरसोज्ज्वला सौदा-  
मिनी रूपी विजय पताका फहराती हुई और निनादित कर रूपी विजय- दुंदुभी  
कवाती हुई गगन मंडल बीच भ्रमण करने वाली नीरद- राशि में मानस फटल पर  
बाप ही के स्मृति चित्र वंशित करती है। “ बाण्डाल कहती हैं- “ सुषमा मरी  
उष्ण की नीरद- वेला में चिड़ियों की मधुर सुरीली तानु में प्रभु के वागमन का  
सन्देश पाती हूँ। पर नहीं जानती कि प्रियतम कब आयेंगे । “

प्रकृति में परम तत्व के दर्शन का व्यर्थ है, आत्मा और  
परमात्मा के स्वात्म्य की मानना । जब और तरंग में जिस प्रकार कोई अन्तर  
नहीं है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं है।

आत्मा और परमात्मा के मिलने से उत्पन्न आनन्द विश्व  
व्यापी है। समस्त सचराचर प्रकृति उस आनन्द के अनुभव में प्रकृति से अपने  
नियत कार्यों तक में मूल ही जाती है। कविवर नन्ददास का निम्नलिखित पद देखिए-

“ बहुमत रस रङ्गों रास, गीति धुनि धुनि मोहै मुनि ।

सिला सलिल पूर्व गर्ह , सलिल पूर्व गयी सिला पुनि ॥

फन धव्यो, ससि धव्यो, धव्यो उहुँडल सगरी ।

पाहँ रवि रथ धव्यो, चलयो नहिं जागे डगरी ॥ “ ४

१- इष्टाय तिरुवन्तादि प्र००७०

२- रल्लि कोण्टु मिन कोडियेडु वेकत

तोल्लि कोण्टु तान मुल्ली तोन्डुम रल्लि कोण्ट

नीर मेयमेन्न नेडुमात निरम नील

काट वानम काट्टुम कलन्तु । - धुन्दाय तिरुवन्तादि , ८६

३- “ काले येन्निहन्तु करिय कुरुवि कर्णकल

मालिन वरु बोल्ली मरुत पाहुतल मेरुम् कोली ?

बोलेमैप्पेरुमान तुवरापतियेप्पेरुमान

बालिनिसेप्पेरुमान वन कर्तैयुरैयिकन्दुते “ - नाच्चियार तिरुमोली, ६:८

४- मंवर गीत , ४४, ४५

कृष्ण और गोपियों के उस बहुमुत आनन्द विलास को देखकर पत्थर भी प्रवित हो गये और जल वायुचर्य के कारण पत्थर हो गये । सूर्य, चन्द्र , नक्षत्र सब अपनी गति भूलकर निश्चल हो गये । उस परम तत्त्व के मिलन के आनन्द से समस्त प्रकृति प्रभावित होकर हर्षित हो उठी ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आलोच्य कवियों के वर्णनों में वैविध्य और वैचित्र्य है।

SKACERACK  
MADE IN SWEDEN

सप्तम अध्याय  
-----

काव्य- कला -- २  
-----

कला- पदा  
-----

SKA

## काव्य-कला-२

### कला-पदा

काव्य का भाव- पदा यदि अनुभूति- पदा है तो कला- पदा उसका अभिव्यक्ति- पदा । काव्य में अनुभूति की प्रधानता तो होती है। किन्तु यह अनुभूति सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने कारण रमणीय होती है। अभिव्यक्ति- पदा को कला- पदा कहना उसका संकीर्ण अर्थ है। अतः कुछ विद्वानों ने उसे काव्य का बाह्य पदा माना है। उसे सौन्दर्य- पदा भी कहा गया है। काव्य में यह सौन्दर्य व्यापक अर्थ में गृहीत है। भावों के उत्कर्ष के हेतु उनमें सरसता का संचार करने के लिए हमें सौन्दर्य- पदा या कला- पदा का सहारा लेना पड़ता है। इसे सिद्ध होता है कि काव्य का कला- पदा उसकी प्रेक्षणीयता और प्रभावोत्पादकता है। प्रेक्षणीयता काव्य का साधन- तत्त्व है, साध्य नहीं । कला का काम है, कवि की कृति के भावों का उद्घोष करना और उसमें सौन्दर्य लाना । कवि की सामग्री कैसी ही उत्तम क्यों न हो, भाव- विचार, कल्पना, कैसी ही परिपक्व और बहुमत क्यों न हो, जब तक उसकी कृति में रूप- सौन्दर्य नहीं आया, अनुक्रम- सौष्ठव और प्रभावोत्पादकता नहीं होगी, तब तक वह कृति उत्तम काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट की नहीं जा सकती । तात्पर्य यह है कि काव्य में कला- पदा अथवा अभिव्यक्ति- पदा भी अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है।

साधारणतः कृष्ण- भक्त- कवियों के विषय में यह आरोप किया जाता है कि उनके काव्य में अभिव्यक्ति- पदा का स्थान बहुत गौण है। उनके गीत भावों के चरम उद्गार के दाणों की आवेशमयी अभिव्यक्ति है। किन्तु यह सब होती हुए भी उनका काव्य भावनाओं के रूप- निर्माण और कलागत उप-करणों से भरपूर है। यह ठीक है कि इन भक्त कवियों ने अपने काव्य में सप्रवास कला को घसीटने का प्रयत्न नहीं किया है। फिर भी उनके काव्य में अभिव्यक्ति- शिल्प स्वयंसे ही सुन्दर बन गया है। उपर्युक्त तथ्य आसवार भक्तों के तथा बालोच्च

हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों के काव्य पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है। अभिव्यञ्जना-शिल्प के निम्नलिखित तत्वों के आधार पर वाक्पार भवतों के तथा बालोव्य हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों के काव्य के कला-पदा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

१- गैयत्व

२- काव्य रूप

३- हिन्दीयोजना

४- भाषा

५- कर्तार- योजना और उचित- वैचित्र्य

गैयत्व-

काव्य तथा संगीत का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यञ्जना के लिए कवियों ने प्रायः गीत-शैली का ही आश्रय लिया है। हृदय की रानात्मिका-वृत्ति के योग से जब सुख और दुःख की अनुभूति तीव्रतम होकर उनके भावों की उमड़ती हुई धारा में समस्त परुणता-कलुषता का प्रदालन करती हुई कस्मात् कल कल ध्वनि से कवि-कंठ से फूट पड़ती है तो उसे 'गीत' की संज्ञा प्राप्त होती है। काव्य में आत्माभिव्यञ्जना के लिए गीत शैली की आवश्यकता बताते हुए डा० हर्षशंकर शर्मा लिखते हैं -

“ भाव-सुप्त-सौख्य के सुन्दर संवार के लिए, पवित्र-प्रेम-प्रवाह के प्रसार के लिए, शृंगार मनुमन्त्री के मधुरमय विकास के लिए और कविता-कामिनी के कोकुम्भय विलास के लिए गीत-शैली के सिवा और कौन सी शैली उपयुक्त हो सकती है ? ”

संगीत का प्रभाव व्यापक और स्थाई होता है। जिस प्रकार पूर्ण विधान के लिए कविता चित्र-शैली की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसी

१- सुर और उनका साहित्य - डा० हर्षशंकर शर्मा, पृ० २६



प्रकार नाद- सौन्दर्य के लिए वह संगीत का कुछ न कुछ सहारा लेती है। नाद- सौन्दर्य से कविता की वायु बढ़ती है, ताल- फन, मीन- फन, कागज वादि का बाज्य छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत- सी उचितियों को लोग उनके व्यं की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाए बिना ही प्रसन्नचित रहने पर गुनगुनाया करते हैं। अतः नाद- सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप सहा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है। बाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काव्य और संगीत के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध का विवेचन करते हुए लिखा है - " काव्य शब्दों के एक विशेष आरोह- अवरोह, संगीत- संक्रम का संबद्ध तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ व्यं की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते हैं, वहाँ नाद के द्वारा श्रव्यमूर्त- विधान भी करते हैं। काव्य- कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है, वस्तु , काव्य और संगीत दोनों के वास्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यंनात्मक स्वरूप है दूसरे का आधार नाद का आरोह और अवरोह है। "

बालवार भक्तों के तथा जालोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसका गेयत्व है। उनके पदों की रचना विविध राग- रागिनियों के अन्तर्गत हुई है और उन पदों की संगीतात्मकता सर्वतोभावेन स्तुत्य है।

#### बालवारों के पदों में गेयत्व-

तमिल में गीत- काव्य की परंपरा बहुत ही प्राचीन है। संघकाल ( ईसा की पहली- दूसरी शताब्दी ) की रचनाओं में संगीत सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। पता चलता है कि उस समय एक विशिष्ट संगीत- ऋषि विष्णुमान थी और काव्य में संगीतत्व का महत्व स्वीकृत था । " चित्तप्यधिरास् " ( दूसरी

१- चिन्तामणि- भाग १ पृ० १०६ - डा० रामचन्द्र शुक्ल

२- साहित्य का मर्म - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ११

या तीसरी शताब्दी ) में संगीत सम्बन्धी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। इस काव्य ग्रन्थ में बीच बीच में गीतों का समावेश कराया गया है, जिन्हें "छोपाट्ट" की संज्ञा दी गयी है। "छोपाट्ट" का अर्थ है "स्वर-लासित्य युक्त गीत"। ये गीत वायर-जाति के लोगों द्वारा अपने वाराह्य की स्तुति में गाये बताये गये हैं। चिलप्पधिकारम् से पता चलता है कि उस समय एक संगीत पारिभाषिक शब्दावली भी विद्यमान थी, जिसकी व्याख्या परवर्ती संगीताचार्यों ने की है। "चिलप्पधिकारम्" में विविध वाय-यन्त्रों और तमिल-गीत पद्धति में प्रयुक्त विविध राग-रागिनियों का भी परिचय मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालवार भक्तों के पहले भी तमिल में गेय-काव्य की परंपरा प्रचलित थी। बालवारों के समय के शैव-भक्त कवि नायनमारों की रचनाएँ भी गीत-पद्धति में हैं। उनके भक्तिपरक पद विविध राग-रागिनियों के अन्तर्गत रचित हैं। संगीतात्मकता की दृष्टि से नायनमारों के "तेवारम्" गीतों का बड़ा महत्त्व है। मन्दिरों में उन गीतों का वाय-यन्त्रों के साथ गायन भी होता है।

बालवारों ने भी अपने पदों में गेय-पद्धति को अपनाया था। बालवार भक्तों की जीवनियों से पता चलता है कि वे भक्त गायक थे जो विभिन्न स्थानों में जाकर भक्तिपरक पद गाते थे और जनता में भक्ति का भाव जगाते थे। उनके पदों को गा गाकर लोग भी आत्म-विमोह हो जाते थे। "तिरुप्पाण" बालवार ती "पाण-जाति" के थे, जिस जाति का पेशा ही गायन था। बालवारों के पदों में कुछ स्थलों पर उनके पदों के गाये जाने का उल्लेख मिल जाता है। बालवार-पदों के गेय होने के कारण ही वे मौखिक परंपरा में शताब्दियों तक जीवित रह सके। विद्वानों का मत है कि बालवारों की गीत-पद्धति वाय की पद्धति से भिन्न थी। गुरु परंपरा-ग्रन्थों से पता चलता है कि श्री नाथमुनि ने ही बालवार-पदों का संकलन कर उनके लिए राग इत्यादि निर्धारित किये थे। चूंकि बालवार-पद वेद के समकक्ष माने जाते थे, अतः नाथमुनि ने बालवार-गीतों के लिए देव-गान-जैसी "निर्धारित" की थी। कहा जाता है कि नाथमुनि ने

उसी शैली में वैष्णव-मन्दिरों में जालवारों के पदों के गाये जाने का प्रबन्ध किया था। वैष्णव-मन्दिरों में जालवारों के पदों को विविध राग-रागिनियों में गाने वाले गायकों को "जोरवार" कहते थे, जो भगवान् की सेवा-समयों में मन्दिरों के सामने स्थित मंडपों में बैठकर वाय-यन्त्रों के साथ जालवार-गीतों का गायन करते थे। मन्दिरों से सम्बन्धित उत्सवों और त्योहारों में भी जालवार-पदों के गायन का विशिष्ट प्रबन्ध किया जाता हुआ था। जन्म, विवाह, अन्त्येष्टि आदि के अवसरों पर भी जालवार-पद गाये जाते हैं। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि गेय होने के कारण ही जालवार-पद जनता पर अधिक प्रभाव डाल सके।

विद्वानों का मत है कि आज जालवार-पदों के लिए जो राग और ताल निर्धारित किये मिलते हैं, वे नाथमुनि की "देव-गान-शैली" से भिन्न हैं। तमिल विद्वान् श्री पी० श्री० बाचार्य के अनुसार जालवार-पदों के लिए विविध राग-रागिनियों का संकेत नाथमुनि के बाद के किसी संगीताचार्य का कार्य है। कुछ भी हो, आज "प्रबन्धन्" में मिलने वाले प्रत्येक पद के ऊपर उसका राग और ताल निर्दिष्ट है। आज के गायक उन पदों को अनिवार्यतः उन्हीं निर्दिष्ट रागों में नहीं गाते, स्वच्छानुसार अन्य रागों के स्वरों में गा लिया करते हैं। अधिकतर विद्वानों का मत है कि जालवारों के पदों में मिलने वाले रागों और तालों में तमिल के संगीत-शास्त्र के नियमों का पूर्णतः पालन हुआ है। अतः कह सकते हैं कि जालवार-पदों की संगीतात्मकता शास्त्रीय संगीत की कसौटी पर भी सरी उतरती है। जालवारों के पदों में प्रयुक्त कुछ राग और ताल इस प्रकार हैं :-

राग- यमुना- कल्याणी, नट, अपरूप, तन्यासी, नीलामुरी,  
मौलना, मुकुरी, जडाना, भूपाली, देशी, अलावरी,  
बिलहरी, टोडी, केदारा गौरी, वारकी, शंकराभरण,  
सारांग, वराली, मैखी, कल्यान, श्री, कांपोदी, सहाना,  
कंठ आदि।

१- "दिव्य प्रबन्धपिल कस्तनिल श्री वल्लिवकल"

ले० पी० श्री० बाचार्य - "वानीली (जाकाशवाणी, मद्रास की पत्रिका)  
पृ० २ (नवम्बर, १९६०)

ताल-

“ वादि ताल , बड़ताल, रुफ ताल , तिरिपुडिताल वादि ”

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का घनिष्ठ सम्बन्ध भावों और स्वर से है। वाद्वार पद्यों के पदों में संगीत की प्रसुत राग- रागिनियों के साथ प्रधान- अप्रधान , सब प्रसिद्ध- अप्रसिद्ध ४० से अधिक राग- रागिनियों का प्रयोग हुवा है। इन की कवियों द्वारा प्रसुत राग- रागिनियों के क्रम को देखने से विदित होता है कि पद्यों के विषय और रागों के संकलन में सब सार्थकता का ध्यान रखा गया है। कुछ विशिष्ट भागों को व्यक्त करने के लिए विशिष्ट रागों का प्रयोग आवश्यक समझा गया है। संगीत में नाद से ही सुख- दुःख, हर्ष- विषाद, वाता- निराशा वादि की प्रतीति होती है। ज्ञावात्मक अभिव्यक्ति अपनी प्रकृति में इतनी सूक्ष्म और तरल होती है कि उसका निकट सम्बन्ध हृदय के हर्ष और विषाद के तरलीकृत रूप गान और रुदन से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न भिन्न रागों से श्रोता के हृदय में भिन्न भिन्न रसों का अनुभव होता है। यही कारण है कि राग और रस का सम्बन्ध माना गया है। किन् किन रसों की व्यञ्जना के लिए किन् किन रागों का संगीत- शास्त्र के नियम के अनुसार प्रयोग उप- युक्त समझा गया है, वह निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है। ( वाद- वारों के पद्यों में न्यूनाधिक रूप में इस नियम का ध्यान रखा गया दीखता है। )

वृंगार रस	- राग - वसन्त, कमास , देव गंधार, सावेरी, मैखी
करुण रस	- राग - मरुतुल कर्पोजी, मुकारी, अनावरी, बाहीरी, हुसैनी
हास्य रस	- राग - कर्पोजी

१- " Ragas are eloquent vehicles of emotion with a limitless but inarticulate power of expression. A genius bends them to his purpose and makes them carry his message. " Ragas of Carnatic Music , Ramachandran, page 161.

रौद्र रस	- राग - फुकारी, बराबो
वदुत रस	- राग - बिलहरी
शान्तरस	- राग - राम
बीभत्स रस	- राग - बराबो
मथित रस	- राग - सहाना, पूर्व कल्याणी

संगीत शास्त्र के उपर्युक्त नियम के अनुसार आठवार भक्तों ने शृंगार रस के प्रसंगों में प्रसुत रूप से सावरी, कमास, मेरवी, करुण रस के प्रसंगों में फुकारी, बराबरी, हुँनी, वदुत रस के प्रसंगों में बिलहरी और मथित रस के प्रसंगों में सहाना, पूर्व कल्याणी आदि रागों का प्रयोग किया है। इन से लौटनेवाले कृष्ण के सौन्दर्य पर गोपियाँ मुग्ध हैं। उनकी स्थिति का वर्णन संयोग शृंगार के लिए उपयुक्त मेरवी राग में परियालवार करते हैं :-

#### मेरवी राग - आदि ताल

“ तलैकुम तौकुलुम तदुम्बी सैकुम  
 तण्णुमै स्वकम मत्तलीताल पोली  
 कृत्तककुम गीतमुमाकी सैकुम  
 गोविन्दन वरु किन्दू कूट्टम कण्टु  
 मत्तकीली वरु किन्दु तेन्दु चोत्तो  
 पीमार चालक वाक्क पट्टि  
 तुल्लनर निपनराकी सैकुम  
 उल्लम विट्टु ऊण मरन्तौल्लिन्तरी । १

मथित ( विनय ) रस के प्रसंगों में ‘सहाना’ राग का विशेष प्रयोग हुआ है। तौंडरुडीपोडी आठवार की रचना ‘तिरुमोली’ के सभी

---

१- परियालवार तिरुमोली ३-४-१



फर सहाना राग में गाये जाते हैं, जिससे मचित- रस का परिपाक होता है-

सहाना राग — रस तात

“ पञ्च पामल पौत मनी फल्लाय कमलवैकुण्ठ  
वञ्चुता । वमररे । वायर तम कोलुन्ते । एन्नुम  
इच्चुवै तविर यान पोय इन्तिर लोकम् वालुम  
वञ्चुवै पेरिनुम वैटन वरंगमानगरुत्तानि । ” १

शास्त्रीय संगीत की परंपरा में दिन- रात के बाठ पहरों के अनुकूल रागों का विधान किया गया है। दिन और रात के क्रम में प्राकृतिक वातावरण में जो परिवर्तन होता है उसी के अनुकूल रागों के विधान में विविधता और परिवर्तन की संयोजना की जाती है। उष्णः कालीन रागों में कौमल स्वरों की योजना होती है। सूर्योदय के समय और उसके बाद गाये जाने वाले रागों में शुद्ध और तीव्र स्वरों का बाधिमय होता है। असावरी, टीठी प्रातःकालीन राग हैं। सार्ककालीन रागों में पूर्वी और भी इत्यादि हैं। रात्रि के रागों में कल्याण केदारा, भूपाली आदि हैं। बालवारी के पदों में प्रसुप्त रागों की देखी से पता चलता है कि उन्होंने यगार्सभव समय के अनुकूल ही रागों का प्रयोग किया है। सारांश यह है कि बालवारी के पदों में उच्चकोटि का गेयत्व है और पदों में शास्त्रीय संगीत के नियमों का भी पालन यगार्सभव हुआ है।

बालोव्य हिन्दी कृष्ण- मचित- काव्य में गेयत्व-

हिन्दी का कृष्ण काव्य मुख्य रूप से गेय पदों में निर्मित है । इन कवियों की गेय- पद- शैली में हमें विविधता और विचित्रता के दर्शन होते हैं। उत्तर भारत की गीत- काव्य परंपरा में जयदेव के गीत गोविन्द का मह-

त्वपूर्ण स्थान है, जिसका प्रभाव परवर्ती भक्त-कवियों पर पड़ा। जयदेव के पश्चात् मैथिल कोफिल विद्यापति ने भी अपने शृंगारिक गीतों की ऐसी तान डेही जिसकी विविध-कवि-विहगवृन्द की कल-कल ध्वनि को पराभूत कर मिथिला के आग्रह-पुंजों को गुंजित करती हुई दक्षिण की ओर प्रवृत्त भक्ति-समीर का आधार से उठर की ओर बढ़कर ब्रज में कालिन्दी कूलस्थ कदम्बों को बान्दीलित करती हुई वृन्दावन के सुन्दर करीर कुंज वृन्दों में गुंजने लगी। इस प्रकार १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों को अपनी भक्ति-भावना को विकसित करने के लिए एक परंपरागत विकसित गीत-शैली प्राप्त थी। परन्तु इन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का बन्धानुसरण नहीं कर गीत-शैली के कलेवर में नवीनता का संवार किया है।

हमारे जालोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि उच्च कोटि के गायक भी थे। वैयक्तिकता और आत्मामिर्व्यक्ता जो गीत-काव्य का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख लक्षण है, इन के गीतों में अब से लेकर इति तक व्याप्त है। हिन्दी के अष्टशाय कवियों ने अपने पद विशेष रूप से श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा के लिए रचे थे। हरिदास बड़े संगीतज्ञ थे। कहने का तात्पर्य यह है कि जालोच्य कालीन हिन्दी कृष्ण काव्य में उच्च कोटि का गेयत्व विद्यमान है और उनके कवियों के पद विविध राग - रागिनियों में बने हैं। उनमें शास्त्रीय संगीत के आवश्यक नियमों का यथा संभव पालन हुआ है।

कुशल कवि काव्य में नाद-सौन्दर्य के समावेश के लिए लय का भी विवेक पूर्ण प्रयोग करता है। लय स्वर की एक गति होती है। जिस गति से स्वर चलते हैं उनको लय कहते हैं। यह लय कभी विलम्बित, कभी मध्य और कभी हुल होती है। संगीत का पुरा आनन्द लेने के लिए स्वर के साथ लय का भी ध्यान रखना चाहिए। सुरदास, नन्ददास तथा परमानन्द दास की रचनाओं में भावा-

१- सुर और उनका साहित्य- डा० हर्षशं साहू शर्मा पृ० २८८

२- नन्ददास ग्रन्थावली - रूप मैत्री पृ० १४२ - प्रवरत्नदास

तुल्य लय का प्रयोग हुआ है। कौमल और मधुर वाङ्मय के प्रसंगों में अधिकतर मध्य लय का प्रयोग हुआ है। गतिपूर्ण और जोरपूर्ण स्थलों पर द्रुत लय प्रतिपाद की भावात्मकता को अभिव्यक्त कर देती है, तो करुण और दुःखपूर्ण प्रसंगों में उसका विलम्बित रूप मार्मिकता के संवेदन में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। मोरा के काव्य में भी लय-प्रसंगों का प्रयोग में यह भावानुसृतता उत्कृष्ट रूप में प्राप्त होती है। वात्सल्य और संयोग शृंगार के पद अधिकतर मध्य लय में गाने के उपयुक्त हैं। सूरदास, परमानन्ददास और नन्ददास के वात्सल्य और संयोग शृंगार सम्बन्धी पद मध्य लय में नियोजित स्वर लिपि में ही अधिक मात्रा में निम्नलिखित पद देखिए-

सूरदास : “ सोमित कर नवनीत लिये ।

घुटुलन चलत रेनु तन मंदित दधि लेप किये ।

चारु कपोल लोल लोचन गौरीचन तिलक दिये ।

लट लटकत नानी मा मधुम गन मादक मधुहिं पिये । ” २

परमानन्ददास :

राग सारंग

“ नन्द प्रे के लालन की इबि बाड़ी ।

पाय पैनी रुनरुन बाजत चलत पूँइ गहि बाड़ी ।

अरुन अधर दधि मुख लफटानी तन राज कीटिं हाड़ी ।

परमानन्द प्रभु बालक सीता हंसि फिर पाड़ी ।। ” ३

नन्ददास :

राग धनाशी

“ बेशर कान की बति नीकी ।

होइ पतो प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ।

१- ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यक्ति- शिल्प - डा० सावित्री सिन्हा पृ० ३५०

२- सूरदास ( ना० प्र० सभा ) पद सं० ७१७ पृ० २६५

३- परमानन्द सागर ( सं० गौ० ना० तुल्य ) पद सं० ८६ पृ० २६

न्यायपरीं ललिता के खाने कौन सरस को फीकी ।

नन्ददास प्रभु विलगि जनि मनो कहूँ सरसलली की । १

मीरों के पदों में कविता की लय के साथ सांगीतिक लय के सामंजस्य- स्थापन की चेष्टा दृष्टव्य है। संयोग के दाणों में कृष्ण के अनुराग से प्रियत होकर अपनी उमंग और उत्साह की अभिव्यक्ति उन्होंने छोटे- छोटे चरणों से युक्त द्रुत लय में बधि जाने के उपयुक्त योजना द्वारा की है-

रंग मरी राग मरी राग रूँ मरी री ।

होरी हेल्या रयाम संग संग रूँ मरी री

उड़त गुलाल लाल बदल मयो री ।

फिक्का उड़ावाँ रंग रंग री फरी री । २

ॐ नमः शिवाय

हिन्दी कृष्ण- मन्त्र कवियों ने अधिकतर ध्रुपद ( ध्रुपद ) और कहीं कहीं धमार शैली का प्रयोग किया है। उनकी तीसरी शैली कीर्तन शैली की है, जो शास्त्रीय- संगीत की अपेक्षा लोक- गीत- पद्धति के अधिक निकट है। हमारे अधिकांश जालोच्य हिन्दी कवि संगीत और संगीत- शास्त्र के ज्ञाता थे । ध्रुपद तत्कालीन संगीत की सर्वप्रधान शैली थी । अतः हमारे कवियों ने भी इस शैली को अपनाया है। इसमें विलम्बित लय का ही प्रयोग होता है। इसमें अधिकतर ईश्वर प्रार्थना और वीरता के भावों से युक्त पदों का गायन किया जाता है। जहाँ तक ध्रुपद के विषय का सम्बन्ध है, कृष्ण-मन्त्र काव्य में माधुर्य भाव के प्राधान्य के कारण शृंगारिक विषय ही ध्रुपद शैली में लिखे हुए पदों में भी प्रधान हैं। ध्रुपद योजना में जो बड़ी बड़ी पंक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं उनकी देखने से यह जान पड़ता है कि ये पद मानों गायक की दीर्घ श्वास युक्त स्वर साधना के

१- नन्ददास ग्रंथावली - पद सं० ६६ पृ० ३४६

२- मीराबाई की पदावली सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १४६ पृ० १४३

निकष- रूप में निर्मित किये गये हैं। स्वामी हरिदास की रचनाओं का परीक्षण करने से विदित होता है कि उन्होंने अपने पदों की रचना ध्रुवपद- शैली में गाये जाने के लिए की थी। ध्रुवपद शैली का एक उदाहरण देखिए-

### राग कान्हरी

“ राजत री वनमाल गरे हरि आवत वन तैं ।

फलनि सैं लाल पाग, लटक रही वाम माग, सो इति लखि सानुराग  
टरति न मन तैं ।

मोर फुट छिर श्रीसज्ज, गोरख मुख मँडु, नटवर वर वेश धरैं वाकत इति  
तैं ।

सुरदास प्रभु की इति ब्रज लला निरखि थकित तन मन न्योझावर करें  
बानन्द बहु तैं ॥ “ २

१६ वीं शती की गायन प्रणाली की एक दूसरी प्रधान शाखा धमार गीतों की थी। इसी से सम्बन्धित गीत अधिकतर धमार- ताल में ही गाये जाते हैं। इन गीतों में गोपी- कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी होता है। प्रायः सभी कृष्ण- भक्त कवियों ने धमार गीत लिखे हैं, जिनमें प्रसुप्त लय के द्वारा होली का उत्साह कड़ी सफलता के साथ प्रकट हुवा है। ये गीत विभिन्न राग में लिखे गये हैं। धमार- गीत का एक उदाहरण लीजिए-

“ खेलत हैं बति रसम से रंगीने हो ।

बति रस केलि बिलास लाल रंग मीनि हो ॥

जागत सब निशि गत मई, रंग मीनि हो ।

मले जु बार प्रात, लाल रंग मीनि हो ॥

सुरदास प्रभु नंद- कुंवर रंग मीनि हो ॥ ३

१- ब्रजभाषा के कृष्ण- भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना - शिल्प - डा० सावित्री सिन्हा , पृ० ३५७

२- सुरदासर ( समा ) पद सं० १६६३ पृ० ७३७

३- वही पद सं० ३४८९ पृ० १२९३



मीराँ की रचनाओं में यद्यपि शास्त्रीय संगीत सम्बन्धी कोई विशेषता स्पष्ट नहीं दी जाती, तो भी उनमें लोक-संगीत-शैलियों का सुन्दर रूप मिलता है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है। मीरा का एक छोटी-गीत देखिए-

### राग छोरी हिन्दूरा

फागुन के दिन चार रे छोरी खेल मना रे।

बिनि करतात पल्लवज बाजे, जणहद की मनकार रे।

बिनि सुर राग इतीसु गायी, रोम रोम मनकार रे।

खेल मना रे ॥ १

कहा जा चुका है कि जालोच्य हिन्दी कृष्ण-पवत कवियों के पद विविध राग-रागिनियों के अन्तर्गत आते हैं। सुर ने तो लगभग ६८ रागों में अपनी पद-रचना की है। सुर सागर में राग-वैविध्य के विषय में बाबाय राम चन्द्र शुक्ल का कथन है कि "सुर सागर में कोई राग या रागिनी छूटी नहीं होगी, इससे वह संगीत प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है।" अन्य कवियों की रचनाओं में भी राग-वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न राग अपने स्वर-विधान द्वारा विभिन्न भावों को मूर्तिमान करने में समर्थ होते हैं। किसी राग का स्वरूप गंभीर होता है तो किसी का चपल, कोई राग पुरुष प्रकृति का होता है और कोई सुकुमार प्रकृति का। इस प्रकार राग बढ़ रचना करने वाले कवि के लिए आवश्यक होता है कि वह विषयानुसृत रागों का संकलन करे। जालोच्य कृष्ण-पवत कवियों द्वारा प्रस्तुत राग-रागिनियों के क्रम को देखने से पता चलता है कि पदों के विषय और रागों के संकलन में सामंजस्य का ध्यान रखा गया है। विशिष्ट भाव और रसों के परिपाक के लिए विशिष्ट राग प्रयुक्त सिद्ध हुए हैं। विनय के प्रसंगों में प्रयुक्त राग हैं, बिलावल, धनाशी, मारु, कान्हरो, टोडी, नट, केदारी, सारंग, जसावरी,

१- मीरा बाई की पदावली - डॉ० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १५१ पृ० १४४

२- सुरदास - बाबाय शुक्ल पृ० २०० तृतीय संस्करण

देवगंधार आदि । जिन प्रसंगों में हर्षोत्साह, आनन्द, विनोद और लीला की प्रधानता है उनमें कोमल प्रकृति के रागों का प्रयोग हुआ है। कृष्ण भक्ति काव्य में डीर्य और दर्प से युक्त स्थल के बहुत कम हैं। केवल मुरदास के पदों में दावानल प्रसंग, कालिय-दमन, जसुर संहारण आदि स्थलों पर इस भाव की अभिव्यक्ति मिलती है और यहाँ उन्होंने मारु राग का प्रयोग किया है। प्रायः सभी कवियों ने कृष्ण प्रसंगों में केदारा और गुनकली का प्रयोग किया है।

बालीय हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने गेय पदों में संगीत के समय-सिद्धान्त का निर्वाह यथा संभव किया है। पुष्टिमार्गीय नित्य सेवा-विधि में कृष्ण सेवा के आठ समय रहे गये हैं- फाला, शृंगार, ग्वाल, राज-भोग, उत्थापन, भोग, संध्या (आरती) और सयन । इन कवियों ने इन विविध प्रसंगों के पदों की रचना में संगीत शास्त्रीय समय विधान से सार्कस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। फाला प्रसंग में प्रायः सभी कवियों ने विमास, रामकली, ललित और आशावरी का प्रयोग किया है। शृंगार प्रसंग में प्रायः प्रातःकालीन रागों का प्रयोग हुआ है जो संगीत के समय-सिद्धान्त की कड़ी पर पूर्ण रूप से सरा उतरता है। गोवार्ण, राज भोग और शक प्रसंगों में अधिकतर सारंग राग का प्रयोग हुआ है, इसके अतिरिक्त देवगन्धार, टोड़ी, नटनारायण आदि रागों का प्रयोग भी हुआ है। सन्ध्या-आरती में सार्कालीन सन्धि प्रकाश और रात्रि के राग प्रयुक्त हुए हैं। संगीत योजना में श्रुत-कालीन रागों के प्रयोग कीज और भी हमारे भक्त कवियों ने विशेष ध्यान दिया है। पुष्टि मार्गीय सेवा में श्रुत-उत्सवों का भी विधान था । पावस-प्रसंग में मल्हार और उसके विविध भेदों का प्रयोग किया गया है। हिंडोल के पदों में हिंडोल और मलार और वसन्त-लीला में वसन्त राग का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है।

स्पष्ट है कि बालीयकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में उच्च कोटि का गैकव विद्यमान है और उसमें संगीत के शास्त्रीय नियमों का यथासंभव निर्वाह हुआ है।

### काव्य के विविध रूप-

कवि का युग, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसके अनुभूति-विस्तार की सीमा तथा अन्तः प्रेरणा का रूप आदि वे तत्व हैं, जिनके प्रभाव के फलस्वरूप कवि अपनी कविता के काव्य-रूप का निर्धारण करता है। बालवार् मवतों तथा बालीय हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के विषय में यही बात कही जा सकती है। साधना के राग प्रधान रूप, भावनाओं के तीव्र उन्मेष और राग प्रधान जीवन दर्शन तथा युग-दर्शन के कारण उन्होंने गीत की ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। कहा जा चुका है कि गीत-काव्य का प्राण-तत्व आत्माभिव्यक्ति है। यह जितनी ही तीव्र और प्रबल होती है, गीति-काव्य उतना ही श्रेष्ठ हो सकता है। गीति-काव्य में कवि के अन्तर्गत की अभिव्यक्ति प्रधान होती है और जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों का स्थान गौण। वैयक्तिकता गीति-काव्य का प्रधान गुण है। इस वैयक्तिकता का रूप सीमित नहीं रहता, परन्तु सार्वभौम होता है। आत्माभिव्यक्ति के दो रूप होते हैं- एक रूप वह है जिसमें कवि किसी वस्तु में या व्यक्ति में अपनी भावनाओं का आरोपण करता है और दूसरे में वह अपने भावों को प्रत्यक्ष रूप में सीधे प्रकट करता है। बालवार् के और हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के काव्य में हमें आत्माभिव्यक्ति के उपर्युक्त दोनों रूप देखने की मिलते हैं। एक रूप में उन्होंने आराध्य के प्रति सीधा आत्म निवेदन किया है, दूसरे में गोपियों (अथवा नायिका) के माध्यम से अपने कवि-हृदय की बाहुर भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार बालवार् के तथा बालीय हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के गीत-काव्य के दो रूप मिलते हैं-

- १- शुद्ध गीति काव्य और
- २- आत्माभिव्यक्ति गीति-काव्य।

### शुद्ध गीति-काव्य-

इस प्रकार के काव्य से तात्पर्य उन गेय पद्यों से है जो मवत-

कवियों द्वारा प्रभु के समस्त आत्म निवेदन के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। सीधे-सादे शब्दों में हार्दिक भावों की कुशल अभिव्यक्ति ही इन गीतों का अभिप्रेत होता है। गेयत्व इनका सत्त्व गुण है। इन गीतों के विषय प्रायः प्रभु की भक्त-वत्सलता, ऐश्वर्य, पतित पावनता तथा आत्म निन्दा और आत्म निवेदन होते हैं। माया-विवेचन, अविद्या-वृत्त्या, नाम-महिमा और विनय के पद भी इस कोटि के हैं।

जालवार भक्तों के तथा जालौच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के आत्म-निवेदन सम्बन्धी पद शुद्ध गीति काव्य की कोटि में आते हैं, जिनमें आत्माभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष रूप मिलता है। आत्म ज्ञान, नाम महिमा, इत्यादि प्रसंगों में कवि हमारे सामने आकर बोलता दीखता है। इन पदों की भाषा सरल और साधारण है। इन पदों में व्यक्त दैन्य और आत्म निवेदन में ही वैयक्तिकतत्त्व मिलता है और दैन्य मिश्रित निवेद पर इनकी मार्मिकता निर्भर है। जालवारों के तथा जालौच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में सूर आदि के विनय पदों में शुद्ध गीति-काव्य के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। तोंडरहीपौड़ी जालवार के एक गीत का सार इस प्रकार है- " विष्णु भगवान् के बलावा कोई देवता है ? है बुद्धिहीन मनुष्य ! तुम लोगों का यही स्वभाव है कि आफत के आ जाने पर ही उस कृपा-सिन्धु के पास दौड़ पड़ते हो । अभी समझ लो । उस एक मात्र कृपा-निधान के अतिरिक्त कोई देव नहीं । उस ( गोबों के पाक-धेरे पिता ) भगवान् के चरणों में जाओ । "

सूरदास जी का एक पद देखिए-

" रे मन, हाँडि विणय को रचिबौ ।

कत तू सुवा होत सेमर को, अंतहिं कपट न बचिबौ ।

१- " महुमोर देखमुष्टे ? मतिस्तामानिहकाल ।

उदपोतन्ही नीकल ओरुवनेन्दु उणरमाट्टीर

अदमलोन्दरियीर अनल्लाल देखमिल्ले

कदिनम मेळ्ळ एन्तै कलसिणै पणिमि नोरे । "

- तिरुमाले , ६

कैतर गहत कक- कामिनि कों, हाथ रहैगों पविर्बों ।

तबि बभिमामन, राम कहि कौरे, नतरु क ज्वाला तविर्बों ।

सतगुरु कह्यो, कहाँ तोछों हों, राम रतन धन संचिर्बों ।

सुरदास- प्रभु हरि- सुमिरन बिनु जोगी- कपि ज्यों नचिर्बों ॥ १

वात्सामिव्यक्तिपरक शुद्ध-गीतों में बाँटाल और मीरा के पदों में एक विशेषण शक्ति है। उनमें कल्पना और बुद्धि तत्त्व सर्वथा गौण है, अतएव उनकी भावनाओं का द्योत गीति-काव्य के संगीत और काव्य के माध्यम से फूट पड़ा है। उनकी माधुर्य-भक्ति उनके हृदय की कहानी है, जिसमें राग-तत्त्व प्रधान है। इनके पदों में अनुभूतियों की तीव्रता है और गहनता है, मले ही झेकझप्ता नहीं हो ।

वात्सामिव्यक्तिपरक पद कवियों के व्यक्तित्व की विशिष्टता का निर्वह करते हैं। इनकी सबसे <sup>बड़ी</sup> विशेषता यह है कि उनमें वात्सामिव्यञ्जना का शुद्ध रूप मिलता है तथा अनुभूति और अभिव्यक्ति में पूर्ण तादात्म्य हो गया है। विषय-वस्तु और अभिव्यञ्जना की यही स्वतन्त्रता इन शुद्ध गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है।

#### वात्स्यानात्मक गीति-काव्य-

इस प्रकार के काव्य का प्रतिपाद भगवत् लीला-वर्णन है। इनमें गीत का शुद्ध रूप नहीं मिलता । इनमें नियोजित कथात्मक और वर्णनात्मक तत्त्व कवि के व्यक्तित्व को परीक्षा में डाल देता है। जहाँ लीला-गान में कथा का बाधक अधिक है वहाँ कवियों ने कथा-परिस्थिति या पात्र का आधार ग्रहण किया है। अतः कवि की भावनाओं की प्रत्यक्षता में अवरोध आ गया है। यहाँ वात्सामिव्यञ्जना शुद्ध न होकर मध्यान्तरित है।

वात्स्यानात्मक गीति-काव्य के अन्तर्गत हमारे कवियों ने



बाल- लीला, गोपबोधन, गोचारण, चौर हरण, गोवधन- धारण, नाग- लीला, जादि सरस प्रसंगों को लिया है। इन प्रसंगों के पद अधिकतर भाव प्रधान हैं। इन पदों में वात्स्यान, भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए उपकरण रूप में लिया गया है। इनमें वात्स्यान का स्थान गौण है। कृष्ण और राधा तथा गोपियों की उद्गार - भावना प्रधान रहती है। इस भावना की अभिव्यक्ति अपने आप में पूर्ण और स्वतन्त्र और सरस है। इस प्रकार के विरह के पदों में वात्सवार मन्त्रों तथा वाल्मीक्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने व्यक्तित्व को गोपियों, राधा, यशोदा और कृष्ण के व्यक्तित्व पर ढकलकर व्यक्त किया है। इस विरह का रूप शुद्ध वात्स्याभिव्यक्ति न होते हुए भी व्यक्त मार्मिक है। वात्स्य प्रकाशन के अप्रत्यक्ष होते हुए भी विभिन्न पात्रों की भावनाओं के माध्यम से इन कवियों ने अपनी ही वात्स्याभिव्यक्ति की है। गोपियों की उक्तियों में कवि के हृदय का ही वाचा मिलता है। नम्पात्वार के एक पद में विरहिणी नायिका ( गोपी ) की गद्गद वाणी में भी कवि के विरह जन्य सन्तप्त उद्गार देखिए- " सारा जगत् सो रहा है । अन्धकार व्याप्त होता जा रहा है। रात बढ़ती जाती है। प्रिय- विहीन के रोग के कारण दिल की धड़कन बढ़ती जा रही है। एक एक क्षण एक एक सुक जाता जा रहा है। अगर मेरे प्रियतम नहीं आवेंगे तो ( मैं नहीं जानती ) मेरी क्या दशा होगी ? "

सूरदास का एक पद देखिए :-

" प्रीतम बिनु व्याकुल बसि रहियत ।

मधुवन जाँ जाती हँ हरि संग, कित स्तौँ दुख सहियत ॥

काहँ काम कटुक लग गइतौ, कित बसत रिनु दहियत ।

१- " ऊरेल्लाम तुमी उल्लेखलाम नल्लिरुल्लाय

नीरेल्लाम तेरी और नीलिखाय नीटताल

पारेल्लाम उष्ट नम्पापणायान वारानाल

वार ? एल्ले । वल्लिनैयै वाविकाप्पार इनिये । "

- तिरुवायमोली, ५-४-१

किन्तु पावस बति नैन उर्मणि जल, कित सरिता उर बहियत ॥

जौ जानती बहुरि नहिं बावन, धाड़ पीत पट गहियत ।

सूरदास प्रभु के बिहारी हैं, कई नहीं सुख लहियत ॥ १

इस प्रकार के स्थलों पर गोपियों की भावनाओं के साथ कवि का पूर्ण तादात्म्य है। यहाँ तक कि गोपियों के माध्यम से बोलता हुआ उनका हृदय बाण्डास और मीरा की प्रत्यक्ष वात्मानुभवित के समकक्ष वा जाता है।

### लोक-गीत

वाल्मीकि भक्तों ने तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने अपने क्षेत्रों में प्रचलित लोक-गीतों का सुन्दर समावेश किया है। लोक गीत गीतों के सुदृढ़, सहज और मूल रूप हैं। उनमें ग्रामीण-जीवन का कृत्रिम रूप दिखाई देता है। ग्राम्य मनोरंजन के विविध रूप, जनसाधारण के उर्मा-उत्साह, श्रम या वेदना से मुक्ति पाने के लिए विरमाने की मनोवृत्ति तथा सामूहिक ग्राम चेतना को लेकर कटपटी भाषा में लोक-गीतों की स्वना होती है। कृष्ण-लीलाएँ, लोक-गीतों के ही सर्वथा अनुकूल थीं, अतः हमारे कवियों ने लोक-गीतों का भी समावेश अपने काव्य में किया है। किन्तु उनके काव्य में लोक-गीत कुछ परिष्कृत रूप में ही मिलते हैं। शास्त्रीय रागों तथा साहित्यिक भाषा के स्पर्श से इन्होंने उनका रूप परिष्कृत कर दिया है। किन्तु लोक-गीतों की वात्मा और प्रकृति को रक्षा करने का प्रयास सर्वत्र है। जन्म, मृत्यु, विवाह तथा अन्य सांस्कृतिक पर्वों के अवसर पर लिखे गये गीतों में वैयक्तिक वेदना और उत्साह का सम्बन्ध समूह से स्थापित किया गया है। प्रसिद्ध तमिल विद्वान् श्री पी० श्री० आचार्य ने वाल्मीकी के काव्य में प्रयुक्त लोक-गीतों के विषय में लिखा है :-

१-सूरसागर (सभा) पृष्ठ ३०४६ पृष्ठ १३६०

“ यह स्वभाविक ही है कि बालवार भवतों ने उन लोक-गीतों को व्यापक रूप से अपने काव्य में स्थान दिया है, जिन्होंने जन-हृदय को बहुत ही आकर्षित किया था। बहुत प्राचीन काल से ही इस प्रकार के लोक-गीतों की परंपरा तमिल-प्रदेश में (मौलिक रूप में) चली जा रही थी। विविध अवसरों पर, विविध पर्वों पर लोक-गीत गाये जाते थे। जन्म, विवाह आदि के अवसरों पर गाये जाने वाले लोक-गीतों का तो स्पष्ट रूप बालवार-पदों में हमें देखने को मिलता है। हाँ, यह हो सकता है कि ये लोक-गीत बालवारों की रचनाओं में शुद्ध, मौलिक रूप में नहीं होकर कुछ परिष्कृत रूप में ही मिलते हैं। ”

हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों की रचनाओं में ब्रज में प्रचलित लोक-गीतों का अस्तित्व सुरक्षित मिलता है। इन लोक-गीतों का सख्य संगीत शास्त्रीय संगीत से कहीं अधिक उपयुक्त था। साथ ही भावनाओं की सख्य अभिव्यक्ति इन लोक-गीतों में अधिक सख्य स्वाभाविक और तीव्र हुई है। हिन्दी कृष्ण-भवत कवियों ने जन्म-बधाई, बाल-इवि-वर्णन, गोचारण, ज्यौनार, राधा-कृष्ण-विवाह, लोली वर्तत इत्यादि गीतों में उन सब तत्वों और शैलियों का समावेश किया है जो तत्कालीन ब्रज-जीवन तथा संस्कृति के मुख्य ंग थे। इन सभी प्रसंगों में लोक-गीत बहुल्य है।

बालवारों की रचनाओं में प्रयुक्त लोक-गीतों के कुछ उदाहरण देते हैं। बालक कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन परियालवार ने लोक-गीत-शैली में किया है-

“ शिशु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य को बाहर देखो जी ।

अपने पैर की उंगलियों को मुँह में लेकर चाटने वाले बालक के पाद-कमल,

के सौन्दर्य को बाहर देखो जी ।

काँचन, मोती और मणि ललित माला सी

बालक की कोमल उंगलियों के सौन्दर्य को बाहर देखो जी ।

बाकर देतो जी । ” १

कृष्ण को पालने में लिटाकर योधा जो लोरी गाती हैं, उसमें लोक-गीत का सुन्दर रूप दीप्त पड़ता है। तमिल में लोरी गाते समय 'तालेली' शब्द की पुनरावृत्ति आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार के लोरी-गीत बाज भी घरों में गाये जाते हैं। पेरियालवार का एक लोरी-गीत देखिए :-

“ कंचन बीच मौली और रत्न संचित सुन्दर

पालना प्रजा ने तुम्हारे लिये भेजा है, हे माधव । तालेली ।

सुन्दर गलने, किंकिणी और कंकण

तुम्हारे लिये देवी ने भेजे हैं, हे, घनश्याम । तालेली !

सुन्दर कूल चुन चुनकर तुम्हारे लिये

भूदेवी ने भेजे हैं, रोखी मत, हे, मेरे राजा । ताले ली । ” २

१-“ पैवकुलवी पिडितु चुवैतुण्णुम

पाद कमलकल काणीरे पलवायीर । वन्दु काणीरे ।

कु विरल्लम मणिवण्णन पार्कल

लोपिट्टिरुन्त्ता काणीरे लोण्णुवलीर । वन्दु काणीरे । ”

- पेरियालवार तिरुमोली १२२-२ और २

२-“ माणिवककट्टि नथिरम क्कै कट्टि

वाणिव्पोन्नाल वेळ्ळ वण्णच्चिरुतोडिटल

पेण्डि उनक्कु पिरम्मा विडु तन्तान

माणिवकुरलने । तालेली । वैयमलन्ताने तालेली ।

चंकिन वलम्पुरियुम वैवडियुम किंकिणियुम-

कंकण विरुपिल अमरुल पौणन्तार

कंकण किरुण्डिल अमरु करुमुकिले । तालेली । देवकी चिंके । ताले ली ।

वानार वैलुवोले कर्ककिन वाचिंयुम

तेनार म्तर मेल तिरुमी पौणन्ताल

कोने । वल्ल वल्ल तालेली । कुडन्तकिडन्ताने । तालेली । ”

- पेरियालवार तिरुमोली १-३-२, ४ व ७

श्री. पदियों को सम्बोधित करके गाये गये पदों में प्रायः लोक-गीतों के शुद्ध रूप देखने को मिलते हैं। तिरुमोली वात्सवार के लोक पदों में इस प्रकार के लोक-गीतों का समावेश है। इस प्रकार के लोक-गीत आज भी तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं। बांढाल ने जहाँ स्वप्न में मन्धन के साथ होने वाले अपनी विवाह के प्रसंग का वर्णन किया है, वहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त पदों में लोक-गीतों का परिष्कृत रूप ही मिलता है। आज भी ये गीत विवाह के अवसर पर वैष्णवों के यहाँ सामूहिक रूप में गाये जाते हैं।

“ सुन री प्रिय सति मेरा सपना ।

देखा मैं प्रिय को जिस में पाया जीवन अपना ।

वारण गण से परिचित जाते, स्वागत होने सुर में

तोरण बधि मा में, का का पूरण घट घर घर में सुन री—

मुक्त-सर-शोभित मंढप में लस पृथ्वी बनाते

मधुसूदन जी पाणि फड़कुर मेरा हृदय लगाते

— सुन री — १

सूरदास जी द्वारा प्रयुक्त लोक-गीत का एक उदाहरण देखिए । यह बघाई का गीत है।

“ धनि धनि नंद-जसोमति, धनि जग पावन रे ।

धनि हरि लियो अवतार सु-धनि दिन आवन रे ।

दसर मास मयी पूत, पुनीत सुहावन रे ।

संत-चक्र-गदा-पद्म चतुर्भुज भावन रे ।

बनि ब्रज सुन्दरि चली, सु गाइ बघावन रे ।

कनक-धार रोचन-दधि, तिलक बनावन रे ।

नंदघरहिं बलि गई, महरि जई पावन रे । ” २

नन्ददास जी के निम्नलिखित लोक-गीत में पुन-जन्म के समय के हास उल्लास और वातावरण का सुन्दर चित्रण हुआ है :-

१- नाञ्चियार तिरुमोली ६:१ व ६ ( गोदाम्बा का व्रत और स्वप्न, हिन्दी अनुवादक श्री कस्तुरी रंगाचार्य पृ० ३७ )

२- सुरसागर ( सभा ) पद सं० ६४६ पृ० २६८



“ कृष्ण जनम तुनि अपने पति सँ हंसि दाढ़िन यँ बौली बू  
 जाउ जाउ तुम नन्द नृपति सँ दान कोठरी सौली बू  
 तुमहिँ मिलीगँ बागी बौरा दहिना मरि- मरि फौरी बू  
 हमकी लखी नखसिख गहना गेहरि सहित सु जौरी बू  
 लैयँ कंत पुगति सँ लखी हम बदिषे कौँ डौली बू ” १

### मुक्तक रचना-

मुक्तक निबन्ध-काव्य का एक रूप है। यद्यपि गीति-काव्य और मुक्तक में काफी साम्य दिखाई देता है, तो भी दोनों की आत्मा में मौलिक अन्तर है। इस कारण से उनके क्लेश में भी अन्तर देख पड़ता है। साधारणतया मुक्तक से तात्पर्य उस काव्य से है जो पूर्वापर सम्बन्ध से रहित होता है। मुक्तक काव्य के लिए यह आवश्यक है कि विभाव, अनुभावादि से मुष्ट रस परिपाक पूर्ण होना चाहिए और रसवृत्ति के लिए पूर्वापर का सहारा न लेना पड़े। गीत-काव्य में भावाविम्व्यक्ति का जो उल्लेख मिलता है वह मुक्तक में नहीं। मुक्तक में कवि बाह्य स्वरूप की रचना के प्रति बहुत ध्यान रखता है। अतः उसमें कला-पदा का प्राधान्य अधिक हो जाता है। चमत्कार-तत्त्व, उक्ति-वैचित्र्य आदि की ओर मुक्तककार जाग-रूक रहता है। कला-तत्त्व के प्रधान होने के कारण उसमें बौद्धिक तत्व प्रधान होता है। गीत-काव्य में रागात्मक आवेश और आत्मनिष्ठा प्रधान है, जो मुक्तक में गौण है। यही दोनों में सामान्य अन्तर है।

“ प्रबन्ध ” के “ व्यंथा-विभाग ” में संगृहीत रचनाओं में प्रायः मुक्तक ही दृष्टिगोचर होते हैं। उनके अन्य पदों की भाँति रागादि निर्दिष्ट नहीं हैं। पोथी बालवार, मूतबालवार, पेयालवार की रचनाएँ तथा नम्माबालवार की रचना “ तिरुविरुचम ”, तिरुमल्लि बालवार की रचना “ तिरुच्चन्त विरुचम ”, तौड-रही पोडी बालवार की रचना “ तिरुप्पल्लि स्तुच्चि ” में प्रयुक्त इन्हीं मुक्तक -

काव्य के अन्तर्गत जा सकते हैं। इनमें प्रत्येक पद अपने पूर्व पद के सम्बन्ध के बिना भी अस्तित्व रख सकता है और अभिव्यक्ति पूर्ण भी हो सकती है। इनमें कुछ पद राग-बद्ध हैं। अतः उन्हें राग-बद्ध-मुक्तक कह सकते हैं। परन्तु ये मुक्तक होते हुए भी गीत-काव्य की ओर अधिक फुके हुए हैं।

जालोच्य हिन्दी कृष्ण-मुक्तक कवियों में कुछ की रचनाएँ मुक्तकों के अन्तर्गत आती हैं। उदाहरण के लिए रसखान और हितहरिवंश की रचनाएँ उनके अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। रसखान की कविता अधिकतरतः मुक्तक के रूप में ही प्रकट हुई है। उसमें एक एक शब्द अपने आप में पूर्ण<sup>और</sup> स्वतन्त्र है। रसखान ने अपने प्रत्येक संवेग में संपूर्ण चित्र का निर्माण बड़ी कुशलता से किया है। मुक्तक के लिए आवश्यक प्रौढ़, प्राञ्जल और समासयुक्त भाषा भी रसखान की रचना में देखने को मिलती है। अतः मुक्तक के क्षेत्र में रसखान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। रसखान का एक मुक्तक शब्द देखिए -

“जाबु गई हुती मोरही हैं,” रसखानि रई कहि नंद के मानहि ।

वाकी जियाँ जुग साव करोर, जसोमति को सुख जात कहुँ नहि ॥

तेल लगाइ, लगाइ के जजन, माँह बनाइ बनाइ दिठौनहि ।

हारि हमल निहारत जानन, वारति ज्याँ चुकुरौति खैनहि ॥ १

### प्रबन्ध काव्य : लघुकाव्य

प्रबन्ध काव्य में शृंगारबद्ध रूप में किसी वस्तु का वर्णन होता है। प्रबन्ध काव्य का कथानक सापेक्ष होता है, जिसमें पूर्वापर संबन्धों की स्थिति सदैव बनी रहती है। कथा को पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए प्रकृति-वर्णन और देश-काल चित्रण का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रबन्ध काव्य विषय-प्रधान होता है। अतः उसमें वर्णनात्मक तत्वों का वास्तव्य हो जाता है। प्रबन्ध काव्य के दो रूप माने गये हैं - महाकाव्य और लघुकाव्य। महाकाव्य में जीवन के संपूर्ण वर्ण

का वर्णन सर्ग बद्ध रूप में होता है। सण्ड-काव्य में जीवन के किसी एक सण्ड कथा अंत को लेकर उसका क्रम बद्ध वर्णन किया जाता है।

बालवाराँ में क्या बालीव्य कासीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में किसी ने भी महाकाव्य की रचना नहीं की। कृष्ण-भक्ति काव्य में भाव जन्य आवेश और उद्रेक का जो रूप था, उसकी अभिव्यञ्जना के लिए गीत ही श्रेष्ठ माध्यम था। महाकाव्यकार की भाँति कृष्ण-भक्त कवियों की दृष्टि विजयवात नहीं थी और किसी महान् सन्देश या गंभीर जीवन-दर्शन का प्रतिपादन उनका लक्ष्य नहीं था। कृष्ण-भक्त कवियों का हृदय कृष्ण-सीता पर ही अधिक केन्द्रित था। कृष्ण और राधा के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण भावात्मक और रागात्मक था। हृदय की अत्यधिक मातृकता में गीतों का झोत ही फूट पड़ता है। परन्तु महाकाव्य के लिए वस्तु पर गंभीर और बुद्धि समन्वित दृष्टि की आवश्यकता है। यही कारण है कि कृष्ण-भक्त कवियों के द्वारा महाकाव्यों की रचना नहीं हुई।

बालीव्य कृष्ण-भक्त कवियों में कुछ ने सण्डकाव्यों की रचना की है। सण्डकाव्य में जीवन के एक अंग का चित्रण होता है। किन्तु वह सण्ड और उसमें व्यक्त अनुभूति अपने आप में पूर्ण होती है। सण्डकाव्य में एक कथा-सण्ड अवश्य होता है, जीवन के सर्वांग निरूपण के अभाव के कारण उसमें कथा का उत्थान-पतन नहीं होता। प्राचीन कथाएँ बहुत कम जाती हैं। कृष्ण-भक्त कवियों के सण्ड-काव्यों में कथात्मकता के साथ, गीतात्मकता का सामंजस्य है। बाण्डाड़ की “तिरुप्पावि” नम्माचवार की “तिरुमिरुत्तम” और तिरुप्पी बालवारा की “परियतिरुमैल” विशेष रूप से सण्डकाव्य की कोटि की हैं। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में विशेष रूप से नन्ददास ने सण्डकाव्य लिखे हैं, जैसे रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, गोवर्धन-सीता, सुलामा चरित, रुक्मिणी फल, रूप-पंजरी और विरह-पंजरी आदि। इनमें कुछ वर्णनात्मक हैं, कुछ काल्पनिक वाक्यानों पर आधारित हैं, कुछ विशिष्ट आध्यात्मिक सिद्धान्तों के निरूपण के लिए हैं और कुछ पद-

शैली में लिखित सण्ड-कथानक हैं। सण्डकाव्य-रचयिता के रूप में हिन्दी कृष्ण-मन्त कवियों में नन्ददास जी का प्रमुख स्थान है। नरौणदास कृत "सुदामा चरित" भी एक सुन्दर सण्डकाव्य है।

### इन्दोयीयना-

काव्य की कलात्मकता में इन्दों का महत्व भी स्वीकार किया गया है। दिखाया जा चुका है कि जाल्वार मन्तों और जालीव्य हिन्दी कृष्ण-मन्त-कवियों की गेय-पद-शैली में राग-रागिनियों का विशेष स्थान है। भारतीय काव्य-शास्त्र में इन्दों की परंपरा प्राचीन काल से ही चली जा रही है। प्रत्येक कवि इन्दोयीय कविता को ही कविता समझता था। सय और इन्द से कविता की व्यक्तता भी सम्झी जाती थी, क्योंकि सय आन्तरिक वेग को प्रकट करने का साधन है। काव्य के इन्दोवद्ध होने की आवश्यकता बताते हुए भी सीताधर गुप्त अपने ग्रन्थ "पार्ष्वात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त" में लिखते हैं - "पद्य की सय में संरूपता और नियमितता होती है। उसमें सय और पद का ढाँचा भी होता है। ऐसा व्यस्थित ढाँचदार पद ही इन्द है। इन्द का काव्यात्मक मूल्य और भी अधिक है। इन्द प्रेरणा की प्रवृत्ति को उत्तेजित करके शब्दों का एक बूँद से सम्बन्ध घनिष्ठ कर देता है। इन्द विस्मय द्वारा चेतना को धीमा करके मोहन-निद्रा से ले जाता है और सुविकारता, सुकृता और संवेदनशीलता की वृद्धि करता है। इन्द अपनी गति और ध्वनि से व्यं-प्रकाशन करता है। इन्द कविता का वातावरण उपस्थित कर देता है, काव्यात्मक अनुभव को इन्द साधारण जीवन के रागों से पुनः कर देता है। इन्द काव्यात्मक अनुभव की अभिव्यक्ति को स्थिर और परिभाषित कर देता है। इन्द कल्पना को प्रज्वलित कर कवि को ऐसी दृश्यमान और बोलाव्य प्रतिमाएँ प्रदान करता है, जिनसे उसके अनुभव की अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रेरक हो जाती है।"

---

१- पार्ष्वात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त, पृ० २२

( 'सुर और उनका साहित्य' पृ० ३०२ से उद्धृत )

कविता और इन्दोविधान का ग्रन्थ- बन्धन आदि काल से ही चला आ रहा है। यही कारण है कि बालवार भक्त और बालोच्च हिन्दी कृष्ण- भक्त कवि राग- रागिनियों में फ- रचना करते हुए भी इन्दों की झीड़ नहीं रहे। इन्होंने पूर्व प्रचलित प्रणालियों को अपनी गैर- फ- रचना में इस प्रकार फा लिया है कि उनके गैर फ- रों में इन्दोविधान भी है, इसका पता भी नहीं चलता। इन कवियों ने कहीं कहीं संगीतात्मकता की प्रधानता देते हुए इन्दों की तोड़- मरोड़ भी की है।

#### बालवार-काव्य में इन्दोयोजना-

बालवारों के फ गैर होने के साथ साथ इन्द- शास्त्र के नियमों के अनुकूल भी हैं। इन्दों के नियम प्रत्येक भाषा की प्रकृति और उच्चारण पद्धति के अनुसार अलग अलग होते हैं। बालवारों की भाषा तमिल है, जो द्राविड़ परिवार की भाषाओं में सबसे अधिक प्रधान और प्राचीन भाषा है। तमिल का अपना स्वतंत्र इन्द- शास्त्र है और उसकी अलग परंपरा है। संस्कृत के इन्दों का प्रयोग तमिल में बिल्कुल नहीं होता। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में प्रयुक्त इन्द तमिल के इन्दों से बिल्कुल भिन्न हैं। अतः इन्दों के प्रकारों की दृष्टि से बालवार-काव्य और हिन्दी कृष्ण-काव्य में कोई साम्य नहीं है।

यहां यह देवना अनुचित नहीं होगा कि बालवारों ने अपनी काव्य में अपनी भाषा के इन्द- शास्त्र के नियमों का पालन करने में कहां तक सफलता पायी है। इस प्रश्न में तमिल- इन्दों की विकास- परम्परा का विस्तृत परिचय अपेक्षित नहीं है। अल्प संक्षेप में ही बालवार- काव्य में प्रयुक्त प्रमुख इन्दों का परिचय दिया जाता है।

तमिल इन्दों के विषय में एक सामान्य ज्ञान आवश्यक है कि तमिल में एक पद के प्रत्येक वर्ण के अन्त में नहीं होकर प्रारम्भ में होती है। साधारणतः प्रत्येक वर्ण के प्रथम शब्द के द्वितीय अक्षर अथवा द्वितीय और



तृतीय वक्ता में प्राप्त होने की आवश्यकता समझी जाती है। एक उदाहरण लीजिए-

वैतनेय्युम कावन्त पालुम वडि तयिरुम नरु वैण्णैयुम

वैतनेय्युम पेदिरिये रंपिरान । नी पिरन्त तन्ने

वैतनेय्युम वैय्यपेद्वाय एतुम वैय्येन कतम्पटाने

मुत्तनेय पुरुषल वैस्तु मून्कृरिंची मुत्तियुणायि ।”

तमिल के प्राचीन काव्य में चार प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। वे हैं- “वासिरियप्पा”, “वैण्पा”, “वैचिप्पा”, और कलिप्पा। इनमें “वासिरियप्पा” सबसे प्राचीन छन्द माना जाता है। आखबार-पूर्व काल के काव्य में ( संस्कृत के काव्य में ) विशेष रूप से वासिरियप्पा का ही प्रयोग हुआ है। वैचिप्पा प्राचीन “वासिरियप्पा” का ही विकसित रूप है। कलिप्पा प्राचीन वैण्पा का परिवर्तित रूप ही है। प्राचीन काव्य में वैण्पा में दो से बारह तक चरण होते हैं थे। परन्तु बाद में वैण्पा में चार ही चरण रह गये। प्रथम तीन आखबारों ( पौयी आखबार, मुत्तवाखबार और पेयाखबार ) की रचनाओं में केवल वैण्पा-छन्द का ही प्रयोग हुआ है। क्योंकि उनके समय तक अन्य आखबारों के काव्य में प्रयुक्त कुछ छन्दों का आविर्भाव नहीं हुआ था। कलिप्पा- छन्द वासिरियप्पा और वैण्पा के सम्मिश्रण से बना था। कलिप्पा के चार भेद हैं :-

१- वीचात्तैकलि

२- कलिण्पादुदु

३- कौञ्जककलि और

४- ऊरुलकलि ।

१- Advanced Studies in Tamil Prosody,  
Dr. A. Chidambaramatha Chettiar, page 57  
(1943, edition)

२- वही पृ० ६०

तिरुमौ बालवार की दो रचनाएँ - पेरिय तिरुमळल और चिरिय तिरुमळल "कलिवेण्पाट्टु" इन्द्र में रचित हैं।

बालवार-काल में ( पाँचवीं शती से नवीं शती तक का काल ) प्राचीन चार प्रकार के इन्द्रों ( वासिरियप्पा , वेण्पा, कलिप्पा और वंचिप्पा ) के अनेक भेद निकले । डा० ए० सी० वेट्टियार के अनुसार तालिसे, तुरै, विरुचम वादि इन्द्र भेद निश्चित रूप से संघकाल- काल के बाद जन्मे हैं, जिनका प्रयोग विशेष रूप से बालवार-काव्य में हुआ है। तमिल के प्राचीन चार इन्द्रों और उनके भेदों से मिलित अनेक नवीन इन्द्र बालवार- काल में ही निकले । बालवार- काव्य में प्रयुक्त विविध इन्द्र इस प्रकार हैं- वासिरिय विरुचम, कलि-चालिसे, कलिनिलैतुरै , तलु कौञ्चक कलिप्पा, कट्टलैकलिपुरै , कलि विरुचम, वासिरियपुरै, वासिरियप्पा, कलिवेण्पा, कलि विरुचम, वंचिपुरै वादि हैं। इन इन्द्रों के अलग अलग नियम हैं। बालवार- काव्य में प्रयुक्त इन्द्रों की सूची मात्र देने से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि बालवार-काव्य में इन्द्र वैविध्य है और उन्होंने अनेक नवीन इन्द्रों का भी प्रयोग किया है।

बालवार-काव्य में प्रयुक्त इन्द्रों की यह विशेषता है कि प्रत्येक पद्य के अंतिम चरण का अंतिम शब्द उसके बाद के पद्य का प्रथम शब्द बन जाता है। इस "प्रणाली" को "वन्तादि" कहते हैं। यह प्रणाली पद्यों को एक शृंखला में ( Chain - arrangement ) में बाँधती है। बालवारों की प्रायः सभी रचनाओं में प्रारम्भ से अन्त तक इन्द्रों की यह "वन्तादि- प्रणाली" देखी जा सकती है। "वन्तादि - प्रणाली" में काव्य- रचना करना साधारण कवि का कार्य नहीं है। "बालवारों ने इस कठिन 'वन्तादि- प्रणाली' का भी बड़ी सरलता से अपने काव्य में प्रयोग किया है। यह उनकी कवित्व- शक्ति की और स्तुति करता है। बालवार- काव्य से 'वन्तादि' प्रणाली का एक उदाहरण लीजिए-

---

१- डा० ए० सी० वेट्टियार ने अपने ग्रन्थ "Advanced Studies in Tamil Prosody" में पर्याप्त विस्तार के साथ तमिल- इन्द्रों की विकास-परंपरा का परिचय दिया है।

“ नीयुम नानुम इन्नेर्निर्किन् मेल म्दोर  
नोयुम चार कोडान मैवमे । चोन्नेन  
तायुम तन्तैयुमाय इव्वुतकिनिल  
वायुम ईशन मणिवण्णन एन्तैये । ”

“ एन्तैये । एन्नुम ऐपरुमान एन्नुम  
चिन्तैयुल वैप्पन चोल्लुवन पावियेन  
एन्तै । एम्पेरुमान । एन्नु वानवर  
चिन्तैयुल वैतु चोल्लुम वेत्तवनेये । ”

— तिरुवाय मोली १-२८-३ व ४ )

कृष्ण बालवार्गे ने विविध इन्द्रों में लोफ- गीतों में प्रयुक्त शब्दावलियों का भी प्रयोग किया है। लोफ- गीतों के प्रभाव के कारण उनके पदों में ऐसी निरर्थक प्रयोग भी मिलते हैं जो केवल रौचकता में वृद्धि करने की दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं। ( पेरियाल्वार ने अपने लोक पदों में प्रयुक्त विशिष्ट इन्द्रों के साथ स्काध आवश्यक पंक्तियाँ जोड़ दी हैं। ) इनके प्रयोग के साथ साथ कुछ कवियों ने कहीं कहीं इन्द्रों के नियमों की मर्यादा भंग की है। पद रचना- परंपरा में और विशेषकर रागबद्ध रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग साम्य माने जाते हैं। सारांश यह है कि बालवार- काव्य में इन्द्र- वैविध्य है और कहीं इन्द्र के नियमों का भंग हुआ है तो वह संगीतात्मकता की प्रधानता देने की दृष्टि से हुआ है।

हिन्दी कृष्ण- मयित काव्य में इन्द्रोपयोग-

साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि हिन्दी कृष्ण- मयित कवियों ने इन्द्रों के नियमों की ओर ध्यान न देकर स्वतन्त्र रूप से पद- रचना की है और उनकी रचनाओं में गेय पदों का अनुपात ही अधिक है। इस विश्वास में

वार्तिक सत्य ही है। हिन्दी कृष्ण-मन्त्र कवियों की इन्दोयोजना के दो रूप देखने को मिलते हैं :-

१- प्रत्यक्ष इन्दोविधान

२- गेय पदों में प्रयुक्त इन्दोविधान।

इन्दोविधान का गेयत्व से नित्य-सम्बन्ध है। प्रत्येक इन्द में उसकी यति-गति का सम्बन्ध उसमें प्राप्त तय-विधान से होता है। इसलिए राग-रागिनियों में पद-रचना करते हुए भी सूर आदि कवि इन्दों को ढीढ़ न सके। सूर ने अनेक इन्दों को राग-रागिनियों और तालों में बाँधकर नियोजित किया है। अतः सूर सागर में राग-रागिनियों और टेक इत्यादि से पूर्ण रूप से मुक्त इन्दात्मक रचनाएँ प्रायः नहीं हैं। यह बात अवश्य है कि वर्णनात्मक प्रसंगों के इन्दों में संगीत के वाङ्मय तत्त्वों का आरोपण अपेक्षाकृत कम हुआ है। वर्णनात्मक स्थलों में प्रयुक्त इन्द अधिकतर चौपाई, चौपड़, दोहा और रौला हैं। इन इन्दों का प्रयोग भागवत प्रसंग में हुआ है। अन्य स्थलों पर उभय इन्दों में तथा अन्य इन्दों के विधान में टेक - रे, रो, हो, सलि इत्यादि के प्रयोग राग और ताल-बन्ध के द्वारा संगीतात्मकता के समावेश के प्रति पूर्ण सचेष्टता दिखाई पड़ती है।

परमानन्ददास जी के इन्दोविधान में समत्कार कव्या दीर्घ वर्णों से युक्त लंबी लंबी पंक्तियों का विधान नहीं है। उन्होंने अधिकतर सार और सरसो इन्दों का प्रयोग किया है। परमानन्ददास के अधिकतर पद टेक-युक्त हैं। टेकों की मात्रा में कोई निश्चित विधान नहीं है। नन्ददास ने भी सूर की भाँति इन्द तथा पद दोनों शैलियों में लिखा है। अन्तर केवल इतना है कि सूरसागर में पदों का अनुपात अधिक है और नन्ददास की रचनाओं में इन्द बन्धन का। वर्णनात्मक स्थलों में नन्ददास ने चौपाई इन्द का प्रयोग किया है। अतः 'सुदामा चरित' और 'गोवर्धन-लीला' में केवल चौपाई इन्द का ही प्रयोग हुआ है। रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी तथा रुचिमणि माल में रौला इन्द का प्रयोग हुआ है। मीर-गीत और श्याम संगार की रचना रौला और दोहा इन्दों के मिश्रित प्रयोग

द्वारा हुई है।

श्री हितहरिवंश द्वारा रचित स्फुट वाणी में दोहा, सर्वया, हृष्य और कुंडलिया इन्हीं का प्रयोग हुआ है। कवयित्री मीराबाई की रचनाओं में भी प्रायः वही इन्द्र प्रयुक्त हुए हैं जो अन्य मवतों की फावतियों में जाये हैं। इन इन्हीं के प्रयोग में दोष भी कहीं कहीं जाये हैं। परन्तु मात्राओं की संख्या तथा अन्य साम्यों के द्वारा अनेक इन्हीं का अस्तित्व मीरा के काव्य में प्रमाणित किया जा सकता है। मीरा के काव्य में प्रयुक्त इन्द्र इस प्रकार हैं- सार इन्द्र, सरसी इन्द्र, दोहा, विष्णु पद, समान सर्वया, शोभन, तार्क और कुंडल। इन में सार इन्द्र का ही अधिक प्रयोग हुआ है। मीरा के जिन पदों में इस इन्द्र का प्रयोग हुआ है, उनमें कहीं कहीं निर्णय संबोधनों ( रे, री, जी, र माय, हो माई इत्यादि ) के प्रयोग के कारण उन्हें सदोष कहा जा सकता है। परन्तु पद-रचना-परंपरा में और विशेष कर रागबद्ध रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग अस्वाम्य नहीं माने जाते ।

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि जालवार मवत तथा ऊँ जालीय काशीन हिन्दी कृष्ण-मवत कवि गेय पदों की रचना करने पर भी इन्हीं के नियमों के प्रति जागृक रहे हैं और उन्होंने अपनी अपनी भाषा के इन्द्र शास्त्रीय नियमों का पालन अपनी कविता में किया है। अगर उन्होंने इन्द्र के नियमों का उल्लंघन किया है तो, वह संगीतात्मकता की प्रधानता देने की दृष्टि से ही है।

भाषा- शैली

जालवारों के काव्य में प्रयुक्त भाषा-

जालवार मवतों के समस्त पद साहित्यिक तमिल भाषा में रचित हैं। जालवारों की भाषा की विशेषता यह है कि वह संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से मिलित तमिल भाषा है। तमिल भाषा के अधिक विकास



में बालवार भक्तों का बड़ा हाथ रहा है। बालवार-भक्तों के पूर्व ज्यों पाँचवीं शताब्दी के पूर्व के तमिल काव्य में जो भाषा प्रयुक्त थी, वह शुद्ध तमिल भाषा थी। उसमें संस्कृत भाषा के शब्द नहीं के बराबर हैं। बालवार भक्तों के समय में ही संस्कृत भाषा के शब्द तमिल में घुसे। चूंकि बालवार भक्त संस्कृत के भी विद्वान् थे और वेद, गीता आदि के ज्ञाता थे, अतः उन ग्रन्थों के सार को तमिल भाषा के अपने पदों में अभिव्यक्ति देते समय अनायास ही संस्कृत शब्द उनकी तमिल शैली में प्रवेश कर गये। तमिल - भाषा के स्वरूप-विकास की दृष्टि से बालवारों का यह कार्य बड़ा महत्व रखता है। बालवार भक्तों ने ही सर्वप्रथम धर्म के साथ संस्कृत शब्दों को अपनी भाषा में आने दिया। यह बात अवश्य है कि बालवारों ने संस्कृत के कठिन शब्दों को नहीं लेकर बहुत ही सरल और सरस शब्दों को लिया है। अधिकांश शब्दों को तत्सम रूप में प्रयुक्त नहीं कर उन्हें "तमिलीकृत" कर तदनु रूप में ही प्रयुक्त किया है। बालवारों की इस महान् सेवा से तमिल भाषा का शब्द-माण्डार विकसित हुआ। बालवारों द्वारा प्रयुक्त तमिलीकृत मधुर संस्कृत शब्दों से तमिल भाषा में एक नयी शक्ति का संचार हुआ। सरल और सरस संस्कृत शब्दों के प्रवेश से तमिल भाषा में पहले की अपेक्षा अधिक प्रसहमानता और संगी-तात्मकता आयी।

शैली की सुन्दरता और महत्ता उसके क्लेशर भाषा की समृद्धि पर निर्भर है। भाषा की समृद्धि की पहचान शब्द-माण्डार और शब्दार्थ बहुलता से की जा सकती है। कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए चारों ओर से शब्द ग्रहण करता है और आवश्यक कौट-छांट कर उनका प्रयोग करता है। ऐसा करने से भाव-प्रकाशन सुन्दर हो जाता है।

बालवार भक्तों के काव्य में प्रयुक्त शब्दों पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका शब्द-माण्डार पर्याप्त समृद्ध है। उनकी रचनाओं में विशुद्ध तमिल भाषा के शब्दों का ही अधिकाधिक प्रयोग है। अपने

शब्द-माप्टार को विस्तृत करने के लिए उन्होंने संस्कृत के शब्दों का सहारा ग्रहण किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्द भी बहुत सरल और मधुर हैं। संस्कृत शब्द अधिकतर तद्भव क्वा अर्थ तत्सम रूप में ही मिलते हैं। स्तुति क्वा सिद्धान्त- कथन के स्थलों में तत्सम शब्द जाये हैं। अन्य स्थलों में तद्भव और अर्थ- तत्सम शब्द तमिल शब्दों के साथ साथ पुल मिलकर जाये हैं।

१- तमिल लिपि में केवल ३१ अक्षर हैं, जिनमें २२ स्वर और ९ व्यंजन हैं। स्वरों में तीन ऐसे हैं जो देवनागरी वर्णमाला में नहीं हैं, पर द्राविड़ परिवार की सभी भाषाओं में पाये जाते हैं। ये हैं 'इस्व' 'ए' और 'इस्व' 'ओ' और 'अस्'। व्यंजनों में ल, ळ, ठ, थ, फ, ग, ज, ड, द, ब, घ, ढ, ध, म, न, ण, स, ह आदि अक्षर तमिल वर्णमाला में नहीं हैं। कुछ तमिल शब्दों में इन अक्षरों की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर वर्णमाला के पहले अक्षर से ही काम लिया जाता है। तमिल में तीन व्यंजन ऐसे हैं जो देवनागरी वर्णमाला में नहीं मिलते, ये हैं - रं, र् और न्। यद्यपि तमिल में ग, ज, ड, द, ब अक्षर नहीं हैं, तो भी ये ध्वनियाँ तमिल में पायी जाती हैं। संभव है, इन ध्वनियों का विकास संस्कृत के प्रभाव के परिणाम स्वरूप हो। तमिल में इन ध्वनियों के लिए अलग अक्षर नहीं हैं। क, च, ट, त, प अक्षरों से ही इनका काम लिया जाता है। स्थान के अनुसार इनका उच्चारण बदलता है। ल, ळ, ठ, थ, फ और घ, फ, ढ, ध, म अक्षर तमिल में नहीं जाते। संस्कृत के तत्सम शब्दों में ही इनका प्रयोग होता है और लिखते समय क, च, त, प से ही इन अक्षरों का काम लिया जाता है। तमिल में अक्षरों की कमी के कारण संस्कृत का अन्य भाषा के शब्दों को लिखने में कठिनाई उपस्थित होती है। इस कारण प्रायः शब्दों के रूप बदले जाते हैं। संस्कृत शब्दों के रूप तमिल में अधिक सरल और मधुर बन जाते हैं और उनके उच्चारण की कठिनाई दूर हो जाती है। जैसे फल तमिल में पलिरम् और शास्त्र चाचिरम् बन जाते हैं।

बालवार्त्तों के द्वारा प्रयुक्त संस्कृत के तत्सम शब्द-

परियालवार - नमो नारायण, अवनि, मुनि, मूर्ति, नाम, नील,  
मीन, अम्बुली, धरणी, ज्ञान, वेद, केशव, वरुण,  
मणि, कुल, ज्ञान वादि, कनक, नरक ।

बाण्डाल- नायक, मूर्ति, नारायण, ज्वर, नन्द गोपाल, कमल,  
गण, ईश, मंडल, देवाधिदेव, द्यौम, कलश, विमल ।

तिरुमल्लि बालवार -संग, नीति, काल, वादि, वेद, मूर्ति, पुण्डरीक,  
कीर्ति, मीन, योग नीति ।

कूलशेखरालवार- मुषल, उन्मल, वीधी, माल, नगर ।

तिरुम्मी बालवार- द्यौम, वादि मूर्ति, माल, जल, ज्वर, मुल, कमल ।

मूतबालवार- पाणि, मृमि, गति, कवि गण ।

नम्पालवार- मूर्ति, माया, कीर्ति परम कवि, ज्वर, कारण, पाद  
कमल ।

अर्थ- तत्सम शब्द -

संस्कृत के शब्दों को तमिल की ध्वनियों के अनुकूल ढालने के प्रयास के फलस्वरूप बालवार मन्त्रों ने अनेक शब्दों को इतना नया रूप दिया है कि उनका मूल अर्थ कुछ ही मात्रा में शेष रह सका है। इन शब्दों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर ये शब्द- परिवर्तन केवल उन शब्दों में किये गये हैं जिनका उच्चारण कठिन था अथवा जिनकी ध्वनि तमिल की प्रकृति के अनु- कूल नहीं पड़ती थी। बालवार्त्तों की रचनाओं में संस्कृत से आये हुए शब्दों में अर्थ-

तत्सम शब्द ही अधिक हैं।

परियालवार : कंटम् ( कंठ ) उत्तरम् ( उदर ) , चिन्तूरम् ( चिन्दूर ) ,  
पेक्कम् ( पेघ ) कीत्तम् ( गीत ) , कृण्णम् ( गुण ) ,  
नक्करम् ( नगर ) नाक्कम् ( नाग ) जैतियम् ( जैत्य ) न्यक्कम्  
( न्यक्त ) , चैक्कम् ( चैक्क ) करुम्मम् ( कर्म ) तेज्वम् ( देव )  
ज्जोत्तै ( ज्योत्ता ) इन्तिरम् ( इन्द्र ) वारम् ( वार ) ,  
जात्ति ( जाति ) , चल्म ( जल ) पणम् ( फण ) ,  
चिरीत्तरम् ( बीघर ) , पर्माप्पा ( पद्मनाभ ) , चिरम्  
( सिर ) , अनियायम् ( अन्याय ) , पुक्कम् ( पुस्तक )  
ज्जल्लकारम् ( जल्लकार ) पुरुटोच्चम् ( पुरुषोत्तम ) , जावै  
( वाशा ) चक्करप्पाणि ( चक्रपाणि ) वैकुन्तम् ( वैकुण्ठ ) ।

वाण्डाल-

य्जोत्तै ( ज्योत्ता ) , चिच्चै ( चीस ) , उत्तम् ( उत्तम ) ,  
मायम् ( मायायुक्त ) , मालै ( माला ) वाक्कुलम् ( व्याकुल ) ,  
तलुम्मम् ( धर्म ) पावम् ( पाश ) इन्तिरम् ( इन्द्र ) मन्तरम्  
मंत्र ) य्जुनै ( यजुना )

कुल्लेशर-

मनिवर ( मनुज ) , मालै ( माला ) , पणम् ( फण )  
ज्जन्तम् ( जन्त ) , मायै ( माया ) , चिच्चै ( चिच्च ) ,  
मन्तिरम् ( मंत्र ) पात्तुक्कम् ( पातुक्का ) , कलै ( कला )

तिरुमल्लिषै वालवार-

माय्कै ( मायायुक्त ) कौक्कै ( गंगा ) ज्योत्ति ( ज्योति )  
पौक्कम् ( पौण ) ज्जन्त चयन ( ज्जन्त शयन ) पारम् ( पार )  
उपायम् ( उपाय ) मायै ( माया ) , पावम् ( पाश ) ,  
वयिर ( वेर ) कलै ( कथा ) , केत्तम् ( लेद ) ।

तिरुमल्लि वालवार-

नाक्कम् ( नाम ) पणम् ( फण ) , पावम् ( पाश )  
जावै ( वाशा ) इन्तिरम् ( इन्द्र ) पुरुटोच्चम् ( पुरु-  
षोत्तम ) वदरी ( वद्री ) ।

नम्मालवार - इराकम ( राग ) चन्मन्मान्तिरम ( जन्म जन्मांतर )  
चरणम् ( शरण ) तिवै ( दिशा ) वरम ( वर ) चरा-  
चरम् ( चराचर ) ।

### तद्भव शब्द-

संस्कृत से आये हुए शब्द तद्भव रूप में ही आलवारों की रचनाओं में अधिक मिलते हैं। कुछ कुछ संस्कृत शब्दों के रूप इतने बदल गये हैं कि उनकी पहचान तक कठिन हो गयी है। ये शब्द संस्कृत से आते हुए भी तमिल की निम्नी संपत्ति हो गये हैं।

### पेरियालवार-

इराक्कतर ( रावास ) , इरुटिकेवन ( इष्णीकेश )  
विट्टुचिवन ( विष्णुचित ) , कण्णन ( कृष्ण ) , चिक्कम  
( सिंह ) , तुलाय ( तुल्सी ) , चिरीत्तरन ( श्रीधर ) ,  
मुत्तु ( मौती ) , चक्कम ( चक्र ) , पक्कम ( पक्व )  
उलकम ( लोक ) चत्तिरम ( क्षेत्र ) , कंजन ( कंस ) , तिरु  
ल ( श्री ) , चोवम ( ब्रौत ) , कक्कारम ( शंकरा ) ,  
अरवन ( राजा ) , पत्तु ( गाय ) , पत्तर ( भक्त ) ,  
पावी ( पापी ) कोत्तुकलम ( कौतूहल ) , तन्मम ( धर्म )  
वेटम ( वेश ) , कण्णात्तम ( कल्याण ) , पुत्तिरन ( पुत्र )  
कोवलन ( गोपाल ) , चिल्लिकारम ( शृंगार ) अर्पुत्तम  
( अर्पुत ) , चिल्लै ( शिला ) , विरत्तम ( व्रत ) , वंति  
( सन्ध्या ) , वायिरम ( सहस्र ) तानियम ( धान्य ) ,  
चिन्तै ( मन ) मान ( मृग ) वैट्टण्णवन ( वैष्णव ) ,  
तवम् ( तप ) , पिरमन ( ब्रता ) विधिकरम ( विग्रह )  
माक्कली ( मार्कशीर्ज ) , किरिवै ( क्रिया ) मै ( मणि )

### वाण्डाल-



सुवर्कम ( स्वर्ग ) पुण्णिण्यम ( पुण्य करने वाला ), कन्तम ( गन्ध ), चिकम ( सिंह ) कारियम ( कार्य ), कंन ( कंस ) कामम ( कामना ) तिरु ( श्री ) चंन ( संघ ) तुवर ( तारिका ), मानिटर ( मनुष्य ) उरु ( रूप ), उरोटम ( रोग ) कुयि ( कोकिल ), ततुवन ( तत्व वाला ), वाकुलम ( व्याकुल ), वमुतम ( वमृत ), तुवरापति ( तारिकापति ) ।

कृतशेखर-

तंफम ( स्तम्भ ), वू चीराना ( श्रीराम ) इराक्कने ( राघव ), पतर ( मन्त्र ), उत्तम ( लोक ) वरु ( राघव ) वमुतम ( वमृत )

तिरुमलेशि बालवार- वरंन ( श्रीरंग ), चिकम ( सिंह ) चिरै ( अक्षा ), वण्णम ( वर्ण ), पतर ( मन्त्र ) चरम ( शर ) चिरम ( सिर ), वमुतम ( वमृत ) पुण्णिण्यम ( पुण्य करने वाला )

तिरुमनी बालवार-

वायिरम ( सहस्र ) तवम ( तप ), वायम ( शाय ) मामुनि ( महामुनि ) चिले ( शिला ) चलम ( क्ल ) उरोमम ( रोग ) तेव्वम ( देव ) पावम ( पाप ) वमण ( व्रमण ), वमुतम ( वमृत ), इलवकुम ( लक्ष्मण ) चिकम ( सिंह ) नीचर ( नीच ) उरु ( रूप ) मुरु ( मोती ), तिरुधि ( तृप्ति ) कैतै ( केतकी ), कंन ( कंस ) ।

भूतबालवार-

इतयम ( हृदय ) तवम ( तप ), वमुतु ( वमृत ) कंन ( कंस ), कामम ( कामना ) कटितु ( कठिन ) वण्णन ( वर्णमाला ) कौवलन ( गोपाल ) ।

**पेवालवार-**

तेजु ( तेजस ) , तनम ( स्तन ) , बाकायम ( बाकासि ) ,  
उलकम ( लोक ) , अंति ( सन्ध्या ) , तुलाय ( तुलसी ) ,  
चिरीतरन ( श्रीधर ) तानम ( स्थान ) ।

**नम्मालवार-**

बामुतु ( बभ्रु ) , तिरु ( श्री ) , कर्प्पम ( कल्प ) ,  
कण्णन ( कृष्ण ) , तुलाय ( तुलसी ) , वर्षवारम  
( वर्ष सार ) , नमन ( यम ) , कुयिल ( कोकिल ) ,  
चुवक्कम ( स्वर्ग ) पयि ( भवित ) , उलकम ( लोक ) ।

अनुकरणात्मक शब्द-

बालवारों की भाषा की विशेषता है, उसकी चित्रात्मकता ।

अधिकतर शब्द- चित्रों द्वारा उनकी भाषा की विवधायक शक्ति का निर्माण हुआ है। इन शब्द- चित्रों के निर्माण में सबसे अधिक योग अनुकरणात्मक शब्दों का रहा है, जिनके द्वारा इन कवियों ने विभिन्न स्थितियों और भावनाओं के चित्र खींचे हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अनुकरणात्मक शब्द इस प्रकार हैं - बलार- फिलार , कण- कण, चलन- चलन , चोट्टु चोट्टेना , तुलि तुलिवक , किमु किमु वेन्दु, कल- कलप्प ।

बालोच्चकालीन हिन्दी कृष्ण- भक्त कवियों की भाषा-

बालोच्चकालीन सभी हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ब्रजभाषा के विकास तथा रूप- निर्माण में हमारे बालोच्चक कवियों का विशेष हाथ रहा है। १६ वीं शती के पहले ब्रज- भाषा में साहित्य - रचना विशेष कुछ नहीं हुई थी। सूरदास जी ने पहले पहल ब्रज भाषा की काव्य की उपयुक्त भाषा बना दिया। सूर ने ब्रज की बोली को

साहित्यिक रूप प्रदान किया। बालीच्य कवियों ने साधारण भाषा को गरिमा प्रदान करने के लिए संस्कृत के शब्दों का सहारा लिया, बोली को संवारने के लिए तद्भव शब्दों को कटि-काटकर प्रतिपाद्य के अनुसार मृणु और कोमल बनाया तथा विदेशी शब्दों को अपनी ध्वनियों में ढाँककर उनके प्रयोग के द्वारा भाषा को व्यापकता प्रदान की। तत्सम शब्दों का प्रयोग इन कवियों ने अधिकतर व्याख्यात्मक तथा कल्पना प्रधान अप्रस्तुत योजनावर्गों के चमत्कारवादी स्थलों में किया है। लीला-प्रधान अनुभूत्यात्मक और विवरणात्मक स्थलों में प्राधान्य तद्भव शब्दों का है और विदेशी शब्दों का पुट प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। किन्तु उन पर प्रजमाणा का रंग इस प्रकार चढ़ाया गया है कि उनका विदेशीय प्रायः नित्य ही छिप गया।

बालीच्य हिन्दी कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त तत्सम शब्द-

शूरदास-

अहिपति, कीकार, अम्बु, अभिलाष, आमिष, आयुध, अपरिमित, अजिर, अमिराम, आविर्भाव, इन्दीवर, कालिमा, कामना-कानन, कनीनिका, जल, कल्लर, नासिका, तनया, कुन्तल, कमल-दल-लोचन, कलत्र, नासिकल, दारा, कौविद, जगपति, कौतुक, दम्पति, निरालंब, मुकुलित, समर, सरसिज, मनोरथ, प्रतीति, पन्नग, पतित-पावन, राधा, परिवेश आदि।

परमानन्ददास-

अपात, अनुराग, अमित, अलंकृत, इन्दुदण्ड, इन्द्रनीलमणि, उच्छलित, उत्थापन, उपदेश, उत्संग, उपहार, कुंठल, गौरज, उलूखल, कृष्णमाधु, कुंचित, महाकाव्य, वदोपत, परिरंभण, महीत्सव, विणयासन, त्रिपद धूमिष आदि।

नन्ददास-

तत्त्व, कंचन, इन्दु, राजीव, चिकु-कूप, अधोदाज, प्रतिमा

प्रेम- पदति, विष्णमता, बुद्धि वमेरेन्द्रवृन्द, पुलकित, जासपित, कर्म, क्रिया, नीलोत्पलदल, तिमिरासित, उज्ज्वल, निधान सच्चिदानन्द, वाग्य वादि ।

लिवहरिवर्ष-

मंसुत, कलकृष्ण, जलज, कपीत, ललितलट, कुटिल मृदुटि, शिथिल गति, कनक बेल, तमाल तरु कनकलता, परिरंभन, किसलय, शयन, शिखीकृत, प्रवीक्षित, वरुणपीत नव दुकूल, अनुपम-वनुराग, मूल, मृदुल, पुलकित, शाखाभूग, व्रीफल उल्ल, निविड निर्भुज, विहग, शीश-किरीट — इत्यादि ।

वर्ध तत्सम शब्द-

संस्कृत

~~सुरदास~~ के शब्दों को ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुसार ढालने के कारण बालोच्य कवियों ने अनेक शब्दों को ऐसा नया रूप दिया कि उनका मूल अर्थ कुछ मात्रा में ही शेष रह सका । उच्चारण की कठिनाई, मूल शब्द की ध्वनि की कर्कशता और कठोरता को दूर करने के लिए ऐसे परिवर्तन किये गये हैं। उन कवियों ने कर्ण कट्ट शब्दों को मधुर <sup>और</sup> कठिन शब्दों को सरल बना दिया है। इन कवियों के हाथों में जाकर संस्कृत के शब्द ब्रज भाषा के शब्द बन गये । ऐसे शब्दों को वर्ध-तत्सम शब्द कह सकते हैं।

सुरदास-

वपस, वप्रित, वंसुमान, वारत, कलस, कृष्णा, गनिका, दुरवाधा, परलीति, फुम, प्राप्त, तंदुल, पारणद, वृनीर, निलै, विमान, विरघ, मितुसार, मरजाद, सुप्रति, स्वार्थ, सवन, स्नान, सरण, मरकट, सति- इत्यादि ।

परमानन्ददास-

सहस्र, स्याम, सर्वसु, अतिसैनी, पुरक, सुम, पदम, मगत,  
चंद, वंस, महातम, असीस, चिन्तामनि, मखादा, परनाम,  
प्रापत, समेह इत्यादि ।

नन्ददास-

धरम, सखर, स्मृती, पद, मुरझि, अतिसय, निघन, अरधा,  
सरद, जीति, सहस्र, वातमाराम, तुसार, मच्छ इत्यादि ।

हित हरिवंश-

पुल, धुझि, दिसवि, जलप, गात, उफति, समै, विलोकि,  
परसत, जीति, दोति, पिय, सन, सलम, पीत, क्रीडत,  
अहिम, वसन इत्यादि ।

तद्भव शब्द-

वास्तव्य हिन्दी कवियों की भाषा में तद्भव शब्दों की  
बहुलता है। प्रतिपाद के कुछ वर्णों को छोड़कर प्रायः अधिकतर पदों में व्यावहारिक  
भाषा का ही प्रयोग किया गया है। तद्भव शब्दों से तात्पर्य उन शब्दों से है, जो  
मूलतः संस्कृत में थे, परन्तु समय के साथ उनके परिवर्तनों के कारण हिन्दी की अपनी  
निजी संपत्ति हो गये हैं।

गुरदास-

बाँसर, उईंग, काठ, कापरा, कोसि, अमराई, कौह,  
जमने, जनत, अनियारे, जोदे, कान्ह, जंसे, लवन,  
बिहारि, निठुराई, पाँवरी, परसना, बिलम, लच्छा,  
तमचुर, सियार, साँवरी, मोत, सजनी, राफस, सौँह ,  
हुरति, सरिस, मोल, मूसे, सराय, बियाहन, बनिय,  
मुसाई , घसी, लैम इत्यादि ।

परमानन्ददास-

अकाथ, असाध, जनत, अमरत, अन्तरगति, इच्छ, उईंग,



उनमद, अहंस, कृनित, धोख, पूत, न्याति, बतरस, नहोच्छ्व, तंबोर, गात, पाती, वसन, बापी, रिस, सवार इत्यादि ।

नन्ददास-

बरनत, अक्कर, पलान, अकास, करनिका, मांछिन, बतन, सारों, परमान, तुनाई, लच्छ, दुलही, मूरति, मांफ, क्य-  
मारे, जोवन, नाइक, देस, पखितां, जुद, अंतखानी, हुमिरन,  
इत्यादि ।

हितहरिर्वश-

उकति, समे, फटकि, जुवति, नाये, छपति, परसत, व्यापत,  
जोति, पिय, झोहत, बिलपत, जोसर, पंजर, हुतासन, अनि-  
यास, उदिस, संजमन, वसन, अकरा, विलोकि, मुर्वग, वारति-  
दवन, सुलम इत्यादि ।

देशज शब्द-

अ- प्रान्त में अधिकतर रहने के कारण आलोच्य हिन्दी कवियों के काव्य में लोक- व्यवहार के बहुसंख्यक शब्द उपलब्ध होते हैं। उनमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध होती, अतः उन्हें देशज की संज्ञा दी गयी है। ऐसे कुछ शब्द नमूने के तौर पर नीचे देते हैं।

सूरदास-

अमात, वारोगत, चाढी, लुनुस, फगा, फारी, नैसी,  
नरजी, फेफरी, बगदाइ, तस्कि, झाक, जोहर, घारी,  
लठवांछी, निटोल, गोहन, गोसों, लोही ।

परमानन्ददास-

बिहाल, बिन्दुका, राती, वरोगत, हुलासैं, अनेरो, अगारैं,  
उराहनों, उक्कन, सती, ओट, जोसर, होहाहोही, झाक,  
जेबरी, फूमकरा, नाज, पुरई, मनुहार, तरिका, हटरी,  
हवतल इत्यादि ।

नन्ददास-

चटसार, फूलेल, चुबाई, टोनी, मुसकि, ठूरास्त, फट-  
किना, डहकि, नकवानो, होड़नि, बरगाड, उगहन, चटपटी,  
झिल्लर, बजमारे, मुसकि, फलमलताई, गुहा-गुहो —  
इत्यादि ।

विदेशी शब्द-

राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों के अनुरोध से  
बालीय हिन्दी कवियों के समय में कैंक बरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं  
के शब्दों का जनसाधारण में प्रचार हो गया था । बालीय कवियों ने इस प्रकार  
के शब्दों को स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण किया है। परन्तु अपनी भाषा की ध्वनियों के  
अनुसार समुचित परिवर्तित रूप में उनका प्रयोग किया है।

सूरदास-

दरवान, साक, जहाज, सिरताज, नौबत, नकीन, रुबका,  
तरवारि, ख्वास, सहनाई, सन्दूक, लसम, सहर, साबित,  
फौज, महस, कर्मात, सायक, अपसोस, छुर, बजार,  
दिवानी इत्यादि ।

परमानन्ददास-

जासूस, दगा, दफ्तर, दहल, सायक, सहनाई, सोर, सेहरा,  
सहस, सौदा, मैदान, महक, मौज, मवासी, दीवान, जंगी,  
सिरताज, ब्ला, बेहाल इत्यादि ।

हरिदास-

सुमार, निसार, सतराज, पियादे, अस्त्यार, फरजी, फिर  
छवकि इत्यादि ।

मुहावरे और लोकोक्तियां-

लोक प्रचलित भाषा में लोक के अणित अनुभव वाक्यों

और वाक्यांशों के रूप में संचित होते रहते हैं जिन्हें लोकोवित्या और मुहावरे कहते हैं। इनमें सादाणिकता, अर्थ- गांधीय, वैचित्र्य और मार्मिकता के साथ सरलता का अद्भुत योग रहता है। भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने में मुहावरे और लोकोवित्यों का बड़ा हाथ है। चूंकि इन सीधी और सरल उक्तियों में मानव समाज का चिरकाल का अनुभव संचित है और इनका आधार मनोवैज्ञानिक है अतः वे सब और काल की सीमा से परे हैं और मानव- मात्र के हृदय को स्पर्श करने की दायता रखती हैं। बालवार मन्त्रों के तथा बालीय हिन्दी कृष्ण- मन्त्र कवियों के काव्य में मुहावरे और लोकोवित्यों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

#### बालवार-काव्य में मुहावरे-

- १- आकाश को गुंजायमान करना ( जोर से रोना )
- २- फुन्सी पर झुली का रस डालना ( वेदना पर वेदना देना )
- ३- झिझकी की तरह फड़कना
- ४- दस महीने पेट में लिये फिरने के कारण ( मातृत्व के कारण )
- ५- कसौटी पर सोने को कसने के समान
- ६- गाड़ी के पीछे चलते- चलते, गाड़ी पर चढ़ना ( धोड़ा, धोड़ा करके बहुत लेना )
- ७- माता का स्मरण कर रौनेवाले बच्चे के समान
- ८- बच्चे के हाथ के कटेरे की तरह

- 
- १- विष्णोस्ताम केट्टक बहुतल - पेरियालवार तिरुमोली २-३-६
  - २- पुण्णल पुलि पेस्ताल पील - वही २-६-१
  - ३- पल्लिवुछा प्पूफ - वही ३-४-२
  - ४- पन्निरु तिकल वयिदिल कोण्ट पांकिनाल - ३-२-८
  - ५- पोन्नी कोण्ट उरुक्त मेल उरुवापील " पेरियालवार तिरुमोली ५-४-५
  - ६- वरिवेयिल पुहुन्नु वडी प्पुम वल्लवु " नाञ्चियार तिरुमोली ६-३
  - ७- वरुल निनेवुलुन कूली पील - पेरुमाल तिरुमोली ५-४
  - ८- पिल्लै केयिल किण्णम वीचक पेवुवु - पेरिय तिरुमोली १०-६-१

- ६- जो गायक नहीं है, उसके गाने के समान<sup>१</sup>  
 १०- नदी के किनारे उगे फेड़ के समान<sup>२</sup>  
 ११- साँप के साथ एक ही स्थान में रहने के समान<sup>३</sup>  
 १२- दोनों तरफ से आग के बीच में पड़ी चिड़टी के समान<sup>४</sup>  
 १३- पानी से घिरे गोबर के समान<sup>५</sup>  
 १४- गड़रिये की फेंकी लकड़ी के समान<sup>६</sup>  
 १५- गरम किये हुए लोहे पर पड़ी पानी की बुँदों के समान<sup>७</sup>  
 १६- गूँग का देला हुआ स्वप्न  
 १७- दूध में घी के समान<sup>८</sup>  
 १८- अपने स्वामी के साथे अपनी पूँछ को हिलाने वाले कुत्ते के समान<sup>१०</sup>

### आलोच्य हिन्दी कृष्ण काव्य में मुहावरे

#### सूत्राव-

एक डार के तौर, निपट दई की लीयी  
 मेहमानी कहु लाति, नगन कूप सनि बौर, तेरी  
 कश्यो फन की मुख मयाँ, बखति आँसी, छूम के हापी,  
 मूढ़ बदाई, गूँग गुर की बहा, मोल लियो किन मोल,

- १- पाटातार पाट्ट - वही ११-७-४  
 २- आईकर बाल मरम पील - वही ११-८-१  
 ३- पाँपीहु जोरु कूरयिह पयिन्दार यील - वही ११-८-३  
 ४- हरुपाहिरी कोलियिहल हरुम्पु पील - वही ११-८-४  
 ५- वेल्तापिह फूट नरियिह पील - वही ११-८-५  
 ६- छैयन एरन्ति मरवे जोल - वही ११-८-६  
 ७- हरुपुष्ट नीर पील - तिरुमो आलवार  
 ८- ऊमनार कण्ट कनवुपील - .. ..  
 ९- पालिनुल नेय पील - नम्पालवार ( तिरुवायमोली ८-१-७ )  
 १०- नाय कूँ बालात्त कूँकिन्टवुपील - ( तिरुवायमोली ६-४-३ )

एक बात को बीस ब्याई, नाडे के दिन पीत, जाति-  
पाति उघटना, जन्म ब्याहना, घर के चौर, टाँका न  
लगना, तिनका तोड़कर डालना, नैन लगाना, नाच नवाना,  
इतनी कहा गाँठि की लागत — इत्यादि ।

परमानन्ददास-

बिन मोल बिकारुं, नैन सिरारुं, नैननि के घाले, लागत  
है कहु ब्याई, ठगौरी भेली, चित बेरि लह्यौ, लागति नहीं  
फलक, उर जानन्द न समाई, बाँसि दिखायै, कौन मन  
रासि, सँकेरी, घर बैठे निधि पाई, रार ब्याई, फूले  
फिरत, कुलदीपक, हाथ बिकानौ, फूँकि फूँकि हौं पार  
परत, सोनत सिंह बजायौ, चन्द्र लजाया है, पूरे मन के  
काम इत्यादि ।

नन्ददास-

सिर धुनहीं, हिय लौन लावरी, पचि मरे, बुधित ब्रास  
मुल काढि, करत नखानौ, बनि रह्यौ बान, ठकी लगि  
जाइ, गाँठि की लोखै, जान की बाँसिन देली, सरबसु  
लियौ चुराइ, लौम की नाच धे, तेरे बाबा की हौं-  
बेरी मई रो, साल बात की एक कही रो, प्रेम की पारग  
बुधौ, इन्द्रिज के मारे, हीरा बागे काँव— इत्यादि ।

रसखान-

मोल मयी बँसियान की, हियरा सत टूक हूँ फाटि गयो  
है, सुढार डरंगी, मुहु चढे बिन काज कर्नाडी, बाजे स्नेह  
की डौँडी, हाटहि हाट विके हौ, दे गयो भावती भाँव-  
रिया, बिज कारायौ, चन्दा हाथिनि छिपाव्यौ, गाँठि  
पँसौ — इत्यादि ।

मीरा-

तारा बिन- गिन रेण बिकानी, मत्स्य के बखी, मारी  
में मिल जासी, लोक लाग तिनका ज्युँ तौर्यौ, मुल मोर्यौ,



लई सीस बढ़ाय , पैर चितार्याँ, पट के पट लोल दिये हैं,  
नाचन लागी तो घूमट कैसी, ठाढ़ी पैर निहाई ललकि रहे,  
बतियाँ कहत बनाय , बात बनावत, नैकी बंदी हूँ सिर पर  
झारी — इत्यादि ।

### बालवार-काव्य में लीकोचितयाँ-

- १- बाँक वात्सल्य- सुल बया बाने<sup>१</sup> ?
- २- इसकी जन्म देने के सिर इसकी माँ ने कितनी तपस्या की थी<sup>२</sup> ?
- ३- पड़ोस के लोगोंने से बैर ठीक नहीं<sup>३</sup>
- ४- गुरुके ( वृद्धा विधिषा ) पर श्रद्ध कैसी<sup>४</sup> ? ( वर्तमान कार्य )
- ५- मुर्गी सपेद जी के सिर बया करे<sup>५</sup>
- ६- नीम के वृद्धा के कीड़े नीम के बिना बाँर कुछ खा नहीं सकते<sup>६</sup> ।
- ७- अपने बड़हे को घर गाय जानती है<sup>७</sup>
- ८- ऐसा कोई बड़हा नहीं जो अपनी माता ( गाय ) को नहीं जानता हो<sup>८</sup> ।
- ९- अच्छे राधा के दर्शन करना मगवान् के दर्शन करने के समान है<sup>९</sup> ।
- १०- गधे के अघारों के हिलने को देखने से बया<sup>१०</sup> ?

- १- मक्कल पिरात मल्लै एन्न बरिवाल - पेरियाल्वार तिरुमोली १-४-४
- २- एन्न नौन्नु प्पेदालो ज्वलै प्पे वयिरुडैयाल - पेरियाल्वार तिरुमोली २-२-६
- ३- बरुकि लिहन्तारै अनियायन वैन्नल नियायमी ? पेरियाल्वार तिरुमोली २-६-३
- ४- मुन्दिलेनुत्त मुरुकै प्पिल तेना ?- तिरुमी बालवार १०-६-२
- ५- कोली वेण पुट्टेवकु एन वैव्वतु - तिरुमी बालवार ( पेरिय तिरुमोली )

१०-६-७

- ६- वैम्पिन पुलु वैम्पन्दो उण्णातु - पेरिय तिरुमोली ११-८-७
- ७- ताय तन्नेयरियाद कन्दिल्लै - तिरुमी बालवार
- ८- तन कन्दै तायुन बरियुम - तिरुमी बालवार
- ९- तिरुवुडे मन्नरै काण्डिन तिरुमालिकाणल - तिरुवायमोली ४-४-८
- १०- ककुती उतट्टाटकण्डु एन मयन - वही ४-६-७

- ११- झिपकली की बोली का फल परंपरा से माना जाता है।  
 १२- जब तक ताकत है, तब तक रिश्तेदार जोक की तरह हँस चुसते हैं।  
 १३- बड़ों की दृष्टि से अप्राप्त क्या है ?

बालीव्य हिन्दी कृष्ण-काव्य में लोकोपितियाँ-

सूरदास-

बाके हाथ फेड़, फल ताकौ, अपने स्वार्थ के सब कौज ,  
 अपनी दूध झाँझि को पीवै , इत्की मई न उत्की सजनी,  
 जाकी कान पर ससि जैसी सौ तहिं टेक रह्यो , बूढे रवैय  
 मोठे कारन , जोवन रूप दिवस दस के , मारें कौं मारत हैं  
 बड़े लोग पाई , लौंही की लौंही जगवाजी, धान की गाँव  
 प्यार से जाने , एक पैर है काज, कहा कहत मापी के जागे  
 जानत नानी नानन, सटरी मही कहा रुचि माने सूर लैया  
 पी को , दाई जागे फेट दुरावति, जैसी बीज बीरर तैसी  
 सुनए , दुरत नहिं, नेह जरु सुगन्ध बोरी— इत्यादि ।

नन्ददास-

कथनी नाहिंन पाइये, पड्ये करनी सोय, जगुन होही, जो  
 मिठ न चित्र पटत , घर बाये नाग न पूर्वे बाकी पूजन जाहिं,  
 पाख परसैं सोह तुरत कवन ह्वै जाई , बातन विजन कोन  
 कथाये , काके हाथ मनोरथ बाये , मृग वृष्ण कब पानी मई,  
 काकी भुल मन लहुवन गई - इत्यादि ।

परमानन्ददास-

यह जौव धन पीस चरि को फटत पान सैं रंग, बीस व्यास  
 जाइ कहौ कैसे जो न नदी जलु पीजैं, परदेसी की प्रति ससी  
 री जनत नहीं ठहरायइ, अपने वर्य वादर की ज्योति जिमावै

१- पल्लिकि चोल्लोहु चोल्लै कोल्लुवर पण्डु तोट्टे - वही

२- जावकमुष्टेस कट्टेकल पील चुवैप्पर - वही ६-१-२

३- पेरिवार कट्ट फट्टकाल पेरान पय पेरुमारु - वही १०-६-१०

सीर, सैति मैति बर्यो पाक्ये पाके मीठे वाम — हत्यादि ।

रसज्ञान-

जो जन जाने प्रेम की, फेर जगत बर्यो रोय, शास्त्राण पठि  
पंडित मये के मौलवी कुरान, कस्त तन्तु सों झीन बरु कठिन  
लङ्ग की धार , प्रेम प्रेम सब कोई कहत प्रेम न जानत कोई,  
सर्प के साये को मंत्र लो, पर जाँस के साये को मंत्र न तैता  
हत्यादि ।

वर्तकार-विधान और उचित-वैचित्र्य-

भारतीय काव्य-शास्त्र में वर्तकारों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए वर्तकारों की आवश्यकता सभी ने मानी है। किन्तु काव्य में वर्तकारों का क्या स्थान होना चाहिए, यह बड़ा ही विवादग्रस्त विषय रहा है। कुछ ने तो काव्य में वर्तकारों को सर्वोपरि महत्व दिया है। हाँ ! यह ठीक है कि भावों के उत्कर्ष- हेतु और सौन्दर्य- बोध में सहायक के रूप में वर्तकार ग्रहण किये जाते हैं। जैसे तो किसी के भी काव्य में वर्तकार लीये जा सकते हैं। क्योंकि वर्तकार कथन- शैली के ही विविध प्रकार हैं। वर्तकार कविता के शोभा- कर्म हैं। जैसे कृष्ण स्त्री भी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करके कुछ वाकर्णक बन सकती है, उसी प्रकार निम्न कोटि की कविता भी वर्तकारों की सजा-वट से कुछ चमत्कार उत्पन्न कर सकती है। किन्तु जिस तरह सुन्दरी रमणी को आभूषणों की अपेक्षा नहीं होती, उसी तरह अच्छी कविता वर्तकारों के बिना भी वाकर्णक होती है। वर्तकार सजा-वट के बिल्कुल विन्यास के बन्दर अपना अनुपम स्थान रखते हैं। परन्तु वे अपने स्थान पर ही होने चाहिए। वर्तकारों का काव्य में स्थान उसके किसी का को उदीप्त और पूर्ण करने में है। वस्तुतः यदि कविता भावपूर्ण है और उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य है तो प्रभावोत्पादकता के लिए उसे वर्तकारों का सुझाव नहीं बनना पड़ता । ऐसी कविता के लिए सीधी

सादी उचित भी वर्तकार बन जाती है।

हमारे आलोच्य कवियों का काव्य तो भावों का उमड़ता हुआ सागर है, जिसमें रस की थाह नहीं पायी जाती। इन कवियों ने मचित और वात्सल्य के भावों को रस-कोटि तक पहुँचा दिया है। जिस प्रकार उमड़ती हुई सरिता अपने कुल-नियमित सरल पथ में प्रवाहित होने में असमर्थ होकर नवीन नवीन मार्ग खोज लेती है, वही प्रकार अनुभूति और भावुकता के चरम विकास की स्थिति में कवि के कण्ठ से निकली हुई भाव-रस-धारा सीधी सरल मार्ग के कूलों में न समाती हुई चमत्कारपूर्ण वक्र कथनों के विस्तृत क्षेत्र में फैल जाती है। आध्यात्मिक के कारण वर्णन में, वर्णन-शैली में प्रकृता और चमत्कृति का ही जाता है, यह स्वाभाविक है। हमारे आलोच्य कवियों के काव्य में वर्तकार पारंगत - प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि भाव, गुण, रूप या क्रिया का उत्कर्ष प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इनकी रचनाओं में वर्तकारों का प्रयोग वर्तकारों के लिए नहीं होकर, सहृदयतापूर्वक आवश्यकता से प्रेरित होकर किया गया है। हमारे मवत कवि वर्तकारों के पटाटोप में नहीं पड़े। इनकी वर्तकार-योजना में रहस्य ही प्रकृति से सादात्म्य हो गया। यही कारण है कि जितने भी वर्तकार इनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, वे अत्यन्त स्पष्ट और गिने गिनाये हैं। आलवारों ने तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों ने उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि वर्तकारों के प्रति अपना विशेष प्रेम प्रकट किया है। अन्य वर्तकार भी इनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु प्रधानता इन्हीं वर्तकारों की है। कोमल-कान्त फावली के साथ अनुप्रास की पूर्ति स्वयमेव हो जाती है। अतः इन कवियों को अनुप्रास-वर्तकारों का जान-झुंझकर प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। उनका प्रयोग तो वर्णन के अन्तर्गत भाव की उर्ध्व के साथ अपने आप जा गया है। शब्दार्थकारों का प्रयोग इन कवियों के काव्य में अत्यन्त स्वाभाविक ही है। क्योंकि अनुप्रास द्वारा जहाँ एक ओर ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का विधान होता है, वहाँ दूसरी ओर उसी वातावरण की सृष्टि भी। हमारे कवियों के काव्य में शब्दार्थकारों की अपेक्षा

अर्थालंकार ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

### शब्दालंकार-

शब्दालंकार के अनेक सुन्दर उदाहरण बालवार्तों के और बालोच्च हिन्दी कवियों के काव्य में मिलते हैं। पहले बालवार-काव्य से कुछ शब्दालंकार नमूने के तौर पर नीचे प्रस्तुत करते हैं। तिरुमल्लि बालवार के निम्न लिखित पदों में अनुप्रास की बड़ा दृष्टव्य है :-

### अनुप्रास-

“ वादियान वानवर्धुम वण्टमाय वप्पारु  
वादियान वानवर्धुम वादियान वादि नी  
वादियान वान वाणार वन्त कालम नी उरैवी  
वादियान कालम निन्ने यावर काण वल्लरे । ” १

“ तन्नुल्ले तिरैल्लुम तंग वेण्टकंळ  
तन्नुल्ले तिरैल्लुन्नु वट्टुकिन्द तन्मपोल  
निन्नुल्ले पिरन्तिरन्नु निम्बुम तिरिफुम  
निन्नुल्ले वट्टुकिन्द नीर्म निन कण निन्दते । ” २

तिरुमल्लि बालवार की निम्नलिखित पंक्तियों में अनुप्रास की बड़ा देखिए-

“ नाशमान पाशम विट्टु नल्लेरी नौषकलुरित्त  
वाचम्पल्लु तण्णुलायमान वदरी वण्डितुमे ” ३

“ एण्णानि एण्णारन्त फुल्लिनानि  
कण्णानि कण्णार कण्णु कोण्टेन ” ४

१- तिरुच्चन्त विहचम - ८

२- वही १०

३- पेरिय तिरुमोली १-३८

४- वही २-५८



“ कण्ठयितुम पायीन कलतिर्ण काण्ठकं  
पण्णरुम वडिर्णक पण्णरुम वैकटु ” - कृतोत्तर  
( वृत्त्यानुप्रास )

“ पुल्लोम पतिप्पोम, पुल्लोम पतियोम  
कल्लोम मतिप्पोम, मतियोम कल्लोम ” - नम्मात्तर

पुनरुक्ति प्रकाश-

“ ऊ कितोरुम ऊ कितोरुम उयन्तं पैत्तु  
वौक्किम नान्णरं योत्तुम तांहु नावर ” -

वीष्ठा-

“ फलफले वामरण पेहम फलफले  
फलफले चोति वडिउ पण्णु रन्निह ” ४

( जालवार-काव्य में यमक, स्तेज आदि का बहुत कम प्रयोग हुआ है )

हिन्दी कृष्ण- काव्य में शब्दालंकार-

अनुप्रास-

(ब) “ हानि हान्य फानि डोक्त, धूरि धूर वी  
चलत फा, फा जाति फानि परस्पर कित्तात ”

० ० ०

१- पेरुमाळ तिरुमोली ४-४-

२- पेरिय तिरुवन्तादि २

३- पेरिय तिरुमोली ४-४-६

४- तिरुवाय मोली २-५-६

(का) " सुनत करुणा केन, उठे हरि कल रेन,  
नेनकी सेन गिरि तन निहार्यो

० ० ०

(इ) " गौपी गाई ग्याल गौधुत सब दुल बिसर्यो सुत करत समाज । "

० ० ०

(ई) " विलसत विपिन विलास विविध वर वारिज वदन विक्रम सचुपाये । "

- धुरदास

(अ) " कंदौ सुलद श्री बल्लभ चरन

बपल कमल हू ते कीमल कलिपल हरन । "

(आ) " तरिन तनया तट कसीतट निकट वृन्दावन बीधिन बहायी । "

(इ) " बक बफ बौर चिन्तामनि क्या व परति कही । "

- परमानन्ददास

" सेस मसि दिनस गनेस सुरेशह जाहि निरन्तर ध्यावैं ।

जाहि जनादि वर्तत बलपड बहैद जमेद सुवेद बतावैं ।

- रसतान

(अ) " कार कार सब नगर, डडी नम गुडी बनी इवि "

(आ) " सब रुखिमनि की कानर, नागर मेह नवीनी  
बसनहोर तैं डोरि विप्र बीधर कर दीनी । "

- नन्ददास

बीष्ठा-

(अ) " परम सनेहु बडावत पातनि खकि खकि बैठत चढि गोप "

(आ) " दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैक्या "

- परमानन्ददास

(ब) “ कौ सीज व्याकुल भया, मुनि फि फि बाणी हो । ”

(जा) “ राम नाम स पीबि मखा, राम नाम स पीबि ”

- पीरा

यस-

“ फुमनि सारंग स फरारि  
बापुहि सारंग नाम कहावे, सारंग बानी नारि ।  
तारै स कबीली सारंग, बंध सारंग उन्हीरि ,  
बंध सारंग करि सकल सारंग, बप्प सारंग विचारि ।  
वापर सारंग सुत शोभित है, ठाडी सारंग संभारि  
“ सुरदास ” प्रभु तुमहू सारंग की कबीली नारी । ”

- सुरदास

“ तिल भर संग तजत नहीं निखन गान करत मनमोहन जस की ।  
तिल तिल भोग स भवत परमानन्द सुख है यह स की । ”

- परमानन्ददास

इति-

“ ज्यों गज जानि मर हरि तुमहों बात विचारि ली । ”

( “हरि” शब्द का अर्थ कृष्ण और सिंह हैं ) -

- सुरदास

“ कुंती कोऊ हरि की मति व्यापत गौरी ”

- परमानन्ददास

व्याख्यान-

अर्थ को वर्तकृत करने में कवियों ने सादृश्यपूर्ण व्यंग्यों का

सर्वाधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का। इन कर्तकारों में जो अप्रस्तुत योजना की गई है, वह परंपरागत कमल, चन्द्र, मीन आदि उपमानों से समृद्ध है। साथ ही साथ उसमें कवियों द्वारा स्वप्रत्यक्षा सादृश्य को व्यक्त करने वाले अमिनव उपमानों का भी सम्यक् योग है। बालवार- काव्य तथा बालोच्च्य हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रयुक्त चार प्रमुख कर्तकारों के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं।

### उपमा-

### बालवार- काव्य में-

- १- कांचन बीच ललित मोती और रत्न के समान मोहन के पैरों की उंगलियाँ शोभित थीं<sup>१</sup>।
- २- कमल- फल पर पड़ी ओस की बूंदों के समान मोहन के मुँह पर फलीने की बूँद चमक रही है।
- ३- सूरज की किरणों पर निर्भर रहनेवाले कमल के समान कूद होकर झोड़ दिये जाने पर भी माता पर आश्रित रहनेवाले बच्चों के समान, अन्यत्र कोई सहारा नहीं पाकर फिर फिर बहाज के छैन पर जाने वाले पत्नी के समान मैं भी ( हे, मग-वान् । ) आप पर ही आश्रित हूँ ।<sup>२</sup>

( माछोपमा )

- 
- १- " सुसुप्तमणिषु तत्पुष्पवित्तु तले पेक्षापीति  
पुविस्तुमणिषण्णन पादकस -" पेरियाल्वार तिरुमोली १-२-२
  - २- " कम्पलप्योत्कृष्टि वणिक्कोल मुस विन्तिनारपील  
कम्पल मुत्तम् वियर्प्य - " - पेरियाल्वार तिरुमोली २-२-६
  - ३- " वरिचिन्ताल उन्नु ताय क्कट्टिदिनुम म्द्वलत्तन  
वरुत्त निन्नेय्युम कूलवियत्तु पील  
ल्लुम पोय करै काणात्तु ररिक्कल वाय मोप्पैयुम  
वक्कलिन कूपिरुम माप्पल्लं पोन्दैने " - पेरुमाल तिरुमोली ५-१ व ५

४-

मझरों द्वारा लाये जाने के बाद रहने वाली विलाफिनि ( फल  
विशेष ) के समान मेरा शरीर ही गया है।

### हिन्दी कृष्ण-काव्य में ( उपमा )

१-

“ देखो माघी की मित्राई  
बाई उधरि कनक कलई सी है निज गये वगाई ”

- ब्रह्मदास

२-

“ प्रकृति किट नयन बति बँवल । यह हवि पर उपमा एक  
धावत ।

धनुज देखि खैन बिमि डरफत । नाहिँ सकत उठिनि  
कहुलावत । ”

- ब्रह्मदास

३-

“ धन धन लाहिनी के वरन ।  
बति ही मृदुल सुगंध सीतल कमल के से वरन । ”

- वरमानन्ददास

४-

“ ले चले नागर नागर नवल तिया कौं ले ।  
मांसिल बांसिल धूरि धूरि, मधुका मधु जैसे । ”

- नन्ददास

५-

“ सखि हास परकतमणि हवीसी तुम जु कवन गत ”  
“ श्रीफल उरु कवन सी देखी, कटि केहरि गुणसिंधु फफोरी ।  
“ बेनी मुजंग चन्द्रसन वदनी, कदलि जय जलवर गति चोरी ”

- हितहरिश्च

६-

“ पानाँ ज्यु पीली फड़ी रे  
“ जल बिन कँवल चन्द बिन खनी, थे विण जीवन जाय ”

- मीर

१- “ उलंकुष्ट विलाफिनि पील उल भेलियमुहन्तु -

- नाजियार तिरुमोली = : ६



उत्प्रेक्षा-बाल्यार- काव्य में उत्प्रेक्षा

- १- उसकी घुंघराही काती लटें उसके प्रवाल सम हीठों पर लज  
लग कर जलन हो रही हैं, मानों ताल कमल का मधु- पान  
करने वाले मोंरि हों ।
- २- बावस के खेत में उगे पाँच हवा के फौफों से इस प्रकार हिल  
रहे हैं, मानों वे खेत में भरे पानी में तरनेवाले हों के लिए  
चामर चला रहे हों ।
- ३- विरहिणी नायिका की बाँहों से कुधारा स्तनों के बीच  
से बह रही है, मानों दो फसलों के बीच कोई सरिता बह  
रही हो ।
- ४- फसत की निर्झरणी दूर से इस प्रकार दौल फड़ती है, मानों  
धसत वर्ण की ध्वजा हवा में उड़ रही हो ।
- ५- कृष्ण के मुरली नाद सुनकर पल्लवण से फटे थे मानों गीता-  
पूत- बाल में फँस गये हों ।

१- वैकुण्ठपूजित त्रिगुणगुण वष्टेपीत

पैकिन्न वन्तु उन फल वाय मोदप्य" - परियालवार तिरुमोली १-८-२

२- " वन्नमाक्तररविन्दमलियि पंडियोदुम

इन्नितमर वेन्नेल्लार क्वरिक्कुल वीचु --- । " परिय तिरुमोली ३-१-७

३- " मण मादर विष्वाय वल्लुप्पुलम्पी

मुल मल पैल निन्दुम वारुक्काय मल्लकण्णनीर । " तिरुविरुचम, ५२

४- " विल्लुत्तिरुवि पैल निन्दु विचुम्पिल

वेण्णुकिर कोडिये विरिन्नु वलन्तरु मणि नीर की--- । "

- परिय तिरुमोली १-४-३

५- परियालवार तिरुमोली ३-४-६

### हिन्दी कृष्ण-काव्य में उत्प्रेक्षा-

- १- "रतन बटित फा सुमगपांवरी, नूपुर ध्वनि कत परम स्वास ।  
मानहुं चरणकमलदल लोभी निकटहि बैठे बालमरास ।"
- २- "फेरि जाइ लिहाट हो कि सेंदुर को विंदु ।  
कत ते ता मन मृग जनु बैठौ रथ बन्दु ॥"
- सूरदास
- ३- "नवला निकसि तीर जब नीर चुवत वर चीर ।  
जखन रोवत कसन जनु, तन विहुरन की पीर ।"
- नन्ददास
- ४- "बहून जघर धूत मधुर मुरलिका तैसिए चंदन तिलक निकाहं ।  
मनो मितिया दिन उदित बर्धसि निकसि जलद में देत  
दिलाहं ।"
- परमानन्ददास
- ५- "कौ कौ बाहु दै कीर जोर रूप रासि ,  
मनो लमात बहमि रही सरस कनक बेलि ॥"
- हितहरिवंश

### रूप-

( बालमार-काव्य में रूप )

- १- "बिजली-ध्वजा लेकर वज्र-ध्वनि निकालकर मेघ-रथ  
पर व्योम-बोधी में वह जाया ।"

- १- "रलित कोण्डु मित्तु कोदि रहसु केव  
तोसित कोण्डु तान मुलंकि तोन्दुम -- ।"

- मून्दाप तिरुवन्तादि , ८६

- २-           “ बाँधुवों के सरोवर में नीन स्त्री नेत्र तड़प रहे हैं। ”  
 ३-           “ स्त्रियों की प्रकृति स्त्री धनुष से नेत्र स्त्री बाण पुरुषों  
               के हृदय पर लगते हैं। ”  
 ४-           “ एक जनमान बाधुन्तु बाधा, मेरी हरिणी की से गया । ”  
 ५-           “ नेत्र स्त्री बाणों से उसने ( नायिका ने ) पुनः वाक्य  
               कर दिया । ”

( हिन्दी कृष्ण-काव्य में रूप- )

- १-           “ अब मैं नाक्यो बहुत गोपाल ।  
               काम क्रोध को पहिरि कंठ विजय की पाल ।  
               महामोह को नेपुर बाधत निन्दा शब्द रसाल ।  
               परम भये मन भयो पराधन चलत कृष्णगत बाल ।

- पुराण

- २-           “ पाध्वं तु ने हटकी गाह ।

- १- चेतनीचंदु कयल मिलिन्तालीप्य वेयस्विकण  
               बल नीर तुल्य बलमरुकिन्दु ----- । ”

- तिरुविहवम, २

- २- बाध्वरे मरुमोलियार मुकु शरपु  
               चित्त विलकी मरुचिरे ----- । ”

- परिय तिरुमोली ४-४-५

- ३- करियान बोरु काले वन्तु सन तन  
               मरुमानिनेप्योववेन्दु ----- । ”

- वही ३-७-१

- ४- एम्माविये ऊहुरुवन्तुकिन्दु वैचिल्लवाल मुकुदीर ।

- तिरुविहवम, ७५

निशि बाहर यह मरमति इत उत कहा गही नहीं जाइ ।  
 कुरुक्षि बहुत जवात नाहीं निगम हुन बल लाइ । ”

- बुरदास

- ३- “ सीहें सीस सुहावनो दिन डूले तेरे  
 मणि मोतिन को सेहरा साँवे बसियो मन भरे ॥  
 मुल पुन्याँ को बंदा है मुक्ताहल तारे ।  
 उनके नयन बहोर हैं सब देखन हारे ।

० ० ०

नंदलाल को सेहरा परमानन्द प्रभु गावो । ”

- परमानन्ददास

- ४- “ माँसमंद अपार देहां काम बोली धार ।  
 लाल गिरिधर तरण तारण वेग करव्यो पार । ”

- मोरा

अतिशयोक्ति-

( बालवार-काव्य में )

- १- “ हे कृष्ण ! तुम्हारे जन्म लेने के पश्चात् इस घर में मैं भी, मकलन,  
 वही के दर्शन नहीं किये हैं । ”  
 २- “ हे, यशोदा ! तुम्हारा सुत ये सब करतूतें करके हवा से भी तेज़ चढ़कर  
 तुम्हारे यहाँ पहुँचकर झिप गया है । ”

- १- करन्त नपांलुम तयिरुम कट्टेन्तु उरि पेत्त वेत्त वेण्णैय  
 पिरन्तलुवे मुलत्तु पेदरियेन रम्पिराने ।

- पेरियाल्वार तिरुमोली २-४-७

- २- काट्टिनुम कडियनाय बोडो कम्पुनकु --- ।

- वही २-१०-१

- ३- “ सुते बाँसों के टकराने से फटा होने वाली बाग से सारा बाकास  
रखितम हो गया । ”
- ४- “ थिली बाँर बची ( तता विशेष ) से भी पतली कपवाली नारिकी<sup>२</sup> ।
- ५- “ सुन्दर<sup>१</sup> माधवी पुष्प<sup>२</sup> की लताएँ इतनी ऊँची बढ़ी हुई थीं कि वे भयों<sup>३</sup>  
की स्पर्श कर रही हैं ।

हिन्दी कृष्ण-काव्य में वृत्तियौचित-

- १- “ अद्भुत एक अनुपम बाग ।  
जुगल कमल पर गज वर झीछत तापर सिंह करत अनुराग ।  
हरि पर सखर, सर पर गिरि वर गिरि पर फूलै कमल पराग । ”  
( रूपकातिशयोचित )

बाँर

- २- “ बाँरे माघ, बाँर सब सोभा ,  
कहाँ सली कैसे उर जानी ? ”  
( भेदकातिशयोचित )

- सुरदास

- ३- “ कमल नयन के एक रोम पर वारों कोटि मनोज । ”  
- परमानन्ददास

- ४- “ नव, नारंग कनक हीरावलि विहुम सरस जलजमिन गोरी ।  
पूरित रस पीयूष जगल घट कमल कदलि लंजन की जोरी ।

- १- कलतर वैलीलें पोय तेज तियाल विण विवकुम । ”

- परिय तिरुमोली १-७-८

- २- “ मिन्नैयुम वचियैयुम वेन्दित्तुम वडियाल -।

- वही ३-७-७

- ३- “ मणकोल माधवी मेळुकोटगी विवुम्पुर  
निमिन्तै मुकिल प्पुडो -----। ”

- परिय तिरुमोली १-२-६



“ कनक लता सी बया न विराजत बरुभगी हयाम तमासही । ”

“ रवि शशि बँक भजन किये अपवस बद्भुत रंगनि कृष्ण बनाउं । ”

- हित हरिश्च

५- “ किधौं नीलमनि किंकिनि माहीं, रोमावलि तिहि जोति की झाँही ।  
किधौं लटो कटि दिसि करतारा, रोकधार वनु धर्यो बधारा ॥

- नन्ददास

बन्धु वर्तकार-

( बालवार- काव्य में )

प्रतीप-

“ फासी कमर वाली रमणी की मुस- काँति को देखकर चन्द्र  
को स्वयं सज्जित होना पडा । ”

( उपमान में उपमेय से हीनता बतायी गई है, अतः प्रतीप  
वर्तकार है )

सन्देश-

“ सार्यकाल वन से बन्धु गीप- बालकों के साथ शोर मचाई कर  
बाने वाले कृष्ण को देखकर गोपियाँ कहती हैं- “ बया  
गीप - बालक जा रहे हैं, या भेषाण जा रहे हैं ? ”

प्रातिमान-

“ लाल- वर्णन के बसोक पुष्प को बाग सम्भरकर प्रभर भस्मीत  
हो गये । काले बादलों को हाथी सम्भरकर साँप भस्मीत हो

१- “ तुदि जँयार मुकमल जोति तन्नाल

तिक्ल मुलम पनि फँवकुम बलकार ।

- परिय तिरुमोली ३-४-६

२- गोविन्दन बरुकिन्द कूटम कपट

मँकीलो बरुकिन्द तेन्दु बोली --- ।

- परियालवार तिरुमोली ३-४-९

गये<sup>१</sup>।

व्यतिरेक -

“ नायक ( कृष्ण ) का सौन्दर्य चित्र पर लंकित कमल के समान था<sup>२</sup>। ” यहाँ कवि का तात्पर्य है कि साधारण कमल मुक्त जाता है। चित्र पर लंकित कमल का सौन्दर्य स्थाई होता है। अतः उपमेय का उपमान से बढ़कर वर्णन है।

स्मरण-

“ कुवले ( पुष्प विशेष ) पुष्प को देखकर नायिका के नेत्रों का तथा क्षुमुदिनी को देखकर नायिका के मुल का स्मरण ( नायक को ) आता है। ”

व्याप स्तुति-

“ सत्य की लीज में शरीर को तपाकर , पैंन्त्रियों को बल में कर मयानक वन में तप करनेवाले सुस्त लीज हैं<sup>४</sup> । ”

१- “ तक्षकपुरे रलिल नौवकी पैत वष्टकल  
ररियेन वेरु वरु --- करिय मासुफिल पटलकल  
किहन्तै मुलफिट कलिरिन्दु पेरिय मासुणाय --- । ”

- पेरिय तिरुमोली १-२-६ व १०

२- “ स्तुतिय चैन्तामरीयन्न कण्णुम ---  
वलकियताम झरार कोल --- । ”

- वही २-८-७

३- “ अव्वाय्वाल मेहुकण कुवले काट्ट  
अरविन्दम मुलम काट्ट वरुके आम्पल  
वैव्वायिन तिरल काट्टुम --- । ”

- वही ३-४-३

४- “ मेप्पोरुल पीकविट्टु मेडमै मि वुणन्तु  
आम्परिवरिन्तु कोण्टु रेम्पुलकटवकी  
काम्परवै चिरैनु उन कंठवैरिन्तु वालुम  
वोम्पर उकविपोलुम --- । - तिरुमोली, ३८

समुच्चय वर्तकार-

“ भो हृदय में ज्ञान के दीपक को जलाने वाले भगवान् को मैं फँसा दिया हूँ। वह भो हृदय में प्रवेश कर लड़ा हो गया, बैठ गया और छिट गया। ” कवि का तात्पर्य है कि भगवान् भक्त के हृदय में वास करने लगा। अनेक श्रियार्थ एक साथ घटित होती हैं, एक कार्य की सिद्धि के लिए। अतः श्रिया समुच्चय वर्तकार है।

उत्प्रेष-

“ तू गीत में मधुर नाद है, तू दूध में घी है, तू जाफरा में ज्योति है। ” ( यहाँ पर एक ही पुरुष द्वारा भगवान् के अनेक रूपों का विषय भेद से कथन है। अतः उत्प्रेष वर्तकार है। )

अनन्वय-

“ भगवान् के समान व्यक्ति भगवान् ही हैं। ” ( भगवान् की तुलना और किसी से नहीं हो सकती। ) उपमेय की समता के लिए उपमेय ही उचित बतायी गयी है। उपमेय से अधिक उत्कर्ष किसी अन्य प्रसिद्ध उपमान में नहीं है। अतः अनन्वय वर्तकार है।

१-“ उरुणर्विन्नुम वीसिकोस वित्तकेदी

कैसवने नाडी वसिष्ठुसिनेन भवनवे

निन्दान, इरुन्तान, किरुन्तान एन्नेवतु । ” मुन्द्दाम तिरुवन्तादि ६४

२-“ पण्णिर्नप्यण्णल निन्द, पातुल नेय्यिर्न

विण्णिर्न व वित्तुम चुडर वीतिथि — । ” - पेरिय तिरुमोली ७-१०-६

३-“ ताने तनवकु उवमन ” - मुन्द्दाम तिरुवन्तादि ३८

विषम वर्तकार-

“ नायिका को शीतल चाँदनी भी जलाती है। शीतल समीरण भी अग्नि से मयानक है। ” ( जहाँ पर कार्य कारण हैं वैषम्य ही, कार्य का फल विपरीत ही ज़्यादा परस्पर वैधर्म्य वाली वस्तुओं का एक साथ संयोग ही वहाँ विषम वर्तकार होता है। )

लोकोचित-

“ नदी के किनारे लहे फेड़ की तरह मैं घबराता हूँ । ”  
( नदी के किनारे उगे फेड़ का नाश किसी भी समय हो सकता है। इस लोकोचित के प्रयोग के कारण लोकोचित वर्तकार हुआ । )

वर्ण्य वर्तकार-

( हिन्दी कृष्ण-मणित-काव्य में )

व्यतिरेक-

(वा) “ देखि रो हरि के बंस नैन ।  
राजिवदत, इन्दीवर, सतदल, कमल, कलसय जाति ।  
निशि मुद्रित प्रातःहिर बिगसत, रे बिगसत दिन- राति ॥ ”

- सूरदास

(बा) “ नैननि पर वारी कोटिक संजन ।  
संजन मीन मृग मय भेटत कहा कहौ नैनन की वारी ?  
तिलक कुँहल चन्द्रनि लगाय ।

- हितहरिवंश

प्रतीप-

- (ब)      “ सुन्दर वदन कमल दल लीचन देहत बंद लजाया है। ”  
 “ गमन करत तब हंस लजावत वरक धरक धुनि न्यारी । ”  
 - परमानन्ददास
- (बा)      “ निरुपम राधा नैन तुम्हारे ।  
 लखन हवि लखन मद गजन मीन पानि दुरि हारे ।  
 निशि शशि डरत फणकूल सुकुवत बधि कनि मृगज विहारे । ”  
 - हरिराम व्यास

दृष्टान्त-

- “ नीलाम्बर स्यामल तनु की हवि तुम हवि पीत सुवास ।  
 धन भीतरवामिनी प्रकासत वामिनि धन बहु पास । ”  
 - सुरदास
- “ मेरी माई माई सौं धन मान्यौं ।  
 अब बर्यौं मित्र होय मेरी सजनी मिल्यौं दूध लस पान्यौं । ”  
 - परमानन्ददास

सन्देश-

- “ कंधर के घर- मेरु सती री ।  
 की रुक सीफि, की का फाति, की मयूर की पीठ पसीरी ।  
 की सुरदास, किधौं वनमाला, तड़ित किधौं फट पीत ।  
 किधौं मन्द गरुनि जलधर की का नूपुर लनीत ॥  
 की जलधर, की स्याम सुमग तन हंस मोर ते सोचति ।  
 चूर स्याम रस परी राक्षिा उर्मनि उर्मनि रस मोचति ॥ ”  
 - सुरदास



विभावना-

- (ब)      \*\* भेरे बेना ई बति ढीठ ।  
 मैं कृतकानि किये राखतिही ये हठी होत कसीठ ॥  
 यपपि वे उत कृखल समर कल ऐ क्त बति क्त हीठ ।  
 तदपि निदरि पट जात परक मैं जूफत देत न पीठ ॥ \*\*
- सुरदास
- (बा)      \*\* बिनु पूजाण मृणित तनु गौरी \*\*
- हितहरिश्च

काव्य-लिख

- (ब)      \*\* भवनन कृष्ण बराऊ राखे सर ते ते दुई जोर ।  
 चल दल पत्र प्रवाल म्रम सो कौंधत कपित जोर ॥ \*\*
- परमानन्ददास
- (बा)      \*\* जब ते प्रीति स्याम सौं कीन्हीं ।  
 ता दिन ते भेरे क्त नैननि मैकुहु नीद न सीन्हीं ॥ \*\*
- सुरदास
- (ड)      \*\* बाज सम्हारत नाखित गौरी ।  
 फुली फिरत मव करनी ज्यों सुरत समुद्र फफोरी ॥ \*\*
- हितहरिश्च

विषम-

- (ब)      \*\* ताही को छसत जाफो हियी है उज्यारी । \*\*
- सुरदास

(वा) "तक्की प्रीति वक्की रुखाई फिरि पाई झूठ नहिं बात ।"

- परमानन्ददास

(इ) "जाहि बिर्चि उमापति नाथे, तापि तैं कन फूल बिनाथे ।"

- हितहरिबंस

### स्मरण-

(व) "सुन सुत स कथा कहैं प्यारी ।

० ० ०

रावन हन क्यूँ सीता को सुनि करुनामय नहिं बिहारी ।

सूर स्याम कहि उठे चाप कई लखिमन देहु जननि मय मारी ॥"

- सूरदास

(वा) "पून्हों बंद देखि मृग नैनी माघी को मुख सुरति करे ।"

- परमानन्ददास

### व्युत्पत्ति-

(व) "उपजि विरह दुल दवा क्या उर ताप तये हैं।

कोउ कोउ हार के मोतिया, तबि तबि लाल भये हैं।"

- नन्ददास

(वा) "गिणतार् गिणतार् कस गया, रेतार् बागसिया की सारी ।"

- मीरा

### उदाहरण-

(व) "मेरी मन पिय जीव कसत है पिय जिय मी दे नाहिं ।

ज्यों वकीर बंदा को निरखत झुठत दृष्टि न जाइ ।"

- सूरदास

(वा) "तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।"

- मीरा

(इ) “ निरुक्त नेह मरी वसियां सो ज्यों निशिबंद चकोरी । ”

- परमानन्ददास

लोकोक्ति-

(व) “ माधों सों कत तोरिए ।

कीबें प्रीति स्याम सुन्दर सों बैठे सिंह न रोरिए । ”

- परमानन्ददास

(वा) “ मौ जागै को होहरा जीत्यो चाहै मौय ।

बाँलाती को नीर कहेरी कैसे फिरि हैं छाड़ ॥ ”

- सुरदास

उक्ति-चमत्कार-

उक्ति की विविधा, जम्मा करता बहुत से वर्तकारों के मूल में निहित रहती है। अतः उक्ति-चमत्कार प्रायः उपमादि वर्तकारों के सुनिश्चित रूप में सामने आता है। इस प्रकार की सामग्री 'वर्तकार-विधान' के अन्तर्गत पीछे दी जा चुकी है। यहाँ उन कुछ उदाहरणों को लिया गया है, जिनमें उक्ति का सहज एवं व्यापक स्वरूप अद्भुत रहा है। कवि की अपनी कल्पना से उद्भूत उक्तियों के अलावा कुछ हद उक्तियाँ भी मिलती हैं। बालवार्त्ता के तथा बालीय हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में उपलब्ध कुछ चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

१- “ प्रिय वियोग में नायिका इतनी दुबली और पतली हो गयी कि उसके हाथ के रंजन सूर्य गिर पड़ते हैं। इस पर नायिका कहती है- “ मेरे इन नालायक रंजनों पर मोहित होकर नायक को इनकी भीत मारने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है ? ”

२- “ हे, भगवान् । तुम सब कुछ जानते हो । किन्तु मेरा

१- “ पिज्वकुरैयाकी रन्नुहेंय पैयलें मैल

इज्युहेंयोल होरुवे पौदारो ? ”

- नाजियार तिरुमीली ११: ४

कष्ट तुम्हें पापुम क्यों नहीं है ?<sup>१</sup> "

३- " हे, भगवान् । सारे जगत् में तुम व्याप्त हो। परन्तु तुमको मैं अपने भीतर ही बन्द कर रखा हूँ<sup>२</sup> । "

४- यशोदा कृष्ण से कहती हैं- " मैं जान चुकी हूँ तुम्हारी सारी कर्तव्य<sup>३</sup> । ऐसे कार्य तुमने किये हैं जो मुँह से कहे नहीं जा सकते । "

५- कृष्ण गोपियों की साहियों को लेकर पेड़ पर चढ़ गये । स्नान करने वाली गोपियो- साहियों को लोढ़ाने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं- " हे कृष्ण । हम तुम्हारी बात मान गयीं । बिना किसी के देखे ही तुम्हारी इच्छा की सब कुछ देंगी और तुम्हारे साथ चल देंगी । अब वस्त्र दे दो । "

६- " उस ( श्री रंगम् ) नगर में तीसरे भी वेद- पाठ करते हैं<sup>४</sup> । "

१- नल्लार अरिवीर तीयार अरिवीर नमक्कु इच्चुत्तकचित्त  
सल्लाम अरिवीर अरिवीर इन्तुवरीरे । "

- पेरिय तिरुमोली ४-६-६

२- पुवियुम उरुविचुम्पुम निन्नक्त नीयन  
वैविवली पुण्णु एन्नुल्लाय- वाविविन्दी  
यान पेरिय नो पेरियै सम्पत्तैयारिवार ? "

- पेरिय तिरुवन्तादि , ७५

३- तोलात्तिट्ट अवरोहु तित्तु नो  
चोल्सप्पटालन वैवताय । " - पेरियालवार तिरुमोली ४-१-८

४- नो वैटिकील्लाम तरुवोम

पल्लारुम काणामे पोवीम फूटे पणित्तल्लाय - नाच्चियार तिरुमोली ३:३

५- वैव्वाय किलि नान मर पाहु तिल्लै - पेरिय तिरुमोली ३-२-६

७-

गोपियां यहीदा से कृष्ण की करतूतों की शिकायतें करने के पश्चात् कहती हैं कि " क्या यही विधा (शिखा ) उसने ( कृष्ण ने ) सीखी थी ? " "

८-

बाण्डाल अपनी विरह-वैदना को व्यक्त करने के लिए एक सुन्दर उदाहरण देती हैं। पीतल जथा ताँबे का बर्तन बनाने के पूर्व उसके वाकार में मोम की फैलाकर फिर उसके ऊपर दोनों तरफ मिट्टी पीपी जाती है। द्रवित पीतल या ताँबे को मोम की जगह भेजा जाता है। मिट्टी के अन्दर ही अंदर मोम पिघलती है और उसके स्थान को पीतल या ताँबा लेता है और अपेक्षित वाकार का बर्तन बन जाता है। बाण्डाल ने तर्क इतना ही कहा है कि " अन्दर ही अन्दर पिघलने वाली मोम की तरह मेरी भी यही दशा है। " चमत्कारपूर्ण इस उक्ति से सारी बात समझ में आ जाती है। बाण्डाल की आन्तरिक वैदना का परिचय मिलता है।

इस प्रकार की अनेक चमत्कारपूर्ण उक्तियां बाल-वारां के काव्य में ढूंढने पर मिल जाती हैं। हिन्दी में सुरदास जी के काव्य में चमत्कारपूर्ण उक्तियों को भरमार है। सुर की निम्नलिखित उक्तियों में चमत्कार-पूर्ण कल्पना, हास्यप्रियता, और व्यंग्य देखिए-

१- " कण्टिरी वैन्दुबुकील्ल

कण्णपिरान क्कल्लित्तानि । "

- पेरियाल्वार तिरुमोली २-६-४

४- " ----- मणपुरम पुचि उत्ताय निन्दु(

पेल्लुद्दिनार पील -----। "

- नाच्चियार तिरुमोली १० : ८



- १- " उर में माखन चोर नहें ।  
कब कैतहु निरखत नाहिं ऊँची, तिरहे हूँ बु नहें ॥ "
- २- " देखियत कालिन्दी बतिकारी ।  
कस्यो पथिक जाय उन हरि सों भई विरह बुर जारी ॥ "
- ३- " नैन सजल कागज बति कोमल कर अंगुरी बति ताती ।  
परतें जरी विलोके मोने दुहुं मांति दुल माती ॥ "
- ४- " निरगुन कौन देश की बासी ।  
मज्जुकर संति समुझाई, संहि दे बूझति सांच न हांसी ॥  
को है जनक, जती की कसियत, कौन नारी की दासी ।  
कैसी वरन भस है कैसी, कैहि रस में बमिलाणी ॥ "
- ५- " ऊँची जीग कहा है कोजतु ?  
जीडियत है कि डासियत है किर्या, किर्या स्यत है, किर्या पीकत है  
को कहु मली तिलाना सुन्दर को कहु धूलन नीकी ।  
छारी नन्द नन्दन जो कसियत जीवन जीवन जो की ॥ "
- ६- " फिया बिनु नागिन कारी राति ।  
कबहुं कामिबनि उवति बुनैया डसि उलटी है जाति ॥ "
- ७- " मैया में नहीं माखन लायी ।  
स्थाल परें ये सत्ता चढ़े मिलि मेरे मुँह लपटायी ॥  
०                      ०                      ०  
मुल दधि पौंहि कहत नन्दनन्दन दीना पोठि दुरायी ॥ "

अष्टम अध्याय

मूल्यांकन और उपसंहार

### मूल्यांकन और उपसंहार

#### वाल्मीकि-साहित्य का मूल्यांकन-

वाल्मीकी का 'प्रबन्धम्' कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण ग्रन्थ ठहरता है। उसका महत्व मयित- बान्दीलन के मूल ग्रन्थ के रूप में ही नहीं, बल्कि तमिल- साहित्य के गौरव- ग्रन्थ के रूप में भी वह एक महान् रचना है। धर्म, साहित्य, समाज, कला आदि पर उसका प्रभाव बहुमुखी है। तमिल में ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है, जिसने 'प्रबन्धम्' के समान उतना व्यापक प्रभाव डाला हो। वास्तव में 'प्रबन्धम्' भारतीय मयित- साहित्य की अमूल्य निधि है। इस महान् ग्रन्थ का कई दृष्टिकोणों से मूल्यांकन प्रस्तुत करने की चेष्टा आगे के पृष्ठों में की जाती है।

#### मयित- बान्दीलन तथा वाल्मीकि-

'प्रबन्धम्' का सर्वाधिक महत्व भारतीय मयित- बान्दीलन के मूल- ग्रन्थ के रूप में ही है। वाल्मीकि भक्तों ने तमिल- प्रदेश में ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक मयित की जो प्रबल धारा बहाई थी, वह बाद की शताब्दियों में उत्तर की ओर प्रवाहित हुई। हम बिना चुके हैं कि ईसा की चौथी- पाँचवीं शताब्दियों में तमिल- प्रदेश की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने ही वैष्णव भक्त वाल्मीकी तथा शैव भक्त नायनमारी को जन्म दिया था। जब जैन और बौद्धों का आचरण- पथ गिरने लगा और उन लोगों ने राज्याश्रय का दुरुपयोग कर शैव और वैष्णव धर्मों पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया, तब वैदिक धर्म को नयी स्फूर्ति प्रदान कर उसका पुनरुत्थान करने की परमा- वश्यकता आ पड़ी। ईसा आतावरण उत्पन्न हुआ, जिसमें बौद्धों और जैनों के

---

१- प्रथम अध्याय में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

जाचार- विचारों से तंग बानेवाली जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसमें सब समान रूप से वात्सल्य- शान्ति प्राप्त कर सकें और जाचरण- पता भी ऊंचा रह सके और वैदिक धर्म को जो अब तक यज्ञादि कठिन नियमों को फँसे जाया है, सरल बनाकर मुक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व- साधारण की प्राप्ति बनाने के लिए हिन्दू- धर्म में सुधारकों की आवश्यकता हुई। युग की इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही बाल्मिक और नायकमार अवतरित हुए। बौद्ध और जैन नास्तिक धर्मों की तुलना में उन्होंने भगवान् की सत्ता, उदारता और दयाव्रता का प्रचार किया। छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी के दीर्घ काल में इन वैष्णव बाल्मिकों और शैव नायकमारों ने तमिल-प्रदेश में भक्ति की जो पावन परम्परा प्रवाहित की थी, उसकी तरह तरंगों में तमिल-प्रदेश की समस्त जनता मग्न और अवगाहन कर शान्ति प्राप्त कर सकी।

वैदिक भक्ति के स्वरूप में युग की मार्ग के अनुसार आवश्यक परिवर्तन कर उसे सबके लिए सुलभ और जाकर्णक बनाने का अधिक श्रेय बाल्मिक भक्तों को ही है। जब भारतीय भक्ति- साहित्य में वैष्णव भक्ति का जो स्वल्प दृष्टि- गोचर होता है, वह बहुत कुछ बाल्मिकों की देन है। वेद, गीता आदि से विचार ग्रहण कर बाल्मिकों ने ( संस्कृत के को छोड़कर ) जन- साधारण की भाषा ( लोक- भाषा ) तमिल में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। बाल्मिकों के मधुर शब्दों में तमिल शैव पद्यों ने भक्तों को बहुत ही जाकर्णित किया। बाल्मिक भक्तों ने जाति- भेद को मिटाने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया। भक्ति के क्षेत्र में जाति-भेद को न मानने वाले बाल्मिक भक्तों के उच्च वाद्यों ने जनता पर अमिट प्रभाव डाला। इस कारण निम्न जातियों का जो सामाजिक उद्धार संभव हो सका, वह भारत भूमि में निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व रखता है।

---

१- "..... the social uplift of the lower classes to which it has led is of great value in the History of India." "Outlines of Indian Philosophy." Prof. Kuriyanna, page 413

बालगारों के भक्त-जीवन की जनता के सम्मुख उच्च कोटि के वापस प्रस्तुत करने वाले थे। बालगारों के "प्रबन्धम्" ने विशेष रूप से जिन भक्ति-तत्त्वों पर जोर दिया है, वे हैं- भक्ति का सर्वोपरि महत्व, नाम-महिमा, स्तुति, शरणागति, गुरु-महिमा, सत्संग और वैराग्य। भक्ति-बान्दीजन के विशिष्ट संदर्भ में "प्रबन्धम्" के इन भक्ति-तत्त्वों का जो महत्व, उसे बताने की आवश्यकता नहीं है। बालगारों ने भक्ति में "प्रपत्ति" कक्षा शरणागति तत्त्व पर विशेष जोर दिया था। फलस्वरूप परवर्ती भक्ति-संप्रदायों में इस शरणागति तत्त्व को विशेष महत्व मिला। समूचे दक्षिण भारत में भक्तिमय वातावरण उत्पन्न करने में तथा भक्ति-बान्दीजन की जन-बान्दीजन का व्यापक रूप प्रदान करने में बालगार भक्तों का ही विशेष हाथ रहा है, जिसको लक्ष्य करके ही श्रीमद्भागवत में कहा गया है-  
 "उत्पन्ना प्रविष्टे सार्धं" <sup>2</sup> ।

### "प्रबन्धम्" का व्यापक प्रभाव-

#### (क) धार्मिक और सामाजिक जीवन पर "प्रबन्धम्" का प्रभाव-

बालगार भक्तों के भक्ति-साहित्य ने जनता के धार्मिक जीवन पर अतुल्य प्रभाव डाला था। पाँचवीं-छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल तमिल-प्रदेश के धार्मिक जीवन के इतिहास में अत्यधिक महत्व रखता है। वैष्णव भक्त बालगारों ने तथा सैल भक्त नायनगारों इस काल में समस्त तमिल-प्रदेश में घूम घूम कर भक्ति-प्रचार किया। जनता में धार्मिक जागरूकता को उत्पन्न करने में बालगार भक्तों के भक्तिमय गीतों का विशेष हाथ रहा है।

भक्ति-बान्दीजन के फलस्वरूप तमिल-प्रदेश में जन्मित

१- इन भक्ति-तत्त्वों का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

२- श्रीमद्भागवत, माहात्म्य, अध्याय १ श्लोक ४८



मन्दिर निर्मित हुए। बड़ी बड़ी संस्था में भक्तगण मन्दिरों के दर्शन करने गये और मन्दिरों में पूजा, उत्सवादि होने लगे। भक्तगण बालवारों के भक्तिमय फलों को गा- गाकर आत्मविमोह हुए। तमिल-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण बाल- वारों के समय तक ही बना रहा हो, यह बात नहीं है। बालवारों ने भक्ति का जो बीज बोया था, वह उगकर बड़ा वृद्ध बन गया और उस भक्ति- वृद्ध की सीख छाया में बालवारों के पश्चात् भी अनेक शताब्दियों तक तमिल जनता ने शान्ति का अनुभव किया।

नवीं शती के पश्चात् ही तमिल- जनता ने बालवार - साहित्य के वास्तविक महत्व को पूर्ण रूप में जाना। विचारक बालवार- साहित्य- सागर में गीता लगाकर" बहुल्य विचार- रत्नों को लोभ निकालने लगे। "प्रबन्धम्" पर अनेकानेक टीकाएँ निकलीं। तमिल और संस्कृत में अनेक भाष्य निकले। बाल- वारों की स्तुति में सैकड़ों पुस्तकें लिखी गयीं। जनता की दृष्टि में "प्रबन्धम्" वेदों से भी अधिक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण दोष फटा। फलस्वरूप मन्दिरों में बाल- वार- फलों के गायन का विशेष प्रबन्ध किया गया और इस प्रकार बालवार- फलों का गायन जनता के धार्मिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया। दक्षिण के मन्दिरों में बालवारों के फलों के गायन का प्रबन्ध कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। "प्रबन्धम्" के प्रसिद्ध टीकाकार श्री पेरियान्जान पिल्लै ने अपने ग्रन्थ "कलियम बरुटपाट्टु" में एक स्थान पर लिखा है कि तिरुमूरी बालवार ने नम्पालवार की "तिरुवायमोली" को वेद के समकक्ष मानकर श्रीरंगम के मन्दिर में उसके गायन का प्रबन्ध करा देने की प्रार्थना श्री रंगनाथ भगवान् से की थी। विदित होता है कि तिरुमूरी बालवार (अन्तिम बालवार) ने अपने पूर्व भक्ताचार्य नम्पालवार के प्रति बड़ा बड़ा- भाव दिखाया था और उनकी रचना "तिरुवाय- मोली" को वेद के समकक्ष घोषित किया था। नम्पालवार कृत "तिरुवायमोली"

---

१- "प्रबन्धम्" पर लिखित भाष्यों का विस्तृत विवरण परिशिष्ट -३ में दिया गया है। देखें।

२- "कलियम बरुटपाट्टु" - पृ० ५

के वेद के समान माने जाने के विषय में और भी प्रमाण मिलते हैं। मधुर कवि वालुवार ने लिखा है कि गुरु ( नम्माळवार ) ने महान् वेदों के रहस्य को अपने ग्रन्थ में भर दिया है। वेदों के गूढ़ से गूढ़ अर्थों का उद्घाटन गुरु द्वारा ही हुआ। श्रीनाथमुनि ने भी लिखा है कि द्राविड़-वेद-सागर के सामने मैं नतमस्तक हूँ। अन्य परवर्ती आचार्यों के कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि "तिरुवायमोली" का वर्ण्य विषय वेद-सागर ही सम्पन्न गया था और वेदों की ही धार्मिक मान्यता उसे प्राप्त थी।

जनता के धार्मिक जीवन में वेद को जो स्थान प्राप्त था, वह प्रबन्धम् ( तमिल वेद ) को प्राप्त हुआ। जिन अवसरों पर वेद-पंक्तों का पठन होता था, उन सभी अवसरों पर प्रबन्धम् का गायन होने लगा। मन्दिरों में पूजादि की चेलावर्गों में, धार्मिक उत्सव-त्योहारों के अवसरों में "तमिल-वेद" का ही पाठ होने लगा। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि तिरुमल वालुवार ने ही पहले पहल श्रीरंगम् के मंदिर में संस्कृत वेद के साथ तमिल-वेद के गायन का प्रबन्ध किया था। तिरुमल के पश्चात् तो यह परंपरा नाथमुनि के समय में और उनके परवर्ती आचार्यों के समय में भी चली थी और आज तक चली जा रही है। जिन जिन अवसरों पर संस्कृत वेद का पाठ होता था, उन सभी अवसरों पर तमिल-वेद का गायन आवश्यक सम्पन्न गया।

मागंतीर्ण महीने में शुक्ल पक्षा की स्कादशी से १० दिन तक वेद पाठ हुआ करता है। इसको "मोदोत्सव" कहा गया है। श्री रंगम् में इस उत्सव के अवसर पर वैकुंठ स्कादशी से संस्कृत वेद - पाठ की परिपाटी चलती थी। तिरुमल वालुवार ने उस उत्सव के अवसर पर वैकुंठ स्कादशी से तमिल - वेद "तिरुवायमोली" के पाठ का कार्यक्रम भी चालू किया। दस दिनों के उस उत्सव में प्रत्येक दिन यजुर्वेद के बाठ बाठ "प्रश्नों" का पाठ होता था। तिरुमल वालुवार ने श्रीरंगम् के मन्दिर में उपर्युक्त क्रम के वक्तुरण पर तमिल-वेद के गायन के लिए एक उचित

१- कण्ठिणनुत्त चिरुतांहु, ६

२- "नमाम्यहं द्राविडवेद सागरम्" - तिरुवायमोली तनिय

परिपाटी बनायी थी और उस परिपाटी के अनुसार उक्त उत्सव के अवसर पर प्रत्येक दिन तमिल- वेद के कुछ अंशों का गायन होने लगा । तिरुमोली बालवार के पश्चात् तमिल- वेद के पाठ का कार्य-क्रम अधिकारिक महत्व प्राप्त करने लगा, जिसके फलस्वरूप यजुर्वेद के पाठ का कार्य-क्रम बंद हो गया । तब से केवल तमिल वेद- पाठ ही होता आ रहा है। उक्त उत्सव के अवसर पर नम्पालवार के १००० पदों में से १०० पदों का गायन होता है और इस प्रकार दस दिनों में "तिरुवायमोली" के समस्त पदों का पाठ पूरा होता है। तमिल- वेद- पाठ के अन्त में नम्पालवार के विग्रह को श्रीरंगनाथ जी के चरणों में रखा जाता है। भगवान् और नम्पालवार के स्वेय ही जाने को सूचित करने के लिए ही ऐसा किया जाता है।

चूंकि उपर्युक्त धार्मिक उत्सव में "तिरुवायमोली" (तमिल- वेद ) का पाठ ही प्रधान कार्य होता है, अतः उस उत्सव को "तिरुवायमोली- उत्सव" अथवा "मोदीत्सव" भी कहते हैं। प्रारम्भ में तो केवल "तिरुवायमोली" उत्सव ही मनाया जाता था । बाद में भक्तों के द्वारा एक अन्य उत्सव भी मनाया जाने लगा । यह उत्सव "तिरुवायमोली - उत्सव" से दस दिन पूर्व प्रारम्भ होता है और "तिरुवायमोली - उत्सव" के एक दिन पूर्व तक अर्थात् वैकुंठ स्नादशी तक मनाया जाता है। इस उत्सव को "वैकुंठोत्सव" कहते हैं। जिस तरह "मोदीत्सव" में तिरुवायमोली का पाठ विशेष रूप से होता है, उसी तरह "वैकुंठोत्सव" के दिनों में अन्य बालवारों के पदों का पाठ होता है। उपर्युक्त दोनों उत्सवों का नामकरण तो वागम- निगम के आधार पर हुआ है। परन्तु उनके स्थान पर तमिल नाम ही अब प्रचलित हैं। "वैकुंठोत्सव" को "तिरुमोली तिरुनाल" और "मोदीत्सव" को "तिरुवायमोली - तिरुनाल" कहा जाता है। प्रारम्भ के दस दिनों को "पल्ल पयु" और बाद के १० दिनों को "हरा पयु" कहते हैं। प्रथम उत्सव में "तिरुमोली" का पाठ दिन के समय में और द्वितीय उत्सव में "तिरुवायमोली" का पाठ रात के समय में होता है। "तिरुमोली" के अन्तर्गत तिरुमोली बालवार के पदों को ही विशेष स्थान प्राप्त है। श्रीरंगम् में "तिरुवायमोली - उत्सव" का बीजारीपण करने वाले तिरुमोली बालवार की कड़ी स्तुति श्री नाथमुनि ने

की है। संभव है कि तिरुकी जालवार की महान् सेवा का स्मरण करके ही श्री नाथ मुनि ने उनकी 'तिरुमोली' के पाठ के लिए 'तिरुमोली-उत्सव' की परिपाटी चलायी हो।

ऊपर वर्णित दो प्रमुख वार्षिक उत्सवों के अतिरिक्त दक्षिण के प्रधान वैष्णव मन्दिरों से सम्बन्धित अन्य उत्सवों के अवसरों पर भी प्रबन्धम् का पाठ होता है। दक्षिण के तीन वैष्णव मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनसे जालवार-साहित्य का अधिक सम्बन्ध है। वे हैं- श्रीरंगम्, तिरुप्पति और कांची-पुरम्। इन मन्दिरों के भगवद् विग्रहों को जब जुलूस में लिया जाता है, तब प्रबन्धम् के 'इर्यपा'-भाग का पाठ होता है। विशेष रूप से 'ब्रह्मोत्सव' के अवसर पर दस दिन तक 'इर्यपा'-भाग का पाठ होना आवश्यक है। इर्यपा-भाग में संशुद्धित रचनाओं में अन्तिम रचना 'परिय तिरुमळ' का पाठ अन्तिम दिन में होता है। 'ब्रह्मोत्सव' के दिनों में उक्त वैष्णव मन्दिरों के भीतर स्थित नम्माज्वार की मूर्ति के सामने ही उन पदों का गायन होता है। प्रारम्भ में यह उत्सव केवल श्रीरंगम् में ही मनाया जाता था। बाद में उसका अनुकरण कर अन्य वैष्णव मन्दिरों में वह मनाया जाने लगा। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में तमिल-प्रदेश के प्रसिद्ध वैष्णव-केन्द्र श्रीरंगम् में ही ये सभी उत्सव मनाये जाते थे और बाद में अन्य मंदिरों में। कुछ उत्सवों का उत्सव शिलालेखों में मिलता है।

'प्रबन्धम्' का पाठ केवल वैष्णव मन्दिरों से सम्बन्ध रखनेवाले उत्सवों में ही नहीं, बल्कि अन्य सभी शुभ अवसरों पर भी होता है।

श्री कृष्ण जयन्ती के अवसर पर कृष्णावतार से सम्बन्धित 'प्रबन्धम्' के पदों का गायन होता है। भगवद् विग्रहों को जब जुलूस में लिया जाता है, तब आगे जाने वाले प्रबन्धम् का और पीछे जानेवाले संस्कृत-वेद का पाठ करते हैं। हो सकता है कि इस परिपाटी का उद्देश्य जालवार-पदों को प्राप्त महत्वपूर्ण स्थान को सूचित करना ही हो। श्री वेदान्त देशिकाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'पादुका सङ्ग्रहम्' में 'प्रबन्धम्' के महत्व को स्थापित करते हुए लिखा है कि भगवद् विग्रह के जुलूस में 'प्रबन्धम्' का पाठ सबसे आगे होना संगत ही है। मार्गशीर्ष महीने में प्रातःकाल बाँडास की रचना 'तिरुप्पाव' के ३० पदों और तौंडरडीपोडी जालवार की रचना 'तिरुपल्लि स्तुति' के पदों का गायन होता है। अगस्त महीने में ऊँचल उत्सव ('हिंडोला-उत्सव') के

१. History of Tirumali, Dr. S. K. Aiyangar, vol. I. pages, 10, 48, 51

२- परियाज्वार तिरुमोली २४-२ से २० (अगले पृष्ठ की टिप्पणी)

अक्षर पर पेरियाळ्वार के कुछ पदों ("पाणिपुक्कट्टी" से शुरू होने वाले पद) और कुलेश्वराळ्वार के कुछ पदों ("मन्नुकुल कौतुल तन" से प्रारम्भ होने वाले) का गायन होता है। भगवद्ग्रन्थ के सामने बैठे हुए सत्य पेरियाळ्वार के "वैष्णव-यस्यैन्त कुण्डुम्" से प्रारम्भ होने वाले पदों का पाठ होता है। "तिरुमयन" (अ भगवद्ग्रन्थ का ज्ञान) "पुन्नुवुल" (कृत धारण करना), "काप्पिळ" (आदि नित्य-सेवा की सेवाओं में वैष्णव मन्दिरों में "प्रबन्धम्" से जुने हुए गीत गाये जाते हैं। इन अक्षरों पर संस्कृत के पाठ से प्रबन्धम् का तमिल-पाठ ही विशेष आनन्ददायक समझा जाता है। नित्य-पाठ के लिए जुने गये पदों को "नित्या-नुसंधानम्" (नित्य - पाठ- संग्रह) कहते हैं। प्रत्येक दिन के अन्त में गाये जाने वाले पदों को "रातुमुर्" कहा जाता है। यह सब परिपाटी तमिल में ही चलती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि "प्रबन्धम्" ने तमिल जनता के धार्मिक जीवन को किस हद तक प्रभावित किया है। वेद-तुल्य माने जाने वाले आळ्वार-पदों का सम्बन्ध तमिल-जनता के धार्मिक जीवन से इतना घनिष्ठ हो गया कि जनता ने वेद से अधिक महत्व "प्रबन्धम्" को दिया।

साहित्य समाज की चेतना में साँस लेता है। वह समाज का वह परिधान है जो जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने बाने से जुना जाता है। उसमें विशाल मानव-जाति का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह जनता के जीवन की व्याख्या करता है। इसी से उसमें जीवन देने की शक्ति आ जाती है। आळ्वारों के मन्त्र-काव्य में समाज का स्पष्ट चित्रण है। उन्होंने समाज में रहते हुए उसकी आत्मा का परिचय प्राप्त किया था और सामाजिक जीवन के स्तर को उठाने के लिए पर्याप्त सामग्री अपनी साहित्य में भर दी है। यही कारण है कि परवर्ती समाज ने आळ्वार-साहित्य में अपनी आवश्यकता की सभी चीज़ें प्राप्त कीं। मन्त्र के अतिरिक्त जैसे-वस्तुएं आळ्वार-साहित्य ने परवर्ती समाज को प्रदान कीं।



प्रत्येक वैष्णव भक्त के यहाँ पूजा इत्यादि के लिए थोड़ी जगह बड़ा होही जाती है, जिसको "कोयिल-वाल्वार" अर्थात् वाल्वार-मन्दिर की संज्ञा प्राप्त है। पूजा इत्यादि के समय में वाल्वारों के भक्तिपरक पदों का गायन होता ही है। वैष्णव भक्त किसी न किसी कार्य को करते समय वाल्वार के किसी न किसी पद की गुन गुनाना मालवाक्य सम्मत्ता है। यहाँ तक कि औरतें, जब सधेर अपने घरों के प्रांगण में "कोलम्" ( सजावट की रेलार्ड ) सींचती हैं, तब बाण्डाल के तत्सम्बन्धी कुछ पदों को गाती हैं।

जब किसी वैष्णव भक्त के यहाँ शिशु का जन्म होता तो वाल्वारों के पदों का गायन होता है। माताई अपने बच्चों को सुलाने के लिए बड़े प्यार से परियालवार और कूलेबरालवार के लोरी-गीतों को ही गायती हैं। "प्रबन्धम्" में वर्णित सभी उत्सव मनाये जाते हैं। प्रबन्धम् में वर्णित विभिन्न संस्कार, व्रत आदि का अनुष्ठान भी होता है। बाण्डाल ने अपनी "तिरुप्पावि" में "मार्गली नोन्नु" ( कात्यायिनी व्रत ) का वर्णन किया है। सुवर्तियाँ योग्य वर को प्राप्त करने के लिए "मार्गली नोन्नु" व्रत रखती हैं और बाण्डाल के पदों का गायन करती हैं। विवाह के अवसर पर बाब भी वैष्णवों के यहाँ वाल्वार-गीतों का गायन सामुहिक रूप में होता है। इसको "सीरपाडल" कहते हैं। इस अवसर पर बाण्डाल की "नाच्चियार तिरुमोली" से "वारणमायिरम्" से प्रारम्भ होने वाले दस पदों का गायन तो परमावश्यक सम्मत्ता गया है और वर-वधु को जातीवाँद देने के रूप में अन्य लोगों द्वारा उसका गायन होता है। बाण्डाल के लिए निर्मित मन्दिरों में मार्गशीर्ष महीने में एक पर्व लगता है। बाण्डाल ने अपने कुछ पदों में स्वप्न में विष्णु भगवान् से होने वाले अपने विवाह का वर्णन किया है। उसका स्मरण करते हुए प्रत्येक वर्ण इस महीने में भक्तों द्वारा एक उत्सव मनाया जाता है, जिसे "बाण्डाल तिरुवकल्याणम्" ( बाण्डाल-विवाहोत्सव ) कहते हैं। इस अवसर पर बाण्डाल के उन गीतों का गायन होता है।

शौक के अवसर पर कच्चा "आद" के अवसर पर उसके तीन दिन या कम से कम एक दिन पहले ही वाल्वार-गीतों का पाठ शुरू हो जाता

है और श्राद्ध के दिन समाप्त होता है। प्रबन्धम् के पाठ के पश्चात् ही अन्य कर्म किये जाते हैं। अन्त्येष्टि क्रिया के तिर तब को जुलूस में ले जाते समय बालवाराँ के कुछ पदों का पाठ अवश्य होता है। वैष्णवों का विश्वास है कि बाचार्य के चरणों को प्राप्त करते के पश्चात् ही भगवान् के चरणों तक पहुँच सकते हैं। श्री रामानुजाचार्य की स्तुति में रचित ( और "प्रबन्धम्" के अन्त में संगृहीत ) "रामा-नुजमुटन्तादि" के एक सौ पदों को पढ़ते हैं। किसी वैष्णव भक्त की मृत्यु के कुछ दिनों के पक्षे दूसरे लोग नम्मात्वार के एक पद ( जिसमें नम्मात्वार ने मोक्ष की और अपनी यात्रा का उल्लेख किया है । ) को पढ़ते हैं। वैष्णवों का विश्वास है कि उस पद को गाने से उस आत्मा को मोक्षा-प्राप्ति हो सकती है।

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि "प्रबन्धम्" ने सब किस हद तक वैष्णव भक्तों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। विविध अवसरों पर बाब भी प्रबन्धम् का गायन वैष्णवों के होता है। संस्कृत-वेद-पाठ-ही, या न हो, परन्तु प्रबन्धम् द्वारा सामाजिक जीवन पर डाले गये प्रभाव का अनुमान हो सकता है। इस प्रकार प्रबन्धम् वैष्णवों के सामाजिक जीवन में घुल मिल गया और उसका एक अभिन्न अंग बन गया। जिस विष्णु-मन्दिर में कम से कम नम्मात्वार और बाण्डाल की मूर्तियाँ नहीं हो तथा जिस मन्दिर में "प्रबन्धम्" का गायन नहीं होता हो, वैष्णव भक्त उसे विष्णु-मन्दिर मानने को तैयार नहीं हैं। सांप्रदायिक नियमों के अनुसार वैष्णव मन्दिरों में नम्मात्वार और बाण्डाल के विग्रहों का स्थापन आवश्यक है और साथ ही साथ मंदिर से सम्बन्धित उत्सवों में प्रबन्धम् का पाठ एक अनिवार्य अंग है। प्रबन्धम् में उल्लिखित लगभग १०८ वैष्णव मन्दिरों की धीरे यात्रा करना वैष्णव भक्त कर्तव्य समझते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैष्णव जनों की दृष्टि में बालवार भक्तों का और "प्रबन्धम्" का कितना अधिक महत्व है।

( वा ) विविध कलाओं पर "प्रबन्धम्" का प्रभाव-

बालवार-साहित्य ने विविध कलाओं की श्रीवृद्धि में पर्याप्त

योग दिया है। जालवार भक्तों ने जब समूचे तमिल-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण उत्पन्न किया, तब तो भक्तों की उपासना - पिपासा को शान्त करने के लिए राज्या-श्रय द्वारा बड़े वैष्णव मन्दिरों का निर्माण हुआ। बड़ी संख्या में भक्त मन्दिरों के दर्शन करने जाते थे और वहाँ स्थापित भगवद्भिक्तों और भगवल्लीलाओं को चित्रित करने वाले शिलालेखों के दर्शन कर वात्सल्य शान्ति पाते थे। वाय तमिल-प्रदेश में विद्यमान अधिकांश वैष्णव-मन्दिर जालवारों के समय में बंधा उनके पश्चात् उनकी भक्ति-भावना से प्रेरित होकर विभिन्न राजाओं द्वारा निर्मित हैं। पल्लव राजाओं ने तथा उनके पश्चात् राजाओं ने मन्दिर-निर्माण में बड़ी रुचि दिखायी। वाय तमिल-प्रदेश में विद्यमान विष्णु मन्दिर और शिव मन्दिर जालवारों और नायन-मार्गों द्वारा चलाये गये भक्ति-बान्धन के फल हैं। मन्दिर-निर्माण के फल स्वयं भवन-निर्माण-कला ने भी विकास प्राप्त किया और बड़े कलाकारों को जन्म दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि तमिल-प्रदेश के सभी वैष्णव मन्दिरों का बाह्य रूप एक ही प्रकार का होता है। मन्दिरों के ऊँचे ऊँचे 'गोपुरम्' विशेष आकर्षण की वस्तु हैं। वैष्णव मन्दिरों के भीतर प्रधान रूप से विष्णु के किसी रूप का विग्रह होता है और जालवार भक्तों की मूर्तियाँ भी विभिन्न स्थलों में स्थापित हैं। पश्चात् काल में जालवारों का महत्व इतना बढ़ा कि वे भी अवतार समझे जाने लगे। जालवारों के नाम से भी मन्दिर बने लगे। श्री विष्णुसूर का बाण्डाल - मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध है। विजयनगर के राजा श्री कृष्णदेवराय (१६ वीं शती के लगभग) प्रत्येक विष्णु-मन्दिर में बाण्डाल की मूर्ति का स्थापन किया और स्थापना करना आवश्यक घोषित किया गया। मन्दिरों के अन्दर स्थित उस भाग को 'बाण्डाल-सन्धि' कहते हैं।

१- 'प्रबन्धम्' में लगभग १०८ वैष्णव मन्दिरों का विवरण मिलता है। इनमें स्थित भगवद्भिक्तों की स्तुति में जालवारों ने बड़े फल गाये हैं। अतः ये वैष्णवों द्वारा प्रधान मन्दिर स्वीकृत हुए हैं।

२- तमिल वल्लभ वल्लभकल - से० मयिल चीनी कैटस्वामी पृ० ३५

मन्दिरों के साथ जैसे मंडप निर्मित हुए जहाँ बैठकर गायकगण विभिन्न वापों के साथ बालवार-गीतों को गाते थे। मयित-बान्दोलन के परिणामस्वरूप निर्मित सड़कों छोटे बड़े मन्दिरों को लक्ष्य करके ही तमिल-प्रदेश को मन्दिरों का देश कहा जाता है।

मूर्ति-कला और चित्र-कला पर भी बालवार-साहित्य का प्रभाव पड़ा है। देव मूर्तियों को खाने में उनके रूप इत्यादि के निर्णय में मूर्तिकारों ने बालवार-साहित्य का बहुत हद तक आधार लिया है। बालवार-साहित्य में विष्णु के जिन रूपों का वर्णन मिलता है, उनके अनुसार ही भगवद्ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। मन्दिरों में स्थापित करने के निमित्त मूर्तियाँ बनायी गयीं। कलाकारों ने अपनी कृशक्ता से उन मूर्तियों में सौन्दर्य भर दिया। सामाजिक जीवन के दृश्य भी शिलालेखों में चित्रित किये गये। बड़े बड़े शिलालेखों की मूर्ति का बङ्गार देने में उस समय के मूर्तिकार कृशक्ता थे। महमबलीपुरम के गुहा-मन्दिर, रूप, मंडप आदि इस प्रकार के शिलालेखों से बने हैं। बालवारों के पश्चात् उनकी मूर्तियाँ भी निर्मित हुईं और उनकी स्थापना वैष्णव-मन्दिरों में हुई। मन्दिरों में बालवारों की मूर्तियों की स्थापना उनके प्रति वैष्णव जनों के बड़ा-भाव को सूचित करती है। मूर्ति-कला के साथ चित्रकला भी विकास को प्राप्त हुई। उस समय के चित्र अब बहुत कम वैष्णव मन्दिरों में देखने को मिलते हैं। विष्णु के विभिन्न अवतारों में रामावतार और कृष्णावतार के प्रसंगों को ( बालवार-साहित्य में मिलनेवाले वर्णनों के अनुसार ) दिखाने वाले चित्र बने थे।

संगीत-कला को बालवारों की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विभिन्न राग-रागिनियों में निर्मित बालवार-पदों को भवत गा-गाकर वात्सव्य विभोर हो जाते थे। बालवारों को गीत-पद्धति ने भवतों के हृदय को बलीभूत करने की शक्ति प्रदर्शित की। स्वयं बालवार अच्छे गायक थे। तिरुप्पावण बालवार तो पाण जाति के थे, जिस जाति का फला ही गायन था। बालवारों के पूर्व भी तमिल में गीत-पद्धति प्रचलित थी। परन्तु वह पर्याप्त विक-

सित नहीं थी। बालवार्हों ने तमिल की गीत - पद्यति में नई स्फूर्ति पैदा की और उसको पारवर्ती गायकों के लिए वापसनीय बना दिया। बालवार्हों ने नौ नये रागों और रागिनियों को लोप निकाला है। बालवार्हों के पदों में गेयत्व की विशेषता की चर्चा पूर्व अध्याय में हम कर चुके हैं। तमिल में मिलने वाले अधिकांश गेय पद बालवार और नायनवार्हों के ही हैं। अतः तमिल में गेय पद्यति को प्रोत्साहित करने में बालवार्हों का विशेष हाथ रहा है। मवत- गौष्ठी में बालवार- गीत- काव्य की परिपाटी चली थी। विविध वाद्य- यन्त्रों का भी निर्माण हुआ और वाद्यों के साथ मयितपरक पद गाकर मवत- गायक आनन्द- विभोर हो जाते थे। जनता में संगीत प्रियता बढ़ी। तात्पर्य यह है कि बाल- वार्हों ने संगीत- कला के विकास में बहुत योग दिया है। डा० दीन दयालु गुप्त लिखते हैं :- “ ईसा की सातवीं तथा आठवीं शताब्दियों में जब दक्षिण भारत में शिव और विष्णु की भक्ति के मार्गों का पुनरुत्थान और प्रचार हुआ, उस समय यह कार्य धार्मिक गीतों के द्वारा अधिक मात्रा में हुआ। भक्ति के प्रचार के साथ इन शताब्दियों में संगीत प्रियता बृद्ध हुई। तमिल भाषा में उस समय के संगीत के बहुत से नमूने अब भी सुरक्षित हैं। उत्तरी भारत में दक्षिण का धार्मिक प्रभाव आया और भक्ति के आन्दोलन के साथ संगीत का भी मान बढ़ा। ”

#### (४) तमिल भाषा और साहित्य पर 'प्रबन्धम्' का प्रभाव-

बालवार मवर्तों ने तमिल साहित्य की महान् सेवा की है। तमिल भाषा और उसके संघ - साहित्य के प्रति बालवार्हों ने अपना प्रेम अपनी रचनाओं में नौ स्थानों पर स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। ( बालवार मवर्तों के पूर्व का काल तमिल साहित्य के इतिहास में संघ काल- कहलाता है। यह संघ-



साहित्य तमिल की अमूल्य निधि है। ) बालवार पद्यों ने संघ-काल के साहित्य की सभी विशेषताओं और साहित्यिक परंपराओं को अपनी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। बाण्डाल और तिरुमो बालवार ने संघ-साहित्य की कड़ी प्रशंसा की है। तमिल भाषा के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए भूतबालवार ने लिखा है कि मैं जान प्रधान तमिल भाषा में गाता हूँ। मोठी तमिल भाषा में भगवान् की गीता-माला समर्पित करता हूँ। इस प्रकार अन्य बालवारों की रचनाओं में मिल जाने वाली उक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि बालवारों की अपनी भाषा तमिल के प्रति कड़ा प्रेम था।

बालवारों का आविर्भाव तमिल साहित्य के इतिहास में पर्याप्त महत्व रखता है। प्रारम्भिक बालवारों ने ( चौथी-पाँचवीं शती ) ही तमिल में सर्व प्रथम ऐसे काव्य का रचन किया जिसे हम पूर्णतः मयित-काव्य कह सकते हैं। उनके पूर्व भी तमिल में साधु मयित-सम्बन्धी रचनाएँ हुई थीं। परन्तु उन्हें पूर्णरूपेण मयित-काव्य कहना कठिन है। प्रारम्भिक बालवार पद्यों ने काव्य-शैली को भी एक नई मोड़ दी। मधुर गेय पद्यों की रचना कर बालवारों ने एक नयी काव्य-शैली का उद्घाटन किया था। वैष्णव मयित-काव्य की दृष्टि से 'प्रबन्धम्' का स्थान सर्वोपरि है। 'प्रबन्धम्' में ही प्रथम बार विस्तार से रामायतार और कृष्णायतार की कथाएँ हुई हैं। बालवारों का युग महाकाव्यों की रचना के लिए अनुकूल न था। अतः राम कथा या कृष्ण कथा को लेकर महाकाव्य रचने की ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। परन्तु उन्होंने रामायतार और कृष्णायतार के कुछ विशिष्ट प्रसंगों को लेकर असंख्य सरस पद रच डाले। तमिल में महाकाव्य के रूप में 'रामायण' की रचना ११ वीं शताब्दी में महा-कवि कंकन द्वारा हुई। परन्तु कंकन को भी रामायण लिखने की प्रेरणा बालवारों के काव्य से ही मिली। अतः तमिल में राम कथा के प्रथम गायकों के रूप

१- तिरुप्पावि , ३० तथा पेरिय तिरुमोली ३-६-२०

२- इट्टाम तिरुवन्तादि १ और ७४

में भी बालवार्त्तों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। जहाँ तक कृष्ण-भक्ति का सम्बन्ध है, प्रबन्धम् ही तमिल का सर्वप्रथम मौलिक काव्य है जिसमें कृष्ण की विभिन्न सीखों का विस्तार और भावपूर्ण वर्णन है। यद्यपि परवर्ती काल में कृष्ण-भक्ति प्रधान कुछ छोटी मोटी काव्य निकले, तो भी 'प्रबन्धम्' के चूँच कृष्ण-भक्ति काव्य के रूप में जमर हो गया और उसका विर स्याह महत्व है। उसके टबकर का ग्रन्थ तमिल में अभी तक नहीं हुआ है। अतः वेष्णव-भक्ति-काव्य के रूप में तमिल में 'प्रबन्धम्' बेजोड़ है।

जहाँ तक प्रबन्धम् के साहित्यिक महत्व का प्रश्न है, हम कह सकते हैं कि यद्यपि बालवार मूलतः मन्त्र थे और भावार्थ में बाहर गति थे, तो भी उनके काव्य में उच्च कोटि के साहित्य के गुण विद्यमान हैं। तमिल के गौरवपूर्ण संघ काल की विशिष्ट काव्य-शैलियों और साहित्यिक परंपराओं का निर्वाह बालवार्त्तों ने अपने काव्य में किया है। संघ-काल की रचनाओं में उपलब्ध लौकिक प्रेम-पद्धति को लेकर, उसी पद्धति में उन्होंने वर्तुलिक प्रेम को प्रकट किया है और आत्मा-परमात्मा के बीच के सम्बन्ध को उन्नत पद्धति द्वारा बहुत स्पष्ट और बाकर्णक बना दिया है। भक्ति में माधुर्य-भाव को जोड़ने वाले प्रथम कवि हैं बालवार। नायिका के विरह-वर्णन के रूप में उन्होंने जो भक्ति-भाव प्रकट किये हैं, वे अद्वितीय हैं। इस प्रकार का सजीव विरह-वर्णन तमिल-साहित्य में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। परियालवार ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने कृष्ण के बाल-वर्णन के लिए वय-विकास को वय-सण्डों में रक्कर प्रत्येक वय-सण्ड का मार्मिक और मनोवेज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया था। इस प्रकार के बाल-वर्णन की शैली तमिल में 'पिल्लै-तमिल' कहलाती है। 'पिल्लै-तमिल' वर्णन शैली के जन्म दाता के रूप में तमिल कवियों में परियालवार का स्थान मूर्धन्य है। परियालवार ने जितने विस्तार से, जितनी सूक्ष्मता और मार्मिकता से बाल-वेष्टाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है, वह तमिल में अन्यत्र दुर्लभ है। परियालवार की 'पिल्लै-तमिल' शैली का अनुकरण कर अन्य परवर्ती कवियों ने 'पिल्लै-

तमिल-काव्यों की रचना की है। ईद-योजना के दौर में बालवार्तों ने कई नये शब्दों की सृष्टि की थी। अन्तादि शब्द में रचित बालवार्तों के फलों को वापस-रूप में लेकर पायती कवियों ने उस शब्द का प्रयोग किया है। "तालिश" बालवार-काव्य में प्रयुक्त एक विशेष शब्द है, जिसका प्रचार बाद में हुआ।

बालवार-काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित लोक गीत सुरक्षित हैं। पेरियालवार, कुलेश्वरालवार, तिरुप्पी बालवार आदि ने अपने काव्य में लोक-गीतों को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। इन लोक गीतों से तत्कालीन तमिल जनता की आत्मा का परिचय मिल जाता है। बालवार-काव्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें तत्कालीन समाज का सभी ओर स्पष्ट चित्रण मिलता है। लोक में प्रचलित विभिन्न उत्सव, विभिन्न, संस्कार, देवी-देवता, स्त्री-पुरुष के शृंगार, वेश-भूषण, विविध विश्वास आदि का विस्तृत परिचय हमें बालवार-काव्य से मिलता है। लोगों के मनोरंजन के साधन, उनके व्यवहार, शिष्टाचार, दैनिक जीवन के कार्य इत्यादि का पूरा पूरा परिचय बालवार-साहित्य से मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालवार-साहित्य में तत्कालीन समाज प्रतिबिम्बित हुआ है। चूंकि बालवार समाज के ही प्राणी थे, अतः उन्होंने अपने काव्य में समाज का सांगीर्ष्य चित्रण किया है, जिससे कि तमिल संस्कृति के अतीत का रंगीन चित्र हमारे सामने आ सका है। सारांश यह है कि बालवार्तों का मूल-काव्य तमिल साहित्य की अमूल्य निधि है।

#### तमिल भाषा की बालवार्तों की देन-

तमिल भाषा के विकास में बालवार्तों के प्रबन्धों ने महत्वपूर्ण योग दिया है। बालवार्तों के समय के पहले की तमिल भाषा संस्कृत-प्रभाव से बिल्कुल मुक्त है। संघ-काल की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा पूर्णरूपेण शुद्ध साहित्यिक तमिल भाषा है, जिसमें संस्कृत के शब्दों का प्रयोग नहीं के

बराबर है। संत की प्रारंभिक रचनाएँ में उत्तर भारत से दक्षिण की ओर जाये संस्कृति के गमन के साथ साथ संस्कृत भाषा भी दक्षिण में जायी। उस समय तमिल कवि शुद्ध साहित्यिक तमिल भाषा में ही रचना करते थे। धीरे धीरे संस्कृत भाषा में उपलब्ध धर्म, दर्शन, विविध शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रभाव तमिल के पंडित-समाज पर पड़ा। बाल्वार संस्कृत के भी ज्ञाता थे। उनका तमिल प्रेम भी प्रगाढ़ था। फिर भी उन्होंने संस्कृत के प्रति विरोध-भाव नहीं दिखाया। यही कारण है कि तमिल कृतियों में "प्रबन्धम्" में ही प्रथम बार संस्कृत शब्द मिलते हैं। भक्ति और दर्शन के माध्यम से बाल्वारों की भाषा में कुछ संस्कृत शब्द भी जा गये हैं। लोक में प्रचलित सरल संस्कृत शब्दों का ही उन्होंने प्रयोग किया है। बाल्वारों ने संस्कृत के शब्दों को तत्सम रूप में नहीं रखकर उनका "तमिलीकरण" कर उचित ढंग से भाषा में मिला दिया है। प्रबन्धम् में मिलने वाले अधिकांश संस्कृत शब्द तद्भव रूप में अथवा परिष्कृत रूप में ही हैं। इस प्रकार सरल तमिलीकृत संस्कृत-शब्दों के प्रयोग से तमिल भाषा में एक नयी शक्ति जायी। तमिल भाषा में गीतात्मकता और प्रवहमानता जायी। साथ तमिल भाषा का जो रूप है उसकी नींव बाल्वारों ने ही डाली थी। बाल्वार ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने साहित्यिक तमिल भाषा में आवश्यक वंशों में संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर तमिल भाषा को एक नयी मौड़ दी थी। स्मरण रहे कि संस्कृत का प्रभाव तमिल भाषा पर अपेक्षाकृत बहुत कम है।

बाल्वारों के पश्चात् "प्रबन्धम्" के टीकाकारों ने दार्शनिक विचारों के विवेचन के लिए अधिक से अधिक संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर एक नयी शैली लोक निकाली, जिसे "मणिप्रवाह" कहते हैं। "प्रबन्धम्" पर लिखा गया अधिकांश टीका-साहित्य "मणि प्रवाह" शैली में है। "मणि प्रवाह" में तमिल और संस्कृत भाषाओं का समान रूप से प्रयोग होता है। इस "मणि प्रवाह" शैली

---

१- कुलशेखरबाल्वार ने संस्कृत में 'सुन्दरामाला' नाम से एक प्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ की रचना भी की थी।

में जब और भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने लगा तो उसने मलयालम भाषा को जन्म दिया। मलयालम की उत्पत्ति में 'मणिप्रवाल' का अत्यधिक योग है। परन्तु तमिल के कवि ( ११ वीं - १२ वीं शती ) संस्कृत के अधिक मोह में नहीं पड़े। यही कारण है कि आज भी तमिल अपने निज रूप को लिए है। कहने का तात्पर्य यह है कि जालवारों ने संस्कृत-भाषा का प्रयोग सीमित रूप में ही किया है, जिससे तमिल भाषा अपने निज सौन्दर्य को लीये बिना और भी अलंकृत हुई। यह तमिल भाषा को जालवारों की सच्ची कड़ी देन है।

'प्रबन्धम्' में प्रयुक्त भाषा की विशेषता यह है कि पूर्व-साहित्य में प्रयुक्त कठिन साहित्यिक भाषा की अपेक्षा प्रबन्धम् की भाषा में सरलत्व है। उसमें लोक-भाषा के रूपों के भी दर्शन होते हैं, परन्तु परिष्कृत रूप में। लोकोपिप्तवों और मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। जालवारों की भाषा में पाठकों को भावमग्न और रस-निमज्जित करने की अपूर्व क्षमता है। उसमें उच्च कोटि की व्यंग्यता के साथ संदिग्धता भी है। वाद-सौन्दर्य और संगीतात्मकता के पुष्कल उदाहरण भी जालवारों की भाषा में मिलते हैं। सारांश यह है कि तमिल भाषा को समृद्ध, समीप, सरल और सौन्दर्यपूर्ण बनाने में जालवारों का विशेष हाथ रहा है।

#### प्राचीन तमिल साहित्य पर जालवारों का प्रभाव-

जब से श्रीनाथमुनि ने ( नवीं दसवीं शती ) 'प्रबन्धम्' का संपादन कर उसकी विचार-धारा का प्रचार प्रारम्भ किया, तबसे 'प्रबन्धम्' का वास्तविक महत्व अधिकाधिक प्रकाश में जाने लगा। 'प्रबन्धम्' पर अनेक भाष्य निकले। जालवारों के पश्चात् कुछ समय तक केवल भाष्य ही निकलते रहे। अतः वह काल तमिल साहित्य के इतिहास में 'भाष्य-काल' कहलाता है। ११ वीं शताब्दी में तमिल में महाकवि कवच ने 'रामायण' लिखी। तमिल के गौरव-ग्रन्थों में 'कवच-रामायण' का एक प्रमुख स्थान है। कवच ने 'वाल्मीकि-रामायण'

---

१- जालवारों की भाषा की विस्तृत चर्चा सप्तम अध्याय में प्रस्तुत की गयी है।



से राम कथा का आधार तो लिया। परन्तु कंब रामायण में कवि की मौलिकता, प्रतिभा और विद्या के दर्शन होते हैं। "कंब-रामायण" जैसे अमर काव्य की प्रेरित करने वाले कवि-कवियों "कंबन पर बालवारी" के "प्रबन्धम्" का प्रभाव पड़ा है। कंबन के अनेक सम्बन्धी विचारों पर नम्पालवार की "तिरुवायमोली" का पूरा पूरा प्रभाव पड़ा है। कंबन ने अनेक स्थानों पर नम्पालवार के विचारों को वैसे ही रख दिया है। कुलैतरालवार के राम-कथा-प्रसंग के कुछ फरों के भाव को कंबन ने उसी रूप में दुहराया है। कई स्थानों में कंबन ने बालवारी की भाषा शैली को अपनाया है। स्वयं कंबन ने नम्पालवार के प्रति अपनी कृण का ज्ञापन किया है। "शठकोपरन्तदि" नामक रचना कंबन द्वारा नम्पालवार की स्तुति में की गयी बतायी जाती है। "शठकोपरन्तदि" में कंबन ने नम्पालवार की स्तुति करते हुए लिखा है— "कथा विश्व के समस्त काव्य-संग्रह नम्पालवार के एक शब्द की बरा-बरी कर सकते हैं ? — इत्यादि।"

१३ वीं शती के उत्तरार्ध में कुलैन्दी नामक एक प्रसिद्ध कवि हुए जिनकी रचना "नल्लैण्पा" है। ये परम वैष्णव भक्त थे। "नल्लैण्पा" पर बालवारी की विचार-धारा और भाषा-शैली का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अपनी रचना के फालगुण में कुलैन्दी ने नम्पालवार की बड़ी स्तुति की है और नम्पालवार की "तिरुवायमोली" के प्रति अपनी कृण ज्ञापित किया है। "तिरुक्कुरल" नामक प्रसिद्ध तमिल नीति-ग्रन्थ के टीकाकार परिमल्लर ने भी तिरुक्कुरल की विस्तृत टीका में "प्रबन्धम्" से अनेक स्थानों पर उद्धरण दिये हैं। १४ वीं शती के पूर्वार्ध में विल्लिप्पुरालवार नामक वैष्णव कवि ने तमिल में "महाभारत" की रचना की। यह बहुत ही सरल काव्य है। इस ग्रन्थ में रचयिता ने नम्पालवार और तिरुकी बालवार की बड़ी स्तुति की है। "प्रबन्धम्" के अनेक स्थलों को इस में दुहराया गया है। "प्रबन्धम्" का वैदिक और काव्यात्मक प्रभाव इस ग्रन्थ पर पड़ा है। "तिरुक्कुरल" नामक (१४ वीं शती का उत्तरार्ध) काव्य के रचयिता अरुणगिरिनाथर ने राम-कथा और कृष्ण-कथा के अनेक रसात्मक प्रसंगों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ पर प्रबन्धम् का प्रभाव दृष्टव्य है। मुरली-

माधुर्य के प्रभाव के प्रसंग में एक कवि ने पेरियालवार के तत्सम्बन्धी पदों के भावों को ही बूझाया है। १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में तिरुवृरु के पेरुमाळ ने 'मारुत-कारम्' के नाम से एक ग्रन्थ लिखा। यह 'मारु' ( नम्माळ्वार का दूसरा नाम ) को नायक के रूप में मानकर लिखा गया अलंकार शास्त्र है।

पेरियालवार की पिल्लै-तमिल-शैली का अनुकरण कर शैव भक्तों ने तथा गुरुग ( सुब्रह्मण्य ) भक्तों ने अपनी आराध्य की लीलाओं का वर्णन किया है। आलवारों की काव्य-शैली का प्रभाव अनेक पद्यती शैव और गुरुग-भक्तों पर भी पड़ा है। ऊपर उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त अनेक पद्यती तमिल कृतियों पर 'प्रबन्धम्' की विचार-धारा और माणा-शैली का प्रभाव पड़ा है। ( विस्तार-मय से अधिक विवरण नहीं देते । )

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि पर 'प्रबन्धम्' ने किताब महान् प्रभाव डाला है। तमिल में ही नहीं, बल्कि अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में शायद ही कोई ऐसी एक रचना हो, जिसने 'प्रबन्धम्' का सा बहुमुखी प्रभाव डाला हो। प्रबन्धम् सम्बन्ध भारतीय साहित्य-मंदार का एक अमूल्य रत्न है।

( ई ) तमिलितर दक्षिणी भाषाओं पर प्रभाव-

तेलुगु-

तेलुगु में भक्ति साहित्य की सर्जना विशेष रूप से ११ वीं शती के पश्चात् ही हुई। तेलुगु के भक्ति साहित्य के प्रारम्भिक रचयिताओं में नन्नय भट्ट, तिवकन्न सोमयाजी और ररां प्राड के नाम उल्लेखनीय हैं। तिवकन्न का काल १३ वीं शती के आस पास है। तिवकन्न की रचनाओं में 'महामारुत' और 'निर्वचनीयर' रामायण मुख्य हैं। ररां प्राड १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध

१- तमिलुम वैण्णमुमण, एम० राधाकृष्ण पिल्लै, पृ० १११

में जीवित थे। इन्होंने कई खनारों की हैं जिनमें 'रामायणम्', 'सप्तमी वृत्तिह पुराणम्' और 'हरिवंशम्' आदि मुख्य हैं। तेलुगु के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि ताल्लपाक जन्ममाचार्य हैं, जिनके जीवन-काल का अधिकांश समय १५ वीं शती के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। ज्वफन से ही उनका मुकाबल मधित की ओर था। घरबार छोड़कर ये तिरुप्पति तीर्थ-घाट की ओर निकल पड़े और १६ वर्ण की वायु में ही श्री वैकुण्ठेश्वर के परम भक्त बन गये।

पीछे कहा जा चुका है कि बालवार भक्तों के अनेक गीत तिरुप्पति श्रीवैकुण्ठेश्वर जी की स्तुति में हैं। विष्णु के अवतार-रूप वैकुण्ठेश्वर की स्तुति प्रायः सभी बालवारों ने अपने भक्तिपूर्ण पदों में की है। बालवारों के पश्चात् उनके गीतों के गायन का प्रबन्ध सभी वैष्णव मन्दिरों में अनिवार्य रूप से किया गया। वेद-पाठ ही, या न ही, परन्तु 'प्रबन्धम्' का पाठ आवश्यक है। सम्झा गया। विश्वास किया जाता है कि श्री वेदान्त-वैशिकाचार्य के प्रबल अनुरोध से नम्पाळ्वार कृत 'तिरुवाय्मोली' का पाठ वैकुण्ठेश्वर के मन्दिर में सन् १३६० ई० के आस पास आरम्भ हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त घटना के बहुत पहले ही बालवार पदों का प्रचार तेलुगु-प्रदेश में हुआ था और तमिल-प्रदेश के भक्ति-बान्दीजन का प्रवाह उत्तर की ओर प्रवाहित होने लगा था। फलस्वरूप ११ वीं शती के पश्चात् तेलुगु-प्रदेश में एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न हुआ। जब तेलुगु भक्त जन्ममाचार्य तिरुप्पति वैकुण्ठेश्वर के दर्शन करने गये थे, तब वहाँ प्राविद्ध-प्रबन्ध-पाठ बड़ी श्रद्धा के साथ चल रहा था। भक्त जन्ममाचार्य का हृदय उस अपार तमिल-बाहु-मय की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने संस्कृत के साथ साथ तमिल के भक्ति-साहित्य का भी प्रादुर्भाव अध्ययन किया। इसमें वाच्य किंचित् भी नहीं कि बालवार भक्तों की मधुर वाणी ने जन्ममाचार्य पर अपरिमित प्रभाव डाला है। भक्ति के माध्यावे में जन्ममाचार्य ने सस्त्रों पद रच डाले। उनके पदों की संख्या ३२००० कतायी जाती है। पर उपलब्ध पद १६००० के लगभग हैं। उनके अनेक

१- हिस्टरी ऑफ़ तिरुप्पति- डा० कृष्णस्वामी अय्यंगर भाग २ पृ० ११४०

२- वही भाग २, पृ० १७८६ - ८८

केंद्रे  
 पदों के भाव पूरे वात्सवार- पदों के ही हैं। श्री बन्नामाचार्य के सभी पद मीत-  
 शैली में हैं। इनमें अध्यात्म संकीर्तन भी हैं और जंगार-संकीर्तन भी। एक तेलुगु  
 विद्वान् का कथन है कि हजारों पदों की रचना करने के लिए यदि एक और हिन्दी  
 के मन्त्र प्रवर सुरदास जी को श्री बन्नामाचार्य का वादश मिलाने तो दूसरी और  
 ( तेलुगु के सुरदास ) श्री बन्नामाचार्य के समस्त वात्सवारों के "नाल्लायिरम्" (प्रब-  
 न्धम्) का अनुदिन प्रबन्ध- पाठ का वादश रहा। इसमें सन्देह नहीं कि बन्नामा-  
 चार्य जी का मन्त्रितपूर्ण हृदय वात्सवारों के पदों को गाकर विह्वल हो उठा और  
 तेलुगु वाणी में अभिव्यक्त हुआ। श्री बन्नामाचार्य ने तमिल- प्रबन्ध- गान से प्रभा-  
 वित होकर भी अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। ये संस्कृत के भी प्रसिद्ध  
 पंडित थे और थे संगीत के पारंगत विद्वान्। संगीत पर उनका प्रभाव इतना अधिक  
 था कि अपने मन्त्रितपूर्ण सहस्रों पदों के अतिरिक्त संगीत-शास्त्र पर एक रीति ग्रन्थ  
 भी रच डाला। उनकी अन्य कृतियों में "विष्णु रामायणम्", "जंगार- फेरी",  
 "वैष्णव महात्म्यम्" आदि उल्लेखनीय हैं। बन्नामाचार्य के पदों में वात्सल्य, दास्य  
 और माधुर्य- भाव की मन्त्रित के दर्शन होते हैं। माधुर्य मन्त्रित के उनके लिले बने सुन्दर  
 पद मिलते हैं।

बन्नामाचार्य के पदों की दार्शनिक पृष्ठभूमि वात्सवार- विचार-  
 धारा से प्रभावित विशिष्टाद्वैतवाद ही है। परन्तु जिस स्वतन्त्रता का परिचय  
 बन्नामाचार्य ने अपनी विचार- धारा में दिया है, उससे स्पष्ट है कि वे किसी  
 दार्शनिक या सांप्रदायिक बन्धन में नहीं पड़े। तेलुगु के एक दूसरे प्रमुख कवि बम्परे  
 पौतन्न हैं। पौतन्न सन् १४८० के आस पास जीवित थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ "वाङ्म  
 महाभागवत", "वीरभद्रविजयम्" और "नारायण शतकम्" हैं। "महाभागवत" की  
 रचना द्वारा महाकवि पौतन्न ने तेलुगु-साहित्य में अमृत की धारा प्रवाहित की  
 है। उनके पद मन्त्र- हृदय की आत्म विभोर कर देने वाले हैं।

१६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में राजा श्री कृष्ण देवरायलु ने  
 बने काव्य- रचनाएँ कर अपनी अपार कवित्व- प्रतिभा का भी परिचय दिया,

जिसके कारण उन्हें "साहित्य समरंगण कवती" भी कहा जाता है। उनकी रचनाओं में सबसे श्रेष्ठ है, "जामुवत माल्यदा"। श्री कृष्ण देवरायलु के समय तक तेलुगु - प्रदेश में बालवार् मयतों के जीवन-वृत्त की कहानियाँ बहुत ही प्रचलित थीं और उनसे मयतों ने प्रेरणा भी प्राप्त की थी। पेरियालवार और उनकी पौष्य पुत्री बाण्डाल के जीवन-वृत्तों ने श्रीकृष्ण देवरायलु को इतना आकर्षित किया कि उन्होंने उसे कथा का आधार बनाकर एक महाकाव्य ही रच डाला। 'जामुवत माल्यदा' वही महाकाव्य है, जिसमें पेरियालवार और बाण्डाल की रोचक जीवन-कथाईं ग्रीक काव्य-शैली में वर्णित हैं। 'जामुवत माल्यदा' का अर्थ है, 'बपनी पहनी हुई माला वर्णित करने वाली।' इस काव्य में अनेक स्थानों पर पेरियालवार और बाण्डाल के पदों के भाव दिये गये हैं। स्पष्ट है कि कृष्णदेवरायलु ने 'जामुवत माल्यदा' द्वारा पेरियालवार और बाण्डाल को तेलुगु-प्रदेश में अमर बना दिया।

#### मलयालम-

मलयालम में मयित-साहित्य का निर्माण विशेष रूप से १३ वीं शताब्दी के बाद ही हुआ। मलयालम भाषा की प्रारम्भिक रचनाओं पर तमिल भाषा का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। तमिल के अनेक उद्-प्रयोग, ह्रस्व आदि मलयालम की प्रारम्भिक रचनाओं में मिल जाते हैं। बोहे कहा जा चुका है कि 'बालवार्-युग' के पश्चात् 'बावार्य-युग' में प्रबन्धम् पर अनेक भाष्य निकले। 'प्रबन्धम्' पर लिखित भाष्यों की भाषा संस्कृत मिश्रित तमिल थी। उसे 'मणिप्रवाल' कहते हैं। मलयालम भाषा की प्रारम्भिक रचनाओं में कुछ इसी 'मणिप्रवाल' भाषा में हैं। ज्यों ज्यों मलयालम पर संस्कृत भाषा का प्रभाव अधिक बढ़ता गया, त्यों त्यों उसका सम्बन्ध तमिल भाषा से कूटता गया। वहाँ तक मलयालम के मयित-साहित्य पर प्रबन्धम् के प्रभाव का प्रश्न है, हम निस्संकोच कह सकते हैं कि तमिल-प्रदेश के मयित-बान्दीसन का प्रभाव उस पर अवश्य



फटा है। मलयालम-प्रदेश का सम्बन्ध तमिल-प्रदेश से बहुत प्राचीन काल से था। स्मरण रहे कि प्रसिद्ध कुलशेखरालवार का जन्म-स्थान वर्तमान मलयालम प्रदेश के अन्तर्गत ही था। कुलशेखरालवार वहीं के शासक थे। अतः पूर्व काल से ही मलयालम-प्रदेश से बालवार भक्तों का सम्बन्ध रहा है। ( क्योंकि वह प्रदेश प्राचीन तमिल-प्रदेश के अन्तर्गत था ) इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि बालवार भक्तों में कुछ वर्तमान मलयालम-प्रदेश के विभिन्न स्थानों में जाकर भक्ति-प्रचार करते थे और जनता में भक्ति-भावना को जगाते थे। कुछ बालवारों ने केरल के राजाओं से वाशय भी प्राप्त किया था। इस प्रकार मलयालम-प्रदेश में बहुत पूर्वकाल में ही बालवारों के गीतों का प्रचलन रहा और बहुत से गीत वहाँ के लोक-गीतों में घुल मिल गये।

मलयालम के प्रारम्भिक भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत कीर्तन-भजन का प्राचुर्य है। भक्ति-बान्दीजन के फलस्वरूप तमिल-प्रदेश में कीर्तन-भजन की प्रोत्साहन मिली। मन्दिरों में गीत-गायन की प्रणाली चली। यही प्रणाली मलयालम-प्रदेश के मन्दिरों में 'पाठकम्' के नाम से चली। इसी ने कीर्तन-भजन साहित्य की प्रेरणा दी होगी। मलयालम के लोक-गीतों में 'पाणपाट्टु' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'पाण' नामक जाति विशेष-जो मूलतः तमिल प्रदेश की थी-के लोगों का यही ही गीत गाना था। तिरुप्पाण 'पाण' जाति के ही थे। संभव है कि इन 'पाणों' की एक शाखा के लोगों ने मलयालम के 'पाण-पाट्टु' साहित्य की रचना की हो। इन लोक-गीतों में पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख होता था।

१३ वीं शताब्दी में रचित 'रामचरितम्' नाम से एक काव्य मलयालम भाषा में मिलता है। इस ग्रन्थ पर तमिल के वैष्णव भक्ति-साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दीप्त पड़ता है। ११ वीं शती में श्री कृष्ण ने तमिल में राम-कथा लिखी थी। इस 'कंब-रामायण' से प्रभावित होकर एक मलयालम कवि ने मलयालम भाषा में 'कंब-रामायण' का एक लघु रूपान्तर प्रस्तुत किया है। १४ वीं शती के पश्चात् ही मलयालम में कृष्ण-काव्य का विशेष सर्जन हुआ। मलयालम भाषा के कृष्ण

भक्त- कवियों में 'निरणम' कवि मुख्य हैं। इनका काल १४ वीं शती के उत्तरार्ध और १५ वीं शती के पूर्वार्ध में पड़ता है। ये प्रधान तीन कवि थे। सबसे बड़े माधव पण्णिकर ने 'गीता' का अनुवाद मलयालम भाषा में किया। दूसरे कवि रंकर पण्णिकर ने 'श्रीकृष्ण- विजय' और 'भारत माला' नामक दो काव्य-ग्रन्थ रचे थे। तीसरे कवि राम पण्णिकर थे, जो उपर्युक्त दोनों कवियों के भाँजे लगते थे। केरल के प्राचीन कवियों में राम पण्णिकर का प्रमुख स्थान है। रामपण्णिकर ने 'रामायण', 'भारत', ब्रह्माण्ड पुराण 'शिवरात्रि-माहात्म्यम्', 'भागवत' का दशम स्कन्ध आदि ग्रन्थ रचे थे। इनके काव्यों में अनेक स्थानों पर बालवार्त्ता से मिलने-जुलने वाले विचार पाये जाते हैं। मलयालम के कृष्ण-काव्य के रचयिताओं श्री चेरुरेशेरी नंपूतिरि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका आविर्भाव-काल १५ वीं शताब्दी में माना जाता है। उनकी रचना 'कृष्ण-गाथा' में जनता पर अपरिमित प्रभाव डालता है। 'कृष्ण-गाथा' के अध्ययन से कवि के श्री कृष्ण के अनन्य भक्त होने का प्रमाण मिल जाता है। 'कृष्ण-गाथा' में गीत-पद्धति ही अपनायी गयी है। 'कृष्ण-गाथा' के पद संगीत और नृत्य के उपयुक्त हैं।

मलयालम मयित-साहित्य में स्तुतच्छन सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं जिनका समय १६ वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। मलयालम भाषा और साहित्य श्री स्तुतच्छन के चिर कृणी हैं। अपनी ज्ञान-पिपासा को कुलाने के लिए स्तुतच्छन ने कई साधुओं का सत्संग किया था और अनेक स्थानों की यात्रा की थी। स्तुतच्छन के कई काव्य-ग्रन्थों में 'अव्यात्म रामायण' और 'भारतम्' ही सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं। एक मलयालम विद्वान् के अनुसार स्तुतच्छन के दोनों काव्य 'रामायण' और 'भारतम्' केरली साहित्य नभोर्मंडल में सूर्य और चन्द्र हैं। 'भारतम्' कृष्ण-मयित-काव्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। स्तुतच्छन की रामायण से पता चलता है कि वे किसी विशिष्टाचार्य के शिष्य रह चुके थे। स्तुतच्छन सम्मिल, तेलुगु

---

१- हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-मयित-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन - डा०

के० मास्करन नायर पृ० ५४

२- स्तुतच्छन - ले० पी० के० नारायण पिल्ला पृ० २४

बादि भाणार्द भी जानते थे। तमिल के वैष्णव भक्ति-साहित्य ने अवश्य ही उन्हें प्रभावित किया होगा। कृष्ण-कथा को लेकर काव्य रचनेवाले एक अन्य प्रमुख कवि हैं, पुन्तानम् नृपतिरि। उनकी कृष्ण-भक्ति प्रधान और रचनार्द मिलती है, जिनमें "सन्तानगीपासम् पाना", "श्री कृष्ण कर्णाभूतम्", "ज्ञानव्याना", "पार्थसारथी स्तवम्" और "कृष्ण लीला" प्रमुख हैं। कवि की रचनाओं से उसके उच्च कोटि के कृष्ण-भक्त होने की बात स्पष्ट हो जाती है। गीत-पद्य में रचित इन ग्रन्थों के फल भक्त-हृदय को आत्म-विमोह कर देने वाले हैं।

### कन्नड़-

कन्नड़ में विप्लव भक्ति-साहित्यका सर्वप्रथम १२ वीं शती के पश्चात् ही हुआ। कन्नड़ का भक्ति-साहित्य दो प्रमुख संप्रदायों के अन्तर्गत उपलब्ध होता है। एक वीर शैव संप्रदाय है और दूसरा माध्व-संप्रदाय। विप्लवों के अनुसार वीरशैवमत और वात्सव्य के तमिल नाडु के शैव सिद्धान्त से प्रभावित हुआ है। वह एक नयी सामाजिक व्यवस्था को लेकर प्रवर्तित हुआ आन्दोलन है।

माध्वमत का वाविर्भाव संकराचार्य के मायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। श्री माधवाचार्य के वाविर्भाव के पहले ही श्री रामानुजाचार्य ने कर्नाटक में विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार किया था। अपने को विविध कष्ट पहुँचाने वाले शैव मतावलम्बी चोल राजा के अत्याचार से बचने के लिए श्री रामानुज तमिल नाडु को छोड़कर कर्नाटक के होयसल राजाओं<sup>श्री शरण में गये और उन्हें ३ने राजाओं</sup> का आश्रय प्राप्त हुआ था। (सन् १०८८) श्री रामानुज ने मैसूर के समीप "मेलकोट" नामक स्थान में रहकर कर्नाटक की जनता के बीच अपने मत का प्रचार किया। उन्होंने जैन राजा विट्ठल शैव को विष्णु वर्धन के नाम से अपनी संप्रदाय में दीक्षित किया। उस घटना के पश्चात् पूर्व कर्नाटक-प्रदेश में श्री वैष्णव मत का अधिक प्रचार हुआ। यों कह सकते हैं कि चूंकि रामानुज वात्सव्यों की विचार-धारा से स्वयं प्रभावित थे, अतः

रामानुज के माध्यम से वात्सवार्थों के मथितमार्ग का ही कर्नाटक में प्रचार हुआ । विशिष्टांत में जो हैत और मथित- तत्व प्राप्त हुए उनका पूर्ण विकास मध्वाचार्य के हैत में हुआ । श्री मध्वाचार्य के इसी संप्रदाय के मन्त्रों की एक पंढरी बाने चलकर संगठित हुई जिसका नाम कर्नाटक में 'वाल्क्यूट' पठा और वे मन्त्र हरिदास कहलाये ।

फयसुगीन मथित- साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्ध के जिन सामान्य तत्वों की चर्चा हमने पहले की है, उन सभी तत्वों को हम हरिदासों के मथित- साहित्य में पाते हैं। मथित का सर्वोपरि महत्व, नाम- महिमा, स्तुति, शरणार्णति, गुरु- महिमा , सत्संग और वैराग्य ये तत्व सामान्य रूप से हरिदासों के मथित- साहित्य के तत्व हैं। हरिदासों की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने वात्सवार्थ मन्त्रों की तरह अपनी मथित- साधना में संकीर्तन- पद्धति का कर्नाटक में प्रचार किया । मन्दिरों में जाकर ये हरिदास मन्त्र गीत गाया करते थे । "हरिदासों" की परंपरा में श्री पदराय १५ वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए । उन्होंने पहली बार माध्यम मठों में संस्कृत के माध्यम से चलने वाली पुरानी परिपाटी को तोड़कर कन्नड़ में लिखे कीर्तन- मन्त्र गाने का प्रबन्ध किया । कन्नड़ में उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- प्रमणीत, वेणुगीत और वीपी गीत । कैलोर से प्रकाशित "हरिकीर्तन तरंगिणी" के बड़े भाग में श्री पदराय के लगभग ६० पद दिये मिलते हैं। मथित और संगीत की दृष्टि से इन पदों का बड़ा महत्व है । श्री पदराय के समय के एक अन्य हरिदास मन्त्र हैं, श्री व्यासराय, जिन्होंने कन्नड़ में बहुत अच्छे मथित-गीत रचे हैं। कन्नड़ के हरिदासों में दो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वे हैं- पुरन्दरदास और कन्नदास । पुरन्दरदास मन्त्र और गायक थे । इनका समय १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और १६ वीं का पूर्वार्द्ध है। हरिदासों में यह प्रसिद्ध है कि पुरन्दरदास ने "पुरन्दर विठ्ठल" के नाम से चार लाख पन्धर हजार पद बनाए थे । परन्तु अब तक उनके ५००० के लगभग पद प्राप्त हुए हैं। पुरन्दरदास ने स्वयं महान् संगीताचार्य होने के कारण, हरिदासों में संकीर्तन- पद्धति को प्रोत्साहन दिया । पुरन्दरदास के मन्त्रों की लोक- प्रियता के कारण बाने चलकर वात्स-

णात्य संगीत का नाम कर्नाटक संगीत पड़ा ।

कर्नाटक के हरिदासों में पुरन्दरदास के बाद लोकप्रियता की दृष्टि से कनकदास का स्थान है। कुछ विद्वानों का मत है कि कनकदास श्री वैष्णवमत ( रामानुज संप्रदाय ) को माननेवाले मन्त थे । इसके प्रमाण- रूप में वे कनकदास कृत- " मोहन- तरंगिणी " से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। श्रीकारमकर का मत है कि संभवतः कनकदास अपने जीवन के आरम्भिक समय में रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव संप्रदाय के प्रति आदर का भाव रखते थे । लेकिन सन् १५२५ में व्यासराय से दीक्षा लेने के उपरान्त वे माध्वमत के फले अनुयायी हो गये । कुछ भी हो, कनकदास पर श्री वैष्णव मत का आंशिक प्रभाव अवश्य पड़ा है। कनकदास उच्चकोटि के भक्त, विचारक और कवि थे । उन्होंने हजारों भजनों के अतिरिक्त ५ काव्य-कृतियाँ भी रची हैं। वे हैं- " नरसिंह स्तोत्र ", " मोहन- तरंगिणी ", " रामचान्य-मंत्र ", " हरि- भक्ति-सार " और " नल चरित्रे । " " हरि-भक्ति- सार " में भक्ति का सर्वोपरि महत्व , नाम- महिमा आदि वर्णित हैं। कनकदास एक सुधारक भी थे । उनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचय उनकी कृतियों से मिलता है। कह सकते हैं कि पुरन्दरदास और कनकदास कन्नड़- साहित्य में दो अमर नाम हैं।

#### पार्वती भक्ति- संप्रदायों पर प्रभाव-

भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास की सबसे विशिष्ट और महत्वपूर्ण घटना भक्ति का जन- आन्दोलन है। भक्ति- आन्दोलन का उदय तो तमिल- प्रदेश में हुआ था । परन्तु उसकी देश व्यापी बनाने का श्रेय बालवाराँ के पत्तात् जानेवाले आचार्यों को है। दक्षिण के इन आचार्यों ने शंकर के मायावाद का सफ़्फन करने के निमित्त अपने दार्शनिक मतों की स्थापना की और ज्ञान- मार्ग को अपेक्षा सरलतर भक्ति- मार्ग की प्रतिष्ठा जनता में की । भक्ति- तात्त्वों

१- *Mystic teachings of the Haridasas of Karnatak,*  
Dr. A. P. Karmarkar, page 69.



के विवेचन की प्रेरणा इन लोगों को पूर्व<sup>१</sup> मक्त्याचार्य आलवारों के "प्रबन्धम्" से मिली। आलवार तथा आचार्य दोनों ही विष्णु भक्ति के जीवन्त प्रतिनिधि थे, परन्तु दोनों में एक পার্থक्य है। आलवारों की भक्ति उस पावन सत्ता सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है जो स्वयं उद्बलित होकर प्रसर गति से बहती जाती है और जो कुछ सामने आता है उसे तुरन्त बहाकर जग फेंक देती है। आचार्यों की भक्ति उस तरंगिणी के समान है जो अपनी सदा जमाए रखने के लिए रुकावट डालने वाले विरोधी पदार्थों से लड़ती फाँड़ती आगे बढ़ती है।

आलवारों की विचार-धारा का पर्याप्त प्रभाव उनके परवर्ती काल में जन्म लेने वाले दार्शनिक मतों पर पड़ा है। सबसे अधिक प्रभाव श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत पर देखा जा सकता है। विशिष्टाद्वैत-दर्शन का सूत्रपात तो श्री नाथमुनि के समय में ही हो गया था। "प्रबन्धम्" के फल<sup>२</sup> का प्रचार करने वाले श्री नाथमुनि ने आलवारों की विचार-धारा<sup>३</sup> कुछ शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया था। उस विचार-धारा को दार्शनिक रूप देकर सुदृढ़ दार्शनिक धरातल पर डालने का श्रेय श्री रामानुजाचार्य को है। स्वयं श्री रामानुजाचार्य ने "प्रबन्धम्" के महत्व को जानकर उसका प्रचार अपने शिष्यों के द्वारा कराया था। अपने सिद्धान्तों के विवेचन के लिए उन्होंने "प्रबन्धम्" से बड़ी सहायता ली है। संप्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि वेद के तात्पर्य को समझने में कहीं भी कठिनाई होती तो श्री रामानुज "प्रबन्धम्" से उसके तात्पर्य को समझकर सन्तुष्ट हो जाते थे। बाण्डाल कृत तिरुप्पावै के प्रति श्री रामानुज का इतना प्रेम था कि श्री रामानुज को तमिल-प्रदेश में "तिरुप्पावै-जीवर" (तिरुप्पावै-प्रेमी) कहा जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि श्री रामानुज ने भक्ति-तत्त्वों के विवेचन में "प्रबन्धम्" से अवश्य आधार लिया है। श्री रामानुज पर फल<sup>४</sup> "प्रबन्धम्" के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए श्री अण्णाराचार्य स्वामी जी ने "द्राविडोपनिषद् प्रभाव सर्वस्वम्" नाम से

एक ग्रन्थ समित्त में लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने बनेक प्रमाण द्वारा यह स्थापित किया है कि श्री रामानुज पर "प्रबन्धम्" का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यहां विस्तार में नहीं जाकर, संक्षेप में बालुवारों की विचार-धारा और विशिष्टाद्वैत-दर्शन में दील पढ़ने वाले साम्य की ओर संकेत करना पर्याप्त है।

बालुवार भक्त मानते हैं कि ईश्वर समस्त जगत् का निमित्त कारण होते हुए भी उपपादान कारण है। जगत् की सृष्टि भगवान् की सीला से उत्पन्न है। जीव और जगत् की नित्य तथा स्वतः स्वतन्त्र प्रकृति है, तथापि ईश्वर के इन दोनों के भीतर अन्तर्भाव की रूप से विद्यमान होने के कारण ये उसके अधीन रहते हैं। अतः जीव और जगत् ब्रह्म के शरीर या प्रकार माने जाते हैं। ब्रह्म और जीव के बीच शैली-शैली, की-की सम्बन्ध है। बालुवारों ने माना है कि भगवान् भक्त पर अनुग्रह करने के लिए पांच रूपों में प्रकट होता है :- पर रूप, व्यूह रूप, विभव रूप, अन्तर्भाव रूप और अर्वाचनार रूप। बालुवारों के ये दार्शनिक विचार ही पूर्णरूपेण विशिष्टाद्वैत-दर्शन में स्वीकृत हुए हैं। शंकर के "जगन्निष्पत्त्या" के विरुद्ध बालुवारों की धारणा पड़ती है, जिसे ही रामानुज ने स्वीकार कर शंकर के मायावाद का सफाई किया।

श्री रामानुज ने अपने संप्रदाय की एक गद्दी मैसूर में स्थापित कर अपने विशिष्टाद्वैतादी विचारों का प्रचार किया। इस प्रकार बालुवारों की महित-प्रकृति से पुष्ट रामानुज-संप्रदाय के विचारों का कर्नाटक में प्रचार हुआ। किन्तु रामानुज की मृत्यु के सौ वर्षों के भीतर एक अन्य मत कर्नाटक में उत्पन्न हुआ, जिसके प्रतिष्ठापक थे श्री मध्वाचार्य। माध्वमत व्यवहार-पदा में पूर्ण रूप से भक्तिवादी है। उसका अध्यात्म-पदा भेदवादी अर्थात् द्वैतादी है। श्री रामानुज के और श्री मध्व के महित-सम्बन्धी विचारों में बहुत कुछ साम्य है। परंतु जीव और ईश्वर के सम्बन्ध के विषय में मतभेद नहीं है। माध्व मत जीव, जगत्, ईश्वर आदि में पारस्परिक भेद मानता है। श्री मध्व ने मते ही एक भिन्न दार्शनिक

---

१- इस विषय पर प्रथम अध्याय में विस्तार से लिखा जा चुका है।

मत लडा किया हो, किन्तु उस नये मत की प्रेरणा भी उन्होंने श्री रामानुज की विचार-धारा से ही प्राप्त की है। मध्व ने भी ( जाल्वार और ) रामानुज की तरह ईश्वर के विचार के विरुद्ध जगत् को सत्य माना है। श्री मध्वाचार्य ने अपने सिद्धान्तों के निरूपण के लिए ग्रन्थ प्रणयन करने के पूर्व सारे दक्षिण भारत की यात्रा की थी। तमिल-प्रदेश में यात्रा करते समय उन्होंने जाल्वार ग्रन्थों का परिचय उनके ऊपर निकले माध्य द्वारा प्राप्त किया होगा और वार्षिक रूप में "प्रबन्धम्" की विचार-धारा को अपनाया होगा। यह मानना ही उचित है कि श्री मध्व पर जाल्वारों के विचारों का प्रभाव श्री रामानुज के विशिष्टादित के माध्यम से पडा।

दक्षिण के तीसरे प्रमुख आचार्य निम्बार्क हैं। आचार्य निम्बार्क ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध में भेदाभेद या द्वैतादित के प्रतिपादक हैं। उनकी मान्य सम्मति में जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है, अभिन्न भी। यह निम्बार्क मत का विशिष्ट तत्व है। निम्बार्क मत के मयित-सम्बन्धी विचारों में तथा उनके पूर्व के आचार्यों के विचारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। निम्बार्क मत में भगवान् की प्राप्ति का साधन मयित है। यही जाल्वारों का भी विचार है। निम्बार्क मत में यह मयित पांच भावों से पूर्ण कही गयी है- शान्त, दास्य, सत्य, वात्सल्य और उज्ज्वल। उज्ज्वल रस के भक्त गोपी और राधा हैं। जाल्वारों ने पहले से ही इन पांच प्रकारों की मयित का निरूपण किया है। उज्ज्वल भाव की मयित ही है। जाल्वारों का "प्रपत्ति-तत्त्व" भी निम्बार्क मत में स्वीकृत है। चूंकि निम्बार्क दक्षिण के ही आचार्य थे तथा उनके समय तक दक्षिण भारत में जाल्वारों के विचारों का प्रचार हो चुका था, अतः यह मानना संगत ही है कि श्री निम्बार्क ने मयित-विवेचन में वार्षिक रूप में ही सही, जाल्वारों की विचार धारा का आधार लिया था।

दक्षिण भारत में उत्पन्न एक अन्य संप्रदाय विष्णुस्वामी-संप्रदाय है। इस संप्रदाय के प्रतिष्ठापक श्री विष्णुस्वामी तमिल प्रदेश के कांचीपुरम् नगर के वासी माने जाते हैं। इनका काल निश्चित रूप से जाल्वारों के पश्चात् ही

पड़ता है। विष्णुस्वामी की विचार- धारा और बालवारों की विचार- धारा में बहुत कुछ साम्य है। विष्णुस्वामी का वाकिर्भाव उस समय हुआ जबकि तमिल-प्रदेश में 'प्रबन्धम्' का महत्व प्रकाश में आ रहा था। अतएव विष्णु स्वामी की विचार- धारा पर 'प्रबन्धम्' के वांशिक प्रभाव के पड़ने की संभावना अवश्य है।

उपर्युक्त संप्रदायों के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के प्रवर्तक वाचार्यों में जो भी तमिल-प्रदेश में जाये और तमिल-प्रदेश के विभिन्न मण्डित-क्षेत्रों की यात्रा कर गये, वे बालवारों के विषय में अवश्य विवरण प्राप्त कर सके। उन वाचार्यों ने बालवारों की पूर्व प्रचारित मण्डित- पद्धति को न्यूनाधिक रूप में मान्यता दी है। यही कारण है कि उत्तर के बल्लभ- संप्रदाय और चैतन्य संप्रदाय के मण्डित सम्बन्धी विचारों और बालवारों के विचारों में बहुत कुछ साम्य दोल पड़ता है।

#### १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण- मण्डित- काव्य का मूल्यांकन-

हस्त की १६ वीं शती हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट महत्व रखती है। जितने विशाल साहित्य का निर्माण इस एक शताब्दी में हिन्दी में हो सका है, उतना उसके पहले या बाद में किसी एक शताब्दी में संभव नहीं हो सका। परिमाण में ही क्यों, विषय की गंभीरता की दृष्टि से भी १६ वीं शती का हिन्दी साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। इस शताब्दी में ही हिन्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि विद्यमान थे। राम- मण्डित- काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गो-स्वामी तुलसीदास, भुक्ती प्रेम- काव्य के मूर्धन्य कवि मल्लिक मुहम्मद जायसी और कृष्ण मण्डित- काव्य के 'सूर' मन्त प्रवर सूरदास इसी शताब्दी को अर्जित करने वाले कवि श्रेष्ठ हैं। हिन्दी के समस्त मण्डित- साहित्य का महत्व- केन्द्र १६ वीं शती का साहित्य ही है। बालीव्य हिन्दी कृष्ण मण्डित- काव्य का मूल्यांकन कई दृष्टिकोणों से वागे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया जाता है।

हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य-परम्परा में १६ वीं शती के

कृष्ण-भक्ति-काव्य का स्थान-

कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी में कृष्ण-भक्ति-काव्य की सर्वना विवेक रूप से १६ वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुई और उसके पूर्व की कृष्ण-भक्ति-प्रधान कोई विशिष्ट रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है-“सोलहवीं शताब्दी से पहले भी कृष्ण-काव्य लिखा गया था लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में है जैसे अय्यव कृत गीत-गोविन्द या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिल कौकिल विद्यापति कृत पदावली। ब्रज भाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।” परन्तु आधुनिक शोध के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि ब्रज-भाषा में १६ वीं शती के पूर्व भी कृष्ण-भक्ति प्रधान कुछ अच्छी रचनाएँ हुई थीं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपने शोध-ग्रन्थ “सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य” में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि हिन्दी में कृष्ण-काव्य की परंपरा काफी पुरानी है, कम से कम उसका प्रारम्भ १२ वीं शताब्दी तक तो मानना ही पड़ता है। ब्रज भाषा की जननी शौरसेनी अपभ्रंश में श्रीकृष्ण सम्बन्धी काव्य लिखे गये थे। उनमें सर्वाधिक महत्व की रचना पुष्पकान्त कवि का महापुराण है, जिसमें कृष्ण-जीवन का विशद चित्रण किया गया है। इस में कृष्ण-भक्ति का स्पष्ट रूप तो दोल नहीं पड़ता, बल्कि कृष्ण-जीवन से संबंधित अनेक घटनाएँ वर्णित हुई हैं। १२ वीं शताब्दी में हेमचन्द्र के द्वारा संकलित अपभ्रंश के दोहों में दो ऐसे हैं जिनमें कृष्ण सम्बन्धी चर्चा है।

कृष्ण-भक्ति-काव्य का वास्तविक रूप फैल ब्रजभाषा में १४ वीं शती के आस-पास निर्मित होने लगा। प्राकृत फैलन् का रचना काल

१- नाम माहात्म्य - श्री ब्रजकि - आस्त १६४० ब्रजभाषा नामक लेख से

२- सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य- डा० शिवप्रसाद सिंह पृ० २६०



१४ वीं शती के पहले का माना जाता है। यह एक संकलन ग्रन्थ है जिसमें १४ वीं शती तक के फिनिश ब्रजभाषा के काव्यों से इन्हीं के उदाहरण दिये गये हैं। इसमें कृष्ण-मधित सम्बन्धी कई पद संकलित हैं। कृष्ण के अतिरिक्त शंकर, विष्णु आदि की स्तुति भी कई पदों में की गई है। इन पदों का विश्लेषण करने पर मधित के कई तत्वों का संधान मिलता है। प्रेम मधित का सुन्दर और मार्मिक चित्रण हुआ है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त १६ वीं शती के पूर्व की ब्रजभाषा में रचित कुछ ऐसे रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमें कृष्ण-मधित का कोई न कोई रूप मिल जाता है।

प्रायः विद्वान् १६ वीं शती के पूर्व के दो विशिष्ट कृष्ण-मधित प्रधान ग्रन्थों की खोज करते हैं, जिनमें १६ वीं शती तथा बाद के हिन्दी कृष्ण-मधित कवियों को प्रभावित किया है। वे हैं- जयदेव कृत "गीत गोविन्द" और मैथिल कोकिल विद्यापति की "पदावली"। जयदेव कृष्ण राजा लक्ष्मण सेन (१२ वीं शती) के दरबार के कवि थे। जयदेव ने "गीत गोविन्द" में कोमल-कांत-पदावली में राधा-कृष्ण-प्रेम का वर्णन प्रस्तुत किया है। जयदेव के पद शृंगारयुक्त होने पर भी उनके मधुर संगीत ने अनेक परवर्ती कवियों को प्रभावित किया है। जयदेव के विरुद्ध अनुरक्त मूलक और शृंगारपरक भाव-धारा के उत्तराधिकारी मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। विद्यापति सन् १४०० ई० के आस पास जीवित थे। प्रधानतः इन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत में लिखीं। उनके लिखे पद संस्कृत के अतिरिक्त अवहट्ठ और मैथिली में भी मिलते हैं। विद्यापति ने अपनी कविता में राधाकृष्ण-प्रेम का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसमें शृंगार का प्रस्फुटन स्पष्ट रूप से मिलता है। विद्यापति के मधत-हृदय का रूप उनकी वासनामयी कल्पना के आवरण में छिप जाता है। डा० रामकृष्ण वर्मा का कथन है - "विद्यापति ने राधा-कृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रबल है। आराध्य देव के प्रति मधत का जो विचार होना चाहिये, वह उसमें लेशमात्र भी नहीं है।" विद्यापति

---

१२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकृष्ण वर्मा पृ० ५५८  
चतुर्थ संस्करण

के कुछ ऐसे भी पद मिलते हैं जिनमें विशुद्ध भक्ति के दर्शन होते हैं। किन्तु ऐसे पद बहुत कम हैं।

हिन्दी में भक्ति प्रधान कृष्ण-काव्य का प्रणयन विशेष रूप से १६ वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ। दक्षिण से बानेवाले भक्ति-बान्दी-जन के प्रवाह ने १४ वीं - १५ वीं शताब्दियों में हिन्दी-प्रदेश को व्याप्त कर दिया और १५ वीं शती के उत्तरार्द्ध में समस्त हिन्दी-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण उत्पन्न कर दिया। फलस्वरूप अनेक भक्ति-संप्रदायों का जन्म हुआ। वृन्दावन को केन्द्र बनाकर कई कृष्ण-भक्ति प्रधान संप्रदाय पनपे। इन संप्रदायों से प्रभावित होकर भक्त कवि गण साहित्य-सर्जन करने लगे। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर काव्य के क्षेत्र में उदात्त करने वाले इन विभिन्न संप्रदायों के कवियों ने १६ वीं शती में उच्च कोटि के भक्ति-साहित्य का निर्माण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शताब्दी में भक्ति का स्वर सबसे ऊँचा था। बल्लभ-संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, राधावल्लभीय संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय के सभी श्रेष्ठ कवि इसी शताब्दी में हुए। इन कवियों ने अपने अपने संप्रदाय के अन्तर्गत रहकर ही कृष्ण-भक्ति-काव्य का सर्जन किया। फिर भी उनका सारा काव्य भक्ति-भावना से ओतप्रोत है। भक्ति-भावना और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से १६ वीं शती का क्रमशः कृष्ण-काव्य अधिक समृद्ध है। ( इस काव्य के भाव-पदा और कला-पदा का विस्तृत विवेचन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। )

१६ वीं शती के परन्तु भी हिन्दी में अनेक कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं। १७ वीं शती के उत्तरार्द्ध में अनेक कवियों का मुकाबल शृंगार की ओर अधिक रहा। १६ वीं शती में भक्ति के क्षेत्र में जो भावावेश था, वह १७ वीं शती के अन्त में के काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं - " विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के लगभग धार्मिक काल की पवित्रता नष्ट होने लगी थी। उसमें शृंगार के अत्यधिक प्राधान्य ने वासना के बीज को दिये थे। राधा और कृष्ण की विनय अब कविता और संवैयों में प्रकट होकर

नायिका और नायक के भेदों की कौतूहल-वर्धक पहलियाँ सुलझाने लगी थीं।<sup>१</sup> तात्पर्य यह है कि १६ वीं शती के बाद के कृष्ण-काव्य में भक्ति-भावना का प्राधान्य नष्ट हो गया। इस प्रकार हिन्दी में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परंपरा पर दृष्टि डालते समय यह स्पष्ट होजाता है कि सोलहवीं शती का ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य ही हिन्दी का सर्वाधिक समृद्ध कृष्ण-भक्ति-काव्य है।

भक्ति-बान्दीजन और १६ वीं शती के

हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवि

पहिले सिखा जा चुका है कि दक्षिण से जानेवाले भक्ति-बान्दीजन ने ईसा की १४ वीं १५ वीं शताब्दी में हिन्दी-प्रदेश में जाकर एक व्यापक जन-बान्दीजन का रूप धारण कर लिया। समस्त हिन्दी-प्रदेश में १५ वीं और १६ वीं शताब्दियों में भक्ति-बान्दीजन के व्यापक प्रभाव के दर्शन किये। भक्ति इस युग की सबसे ऊँची जावाजु थी। भक्त-कवियों ने जनता की भाषा में उच्च कोटि के भक्ति-भावों को अभिव्यक्त कर एक भक्तिमय वातावरण उप-स्थित कर दिया। इस युग के भक्ति-बान्दीजन के व्यापक रूप के विषय में बार-बार चर्चित होकर डा० ग्रियर्सन कहते हैं -<sup>२</sup> कोई भी व्यक्ति जिसे कि १५ वीं शताब्दी तथा बाद की शताब्दियों के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस भारी व्यसधान की लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता, जो प्राचीन एवं नूतन धार्मिक भावनाओं में दृष्टिगोचर होता है। हम अपने को इस प्रकार के धार्मिक बान्दीजन के सामने पाते हैं जो उन समस्त बान्दीजनों से कहीं अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। इस युग में धर्म, ज्ञान का नहीं, अपितु भावावेश का विषय हो गया। यहीं से हम साधना एवं प्रेमोल्लास के प्रदेश में प्रवेश करते हैं।<sup>३</sup> भक्ति-बान्दीजन को व्यापक और शक्तिशाली जन-बान्दीजन के रूप में

---

१- हिन्दी साहित्य का बालीवनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० ६१६ चतुर्थ संस्करण।

परिणत करने में १६ वीं शती के हिन्दी-मवित-साहित्य का बड़ा हाथ रहा है। कितने ही मवत इन मवत कवियों के पदों को गा-गाकर आत्म विमोर हो जाते थे। समस्त समाज ने इस युग के मवित-साहित्य-सागर की तरल तरंगों में मज्जन और अवगाहन कर चिर शांति प्राप्त की। मवित-आन्दोलन की आलोच्य हिन्दी कृष्ण-मवित-काव्य की देन बड़ी महत्ता की है।

### १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मवित-काव्य का

#### व्यापक प्रभाव

#### (ब) धार्मिक और सामाजिक जीवन-

आलोच्यकालीन कृष्ण-मवित-काव्य में तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन की सुन्दर भाँकी मिलती है। हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री हमें आलोच्य हिन्दी कृष्ण-मवित-काव्य में मिल जाती है। आलोच्य कृष्ण-काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित संस्कार, पूजा, व्रत, उत्सव, मनोरंजन, विश्वास आदि के न्यूनाधिक विवरण मिलते हैं। हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों ने अपने काव्य में अनेक उत्सव और पर्वों का विस्तृत वर्णन किया है। इन उत्सवों में दधिकांधा, उत्सव, दीपावली, अन्नकूटोत्सव, गोवर्धन पूजा, फाग (होली) आदि का विस्तृत परिचय मिलता है। इन उत्सवों के अवसर पर तत्कालीन लोक में विविध प्रकार के गीत गाये जाते थे। परवर्ती काल में इन अवसरों पर आलोच्य कवियों के तत्सम्बन्धी गीत गाये जाने लगे।

उत्सवों के अतिरिक्त कृष्ण-मवत कवियों ने विविध संस्कारों का भी विवरण किया है। कृष्ण-काव्य में वर्णित संस्कारों में जन्म-संस्कार, नामकरण संस्कार, अतीषात संस्कार, विवाह संस्कार, वंत्थेष्टि संस्कार, आदि का हमें विस्तृत विवरण मिलता है। आलोच्य कृष्ण-काव्य में विशेषकर

अष्टहाप-काव्य में ब्रज संस्कृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। विविध शृंगार, स्त्री-शृंगार, पुरुष शृंगार, बाल-शृंगार, साधुओं का शृंगार, केश-कलाप, विविध वामभूषण आदि रस का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ब्रजवासियों के विविध विश्वास और मान्यताओं का भी परिचय मिलता है। ब्रज-वासियों में पुनर्जन्म, जादू-टोना, शकुन-अपशकुन आदि अनेक बातों में विश्वास था। वे अपने वैदिक जीवन में इन बातों का ध्यान रखते थे। तत्कालीन समाज में नारी का बड़ा स्थान था, इसका भी पता चल जाता है।

विवाह, जन्म, रास, पर्व, त्योहार, उत्सव आदि पर अथवा अन्य मौल के अवसरों पर प्रसन्नता प्रकट करने के लिए जिन वाक्-यन्त्रों का प्रचलन था, उनका भी परिचय मिलता है। ब्रज में मनोरंजन के लिए बल-झीड़ा, रास, खेल, छिछोरे, बाछेट, चाँफड़, चाँगान आदि का प्रयोग होता था। मनोरंजन के विविध साधनों का विवरण मिलता है। ब्रज समाज में ब्रातण, कृष्ण आदि का बड़ा स्थान था, इसका भी पता चलता है। जातिधर्म, सत्कार, शिष्टाचार और अभिवादन के ढंग का भी परिचय मिलता है। तात्पर्य यह है कि जालौज्य कालीन कृष्ण-काव्य में सामाजिक और धार्मिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। कृष्ण-मधत कवियों ने अपने काव्य में तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का परिचय दिया है। ब्रज-संस्कृति के अध्ययन में जालौज्य कृष्ण-मधित-काव्य बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

#### (आ) विविध कलाओं पर प्रभाव-

विविध कलाओं की भी वृद्धि में जालौज्यकालीन कृष्ण-मधित-काव्य का योगदान स्वीकार्य है। शिल्प कला, चित्र कला और संगीत नृत्य-कला पर प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-मधित-काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बहुत प्राचीन काल से ही इस देश में मन्दिरों का निर्माण



होता जा रहा है। विदेशी शासकों के शासन काल में धार्मिक स्वातंत्र्य के न होने के कारण " मन्दिर-निर्माण " में बाधा पड़ी। सोलहवीं शती में अकबर के शासन काल में उसकी धार्मिक उदारता के कारण अनेक पुराने मन्दिरों की मरम्मत और नये मन्दिरों के निर्माण की अवसर मिला। उस समय के चार प्रमुख मन्दिर आज भी पथुरा में हैं। भक्ति-संप्रदाय के प्रवर्तक बाबायों के प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक मन्दिर निर्मित हुए। मन्दिरों में समारोहपूर्वक पूजन, भजन, गायन, वन्दनादि की व्यवस्था हुई। इन अवसरों पर कृष्ण-भक्त-कवियों के पद गाये जाते थे। मन्दिरों में स्थित भगवद्ग्रन्थों की सजावट, शृंगार, बाह्य रूप आदि के निर्णय में कृष्ण-भक्ति-काव्य का बड़ा हाथ था। कृष्ण-भक्त-कवियों ने अपने काव्यों में अपने आराध्य के जिन जिन रूपों का वर्णन किया है, उनके अनुरूप मूर्तियाँ बनती थीं और उनका शृंगार होता था।

बालीयक कृष्ण-भक्ति-काव्य ने चित्र-कला की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया है। कृष्ण-भक्त-कवियों की चित्र-योजना हिन्दी-काव्य के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखती है। कृष्ण की रूप-प्रीति तथा उनकी लीलाओं के चित्रण के लिए इन कवियों ने अपनी कविता का ग्रन्थि-बन्धन चित्र-कला के साथ किया और तत्कालीन चित्रकला को अनन्त सौन्दर्य की निधि राधा-कृष्ण जैसा आलम्बन प्रदान किया। इन कवियों की रचनाओं की आधार-भूमि पर पल्लवित और विकसित मध्यकालीन चित्रकला की राजपूत शैली में राधा और कृष्ण की लीलाएँ उतनी ही सजीव और प्राणवन्त हैं जितनी कि कृष्ण-भक्त-कवियों द्वारा वर्णित लीलाएँ। दोनों में एक आश्चर्यजनक स्वरूपता है, जिससे इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि ये कवि चित्रकला में भी सिद्धहस्त थे। चित्रकला में अपनी इसी प्रीणता के कारण उन्होंने अनेक भावना-चित्रों का निर्माण किया है, जिनमें रूप भेद, रूप की प्रतीति, चित्र के विभिन्न तत्वों में संतुलन और सार्म्यस्य, भाव-योजना, लावण्य-योजना, वर्णिका-भंग इत्यादि का सफल निर्वाह किया गया है। उनकी अनुभूति के कारण इन चित्रों में अमर हो गये हैं।

---

१- ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य में अभिव्यञ्जना-शिल्प - डा० सावित्री

सिन्हा पृ० ४७६

जिस तरह कृष्ण - मन्त्रि- कवियों की चित्र- योजना ने चित्रकला को वाधार- भूमि प्रदान की, उसी तरह संगीत के उस उत्थान- युग में उनका योग बहुत महत्वपूर्ण रहा । इन कवियों ने शास्त्रीय संगीत को एक नई दिशा में मोड़ दिया । साथ ही साथ उन्होंने लोक- संगीत के विभिन्न उपकरणों का परिष्कार किया । बालोच्च्य कवियों की रचनाओं में उस समय में प्रचलित प्रमुख संगीत- शैलियों का प्रयोग हुआ है। ध्रुवपद शैली और धमार शैली- दोनों के उपयुक्त पदों का निर्माण उन्होंने किया है। इन दोनों शैलियों के बलावा मजन- कीर्तन और लोक- गीत शैलियों का भी समावेश बालोच्च्य कवियों की रचनाओं में हुआ है। इसके द्वारा उनकी रचनाएँ सर्वसाधारण में अत्यन्त लोकप्रिय हो गयीं । संगीत- शैलियों के प्रयोग के अतिरिक्त इन कवियों ने अपने पदों में विविध राग- रागिनियों का प्रयोग किया है और शास्त्रीय संगीत की श्रीवृद्धि की है।

कृष्ण- मन्त्रि- काव्य में विभिन्न ललित कलाओं का विन्यास इतने संश्लिष्ट रूप में हुआ है कि पृथक् - पृथक् विश्लेषण करना कठिन है । चित्रकला, संगीत- कला, नृत्य- कला आदि कलाओं जिस कला को अधिक प्राधान्य दिया गया है, यह निर्धारित करना कठिन है । बालोच्च्य कवियों की चित्र-कल्पना की संप्राणता का बहुत कुछ श्रेय उनके भारतीय नृत्य की परंपरागत और सामयिक शैलियों के पूर्ण ज्ञान को है। नृत्य की मुद्राओं तथा भावों के कला- पूर्ण प्रदर्शन के लिए ही उन्होंने वाचिक अभिनय ( शब्द का प्रयोग ) किया है। उनके द्वारा नियोजित नृत्यों के माघ- विन्यास और कविता के शब्द विन्यास में पूर्ण सार्मजस्य है। नृत्य की मुद्रा तथा कविता के माघ एक दूसरे के प्रेरक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके नृत्यों में हास्य शैली प्रधान है। ताण्डव की उग्रता के लिए प्रतिपाद्य में कोई स्थान नहीं था । रास- नृत्य की शृंगारिक मुद्राओं और भावों की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने प्राचीन भारतीय नृत्य- शैलियों को ग्रहण किया । बालोच्च्य कवियों के लीला- गान के पदों ने चित्रकला और गायन की भाँति ही नृत्य कला को भी वाधारभूमि प्रदान की ।

---

१- क्रमांश के कृष्ण- मन्त्रि काव्य में अभिव्यञ्जना- शिल्प- डा० सावित्री

सिन्हा पृ० ४८१

### (इ) ब्रजभाषा पर भाव-

मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-काव्य की भाषा एक मात्र ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा की समृद्धि और परिष्करण में १६ वीं शती के कृष्ण-भक्त-कवियों का एक निश्चित और बहुमूल्य योग है। सूरदास जी ने अपने काव्य की भाषा के लिए 'ब्रज भाषा' शब्द का प्रयोग नहीं कर उसे केवल भाषा ही कहा है। ब्रजभाषा के सम्बन्ध में मिर्जातारि ने सन् १६७६ ई० में एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें हिन्दी और 'भासा' दोनों शब्दों को पर्यायवाची माना है। इस ग्रन्थ में ब्रज-प्रदेश और उसके वासवास की बोली को ही 'भासा' कहा गया है। साहित्य में इस भाषा का प्रथम प्रयोग चन्दबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो में माना जाता है। उसके पश्चात् बहुत समय तक साहित्य में ब्रज भाषा का प्रयोग नहीं मिलता। ब्रज भाषा गद्य के प्रथम लेखक गौरसनाथ की बानियों में ब्रजभाषा का प्रथम रूप मिलता है।

ब्रजभाषा में विशेष रूप से साहित्य का आरम्भ उस समय हुआ जब गौवर्धन में श्रीनाथ जी के मन्दिर का निर्माण कर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कीर्तन, भजन इत्यादि की व्यवस्था की थी। उनके वाक्य में सूरदास जी तथा अन्य भक्तों ने ब्रजमण्डल की स्थानीय बोली में गीत लिखे और गाये। इस प्रकार साधारण बोली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित होने की सुवसर मिला। सूरदास जी ने स्थानीय ब्रजभाषा का प्रयोग जिस सुगमता और कुशलता से किया है, वह भाषा की दृष्टि से केजौड़ है। राधावल्लभीय संप्रदाय के संस्थापक श्री हित हरिवंश के काव्य की भाषा निश्चय ही विशुद्ध ब्रजभाषा है। हाँ, उनकी शैली पर

१- सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाई ।

- सूरदासर, दशम स्कन्ध पद २२५

२- सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंश लाल वर्मा पृ० ३०५

३- ब्रजभाषा - डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० १८

४- वही पृ० २२

संस्कृत का प्रभाव अवश्य है। नामादास और नरोत्तमदास ने ब्रजभाषा को एक साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाया है। इसलिये की भाषा में विशुद्धता और बहुमुत प्रवाह है। उनकी भाषा में शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। आलोच्य कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में प्रयुक्त भाषा का निरीक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने संस्कृत और हिन्दी की अन्य उप भाषाओं से शब्द ग्रहण कर ब्रजभाषा के रूप को परिमार्जित और परिष्कृत किया है और कृष्ण की लीला का गान करने के लिए अपनी भाषा में समस्त मधुर उपकरणों का समावेश किया है। नाद-सौन्दर्य और चित्र-कल्पना के समर्थ संयोजन का सबसे बड़ा श्रेय उनकी भाषा को है। प्रतिपाद्य के उपयुक्त भाषा प्रयोग उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वास्तव में प्रारम्भ में ही सूरदास आदि ने ब्रजभाषा को इतना सुन्दर मधुर और आकर्षक बना दिया था कि लगभग ४०० वर्षों तक उत्तर पश्चिमी भारत की कविता का सारा- विराग, प्रेम-प्रतीति, भजन-भाव उसके द्वारा अभिव्यक्त हुआ। आलोच्य कालीन कृष्ण-भक्त कवियों की यह हिन्दी भाषा को सबसे बड़ी देन है।

पिछले पृष्ठों में आलवार भक्तों के तथा १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्यों का जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आलवार-काव्य और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-काव्य अपने अपने क्षेत्रों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भक्ति-काव्य हैं और उनका बहुमुखी प्रभाव भाषा-साहित्य, समाज, कला आदि पर पड़ा है।

#### उपसंहार-

प्रस्तुत अध्ययन के मूल में मुख्य रूप से दो उद्देश्य रहे हैं। प्रथम उद्देश्य यह रहा है कि भारतीय भक्ति-आन्दोलन में आलवार भक्तों के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालना तथा परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभा-

वित करने वाले "प्रबन्धम्" के तत्वों का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करना । चूंकि अभी तक किसी विद्वान् द्वारा बालवार्त्तों के साहित्य का गंभीर अध्ययन नहीं किया गया, अतः उनका वास्तविक महत्वपूर्ण रूप से प्रकाश में आ नहीं सका । "प्रबन्धम्" भक्ति-बान्दोलन का मूल-ग्रन्थ ठहरता है। अतएव भक्ति-बान्दोलन के विशिष्ट सन्दर्भ में उसका मूल्यांकन उचित समझा गया है। दूसरा उद्देश्य यह रहा है कि बालवार्त्तों के भक्ति-काव्य की तुलना १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य से करके कई दृष्टिकोणों से दोनों के साम्य और वैषम्य को स्पष्ट किया जाय ।

भक्ति-बान्दोलन "खिली की चमक" के समान जवानक उत्पन्न नहीं हुआ । उसका काफी लम्बा इतिहास है। इस भक्ति की दीर्घ यात्रा का उद्गम तमिल-प्रदेश है। ईसा की पाँचवीं और छठी शताब्दियों में तमिल-प्रदेश की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों ने बालवार भक्तों को जन्म दिया । बौद्धों और जैनों के गिरे हुए आचार्यों और विचार्यों से तंग जाने-वाली जनता को ऐसा मार्ग दिलाने के लिए जिसमें सब समान रूप से आत्म शान्ति प्राप्त कर सकें और वैदिक धर्म को जो अब तक यज्ञादि कठिन नियमों को फड़े जाया है, सरल बनाकर भुक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व-साधारण के लिए प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारकों की आवश्यकता हुई । इस आवश्यकता की पूर्ति करते हुए बालवार भक्तों ने भक्ति की एक प्रबल धारा बहायी जो बाद की शताब्दियों में उत्तर की ओर प्रवाहित हुई । भक्ति-बान्दोलन को जन-बान्दोलन के रूप में व्यापक और शक्तिशाली बनाने में "प्रबन्धम्" का विशेष हाथ रहा । बताया ही भक्त-हृदय की तंत्रियों को मोकूत कर देने वाले बालवार्त्तों के भाव-मय पदों ने जनता में भक्ति-भावना को जगाकर सर्वत्र एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न कर दिया । बालवार्त्तों के पश्चात् उनकी विचार-धारा से प्रभावित जैन आचार्यों ने भक्ति-बान्दोलन को जारी रखा । फलस्वरूप यह भक्ति-बान्दोलन बाद की शताब्दियों में उत्तर भारत की ओर उन्मुख हुआ । श्रीमद्भागवत में



वालवारीयों के द्वारा चलाये गये इस मभित-बान्दोलन को लक्ष्य करके ही कहा गया है- "उत्पन्ना ब्राविडे सार्ह-----" अतः मभित-बान्दोलन के प्रारम्भिक प्रवर्तकों के रूप में वालवारीयों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका "प्रबन्धम्" मभित-बान्दोलन का मूल ग्रन्थस्थिति ठहरता है कि "प्रबन्धम्" के सामान्य मभित-तत्त्वों ने परवर्ती मभित-साहित्य की और विशिष्ट तत्त्वों ने परवर्ती कृष्णा-मभित साहित्य को व्यापक रूप में प्रभावित किया है।

किसी भी साहित्य का आलोचन जपवा मूल्यार्थन उस साहित्य की तुलना अन्य तत्सम्बन्धी साहित्य से करने पर ही उचित ढंग से हो सकता है। दो साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही विषय विवेचन में सुक्ष्मता जपवा स्पष्टता जा सकती है। १६ वीं शती का हिन्दी कृष्णा-मभित-काव्य कई दृष्टि-कोणों से महत्वपूर्ण है। वालवारीयों के मभित-काव्य से १६ वीं शती का हिन्दी कृष्णा-मभित-काव्य बहुत कुछ मिलता जुलता है। दोनों काव्यों की समान विशेषताओं पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मभित के क्षेत्र में, दार्शनिक विचारों के क्षेत्रों में, किन किन बातों दोनों क्षेत्रों के कवियों के विचार, भाव आदि समान हैं, इसकी एक फाँकी प्रस्तुत की गयी है। काव्य-कला की कसौटी पर दोनों काव्यों का परीक्षण भी किया गया है। निष्कर्ष यह निकलता है कि "प्रबन्धम्" अपने क्षेत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ठहरता है और १६ वीं शती का कृष्णा-काव्य हिन्दी का महान् मभित-काव्य साबित होता है। दोनों का प्रभाव बहुमुखी है। दोनों क्षेत्रों के कवियों के विचारों में समानता देखकर आश्चर्य होता है। दो भिन्न क्षेत्रों के, दो भिन्न भाषाओं के, दो भिन्न कालों के कवियों के विचारों में दीप्त पड़ने वाले साम्य की देखने पर आश्चर्य होता है। परन्तु बात है सब। इतना अधिक साम्य हिन्दी कृष्णा-मभित काव्य<sup>का</sup>, अन्य किसी भाषा के साहित्य से कदाचित् ही हो सकता है।

तमिल ने मवित-बान्दोलन का प्रारम्भ किया। हिन्दी ने उस बान्दोलन को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। तमिल ने एक ही बाण्डाल को दिया और हिन्दी ने एक ही मीरा को। तमिल ने नम्माळ्वार और पेरियाळ्वार को दिया तो हिन्दी ने गुरुदास और परमानन्ददास को दिया। तमिल में एक कृष्णेश्वराळ्वार हैं तो हिन्दी में एक रसतान हैं। इन दो दूरवर्ती क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्ति, मवित है। इन दोनों के काव्यों के मूल में मवित ही प्रधान है। मवित का इतिहास श्रृंखलाबद्ध है। बाल्वार मवत, मवित-श्रृंखला की प्रारम्भिक कड़ियाँ हैं तो १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मवत कवि उस श्रृंखला की अन्तिम कड़ियाँ हैं। दोनों के बीच की कड़ियाँ विभिन्न मवित-संप्रदायों के प्रवर्तक वाचार्थी हैं। काल से, स्थान से दूरवर्ती दो क्षेत्रों के कवियों को एक सूत्र में बाँधने वाले मवत-वाचार्थ गण हैं। हम इन मवत-वाचार्थों को तमिल और हिन्दी के मवित-सरोवरों को संबद्ध करने वाले एक नाली कह सकते हैं। दक्षिण और उत्तर की सांस्कृतिक शक्ता को बनाए रखने में इन वाचार्थों का बड़ा हाथ रहा है।

तमिल के बाल्वार मवतों और हिन्दी कृष्ण-मवत कवियों के विचारों में और भावों में दीप्त पड़ने वाला बहुमुत साम्य यही घीणित करता है कि भारत की वात्मा एक है। उसकी मूल प्रेरणा एक है। तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप तमिल के बाल्वार मवतों और हिन्दी के कृष्ण-मवत-कवियों के विचारों में हमें जो साम्य दीप्त पड़ता है, वह भारतवर्ष की भावात्मक शक्ता (EMOTIONAL INTEGRITY) की ही घीणणा करता है।

SK AGERACK BOK  
MADE IN SWEDEN

-- परिशिष्ट --

१-४

SK

परिशिष्ट- १

वात्सवारीं के जुने हुए कुछ गीत-रत्न<sup>१</sup>

पौयसी वात्सवार

००

“ मैं अपने जीवन की कठोर अनंत बाकांदाओं और अपराधों को पार कर दीड़ता हुआ आपके समुत्त बाया हूँ। अपनी गीत-माला में आपके नाम- सुमन भी गूँथे देता हूँ और आपके परम पावन पद- पंज पर समर्पित करता हूँ, जिसे आप मेरी विमल भक्ति और विबुद्ध स्नेह के उपहार- रूप में स्वीकार करें। ”

० ०

००

“ स्नेह- सान्द्र हृदय- विपंची की तंत्रियों में जो मधुर निनाद मुखरित होता है, शिल्प- कला की सूक्ष्म सफलता का पोतक जो भाव्य रूप निकलता हो, वात्सा के स्वप्न- फल पर जो सुकुमार स्वरूप वंशित होता है, वे सब मेरे ही वाराध्य के नाम और स्वरूप हैं। ”

भूतवात्सवार

००

“ मैं यह नहीं जानता कि भगवान् का मेरे प्रति क्या विचार होगा और भगवान् के दरबार में मुझे अकिंबन का क्या स्थान होगा ? फिर भी मैं विषलित नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे दृढ़ हृदय के

१- इन पदों के स्वतन्त्रानुवाद में श्री रा० श्री० देशिकन् द्वारा कोजी में प्रस्तुत

“ Grains of gold ”

“ नामक ग्रन्थ का आधार लिया गया है।

टुकड़ों से बना चमक भगवद्गुपा रूपी रस से बाकण्ठ भर जाय, जिस प्रकार सूते सरोवर वणार्ण के जल से ही भर सकते हैं। ”

००

“ प्यालवार ”

००

“ मैं निरन्तर उसकी व्यक्त लीज में रत हूँ।  
तबु भी वह मुझे नहीं मिल पाता । पर वह मेरे निवेदन के बिना भी मुझे  
बपना लेता है। फिर भी हाय । मैं उसकी देख नहीं पाता । ”

००

“ विशाल व्योम गुंज उठा, बिजली कड़की।  
वज्र का भयानक गर्जन हुआ । वह था वणार्ण-काल । मैं गगन की ओर देखता  
रहा । उसकी क्षुब्ध वाभा की रेतारें दीप्त पड़ीं और वह व्योम- बीथी में  
बैध- मणि- रथ पर बढ़कर जाया । ”

००

“ सरसीज्वाला सीदामिनी रूपी विजय  
पताका फहराती हुई और निनादित वज्र रूपी विजय दुदुंभी बजाती हुई  
गगन- मण्डल- बीच प्रमण करने वाली नीरद- राशि मेरे मानस फटल पर  
बापके ही स्मृति चित्र अंकित करती है। ”

### तिरुमल्लि वात्सवार

००

“ मेरे जन्म लेने का एक मात्र उद्देश्य यही है  
कि मैं उस प्रभु की सेवा में अपने को निरन्तर लगाये रहूँ, जिनका वास मुझे  
में है। इस कर्तव्य- स्वीकृति से बढ़कर और कौन सा दिव्य कार्य हो सकता  
है ? इसी में मैं अपना निमंत्रण पाता हूँ। ”

००

“ मेरे मनमौल्य प्रभु का सुन्दर वास-स्थान  
मुझे से बहुत दूर है। किन्तु मैं अपने गीत- रूपी अवश्य पंक्तों से उड़ता हुआ



उस परमात्मा प्रभु की कीर्ति गाकर उसी की सेवा में लीन हैं।”

“ चिन्ता मत करो ! कारण के बंगुल से बच्चे के लिए अब भी अवकाश शेष है। क्या, तुम्हारे नेत्र शक्तिहीन होकर धुन्धले प्रकाश की ही अवलोकन कर रहे हैं ? क्या, तुम्हें मृत्यु का भय हाण हाण हो रहा है ? क्या, तुम्हारे बन्धु तुम्हें धरकर ला कर रहे हैं ? क्या, शब्द लड़खड़ा कर तुम्हारे कंठ में ही रह जाते हैं ?----- बच्चे पानस में प्रभु के वास के लिए एक मन्दिर बनाओ जिसमें प्रभु का स्मरण सतत होता रहे और वहाँ प्रभु के पाद पीठ पर अपनी सेवा और प्रेम के सुमन चढ़ाते रहो । ”

“ हे , प्रभु । आपके स्वर्ण पात्र से हृदय की सारी द्रव्य कठोरता द्रवित होकर एक ताल में ( एक लय में ) सरलता से परिणत हो गयी है। मैं देखता हूँ, आपका साम्राज्य काल और मरण की अवहेलना कर सतत विराजमान है। आपकी कांति- राशि में मेरा स्व का निमज्जन हो जाता है। ”

### बाण्डास

०० “ सुनना मेरी उणा की नीरख बेला में पक्षियों की मुर मुरीली तान में प्रभु के दिव्यागमन का सन्देश पाती हूँ। मैं वाशा युवत नयनों से देखती रहती हूँ । पर नहीं जानती कि प्रियतम कब आवेंगे ? ”

“ हे कीयल ! मेरे शरीर की समस्त हड्डियाँ द्रवित हो गयी हैं। निशि- दिन मेरे प्यासे नयन जागते ही रहते हैं। ( नींद की पास पकने नहीं देते ) । प्रभु के दर्शन- अनुग्रह से वंचित मैं व्यथा- सरिता में बह रही हूँ । प्रेम मेरे हृदय की विरह- वेदना को तू मत्ती माँति जानती है। तू कृपया मेरे प्रभु के पास जाकर मेरी उस दीन दशा का समाचार तो दे जा । ”

“ हे जल ! प्रभु के पीती- सम वधरों की सुन्दरता का परिचय तुम्हें पाने के लिए उत्तुक हूँ। क्या, प्रभु के वधरों से कर्पूर की सुगंध आती

है ? और मनोहर फैल- बल के समान प्रभु वधरों से क्या सुगन्धित सुपन का परिमल निकल रहा है ? बताओ तो ?”

### कुलसेसरारवार

०० “ मुझे चाह नहीं कि कसोम अनुपम सुस- संपत्ति ज्यवा  
अप्सरारों के विलासमय लास्यों से पूर्ण मादक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करें । मुझे  
चाह नहीं कि नितान्त चिरायु व बहुलम राजभोग प्राप्त करें । मैं अपने को धन्य  
समझूंगा , यदि उसे वैकुण्ठ के मधु रसोज्ज्वल पुष्प मंजरियों से पूर्ण मन्त्रन उपवन  
की निर्मल निर्झरणी के एक मीन होने का परम सौभाग्य प्राप्त हो । ”

०० “ और सागर की धवल तरंगों से परिप्लुत एवं प्रोत्सहित  
भगवान् शेषशायी के पावन पद- कमलों के दर्शनार्थ, गीत- रस- सहरी में निम-  
ज्जित भ्रमर समूह के फंकार गुंजित वैकुण्ठ गिरि की वाटिका में एक चंचल कुसुम बन  
जाऊँ । ”

००

०० “ महापापियों को भी अपनी शरण में लेने वाले कृपा-  
सिन्धु भगवान् । हे अनापन्त श्रेष्ठ महान् । वैकुण्ठवासी । मैं तुम्हारे मन्दिर का  
वह सोपान बन जाऊँ जिस पर चढ़कर अप्सराएँ, देव और भक्तगण तुम्हारे दर्श-  
नार्थ मन्दिर में प्रवेश करते हैं। ”

००

०० “ इस भ्रमपूर्ण भव में कितनी उज्ज्वलता है? कितना  
रंजन है ? मैं मनुष्य <sup>जीवन की</sup> उन पीड़ित आकांक्षाओं की तिलांजलि देकर, अतृप्त और

संतुष्ट हृदय लेकर सत्य के उस राजमार्ग पर जा रहा हूँ, जो स्वर्ग की क्रांति से सर्वदा आलोकित रहता है। किन्तु इस जगत् के प्रेमी मुनि उन्मत्त ( पागल ) कहते हैं। मैं समझता हूँ कि इस संसार के जाणिक सुखों के भ्रम में पड़े वे लोग ही पागल हैं। सब है, मुझमें एक विचित्र प्रकार का तीव्र उन्माद है। वह है, भगवद् प्रेम रूपी मधु को पीकर उन्मत्त जीव का नशा । ”

००

००                   “ अलंकार से शासित होने के कारण मैं यह नहीं जान पाया था कि बाक़ी शरण से ही मुनि आत्म बल और स्वर्गात् के वायु प्राप्त करते हैं। मैं उस जहाज के पक्षी की तरह बाक़ी शरण में आया हूँ, जो फिर फिर उड़कर, दूर दिगंत तक वह ही जल को देखकर भयभीत हो पुनः जहाज के ली पर ही आकर बैठता है । ”

### तोंडरहीपौड़ी बालवार

००                   “ इन्द्रियों की दासता के जंगल से बाक़ी नाम- कीर्तन ने हमें मुक्त कर दिया है। बाप छिछर पर हमारे मरीचे के फलस्वरूप उत्पन्न सावस और आत्म बल के सस्त्रों से संपन्न होकर वेण मुक्त पाप और मृत्यु तक को हम चुनौती दे सकते हैं । ”

००

००

“ प्रभु के साम्राज्य में पद प्राप्त करने की कामना करने

वाले । तुम अपनी जाति के गर्व को त्याग दो । अपने ज्ञान की शिखी ब्यारना बन्द कर दो । संतनीय जाति- गर्व के कारण तुम क्यों उस जन- समूह से दूर जा बैठे हो ? अगर वे अपने करों पर पड़ी मनुष्य निर्मित जाति की शृंखलाओं को तोड़ कर जावें तो तुम्हें क्या आपत्ति है ? क्या, इतना पर्याप्त नहीं कि वे भी भगवान् के सेवक हैं ? उनकी पूजा करो , उनकी सेवा करो । क्योंकि किसको क्या पता है कि उनके मध्य भगवान् वास नहीं करते हैं ? ”

००

### तिरुमूनी वासुवार

००                   “ हे प्रभो । मैं आपके दर्शन- सुख के लिए तड़प रहा हूँ । पातण्डपूर्ण कितना लम्बा जीवन मैंने बिता दिया है। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। जब उन लम्बे वर्णों के व्यर्थ हो जाने की बात याद आती है, तो मेरा हृदय व्यथाओं से भर जाता है। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करें , प्रभु जी । मेरी रक्षा करें । ”

००

“                   आपने अपनी मुद्रा मुझ पर लगा दी है। आपने मुझे अपना वाजाकारी सेवक बना दिया है। मेरे दुर्बल जीवन के कितने ही क्षणों को आपने भर दिया है। मैं अपने मन- मन्दिर में आप की उपस्थिति का अनुभव कर पुलकित हो उठता हूँ। आपके स्पर्श मात्र से मेरी हृत्तंत्री मंकृत होकर सीठी तान उत्पन्न कर देती है। ”

००                    “ हे प्रभो ! हमारे नेत्रों से क्या प्रयोजन है, यदि वे आपकी पुति- राशि में मज्जन न करें । हमारे कानों से क्या प्रयोजन है, यदि आपकी कीर्ति का गायन न सुनें । हमारे कर्णों से क्या लाभ है, यदि वे आपकी प्रशंसा न दें । हमारे मूर्धन- वीणा जैसे पाथ यन्त्रों से क्या प्रयोजन है, अगर वे आपकी महता का गायन कर हमें पुलकित न करें । हमारे हृदय से क्यों प्रयोजन है, यदि वह आपकी ओर उन्मुख न हो तो । ”

०००

“००                    “ मेरे मन रूपी उस प्रेम- वियोग विदग्ध विरहिणी की क्या दशा हो गयी है। वह फाली सी इधर उधर फिरती है। अपने प्रियतम के आगमन का आनन्दपूर्ण सन्देश सुनकर वह हर्षोन्मत्त हो रही है। स्निग्ध ज्यो-त्स्ना ललित रजनी में वह कैसी ही अपने कर्णों की ( उस असीम आकाश ) स्वर्ग की ओर बढ़ाकर चित्लाती है- ” मैं देख तो नहीं रही हूँ कि प्रभु अपने महल की छत पर खड़े मुझे बुला रहे हैं । ”

००

००                    “ वह मधुर स्वप्न जिसने प्रियतम के दर्शन की आभा से मेरे मानस- मन्दिर को आलोकित किया था, अब लुप्त गया । समस्त संसार घना- न्धकार की गीद में अब भी लोरी सुनकर नीब में मग्न है। निशि के अनन्त तिमिर प्रवाह के साथ मेरे साथी भी विलीन हो गये । अरुण शिवा की सुरीली वान उणा काल के द्वारों को खोल रही है और मन्दिर के अन्दर शयन मग्न प्रभु को जगा देगी । ”

००



००

“ दुःख और संघर्षों से पूर्ण नीरस जीवन-यात्रा में थके थके मैं व्यक्ति घुसता जा रहा हूँ। — मैं सुन्दर रमणियों के जादू में सौन्दर्य से मोहित होकर धोखा ही खाया है। सुन्दरियों के लावण्य युक्त कर पाश में बाँध होकर सुरापान के मादक आनन्द में उन्मत्त अब मैं थक चुका हूँ। विरह ज्ञान का नाव जो मेरे उर के अन्तरतम भाग में सुन्नित हो उठा था, उसने मेरे भीतर ही किसी की लोभ की प्रेरणा दी है और मैं सत्य के प्रकाश को ढूँढ़ पाया हूँ हे, प्रभो ! मैं ने आप ही में अपने जीवन के समस्त आनन्द और पवित्र परिमल का बाँकर देखा । ”

००

००

“ प्रभो, उस विरहिणी को अपने दर्शन से वंचित रहते हैं, क्यों ? ( माता का वचन ) मेरी प्रिय तनया जो आप के नक्ल किसलय के समान स्वर्ण-कान्ति युक्त थी, अब विरह-व्याध में पीली पड़ गयी है। वह दौलत होकर इतनी पतली हो गयी है कि उसके हाथ के कंकण स्वयं गिर रहे हैं। अब मुखता लचित चारु चन्द्रहार तथा सुगन्धित चन्दन भी उसके विरहानल में तप्त हृदय पर बड़े आघात कर देते हैं। राका रजनी में अमृत तुल्य शीतल किरणों को भेजवाला चन्द्र भी मेरी पुत्री के सिर मानों धक्कने वाली बाण की ज्वाला बरसा रहा हो। दूर के समुद्र-गर्जन की तरह इसका हृदय भी विलाप में आन्दोलित है। प्रभो, उस विरहिणी को अपने दर्शन से वंचित रहते हैं, क्यों ? ”

००

००

“ परिश्रम से थके-से पाव पसीटती हुई रात भी कितनी मन्द गति से घटती जा रही है। एक क्षण भी एक युग के समान दीस पड़ता है।

समुद्र के विलाप- गान, तथा पेन- पीड़ा में दग्ध क्रॉच पत्नी के अविराम गायन के अतिरिक्त और कोई ध्वनि नहीं सुन पड़ती। और तिमिर को दूर कर सपस्त संसार को वास्तोकिता करने वाला प्रभात कब होगा ? मन्द मन्द बहने वाला शीतल समीरण भी आग की चिंगारियों की तरह अधिक ताप देने वाला हो गया है। \*\*

००

००                    \*\* है मनुष्यो ! क्यों काष्ठाय वस्त्र पहनकर शरीर पर मत्स्य लगाकर फिरते हो ? कठिन व्रत रखकर विफल तपस्या में लीन रहकर काया को अक्षय्य कष्ट क्यों देते रहते हो ? तुम अपने संसार का त्याग कर वा जाओ और प्रभु की अनन्त कर्तुकी करुणा युक्त शरण में उनकी कृपा में शक्ति और शान्ति प्राप्त करो । \*\*

००

००                    \*\* भरी पत्नी और संतान भी अविश्वासी हैं। उन्हें त्याग कर मैंने आपकी मार्ग को अपनाया। आपकी कृपा कभी मनमनासी तलवार से घुसता और इन्द्रियों द्वारा मुझे फँसाने के लिए बुनाये गये उलझे हुए जीवन - जाल को मैंने काट दिया। अब मैं बसेलों में डालनेवाली जीवन व्यथाओं से दूर एक सतत शान्त और सुरक्षित स्थान में पहुँच गया हूँ। \*\*

००

००                    \*\* आपके पय- प्रदर्शन कराने वाले ज्ञान कभी प्रकाश से वंचित मैं अब पारावार में तुमुल तारंग, प्रवण्ड पवन और कोलाहल के मध्य बिना पतवार

के लोक जन्म और मरण से युक्त इस जीवन- नाँका को चलाता गया । चट्टानों से टकराकर हिन्न भिन्न हो जाने से बकर भरी - नाँका ने बापकी कृपा की सुरक्षित सीमा में बाकर शक्ति पायी । ”

००

००      “ ( नायिका का कथन ) मेरे इस सौन्दर्य और नरी से लवालक जीवन से क्या आनन्द है ? इन उभरे हुए उरीजों से क्या प्रयोजन, यदि मुझे मदनमोहन का बालिगन- सुख प्राप्त न हो तो । उस कानन- कृष्ण की मर्ति जो परिमल को बिखीकर किसी से अपनाये न जाने के कारण किसी निर्जन वन की लता से गिरकर अपना सौन्दर्य नष्ट कर देता है, मेरा मदन भरा जीवन भी प्रियता से दूर रहने के कारण नष्ट होता जा रहा है । ”

### नन्पालवार

००      “ बीजपूर्ण चन्द्र बिंब बापकी अनुपम सुषमा और लसुलस वर्ण शोभा का ही स्मरण दिलाता है । यम समुन्नत शिसिर भी बाप ही की क्रीम शक्ति की ओर रीकत करता है। रिमफिम रिमफिम वर्णों को देखकर जिस प्रकार मोर नाच उठते हैं, उसी प्रकार मेरा मन भी आनन्द नृत्य कर रहा है मानों नारायण हो वर्णों के रूप में पधारे हों । ”

००

००            “ सारा गांव सुष्ठुप्ति में विलीन हुआ है। समस्त विश्व  
बन्धकार-सान्द्र है। निशा इतनी बढ़ती जाती है मानों निखिल जल-धल एक लंबी  
रेखा सा बनता जा रहा हो। मैं ही केवल कोली जागरही हूँ। वह शेषाशायी  
भगवान्, जिसने एक बार समस्त विश्व को निगल लिया था, अगर मेरे पास न  
जाये तो हाय। उस अमाग्निनी की कौन रक्षा कर सकेगा ? ”

००

००            “ हमारे प्यासे नयन कब आपके और आपके अनुग्रह प्राप्त  
श्रेष्ठ जीवों के दर्शन-सुख से तृप्त होंगे ? आपके अनन्त, अनुपम सौन्दर्य-सागर में  
मग्नन करके भी वे कब संतुष्ट होंगे ? रवि उदित होता है और फिर क्षिप  
जाता है। नक्षत्र जाते हैं और अपनी अतुल बाधा दिखाकर चले जाते हैं। युग पर  
युग जाता है और बीतता जाता है फिर भी हम आपकी की ओर देखते ही रहते  
हैं। आपके दर्शन की हमारी प्रार्थना कभी बुझती नहीं है। ”

००

००            “ प्रभु के महल तक पहुँचने के लिए तो मार्ग बनेक हैं। वे  
हमारे बीच में विलक्षण और विविध रूप में आपकी प्रकट करते हैं। मेरी चाह  
है कि प्रभु महल-की ओर जाने वाले उस अज्ञात पथ में दाण्य दाण्य प्रभु की वाहट  
सुन सकूँ। मेरी चाह है कि इस संघर्ष रत और अशान्त जगत् के निरन्तर कोलाहल  
के बीच प्रभु के आगमन की मधुर हल्की ध्वनि सुन सकूँ। उस अमितीय आनन्द-मंदार  
के दर्शन के लिए मैं युग युग से मूसा और प्यासा रहूँ। ”

००

००                    “ मेरा प्रियतम । हमारे मिलन-स्थान पर अभी तक जा नहीं पहुँचा । जिस तरह गोधूली की झोहर बेला में तप की हल्की रेखा डायी रहती है, उसी तरह जाशा मेरे मेरे हृदय में अब दुःख की रेखा का जाती है। मेरे उर के मीन का भंग करने वाले किलाप के मारम्भ होते हुए शोभाहीन पश्चिमी व्योम वीथी पर समस्त पृथ्वी को आनन्द सागर में निमज्जित करने वाले लघु चन्द्र का आगमन हुआ । इस उमंग मेरे दाँज में मेरा मन कापना करता है कि प्रियतम के आगमन का आभास मिल जाय । हाय । दूर से प्रिय का जो सन्देश आकर— पथ पर तैरता जा रहा था , उसको भंग करने के लिए एक दुष्ट समीरण भी कहीं से चल पड़ा । ”

००

००                    “ मेरा हृदय विक्राम नहीं लेता जबकि यह निर्दयक निहा मुझ पर ताना मार रही है। अब मैं अपने प्रियतम के बाहु-पाश में आबद्ध रहती हूँ, इस निर्मम निहा का शासन जैसे की दूँद की तरह या स्वप्न के समान शीघ्र की लुप्त हो जाता है। परन्तु अब प्रियतम की अनुपस्थिति में यामिनी का एक एक दाँज उसके क्रूरतापूर्ण शासन का लम्बा युग सा प्रतीत होता है। ”

००

००                    “ वह दूर देश के वासी प्रभु की तुलसी माला की सुरम्य सुगन्धि का सेवन करना चाहती है। हाय । उसकी अपूर्ण जाशायें व्यथा पर व्यथा डालती जा रही हैं। वह प्रभु भी क्यों इस मौली विरहिणी की ओर ध्यान नहीं देता ? सचमुच अनन्त काल के प्रांगण में नित्य आँसू-मिचौनी खेलने वाला वह प्रभु भी निर्मम और निर्दयी दीप्त पड़ता है। ”



००                   “ ओ, प्रभुओं के प्रभु । आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनने की कृपा करें और हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जायें । अज्ञान के घोर तिमिर में पाप और दुःख के पुत्र हम बर्त पकार कर आपकी करुणा की भीख मांगते हुए अपने करें को आपकी ओर बढ़ाते हैं। आप हैं अक्षय कृपा- सिन्धु । आपकी सौमन्य का क्या कहना ? हमारे जीवन को नित्य बालोकित कर देने वाली कृपा कभी कभी आपकी पास ही है। ”

००

००                   “ मेरा प्रभु इस घण्ट में पड़ा है कि अनगिनत नदियों और गृहों की एक सुमन- माला बनाकर उसे अपने व्यक्तित्व के विशाल मन्दिर में छिपा रखा है। परन्तु उसका घण्ट व्यर्थ है, क्योंकि मैं उस महान् प्रभु को भी अपने मन- मन्दिर में बसा लिया है। ”

००

००                   “ तुम अपना सब कुछ समर्पित कर हमारी जीवन- नौकाओं के उस मार्ग पर भरोसा रखकर उसकी दिव्य देखरेख में उसका पीछा करते चलो । उससे बिजली की चमक के समान अपने दुर्बल जीवन में आत्म बल का संचार कर सकोगे । अतएव, हे लोगो , तुम उस परमात्मा पुरुषोत्तम की सौज में निरन्तर लगे रहो । ‘ वहम् ’ की भावना पर कुत्हाड़ी मारकर उस अनन्त महान् करुणाकर भगवान् की शरण से ~~हैं~~ लो जिसने तुम्हारी सृष्टि की है। इसके अतिरिक्त जीवन की व्यथाओं से बचने के लिए और कोई उपाय नहीं है। ”

००

००                    “ कविगण अपने गीत-जाल में बाफ़ी फँसाना चाहते हैं। चित्रकार अपने पटल पर बाफ़ी रीमा को अंकित करना चाहते हैं। मूर्तिकार श्रेष्ठ संगमरमर के शिला-तुण्ड में बाप को बसाना चाहते हैं। दार्शनिक विद्वान् बाप को अपने शब्द-जाल में फँसाना चाहते हैं। उनके प्रयास सब व्यर्थ हैं। क्योंकि बाफ़ी अनुपम शोभायुक्त स्वल्प के एक अंश तक को भी वे पहचान नहीं पाते। ”

००

००                    “ मेरा हृदय पर्वतों से उबल होकर सब जगह उड़ता जाता है। मेघों के साथ घूमता है, ऊँचे पर्वत के साथ गगन को चुंबन करने जाता है। सागर की लहरों के साथ नाच उठता है। सुन्दर सुमनों के साथ हँस पड़ता है। तम के साथ स्वप्न में विलीन हो जाता है। क्योंकि मेरा मन दूर के प्रभु से संकेतित प्रेम-श्रीद्वारों का आभास पाता है। ”

००

००                    “ हे प्रभु । बाफ़ी समा में गाने वाले कितने ही महान् कवि हैं, जिनकी ध्वनि नदार्त्रों की मधुर मुप्त ध्वनि को भी मात कर देती है। किन्तु फिर भी बाप उनके गीतों से सन्तुष्ट नहीं होते और सुन्दरतम मोहक गान की वाशा में मुक्त वर्किवन को अपने करों की ( आश्चर्य है ) मोहन पुरखी बनाकर धरे द्वारा अपने रहस्यों को मोहक तान में निनादित करते हैं। ”

००

००                    “ मैं सागर और व्योम को भी प्रभु की कीर्ति को  
निनादित करता हुआ देखता हूँ। मृत्यु उस अमर गीत को हम तक पहुँचाने वाला  
सन्देशवाहक है। सागर की लहरें उस गान में मग होकर तालियाँ बजाती हैं। मेघ  
मृदंग बजाते हैं। हे मित्रो ! मुझे विदा करो । मैं अधिक विलम्ब नहीं कर सकता ।  
मेरा प्रियतम मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। ”

००

००                    “ हमारे महान् कवि भेष्ठ ने हमें गाने की कला सिखायी।  
हम वीणा की तंत्रियों को भक्त कर एक अज्ञात स्वर-सरिता बहा रहे हैं। काल की  
विह्वलनाओं से हम नित संबन्ध रत हैं। परन्तु प्रभु मुसकाते बैठे हैं। क्योंकि वे जानते  
हैं कि हम उसकी कीर्ति-ध्वनि को गुंजायमान कर रहे हैं। ”

००

००                    “ मैं उन अनगिनत नक्षत्रों के जो अस्पष्ट सन्देश सुना रहे  
हैं, रहस्य को जानने की चेष्टा में गगन की ओर देखता हूँ। पर वे अन्त में क्या  
हैं ? यह मैं समझ नहीं पाया । मुझ पर जादू करने वाले उन नक्षत्रों को देखकर  
मेरे हृदय में हाथे सन्नाटे की चीरकर एक सुरीली तान गूँज उठी - ” वे नक्षत्र  
रात की विशाल समतल भूमि को प्रकाशित करने वाले दीपक नहीं, जो झुगों से  
जलते हैं, परन्तु स्वर्ग के दिव्य पुरुषों द्वारा चुन चुन कर उस अज्ञात प्रभु की वेदी  
पर चढ़ाये गये सुन्दर सुमन हैं। ”

००

००                    “ मैं स्वर्ग के द्वार को खटखटाया । देवतागण  
 वक्ष्ये में जा गये । विवर्तित हुए कि इसको कैसे जाने दिया गया । मैंने उनको  
 समझाया कि प्रभु के साम्राज्य में प्रवेश करने की कामना इस पृथ्वी तल में जन्मे  
 मनुष्यों की मिला मूल अधिकार है। ”

००

००                    “ रजनी की नीरवता में, मैंने व्योम की ओर दृष्टि  
 दी। मैंने देखा कि प्रभु के ही सन्देश नवात्र कपी बहारों में अंकित हैं ।  
 मैं आनन्द में चिल्ला उठा और हर्षान्तरिक से नाच उठा । बारों और फैली  
 हुई प्रकृति को देखकर, पृथ्वी के प्रत्येक पुष्प पंखड़ियों और पत्ते की सृष्टि करने  
 वाले उस महान् कलावान् सर्जनहार की कल्पना कर नतमस्तक हो गया । ”

००

००                    “ प्रत्येक वेदी पर भगवान् की फूल अर्पित किये जायें,  
 जिनसे उत्पन्न होने वाले परिमल से समस्त वायुमण्डल सुरक्षित हो जाय । प्रत्येक  
 मन्दिर और पूजा-घर भगवान् के भजनों की ध्वनि से गूँज उठे । तब हम इस पृथ्वी  
 तल पर ही भगवान् का साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे । ”

००

००                    “ हे, सागर । तुम क्यों सर्वदा अविराम हो ? तुम क्यों

वह निर्जन गर्जन करते रहते हों और फेन-राशि को उत्पन्न करते रहते हों ? जिसकी लीज में मेरा मन माना फिरता है, क्या तुम भी उसी की लीज में निरन्तर जागृत हो ?”

00

00                    “ यह गगन, यह पृथ्वी, यह पवन क्या है ? उस अज्ञात असीम आद्य अम्य महापुरुष के अंग ही हैं। ”

00

00                    “ मैं उससे कन्नी काटनी चाहती । यह सोचा कि वह मुझे देख नहीं पायेगा । कदाचित् मेरी आवश्यकता उसे थी । मेरे जीवन इसी मधुर पान का सेवन करके भी उसकी प्यास नहीं बुझती । ”

00

00                    “ सारी रात पवन के अस्त्रों की फनफनाहट से गूँज उठी । परन्तु उष्ण के बाते ही शोक पीडित होकर हमने बाहर जाकर देखा तो यमदेव नरक के मग्नावशेषों पर स्वयं मरा पड़ा है। विजय से गर्वित हमारा तल्लाट अति उद्भुत कान्तिकुशल हो रहा था । यम का कराल शासन अब समाप्त हुआ और स्वर्ग का साम्राज्य इस पृथ्वी तल पर स्थापित हो चुका है। ”

00

00                    “ मेरी सारी पीड़ाएँ अब दूर हुई और मेरे हृदय ने



परम शान्ति प्राप्त की। क्योंकि संसार की इसी दरव्या के बीच, नरक की पीड़ा और स्वर्ग की उम्मा के बीच, भरे कानों ने उस महापुरुष के नाम- मंत्र को सुन लिया है।

००

००

“ मैं मर्त्य मनुष्यों के गान से काव्य को कसकित करनेवाला कुछ कवि नहीं हूँ। मैं प्रभु के दरबार का गायक हूँ। मैं सृष्टि- सौन्दर्य को गीत में परिणत कर अपनी गीत- माला को प्रभु के दिव्य चरणों पर अर्पित करता हूँ जिस पर प्रसन्न होकर प्रभु इसलोक और परलोक की समस्त संपत्ति से मुझे पुरस्कृत करते हैं। ”

### वाल्मीकीयों की राममूर्ति

तमिऴ के वाल्मीक परम वेष्णव भक्त और श्रेष्ठ कवि थे । उन्होंने अपने भक्ति-काव्यों में अक्षरों विष्णु की विभिन्न लीलाओं का स्तंभोपांशु वर्णन प्रस्तुत किया है । वाल्मीकीयों के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में मनुष्यों के उद्धार के लिए अवतार लेते हैं । जब पृथ्वी में अवन फँस जाता है और अज्ञान अन्धकार पृथ्वी को कालित करता है, तब कृष्ण-चिन्मय भगवान् अपनी कृष्णता को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं । नन्माऴ्मीक ने यहाँ तक कह दिया है कि अपने ही अक्षुप्त अग्निजत जीवों को अन्ना दही-सुख प्रदान करने के निमित्त भगवान् अवतार लेते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि वाल्मीकीयों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देता । फिर भी उनको विष्णु के दो अवतार रामावतार और कृष्णावतारों ने विशेष रूप से आकर्षित किया है । इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन जितना रमा, उतना रामावतार में नहीं । श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने ऐसा सजीव वर्णन किया है, मानों उन्होंने स्वयं उन लीलाओं का अलोका किया हो । उनके कौशल भावुक और कवि-हृदय ने कृष्ण-लीलाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति की भाव - भूमि विशेष रूप से पायी । अतएव उन्होंने लीलानायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का रसपूर्ण वर्णन किया और उनके भाव-पक्ष स्वच्छन्द रूप से काव्य-व्यास में उड़ सकें, जिससे कि उच्चकोटि के सरस कृष्ण-काव्य का निर्माण उनके द्वारा हो सके।

प्रमुख रूप से कृष्ण-काव्य रचने पर भी बाल्मिकी के काव्यों में विष्णु के अन्य अवतारों का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है।

डा० मण्डारकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "वैष्णवविजय, शैविज्य वण्ड क्यर कैर रिठिजियत वैज्य" में लिखा है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकाव्य का विकास साधारणतया ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी के <sup>पर्यन्त</sup> ही देखी जा सकता है। परन्तु उससे कई शताब्दियों के पूर्व ही (बाल्मिकी का समय पाँचवीं शताब्दी से ठेकर नवीं शताब्दी तक का माना जाता है) <sup>आठवीं शताब्दी के</sup> यह सब है कि बाल्मिकी के काव्यों में कृष्णावतार की जैसा रामावतार का विस्तार कम है। रामावतार के बहुत कुछ विशिष्ट प्रसंगों को ही उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया। पूरी राम-कथा को ठेकर बाल्मिकी ने कोई ~~अप्रकट~~ <sup>प्रकट</sup> काव्य नहीं रचा क्योंकि तमिः-काव्य <sup>रचने की आवश्यकता</sup> उन्हें नहीं चुकती। उनका युग भक्ति के भावावेश का युग था। अतः उन्होंने भक्ति-प्रधान मधुर गीत रचे जिन्हें गा-गाकर पक जात्मविमोह हो जाते थे। उनके भक्तिपरक पदों में रामावतार का भी पर्याप्त उल्लेख है।

तमिः भाषा में जिस प्रकार कृष्णकाव्य के जन्मदाता बाल्मिकी हैं, उसी प्रकार वे राम-काव्य के भी हैं। इसलिये उन्हें दोनों दोनों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। तमिः में बाल्मिकी के पूर्व का कोई राम-काव्य ही नहीं मिलता। न किसी ने रामावतार के विशिष्ट प्रसंगों का उतना वर्णन किया है, जितना बाल्मिकी <sup>ने मिलता है। आठवीं शताब्दी के पूर्व के तमिः-राज्य-साहित्य</sup> साहित्य के कुछ काव्य-ग्रन्थों में बर-बर रामकाव्य के कुछ प्रसंगों का उल्लेख मिल जाता है। परन्तु उनके रचयिताओं का उद्देश्य भक्ति-प्रधान राम-काव्य प्रस्तुत करना कदापि नहीं था। अतः तमिः में राम-काव्य के जन्मदाता के रूप में बाल्मिकी को मानने में किसी को <sup>आपत्ति</sup> नहीं होगी। कहे की आवश्यकता नहीं कि परवर्ती सभी कवि बाल्मिकी के भक्तिपरक पदों से बहुत ही प्रभावित हुए हैं। यहाँ तक कि तमिः में राम-कथा को ठेकर प्रथम बार महाकाव्य रचने वाले "कवि चम्पवर्ती" ~~कव~~ <sup>कवि</sup> कवि बाल्मिकी हैं

कृत प्रभावित है। राम-कथा के कुछ प्रसंगों का बाज्वारों ने जो भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है, उसका कंन ने बहुत अनुकरण किया है - यह तो प्रसिद्ध है कि कंन ने नम्माळ्वार की स्तुति में "ल्लनीपरन्तादि" नामक स्तुति ग्रन्थ तब रच डाला था। चारांश यह है कि राम-काव्य के रचयिता के रूप में बाज्वारों को, तमिल में ही नहीं, बल्कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की राम-काव्य-धारा में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

द्वादश बाज्वारों में केवल कुञ्जेतराज्वार, तिरुकी बाज्वार, पैरियाज्वार तथा नम्माळ्वार ने ही राम-कथा के विशिष्ट प्रसंगों को कुछ विस्तार से अपने काव्य में लिया है। ध्यान रखनी की बात यह है कि इनमें किसी ने भी राम-कथा को क्रमिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया। इन बाज्वारों में राम-मठ के रूप में कुञ्जेतराज्वार का स्थान सर्वोपरि है। कुञ्जेतराज्वार की अपार राम-भक्ति को सूचित करने वाली लोक कथाएं तमिल के प्रदेश में प्रचलित हैं। कथावाचक के द्वारा राम-कथा को सुनते समय रावण द्वारा सीता-हरण-प्रसंग तथा राम-रावण युद्ध के प्रसंग में राम की सहायता करने के निमित्त सेना को कूज करने की आज्ञा देकर स्वयं राजा कुञ्जेतर के चतुर्पुत्रों की कथाएं तो सर्व प्रसिद्ध हैं। ये कथाएं कुञ्जेतर की तीव्र राम-भक्ति की और इंगित करती हैं। उनके पदों के संग्रह पैरुमाळु तिरुमोळी के अन्तिम तीन दशक राम-कथा से सम्बन्धित हैं। एक दशक में बालक राम को पालने में छिटाकर माता कौसल्या के लोरी गाकर उन्हें सुलाने का वर्णन है। इसमें वात्सल्य-रस का अद्भुत परिपाक हुआ है। दूसरे दशक में राम के वन-गमन पर दशरथ के विछाड़ का वर्णन है। ये दोनों पद हृदय की द्रवित करने वाले हैं। करुण रस का इतना सजीव वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-दोत्र में यह "दशरथ-विछाड़" वैजीठ है। तीसरे दशक में सम्पूर्ण राम-कथा को कुञ्जेतर ने संक्षेप में दिया है।

कुलशेखर का राम-कथा सम्बन्धी प्रथम दशक 'ताळट्टु' शैली में है। जौरी गायक शिशु को सुलाने के कहाने अपने भावों को व्यक्त करने की एक तमिऴु काव्य-शैली है जिसे 'ताळट्टु' कहते हैं। इसमें 'ताळेळी' शब्द का प्रत्येक पद में एक या जौक बार प्रयुक्त करना आवश्यक है। तमिऴु के इस 'ताळेळी' शब्द में बच्चे को सुलाने का जादू भरा है। कुलशेखर ने इसी ताळट्टु शैली में एक बधुर गीत-पद्धति में (नीलांबुरी राग - तिरिपुडे ताळ) में स्वर्ण की कौसल्या के रूप में अनुभव कर राम के लिए जौरी गायी है। इन पदों में वृत्ति सुल्ल संगीत विनादित होता है।

“ मन्नु पुळ्ळ कौसळे तन,

मणि वयिरु वाडक्कने !

- - - - -

रन्नुळैय इन्नमुदे !

इराक्कने ! ताळेळी ! ” १

“ रंगळ कुल्लु इन्नमुदे !

इराक्कने ! ताळेळी ” २

[ “ माता कौसल्या के गर्भ से निकले, है रत्न !

मेरी दिव्यामृत, है राक्ष ! ~~इराक्कने~~, ताळेळी (सी बाबी) ...

हमारे कुल के दिव्यामृत ! राक्ष, ताळेळी ! ”

~~~~~

१- “ मेरुमाळ तिरुमोळी ”, ८:१

२- वही, ८:४



इस "तालाट्ट" गीत में राम की स्तुति के साथ-साथ राम-क्या के कुछ प्रसंगों की और भी संकेत है, जिनमें राम का जन्म, ताड़का-वध, सीता-विवाह, शोटी माता (कौशिकी) का वन चुनकर वन-गमन, उस समय उनके साथ कुछ बन्धुजों का चला, भरत पर मरीचा का लालन-भार को उनके ऊपर शोढ़ना आदि घटनाएँ राम का उन्मा-प्रवण, रावण-वध इत्यादि प्रसंगों की और भी संकेत है। इस दशक में कवि ने अपने को माता कौशल्या के स्थान पर कल्पित कर, राम की एक बालक के रूप में देता है और अपनी वात्सल्य-भक्ति का परिचय दिया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कुलदेव का "दशरथ-विज्ञाप" नामक दशक मक्ति-काव्य शीर्ष में वैजोढ़ है। कवि ने प्रिय पुत्र राम के वन-गमन पर भ्रमती दशरथ के मन में उठने वाली विविध भाव-तरंगों को उलाराया है और उनका सजीव चित्र दर्शाया है। उसे हम "नाटकीय स्वगत भाषण" कह सकते हैं। जहाँ क्योंकि इसमें वर्णित सभी बातें हमारे सामने प्रत्यक्ष ही दी जाती हैं। प्रत्येक पद में कवि का कोमल हृदय राम-वन-गमन के बात दुःख का स्मरण कर ही उठता है। करुण-क्रन्दन करता है। वेदना की पराकाष्ठा ने मानो उसे काव्य-रूप दे डाला हो। इन पदों का श्रीवार्ध नीचे दिया जाता है जो कवि की अज्ञाता से परिचित होने के लिए पर्याप्त है --

"चिंतावन पर तुम्हें शोभित होकर हर्षित होने के कले कौशिकी-वचन चुनकर मयानक वन में नेकी वाला मैं बड़ा पापी हूँ। हे मेरे सुपुत्र ! मैं काने दुर्भाग्य को क्या कहूँ ?"

"अपने वसु और <sup>पुष्प-सम</sup> ~~कुसुम~~ कोमल देह वाली सीता को लेकर मयानक वन के लिए तुम कैसे चले दिये। मैं क्या कहूँ ?... मयानक वन में कोह्य ताप में, अत्यधिक मृत से तुम्हारे बलि का कारण मैं क्या। मैं बड़ा पापी हूँ !"

१- पेरुमाळु तिरुमोळी ६-१

२- वही ६:२।

तुम पहले मृदु-लैया पर सीते थे । अब तुम्हें वन-वृद्धा की  
हाथा में तीखे पत्थरों की लैया पर सीना पड़ेगा । हाय ! ... १

“ बाय जाना-पव मैं तुम्हें जाना पड़ा, दुःख वन की  
भी प्रिय मान कर । शत्रुओं के हाथ बाँटे भाँटे के समान तीखे पत्थर  
तुम्हारे पार्श्वों की चुभते हैं । रुधिर-प्रवाह के खाने पर भी तुम्हें  
बचना पड़ता है । हे मुक्ति मुक्ति की पापी के पुत्र । पापी महिजा  
कैथी का वक्ता बनकर निराश में पड़ा मैं जाना अब क्या करूँ ? ” २

(दशरथ की राम-सीता-विवाह का प्रसंग स्मरण हो जाता है)  
“ तुम्हारा विवाह कराकर तुम दम्पतियों की सुखी देखकर स्वयं हर्षित  
होने के बड़े अब तुम्हें मयानक का मैं पैजो का कारण मैं जाना, जबकि  
मुक्ति स्वयं बसाव करना था । तुम्हारे जन्म-मन पर मेरा हृदय दो  
टक हो रहा है । ” ३

“ तुम्हारे माँ ब्रह्मर कुजने का सीनाम्य तक मैं कीसल्य  
की नहीं दिया । तुम्हारे सुन्दर वदन की देखकर मुदकि होवे । उसकी  
मैं वंशित रहा । जिनकी ज्वा की बात है कि तुम्हें का मैं पैजकर मैं  
अब भी जीवित हूँ । ” ४

(कैथी के अन्यायपूर्ण वाचरण का स्मरण कर दशरथ  
कहते हैं ।) “ हे कैथी ! मेरे पुत्र की वन में पैजकर मुक्ति उस प्रकार  
तड़पाकर तुमने कौनसा फल पाया ? ” ५

१- वही ६:३

२- मेरुमातृ तिरुमोळी ६:५

३- वही ६:४

४- वही ६:७

५- वही, ६:८

दशक की अन्तिम दो पंक्तियाँ हमारे हृदय की बहुत ही  
द्रवित कर देने वाली हैं -

“कानकमे निक विरुम्पी नी तुरन्द  
कङ्कनरं तुरन्दु नानुम  
वानकमे निक विरुम्पी पीकिन्नेन  
मृकुल्लार तंङ्ग कोवे ।” १

(जिस प्रकार तुम समुद्र बसाध्या नगर की त्याग कर वन (कानकम्) जा रहे हो  
उसी प्रकार मैं भी इस नगर की छोड़कर बाकाश-लोक (वानकम्) जा रहा हूँ ।)  
यहाँ पर कवि ने ‘कानकम्’ और ‘वानकम्’ शब्दों की आवाज ही करुण-रस  
से चिह्नित किया है ।

“पेरुमाळु तिरुमोळी” के अन्तिम दशक संक्षिप्त रामायण”  
में कवि ने बीच बीच में भगवद् स्तुति कर कृष्ण-चिन्तु भगवान् से अपने  
पापों को भगवान् के कुण्ड-बल से धोकर, भगवान् के दास-मण्डल में  
अपने को स्वीकार कर लेने की विनीत प्रार्थना की है । सामान्यतः  
कुल्लेसाळ्वार की मक्ति दास्य मक्ति की कौटि में जाती है ।

तिरुमोळी आळ्वार के करीब 20 पद राम-कथा प्रसंगों की ओर  
संकेत करते हैं । इस आळ्वार ने भी पूरी राम-कथा को क्रमिक रूप से नहीं  
दिया है । उनकी रक्ता ‘पेरिय तिरुमोळी’ के एक दशक २ में राम  
रावण युद्ध में पराजित राजाओं के मुँह से राम की स्तुति का वर्णन है ।  
तमिऴ काव्य शैली में पराजित व्यक्तियों के मुँह से विजयी पुरुषों की  
प्रशस्ति सुनाने की एक परम्परा है । तात्पर्य यह है कि पराजित  
व्यक्ति द्वारा विजयी पुरुष की प्रशस्ति का वर्णन करने से ही विजय  
पुरुष के विशिष्ट गुणों और शक्तियों का अच्छा परिचय मिल सकता है ।  
कवि ने राम के विशिष्ट गुणों के गायन के लिए इस प्रकार का एक प्रसंग  
चौंठ निकाला है । उक्त दशक में पराजित राजा राम के श्रेष्ठ गुणों का  
वर्णन कर उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं । वे अपनी दुर्बलताओं  
की प्रशंसा कर, रावण को धिक्कारते हैं और राम की स्तुति करते हैं ।  
उनके कथन के बीच राम-कथा के लोक प्रसंगों का उल्लेख हुआ है ।

तिरुमोई के अन्य पदों में कहीं-कहीं 'चिप्पु' के अन्य अवतारों के साथ राम-कथा के कुछ प्रसंगों की ओर भी संकेत है। तिरुमोई बालुवार के उन पदों में वहाँ के आत्म-निर्देश करते हैं, वहाँ उनकी दास्य-भक्ति दृष्टिगोचर होती है। तिरुमोई बालुवार के अनेक पद हैं वहाँ उन्होंने नायक-नायिका-भाव है मान-मानस सम्बन्ध की वर्णित किया है, वहाँ उनकी भावुर्-भक्ति, की सुन्दर काँकी मिल जाती है। उनकी ~~व्यक्त-व्यक्ति~~ रचना - 'तिरुनेल्लुत्तम्' के एक पद में उनकी राम-भक्ति की भावुर्-भाव के भाव्य है प्रकट होती है।

कमि पेरियालुवार ने ठीका नायक कृष्ण की विभिन्न बात - ठीकाजी में अपने मन की सुनी दिया ता की रामावतार के प्रति उन्होंने उक्ति नहीं दिया। पेरियालुवार की रचना 'पेरियालुवार तिरुमोळी' में दो दलकों में राम-कथा के प्रसंगों का वर्णन है। एक दलक में दो दलकों के संवाचन के रूप में रामावतार और कृष्णावतार की क्लिष्टताओं का गान कराया गया है। रामावतार की क्लिष्टताओं का गान कराया गया है। रामावतार की क्लिष्टताओं<sup>में</sup> वर्णन करने वाली सभी राम-कथा के प्रसंगों में परचुराम बर्क-का, ताळुका-वय, कैयों के कथन पर राम का सीता सहित वन-गमन, भरत की प्रार्थना पर भावुका देना, सूर्यगडा-वय, रामेश्वर में पुत्र वाप कर लौट-प्रति वापि की ओर लौट मान करती है। एक अन्य दलक में अनेक वाटिका प्रसंग विवृत है सीताजी की लीन में निकले हनुमान ने जब लौट की अनेकवाटिका में व्यथा है कुछ सीताजी के लौट किसे तो एक और उसे अत्यन्त पैना हुई और घूरी और उसके आनन्द को सीमा नहीं रही। क्योंकि उसका परिवर्तन निष्प्रयोजन नहीं गया। पेरियालुवार के उक्त दलक में हनुमान द्वारा सीता जी की अपना परिवर्तन, अपने राम के दास और दूत रूप का निरूपण करने के कुछ लौट तथा उसके द्वारा सीताजी की रामजी की दो हुई अँटो दो का वर्णन है। हनुमान के मुख से रामचन्द्रजी के परम कल्याणकारीगुणों की ओर सीता जी की स्तुति प्रस्तुत की गयी है। पेरियालुवार के पद अधिकतर वास्तव्य रूप से जीत-प्रीत हैं। कुछ पदों में वहाँ कवि आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त करता है, वहाँ दास्य भक्ति की सुन्दर काँकी मिलती है।

नम्माळ्वार (सठकौप) ने उपर्युक्त तीन बाळ्वारों की तरह राम-कथा-वर्णन में कोई बल नहीं दिया है। फिर भी उनके पदों में यम-ता अन्य अवतारों के उल्लेख के साथ रामायण के कुछ कथा-प्रसंगों की ओर भी संकेत है। बावत बाळ्वारों में नम्माळ्वार का स्थान स्वोपरि है। उन्हें "कैल्य तमिळु कैतवान" अर्थात् "कैल की तमिळु में प्रस्तुत करने वाला" कहा जाता है। उनका ज्येष्ठ पद-संग्रह "तिरुवाय्मोळी" मल्लि का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। मल्लि कृष्ण की कल्पना फुलार इन पदों में गूँघ उठती है। कवि ने स्वयं की विरहिणी नायिका के रूप में चित्रित कर नायक (भगवान) से मिलने के लिए तड़पते पाठे जाने उर का मार्मिक परित्यक्त किया है। लौकिक प्रेम-वर्णन के लिए तमिळु काव्य-परम्परा में उपलब्ध सभी कवियों का प्रयोग कर उन्होंने जी लौकिक प्रेम का स्वरूप दे दिया है। उनका ग्रन्थ "तिरुविरुत्तम" मधुर-मल्लि का ज्ञान-ग्रन्थ माना जा सकता है। मधुर मल्लि के दोनों पद (संगीत और विगीत) के समीप चित्र इनके पदों में देखने की मिलती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से तात्पर्य यह है कि जहाँ बाळ्वार मल्लि प्रमानतः कृष्णोपासक थे, उन्होंने रामोपासना भी की है। हिन्दी के प्रसिद्ध राम-मल्ल कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी विष्णु के अवतार रूपी अपने इष्टदेव राम का वर्णन करते हुए भी "कृष्ण गीतावली" में अपनी कृष्ण-मल्लि का भी परित्यक्त किया है। इसी प्रकार परम कृष्ण-मल्ल, कविवर सूरदास ने भी रामायण को महिमा गायी है। कृष्ण-मल्लि के क्रैमिक-विकास का अध्ययन करनेवाला विचारों जहाँ बाळ्वार मल्लों में कृष्ण-मल्लि-काव्य का मूल स्वीत देखता है, जहाँ वह बाळ्वारों की राम-कथा के प्रथम गायकों के रूप में अवश्य मानेगा। यह सब है कि बाळ्वारों ने अपने युग की मार्ग के अनुसार कृष्ण के लौकिक रूप का ही अधिक वर्णन गीत-महाति में प्रस्तुत किया है। कारण यह है कि उनका मूल मल्लि-बान्दोलन का मूल था, भावार्थ का मूल था। उन्हें रामायण की महाकाव्यों का प्रणयन कम्भव था। फिर भी उन्होंने राम-कथा के कतिपय प्रसंगों की अपने पदों में स्थान दिया, जिनसे परवर्ती राम-मल्ल कवि भी बहुत प्रभावित हुए और उसके परम्परागत उन लीनों ने महाकाव्य रहे हैं।



कार "नालायिर दिव्य प्रबन्ध" में उपर उपर  
 मिले गये राम-कथा-प्रसंगों को एकत्रित कर क्रमिक रूप में रखा जाय तो हमें  
 पूरा राम-कथा मिल जाती है। "प्रबन्ध" के टीकाकार श्री पैरियवाञ्चान  
 मिले ने प्रबन्ध में यत्र-तत्र उपलब्ध राम-कथा-संक्षेपों और वर्णनों को एक  
 व्यवस्थित रूप में रखकर उन्हें "पासुरप्पडी रामायण" के नाम से प्रस्तुत  
 किया है। बाङ्गारों के ६ फलों से कतिपय पाँचियों को छेड़ उन्होंने भी  
 "रामायण" प्रस्तुत किया है, उनके अवलोकन से यह स्पष्ट सिद्धित होगी कि  
 बाङ्गारों में रामायणपाठना भी कितनी तीव्र थी। "प्रबन्ध" से श्री पैरियवाञ्चान  
 मिले द्वारा संकलित फलों से निर्मित "रामायण" को नीचे दिया जाता है।  
 यदि इसकी हम "बाङ्गार - रामायण" की संज्ञा दें तो उचित ही होगा।

### "बाङ्गार - रामायण"

#### बाउ - कांड

| बाङ्गार का नाम | रचना का नाम     | पद - संख्या |
|----------------|-----------------|-------------|
| तिरुमै बाङ्गार | पैरियतिरुमैली   | ३-१०-१      |
| नम्माङ्गार     | तिरुवाय्मोड़ी   | २-८-४       |
| वही            | वही             | १०-८-११     |
| वही            | वही             | ४-५-१       |
| वही            | वही             | १-१-१       |
| तिरुमै बाङ्गार | पैरिय तिरुमैली  | ११-८-८      |
| नम्माङ्गार     | तिरुवाय्मोड़ी   | ५-१-६       |
| वही            | वही             | १०-७-५      |
| तिरुमै बाङ्गार | पैरिय तिरुमैली  | ७-८-६       |
| नम्माङ्गार     | तिरुवाय्मोड़ी   | १०-१-८      |
| तिरुमै बाङ्गार | पैरिय तिरुवाड़ी | ५-७-७       |

|                 |                  |        |
|-----------------|------------------|--------|
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी | १-१०   |
| वही             | वही              | १०-१   |
| वही             | वही              | ६-३    |
| वही             | वही              | १०-११  |
| वही             | वही              | १०-२   |
| तिरुमंनै आळ्वार | पेरिय तिरुमाळी   | ३-१०-१ |
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी | १०-२   |
| तिरुमंनै आळ्वार | पेरिय तिरुमाळी   | ४-१-८  |
| नन्माळ्वार      | तिरुवाय्मौळी     | ५-२-१० |
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी | १०-३   |
| वही             | वही              | ६-६    |
| वही             | वही              | १०-८   |
| वही             | वही              | ६-१    |

अध्या - कांड

|                 |                      |        |
|-----------------|----------------------|--------|
| पेरियाळ्वार     | पेरियाळ्वार तिरुमौळी | २-१-८  |
| वही             | वही                  | ३-१०-३ |
| वही             | वही                  | ३-६-४  |
| वही             | वही                  | ४-८-४  |
| वही             | वही                  | ३-१०-३ |
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी     | ६-२    |
| पेरियाळ्वार     | पेरियाळ्वार तिरुमौळी | ४-८-४  |
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी     | ६-२    |
| वही             | वही                  | ६-७    |
| तिरुमंनै आळ्वार | पेरियतिरुमौळी        | ११-४-१ |
| कुंजैराज्वार    | पैरुमाळ तिरुमौळी     | ६-२    |
| नन्माळ्वार      | तिरुवाय्मौळी         | ८-३-३  |

|                |                      |        |
|----------------|----------------------|--------|
| तिरुमै वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळी       | १-५-१  |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | १०-४   |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | ३-२-२  |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | ६-३    |
| पेरियाळ्वार    | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-६ |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | ६-११   |
| वही            | वही                  | ६-१०   |
| नम्माळ्वार     | तिरुवाय्मोळी         | १०-६-५ |
| पेरियाळ्वार    | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-५ |
| तिरुमै वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळी       | ६-५-३  |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | ६-७    |
| पेरियाळ्वार    | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-५ |
| वही            | वही                  | ४-६-१  |
| वही            | वही                  | १-१-८  |
| वही            | वही                  | ४-६-६  |

### आरप्य कांड

|                |                      |        |
|----------------|----------------------|--------|
| तिरुमै वाळ्वार | पेरिया तिरुमोळी      | १०-२-३ |
| वही            | वही                  | ८-५-४  |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | १०-२   |
| तिरुमै वाळ्वार | पेरिया तिरुमोळ       | २४     |
| पेरियाळ्वार    | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-३ |
| तिरुमै         | पेरिया तिरुमोळी      | ३-४-६  |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | १०-५   |
| तिरुमै वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळ        | १४५    |
| वही            | पेरिया तिरुमोळ       | ३६     |
| वही            | वही                  | ४०     |
| कुळैवराळ्वार   | पेरुनाळु तिरुमोळी    | १०-५   |

|                   |                      |            |
|-------------------|----------------------|------------|
| तिरुमोळी आळ्वार   | पेरुमाळु तिरुमोळी    | १०-५ ३-८-४ |
| वही               | वही                  | ३-६-४-७-७  |
| वही               | वही                  | ११-४-७     |
| तिरुमाळिळी आळ्वार | तिरुप्पन्न तिरुमाळु  | ५३         |
| तिरुमोळी आळ्वार   | पेरिय तिरुमळ         | ११२        |
| वही               | वही                  | १३         |
| वही               | पेरिय तिरुमोळी       | ५-७-७      |
| वही               | वही                  | ६-३-५      |
| वही               | वही                  | १०-२-४     |
| वही               | वही                  | १०-२-३     |
| वही               | वही                  | १०-२-५     |
| पेरियाळ्वार       | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-४     |
| नम्माळ्वार        | तिरुदुरुन्नाण्डम्    | १६         |
| तिरुमोळी आळ्वार   | पेरिय तिरुमोळी       | ११-४-७     |
| कुळैतराळ्वार      | पेरुमाळुतिरुमोळी     | १०-६       |
| ॐ नम्माळ्वार      | तिरुवायमोळी          | ७-२-१      |
| पेरियाळ्वार       | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-६-४      |
| तिरुमोळी आळ्वार   | पेरिय तिरुमोळी       | २-१०-५     |

### किष्किन्वा कांड

|                       |                      |        |
|-----------------------|----------------------|--------|
| कुळैतराळ्वार-पेरुमाळु | तिरुमोळी             |        |
| कुळैतराळ्वार          | पेरुमाळु तिरुमोळी    | १०-६   |
| नम्माळ्वार            | तिरुवायमोळी          | १-५-६  |
| तिरुमोळी आळ्वार       | पेरिया तिरुमोळी      | ४-६-३  |
| पेरियाळ्वार           | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-८ |
| वही                   | तिरुप्पत्ताळु        | ६      |
| कुळैतराळ्वार          | पेरुमाळु तिरुमोळी    | १०-११  |
| ॐ नम्माळ्वार          | तिरुमाळु तिरुमोळी    | १०-५-८ |
| वही                   | वही                  | ६-७-६  |

तिरुवायमोळी

चुन्दर काण्ड

|                  |                      |           |
|------------------|----------------------|-----------|
| पेरियाळ्वार      | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-११   |
| तिरुमोळी वाळ्वार | पेरि तिरुमोळी        | १०-२-६    |
| वही              | वही                  | १०-२-५    |
| पेरियाळ्वार      | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ३-१०-१०   |
| वही              | वही                  | ३-१०-९    |
| वही              | वही                  | ३-१०-२    |
| वही              | वही                  | ३-१०-३    |
| वही              | वही                  | ३-१०-४    |
| वही              | वही                  | ३-१०-५    |
| वही              | वही                  | ३-१०-६    |
| वही              | वही                  | ३-१०-७    |
| वही              | वही                  | ३-१०-८    |
| वही              | वही                  | ३-१०-८    |
| वही              | वही                  | ३-१०-९ १० |
| वही              | वही                  | ३-१०-९    |
| कुळैवराळ्वार     | पेरुमाळु तिरुमोळी    | १०-११     |
| तिरुमोळी वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळी       | ८-५-७     |
| वही              | वही                  | १०-२-६    |
| वही              | तिरुनेलुन्ताण्डम     | २६        |
| वही              | तिरुदुरन्ताण्डम      | १५        |

कुळ काण्ड

|                  |                      |        |
|------------------|----------------------|--------|
| तिरुमोळी वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळी       | ६-१०-६ |
| वही              | वही                  | ८-६-४  |
| पेरियाळ्वार      | पेरियाळ्वार तिरुमोळी | ४-१-३  |
| तिरुमोळी वाळ्वार | पेरिय तिरुमोळी       | ६-८-५  |
| नम्माळ्वार       | तिरुवाय मीळी         | ७-६-६  |
| कुळैवराळ्वार     | पेरुमाळु तिरुमोळी    | १०-७   |



|                  |                       |          |
|------------------|-----------------------|----------|
| तिरुमै बाळ्वार   | पेरिय तिरुमौळी        | ८-६-४    |
| कुळैतराळ्वार     | पेरुमौळि तिरुमौळी     | ८-८      |
| तिरुमै बाळ्वार   | चिरिय तिरुमळ          | २६       |
| वही              | पेरिय तिरुमौळी        | ११-४-७   |
| वही              | वही                   | १०-२-५   |
| वही              | वही                   | १०-३-२   |
| वही              | वही                   | ४-८-५    |
| वही              | वही                   | १०-३-१   |
| वही              | वही                   | ३-६-५    |
| वांटाळ           | तिरुम्पावि            | ४        |
| तिरुमौळि बाळ्वार | तिरुच्चन्न विरुचम     | ५६       |
| तिरुमै बाळ्वार   | पेरिय तिरुमौळी        | २-१०-८   |
| तिरुमौळि बाळ्वार | नानकुन तिरुवान्तादि   | ४२       |
| पाळ्मै बाळ्वार   | मुळ तिरुवन्तादि       | ५२       |
| तिरुमळि बाळ्वार  | कवय तिरुच्चन्त विरुचम | ८७       |
| नम्माळ्वार       | तिरुवायमौळी           | १०-६-३   |
| तिरुमै बाळ्वार   | पेरिय तिरुमौळी        | १-४-७    |
| वही              | वही                   | १-२-४    |
| नम्माळ्वार       | तिरुवायमौळी           | ६-६-३    |
| तिरुमै बाळ्वार   | पेरिय तिरुमौळी        | ६-८-५    |
| पेरियाळ्वार      | पेरियाळ्वार तिरुमौळी  | ३-१०-७ ८ |
| वही              | वही                   | ३-१०-४   |
| कुळैतराळ्वार     | पेरुमाळु तिरुमौळी     | १०-१     |
| वही              | वही                   | ६-६      |
| नम्माळ्वार       | तिरुवायमौळी           | ८-४-७    |
| वही              | तिरुवाचिरियम          | १        |
| वही              | तिरुविरुचम            | २१       |
| तिरुमै           | पेरिय तिरुमौळी        | २-३-७    |
| नम्माळ्वार       | तिरुवाय मौळी          | ६-२-१    |
| तिरुमौळि बाळ्वार | तिरुच्चन्त विरुचम     | ५७       |

परियाङ्गार  
वाप्पाळ  
नम्पाङ्गार

परियाङ्गार तिरुमौळी  
तिरुम्पावि  
तिरुवाक्कौळी

३-१०-६

२३

४-५-१

-----

‘प्रबन्ध’ पर लिखित पाण्य और उनकी भाषा

निर्दिष्ट प्रमाणों के अभाव में ऐसा प्रतीत होता है कि

बाल्मिक मन्त्रों के पद बहुत कम तक मौखिक परंपरा से ही जीक - प्रचलित रहे । अंतिम संत निरुद्धी बाल्मिक के उपरांत बाल्मिक मन्त्रों का पद-साहित्य नष्ट प्रायः होने लगा और श्री नाथमुनि (६२४ ई० - ६२४ ई०) के समय तक यह पद-साहित्य प्रायः नष्ट ही हुआ । कहा जाता है कि एक बार नाथमुनि ने श्रीरंगम् में तीर्थ-यात्रा में जाए हुए कुछ यात्रियों से बाल्मिकों का एक पद सुना, जिसमें नम्माळ्वार के एक सत्सङ्ग पदों में उनके अंतिम पद होने का उल्लेख था । श्री नाथमुनि ने उन यात्रियों से बाल्मिकों के अन्य पदों की सुनाने की प्रार्थना की । परन्तु उन मन्त्रों की उस एक मात्र पद के अतिरिक्त कोई पद याद नहीं था । तब यह विचार कर कि नम्माळ्वार के जन्म-स्थान पर पहुँचने पर संभवतः उनके अन्य पदों का भी पता चल जाय, नाथमुनि ने उन मन्त्रों से नम्माळ्वार के जन्म-स्थानादि के संबंधित विस्तृत विवरण प्राप्त किया और वे अपनी लय-पूरति के लिए कह दिये । किंवदन्ती है कि श्री पराङ्कुमुनि ने, श्री मधुरकवि के शिष्य थे, (मधुरकवि स्वयं नम्माळ्वार के शिष्य थे) नाथमुनि को बताया कि मधुरकवि द्वारा नम्माळ्वार की स्तुति में रचित “कण्ठानुक्त चिरुतांबु” का सत्सङ्गों बार गायन करने से नम्माळ्वार के दर्शन मिल लीं । कहा जाता है कि नाथमुनि के “कण्ठानुक्त चिरुतांबु” को एक सत्सङ्ग बार गायन करने ~~के बाद~~ पर स्थान में नम्माळ्वार ने दर्शन दिये और प्रबन्ध के समस्त पद उन्हें गाकर सुनाए । कुछ भी हो, इस किंवदन्ती से इतनी बात तो स्पष्ट हो जाती है कि नाथमुनि ने ही बाल्मिकों के समस्त पदों का - जो नष्ट प्रायः अवस्था में थे - संकलन किया और “प्रबन्ध” के रूप में संपादन किया । इस बात के और प्रमाण मिलते हैं कि नाथमुनि के परवर्ती वैष्णव आचार्यों ने “प्रबन्ध” के प्रति अपरिचित नज़र दिखायी थी और उस का महत्त्व पूर्णतः समझा था ।

श्री नागमुनि के समय से लेकर श्री रामानुजाचार्य के समय तक लगभग तीन सौ वर्षों के इस दीर्घ काल में वैष्णव-वाचार्य प्रायः सभी जालुवार-पदों के अध्ययन में लगे थे। जालुवार-पदों से प्रभावित होकर वैष्णव वाचार्यों ने उन पदों में पूर्ण भावपूर्ण पदों की ओर ध्यान भी प्रस्तुत की। इसी काल में वाचार्यों ने "प्रवन्ध" के पद-वाग्विज्ञान से अमूल्य रत्न तैयार निकाले। जालुवारों के प्रति उन का श्रद्धा-भाव बढ़ता गया, जिस के फलस्वरूप श्री रामानुजाचार्य के समय से जालुवारों की रचनाओं पर जोर भाष्य निकलने लगे। जालुवार - पदों की सुन्दर व्याख्या करने वाले वाचार्यों ने उन पदों के अर्थ भी उद्घाटित किये, वे ही लिपिबद्ध होकर भाष्यों के रूप में जनता के सामने आए। जालुवार-पदों पर प्रथम भाष्या नम्माजुवार की "तिरुवायमोली" पर था। जालुवारों के अर्थ में नम्माजुवार की साक्षि स्थान प्राप्त था। इसकी सूचित करने के लिए ही कदाचित् प्रथम भाष्या उनकी रचना "तिरुवायमोली" पर लिखी होगी। इसकी श्री रामानुजाचार्य के लिखे तिरुवक्कीरिदान पिटुन ने श्री रामानुजाचार्य के आदेश पर लिपिबद्ध करके प्रस्तुत किया। इस भाष्य का नाम है, "वाराहरम्पडो" (६००० परिच्छेदों वाला भाष्य) तत्पश्चात् श्री मयूर के लिखे नवीयर ने एक विस्तृत भाष्य लिखा जो "जीन्यदायिरम्पडो" (१०००० परिच्छेदों वाला भाष्य) कहलाता है। नवीयर के बाद एक बृहद् भाष्य प्रस्तुत करने का भी नवीयर के लिखे नंभिर्दे की है। यह भाष्य "मुप्पति वाराहरम्पडो" (३४००० परिच्छेदों वाला भाष्य) के नाम से प्रसिद्ध है। इस की लिपिबद्ध करने वाले श्री वटकु तिरुवीथी पिटु है। यह भाष्य "ईदु" के नाम से बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। "ईदु" शब्द का अर्थ है, लिखित रूप में प्रस्तुत करना। "प्रवन्ध" के समस्त भाष्यों में "ईदु" की सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। इस भाष्य से ही जालुवारों के पदों की व्याख्या में आलोचनात्मक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखा गया। (यह मणिप्रमालु-पदों में है। इस का सुदृढ समर्थन - अनुवाद मद्रास-विश्वविद्यालय की ओर है श्री पुण्योत्तम नायडु, द्वारा १० भागों में बाँट ही में प्रस्तुत किया गया है।)

ई-पडो का शाब्दिक अर्थ है, "एक भाग"। यहाँ "पडो" के लिए परिच्छेद अर्थ ला ही उचित होगा।

नृपितृ के शिष्य पैरियवाञ्चान पितृ ने जाल्मारी के चार सहस्र पत्रों का एक किताब पूर्ण भाष्य तैयार किया। उस में "तिरुवाय्मोली" है संन्य रत्न वाला नाम "इरुपयिनालायिरम्पळी" है संन्य रत्न वाला नाम "इरुपयिनालायिरम्पळी" ( २४००० परिच्छेदों वाला भाष्य ) कहलाता है। पैरियवाञ्चान पितृ के शिष्य वाद कैररी कुरुविय मणवळुमीयर ने एक भाष्य कैयल "तिरुवाय्मोली" पर प्रस्तुत किया, जिसे पन्निरंलायिरम्पळी " ( १२००० परिच्छेदों वाला भाष्य ) कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि "तिरुवाय्मोली" १४४००० के पांच भाष्यों की प्राप्ति करने का गौरव प्राप्त है। कहते हैं कि इनके अतिरिक्त "पत्तिंदुवायिरम्पळी" के नाम से श्री वेदान्त पैरिकावार्य के परवर्ती जाल्मारी द्वारा एक बार भाष्य भी लिखा गया यह भी कहा जाता है कि श्री वेदान्त पैरिकावार्य ने ( जो "बहुते संप्रदाय के संस्थापक है ) " निगम परिवर्तु" के नाम से ७६००० परिच्छेदों वाला एक बृहद् भाष्य ६००००० प्रस्तुत किया था।

सुर विद्वानों का मत है कि "प्रबन्ध" का सर्वाधिक प्रचार नाथमुनि के बहुत बाद में हुआ, क्योंकि नाथमुनि तथा रामानुजाचार्य के बीच के आचार्यों ने अपनी रचनाओं में आक्षेपों का विशेष उल्लेख नहीं किया है। आक्षेप (नाथमुनि के पीछे) जो पांच ग्रन्थों के रचयिता हैं, आक्षेपों का विशेष उल्लेख कहीं नहीं करते। इस प्रकार आक्षेपों के शिष्यों ने (जिनको फंसाचार्य कहते हैं) वे हैं - वैरिय तिरुमळि नंभी, तिरुवकाव्यी नंभी, वैरिय नंभी, तिरुमळि बांडान, तिरुकोट्टियूर नंभी) जो आक्षेपों की कोई विशेष चर्चा नहीं की है। यह भी कहा जाता है कि श्री रामानुजाचार्य ने अपने ग्रन्थों में आक्षेपों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। किन्तु यह तर्क निराधार है। एक कारण यह है कि नाथमुनि से रामानुजाचार्य तक के आचार्यों ने शिष्यों की <sup>ग्रन्थ</sup> ~~ग्रन्थ~~ लिखी है, वे आक्षेपों से सीधा संबंध नहीं रखते। अतः उनके ग्रन्थों में आक्षेपों की विशेष चर्चा नहीं मिलना स्वाभाविक ही है। नाथमुनि ने ही नम्माळ्वार की स्तुति में एक श्लोक लिखा था, जो "तिरुवायमोळी" १- "मत्तातुत विरक्कान्तात्तुत्तु"।

सुबोधो जी सुकृष्णदाह. नमः ।

सहस्रं शाश्वतं निवृत्तमागम्य नान्यत् प्राविश्यैव सागरम् ।



के प्रारंभ में नम्माळ्वार - स्तुति - में स्थान पाया है। नाथमुनि के पौत्र श्री जालुन्दार ने भी एक श्लोक में नम्माळ्वार की स्तुति की है। ~~रामानुजाचार्य~~ के शिष्य कुरवाळ्वान की स्तुति की है। रामानुजाचार्य के शिष्य कुरवाळ्वान ने जालुन्दारों की जगह गन्ध "कैकुंस्तव" में बड़ी स्तुति की है। कुरवाळ्वान के पुत्र श्री मदुर ने भी "दाविड देव" कहकर "प्रवन्धु" की मणिमा का गान किया है।

ध्यान देने की बात है कि जितने भी नाथ्य जालुन्दारों की रचनाओं पर निकले, उन में अधिकतर नम्माळ्वार की रचना "तिरुवायमीळी" के पदों से संवन्धित हैं। नाथ्यकारों ने तिरुवायमीळी के एक सहास्र पदों को एक भाग में लिया है और प्रवन्धु के ऐसे तीन सहास्र पदों की दूसरी भाग में अलग रूप से लिया है। "तिरुवायमीळी" के अतिरिक्त प्रवन्धु में संगृहीत अन्य पस्तकों पर भी अलग अलग टीकाएँ निकली हैं। पैरियावाज्वान पिल्लै ने "तिरुवायमीळी - नाथ्य" के साथ "प्रवन्धु" के टीकाएँ पर भी नाथ्य प्रस्तुत किया है उनके नाथ्य में कुछ पद बूझ रहे गये हैं, विशेष रूप से "पेरियाळ्वार तिरुवायमीळी" के कुछ पद। श्री ब्रह्मवाड मामा मुनि ने उन पदों पर नाथ्य प्रस्तुत कर पूरा किया। श्री मय्याळ्वामुनि के पुत्र तिरुवायमीळी-पिल्लै ने भी "पेरियाळ्वार तिरुवायमीळी" पर दार्शनिक दृष्टिकोण से कुछ एक कुछ नाथ्य प्रस्तुत किया। बांछारु की रचना "तिरुण्णवे" पर भी टीकाएँ निकली हैं - इरायिरण्ण्डी, नाळायिरण्ण्डी, मूवायिरण्ण्डी, वारायिरण्ण्डी, तथा सुधा सत्त्वम् दासाचार्य कृत "स्वापदेशार्थ"। इन में "मूवायिरण्ण्डी" (३००० परिच्छेदों वाला टीका) के टीकाकार श्री पैरियावाज्वान पिल्लै हैं। "वारायिरण्ण्डी" (६००० परिच्छेदों का नाथ्य) के प्रणेता अक्षय्य मणवाळु पैनाळुनायनार हैं। "इरायिरण्ण्डी" और "नाळायिरण्ण्डी" के रचयिताओं के नाम अज्ञात हैं।

तोंडरुटीपीडी जालुन्दार कृत "तिरुम्पारुळि सम्बन्धि" पर श्री नन्दीयर तथा श्री पैरियावाज्वान पिल्लै द्वारा प्रस्तुत दो टीकाएँ मिलती हैं। तिरुम्पाण जालुन्दार विरचित "अज्जादिपिरान" पर श्री पैरियावाज्वानपिल्लै तथा अक्षय्य मणवाळु पैरुवाळु नायनार की टीकाएँ मिलती हैं। इस पर वेदान्त वैदिकाचार्य ने "मुनिवाहन श्रीगम्" नाम से एक संस्कृत - टीका भी लिखी है। मधुर-

कवि बाह्यार कृत "कण्ठानु विर तां" पर सर्व श्री नजीयर नांपल्ली,  
 पैरियवाच्चान पिल्लै वादि ने टीकार प्रस्तुत की हैं। तिरुमै बाह्यार  
 कृत "पैरिय तिरुनीळी" पर मिलेवाली टीकाओं में एक श्री पैरियवाच्चान  
 पिल्लै की है और दूसरी नजीयर की। तिरुमै बाह्यार की दूसरी रचना  
 "तिरुनेनुनाण्ळम" पर श्री पैरियवाच्चान पिल्लै की एक प्रसिद्ध टीका  
 उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त उस ग्रन्थ पर श्री रंगमु के तंपुरान ठीगो  
 (मतनगण) द्वारा रचित एक टीका भी है। परन्तु यह अब अज्ञात है।  
 नन्माह्यार की कृति "तिरुविरुत्तम" पर भी नांपल्ली, श्री पैरियवाच्चान  
 पिल्लै, श्री वाटिकैलन, श्री अरुक्किय मणवाळु वीयर वादि कितानों द्वारा  
 प्रस्तुत टीकार भी मिलते हैं। तिरुमै बाह्यार की कृति "पैरिय तिरुनळ" पर  
 श्री पैरियवाच्चान पिल्लै तथा श्री अरुक्किय पैरुवाळु नायनार ने टीकार लिखी  
 हैं। श्री नायनार की टीका "नायनार व्याख्यानम्" कहलाती है। यह भी  
 कहा जाता है कि अम्बिल्लै नामक एक कितान ने "प्रबन्ध" के सभी पदों पर एक  
 सामान्य भाष्य प्रस्तुत किया था। वह अब उपलब्ध नहीं है।

### भाष्यों की भाषा

श्री तिरुकुरै पिरान पिल्लान के समय से लेकर श्री मणवाळुनामुनि  
 के समय तक अर्थात् लगभग १२ सौ सती से १५ सौ सती तक के सभी भाष्यकार  
 अपनी भाष्यों में एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। उच्चैःशैल्य  
 यद्यपि है दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों के निवासी थे। श्री नजीयर  
 मैसूरवासी थे। श्री पैरिय वाच्चान पिल्लै मद्रास - प्रान्त के कुंकोण- क्षेत्र के  
 थे और मणवाळुनामुनि रामनाडु जिले के थे। इस प्रकार अन्य भाष्यकार भी  
 समस्त दक्षिण भारत के विन्न- विन्न स्थानों के रहने वाले थे। परन्तु एक  
 विशेष बात यह है कि उन सभी भाष्यकारों की भाषा-शैली में एक समानता  
 स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने जिस विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया था,

वह "मणिप्रवाल" कहलाती है। ये अपनी भाषाओं में अपने समय के दैनिक जीवन में काम आनेवाले समस्त शब्दों और प्रयोगों को अपनाती है। ये तमिल की गम-लेखी में अपनी भाषाओं में तमिल शब्दों के बीच-बीच दर्ज है पुष्ट संस्कृत के शब्दों और उद्धरणों की पुरी पैरी है। ऊपर उल्लिखित टीकाकारों का काठ तमिल साहित्य के इतिहास में "भाषा - काठ" कहलाता है। उन टीकाकारों ने जिस "मणिप्रवाल" भाषा का प्रयोग किया था, उस है तमिल-भाषा का शब्द-मंडार व्यापक हुआ और तमिल भाषा में एक नयी शक्ति आ गयी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन टीका-ग्रन्थों में प्रयुक्त संस्कृत-शब्द बड़े बड़े महत्व के हैं। इन भाषाओं में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों और प्रयोगों का एक विशिष्ट अध्ययन ही अपेक्षित है। पुराने समय में गुरु या वाचार्थ की सहायता के बिना इन भाषाओं को समझना कठिन समझा जाता था। इन टीकाकारों ने अपनी भाषाओं में जिन विशिष्ट प्रयोगों, शब्दों, वाक्यांशों का प्रयोग किया था,

१- संस्कृत शब्दों से मिलित तमिल भाषा की लेखी ही "मणिप्रवाल" कहलाती है।

"मणिप्रवाल" है वाक्य है कि यह लेखी जितनी ही भिन्न भाषाओं के <sup>३१८२</sup> उन्नत रूपों मौलों और रत्नों से परिधी गयी एक भाषा। इस लेखी का एक उदाहरण इस प्रकार है - "हन्त जातिर पित वितोरवरकुंज स्वप स्वनामकुंजान्द्रुम अरियादे पुरुषाशीपाय क्लौन्दिद्रुम मृदादे, सप्तादि विषकंठित मिकुम मंडो पीरुत्तुम कडल्लुम वीण्णातिरुक्किन्नु त्तर वुड तामरतिरुक्-उत्तुत्तानिन्नु केनरुक्कु "दुर्लभी मानुष देही"... रन्किर मळी पुरुषाशीपायी यान मनुष्य त्तरि दुर्लभम्। इप्पाठि दुर्लभान त्तरिरे पिद्रात्तु उडुवडिक्क मीर्त्तुन्ने पिरुक्के अरिद्रु। मीर्त्तुन्ने पिरन्तात्तु निरतिलय सुड रूपमय मानव गुणानुभव कारितमान तत्केयंप्राप्त रूप मीर्त्तुन्ने जीरुवरुवरुक्कु पिरुक्किरुदरुता" - (नजीयर की टीका है)

उनके कर्म को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या सहित उन का संकलन श्री मणवाङ्मयानुति के समय के परचास हुआ। इन संकलनों में एक का नाम है, "वरपद विहङ्गम" (कठिन उद्धार)। "तिरुवाय्मोली" पर उपलब्ध "ईदु" नाम के प्रसिद्ध भाष्य में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों का कर्म बताने वाला एक ग्रन्थ "वीयार" अर्थात् "वरपदम" है। संस्कृत-संस्कृत: इस प्रकार के उद्धार्य बतानेवाले ग्रन्थ "प्रबन्ध" के भाष्यों के भी भाष्य ठहरते हैं।

स्मरण रहे कि जिस प्रकार बाल्मीकि विरचित "प्रबन्ध" पर "मणिप्रकाश" छेती में तमिल में अनेकानेक भाष्य उपलब्ध है, उस प्रकार के भाष्यों के दर्ज होने तमिल के अन्य धार्मिक साहित्यों के बीच में नहीं होने। वैष्णव मत-कवि बाल्मीकि के "प्रबन्ध" पर निकले हुए अनगिनत श्रेष्ठ भाष्यों के समान शिव - मत-कवि नायनमारों के पद-संग्रह "तैयारम्" पर भाष्य नहीं मिलते। यह बड़े महत्व की बात है "तैयारम्" पर एक साधारण सा भाष्य ही उपलब्ध है। नांपल्ले तथा अन्य सभी भाष्यकार संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे। किन्तु उन्होंने अपने भाष्यों में संस्कृत - प्रणालियों का पूर्णरूप से अनुकरण नहीं किया। उनकी भाषा सुमता को लिए हुए भी संस्कृत की रुढ़ियों का पालन नहीं करती। जिस तरह संस्कृत में लिखित भाष्यों की "संयोजनी", स्वर्णिम "रत्निक रत्ननी", कष्टपाक्य" भी नाम प्राप्त हैं, उस तरह तमिल में रचित भाष्यों के अलग अलग नाम नहीं हैं। वहाँ संस्कृत भाष्यों के प्रारंभ में एक "मंगलाचरण - श्लोक" रत्ने की तथा प्रत्येक अध्याय में रचयिता और उसकी विद्वत् विद्वत् की स्तुति करने की परिपाटी है, वहाँ तमिल भाष्य उनसे भिन्न हैं। एक प्रश्न यह उठ सकता है कि जब इन तमिल भाष्यों में उनके रचयिताओं के नाम एवं परिचय नहीं मिलते हैं तो उनके रचयिताओं का कौन सा उद्देश्य है? वे कहाँ कहाँ जाय। संयोगवत् प्रत्येक भाष्य के अंत में एक पंक्ति में इस प्रकार का उल्लेख अवश्य लिखा मिलता है कि कुरु के चरण ही मेरी चरण हैं। इन पंक्तियों में जिनकी स्तुति मिलती है, वह स्पष्टतः उनके रचयिताओं के बाबायों (गुरुजों) की ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिष्यों ने भाष्यकार गुरुजों के भाष्यों की सुरक्षित रखा है और उनके प्रति अदा-माय प्रदर्शित किया है।

“प्रबन्ध” पर लिखित पूरे भाष्यों के अतिरिक्त बाङ्गारों के कुँड़े हुए पदों की ओर उन का उत्तर बनाने वाले कुछ स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे गये। इस प्रकार के ग्रन्थकारों में सर्व श्री नवीनार, पिटूँ लोकाचार्य और कैदामन्त देविकाचार्य प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों की “रहस्य ग्रन्थ” कहा जाता है। इस वर्ग के “जात्म विवाह” तथा “मुकुट वर्णनाम्” नामक दो ग्रन्थ भी नवीनार ने लिखे हैं। श्री पैरियवाय्वान पिटूँ के भी दो ग्रन्थ इस प्रकार के मिलते हैं। वे हैं— “वाणिज्यार्थ” और “निगमनम्”। श्री पिटूँ लोकाचार्य तथा श्री कैदामन्त देविकाचार्य ने सब से अधिक “रहस्य - ग्रन्थ” लिखे हैं। श्री पिटूँ लोकाचार्य के लिखे १८ “रहस्य” <sup>ग्रन्थों का सामग्रिक नाम है अष्टादश रहस्य</sup>। श्री कैदामन्त देविकाचार्य ने छोटे-मोटे १७ रहस्य ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें “रहस्यत्रय चारम्” नामक ग्रन्थ सब से अधिक प्रसिद्ध है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कै, उपनिषद् तथा ब्रह्म - सूत्रों पर लिखित संस्कृत - भाष्यों का जो महत्त्व है, वही तमिल-प्रदेश में तमिल में लिखित “प्रबन्ध” के भाष्यों का है। दोनों समान रूप से दार्शनिक विवेचन का दृष्टिकोण रखा गया है। श्री संप्रदाय (रामानन्द संप्रदाय) के सभी आचार्य और उनके शिष्यों ने इन भाष्यों का गंभीर अध्ययन किया है।

उपसृक्त - ग्रन्थों के अतिरिक्त १७ वीं शती के परबाहू भी “प्रबन्ध” पर टीका - ग्रन्थ निकाले रहे। इन टीकाओं की भाषा और ऊपर वर्णित भाष्यों की भाषा में अन्तर है। प्रारम्भ के “प्रबन्ध - भाष्यों” के साथ ही “वाणिज्यार्थ” उड़ी (संस्कृत मिश्रित तमिल) अपनायी गयी थी। कुछ काल के परबाहू वाणिज्यार्थ उड़ी छोड़ दी गई थी और संस्कृत शब्दों से भरा, कुछ तमिल - उड़ी में जोड़ टीकाएँ निकाली गयीं। इस प्रकार “प्रबन्ध” के भाष्यों का एक पुस्तक विस्तृत-साहित्य ही निर्मित हो चुका है। इन भाष्यों के अध्ययन से निम्न लिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं:-

- १- इन भाष्यों के द्वारा बाङ्गारों के पदों का व्यापक प्रचार तमिल-प्रदेश में हो सका और लोग बाङ्गारों के उन्नत विचारों से परिचित हो सके। बाङ्गारों के प्रति तमिल-जमाज में कटा-भाव जाग उठा।



२- "प्रान्त्व" के प्रारंभिक भाष्यों की भाषा के संस्कृत शब्दों और विशिष्ट प्रयोगों से युक्त होने (मणिप्रवाह - होने में होने) के कारण तथा उन भाष्यकारों के समस्त दक्षिण भारत के विन्न स्थानों के निवासी होने के कारण दक्षिण के विभिन्न भागों के लोगों में बाह्यार पदों का प्रसार हो सका। एक प्रकार की होने में होने के कारण सब लोग समझ लें और इस प्रकार समस्त दक्षिण भारत में बाह्यारों के विचारों की फीट जाने का बखार मिला। "मणिप्रवाह" के संस्कृत भाषा के निकट होने से यह भी समझ है कि अगर भारत के किसी भी भाष्यों की समझ लें।

३- तमिल भाषा में उन भाष्यकारों के भाष्यों के माध्यम से बहुत से संस्कृत शब्द प्रवेश कर गये। ये शब्द अधिकतर छद्म सरल और मधुर संस्कृत शब्द थे जिन से तमिल भाषा में एक नयी शक्ति आ गयी।

४- तमिल में १२ वीं शती से १६ वीं-१७ वीं शती के बीच में प्रधान रूप से भाष्य ग्रन्थ हो लिये गये। यही कारण है कि तमिल साहित्य के इतिहास में यह काल "भाष्य - ग्रन्थ - काल" कहा जाता है।

५- उन भाष्यों<sup>के</sup> बाह्यारों की विचार - धारा का प्रसार करने में बड़ी सहायता की और बाह्यार - पदों को सुरक्षित रखने में महान् योग दिया है और उनके महत्व को समझने में बड़ी सहायता मिली।

परिशिष्ट - ४

सहायक-ग्रन्थ - सूची

हिन्दी

- १- वल्लभाय वीर वल्लभ-सम्प्रदाय - डा० दीनदयालु गुप्त
- २- भागवत- सम्प्रदाय - बलदेव उपाध्याय
- ३- भारतीय साक्षा वीर सूर साहित्य - डा० कुशीराम शर्मा
- ४- मध्यकालीन धर्म- साक्षा- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
- ५- मध्यकालीन प्रेम-साक्षा - परशुराम चतुर्वेदी
- ६- उत्तरी भारत की संत- परम्परा - परशुराम चतुर्वेदी
- ७- सूर वीर उनका साहित्य - डा० हरवंश लाल शर्मा
- ८- भागवत दर्शन - डा० हरवंश लाल शर्मा
- ९- सूरदास - डा० ब्रजेश्वर वर्मा
- १०- महाकवि सूरदास - आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
- ११- सूर की काव्य कला - डा० मनमोहन गौतम
- १२- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त वीर साहित्य - डा० विजयेंद्र स्नातक
- १३- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि - विश्वम्भर नाथ उपाध्याय
- १४- सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- १५- सूर- साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
- १६- वैष्णव धर्म- परशुराम चतुर्वेदी
- १७- हिन्दी काव्य- चारा में प्रेम प्रवाह - परशुराम चतुर्वेदी
- १८- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि- डा० सरयुप्रसाद अग्रवाल
- १९- मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां - डा० सावित्री सिन्हा
- २०- हिन्दी काव्य में प्रेम वीर सौन्दर्य - डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल
- २१- हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव- डा० इति अग्रवाल

- २२- ब्रजभाषा के कृष्ण- भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना- शिल्प- डा० सावित्री सिन्हा
- २३- भक्ति का विकास - डा० मुंशीराम शर्मा
- २४- अष्टहाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन - डा० मायारानी टण्डन
- २५- अष्टहाप परिवय - प्रमुदयाल मोतल
- २६- कृष्ण- भक्ति-कालीन साहित्य में संगीत - डा० उषा गुप्ता
- २७- हिंदी काव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ- डा० ब्रजमीन गुप्त
- २८- सूर सौरभ- डा० मुंशीराम शर्मा
- २९- सूर की क्रांति - डा० सत्येन्द्र
- ३०- राधा का क्रमिक विकास - डा० अश्विभूषणदास गुप्ता
- ३१- अष्टहाप - डा० धीरेन्द्र वर्मा
- ३२- ब्रजभाषा - डा० धीरेन्द्र वर्मा
- ३३- भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय
- ३४- भारतीय संस्कृति - प्रो० देवदत्त ज्ञानी
- ३५- हिन्दुस्तान की पुरानी सम्यता - डा० बेनी प्रसाद
- ३६- संस्कृति के चार अध्याय - राधारीसिंह दिनकर
- ३७- कृष्ण काव्य में प्रेम गीत - डा० श्याम सुन्दरलाल दीक्षित
- ३८- रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव- डा० बदरीनारायण  
श्रीवास्तव
- ३९- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना - मुनेश्वरनाथ मिश्र माफ
- ४०- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण - डा० किरण कुमारी गुप्ता
- ४१- नीरा स्मृति ग्रन्थावली - बंगीय हिन्दी परिषद्
- ४२- पौदार अभिनन्दन ग्रंथ
- ४३- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण- काव्य का तुलनात्मक अध्ययन- डा० जगदीश गुप्त
- ४४- हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति वान्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन - डा० हरिणमय
- ४५- १६ वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि- डा० रत्नकुमारी
- ४६- हिन्दी और मलयालम में कृष्ण- भक्ति काव्य- डा० मास्करन नायर

- ४७- कंवर और तुलसी - डा० कंवर राघु नाथ  
 ४८- हिन्दी साहित्य - डा० श्यामसुन्दरदास  
 ४९- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल  
 ५०- हिन्दी साहित्य का बालीचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा  
 ५१- हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा० खजारी प्रसाद द्विवेदी  
 ५२- तमिल और उसका साहित्य- पूर्ण श्यामसुन्दरम्  
 ५३- तमिल साहित्य और संस्कृति - जयकान्दन  
 ५४- सुरसागर - प्र० नागरी प्रचारिणी सभा  
 ५५- परमानन्द सागर- सं० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल  
 ५६- नन्ददास ग्रन्थावली - प्र० नागरी प्रचारिणी सभा  
 ५७- मीराबाई की पदावली - सं० परशुराम बहुवैदी  
 ५८- ब्रजभाषुरी सार - सं० विद्योगी हरि  
 ५९- निम्बार्क भाषुरी - सं० विशारी हरण, पुन्दावन  
 ६०- रसखान का जमर काव्य- सं० दुर्गाशंकर मिश्र  
 ६१- श्रीरहित स्फुटवाणी  
 ६२- सुदामाचरित - नरोत्तमदास  
 ६३- भक्तमाल - नाभादास  
 ६४- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता  
 ६५- चौरासी वैष्णवन की वार्ता

पत्र- पत्रिकारं ( हिन्दी )  
 =====

- १- बालीचना  
 २- भारतीय साहित्य  
 ३- जम्भिव भारती  
 ४- साहित्य- सन्देह  
 ५- कल्याण ( भक्ति- शंकर )

संस्कृत

- १- नारद भक्ति- सूत्र
- २- श्रीमद्भागवत- गीता प्रेस, मोरारपुर
- ३- मुकुन्दमाला- कुल्लुखराज्वार
- ४- हरिभक्तिरसामृत सिन्धु - श्री रूप गोस्वामी
- ५- दिव्य प्रदम्भ कथामृत - श्री वण्णकराचार्य



तमिल  
-----

- १- नात्तायिर दिव्य प्रबन्धम् - सं० कृष्णमाचारियार
- २- वही - सं० जण्णंकराचार्य
- ३- वात्मारक्तु चरित्तिरुम - सी० वार० श्रीनिवासी अय्यंगार
- ४- वात्मारक्तु वरत्तारु - कै० वार० गोविन्दराज मुदलियार
- ५- वात्मारक्तु वत्तिक्कुत्तार वरत्तारु - कै० वार० गोविन्द राज मुदलियार
- ६- वात्मारक्तु कात्तनिलै - एम० राक्षसय्यंगार
- ७- श्री भावत विष्ण्वयम - ए० रंगनाथ मुदलियार
- ८- भक्ति- पूजा - जी० एतिराजुत्तु नायडू
- ९- श्री वैष्णवम - सं० ए० रंगनाथ मुदलियार
- १०- ईट्टिटन तमिलाक्कम ( तिरुवाय मीत्ती ) दस भाग - श्री परुण्णीत्तम नायडू  
( प्रकाशक - मद्रास विश्वविद्यालय )
- ११- तिराविडु मुनिवरक्तु- एम० राधाकृष्ण पिल्लै
- १२- मूलर एट्टिय मीत्ति वित्तुक्कु- पी० श्री० आचार्य
- १३- तौडक्कुत्तम तौत्तुक्कुत्तम- पी० श्री० आचार्य
- १४- भगवानै वत्तर्त्त भक्तर - पी० श्री० आचार्य
- १५- कुत्तैत्तार - टी० पी० मीनाश्रीमुन्दरनार
- १६- तमित्तुम वैणवमुम - एम० राधाकृष्ण पिल्लै
- १७- पैरियात्तार पिल्लै तमित्तु - टी० पद्ममावती अम्माळ
- १८- विल्लिपुत्तुर वित्तुक्कु- एम० कृष्णदेवणी अम्मीयार
- १९- तिरुवायमीत्ती वित्तुक्कु- पूर्वरागम पिल्लै
- २०- वाण्डात्तवहत्तिय तिरुप्पावै - पी० कै० शम्भुलनाथ
- २१- भक्ति नेरी - श्री० राजगोपालाचारी
- २२- वात्मारक्तु वरत्तुमीत्ती - चामी चित्तंपरनार
- २३- दिव्य प्रबन्ध सारम् - श्री० श्री० आचार्य
- २४- पैरियात्तार पेण्कोडी - कृष्णदेवणी अम्मीयार
- २५- दिव्य प्रबन्ध उरै - श्री जण्णंकराचार्य
- २६- कंन कण्ट तमित्तुक्कु - चामी चित्तंपरनार

- २६- कवन कावियमु- एत० वैयापुरी पिल्लै  
 २८- मीली वरत्तारु - डा० मु० वरदराज्जार  
 २९- पल्लवर वरत्तारु - डा० एम० राजमाणिक्यार  
 ३०- तमिल इत्तक्किय वरत्तारु - कै० सुब्रह्मण्य पिल्लै ( २ भाग )  
 ३१- तमिल चरित्तिरम - एन० एत० कन्तैया पिल्लै  
 ३२- तमिल इत्तक्किय वरत्तारु - ई० एत० वरदराज अय्यंगार  
 ३३- तमिल वरत्तारु - कै० एत० श्रीनिवास पिल्लै  
 ३४- तमितर सार्लु - डा० विष्णानन्धन  
 ३५- इत्तक्किय उदयम - एत० वैयापुरी पिल्लै  
 ३६- अक्क्योरुत्तुम अरुत्तियेयत्तुम - टी० डी रामस्वामी नायडु  
 ३७- ज्ञान छित्तम् - पी० श्री० आचार्य  
 ३८- सुयित्त एकुप्पिय तौडर - पी० श्री० आचार्य  
 ३९- वात्तमारक्कुम आचार्येयत्तुम - पी० श्री० आचार्य  
 ४०- तमितर पण्पाडु - वैयापुरी पिल्लै  
 ४१- तमिल नाट्टु विज्ञाक्कल - एम परमशिवानन्धम  
 ४२- तमितर वलर्त्त अत्तु कलैक्कल- मयिलै चीनो वेंकटस्वामी  
 ४३- याप्पितक्कणम व प्रका० शैव सिद्धान्त नूर्पटिप्पु कल्लम  
 ४४- अणायितक्कणम- वही  
 ४५- तालाट्टु इत्तक्कियम- मु० अरुणाचलम

पत्र- पत्रिकारं ( तमिल )

- १- चैतमिल  
 २- तमिल पौत्तिल  
 ३- तिरुक्कोयित  
 ४- श्री रामकृष्ण विजयम

ENGLISH

1. Alvar Saints - Swami Shudhananada Bharati .
2. The Divine Wisdom of Dravida Saints - A. Govindacharya.
3. The life and teachings of Ramanujacharya - C.R. Srinivasa Aiyenger.
4. A metaphysique of Mysticism - A. Govindacharya Svamin.
5. Grains of Gold - R.S. Desikan.
6. The Holy lives of Alvars or Dravida Saints - A. Govindacharya.
7. Hymns of Alvars - J.S.M. Hooper.
8. Tiruppavai (English Translation) - D. Ramaswamy Iyenger.
9. Sri Mukundamala (with notes) - K. Ramapisharotty.  
(Annamilai University Publication)
10. The Glory of Tamil Prabhandas (Annangaracharya) - English Translation by M.W.K. Rangacharya
11. History of Srivaishnavas - T.A. Gopinatha Rao  
(Sri Subramonia Iyer Lectures)
12. Early History of Vaishnavism in South India - Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar.
13. History of Tirupathi - Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar.  
( Two Volumes)
14. Ancient India - Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar.
15. Tamil Studies - M. Srinivasa Aiyengar.
16. Origin and Early History of Saivism in South India -  
C.V. Narayana Iyer.
17. Studies in Tamil Literature and History - V.R. Ramachandra Dikshitar.

18. Tamil India - M.S. Purnalingam Pillai.
19. History of the Tamils - P.T. Srinivasa Iyengar.
20. Some Contributions of South India to Indian Culture -  
Dr. S. Krishnaswamy Aiyengar.
21. Tamils Eighteen Hundred Years ago - K. Kamakasabai.
22. Dr. S. Krishnaswamy Iyengar - Commemoration Volume.
23. Tamilnad through ages - M. Paramasivanandam.
24. Essays on the origin of South Indian Temple -  
Dr. Venkita Ramayya.
25. A History of South India - K.A. Nilakanta Sastri
26. South Indian Inscriptions, Vol. I & II.
27. Advanced Studies in Tamil Prosody - Dr. A. Chidambaranatha  
Chettiar.
28. History of Tamil Language and Literature - S. Vaiyapuri  
Pillai.
29. Philosophy of Vishistadvaita - P.N. Srinivasachari.
30. Mystics and Mysticism - P.N. Srinivasachari.
31. Aspects of Bhakta - Dr. K.C. Vardachari.
32. Idea of God.- Dr. K.C. Varadachari.
33. Vaishnavism, Saivism and other minor religious Sects -  
Dr. R.C. Bhandarkar.
34. A History of Indian Philosophy, Vol. III - Dr. S.N. Das  
Gupta.
35. Bhakti Cult in Ancient India - Dr. Bhagat Kumar Goswami.
36. The Cultural Heritage of India Series (Sri Rama Krishna  
Mission -Calcutta) - Volumes III & IV.

37. Materials for the Study of the Early History of the Vaishnava Sect - Hemachandra Ray Choudhuri.
38. Vishnavite Myths (in Folk-lore setting) - Dr. Benikant Kakati.
39. Indian Philosophy - Dr. Radhakrishnan ( 2 parts).
40. Obscure religious Cults - Dr. Shashibhushan Das Gupta.
41. Monograph on the religious sects of India - D.A. Pai.
42. Vaishnavite Reformers of India - T. Rajagopalachari.
43. Path way to God in Hindi Literature - R.D. Ranade.
44. Influence of Islam on Indian Culture - Dr. Tarachand.
45. An Outline of the Religious Literature in India - J.N. Farquhar.
46. Literatures in Modern Indian Languages (Govt. Of India Publication).

#### JOURNALS

1. Journal of the Annamalai University.
2. Annals of Oriental Research, Madras.
3. Tamil Culture, Madras.
4. Indian Antiquary.
5. Journal of the Sri Venkiteswara Oriental Research Institute, Tirupati.
6. Vedanta Kesari, Madras.
7. Journal of Royal Asiatic Society.



पंचम अध्याय

“ पुष्टिमार्गीय वातारं , उनके प्रणीता एवं लेखक ”

की है। उनके मतानुसार भक्ति की वृद्धि के बीज भाव की पुष्टि के लिए सेवा की व्यवस्था की है जिसका स्वरूप भावात्मिका है, उससे प्राप्त परमकल रूप प्रभु-स्वरूप भी भावात्मक है।<sup>१</sup> श्रीमहाप्रभु जी के विचारों के अनुसार ही ये भी प्रभु चरणों में चित्त को लवलीन करने की सेवा कहते हैं, जिसका फलरूप मानसी सेवा की सिद्धि है।<sup>२</sup> यह निरोधरूपा मानसी सेवा ब्रज भक्तों में दिखाई देती है। मानसी सेवा का प्रादुर्भाव तभी होता है जब भक्त हृदय में भगवान् से मिलने की इच्छता के कारण विप्रयोग उत्पन्न होता है और फिर रसात्मक प्रभु का प्रादुर्भाव स्वतः ही हृदय में होजाता है।<sup>३</sup> यह सेवा ही भक्ति के साधन की पुष्टि करती है। इसका रहस्य भक्त-हृदय की संतुष्टि है, जो भक्त की समस्त वृत्तियों का समाहार श्रीकृष्ण चरणों में ही करने से प्राप्त होती है।

पुष्टिमार्ग के अनुसार सेवा के दो प्रकार हैं-भावात्मक ज्ञाना नामदेवा सर्व क्रियात्मक ज्ञाना स्वरूप- सेवा । स्वरूप/सेवा दो प्रकार की मानी गई है - १- तनुजा सर्व वित्तवा और भावात्मक की मानसी सेवा कहा जाता है। सेवा के विषय में श्री महाप्रभु जी का विचार है कि गुरु की आज्ञानुसार प्रभु की सेवा करनी चाहिए । किसी समय प्रभु की इच्छा से अगर उसमें किसी प्रकार का प्रतिबन्ध भी उपस्थित हो जाए और गुरु आज्ञा के अनुसार सेवा न भी हो सके तो भी कोई चिन्ता नहीं । भक्त को चाहिए कि चित्त की सेवा परायण रहकर सुसज्जित रहे ।<sup>४</sup> इसका कारण यह है कि श्रीप्रभु की सेवा करते समय भगवान् चित्त

१- तदर्थं सेवना प्रीयता, सापि भावात्मिका पुनः ।

तत्प्राप्यकलरूपीऽपि प्रभुभावात्मको मतः । - हरिरायवाङ्मुक्तावली पृ० ६

२- चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा मानसी फलरूपिणी ।

प्रीयता निरोधरूपा सा ब्रजस्थेऽप्येव दृश्यते । - हपररायवाङ्मुक्तावली पृ० सं० २२

३- बाह्यास्पृता विद्योनेन रसे हृदयेऽग्रे ।

रसात्मक प्रभोस्तत्र प्रादुर्भावः स्वतो भवेत् ॥ - हरिरायवाङ्मुक्तावली पृ० सं० २६

४- सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बार्ध्वा वा हरीच्छया ।

जतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुतम् ॥

- नवरत्नम् , श्लोक ७

में उगे करार कर जो- जो करेंगे, उनकी वैसी ही सीला अर्थात् सेल मानकर चिन्ता का शीघ्र ही त्याग कर देना चाहिए।

इन तीनों में उत्कृष्ट सेवा मानसी है। इस मानसी के साधन रूप ही तनुजा और वित्तजा सेवार हैं। श्रवण- कीर्तन या शरीरादिक से की जाने वाली सेवा को तनुजा कहते हैं। सम्मार्गोपार्जित द्रव्य से प्रभु के मन्दिर आभूषण और वस्त्रादिक बनवाना वित्तजा सेवा कहलाता है। इन दोनों के निरन्तर अभ्यास करने से ही उस बीज भाव का उद्बोध होता है जिससे प्रभु प्रेम प्राप्ति होता है। प्रभु चरणों में स्नेह, आसक्ति एवं व्यसन का भी शनः शनः प्राप्ति होता है। व्यसन अवस्था को प्राप्त भक्त कृतार्थ हो जाता है। मानसी सेवा व्यसन अवस्था को प्राप्त भक्त की ही अभिन्न वृत्ति है।

प्रभु सेवा का लक्ष्य भगवत्प्रेम की प्राप्ति है। भक्त को चाहिए कि अपने हृदय में किसी भी कामना को न रखकर शुद्ध रीति से भगवान् की परिचर्या करे। भगवान् का ध्यान भक्त को सर्वत्र और सर्वदा बना रहना चाहिए। मनसा, वक्ता और कर्मणा केवल भगवान् को ही आराध्य समझे तभी सेवा की सिद्धि हो सकती है। भक्त का मन समाधिपूर्व प्रभु चरणारविन्द में तबलीन हो जाए तभी सेवा की पराकाष्ठा सम्पन्न हो सकती है। इस सेवा में नवधाभक्ति के सभी उपपादान सहायक होते हैं। सेवा के अवसर पर श्रीमद्भागवत, श्री सुबोधिनी, भगवन्नाम आदि की श्रवण श्रवण/भक्ति है। ऐसे अवसरों पर उगे का विनाश करने के लिए जो कीर्तन आदि होते हैं वे कीर्तन भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। नित्य नियम के साथ शरण/मंत्र समर्पण मन्त्र आदि का स्मरण करना स्मरण/भक्ति है। भगवन्मन्दिर में सौहिनी प्रभुति से अर्चन करना, भगवत्प्रसादी वस्त्रों को धोना और शयन पर्यन्त सब सेवा पादसेवन भक्ति है। पैरामृतस्नान, संकल्प, देवोत्थापन के समय मंत्रोच्चारण, धूप, दीप आदि उपचार अर्चनभक्ति के रूप हैं। प्रभु में दीनता रखकर नमस्कार करते रहना ही वन्दनभक्ति है। भगवत्प्रसाद लेना, प्रसादी वस्त्रों का धारण करना, अन्याय न करना आदि दास्य भक्ति है। प्रभु में सब कृतुओं के समय अपनेत्वपूर्ण व्यवहार

करना ही सम्भवित है क्योंकि अप्रतिरिक्त हितान्तरण को सत्य कहा जाता है। देह, इन्द्रिय, वृत्तकरण, स्त्री पुत्र गृह मित्र आदि को प्रभु सेवा के योग्य बनाना ही आत्मनिवेदन रूप भवित कही जा सकती है।

इस प्रकार पुष्टिमार्गीय सेवा में नवधा भवित के सभी उपादानों का प्रयोग किया जा सकता है। पर पुष्टिमार्गीय सेवा का अभिप्राय साधारण पूजा परिचर्या <sup>नहीं</sup> है <sup>अर्थात्</sup> क्योंकि पूजा में शास्त्रानुकूल वर्तना की जाती है। इस सेवा में वस्तुतः भावना का प्राधान्य होता है जिसका प्रारम्भ क्रियात्मक से अवश्य होता है। पर जिसका अन्तिम लक्ष्य भावना की वृद्धि ही है।

पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के दो क्रम हैं :-

१- नित्य सेवा

२- वर्णोत्सव की सेवा-विधि ।

प्रातःकाल से शयन पर्यन्त की नित्य सेवाविधि एवं विशेष अवसरों पर की सेवा को वर्णोत्सव की सेवाविधि कहते हैं। नित्य सेवाविधि में वात्सल्य भवित की ही प्रधानता रहती है जिसके लिए बाठ समय भी निर्दिष्ट हैं :- (१) मंगला (२) शृंगार (३) ग्वाल (४) राजमोग (५) उत्थापन (६) मोग (७) सन्ध्या और आरती तथा (८) शयन ।

वर्णोत्सव की सेवा-विधि में श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार तीलावों के उत्सव, इन्द्रियों के उत्सव, लोक-व्यवहार और वैदिक ऋषियों के उत्सव तथा अन्य अवसरों की विविध जयन्तियाँ सम्मिलित हैं।

इन दोनों प्रकार की सेवाविधियों में तीन प्रमुख हैं, शृंगार, मोग तथा राज । साधारणतया मनुष्य इन्हीं तीनों से बाध्य रहता है। श्रीमहाप्रभु जी ने इनका समर्पण अपने प्रभु वर्णों में करने का आदेश देकर एक प्रकार से मानव के मनोवर्गों एवं मनोभावों का उदात्तीकरण करने की योजना प्रस्तुत की है। वस्तुतः उपर्युक्त तीनों विषयों को मगवान् की सेवामें लगाकर श्रीमहाप्रभु जी ने



इनको भी भगवद्रूप कर दिया है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित हैं :-

भोग - खानपानादि के उत्तमोत्तम पदार्थों को शुद्ध रूप से तैयार कर वात्सल्य के साथ इन्हें विधिपूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित करना "भोग" कहलाता है। समर्पित हो जाने पर वह सामग्री "प्रसाद" कहलाती है। इसी से भक्त अपना जीवन निर्वाह करता है।

शृंगार- विविध कर्तकार्यों से प्रभु-स्वरूप को वर्तकृत करने की विधि को शृंगार कहते हैं। इससे उस स्वरूप में चित्त निरुद्ध होता है।

राग- राग स्वरूप सेवा का प्रमुख अंग है। प्रभु का कीर्तन रागवद्ध करने से मन शीघ्र स्थाय होता है। अतः यह निरोध का साधक है। श्रीप्रभु का कीर्तन नाना प्रकार के वाद्य यन्त्रों द्वारा विविध राग रागनियों में किया जाता है।

इस साधनरूप सेवा के पांच तत्त्व प्रमुख हैं :-

- १- श्रीहरि
- २- श्री वाचाय
- ३- वैष्णव
- ४- वाक्य एवं
- ५- सामान्य तथा विशिष्ट धर्म

श्रीहरि-

पुष्टिमार्ग में ६ प्रकार के स्वरूपों की सेवा का प्रचलन है। पुष्टिमार्गीय सेवा के मुख्य श्रीकृष्ण हैं। श्रीनाथ जी को यहाँ साक्षात् परब्रह्म माना गया है क्योंकि श्रीनाथ जी हैं ही श्रीकृष्ण के गोवर्धनधारी स्वरूप की भावना है। शेष जाठ प्रकार के स्वरूप निम्नलिखित हैं :-

- १- श्री नवनीत प्रिय जी
- २- श्री मधुरेश जी
- ३- श्री विट्ठल नाथ जी
- ४- श्री हारकाधीश जी
- ५- श्री गोकुलनाथ जी
- ६- श्री गोकुलचन्द्रमा जी



७- श्री बालकृष्ण जी

८- श्री नन्दमोहन जी

इन समस्त स्वरूपों की सेवाविधि में सामान्यजन की प्रवृत्तियों के अनुसार विभिन्न विधियों की अपेक्षा इस प्रकार वर्णित की गई है कि समस्त सौक्यता का समाहार वाध्यात्मिकता में होने का मार्ग प्रशस्त हो सके। श्री बाचार्य जी ने सर्वप्रथम माहात्म्य ज्ञानपूर्वक वात्सल्य भाव से सेवा का विधान किया था, लेकिन बाद में उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियों ने किशोर कृष्ण की युगल-लीलाओं के युगल स्वरूप की सेवा विधि का भी समावेश कर लिया।

## २- बाचार्य-

पुष्टिमार्गीय बाचार्यों में तीन भाव प्रमुख हैं :-

१- बाचार्यभाव

२- मन्त्र भाव तथा

३- ईश्वर भाव ।

१- बाचार्य भाव से ये पुष्टिमार्ग का प्रतिपादन करते हैं, प्राणिमात्र को शरण देते हैं, जीव की सेवा में स्थिर करते हैं, अपराध का दण्ड देते हैं और फिर उपदेश देते हैं।

२- मन्त्रभाव से ये बाचार्य श्रीनाथ जी की सेवा करते हैं, हरि के तत्सुत का विचार करते हैं, विप्रयोग का अनुभव करते हैं।

३- ईश्वर भाव से ये बाचार्य सेवकों की वस्तुओं को स्वतन्त्र रूप से अंगीकार करते हैं।

## ३- वैष्णव-

वैष्णव में ही सेवकभाव ज्ञान दास्यभाव पूर्ण विकसित होता है। पुष्टिमार्ग में स्वामित्व का सम्पूर्ण आविर्भाव श्रीहरि में रहता है और

सर्व भाव का आविर्भाव वैष्णव में । वैष्णवों की पुष्टिमार्ग में तीन त्रेणियाँ मानी गई हैं (१) वैष्णव, (२) भगवदीय (३) तादृशी । शरण दीक्षा की प्राप्ति से जीव "वैष्णव" होता है और भगवत्सेवादि में तत्पर रहता है। सेवा में अनन्यता प्राप्त करने पर ही वह भगवदीय कहलाता है। ऐसे भगवदीयों को ही प्रभु कृपा का अनुभव होता है, तब प्रभु के संयोग-विप्रयोग की लीला भावनाएं स्फुरित होती हैं।

भगवदीयों की स्थिति ही "भाव-भावना" को प्राप्त होती है और तब उसमें भगवदावेश का निरन्तर निवास रहता है। इससे भगवान् के सामर्थ्य, धर्म आदि का उसे अनुभव होता है। यह अवस्था ही सर्वोपरि है और इसको प्राप्त जीव ही "तादृशी" कहलाते हैं।

#### ४- जाग्रत-

पुष्टिमार्ग में अन्य भाव वाले जाग्रत का बड़ा महत्व है। जाग्रत के दृढ़ीभूत होने के लिए अन्य भाव आवश्यक है और लौकिक वैदिक सब कर्मों, धर्मों का त्याग कर केवल श्रीकृष्ण की शरण में जाने से अन्य भाव सिद्ध होता है और इसी से प्रभु का अनुग्रह भी प्राप्त होता है। मन्त्र को चाहिए कि मनसा, वक्त्रा, कर्मणा, सभी कुछ भगवान् को समर्पण करदे - लोक वेद के सभी धर्मों का यह निवेदन हो जाने के पश्चात् ही जीव अपने धर्मों के जाग्रत में सर्वा-शतः जा जाता है। साधक को अपना सर्वस्व सर्वात्मभाव से प्रभु चरणों में समर्पण कर देना चाहिए । तभी साधक को मानसी परा मन्त्र की प्राप्ति होती है। इस फलरूप सर्वात्मभाव की सिद्धि के लिए गोपियों के समान सर्वतोर्ध्व स्नेह भाव वाला "कान्त भाव" का जाग्रत अव्यावश्यक है। क्योंकि इसी स्थिति में साधक में "ब्रजाधिय" के प्रति स्वभावसिद्ध का आविर्भाव होता है। साध्याधिक सेवा-विधि ने नृसिंह, वामन आदि अवतारों की अयन्तियाँ मनाने का प्रवर्तन है और

इससे जन्य वाक्य नष्ट नहीं होता क्योंकि इससे सम्बन्धित भक्ति चरणात्मक शीतल साधनवाली शरणाभक्ति है जिसका पर्यवसान सुतारविन्द की उष्णाभक्ति में होता है। विविध अवतारों की व्यन्तियाँ मना कर साधक अपने वाराध्य की सर्वशक्तिमता का ही अनुभव करता है।

### ५- विशिष्ट एवं सामान्य धर्म-

“ पुष्टिमार्ग में दो प्रकार के धर्म माने गए हैं :-

१- विशिष्ट जिसे भगवद्धर्म कहते हैं

२- सामान्य जो लोक-वेद पर आधारित होता है।

विशिष्ट धर्म का स्वभाव ही भगवत्सेवा है जिसमें हरिसेवा, गुरुसेवा, वैष्णव सेवा आदि तीनों की ही सेवा का समावेश होता है। इस भगवद्धर्म के समस्त सामान्य धर्म तुच्छ हैं। वैष्णव को सर्वप्रथम भगवत्सेवा को ही महत्व देना चाहिए। वैदिक कर्म एवं लौकिक धर्म व्यवहार उसके बाद ही हैं। ”

भगवत्सेवा में कतिपय आचार विचार का बड़ा महत्व है। आचार में अस्थिरता आदि क्रियाएँ, सदाचारण्य, एवं वैष्णव वेषादि हैं। विचारों में वृथा ध्यान, क्रिया एवं आलाप आदि का समावेश होता है। वैष्णव को चाहिए कि परब्रह्म रूप श्री कृष्णसेवा में तन, मन, वाणी, धन से करता हुआ पूर्ण बाह्य-मूर्त्यंतर पवित्रता का ध्यान रहे। धैर्य, सन्तोष, निर्भयता आदि गुणों का ही विकास करे। इसी से उसकी सेवा में भगवदात्म्य को पूर्णता प्राप्त होती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पुष्टिमार्गीय सेवाविधि उसी ईश्वरता की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिसका प्रारम्भ आत्मनिवेदन से होता है। मन की प्रभु में अवच्छिन्न गति, उसी में सर्वतोन्मुख प्रगाढ़ स्नेह एवं दृढ़ विश्वास निरन्तर उसके सन्निवृत्त रहने से ही प्राप्त होता है। सेवा का यही परम फल है। यही पराभक्ति या मानसी सेवा का चरमोत्कर्ष है जो भक्त को सदा श्री कृष्ण चरणों में ही तल्लीन रहने के लिए प्रेरणा देता है।